प्रकाशक—
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

पांचवीं बार : १९४८

मूल्य
दस रुपया

समर्पण

सत्य और अहिंसा के चरणों में

जिनकी भावना ने कांग्रेस का भाग्य-सञ्चालन
किया है और जिनके लिए हिन्दुस्तान के
असंख्य पुत्र-पुत्रियों ने खुशी-खुशी
अपनी-मातृभूमि की मुक्ति के
लिए महान् त्याग और
बलिदान किये हैं।

लेखक की ओर से

कोई उद्देश्य निश्चित करके इस पुस्तक की तैयारी का भार मैंने नहीं उठाया था। इस वर्ष ग्रीष्म-ऋतु में बेकारी की घड़ियों में कलम-घिसाई करते-करते यह ग्रन्थ अपने-आप तैयार हो गया। बात यह हुई कि महासमिति के मंत्रीजी ने किसी दूसरे मामले में मुझसे यों ही एक बात पूछी थी, उसी सिलसिले में मंत्रीजी के द्वारा राष्ट्रपति को इस छोटी-सी कृति की सूचना मिल गई। राष्ट्रपति ने यह मामला कार्य-समिति में पेश कर दिया, और कार्य-समिति ने कृपा-पूर्वक कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती के अवसर पर इस पुस्तक के प्रकाशन का भार उठा लिया। इसके लिए मैं उनका अत्यन्त आभारी हूं।

प्रथम तीस वर्षों के इतिहास में कोई खास कथानक वर्णन करने जैसा नहीं था। इसलिए इस काल की घटनाओं का वर्णन विषय-वार और व्यक्तिवार किया गया है। हां, पिछले बीस वर्षों का विवरण साल-ब-साल दिया गया है।

भिन्न-भिन्न अधिवेशनों के निश्चय क्रमशः उद्धृत नहीं किये गये हैं। क्योंकि ऐसा करते तो पुस्तक का आधा आकार तो यों ही पूरा हो जाता। लेकिन इसके बिना भी पुस्तक आशातीत रूप में बड़ी हो गई है। पुस्तक में दोष भी बहुत रह गये हैं। मैं उनसे अनभिज्ञ नहीं हूं। योजना और लेखन की ये त्रुटियां ऐसी हैं कि अधिक अवकाश मिलता और ज्यादा ध्यान दिया जा सकता तो इनमें कुछ कमी तो जरूर की जा सकती थी। परन्तु काम बहुत ही थोड़े समय में करना पड़ा, और जल्दी में कोई काम अच्छा भी नहीं होता। फिर भी बहुत थोड़े समय में ही राष्ट्रपति इस पुस्तक को दो बार पढ़ गये हैं। इस प्रकार उन्हें पुनरावृत्ति और संशोधन-कार्य में जो परिश्रम करना पड़ा उसके लिए मेरे साथ ही जनता को भी उनका कृतज्ञ होना चाहिए। कांग्रेस के प्रधान-मन्त्री आचार्य कृपलानी को भी इसपर कम परिश्रम नहीं करना पड़ा और मन्त्री श्री कृष्णदास को छापने के लिए सामग्री तैयार करने का कठिन कार्य करना पड़ा है। अतः वे भी देश के धन्यवाद के पात्र हैं।

मछलीपट्टम,

१२ दिसम्बर, १९३५

पट्टाभि सीतारामय्या

सम्पादक की ओर से

हमारे माननीय राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रबाबू ने मुझे पत्र-द्वारा सूचित किया था कि डॉ० पट्टाभि-सीतारामय्या-लिखित कांग्रेस के इतिहास (History of the Congress) का हिन्दी-संस्करण सस्ता-साहित्य-मण्डल द्वारा प्रकाशित किया जाय; इधर भाई श्री देवदासजी गांधी ने प्रेम-पूर्वक आग्रह किया कि हिन्दी-संस्करण तैयार करने की जिम्मेदारी मैं खुद लूं। मेरा कांग्रेस-भक्त-हृदय इस आग्रह को भला कैसे टाल सकता था? जिम्मेदारी ले तो ली; किन्तु जैसे-जैसे काम में प्रवेश करता गया तैसे-तैसे बाह्य और आन्तरिक दोनों प्रकार की कठिनाइयों से घिरता गया और यदि वे मित्र, जिनका नाम-निर्देश आगे किया जायगा, मेरी सहायता के लिए न दौड़ पड़ते, तो दो महीने में इतनी बड़ी पुस्तक का अनुवाद और प्रकाशन असम्भव होता। ईश्वर को धन्यवाद है कि अनुवाद समय पर तैयार हो गया है।

अनुवाद को सरल, सुबोध और प्रामाणिक बनाने की भरसक चेष्टा की गई है। फिर भी मूल मूल और अनुवाद अनुवाद ही होता है। मैं नहीं समझता कि यह अनुवाद इसमें अपवाद हो सकता है।

मूल अंग्रेजी प्रति थोड़ी-थोड़ी करके मिलती रही है—इसलिए सारी पुस्तक को अच्छी तरह पढ़ जाने पर अनुवाद करने में जो सुविधा मिल सकती थी वह नहीं मिली। यहां तक कि अनुवाद का कितना ही अंश छप चुकने पर महासमिति के दफ्तर से कुछ संशोधन मिले और अभीतक मिलते चले गये, जिनमें से कुछको तो चिप्पियां लगा-लगाकर भी जोड़ना पड़ा है। समय कम मिलने के कारण मूल की यत्र-तत्र पुनरुक्ति से भी अनुवाद को न बचाया जा सका। मैं मानता हूं कि यदि समय अधिक मिला होता तो मूल पुस्तक और अच्छी बन सकती थी और यह अनुवाद भी इससे बढ़कर हो सकता था। इन तमाम कठिनाइयों और असुविधाओं के रहते हुए भी, पुस्तक का अन्तरंग और बहिरंग सुन्दर बनाने का यत्न किया गया है।

पुस्तक के गुण-दोषों के सम्बन्ध में कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं। यह मेरा काम है भी नहीं। मेरे जिम्मे हिन्दी-संस्करण तैयार करने का काम था—वह यदि पाठकों के लिए सन्तोषजनक निकला तो मैं अपनी जिम्मेदारी से बरी हुआ। जल्दी के कारण इस संस्करण में जो त्रुटियां रह गई हैं उन्हें दूसरे संस्करण में दूर करने का यत्न किया जायगा।

मैं अपने सहायक मित्रों को धन्यवाद दिये बिना इस वक्तव्य को समाप्त नहीं कर सकता। सबसे पहले मुझे भाई मुकुटबिहारी वर्मा और प्रोफेसर गोकुललालजी असावा का नामोल्लेख करना चाहिए, जिनकी बहुमूल्य सहायता और जी-तोड़ परिश्रम के बिना यह संस्करण किसी प्रकार तैयार नहीं हो सकता था। इसी तरह भाई रामनारायण चौधरी (अध्यक्ष राजस्थान-हरिजन-सेवक-संघ), श्री रुद्रनारायण अग्रवाल, भाई कृष्णचन्द्र विद्यालंकार (सम्पादक साप्ताहिक 'अर्जुन'), श्री हरिश्चन्द्र गोयल और भाई शिवचरणलाल शर्मा से भी समय-समय पर बड़ी सहायता मिली; जिनका कृतज्ञता-पूर्वक उल्लेख करना मेरा कर्तव्य है।

'हिन्दुस्तान टाइम्स' प्रेस के कर्मचारियों को भी प्रकाशक की ओर से धन्यवाद मिलना चाहिए, जिन्होंने दिन-रात परिश्रम करके इस पुस्तक को सुन्दरता के साथ थोड़े समय में छापने की सुविधा मण्डल को कर दी। वे सब सज्जन भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने अन्य प्रकार से हिन्दी-संस्करण को तैयार करने में सहायता पहुंचाई।

मुझे विश्वास है कि यह इतिहास, कांग्रेस का यह पुण्य-स्मरण, कांग्रेस-माता का यह दूध पाठकों के जीवन को पवित्र, तेजस्वी तथा बलिष्ठ बनायेगा और उन्हें स्वाधीनता की बलिवेदी पर अपने आपको चढ़ाने की स्फूर्ति देगा।

वन्दे मातरम्!

गांधी-आश्रम
हटुण्डी (अजमेर),
१५ दिसम्बर १९३५

हरिभाऊ उपाध्याय

दूसरे संस्करण का वक्तव्य

कांग्रेस के इतिहास का पहला संस्करण किस जल्दी और परिस्थिति में निकाला गया था यह पहले संस्करण के वक्तव्य में दिया जा चुका है। मित्रों की सहायता और ईश्वर की कृपा से हम उसे समय पर सर्व-साधारण के सामने रख सके, यह हमारे लिए बहुत बड़ी बात थी। लेकिन कांग्रेस तो इतनी बड़ी संस्था है कि हमने उसकी जो ढाई हजार प्रतियां छपवाई थीं वे बहुत कम साबित हुईं, और छपने के साथ ही न केवल वे सब ही समाप्त हो गईं बल्कि और मांग बनी ही रही। पाठकों के तकाजे और उलहने आते रहे, पर हम मजबूर थे। लखनऊ-कांग्रेस के इस शुभावसर पर हम उसका दूसरा संस्करण उत्सुक पाठकों के सामने पेश करते हैं।

श्री हरिभाऊजी उपाध्याय ने एकबार फिर सारी किताब को मूल से मिलाकर दोहरा लिया है और प्रूफ में भी सावधानी रक्खी गई है। इस प्रकार पाठक इसे पहले संस्करण से कुछ अच्छा ही पायेंगे। फिर भी त्रुटियों का रह जाना असंभव नहीं है। पाठकों के ध्यान में कोई आवे तो हमें सूचित करने की कृपा करें।

—मंत्री

प्रस्तावना

हमारी राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) पचास वर्ष पूर्व, पहले-पहल, कुछ थोड़े-से प्रतिनिधियों की उपस्थिति में, बम्बई में हुई थी। जो लोग वहां उपस्थित थे वे निर्वाचित प्रतिनिधि तो शायद ही कहे जा सकें, परन्तु थे सच्चे जन-सेवक। बस, तभी से यह भारतीय जनता के लिए स्वराज्य-प्राप्ति का प्रयत्न कर रही है। यह ठीक है कि प्रारम्भ में इसका लक्ष्य अनिश्चित था, लेकिन हमेशा इसने शासन के ऐसे प्रजातन्त्री रूप पर जोर दिया है जो भारतीय जनता के प्रति जिम्मेदार हो और जिसमें इस विशाल देश में रहनेवाली सब जातियों एवं श्रेणियों का प्रतिनिधित्व हो। इसका आरम्भ इस आशा और विश्वास को लेकर हुआ था कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञता और ब्रिटिश-सरकार समयानुसार ऊंचे उठेंगे और ऐसी संस्थाओं की स्थापना करेंगे जो सचमुच प्रातिनिधिक हों और जिनसे भारतीय जनता को भारत के हित की दृष्टि से भारत का शासन करने का अधिकार मिले। कांग्रेस का प्रारम्भिक इतिहास इस श्रद्धा-युक्त विश्वास के निदर्शक प्रस्तावों और भाषणों से ही भरा हुआ है। कांग्रेस की जो मांगें हैं वे भी ऐसे प्रस्तावों के ही रूप में हैं, जिनमें यह सुझाया गया है कि क्या तो सुधार होने चाहिए और कौनसी आपत्तिजनक कार्रवाइयां रद होनी चाहिए; और उन सबका आधार यह आशा ही रही है, कि यदि ब्रिटिश-पार्लमेण्ट को भारत की इस स्थिति का तथा भारतीयों की इच्छा का भलीभांति पता लग जाय तो वे गलतियों को दुरुस्त करके अन्त में हिन्दुस्तान को स्वशासन की बेशकीमत बख्शीश दे देंगे। लेकिन हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड में ब्रिटिश-सरकार ने जो कार्रवाइयां कीं उनसे यह आशा और विश्वास धीरे-धीरे पर महत्त्वपूर्ण रूप में नष्ट हो चुके हैं। ज्यों-ज्यों हमारी राष्ट्रीय जागृति बढ़ती गई त्यों-त्यों ब्रिटिश सरकार का रुख भी कठोर-से-कठोर होता गया। ब्रिटिश-शासन की सदिच्छाओं पर प्रारम्भ में हमारा जो विश्वास था उसमें लॉर्ड कर्जन के, जिन्होंने बंगाल को विभक्त कर दिया था, शासन-काल में धक्का लगा। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के विरुद्ध जो महान् आन्दोलन हुआ वह सर्व-साधारण में उठती हुई राष्ट्रीय-जागृति की लहर का ही द्योतक था, जो कि बीसवीं सदी के आरम्भ में रूस पर जापान की विजय जैसी विश्वव्यापी घटनाओं से कुछ कम प्रभावित नहीं थी। फिर भी अंग्रेजों पर से हमारा विश्वास बिलकुल उठ नहीं चुका था, इसलिए महायुद्ध के समय कुछ तो इस विश्वास के ही कारण, जो कि बंग-भंग रद हो जाने से फिर सजीव हो गया था, और कुछ सारी परिस्थिति को अच्छी तरह न समझ सकने की वजह से, ब्रिटिश-साम्राज्य के संकट के समय उसे सहायता देने की ब्रिटिश-सरकार की पुकार पर देश ने उसका साथ दिया। भारत ने इस संकट-काल में जो बहुमूल्य सहायता की उसकी सब ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों ने सराहना की, और भारतीयों के मन में यह आशा पैदा कर दी गई कि जो युद्ध प्रत्यक्षतः राष्ट्रों के स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त तथा प्रजातन्त्री-शासन को सुरक्षित करने के उद्देश्य से लड़ा जा रहा है उसके फलस्वरूप भारत में भी उत्तरदायी-शासन की स्थापना हो जायगी। १९१७ में ब्रिटिश-सरकार की ओर से भारत-मन्त्री ने जो घोषणा की, जिसमें थोड़ा-थोड़ा करके स्वशासन देने का आश्वासन दिया गया था, उस

पर हिन्दुस्तानियों में मतभेद उत्पन्न हुआ; और जैसे-जैसे भारत-मंत्री व वाइसराय-द्वारा की गई इस सम्बन्धी जांचों का परिणाम और उस बिल का स्वरूप, जो कि आखिर १९२० में भारतीय-शासन-विधान (गवर्नमेण्ट ऑफ इंडिया एक्ट) बन गया, प्रकट होते गये वैसे-वैसे वह मतभेद भी उत्तरोत्तर तीव्र होता चला गया। बिल अभी बन ही रहा था कि महायुद्ध समाप्त हो गया, और उसमें ब्रिटिश-सरकार की जीत रही। तब हिन्दुस्तान को यह महसूस होने लगा कि युद्ध के कारण यूरोप में ब्रिटिश-सरकार को जो कठिनाई उत्पन्न हो गई थी, युद्ध में उसके जीत जाने से, चूंकि अब वह दूर हो गई है, हिन्दुस्तान के प्रति उसका रुख बदल गया है और पहले से कहीं खराब हो गया है। खिलाफत के मामले में जो कुछ हुआ, जिसे कि मुसलमानों के प्रति विश्वासघात कहा गया, और (देशव्यापी सर्वसम्मत विरोध के होते हुए भी) उन बिलों के स्वीकृत कर लिये जाने से, जो कि रौलट-बिलों के नाम से मशहूर हैं और जिनके द्वारा जन-साधारण को स्वतंत्र नागरिकता के मौलिक अधिकारों से वंचित करने वाली भारत-रक्षा-विधान की उन कठोर धाराओं को फिर से अमल में लाने की व्यवस्था की गई थी जिन्हें कि महायुद्ध के समय ढीला छोड़ दिया गया था, इस भावना को और भी पुष्टि और दृढ़ता मिली। इन बातों से स्वभावतः देशभर में जोरदार हलचल मच गई और दक्षिण-अफ्रीका में तथा छोटे पैमाने पर भारत के खेड़ा व चम्पारन जिलों में जिस सत्याग्रह का प्रयोग किया जा चुका था, उसे पहली बार महात्मा गांधी ने इन तथा अन्य शिकायतों से देश के मुक्ति पाने के उपाय के तौर पर प्रस्तुत किया। दुर्भाग्यवश इस सिलसिले में पंजाब और अहमदाबाद में जनता की ओर से कुछ उत्पात हो गये. जिससे लोगों के जान-माल का नुकसान हुआ और जलियांवाला-बाग-हत्याकाण्ड व पंजाब में फौजी शासन के भीषण दृश्य सामने आये। स्वभावतः देश भर में इससे हलचल मच गई और रोष छा गया। इन दुर्घटनाओं की जांच के लिए हण्टर-कमिटी नियुक्त हुई, लेकिन उसकी रिपोर्ट भी उस हलचल और रोष को शान्त न कर सकी, उलटे पार्लमेण्ट में उस रिपोर्ट पर जो बहस हुई उससे वह और भी प्रबल हो गया। तब असहयोग-आन्दोलन शुरू हुआ। इसमें एक ओर तो सरकारी उपाधियों के त्याग और सरकारी कौंसिलों, सरकार-द्वारा स्वीकृत शिक्षणालयों, अदालतों तथा विदेशी कपड़े के बहिष्कार का कार्यक्रम रक्खा गया, और दूसरी ओर जगह-जगह कांग्रेस-कमिटियों की स्थापना, कांग्रेस सदस्यों की भरती, तिलक-स्वराज्य-कोष के लिए रुपया इकट्टा करना, राष्ट्रीय शिक्षणालयों की स्थापना, ग्रामवासियों के झगड़े निपटाने के लिए पंचायतों की स्थापना तथा हाथ की कताई-बुनाई को पुनर्जीवित करते हुए क्रमशः सविनय-अवज्ञा और लगानबन्दी तक पहुंच जाने का कार्यक्रम रक्खा गया। कांग्रेस-विधान में परिवर्तन करके कांग्रेस का लक्ष्य 'शान्तिपूर्ण और उचित उपायों से स्वराज्य-प्राप्ति' रक्खा गया। इससे देश भर में जागृति की लहर छा गई और सरकार ने भी अपना दमन-चक्र जारी कर दिया। देखते-देखते १९२१ के अन्त तक हजारों स्त्री-पुरुष जिनमें देश के कुछ अत्यन्त प्रतिष्ठित नेता भी थे, जेलखानों में जा पहुंचे। सरकार के साथ समझौते की बातचीत भी चली, पर वह सफल न हुई। मगर इसी दर्मियान युक्तप्रान्त के चौरीचौरा स्थान में भयंकर उत्पात हो जाने के कारण, बारडोली में करबन्दी के आन्दोलन का जो कार्यक्रम तय हुआ था-उसे स्थगित कर देना पड़ा। इसके बाद एक-एक करके असहयोग-कार्यक्रम की दूसरी बातें भी स्थगित कर दी गईं और कांग्रेसवादी कौंसिलों में प्रविष्ट हुए।

१९२० के शासन-विधान के अमल की जांच के लिए ब्रिटिश-पार्लमेण्ट ने जो कमीशन नियुक्त किया, जोकि साइमन-कमीशन के नाम से मशहूर है, उसमें हिन्दुस्तानियों के न रक्खे जाने से देश में फिर हलचल मची। तब, अन्य सार्वजनिक संस्थाओं के साथ मिलकर, कांग्रेस ने सरकार

की स्वीकृति के लिए, भारत के लिए ऐसा शासन-विधान बनाया, जिसमें भारत का लक्ष्य ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों के समान स्थिति (डोमिनियन स्टेटस) की प्राप्ति रक्खा गया। लेकिन सरकार ने इसका कोई पर्याप्त जवाब नहीं दिया। तब दिसम्बर १९२९ में, लाहौर के अपने अधिवेशन में, कांग्रेस ने अपना लक्ष्य बदलकर शान्तिपूर्ण और उचित उपायों से पूर्ण स्वराज्य (पूर्ण स्वाधीनता) की प्राप्ति कर दिया और १९३० के आरम्भ में अनैतिक कानूनों की सविनय-अवज्ञा तथा कर-बन्दी का आन्दोलन संगठित किया। इंग्लैण्ड की सरकार ने एक ओर तो लन्दन में एक परिषद् का आयोजन किया, जिसमें भारत के लिए शासन-विधान बनाने के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए कुछ हिन्दुस्तानियों को नामज़द किया गया, और दूसरी ओर भारत में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन को कुचलने के लिए अनेक अत्यन्त भीषण आर्डिनेन्सों-सहित दमनकारी उपाय अख्तियार किये गये। मार्च १९३१ में सरकार की ओर से वाइसराय लॉर्ड अर्विन और कांग्रेस की ओर से महात्मा गांधी के बीच एक समझौता हुआ, जिसके फल-स्वरूप सविनय-अवज्ञा स्थगित कर दी गई और १९३१ के आखिरी दिनों में महात्मा गांधी लन्दन में होनेवाली गोलमेज-परिषद् में शामिल हुए। लेकिन जैसा कि खयाल था, इस परिषद् से कोई नतीजा हासिल न हुआ और १९३२ की शुरुआत में ही कांग्रेस को फिर से आन्दोलन शुरू कर देना पड़ा, जो १९३४ तक चलता रहा। १९३४ में वह फिर स्थगित कर दिया गया। १९३० और १९३२ इन दोनों बार के आन्दोलनों में हजारों स्त्री-पुरुष और बच्चे तक जेलों में गये, लाठी-प्रहार तथा अन्य प्रकार के कष्टों को उन्होंने सहा, और अपनी सम्पत्ति का नुकसान भी बर्दाश्त किया। बहुत-से, सरकारी सेनाद्वारा भीड़ पर चलाई गई गोलियों के कारण, मारे भी गये। सत्याग्रहियों ने इस अवसर पर अपने संगठन और कष्ट-सहन की अद्भुत शक्ति का परिचय दिया और भारी-से-भारी उत्तेजनाओं के बीच भी, कुल मिलाकर, पूरी तरह अहिंसक ही रहे। कांग्रेस-संगठन ने सरकार के भारी आक्रमण के बावजूद कायम रहकर सिद्ध कर दिया कि वह निर्जीव नहीं है और अपने को समयानुकूल बनाने की उसमें पर्याप्त क्षमता है। यह ठीक है कि देश का जो लक्ष्य है वह पूर्ण-स्वराज्य अभी हमें प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि देश इस अग्नि-परीक्षा में प्रशंसनीय रूप से पार उतरा है।

करांची के अधिवेशन में कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सब भारतवासियों को उनके कुछ मौलिक अधिकारों का आश्वासन दिया है और देश के सामने एक आर्थिक एवं सामाजिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया है। उसमें यह स्पष्ट कर दिया गया है कि जन-साधारण के शोषण का अन्त करने के लिए यह आवश्यक है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता में भूखों मरनेवाले करोड़ों लोगों की वास्तविक आर्थिक स्वतन्त्रता का भी समावेश हो; और भाषण, सम्मिलन, जान-माल, धर्म तथा अन्तरात्मा के आदेश आदि सम्बन्धी स्वतन्त्रता के मौलिक अधिकारों की घोषणा कर दी गई है। यह भी निर्दिष्ट कर दिया गया है कि कल-कारखानों में काम करनेवालों के लिए काम की स्वास्थ्यप्रद परिस्थिति, काम के मर्यादित घंटे, आपसी झगड़ों के फैसले के लिए उपयुक्त संगठन और बुढ़ापे, बीमारी व बेकारी के आर्थिक संकटों से संरक्षण तथा मजदूर-संघ बनाने के उनके अधिकार को कायम रखने के रूप में उनके हितों का खयाल रक्खा जायगा। किसानों को इसने आश्वासन दिया है कि यह लगान-मालगुजारी में उपयुक्त कमी करा कर और अनुत्पादक जमीनों की लगान-मालगुजारी माफ कराकर तथा छोटी-छोटी जमीनों के मालिकों को उस कमी के कारण जो नुकसान होगा उसके हिसाब से उचित और न्याय्य छूट की सहायता देकर यह उनके खेती-सम्बन्धी भार को हलका करेगी। खेती-बाड़ी से होनेवाली आमदनी पर, उसके एक उचित न्यूनतम परिमाण से ऊपर, इसने

क्रमागत कर लगाने की भी व्यवस्था की है। साथ ही एक निश्चित रकम से अधिक आमदनीवाली सम्पत्ति पर उत्तरोत्तर बढ़ता जानेवाला विरासत का कर लगाने, फौजी व मुल्की शासन के खर्चे में भारी कमी करने और सरकारी कर्मचारियों की तनख्वाह ५००) महीने से ज्यादा न रखने के लिए कहा है। इसके अलावा एक आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया गया गया है जिसमें विदेशी कपड़े का बहिष्कार, देशी उद्योग-धन्धों का संरक्षण; शराब तथा अन्य नशीली चीजों का निषेध, बड़े-बड़े उद्योगों पर सरकारी नियंत्रण, काश्तकारों का कर्जदारी से उद्धार, मुद्रा और विनिमय की नीति का देश के हित की दृष्टि से संचालन और राष्ट्र-रक्षा के लिए नागरिकों को सैनिक शिक्षण देने का निर्देश है।

कांग्रेस के अन्तिम अधिवेशन में, जोकि अक्तूबर १९३४ में बम्बई में हुआ था, कौंसिल-प्रवेश की नीति को स्वीकार कर लिया गया है और देश के सामने रचनात्मक कार्यक्रम रक्खा गया है जिसमें हाथ की कताई-बुनाई को प्रोत्साहन एवं पुनर्जीवन देने, उपयोगी ग्रामीण तथा अन्य छोटी दस्तकारियों (गृह-उद्योगों) की उन्नति करने, आर्थिक, शिक्षणात्मक, सामाजिक एवं स्वास्थ्य-विज्ञान की दृष्टि से ग्रामीण-जीवन का पुनर्निर्माण करने, अस्पृश्यता का नाश करने, अन्तर्जातीय एकता की वृद्धि करने, सम्पूर्ण मद्य-निषेध राष्ट्रीय-शिक्षा, वयस्क स्त्री-पुरुषों में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करने, कल-कारखानों में काम करनेवाले मजदूरों व खेती करनेवाले किसानों का संगठन करने और कांग्रेस-संगठन को मजबूत बनाने की बातें भी हैं। कांग्रेस-विधान का संशोधन करके, नये विधान में, प्रतिनिधियों की संख्या घटाकर कांग्रेस-रजिस्टर में दर्ज जितने सदस्य हों उनके अनुपातानुसार कर दी गई है; साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया है कि कांग्रेस-कमिटियों के सब निर्वाचित-सदस्य शारीरिक श्रम करने और आदतन खादी पहननेवाले हों।

इस प्रकार कांग्रेस कदम-ब-कदम आगे बढ़ती गई है और राष्ट्रीय हलचल के हरेक क्षेत्र में उसने अपना प्रवेश कर लिया है। इस समय वह रचनात्मक कार्य में लगी हुई है जिससे न केवल जन-साधारण की माली हालत ही ठीक होगी, बल्कि उसको पूरा करने से उनमें वह आत्म-विश्वास भी जागृत होगा जिससे वे पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त कर सकेंगे। एक छोटी संस्था के रूप में आरम्भ होकर अब यह इतनी प्रशस्त हो गई है कि सारे देश में इसकी शाखायें हैं और देश के सर्व-साधारण का विश्वास इसको प्राप्त है। उसके आदेश पर देश के सब श्रेणियों के लोगों ने स्वराज्य-प्राप्ति के लिए बहुत बड़े पैमाने पर बलिदान किया है; और इसके कार्यों व इसकी सफलताओं का राष्ट्र के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। यह ऐसा संगठन है जो हमारे राष्ट्र की एक महान् थाती है, जिसकी रक्षा और वृद्धि करना हरेक हिन्दुस्तानी का कर्तव्य होना चाहिए। स्वतंत्रता की उस लड़ाई में, जो अभी भी हमें लड़ना बाकी है, निश्चय ही यह अधिक-से-अधिक भाग लेती रहेगी। यह समय सुस्ताने या विश्राम करने का नहीं है। अभी तो बहुत-सा काम करने को बाकी पड़ा है, जिसके लिए बहुत सब्र के साथ तैयारी करने, लगातार बलिदान करने और अटूट दृढ़-निश्चय की आवश्यकता है। पूर्ण-स्वराज्य से कुछ कम पर हम हर्गिज सन्तोष न करेंगे। आइए, उन सब जाने-बेजाने स्त्री-पुरुष और बच्चों के आगे हम अपना सिर झुकायें, जिन्होंने इसके लिए अपनी जान तक कुरबान कर दी है, तरह-तरह के संकट और अत्याचार सहे हैं, और जो अपनी मातृभूमि से प्रेम करने के कारण अब भी कष्ट पा रहे हैं।

साथ ही, कृतज्ञता और सम्मान के साथ, हमें उन लोगों की सेवाओं का भी स्मरण करना चाहिए, जिन्होंने कि इस शक्तिशाली संस्था का बीजारोपण किया और अपने निःस्वार्थ परिश्रम एवं

अपनी कुरबानियों से इसका पोषण किया। पचास साल पहले जो छोटा-सा बीज बोया गया था वह अब बढ़कर एक मजबूत वटवृक्ष बन गया है, जिसकी शाखा-प्रशाखायें इस विशाल देश-भर में फैल गई हैं और अब अगणित नर-नारियों की कुरबानियों के रूप में उसमें कलियां फूटी हैं। अब जो लोग बाकी बचे हैं उनका फर्ज है कि वे अपनी सेवा और कुरबानियों से इसका पोषण करें, ताकि प्रकृति ने जिस उद्देश्य से इसको बनाया है वह पूर्ण हो, इसमें फल लगें और उनसे भारतवर्ष स्वतंत्र एवं समृद्ध देश बन जाय।

आगे के पृष्ठों में कांग्रेस की प्रगति का वर्णन मिलेगा। कांग्रेसी मामलों और व्यक्तियों के बारे में लेखक का ज्ञान और अनुभव बहुत विस्तृत है। स्वयं उन्होंने भी, उसकी प्रगति के पिछले हिस्से में, कुछ कम भाग नहीं लिया है। लेकिन वे एक दूर बैठे हुए इतिहासकार नहीं हैं, जो खाली घटनाओं का ज्यों-का-त्यों उल्लेख करके निर्जीव तथ्यों के आधार पर निष्कर्ष निकालते। उन्होंने तो यह अपनी आंखों देखा है और इसके लिए खुद काम भी किया है। खाली जानकारी से ही उन्होंने काम नहीं लिया बल्कि अपनी श्रद्धा का भी उपयोग किया है। अतएव उन्होंने जो निष्कर्ष निकाले हैं और जो मत व्यक्त किये हैं, वे उनके अपने हैं, उन्हें हर बात में कांग्रेस की कार्य-समिति के, जो कि इस पुस्तक को प्रकाशित करके दुनिया के सामने पेश कर रही है, निष्कर्ष और मत न समझ लेना चाहिए। फिर भी, आशा है, इसमें घटनाओं और तथ्यों का विश्वसनीय उल्लेख है और वर्तमानकालीन इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत उपयोगी होगी।

१२ दिसम्बर, १९३५ — राजेन्द्रप्रसाद

विषय-सूची

भाग पहला : १८८५—१९१५

भाग दूसरा : १९१५—१९१९

भाग तीसरा : १९२०—१९२८

भाग चौथा : १९२९—१९३०

भाग पाँचवाँ : १९३१

भाग छठा : १९३२—१९३५

परिशिष्ट

कांग्रेस का इतिहास

[पहला भाग : १८८५–१९१५]

१

कांग्रेस का जन्म

कांग्रेस का इतिहास सच पूछो तो हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई का इतिहास है। कई सदियों से भारतीय राष्ट्र विदेशियों का गुलाम बना हुआ है। इस समय वह जिस गुलामी में फंसा हुआ है उसका आरम्भ भारतवर्ष में एक व्यापारी कम्पनी के पदार्पण करने के साथ हुआ है; और उस गुलामी से देश को मुक्त करने के लिए पिछले ५० सालों से कांग्रेस प्रयत्न करती चली आ रही है।

१ पूर्व परिस्थिति

ईस्ट इण्डिया कम्पनी का व्यापारिक और राजनैतिक दौरदौरा भारत में कोई सौ वर्षों तक रहा। इसी बीच उसने भारत में बड़े-बड़े हिस्सों पर अपना कब्जा कर लिया और व्यापारी की जगह अब एक राजशक्ति बन गई। १७७२ के बाद ब्रिटिश-पार्लमेण्ट समय-समय पर उसके कामों की जांच-पड़ताल करने लगी और जब जब उसको नया चार्टर (सनद) दिया जाता तब-तब पहले ब्रिटिश सरकार की तरफ से उसके कामों की जांच कर ली जाती थी। चूंकि उसका व्यापारिक कार्य पीछे पड़ता जा रहा था, यह जांच-पड़ताल और भी बारीकी के साथ होने लगी। परन्तु इससे यह खयाल करना तो ठीक न होगा कि उसके काम पर कोई गहरी देख-रेख की जाती रही हो। हां, ऐसे ब्रिटिश लोग जरूर थे जो भारतीय प्रश्नों का गहराई के साथ अध्ययन करते थे। वे कम्पनी के कार्य और कार्यक्रम को गौर से और आंखें खोलकर देखा करते थे और उसे पार्लमेण्ट की निगाह से गुजारने में किसी तरह शिथिल नहीं रहते थे। १८ वीं सदी के चौथे चरण में एडमण्ड बर्क, शेरिडन और फॉक्स नामक सज्जनों ने इस विषय में बड़ी दिलचस्पी ली। उससे कम्पनी के एजेण्टों के कारनामों की ओर लोगों का ध्यान खिंच गया। हांलाकि वारन हेस्टिंग्स पर चलाये गये मुकदमे का उद्देश्य पूरा न हुआ, फिर भी उसने कम्पनी के अन्याय-अत्याचार को लोगों की निगाह में ला दिया। नया चार्टर देने के पहले जब-जब जांच-पड़ताल की गई, तब-तब उसके फल स्वरूप दूरगामी परिणाम लाने वाले कुछ-न-कुछ सिद्धान्तों का निरूपण तो जरूर किया गया, परन्तु वे सिर्फ कागज में ही लिखे रह जाते थे। कई बार यह नीति निश्चित की गई कि कम्पनी के एजेण्ट अपने-अपने इलाकों की सीमा बढ़ाने की कोशिश न करें, परन्तु हर बार कोई-न-कोई ऐसा मौका आ जाता था या पैदा कर लिया जाता था कि जिससे इस आदेश का पालन न होता था और उनके इलाके की सीमा बढ़ती ही चली गई। यहां उस इतिहास में प्रवेश करने की जरूरत नहीं है, जो ईस्ट इण्डिया कम्पनी की तरफ से भारत को हथियाते समय की गई दगाबाजियों और काली करतूतों से भरा हुआ है, जिसमें क्षुद्र और लोभी मानव-प्रकृति ने अपना रंग खूब दिखाया है और जिसमें सन्धियां और शर्तनामे कदम-कदम पर तोड़े गये हैं; और न यहां इसी बात की जरूरत है कि हिन्दुस्तानियों ने जो आपस

में दगाबाजियां और नमकहरामियां की हैं उनका वर्णन किया जाय; न कम्पनी के एजेण्टों के द्वारा काम में लाये गये उन साधनों और तदबीरों पर विचार करने की जरूरत है, जिनके बल पर उन्होंने न सिर्फ कम्पनी और उसके डाइरेक्टरों को मालामाल कर दिया बल्कि खुद अपनी जेबें भी भर लीं। सिर्फ इतना ही कह देना काफी होगा कि उन्होंने अटूट धन-सम्पत्ति प्राप्त कर ली, जिसने आगे चलकर उनके लिए एक बड़ी पूंजी का काम दिया और जिसके बल पर इंग्लैण्ड, स्टीम-एंजिन चलाने में तथा १९ वीं सदी में दुनिया में अपने औद्योगिक प्रभुत्व को स्थापित करने में सफल हो सका।

१७७४ में रेग्युलेटिंग एक्ट पास हुआ और कम्पनी के कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स (संचालक-सभा) के ऊपर बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल (नियामक मण्डल) और कौंसिल-सहित एक गवर्नर-जनरल की नियुक्ति हुई। तब गोया ब्रिटिश-पार्लमेण्ट ने पहले-पहल हिन्दुस्तानी इलाकों के शासन की कुछ जिम्मेदारी अपने ऊपर ली। धीरे-धीरे यह नियन्त्रण बढ़ता गया और १७८५ में एक दूसरा कानून पास हुआ। १७९३, १८१३, १८३३ और १८५३ में तहकीकात करने के बाद नये चार्टर दिये गये। १८३३ में एक कानून बनाया गया कि "पूर्वोक्त प्रदेशों के कोई भी निवासी या बादशाह के कोई प्रजाजन, जो वहां रहते हों, महज अपने धर्म, जन्मस्थान, वंश या वर्ण के कारण कम्पनी में किसी स्थान, पद या नौकरी से वंचित न रक्खे जायंगे" और कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स ने इसके महत्व को इस प्रकार समझाया—

"इस धारा का आशय कोर्ट यह मानती है कि ब्रिटिश भारत में कोई शासन करने वाली जाति न रहेगी। उनकी योग्यता की दूसरी कुछ भी कसौटियां रक्खी जायं, जाति या धर्म का कोई भेद-भाव नहीं रक्खा जायगा। बादशाह के प्रजाजन में से किसी को, फिर वे चाहे भारतीय, ब्रिटिश या मिश्र जाति के हों, बेसनदी नौकरियों से वंचित नहीं रक्खा जायगा और न वे सनदी नौकरियों से ही वंचित रक्खे जायंगे, यदि दूसरी बातों में वे उनके योग्य हों।"

उसी कानून के द्वारा कम्पनी का भारत में व्यापार करने का अधिकार उड़ा दिया गया और इसके बाद से वह एक पूरी शासक-सत्ता के रूप में सामने आ गई।

इसी समय भारत में अंग्रेजी शिक्षा का प्रवेश करने या न करने के विषय में एक चर्चा उठ खड़ी हुई। हिन्दुस्तानियों में राजा राममोहन राय और अंग्रेजों में मेकाले अंग्रेजी शिक्षा देने के जबर्दस्त समर्थक थे। अन्त में भारतीय भाषाओं और साहित्य के स्थान पर अंग्रेजी भाषा के पक्ष में निर्णय हुआ और उस शिक्षा पद्धति की नींव पड़ी जो कि भारत में आजतक प्रचलित है।

उन दिनों अंग्रेजों के द्वारा चलाये अखबारों के सिवा कोई देशी अखबार न थे। इनमें भी बाज-बाज अखबारवालों को देश-निकाला तक भुगतना पड़ा था। गवर्नर-जनरल लॉर्ड विलियम बेन्टिक का शासन-काल पूर्वोक्त सुधारों के कारण ही प्रसिद्ध हुआ था। उनकी नीति अखबारों के लिए भी नरम थी। उनके उत्तराधिकारी सर चार्ल्स मेटकॉफ ने अखबारों पर से पाबन्दियां उठा लीं। फिर, लॉर्ड लिटन के वाइसराय होने तक अखबार इसी आजादी में रहे—सिर्फ १८५७ के गदर के जमाने को छोड़ कर।

१८३३ और ५३ के दर्म्यान पंजाब और सिंध जीत लिये गये और लॉर्ड डलहौजी की नीति ने कम्पनी का इलाका बहुत बढ़ा दिया, जो कि ब्रिटिश सरकार के कब्जे में आजतक चला आ रहा है। लॉर्ड डलहौजी ने कई लावारिस राजाओं की रियासतें जब्त कर लीं तथा अवध की रियासत भी शासन ठीक न होने का सबब बताकर ब्रिटिश-भारत में मिला ली। इसके सिवा आर्थिक शोषण भी

जारी था, जिससे लोग दिन-दिन कङ्गाल होते गये। इधर रियासतें छिन गईं और उनकी जगह विदेशी हुकूमत कायम हो गई। यह बात लोगों को चुभ रही थी और वे मन-ही-मन कुढ़ रहे थे। नतीजा यह हुआ कि १८५७ में उन्होंने विदेशी हुकूमत के जुए को फेंक देने का आखिरी सशस्त्र प्रयत्न किया। हां, इस बगावत में कुछ धार्मिक भाव भी जरूर था। परन्तु चूंकि एक ओर दिल्ली के नामधारी सम्राट्, जो कि अकबर और औरङ्गजेब के वंशज थे, और दूसरी ओर पूना के पेशवाओं के वंशज, इन दोनों के झण्डे के नीचे जमा होकर लोग भारतीय राज्य स्थापित करना चाहते थे, इससे यह प्रतीत होता है कि यह गदर १७५७ के पलासी-युद्ध के बाद सौ वर्षों तक भारत में जो-कुछ घटनायें घटती रहीं, उनके परिणाम का द्योतक था। यही नहीं, बल्कि वह प्रत्येक देश और जाति के मानव-हृदय की इस प्राकृतिक अभिलाषा को भी सूचित करता था कि हम अपने ही लोगों के द्वारा शासित हों, दूसरों के द्वारा हरगिज नहीं। हालांकि गदर बेकार गया, परन्तु उसके साथ ही ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी तिरोहित होगई और भारत सरकार का शासन-सूत्र सीधा ब्रिटिश-ताज अर्थात् ब्रिटिश-पार्लमेंट के हाथों में आया। इस अवसर पर महारानी विक्टोरिया ने एक घोषणा प्रकाशित की, जिससे शांति और विश्वास का वातावरण पैदा हुआ। जो-कुछ अशांति बच रही, अब उसका कोई सहारा बाकी नहीं रह गया था। राजा और खास करके नवाब बिलकुल तहस-नहस हो चुके थे। कोई नामधारी व्यक्ति भी ऐसा नहीं रह गया था कि जिसके आस-पास लोग जमा हो जाते और आगे १८५७ की तरह कोई उत्पात खड़ा कर देते। अब लोग यह समझने लग गये कि भारत में अंग्रेजी राज्य ईश्वर की एक देन है और लोग उसी उदासीन और अलिप्त-भाव से अपने काम-काज में लग गये, जो कि हमारे राष्ट्रीय जीवन की एक खासियत है।

ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के हाथ में शासन-सूत्र चले जाने के बाद भी भारत-सरकार की गति-विधि पहले की ही तरह जारी रही; हां, एक बात जरूर हुई कि उसका शासन २० साल तक बिला खरखशा जारी रहा। इस बीच कोई युद्ध वगैरा नहीं हुआ।

परन्तु इसके यह मानी नहीं कि कोई रगड़ा-झगड़ा और कोई अशान्ति थी ही नहीं। ब्रिटिश शासन में बड़ी-बड़ी खराबियां थीं, जिन्हें मि० ह्यूम जैसे हमदर्द अंग्रेज अफसर दिखाया भी करते थे और कोशिश भी किया करते थे कि वे दूर हों।

जैसा कि ऊपर कहा गया है, १८३३ के कानून के अनुसार, भारतवासी उन तमाम जगहों पर लेने के काबिल करार दिये गये जिनके लिए वे मुस्तहक समझे जाते थे। १८५३ में, जब कि चार्टर विचाराधीन था, पार्लमेण्ट में यह बात खुले आम कही जाती थी कि १८३३ के कानून ने हालांकि भारतवासियों को नौकरियां देने का रास्ता खुला कर दिया है फिर भी उनको अभी तक वे कोई जगहें नहीं दी गई हैं जो कि इस कानून के पहले उन्हें नहीं दी जा सकती थीं। जबकि १८५३ में सिविल सर्विस के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें जारी की गईं तब इस बात की ओर ध्यान दिलाया गया था कि इससे हिन्दुस्तानियों के रास्ते में बड़ी रुकावट पेश आयेगी; क्योंकि उनके लिए इंग्लैंड में आकर अंग्रेज लड़कों के साथ अंग्रेजी भाषा और साहित्य की परीक्षाओं में बाजी मार ले जाना असम्भव होगा। और यह भी उन नौकरियों के लिए जो आमतौर पर बहुत दुर्लभ थीं। परन्तु इस बाधा के रहते हुए भी आखिर कुछ हिन्दुस्तानी समुद्र-पार गये ही और उन्होंने सफलता भी प्राप्त की। इतने में ही तकदीर से लॉर्ड सेल्सबरी ने परीक्षा में बैठने की उम्र कम कर दी। इससे हिन्दुस्तानियों को लेने-के-देने पड़ गये। क्योंकि उधर वे अंग्रेजों की सहायता से हिन्दुस्तान

और इंग्लैण्ड में साथ-साथ परीक्षा ली जाने की पुकार मचा रहे थे, इधर लॉर्ड लिटन ने देशी-भाषा के अखबारों का मुंह बन्द कर दिया, जो कि मेटकॉफ के समय से लेकर अबतक अंग्रेजी अखबारों के साथ-साथ आजादी का सुख अनुभव कर रहे थे। उन्होंने एक शस्त्र-कानून भी पास किया, जिसके अनुसार न केवल भारतवासियों के हथियार रखने के अधिकार को छीन लिया बल्कि हिन्दुस्तानियों और अंग्रेजों के बीच एक और जहरीला भेद-भाव पैदा कर दिया।

फिर अकालों का भी दौर-दौरा होता रहा। अनाज की कमी उतनी नहीं थी जितने कि उसे खरीदने के साधन कम थे। इन अकालों से देश में हजारों-लाखों आदमी काल के गाल हो गये। इसके अलावा अफगान-युद्ध हुआ, जिसमें बड़ा खर्च उठाना पड़ा। इधर तो एक ओर अकाल और मौत का दौरदौरा हो रहा था, उधर दिल्ली में एक दरबार करने की तजवीज मुनासिब समझी गई, जिसमें महारानी विक्टोरिया ने 'भारत-सम्राज्ञी' की उपाधि धारण की। "राजनैतिक के अलावा आर्थिक कठिनाइयां जोर के साथ सारे देश में बढ़ रही थीं। थोड़े लोगों के आलस्य और स्वार्थ साधुता के कारण बहुतों की शारीरिक यातनायें बढ़ रही थीं और इससे लोगों की बढ़ती हुई अशान्ति खतरे की सीमा तक बड़ी तेजी से जा रही थी।"

किसान भी पीड़ित थे। उनके कुछ कष्टों का वर्णन मि० ह्यूम ने सर ऑकलैण्ड कोलविन को लिखे अपने प्रसिद्ध पत्र में किया है। उनकी गहरी शिकायतें ये थीं--(अ) दीवानी अदालतें असुविधाजनक और खर्चीली हैं। (आ) पुलिस घूसखोर है और बड़ी ज्यादतियां करती है। (इ) तरीका लगान सख्त है। (ई) शस्त्र और जंगल कानून का अमल चुभने वाला है। इसलिए लोगों ने प्रार्थनायें कीं कि (क) न्याय सस्ता, निश्चित और जल्दी मिला करे, (ख) पुलिस ऐसी हो कि जिसे वे अपना दोस्त और रक्षक समझ सकें, (ग) तरीका लगान ज्यादा लचीला हो और किसानों के साथ सहानुभूति रखकर बनाया गया हो, (घ) शस्त्र और जंगल के कानूनों का अमल कम सख्ती से किया जाय। परन्तु ये मंजूर नहीं हुईं। सन् १८८० की शुरुआत के लगभग दर-असल ऐसी हालत थी। यहांतक कि सर विलियम वेडरबर्न कहते हैं कि नौकरशाही ने न केवल नई सुविधाओं के रोकने में ही अपनी तरफ से कोर-कसर नहीं रक्खी, बल्कि जब-जब मौका मिला पिछले विशेषाधिकार भी छीन लिये गये; जैसे कि प्रेस की स्वाधीनता, सभायें करने का अधिकार, म्युनिसिपल-स्वराज्य और विश्वविद्यालयों की स्वतन्त्रता। सर विलियम लिखते हैं--"एक तो ये अशुभ और प्रतिगामी कानून, दूसरे रूस के जैसा पुलिस का दमन। इससे लॉर्ड लिटन के समय में भारत में कोई क्रान्तिकारी विस्फोट होने ही वाला था कि मि० ह्यूम को ठीक मौके पर सूझी और उन्होंने इस काम में हाथ डाला।" इतना ही नहीं, बल्कि राजनैतिक अशान्ति अन्दर-ही-अन्दर बढ़ रही है, इसका अकाट्य प्रमाण मि० ह्यूम के पास था। उनके हाथ ऐसी रिपोर्टों की ७ जिल्दें लगीं, जिनमें भिन्न-भिन्न जिलों के अन्दर बगावत के भाव फैलने का वर्णन था। भिन्न-भिन्न गुरुओं के कुछ शिष्यों का धर्माचार्यों और महन्तों से जो पत्र-व्यवहार हुआ उसके आधार पर वे तैयार की गई थीं। यह हाल है लॉर्ड लिटन के शासन के अन्त समय का, अर्थात् पिछली सदी के ७० से लेकर ८० साल के बीच का। ये रिपोर्टें जिला, तहसील, सब-डिवीजन के अनुसार तैयार की गई थीं और शहर, कस्बे और गांव भी उसमें शामिल थे। इसका यह अर्थ नहीं कि कोई सुसंगठित विद्रोह जल्दी होनेवाला था, बल्कि यह कि लोगों में निराशा छाई हुई थी, वे कुछ-न-कुछ कर गुजरना चाहते थे, जिससे सिर्फ इतना ही अभिप्राय है कि संभव है "लोग जगह-जगह हथियार लेकर टूट पड़ें और जिनसे वे नफरत करते थे, उनकी खून-खराबी करने लगें, सेठ-साहूकारों के यहां चोरी

और डाके डालने लगें और बाजारों में लूटमार करने लगें।" यों तो ये कार्य सिर्फ कानून की खिलाफवर्जी करनेवाले हैं, परन्तु यदि आवश्यक बल और संगठन का सहारा मिल जाय तो ऐसे होते हैं जो किसी भी दिन एक राष्ट्रीय बगावत के रूप में परिणत हो जायं। बम्बई इलाके के दक्षिण प्रान्त में ऐसे किसानों के दंगे हो भी चुके थे। यह देखकर ह्यूम साहब ने इस अशान्ति को प्रकट करने का एक सरल उपाय ढूंढ़ निकाला, जो कि हमारी यह वर्तमान कांग्रेस है। इसी समय उनके दिमाग में यह खयाल आया कि हिन्दुस्तानियों की एक राष्ट्रीय सभा कायम की जाय और उन्होंने १ मार्च १८८३ ईस्वी को कलकत्ता-विश्वविद्यालय के ग्रेजुएटों के नाम एक पत्र लिखा, जो कि दिल को हिला देनेवाला था। उसमें उन्होंने ५० ऐसे आदमियों की मांग की थी जो भले, सच्चे, निःस्वार्थ, आत्म-संयमी, व नैतिक साहस रखनेवाले और दूसरों का हित करने की तीव्र भावना रखनेवाले हों। "यदि सिर्फ ५० भले और सच्चे आदमी संस्थापक के रूप में मिल जायं तो सभा स्थापित हो सकती है और आगे का काम आसान हो सकता है।" और इन लोगों के सामने आदर्श क्या पेश किया गया? यह कि—"सभा का विधान प्रजासत्तात्मक हो, सभा के लोग व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा से परे हों, और उनका यह सिद्धान्त-वचन हो, कि जो तुममें सबसे बड़ा है उसीको तुम्हारा सेवक होने दो।" पत्र में उन्होंने गोल-मोल बातें नहीं कीं; बल्कि साफ शब्दों में कह दिया, कि "यदि आप अपना सुख चैन नहीं छोड़ सकते तो कम-से-कम फिलहाल हमारी प्रगति की सारी आशा व्यर्थ है, और यह कहना होगा कि हिन्दुस्तान सचमुच मौजूदा सरकार से बेहतर शासन न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है।"

इस स्मरणीय पत्र का अन्तिम भाग इस प्रकार है—

"और यदि देश के विचारशील नेता भी या तो सब-के-सब ऐसे निर्बल जीव हैं, या अपनी स्वार्थ-साधना में ही इतने निमग्न हैं कि अपने देश के लिए कोई साहसपूर्ण कार्य नहीं कर सकते, तब कहना होगा कि वे सही और वाजिब तौर पर ही दबाकर रक्खे और पदद‌लित किये गये हैं; क्योंकि वे इससे ज्यादा अच्छे व्यवहार के योग्य ही नहीं थे। प्रत्येक राष्ट्र ठीक-ठीक वैसी ही सरकार प्राप्त कर लेता है जिसके कि योग्य वह होता है। यदि आप, जो देश के चुनींदा लोग हैं, जो बहुत ही उच्च-शिक्षा प्राप्त हैं, अपने सुख-चैन और स्वार्थ-पूर्ण उद्देश्यों को नहीं छोड़ सकते और अधिकाधिक स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए लड़ने का निश्चय नहीं कर सकते, जिससे कि आपके देशवासियों को अधिक निष्पक्ष शासन का लाभ हो, वे अपने घर का प्रबन्ध करने में अधिकाधिक हिस्सा लें, तब मानना होगा कि हम जो कि आपके मित्र हैं, गलती पर हैं, और जो हमारे विरोधी हैं उनका कहना ही सही है; तब मानना होगा कि लॉर्ड रिपन की आपके हित के सम्बन्ध में जो उच्च आकांक्षायें हैं, वे निष्फल होंगी और वे हवाई ठहरेंगी; तब कहना होगा कि प्रगति की तमाम आशायें अब नष्ट समझना चाहिए और हिंदुस्तान सचमुच उसकी मौजूदा सरकार से बेहतर शासन प्राप्त करना न तो चाहता है और न उसके योग्य ही है। और यदि यही बात सच है तो फिर न तो आपको इस बात पर मुंह ही बनाना चाहिए, न शिकायत ही करनी चाहिए, कि हम जंजीरों में जकड़ दिए गये हैं और हमारे साथ बच्चे-कासा व्यवहार किया जाता है; और न आपको इसके विरोध में कोई दल ही खड़ा करना चाहिए; क्योंकि आप अपने को इसी लायक साबित करेंगे। जो मनुष्य होते हैं वे जानते हैं कि काम कैसे करना चाहिए, इसलिए अबसे आप इस बात की शिकायत न कीजिएगा कि बड़े-बड़े ओहदों पर आपकी बनिस्बत अंग्रेजों को क्यों तरजीह दी जाती है; क्योंकि आपमें वह सार्वजनिक सेवा का भाव नहीं है, वह उच्च प्रकार की परोपकार-

भावना नहीं है, जो सार्वजनिक हित के सामने व्यक्तिगत ऐशोआराम को छोटा बना देती है; वह देशभक्ति का भाव नहीं है जिसने कि अंग्रेजों को वैसा बना दिया है जैसे कि वे आज हैं। और मैं कहूंगा कि वे ठीक ही आपकी जगह तरजीह पाते हैं और उनका लाजिमी तौर पर आपका शासक बन जाना भी ठीक है; बल्कि वे आगे भी आपके अफसर बने रहेंगे, और आपके कन्धों पर रक्खा यह जुआ तबतक दुखदायी होगा जब-तक कि आप इस चिर-सत्य को अनुभव नहीं कर लेते और इसके अनुसार चलने की तैयारी नहीं कर लेते कि **"आत्म-बलिदान और निःस्वार्थता ही सुख और स्वातन्त्र्य के अचूक पथ-प्रदर्शक हैं।"**

कांग्रेस के जन्म से सम्बन्ध रखने वाली तफसीली बातों का बयान करने के पहिले, यदि हम कांग्रेस-काल के पहले के उन बड़े बूढ़े लोगों का नाम-स्मरण कर लें तो अनुचित नहीं होगा, जिनके क्रिया-कलाप ने एक तरह से देश में सार्वजनिक जीवन की बुनियाद डाली है।

सबसे पहले बंगाल के ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन का नाम आता है। १८५१ में उसकी स्थापना की गई थी और यह वह संस्था है जिसके नाम की छाया में डा० राजेन्द्रलाल मित्र और रामगोपाल घोष जैसे व्यक्ति बीसों साल तक काम करते रहे। यह एसोसियेशन खुद भी कोई पचास साल तक देश में एक सजीव शक्ति बना रहा। बम्बई में सार्वजनिक कार्य की संस्था थी बाम्बे एसोसियेशन। बंगाल के एसोसियेशन के मुकाबले में वह थोड़े समय रहा, परन्तु कार्य उसने भी उसी तरह जोर-शोर से किया। उसके नेता थे—सर मंगलदास नाथूभाई और श्री नौरोजी फरदूंजी। स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी और जगन्नाथ शंकर शेठ ने उसकी स्थापना की थी; परन्तु बाद में पिछली शताब्दी के अन्तिम चरण में ईस्ट इण्डिया एसोसियेशन ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया था। मदरास में सार्वजनिक सेवा की वास्तविक शुरुआत 'हिन्दू' के द्वारा हुई, जिसके कि संस्थापकों में एम० वीर राघवाचार्य, माननीय रंगैया नायडू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और एन० सुब्बाराव पन्तुलु जैसे गण्य-मान्य पुरुष थे। महाराष्ट्र में पूना की सार्वजनिक सभा का जन्म प्रायः उसी समय हुआ जब कि 'हिन्दू' का हुआ था और उसके द्वारा रावबहादुर तुलकर और श्री चिपलूणकर जैसे प्रसिद्ध पुरुष सार्वजनिक कार्य करते रहे।

बंगाल में, १८७६ में इण्डियन एसोसियेशन की स्थापना हुई, जिसके जीवन-प्राण सुरेन्द्र-नाथ बनर्जी थे और जिसके पहले मंत्री थे आनन्दमोहन बसु। यह ध्यान में रखना होगा कि इस कांग्रेस पूर्व-काल में भी यद्यपि सार्वजनिक जीवन सुसंगठित नहीं हो पाया था, तथापि उसका असर अधिकारियों पर होने लगा था। हां, अखबार उस जीवन का एक जोरदार हिस्सा था। १८५७ में कोई ४७५ अखबार थे, जिनमें से अधिकांश प्रान्तीय भाषाओं में निकलते थे। इन्हीं दिनों देश के सुदैव से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी सिविल सर्विस से मुक्त हो चुके थे। उन्होंने उत्तरी भारत के पंजाब और युक्तप्रान्त में राजनैतिक यात्रा की। वे १८७७ के प्रसिद्ध दिल्ली-दरबार में भी सम्मिलित हुए थे और वहां देश के राजा-महाराजाओं और अग्रगण्य लोगों से मिले थे। यह माना जाता है कि उसी दरबार में देश के राजा-महाराजाओं और गण्य-मान्य लोगों को एक जगह एकत्र देखकर ही पहले-पहल सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के मन में यह प्रेरणा उठी कि एक देश-व्यापी राजनैतिक संगठन बनाया जाय। १८७८ में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बम्बई और मदरास प्रान्त की यात्रा की जिसका उद्देश्य यह था कि लॉर्ड सेलसबरी ने सिविल सर्विस की परीक्षा की उम्र घटाकर जो १९ साल की कर दी थी, उसके खिलाफ लोकमत जाग्रत किया जाय और इस विषय पर कामन-सभा में पेश करने के लिए सारे देश की तरफ से एक मेमोरियल तैयार किया जाय।

इसी समय लार्ड लिटन के प्रतिगामी शासन की शुरुआत होती है। उनके जमाने में (१८७८) वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट बना, अफगान-युद्ध हुआ; बड़ा खर्चीला दरबार किया गया और १८७७ में ही कपास-आयात-कर उठा दिया गया। लॉर्ड लिटन के बाद लार्ड रिपन का दौर हुआ, जिन्होंने अफगानिस्तान के अमीर के साथ सुलह करके, वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट को रद करके, स्थानिक स्वराज्य का आरम्भ करके और इलबर्ट बिल को उपस्थित करके एक नये युग का श्रीगणेश किया। यह आखरी बिल भारत सरकार के तत्कालीन लॉ मेम्बर मि० इलबर्ट ने १८८३ में उपस्थित किया था, जिसका उद्देश्य यह था कि हिन्दुस्तानी मजिस्ट्रेटों पर से यह रुकावट उठा ली जाय जिसके द्वारा वे यूरोपियन और अमेरिकन अपराधियों के मुकदमे फैसला नहीं कर सकते थे। इस पर गोरे लोग इतने बिगड़े कि कुछ लोगों ने तो गवर्नमेंट-हाउस के सन्त्रियों को मिलाकर वाइसराय को जहाज पर बिठाकर इंग्लैण्ड भेजने की एक साजिश ही कर डाली। इस साजिश में कलकत्ते के कई लोगों का हाथ था; जिन्होंने यह संकल्प कर लिया था कि यदि सरकार ने इस बिल को आगे बढ़ाया तो वे इस साजिश को कामयाब बना कर छोड़ेंगे। नतीजा यह हुआ कि असली बिल उसी साल करीब-करीब हटा लिया गया और उसकी जगह यह सिद्धान्त-भर मान लिया गया कि सिर्फ जिला-मजिस्ट्रेट और दौरा जज को ही ऐसा अधिकार रहेगा। जब लार्ड रिपन भारत से विदा हुए तो देश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक के लोगों ने उन्हें हार्दिक विदाई दी। अंग्रेजों के लिए वह एक ईर्ष्या का विषय हो गई थी। किन्तु उससे बहुतेरे लोगों की आंखें भी खुल गई थीं।

इस बिल के सम्बन्ध में गोरे लोगों को जो सफलता मिल गई उससे हिन्दुस्तानी जाग उठे और उन्होंने बहुत जल्दी इस बिल के विरोध का आन्तरिक हेतु पहचान लिया। गोरे यह मनवाना चाहते थे कि हिन्दुस्तान पर गोरी जातियों का प्रभुत्व है और वह सदा रहेगा। इसने भारत के तत्कालीन देश-सेवकों को संगठन के महत्व का पाठ पढ़ाया और उन्होंने तुरन्त ही १८८३ में कलकत्ता के अलबर्ट-हाल में एक राजनैतिक परिषद् की आयोजना की, जिसमें सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और आनन्दमोहन बसु दोनों उपस्थित थे। इस सभा में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपने आरम्भिक भाषण में खास तौर पर इस बात का जिक्र किया कि किस तरह दिल्ली दरबार ने उनके सामने एक राजनैतिक संस्था, जो कि भारत के हित-साधन में तत्पर रहे, बनाने का नमूना पेश किया था। इस विषय में बाबू अम्बिकाचरण मजुमदार ने अपनी 'दी इण्डियन नेशनल इवॉल्युशन' नामक पुस्तक में इस तरह लिखा है—"परिषद् का दृश्य अद्वितीय था। मेरी आंखों के सामने उस समय के तीनों दिन के उत्साह और लगन का हूबहू चित्र आज भी खड़ा है। जब परिषद् खतम होने लगी तो मानों हरेक आदमी को, जो उसमें मौजूद था, एक नई रोशनी और एक अद्भुत स्फूर्ति प्राप्त हो रही थी।" इसके दूसरे ही वर्ष कलकत्ते में अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् हुई जिससे कि, पादरी जान मुर्डॉक साहब का मत है, अखिल-भारतीय कांग्रेस स्थापित करने की प्रेरणा मिली। १८८१ में मदरास-महाजन-सभा की स्थापना हुई और मदरास में प्रान्तीय परिषद् का अधिवेशन हुआ। पश्चिमी भारत में ३१ जनवरी १८८५ को महता, तैलंग और तैयबजी की मशहूर मण्डली ने मिलकर बाम्बे प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन कायम किया।

पूर्वोक्त वर्णन से यह स्पष्ट मालूम होता है कि भारतवर्ष मन-ही-मन किसी अखिल-भारतीय संगठन की आवश्यकता का अनुभव करता था। यह तो अभीतक एक रहस्य ही है कि अखिल भारतीय कांग्रेस की कल्पना वास्तव में किसके मस्तिष्क से निकली। १८७७ के दरबार या

कलकत्ते की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी के अलावा थियोसोफिकल कनवेन्शन का भी नाम इस विषय में लिया जाता है, जो कि दिसम्बर १८८४ में मंदरास में हुआ था। वहां १७ आदमियों की एक खानगी सभा हुई, जिसमें यह कल्पना सोची गई। मि० एलेन ऑक्टेवियन ह्यूम ने सिविल सर्विस से अवसर प्राप्त करने के बाद जो इण्डियन यूनियन कायम की थी, वह भी कांग्रेस के जन्म का एक निमित्त बतलाई जाती है। खैर, कोई भी इस कल्पना का मूल-उत्पादक हो और कहीं से यह पैदा हुई हो, हम इन नतीजों पर जरूर पहुँचते हैं कि यह कल्पना वातावरण में घूम अवश्य रही थी और ऐसे संगठन की आवश्यकता महसूस की जा रही थी। मि० ए० ओ० ह्यूम ने इसमें सबसे पहले कदम बढ़ाया और २३ मार्च १८८५ में इसके सम्बन्ध में पहला नोटिस जारी किया गया, जिसमें बताया गया था कि अगले दिसम्बर में, पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन का पहला अधिवेशन किया जायगा। इस तरह अबतक जो एक अस्पष्ट कल्पना वातावरण में पंख फटफटा रही थी और जो उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम, सभी जगह के विचारशील भारतवासियों के विचारों को गति दे रही थी उसने अब एक निश्चित स्वरूप ग्रहण कर लिया और एक व्यावहारिक कार्यक्रम के रूप में देश के सामने आ गई।

२. राष्ट्रीय स्वरूप

कांग्रेस के जन्म का कारण केवल ये राजनैतिक शक्तियाँ और राजनैतिक गुलामी का भाव ही नहीं है। इसमें कोई शक नहीं कि कांग्रेस का एक राजनैतिक उद्देश्य था, परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरुत्थान के आन्दोलन का प्रतिपादन करनेवाली संस्था भी थी।

कांग्रेस के जन्म से पहले, ५० या इससे भी ज़्यादा वर्ष से, भारत में राष्ट्रीय नवयौवन का खमीर उठ रहा था। सच पूछिये तो राष्ट्रीय जीवन यों ठेठ राजा राममोहन राय के काल से लेकर विविध रूपों में परिपक्व हो रहा था। राजा राममोहन राय को हम एक तरह से भारत की राष्ट्रीयता के पैगम्बर और आधुनिक भारत के पिता कह सकते हैं। उनका दर्शन बड़ा विस्तृत और दृष्टि-विन्दु व्यापक था। यह सच है कि उनके समय में भारत की जो सामाजिक और धार्मिक अवस्था थी, वही उनके सुधार कार्यों का मुख्य विषय बनी हुई थी, परन्तु उनके देश-वासियों पर जो भारी राजनैतिक अन्याय हो रहे थे और जिनसे देश दुःखी हो रहा था उनका भी उन्हें पूरा भान था और उन्होंने उनको शीघ्र मिटाने के लिए भगीरथ प्रयत्न भी किया था। राममोहन राय का जन्म १७७६ में हुआ और मृत्यु ब्रिस्टल में १८३३ में। भारत के दो बड़े सुधारों के साथ उनका नाम जुड़ा हुआ है—एक तो सती या सहगमन-प्रथा का मिटाया जाना और दूसरा भारत में पश्चिमी-शिक्षा का प्रचार। लार्ड विलियम बेन्टिक ने, १८३५ में, पश्चिमी शिक्षा-प्रचार के पक्ष में जो निर्णय कोर्ट ऑफ डाइरेक्टर्स की सिफारिश के खिलाफ दिया उसका बहुत बड़ा कारण यह था कि राजा राममोहनराय खुद पश्चिमी शिक्षा-दीक्षा के अनुरागी और पक्षपाती थे एवं तत्कालीन लोकमत पर उनका बड़ा प्रभाव था। अपने जीवन के अन्तिम समय में वह इंग्लैंड गये थे। उनमें स्वाधीनता-प्रेम इतना प्रबल था कि जब वह 'केप ऑफ गुडहोप' पहुँचे तो उन्होंने फ्रांसीसी जहाज पर जाने का आग्रह किया जिस पर कि स्वाधीनता का झण्डा फहरा रहा था। वह चाहते थे कि उस झन्डे का अभिवादन करें और ज्यों ही उन्हें उस झंडे के दर्शन हुए उनके मुँह से झंडे की जय-ध्वनि निकल पड़ी। हालांकि वह इंग्लैंड में मुख्यतः मुग़ल-सम्राट् के राज-दूत बनकर लन्दन में उनका काम करने गये थे, तो भी उन्होंने कामन-सभा की कमिटी के सामने भारतवासियों के कुछ जरूरी कष्ट भी पेश किये। उन्होंने वहाँ तीन निबन्ध उपस्थित

किये थे—पहला भारत की राजस्व-पद्धति पर, दूसरा न्याय-शासन पर, और तीसरा भारत की भौतिक अवस्था के सम्बन्ध में। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी उनको एक सार्वजनिक भोज देकर सम्मानित किया था। १८३२ में जब कि चार्टर एक्ट पार्लमेंट में पेश था, उन्होंने यह प्रण किया था कि यदि यह बिल पास न हुआ तो मैं ब्रिटिश प्रदेश में रहना छोड़ दूंगा और अमरीका जाकर बस जाऊंगा। अपने समय में ही उन्होंने अखबारों पर और छापेखानों पर हुआ बहुत बुरा दमन देख लिया था। "लॉर्ड हेस्टिंग्स ने भारतीय पत्र-व्यवसाय के लिए पिछले समय की कड़ी रुकावटों को कम करके जिन शुभ दिनों की शुरुआत की थी वे १८२२ में सिविल सर्विस के एक सदस्य के थोड़े समय के लिए गवर्नर-जनरल हो जाने से, कुहिरे और बादलों से ढकने लगे थे।" फल यह हुआ कि मि० बकिंघम नामक कलकत्ते के एक अखबार के सम्पादक दो महीने की नोटिस देकर हिन्दुस्तान से निकाल दिये गये और उनका सहायक भी गिरफ्तार करके इंगलैण्ड जाने वाले जहाज पर बिठा दिया गया। यह सब सिर्फ इसलिए कि उन्होंने प्रचलित शासन की कुछ आलोचना कर दी थी। १४ मार्च १८२३ को एक प्रेस आर्डिनेन्स पास किया गया, जिसके अनुसार हिन्दुस्तानी और गोरे दोनों अखबारों पर जबरदस्त सेंसर बिठा दिया गया और पत्र के प्रकाशकों और मालिकों के लिए गवर्नर-जनरल से लाइसेन्स लेना लाज़िमी कर दिया गया। आर्डिनेन्स तत्कालीन कानून के अनुसार, बिल के प्रकाशित होने के २० दिन बाद सुप्रीम कोर्ट में पास करा लिया गया था।

राजा राममोहन राय ने सुप्रीम कोर्ट में इसका घोर विरोध किया। उन्होंने दो वकील अपनी तरफ से उसमें खड़े किये थे और जब वहां कामयाबी न हुई तो इंग्लैण्ड के बादशाह के नाम एक सार्वजनिक दरख्वास्त भेजी। परन्तु उससे भी कुछ मतलब न निकला। लेकिन इस समय जो बीज वह बो चुके थे उसका फल १८३५ में निकला, जब कि सर चार्ल्स मेट्कॉफ ने फिर से हिन्दुस्तानी पत्रों को आजाद करा दिया। जिन दिनों वह इंग्लैण्ड में थे उन्हीं दिनों सती-प्रथा के उठाये जाने के खिलाफ की गई अपील को और चार्टर एक्ट को पास होते हुए देखने का अवसर उन्हें मिल गया था।

अब गदर को लीजिए। यह लॉर्ड डलहौजी की नीति का परिणाम था। उन्होंने किसी राजा की विधवाओं को गोद लेने से मना कर दिया था और उनकी रियासत जब्त कर ली गई थी। यह तो सबको पता ही है कि गदर दबा दिया गया। उसके बाद १८५८ में, विश्व-विद्यालय कायम हुए और १८६१ से १८६२ तक हाईकोर्ट और कौंसिलें भारत में बनाई गईं। गदर के कुछ पहले ही विधवा-विवाह कानून बना था, जोकि समाज-सुधार की दिशा में एक कदम था। उसके बाद १८६० से १८७० तक पश्चिमी शिक्षा और साहित्य का सम्पर्क बढ़ता गया। पश्चिमी कानून-संस्थायें और पार्लमेंटरी तरीके दाखिल हुए जिससे कानून और कौंसिलों के क्षेत्र में एक नये युग का जन्म हुआ। इधर पश्चिमी सभ्यता का संसर्ग भारत के लोगों के विश्वासों और भावनाओं पर गहरा असर डाले बिना नहीं रह सकता था। राममोहन राय के जमाने में धार्मिक सुधार के जो बीज बोये गये थे वे थोड़े ही समय में अपनी शाखा प्रशाखायें फैलाने लगे। राममोहन राय के बाद केशवचन्द्र सेन पर उनके काम की जिम्मेदारी आ पड़ी। उन्होंने दूर दूर तक ब्रह्म-समाज के सिद्धान्तों का प्रचार किया और उसके मतों पर नवीन प्रकाश डाला। उन्होंने मद्यपान-निषेध के आन्दोलन को हाथ में लिया और इंग्लैण्ड के मद्यपान-निषेधकों के साथ मिलकर काम करने लगे। १८७२ के 'ब्रह्म मैरेज एक्ट—३' को पास कराने में उनका बहुत हाथ था, जिसके अनुसार उन लोगों को, जो ईसाई नहीं थे, अन्तर्जातीय विवाह करने की सुविधा हो जाती थी। परन्तु उन्हें यह

घोषणा कर देनी पड़ती थी कि हम हिन्दू, ईसाई, मुसलमान, पारसी, यहूदी इनमें से किसी भी धर्म के अनुयायी नहीं हैं। इस कानून के द्वारा बाल-विवाह मिट गया, बहु-विवाह को अपराध करार दिया गया और विधवा-विवाह तथा अन्तर्जातीय विवाह की छूट मिल गई। उन्होंने कन्याओं के विवाह की उम्र बढ़ाने में भी दिलचस्पी ली और १८७२ में एक बिल तैयार किया जिसमें १४ वर्ष कम-से-कम उम्र रक्खी गई थी।

कुछ ही समय में ब्रह्म-समाज में मत-भेद फैले, जिसका मुख्य कारण था केशवचन्द्र सेन की कन्या का बाल्यावस्था में कूचविहार के महाराज के साथ विवाह हो जाना। इसपर उनके साथियों ने बहुत विरोध किया, जिसका फल यह हुआ कि आनन्दमोहन वसु के नेतृत्व में 'साधारण ब्रह्म समाज' के नाम से ब्रह्म-समाज की एक नई शाखा बन गई। यहां यह याद रखना चाहिए कि यही आनन्द-मोहन वसु आगे चलकर १८९८ में कांग्रेस के सभापति हुए थे। बंगाल के ब्रह्म-समाज का प्रतिघात सारे भारत में हुआ। पूना में प्रार्थना-समाज के नाम से महादेव गोविन्द रानडे के नेतृत्व में यह आन्दोलन शुरू हुआ। यही रानडे समाज-सुधार-आन्दोलन के जनक थे, जो वर्षोंतक कांग्रेस का एक अनुशंगिक अंग बनकर चलता रहा। इस सुधार-आन्दोलन में भूतकाल के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा और प्राचीन परम्पराओं और विषयों के प्रति बगावत के भाव भरे हुए थे और इसका कारण था पश्चिमी संस्थाओं का जादू एवं उनके साथ चिपकी हुई राजनैतिक प्रतिष्ठा। अब इसकी यह स्वाभाविक प्रतिक्रिया होनी थी—सुधार कार्य होना था, क्योंकि इन सुधार-आन्दोलनों के कारण देश में राष्ट्रीयता विघातक भावनायें फैलने लगीं थीं। उत्तर-पश्चिम में आर्यसमाज और मदरास में थियोसोफिकल आन्दोलनों ने इस आवश्यक सुधार का कार्य किया तथा अपने धर्म, आदर्श और संस्कृति से दूर ले जाने वाली स्पिरिट को, जो कि पश्चिमी शिक्षा के कारण पैदा हुई थी, दबा दिया। यों तो ये दोनों आन्दोलन उत्कट रूप में राष्ट्रीय थे, फिर भी आर्य-समाज में देशभक्ति के भाव बहुत प्रबल थे। आर्यसमाज वेदों की अपौरुषेयता और वैदिक-संस्कृति की श्रेष्ठता का जबरदस्त हामी होते हुए भी उदार सामाजिक सुधार का विरोधी न था। इस प्रकार राष्ट्र में एक तेजस्वी मनुष्यत्व का विकास हुआ, जो कि हमारी पूर्व परम्परा और आधुनिक वातावरण दोनों के श्रेष्ठत्व का सामंजस्य था। जिस तरह कि ब्रह्मसमाज ने बहुदेव वाद, मूर्ति पूजा और बहु-विवाह के विरुद्ध लड़ाई लड़ी, उसी तरह आर्यसमाज ने भी हिन्दू-समाज की कुछ प्रचलित बुराइयों और हिन्दुओं के धार्मिक अन्ध विश्वासों से लड़ाई ठानी। यहां भी, जैसा कि भय था, आर्यसमाज में दो दल खड़े हुए—एक गुरुकुल-पन्थी और दूसरा कालेज-पन्थी। गुरुकुल-पन्थी ब्रह्मचर्य और धार्मिक सेवा के वैदिक आदर्शों को मानते थे; और वे जो आधुनिक ढंग की शिक्षा-संस्थाओं के द्वारा एक हद तक आधुनिक पश्चिमी सभ्यता का संचार करके समाज में नवजीवन डालना चाहते थे, कालेज पन्थी कहलाये। एक के प्रवर्त्तक थे अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी, और दूसरे के थे देश वीर लाला लाजपतराय। थियोसोफिकल आन्दोलन में यद्यपि विश्वव्यापी सहानुभूति और अध्ययन की विशेषता थी, तो भी पूर्वीय संस्कृति में जो कुछ महान् और गौरव-मय है उसके आविष्करण और पुनरुज्जीवन पर उसमें खास जोर दिया जाता था। इसी प्रबल भावना को लेकर श्रीमती बेसेण्ट ने भारत के पुण्यधाम काशी में एक कालेज शुरू किया था। इस तरह थियोसोफिकल प्रवृत्तियों के द्वारा एक ओर जहां विश्व-बन्धुत्व की भावना बढ़ने लगी वहां दूसरी ओर पश्चिम के बुद्धिवाद की श्रेष्ठता का दौर-दौरा कम हुआ और उसकी जगह संस्कृति का एक नया केंद्र स्थापित हुआ, जहां कि फिर से इस प्राचीन भूमि में पश्चिमी देशों के विद्वज्जन खिंच-खिंच कर आने लगे।

राष्ट्रीय पुनरुत्थान का अंतिम स्वरूप जो कि कांग्रेस की स्थापना के पहले भारतवर्ष में दिखाई दिया, वह है बंगाल के श्री रामकृष्ण परमहंस का युग। स्वामी विवेकानन्द इनके पट्ट-शिष्य थे, जिन्होंने इनके उपदेशों का प्रचार पूर्व और पश्चिम दोनों जगह किया। रामकृष्ण-मिशन न तो कोरे योग-साधकों की और न केवल भौतिक-वादियों की संस्था है, बल्कि एक ऐसा आध्यात्मिक आदर्श रखने वाली संस्था है जो कि लोक-संग्रह या समाज-सेवा के महान् कर्त्तव्य की उपेक्षा नहीं करती। उसने संसार के विभिन्न राष्ट्रों के सामने उपस्थित सामाजिक और राजनैतिक प्रश्नों को सुलझाने के लिए कुंजी का भी काम दिया है। ये तमाम हलचलें, सच पूछिये तो भारत की राष्ट्रीयता के इस धागे में लगे भिन्न-भिन्न सूतों के समान हैं, और भारत का यह कर्त्तव्य था कि इनमें से एकसा सामंजस्य पैदा करे जिससे कि पूर्व-दूषित विचार और अन्ध-विश्वास दूर होकर प्राचीन वेदान्त-मत की संशुद्धि हो, वह नवीन तेज से लहलहा उठे और नवीन युग के राष्ट्रधर्म से उसका मेल बैठ सके। कांग्रेस का जन्म इसी महान् कार्य की पूर्त्ति के लिए हुआ था। अपने ५० वर्ष के पिछले जीवन में वह इसमें कहां तक सफल हुई है, इसका विचार हम आगे करेंगे।

३. पहला अधिवेशन

जिन स्थितियों में कांग्रेस की स्थापना हुई उनका वर्णन ऊपर हो चुका है। मि० ह्यूम का खयाल शुरू-शुरू में यह था कि कलकत्ते के इण्डियन एसोसियेशन, बम्बई के प्रेसीडेन्सी एसोसियेशन और मद्रास की महाजन-सभा जैसी प्रान्तीय संस्थायें राजनैतिक प्रश्नों को हाथ में लें और आल इण्डिया नेशनल यूनियन बहुत-कुछ सामाजिक प्रश्नों में ही हाथ डाले। उन्होंने लार्ड डफरिन से इस विषय में सलाह ली, जो कि हाल ही में वाइसराय बन कर आये थे। उन्होंने जो सलाह दी, वह उमेशचन्द्र बनर्जी के शब्दों में इस प्रकार है :—

"बहुतों को यह एक नई बात मालूम होगी कि कांग्रेस का जन्म जिस तरह हुआ और जिस तरह वह तब से अब तक चलाई जा रही है, वह वास्तव में लार्ड डफरिन का काम था, जब कि वह भारतवर्ष के वाइसराय होकर यहां आये थे। १८८४ में मि० ह्यूम के दिमाग में यह खयाल आया कि यदि भारत के प्रधान-प्रधान राजनीतिज्ञ पुरुष साल में एक बार एकत्र होकर सामाजिक विषय पर चर्चा कर लिया करें और एक-दूसरे से मित्रता का सम्बन्ध स्थापित कर लें तो इससे बड़ा लाभ होगा। वह यह नहीं चाहते थे कि उनकी चर्चा का विषय राजनीति रहे, क्योंकि बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, और अन्य भागों में राजनैतिक मण्डल थे ही; और उन्होंने यह सोचा कि यदि देश के भिन्न-भिन्न भागों के राजनीतिज्ञ जमा होकर राजनैतिक विषयों पर चर्चा करने लगेंगे तो इससे उन प्रान्तीय संस्थाओं का महत्व कम हो जायगा। वह यह भी चाहते थे कि जिस प्रान्त में यह सभा हो वहां का गवर्नर उसका सभापति हो, जिससे कि सरकारी और गैर-सरकारी राजनीतिज्ञों में अच्छे सम्बन्ध स्थापित हों। इन खयालों को लेकर वह १८८५ में लार्ड डफरिन से शिमला में मिले। लार्ड डफरिन ने उनकी बातों को ध्यान से और दिलचस्पी से सुना और कुछ समय के बाद मि० ह्यूम से कहा कि मेरी समझ में यह तजवीज, कि गवर्नर सभापति बने, उपयोगी न होगी; क्योंकि इस देश में ऐसा कोई सार्वजनिक मण्डल नहीं है जो इङ्गलैण्ड की तरह यहां सरकार के विरोध का काम करे—हालांकि यहां अखबार हैं और वे लोकमत को प्रदर्शित भी करते हैं; फिर भी उन पर आधार नहीं रक्खा जा सकता; और अंग्रेज जो हैं, वे जानते ही नहीं कि लोग उनके और उनकी नीति के बारे में क्या खयाल करते हैं। इसलिए ऐसी दशा में यह अच्छा होगा और इसमें शासक और शासित दोनों का हित है, कि यहां के राजनीतिज्ञ प्रति

वर्ष अपना सम्मेलन किया करें और सरकार को बताया करें कि शासन में क्या-क्या त्रुटियां हैं और उसमें क्या-क्या सुधार किये जायं। उन्होंने यह भी कहा कि ऐसे सम्मेलन का सभापति स्थानीय गवर्नर न होना चाहिए, क्योंकि उसके सामने, सम्भव है, लोग अपने सही खयालात जाहिर न करें। मि० ह्यूम को लार्ड डफरिन की यह दलील जंची और जब उन्होंने कलकत्ता, बम्बई, मदरास और दूसरी जगहों के राजनीतिज्ञों के सामने उसे रक्खा तो उन्होंने भी लार्ड डफरिन की सलाह को एक स्वर से पसन्द कर लिया तथा उसके मुताबिक कार्रवाई भी शुरू कर दी। लार्ड डफरिन ने मि० ह्यूम से यह शर्त करा ली थी कि जबतक मैं इस देश में हूं तबतक इस सलाह के बारे में मेरा नाम कहीं न लिया जाय। मि० ह्यूम ने इसका पूरी तरह पालन भी किया।''

मार्च १८८५ में यह तय हुआ कि बड़े दिनों की छुट्टियों में देश के सब भागों के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाय। पूना इसके लिए सबसे उपयुक्त जगह समझी गई। इस बैठक के लिए एक गश्ती पत्र जारी किया गया, जिसका मुख्य अंश नीचे दिया जाता है :—

"२५ से ३१ दिसम्बर १८८५ तक पूना में इण्डियन नेशनल यूनियन की एक परिषद् की जायगी। इसमें बंगाल, बम्बई और मदरास प्रदेशों के अंगरेजीदां प्रतिनिधि, अर्थात् राजनीतिज्ञ, सम्मिलित होंगे।

"इस परिषद् के प्रत्यक्ष उद्देश्य ये होंगे—(१) राष्ट्र की प्रगति के कार्य में जी-जान से लगे हुए लोगों का एक-दूसरे से परिचय हो जाना और (२) इस वर्ष में कौन-कौन से राजनैतिक कार्य अङ्गीकार किये जायं इसकी चर्चा करके निर्णय करना।

"अप्रत्यक्ष-रूप से यह परिषद् एक देशी पार्लमेंट का बीज-रूप बनेगी और यदि इसका कार्य सुचारु-रूप से चलता रहा तो थोड़े ही दिनों में इस आक्षेप का मुंहतोड़ जवाब होगी कि हिन्दुस्तान प्रातिनिधिक शासन संस्थाओं के बिलकुल अयोग्य है। पहली परिषद् में यह तय होगा कि दूसरी परिषद् पूना में ही की जाय या ब्रिटिश-एसोसियेशन की तरह हर साल देश के प्रधान-प्रधान भागों में की जाय। यह अन्दाज है कि पूना के मित्रों के अलावा बम्बई, मदरास और बङ्गाल से कोई बीस-बीस प्रतिनिधि आयंगे और इनसे आधे युक्तप्रान्त और पंजाब से।"

इस तरह अपने को वाइसराय के आशीर्वाद से सुरक्षित करके ह्यूम साहब इङ्गलैण्ड पहुंचे और वहां लार्ड रिपन, लार्ड डलहौजी, सर जेम्स केअर्ड, जॉन ब्राइट, मि० रीड, मि० स्लेग और दूसरे प्रसिद्ध पुरुषों से मशविरा किया। उनकी सलाह से उन्होंने वहां एक सङ्गठन किया जो आगे चलकर इंग्लैण्ड में इण्डियन पार्लमेंटरी कमेटी के रूप में परिणत होगया और जिसका उद्देश्य था पार्लमेण्ट के उम्मीदवारों से यह प्रतिज्ञा करवाना कि वे हिन्दुस्तान के मामलों में दिलचस्पी लेंगे। उन्होंने वहां एक इण्डियन टेलीग्राफ यूनियन बनाई, जिसका उद्देश्य था इंग्लैण्ड के प्रधान-प्रधान प्रान्तीय पत्रों को महत्वपूर्ण विषयों पर तार भेजने के लिए धन संग्रह करना।

इस पहले अधिवेशन का बड़ा रोचक वर्णन अपनी 'हाऊ इण्डिया रॉट फॉर फ्रीडम' नामक पुस्तक में श्रीमती बेसेण्ट ने किया है, जिससे नीचे लिखा अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

"लेकिन पहला अधिवेशन पूना में नहीं हुआ; क्योंकि बड़े दिन के पहले ही वहां हैजा शुरू हो गया और यह ठीक समझा गया कि परिषद्, जिसे अब कांग्रेस कहते हैं, बम्बई में की जाय। गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज और छात्रालय के व्यवस्थापकों ने अपने विशाल भवन कांग्रेस के हवाले कर दिये और २७ दिसम्बर की सुबह तक भारतीय राष्ट्र के प्रतिनिधियों का स्वागत करने की पूरी तैयारी हो गई। जो व्यक्ति उस समय वहां उपस्थित थे उनकी नामावली पर एक

निगाह डालते हैं तो हम पाते हैं कि उनमें से कितने ही आगे चल कर भारत की स्वाधीनता का प्रयत्न करते हुए बहुत प्रसिद्ध हो गये थे। जो सज्जन प्रतिनिधि नहीं बन सकते थे उनमें थे सुधारक दीवानबहादुर आर० रघुनाथराव, डिप्टी कलेक्टर, मदरास; माननीय महादेव गोविन्द रानडे, कौंसिल के सदस्य और जज स्माल कॉज कोर्ट पूना, जो आगे चल कर बम्बई-हाईकोर्ट के जज हो गये और जो एक माननीय और विश्वसनीय नेता थे; लाला बैजनाथ, आगरा, जो बाद को एक प्रख्यात विद्वान और लेखक प्रसिद्ध हुए; और अध्यापक के० सुन्दर रमण और रामकृष्ण गोपाल भांडारकर। प्रतिनिधियों में नामी-नामी पत्रों के सम्पादक थे जैसे—'ज्ञान-प्रकाश' जो कि पूना-सार्वजनिक-सभा का त्रैमासिक पत्र था, 'मराठा केसरी', 'नव-विभाकर', 'इण्डियन-मिरर', 'नसीम', 'हिन्दुस्तानी', 'ट्रिब्यून', 'इण्डियन-यूनियन', 'स्पेक्टेटर,' 'इन्दु-प्रकाश,' 'हिन्दू,' 'क्रेसेंट'। इनके अलावा नीचे लिखे माननीय और परिचित सज्जनों के नाम भी चमक रहे थे—ह्यूम साहब, शिमला; उमेशचन्द्र बनर्जी और नरेन्द्रनाथ सेन, कलकत्ता; वामन सदाशिव आपटे और गोपाल गणेश आगरकर, पूना; गंगाप्रसाद वर्मा, लखनऊ; दादाभाई नौरोजी, काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग, फिरोजशाह मेहता, बम्बई कारपोरेशन के नेता, दीनशा एदलजी वाचा, बहराम जी मलाबारी, नारायण गणेश चन्दावरकर, बम्बई; पी० रंगैया नायडू, प्रेसिडेन्ट महाजन-सभा, एस० सुब्रह्मण्य ऐयर, पी० आनन्दा चार्लू, जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, एम० वीर राघवाचार्य, मदरास; पी० केशव पिल्ले, अनन्तपुर। इनमें वे लोग भी थे जो भारत की आजादी के लिए खप चुके, और वे भी थे जो अब भी कायम हैं और उसके लिए यत्नशील हैं।

"२८ दिसम्बर १८८५ को दिन के १२ बजे गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। पहली आवाज सुनाई पड़ी ह्यूम साहब की, माननीय एस० सुब्रह्मण्य ऐयर की और माननीय काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग की। ह्यूम साहब ने श्री उमेश बनर्जी के सभापतित्व का प्रस्ताव उपस्थित किया था और शेष दोनों सज्जनों ने उनका समर्थन और अनुमोदन। वह एक बड़ा गम्भीर और ऐतिहासिक क्षण था, जिसमें मातृभूमि के द्वारा सम्मानित अनेकों व्यक्तियों में प्रथम पुरुष ने प्रथम राष्ट्रीय महासभा के अध्यक्ष का स्थान ग्रहण किया।

"कांग्रेस की गुरुता की ओर प्रतिनिधियों का ध्यान दिलाते हुए अध्यक्ष महोदय ने कांग्रेस का उद्देश इस तरह बतलाया—

(क) साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में देश-हित के लिए लगन से काम करने वालों की आपस में घनिष्ठता और मित्रता बढ़ाना।

(ख) समस्त देश-प्रेमियों के अन्दर प्रत्यक्ष मैत्री-व्यवहार के द्वारा वंश, धर्म और प्रान्त सम्बन्धी तमाम पूर्व-दूषित संस्कारों को मिटाना और राष्ट्रीय ऐक्य की उन तमाम भावनाओं का, जो लार्ड रिपन के चिर-स्मरणीय शासन-काल में उद्भूत हुईं, पोषण और परिवर्धन करना।

(ग) महत्वपूर्ण और आवश्यक सामाजिक प्रश्नों पर भारत के शिक्षित लोगों में अच्छी तरह चर्चा होने के बाद परिपक्व सम्मतियां प्राप्त हों उनका प्रामाणिक संग्रह करना।

(घ) उन तरीकों और दिशाओं का निर्णय करना जिनके द्वारा भारत के राजनीतिज्ञ देशहित के कार्य करें।"

इस प्रथम अधिवेशन में नौ प्रस्ताव पास हुए, जिनके द्वारा भारत की मांगों के बनने की शुरूआत होती है। पहले प्रस्ताव के द्वारा भारत के शासन-कार्य की जांच के लिए एक रायल-कमीशन बैठाने की मांग की गई। दूसरे के द्वारा इण्डिया कौन्सिल को तोड़ देने की राय दी गई।

तीसरे प्रस्ताव के द्वारा धारा-सभा की त्रुटियां दिखाई गईं, जिनमें अबतक नामजद सदस्य थे और उनके बजाय चुने हुए रखने की, प्रश्न पूछने का अधिकार देने की, युक्तप्रांत और पंजाब में कौंसिल कायम की जाने की और कामन-सभा में स्थायी समिति कायम करने की मांग की गई--इस आशय से कि कौंसिलों में बहुमत से जो विरोध हों उनपर उसमें विचार किया जाय। चौथे के द्वारा यह प्रार्थना की गई कि आई० सी० एस० की परीक्षा इंग्लैण्ड और भारत में एक-साथ हो और परीक्षार्थियों की उम्र बढ़ा दी जाय। पांचवां और छठा फौजी खर्च से सम्बन्ध रखता था और सातवें में अपर बर्मा को मिला लेने तथा भारत में उसे सम्मिलित कर लेने की तजवीज का विरोध किया गया था। आठवें के द्वारा यह आदेश किया गया कि ये प्रस्ताव राजनैतिक सभाओं को भेज दिये जायं। तदनुसार सारे देश में तमाम राजनैतिक मण्डलों और सार्वजनिक सभाओं द्वारा उनपर चर्चा की गई और कुछ मामूली संशोधन के बाद वे बड़े उत्साह से पास किये गये। अंतिम प्रस्ताव में अगले अधिवेशन का स्थान कलकत्ता और ता० २८ दिसम्बर नियत हुई।

४. कांग्रेस का दावा

जिस प्रकार एक बड़ी नदी का मूल एक छोटे-से सोते में होता है उसी प्रकार महान् संस्थाओं का आरम्भ भी बहुत मामूली होता है। जीवन की शुरुआत में वे बड़ी तेजी के साथ दौड़ती हैं, परन्तु ज्यों-ज्यों वे व्यापक होती जाती हैं, त्यों त्यों उनकी गति मन्द किन्तु स्थिर होती जाती है। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ती हैं, त्यों-त्यों उनमें सहायक नदियां मिलती जाती हैं और वे उसको अधिकाधिक सम्पन्न बनाती जाती हैं। यही उदाहरण हमारी कांग्रेस के विकास पर भी लागू होता है। उसे अपना रास्ता बड़ी-बड़ी बाधाओं से तय करना था, इसलिए आरम्भ में उसने अपने सामने छोटे-छोटे आदर्श रक्खे; परन्तु ज्यों ही उसे समस्त भारतवासियों के हार्दिक प्रेम का सहारा मिला, उसने अपना मार्ग विस्तृत कर दिया और अपने उदर में देश की अनेक सामाजिक-नैतिक हलचलों का भी समावेश कर लिया। आरम्भिक अवस्थाओं में उसके कार्यों में एक किस्म की हिचकिचाहट और शंका-कुशंकायें दिखाई देती थीं, परन्तु जैसे-जैसे वह बालिग होती गई, वैसे-वैसे उसे अपने बल और क्षमता का ज्ञान होता गया और उसकी दृष्टि व्यापक बनती गई। अनुनय-विनय की नीति को छोड़कर उसने आत्मतेज और आत्मावलम्बन की नीति ग्रहण की। इधर लोक-मत को शिक्षित करने के लिए जोर-शोर से प्रचार-कार्य होने लगे, जिससे देशव्यापी संगठन बन गया--यहां तक कि सीधे हमले तक का कार्य-क्रम बनाना पड़ा। शिकायतों और अपने दुःखदर्दों को दूर कराने के उद्देश्य से शुरुआत करके कांग्रेस देश की एक ऐसी मान्य संस्था के रूप में परिणत हो गई जो बड़े स्वाभिमान के साथ अपनी मांग भी पेश करने लगी। हालांकि शुरुआत के दस-पांच वर्षों में शासन-सम्बन्धी मामलों में उसकी दृष्टि की एक सीमा बनी हुई थी, फिर भी शीघ्र ही वह भारतवासियों की तमाम राजनैतिक महत्वाकांक्षाओं की एक जबरदस्त और सत्तापूर्ण प्रतिपादक बन गई। उसका दरवाजा सब दर्जे और सब जातियों के लोगों के लिए खोल दिया गया। यद्यपि शुरुआत में वह उन प्रश्नों को हाथ में लेती हुई संकोच करती थी जो सामाजिक कहे जाते थे, परन्तु उचित समय आते ही उसने इस बात को मानने से इन्कार कर दिया कि जीवन अलग-अलग टुकड़ों में बंटा हुआ है और इस प्राचीन परम्परागत विचार के आगे जाकर, जो जीवन के प्रश्नों को सामाजिक और राजनैतिक सीमाओं में बांध देता है, उसने एक ऐसा सर्वव्यापी आदर्श अपने सामने प्रस्तुत किया, जिसमें कि सारा जीवन, यहां से

वहाँ तक, एक और अविभाज्य है। इस तरह कांग्रेस एक ऐसा राजनैतिक सङ्गठन है, जहां न ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्यों का भेद है, न एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त का। उसमें न उच्च-वर्ग या जनता का भेद है, न शहर और गांव का; और न गरीब-अमीर का भेद है, न किसान-मजदूर का; जात-पांत और मजहबों का भेद-भाव भी उसमें नहीं है। गांधीजी ने दूसरी गोल-मेज परिषद् के समय फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी के सामने जो जबर्दस्त वक्तृता दी थी और जिसमें उन्होंने कांग्रेस के बारे में ऐसा ही दावा किया था, उसके आवश्यक अंश नीचे दे देना उचित होगाः—

"मैं तो कांग्रेस (राष्ट्रीय महासभा) का एक गरीब और नम्र प्रतिनिधि-मात्र हूं और इस-लिए यह बता देना उचित है कि कांग्रेस वास्तव में क्या है और उसका उद्देश्य क्या है। तब आप मेरे साथ सहानुभूति करेंगे क्योंकि मैं जानता हूं कि मेरे कन्धों पर जिम्मेदारी का जो बोझ है, वह बहुत भारी है।

"यदि मैं गलती नहीं करता हूं, तो कांग्रेस भारतवर्ष की सबसे बड़ी संस्था है। इसकी अवस्था लगभग ५० वर्ष की है, और इस अर्से में वह बिना किसी रुकावट के बराबर अपने वार्षिक अधिवेशन करती रही है। सच्चे अर्थों में वह राष्ट्रीय है। वह किसी खास जाति, वर्ग या किसी विशेष हित्त की प्रतिनिधि नहीं है। वह सर्व-भारतीय हितों और सब वर्गों की प्रतिनिधि होने का दावा करती है। मेरे लिए यह बताना सबसे बड़ी खुशी की बात है कि उसकी उपज आरम्भ में एक अंग्रेज मस्तिष्क में हुई। एलेन ओक्टेवियन ह्यूम को कांग्रेस के पिता के रूप में हम जानते हैं। दो महान पारसियों ने—फिरोजशाह मेहता और दादा भाई नौरोजी ने—जिन्हें सारा भारत 'वृद्ध पितामह' कहने में प्रसन्नता अनुभव करता है, इसका पोषण किया। आरम्भ से ही कांग्रेस में मुसलमान, ईसाई, गोरे आदि शामिल थे; बल्कि मुझे यों कहना चाहिए कि इसमें सब धर्म, सम्प्रदाय और हितों का थोड़ी-बहुत पूर्णता के साथ प्रतिनिधित्व होता था। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी ने अपने-आपको कांग्रेस के साथ मिला दिया था। मुसलमान और पारसी भी कांग्रेस के सभापति रहे हैं। मैं इस समय कम-से-कम एक भारतीय ईसाई श्री उमेशचन्द्र बनर्जी का नाम भी ले सकता हूं। विशुद्ध भारतीय श्री कालीचरण बनर्जी ने, जिनके परिचय का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, अपने को कांग्रेस के साथ एक कर दिया था। मैं, और निस्सन्देह आप भी, अपने बीच श्री के० टी० पाल का अभाव अनुभव कर रहे होंगे। यद्यपि मैं ठीक नहीं जानता, लेकिन जहां तक मुझे मालूम है, वे अधिकारी-रूप से कभी कांग्रेस में शामिल नहीं हुए, फिर भी वे पूरे राष्ट्र-वादी थे।

"जैसा कि आप जानते हैं, स्व० मौलाना मुहम्मदअली, जिनकी उपस्थिति का भी आज यहां अभाव है, कांग्रेस के सभापति थे, और इस समय कांग्रेस की कार्य-समिति के १५ सदस्यों में ४ सदस्य मुसलमान हैं। स्त्रियां भी हमारी कांग्रेस की अध्यक्ष रह चुकी हैं—पहली श्रीमती एनी बेसेण्ट थीं और दूसरी श्रीमती सरोजिनी नायडू, जो कार्य-समिति की सदस्या भी हैं; और इस प्रकार जहां हमारे यहां जाति और मजहब का भेद-भाव नहीं है; वहां किसी प्रकार का लिंग-भेद भी नहीं है।

"कांग्रेस ने अपने आरम्भ से ही अछूत कहलानेवालों के काम को अपने हाथ में ले रक्खा है। एक समय था जब कि कांग्रेस अपने प्रत्येक वार्षिक अधिवेशन के समय अपनी सहयोगी संस्था की तरह सामाजिक परिषद् का भी अधिवेशन किया करती थी जिसे स्वर्गीय रानडे ने अपने अनेक कामों में एक काम बना लिया था और जिसे उन्होंने अपनी शक्तियां समर्पित की थीं। आप देखेंगे कि उनके नेतृत्व

में सामाजिक परिषद् के कार्य-क्रम में अछूतों के सुधार के कार्य को एक खास स्थान दिया गया था। किन्तु सन् १९२० में कांग्रेस ने एक बड़ा कदम आगे उठाया और अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न को राजनैतिक मंच का एक आधार-स्तम्भ बनाकर राजनैतिक कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण अंग बना दिया। जिस प्रकार कांग्रेस हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, और इस प्रकार सब जातियों से परस्पर ऐक्य, को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अनिवार्य समझती थी उसी तरह स्वराज-प्राप्ति के लिए छुआछूत के पाप को दूर करना भी अनिवार्य समझने लगी। सन् १९२० में कांग्रेस ने जो स्थिति ग्रहण की थी, वह आज भी बनी हुई है; और इस प्रकार कांग्रेस ने अपने आरम्भ से ही अपने को सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यदि महाराजागण मुझे आज्ञा देंगे तो मैं यह बतलाना चाहता हूं कि आरम्भ में ही कांग्रेस ने उनकी भी सेवा की है। मैं इस समिति को याद दिलाना चाहता हूं कि वह व्यक्ति 'भारत का वृद्ध पितामह' ही था, जिसने काश्मीर और मैसूर के प्रश्न को हाथ में लेकर सफलता को पहुंचाया था और मैं अत्यन्त नम्रता-पूर्वक कहना चाहता हूं कि ये दोनों बड़े घराने श्री दादाभाई नौरोजी के प्रयत्नों के लिए कम ऋणी नहीं हैं। अबतक भी उनके घरेलू और आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप न करके कांग्रेस उनकी सेवा का प्रयत्न करती रही है। मैं आशा करता हूं कि इस संक्षिप्त परिचय से, जिसका दिया जाना मैंने आवश्यक समझा, समिति और जो कांग्रेस के दावे में दिलचस्पी रखते हैं, वे यह जान सकेंगे कि उसने जो दावा किया है, वह उसके उपयुक्त है। मैं जानता हूं कि कभी-कभी वह अपने इस दावे को कायम रखने में असफल भी हुई है; किन्तु मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यदि आप कांग्रेस का इतिहास देखेंगे तो आपको मालूम होगा कि असफल होने की अपेक्षा वह सफल ही अधिक हुई है और प्रगति के साथ सफल हुई है। सबसे अधिक कांग्रेस मूलरूप में अपने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक ७,००,००० गांवों में बिखरे हुए करोड़ों मूक, अर्ध-नग्न और भूखे प्राणियों की प्रतिनिधि है; यह बात गौण है कि वे लोग ब्रिटिश भारत के नाम से पुकारे जानेवाले प्रदेश के हैं अथवा भारतीय भारत अर्थात् देशी राज्यों के। इसलिए कांग्रेस के मत से प्रत्येक हित जो रक्षा के योग्य है, इन लाखों मूक-प्राणियों के हित का साधन होना चाहिए। हां, आप समय-समय पर इन विभिन्न हितों में प्रत्यक्ष विरोध देखते हैं। परन्तु यदि वस्तुतः कोई वास्तविक विरोध हो तो मैं कांग्रेस की ओर से बिना किसी संकोच के यह बता देना चाहता हूं कि इन लाखों मूक-प्राणियों के हित के लिए कांग्रेस प्रत्येक हित का बलिदान कर देगी। इसलिए यह आवश्यक-रूप से किसानों की संस्था है और वह अधिकाधिक उनकी बनती जा रही है। आपको, और कदाचित् इस समिति के भारतीय सदस्यों को भी, यह जान कर आश्चर्य होगा कि कांग्रेस ने आज 'अखिल भारतीय चरखा संघ' नामक अपनी संस्था द्वारा करीब दो हजार गांवों की लगभग ५० हजार स्त्रियों को (अब यह संख्या १,८०,००० है) रोजगार में लगा रक्खा है, और इनमें सम्भवतः ५० प्रति शत मुसलमान स्त्रियां हैं। उनमें हजारों अछूत कहानेवाली जातियों की भी हैं। इस तरह हम इस रचनात्मक कार्य के रूप में इन गांवों में प्रवेश कर चुके हैं और ७,००,००० गांवों में, प्रत्येक गांव में, प्रवेश करने का यत्न किया जा रहा है। यह काम यद्यपि मनुष्य की शक्ति के बाहर का है, फिर भी यदि मनुष्य के प्रयत्न से हो सकता है, तो आप कांग्रेस को इन सब गांवों में फैली हुई और उन्हें चरखे का सन्देश सुनाती हुई देखेंगे।"

कांग्रेस कैसी महान् राष्ट्रीय संस्था है, इसका बहुत अच्छा वर्णन संक्षेप में गांधीजी ने किया है। यदि कांग्रेस ने और कुछ नहीं किया तो कम-से-कम इतना जरूर किया है कि उसने अपना गन्तव्य स्थान खोज लिया है और राष्ट्र के विचारों और प्रवृत्तियों को एक ही बिन्दु पर लाकर ठहरा दिया है। उसने भारत के करोड़ों निरीह और बेकस लोगों के दिलों में एक जागृति पैदा कर दी है;

उनके अन्दर एकता, आशा और आत्म-विश्वास की संजीवनी डाल दी है। कांग्रेस ने भारतवासियों के विचारों और आकांक्षाओं को एक स्पष्ट राष्ट्रीय रूप दे दिया है, जिसके द्वारा उन्होंने अपनी राष्ट्र-भाषा और राष्ट्रीय-साहित्य को, अपने सर्व-सामान्य धन्धों, कारीगरियों और कलाओं को, यहां तक कि अपनी सर्व-सामान्य आकांक्षाओं और आदर्शों तक को खोज निकाला है। परन्तु यहां कहना होगा कि उसके जीवन के ये पिछले ५० वर्ष अबाध और आसानी से नहीं बीते हैं। उसमें कई उतार-चढ़ाव आये हैं। उसमें लोगों की आशा-निराशायें, उनके आन्दोलनों और प्रयासों से मिली सफलता-असफलता, सबका इतिहास छिपा हुआ है। इन पन्नों में हम इस तेजस्विनी, बलवती और पुरुषार्थिनी संस्था के जीवन की अर्द्धशताब्दी की घटनाओं का इतिहास लिखेंगे, जिसमें उसके उद्गम की कथा सुनावेंगे; उसके जन्म-दाताओं और आरम्भ-काल के सरपरस्तों और पालकों की सेवाओं का स्मरण करेंगे; उसका जीवन-पिण्ड बनते समय जिन-जिन देश-भक्तों ने उसका लालन-पालन किया उनके कार्यों का दिग्दर्शन करावेंगे, अपनी किशोरावस्था में यह जिन उतार-चढ़ावों में से गुजरी है उनका चित्र खींचेंगे; जैसे-जैसे वह जवानी की ओर कदम बढ़ाती गई तैसे-तैसे उसे मिले यश की महत्ता और गौरव का एवं उसे जिन सन्ताप-परितापों और शर्मिन्दगियों का भी सामना करना पड़ा उसका परिचय करावेंगे, और उन सब अवस्थाओं का सिंहावलोकन करेंगे जिनमें उसके सिद्धान्त और आदर्श, विश्वास एवं मान्यतायें गुजर चुकी हैं और अन्त में जाकर उसने (कांग्रेस ने) तमाम शान्तिमय और उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त कर लेने का भी प्रण कर लिया है।

७

कांग्रेस के प्रस्तावों पर एक सरसरी निगाह

हरेक साल के कांग्रेस-अधिवेशन पर अलग-अलग विचार करने का हमारा इरादा नहीं है। एक-के-बाद-एक होने वाले अधिवेशनों में जिन महत्वपूर्ण विषयों पर विचार होकर प्रस्ताव पास हुए उन्हें लेकर एक नजर यह देखना ही काफी होगा कि लगभग १९१५ तक कांग्रेस की नीति और कार्य-क्रम का रुख क्या रहा। क्योंकि इसके बाद तो एकदम नई नीति और थोड़े-बहुत भिन्न उपाय काम में लाये जाने लगे हैं। इसके लिए प्रस्ताव और विचार के महत्वपूर्ण विषयों को भिन्न-भिन्न हिस्सों में बांट कर हमें क्रमशः विचार करना होगा।

१. इण्डिया कौंसिल

कांग्रेस ने अपने सबसे पहले अधिवेशन में ही इस बात पर जोर दिया था कि भारत-मंत्री की कौंसिल (इण्डिया कौंसिल), जैसी कि वह उस समय थी , तोड़ दी जाय। बाद के दो अधिवेशनों में भी उस प्रस्ताव को दोहराया गया। दसवें अधिवेशन में उसकी जगह भारत-मंत्री को परामर्श देने के लिए कामन-सभा की स्थायी समिति बनाने का प्रस्ताव पास किया गया और १९१३ में करांची कांग्रेस ने जो प्रस्ताव पास किया उसमें तो उसने उन संशोधनों का भी उल्लेख कर दिया है जिन्हें वह चाहती थी। वह प्रस्ताव यह है :—

"इस कांग्रेस की राय है कि भारत-मंत्री की कौंसिल, इस समय जिस तरह सङ्गठित है, तोड़ दी जाय, और निम्न प्रकार उसका पुनस्सङ्गठन किया जाय—

(क) भारत मंत्री का वेतन ब्रिटिश-कोप से दिया जाय।

(ख) कौंसिल की कार्यक्षमता और स्वतन्त्रता पर ध्यान रखते हुए यह अच्छा हो कि उसके कुछ सदस्य नामजद हों और कुछ चुने हुए।

(ग) कौंसिल के सदस्यों की कुल संख्या ९ से कम न हो।

(घ) कौंसिल के निर्वाचित सदस्य कुल संख्या के कम-से-कम $\frac{1}{3}$ हों, जो गैर-सरकारी भारतीय हों और बड़ी (इम्पीरियल) तथा प्रांतीय कौंसिलों के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने गये हों।

(ङ) कौंसिलों के नामजद सदस्यों में कम-से-कम आधे ऐसे योग्य सार्वजनिक कार्यकर्ता हों जिनका भारतीय शासन से कोई सम्बन्ध न हो, और शेष नामजद-सदस्य वे अफसर हों जिन्होंने कम-से कम दस वर्ष तक भारतवर्षमें काम किया हो और जिन्हें भारतवर्ष छोड़े दो वर्ष से अधिक न हुए हों।

(च) कौंसिल सलाहकार हो, शासक नहीं।

(छ) प्रत्येक सदस्य का कार्य-काल पांच वर्ष का हो।"

इसके बाद के कुछ अधिवेशनों में जो संशोधित प्रस्ताव पेश हुए उसका कारण यह नहीं है कि अब कौंसिल को तोड़ने की इच्छा उतनी प्रबल नहीं रही, बल्कि यह भावना कि जबकि इसके

जल्दी तोड़े जाने की कोई संभावना नहीं है तब इसका कुछ संशोधन ही भले हो जाय। वह कौंसिल निरुपयोगी है, यह विश्वास तो अब भी कायम था, जिसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि १९१७ में शासन-सुधारों की जो योजना बनाई गई उसमें इसे तोड़ने के लिए कहा गया है।

२. वैधानिक परिवर्तन

शुरू से लेकर बहुत समय तक कांग्रेस का रवैया ऐसा रहा है, कि उस पर शायद ही कोई 'गरम' या 'अविनयी' होने का आरोप लगा सके। कांग्रेस के पहले अधिवेशन में जो कुछ मांगा गया वह यही कि "बड़ी और मौजूदा प्रान्तीय कौंसिलों का सुधार और उनके आकार में वृद्धि होनी चाहिए। इसके लिए यह जरूरी है कि उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या का अनुपात बढ़ा दिया जाय और संयुक्तप्रान्त तथा पञ्जाब के लिए भी ऐसी कौंसिलों की स्थापना हो। बजट इन कौंसिलों में विचारार्थ पेश किये जाने चाहिए और इन सदस्यों को सरकार से शासन के प्रत्येक विभाग के सम्बन्ध में प्रश्न पूछने का अधिकार होना चाहिए। सरकार को इन कौंसिलों के बहुमत को रद करके अपने इच्छानुसार कार्य करने का जो अधिकार रहेगा उसके अनुसार, यदि सरकार कभी इन कौंसिलों के बहुमत को रद करे तो, उनके (कौंसिलों के) द्वारा सरकार के इन कार्यों के बाजाब्ता विरोधों को सुनने और उन पर विचार करने के लिए कामन-सभा की एक स्थायी समिति नियत की जानी चाहिए।" इसका मतलब यह है कि—बाद में जैसे असेम्बली में बहुतायत से देखा गया है—सरकार बहुमत से स्वीकार की गई गैर सरकारी मांगों को अपने 'विशेषाधिकारों' से अस्वीकृत और बहुमत से अस्वीकार की गई सरकारी मांगों को 'सार्टिफिकेट' द्वारा स्वीकृत करने लगती है। नौकरशाही के ऐसे कृत्यों के खिलाफ १८८५ में कांग्रेस ने पार्लमेण्टरी संरक्षण चाहा था। दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने कौंसिलों के सुधार की एक व्यापक योजना पेश की। इसमें कौंसिलों के आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया, पर अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धांत मान लिया गया था। कहा गया कि प्रांतीय कौंसिलों के सदस्यों का चुनाव तो म्युनिसिपल और लोकल बोर्डों, व्यापार-संघों तथा विश्वविद्यालयों के द्वारा हो और बड़ी कौंसिल का चुनाव प्रांतीय कौंसिलों के द्वारा हो। यही नहीं; बल्कि सरकार को कौंसिलों के निर्णय अस्वीकृत करने का अधिकार देने की बात भी इसमें मान ली गई, बशर्ते कि प्रांतीय कौंसिलों की अपील भारत-सरकार से और बड़ी कौंसिल की अपील कामन सभा की स्थायी समिति से करने का अधिकार रहे। अस्वीकृत करने के १ मास के अन्दर ही कार्यकारिणी समितियों को अपनी कार्रवाई का जवाब अपील-संस्था को भेज देना चाहिए। १८८७, १८८८ और १८८९ में भी यही प्रस्ताव दोहराया गया। १८९० में कांग्रेस ने 'इंडिया कौंसिल एक्ट' में संशोधन करने के श्री चार्ल्स ब्रैडला के उस बिल का समर्थन किया जो उन्होंने पार्लमेण्ट में पेश किया था और कांग्रेस की राय में जिससे काफी मात्रा में भारत के चाहे हुए सुधार मिलते थे। लेकिन यह बिल बाद में छोड़ दिया गया। १८९१ में कांग्रेस ने अपने इस निश्चय की फिर से ताईद की, कि "जब तक हमारे देश की कौंसिलों में हमारी जोरदार आवाज नहीं होगी और हमारे प्रतिनिधि भी निर्वाचित न होंगे तबतक भारत का शासन सुचारू-रूप से और न्यायपूर्वक कदापि नहीं चल सकता।" १८९२ में कौंसिलों के सुधार-सम्बन्धी लार्ड क्रॉस का 'इंडियन कौंसिल्स एक्ट' पास होगया। तब और बातों को छोड़कर भारत-सरकार के नियमों और प्रांतीय सरकारों द्वारा अपनाई हुई प्रथाओं पर, जिनमें बहुत सुधार की जरूरत थी, कांग्रेस ने अपना हमला शुरू किया।

यहां इस बात का उल्लेख आवश्यक है कि १८९२ के सुधारों में कौंसिलों के लिए प्रतिनिधि चुनने का कोई विधान नहीं था। म्युनिसिपल और लोकल बोर्ड आदि स्थानीय संस्थाओं और अन्य

निर्वाचन-मण्डलों को कौंसिलों के लिए चुनाव का जो कहने भर को अधिकार प्राप्त था वह सिर्फ नामजद करने के ही रूप में था। यही नहीं, बल्कि ऐसे नामजद व्यक्तियों को भी स्वीकार करना-न-करना सरकार पर ही निर्भर था। परन्तु अमली तौर पर सरकार सदा उन्हें स्वीकार कर ही लिया करती थी। वस्तुतः बात यह थी कि लार्ड लैंसडौन की सरकार ने अप्रत्यक्ष चुनाव का सिद्धान्त भी लागू न होने देने की कोशिश की। इस बड़ी कौंसिल के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी इसीके अनुसार की गई थी। उसमें सिर्फ चार जगह, उस समय की प्रान्तीय कौंसिलों (मदरास, बम्बई, कलकत्ता और युक्तप्रान्त) की सिफारिश से नामजद किये गये गैर सरकारी सदस्यों के लिए रक्खी गई थीं।

१८९२ में कांग्रेस ने 'इण्डियन कौंसिल्स एक्ट' को राजभक्ति के भाव से तो स्वीकार किया, परन्तु साथही इस बात पर खेद भी प्रकट किया कि "स्वतः उस एक्ट के द्वारा लोगों को कौंसिलों के लिए अपने प्रतिनिधि चुनने का अधिकार नहीं दिया गया है।" १८९३ में एक्टको कार्य-रूप में परिणत करने की उदार-भावना के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया, परन्तु साथ ही यह भी बतलाया गया कि यदि वास्तविक रूप में उस पर अमल करना हो तो उसमें क्या-क्या परिवर्तन करने आवश्यक हैं। साथ ही पंजाब में कौंसिल स्थापित करने की मांग की भी ताईद की गई। १८९४ और १८९७ में भी इन प्रार्थनाओं को दोहराया गया। परन्तु १८९२ के संशोधन से १८९३ में कौंसिलों के गैर-सरकारी सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार मिल गया था, इसलिए १८९० में कांग्रेस ने प्रश्न-कर्त्ताओं को प्रश्नों के आरम्भ में प्रश्न पूछने का कारण बताने का अधिकार भी देने के लिए कहा; लेकिन आज तक भी उन्हें वह प्राप्त नहीं हुआ है।

इसके बाद १९०४ तक कांग्रेस ने इस विषय में कुछ नहीं किया। १९०४ में प्रत्येक प्रान्त से दो सदस्य प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा कामन-सभा में भेजने और भारतवर्ष में कौंसिलों का और विस्तार करने एवं आर्थिक मामलों में उन्हें भिन्न मत देने का अधिकार देने की भी मांग की गई, हालांकि कौंसिल-का निर्णय रद करने का अधिकार शासन के मुख्याधिकारी पर ही छोड़ा गया। साथ ही भारत-मन्त्री की कौंसिल में और भारत के प्रान्तों की कार्यकारिणी सभा में भारतीयों की नियुक्ति पर भी जोर दिया गया। १९०५ में कांग्रेस ने शासन-सुधारों पर पुनः जोर दिया और १९०६ में राय जाहिर की कि "ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी जारी की जाय और इसके लिए [क) जो परीक्षायें केवल इंग्लैण्ड में होती हैं वे भारतवर्ष और इंग्लैण्ड में साथ-साथ हों, (ख) भारत-मन्त्री की कौंसिल में तथा वाइसराय और मदरास तथा बम्बई के गवर्नरों की कार्यकारिणी सभाओं में भारतीयों का काफी प्रतिनिधित्व हो, (ग) बड़ी और प्रान्तीय कौंसिलें इस प्रकार बढ़ाई जायं कि उनमें जनता के अधिक और वास्तविक प्रतिनिधि रहें और देश के आर्थिक तथा शासन-सम्बन्धी कार्यों में उनका आर्थिक नियन्त्रण रहे; और (घ) स्थानीय तथा म्युनिसिपल बोर्डों के अधिकार बढ़ाये जायं।" १९०८ में समय से पहले ही कांग्रेस ने भविष्य में होनेवाले शासन-सुधारों पर प्रसन्न होना शुरू कर दिया। उसने प्रस्तावित सुधारों का हार्दिक और सम्पूर्ण स्वागत किया तथा आशा प्रदर्शित की कि उसकी तफसीली बातें तय करने में भी उसी उदार भाव से काम लिया जायगा जिसके साथ कि यह योजना बनी है। लेकिन देश के भाग्य में तो निराशा ही बदी थी। प्रतिनिधित्व की बात तो एक ओर वस्तुस्थिति यह हुई कि १९०९ के शासन-कानून के अन्तर्गत जो नियम स्वीकृत हुए उनमें तो उतनी भी उदारता नहीं थी जितनी कि जॉन मार्ले ने इससे पहले अपने खरीते में प्रदर्शित की थी। इस पर से हमें इसके बाद की उन घटनाओं का स्मरण होता है जो अभी हाल में ही हुई हैं। १९३०-३२ की गोलमेज-परिषदों ने किस प्रकार लार्ड अर्विन की घोषणाओं का रूप बदल दिया, बाद में गोलमेज-

परिषद् की योजना किस प्रकार श्वेत-पत्र (व्हाइटपेपर) के रूप में कमजोर बना दी गई, जिसे जॉइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट ने कुछ और नरम कर दिया, फिर शासन-सुधारों का बिल तो उससे भी कम कर दिया गया, और अन्त में जिस रूप में कानून बना वह तो उस बिल से भी बिलकुल गया-गुजरा निकला, यह हम सब जानते ही हैं।

यहां यह भी जान लेना आवश्यक है कि मॉर्ले-मिण्टो के नाम पर दस साल तक जिन शासन सुधारों का दौर-दौरा रहा, वे थे क्या ? इन सुधारों के अनुसार बनने वाली बड़ी (सुप्रीम) कौंसिल में ६० अतिरिक्त सदस्य थे, जिनमें से केवल २७ निर्वाचित प्रतिनिधि थे। शेष ३३ सदस्यों में से ज्यादा से-ज्यादा २८ सरकारी अफसर थे, और बाकी ५ में से ३ गैर-सरकारी सदस्य विभिन्न उल्लिखित जातियों की ओर से गवर्नर-जनरल नामजद करता था और २ अन्य सदस्य भी उसीके द्वारा नामजद होते थे जो प्रदेश-विशेष के बजाय स्वार्थ-विशेष के ही प्रतिनिधि होते थे। निर्वाचित सदस्यों में भी बहुत-कुछ विशेष निर्वाचन क्षेत्रों से चुने जाते थे—जैसे सात प्रान्तों में जमींदार, पांच प्रांतों में मुसलमान, एक प्रान्त में (पर सिर्फ बारी-बारी से) मुसलमान जमींदार और दो व्यापार-संघ के प्रतिनिधि, इनके बाद जो स्थान बचते उनका चुनाव नौ प्रान्तीय कौंसिलों के गैर-सरकारी सदस्यों द्वारा होता था और लार्ड मार्ले ने इस बात को बिलकुल छिपाया भी नहीं कि "गवर्नर-जनरलकी कौंसिल की रचना इसी तरह की रहनी चाहिए कि कानून बनाने और शासन-व्यवस्था में वह सदा और निर्बाध-रूप से अपने उस कर्तव्य का पालन करने में समर्थ रहे, जोकि वैधानिक रूप में सम्राट् की सरकार एवं पार्लमेण्ट के प्रति उसका है तथा सदा बना रहना चाहिए।" स्वयं शासन-सुधारों के बारे में लार्ड मार्ले का कहना था—"यदि यह कहा जा सकता हो कि ये शासन-सुधार प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में हिन्दुस्तान को पार्लमेण्टरी (प्रातिनिधिक) शासन-व्यवस्था की ओर ले जाते हैं, तो कम-से-कम मैं तो इनसे कोई वास्ता नहीं रक्खूंगा।" लेकिन लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु का निर्णय तो, जो उनकी (माण्टफोर्ड) रिपोर्ट में दर्ज है, इससे भी अधिक असंदिग्ध और अधिक अधिकारपूर्ण है—"इनसे (मार्ले-मिण्टो-सुधार से) भारतीय जनता का सन्तोष नहीं हो रहा है। इनको और जारी रक्खा गया तो सरकार और भारतीयों (कौंसिल के सदस्यों) के बीच खाई और बढ़ेगी और गैर-जिम्मेदाराना टीका-टिप्पणी में वृद्धि होगी।"

इसके पहले कि हम इस विषय के कांग्रेस-प्रस्तावों पर विचार करें, हमें इस समय की घटनाओं को पहले से अपनी निगाह में ले आना उचित होगा, जिससे कि चित्र अधूरा न रह जाय।

मॉर्ले-मिण्टो शासन-सुधारों के इस विषय का दूसरा दरवाजा खुल गया था। इसके अनुसार दो भारतवासी (अब बढ़ाकर तीन कर दिये गये हैं) १९०७ में इण्डिया-कौंसिल के सदस्य नियुक्त किये गये; एक को १९०९ में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में स्थान मिला, और एक-एक भारतवासी १९१० में मदरास व बम्बई के गवर्नरों की कार्यकारिणियों में नियुक्त किया गया। इसी साल बङ्गाल में भी कार्यकारिणी बनाई गई और एक हिन्दुस्तानी सदस्य उसमें भी रखा गया। बाद को जाकर वह प्रांत प्रेसीडेन्सी (अहाते) के दर्जे पर चढ़ा दिया गया और स-कौंसिल गवर्नर के मातहत हो गया। बिहार-उड़ीसा को मिलाकर, १९१२ में स-कौंसिल लेफ्टिनेन्ट गवर्नर के मातहत एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया और एक भारतवासी वहां की कार्यकारिणी का सदस्य बनाया गया।

१९०९ में कांग्रेस ने शासन-सुधारों के सम्बन्ध में चार प्रस्ताव पास किये। पहले प्रस्ताव में मजहब के आधार पर अलग-अलग निर्वाचन रखने पर नापसन्दी जाहिर की गई और (क) एक विशेष मजहब के अनुयायियों को अनुचित रूप से बहुत अधिक प्रतिनिधित्व देने, (ख) निर्वाचकों और

उम्मीदवारों की योग्यता के सम्बन्ध में मुसलमानों और गैर-मुसलमानों के बीच अन्यायपूर्ण, ईर्षास्पद और अपमान-प्रद भेद-भाव रखने, (ग) कौंसिलों के लिए खड़े होनेवाले उम्मीदवारों के लिए विस्तृत, मनमानी और अनुचित अयोग्यताएं रखने, (घ) नियम-पत्रों, (रेगूलेशन्स) के आम तौर पर शिक्षितों के प्रति अविश्वास के भावों से भरे होने, (ङ) प्रान्तीय कौंसिलों में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या, इस प्रकार असन्तोषजनक रखने पर, कि जिससे उनके बहुमत का कोई असर ही न हो और वे कोरी कागजी रह जायं, असन्तोष प्रकट किया गया। दूसरे प्रस्ताव द्वारा संयुक्तप्रान्त, पंजाब, पूर्वी बंगाल, आसाम और ब्रह्मदेश में लेफ्टिनेन्ट-गवर्नरों के सहायतार्थ कार्यकारिणियां बनाने की प्रार्थना की गई। तीसरे प्रस्ताव में पंजाब पर लागू किये जाने वाले शासन-सुधारों को असन्तोषप्रद बताते हुए कहा गया कि (क) कौंसिल के सदस्यों की जो संख्या रक्खी गई है वह काफी नहीं है, (ख) निर्वाचित सदस्यों की संख्या बहुत कम और बिलकुल नाकाफी है, (ग) अन्य प्रान्तों में मुसलमानों के लिए अल्पसंख्यकों की रक्षा का जो सिद्धान्त रक्खा गया है वह पंजाब के गैर-मुसलमान अल्पसंख्यकों के लिए लागू नहीं किया गया है, और (घ) नियम-पत्र जिस तरह बनाये गये हैं उनकी प्रवृत्ति यही है कि अमली तौर पर पञ्जाब के गैर-मुसलमान बड़ी कौंसिल में न पहुँच सकें, और चौथे प्रस्ताव में मध्यप्रान्त और बरार में कौंसिल स्थापित न करने तथा मध्यप्रांत के जमींदारों और जिला व म्युनिसिपल बोर्डों की ओर से बड़ी कौंसिल के लिए चुने जाने वाले दो सदस्यों के निर्वाचन से बरार को महरूम रखने पर असन्तोष प्रकट किया गया।

१९१० और १९११ में अमली तौर पर कांग्रेस ने शासन सुधारों-सम्बन्धी अपनी १९०९ की आपत्तियों एवं सूचनाओं की ही ताईद की और पृथक् निर्वाचन के सिद्धान्तों को म्युनिसिपल व जिला-बोर्डों पर भी लागू कर देने का विरोध किया।

१९१२ में कांग्रेस ने अपने पिछले प्रस्तावों में उल्लिखित कमियां दूर न की जाने पर निराशा प्रकट की और अन्य सुधारों के साथ यह भी प्रार्थना की कि बड़ी तथा समस्त प्रान्तीय कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों का बहुमत रहे, प्रतिनिधियों द्वारा मत लेने की प्रथा उठा दी जाय, उन अपराधों (राजनैतिक) के लिए सजा पानेवालों को जिनमें नैतिक दोष न हो, चुने जाने के अयोग्य ठहराने की बाधा हटा दी जाय, और अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार कौंसिलों के सभी सदस्यों को दे दिया जाय। पंजाब में कार्यकारिणी की स्थापना और स्थानीय संस्थाओं के लिए भी पृथक् निर्वाचन लागू कर देने के प्रस्तावों की ताईद की गई। आश्चर्य की बात है कि कांग्रेस के शासन-सुधारों-सम्बन्धी प्रस्ताव में एक टुकड़ा यह भी है कि "जो व्यक्ति अंग्रेजी न जानता हो उसे सदस्यता के अयोग्य समझा जाय।" इस बात पर सन्तोष प्रकट किया गया कि भारत-सरकार ने प्रान्तीय स्वराज्यकी आवश्यकता स्वीकार करली है, परन्तु भारत-सरकार के उस खरीते के शब्दों और भाव के खिलाफ उसका जो अर्थ लगाया गया उसका कांग्रेस ने विरोध किया। १९१३ में भी प्रायः यही प्रस्ताव दोहराया गया।

१९१५ में बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह उसके सभापति थे; जो भारत-सरकार के सर्वप्रथम भारतीय लॉ-मेम्बर थे। इसमें एक प्रस्ताव द्वारा महासमिति को आदेश दिया गया कि शासन-सुधारों के सम्बन्ध में वह आल इण्डिया मुस्लिम लीग की कमेटी से सलाह-मशवरा करे, जिसके फलस्वरूप संयुक्त भारत की आकांक्षाओं की द्योतक एक सम्मिलित योजना बनाई गई और १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस ने उसपर स्वीकृति की मुहर लगा दी। इसके अनुसार कांग्रेस ने स्वराज्य की ओर एक निश्चित कदम बढ़ाने का मतालबा किया और कहा कि भारतवर्ष का दर्जा

बढ़ाकर उसे "पराधीन देश के बजाय साम्राज्य के स्व-शासित उपनिवेशों का समान भागीदार बना दिया जाय।" आश्चर्य की बात यह है कि इस योजना में प्रान्तीय कौंसिलों में ⅘ निर्वाचित और ⅕ नामजद सदस्य रखने के लिए कहा गया है। निर्वाचन प्रत्यक्ष रखने और मताधिकार को जहांतक हो विस्तृत करने पर जोर दिया गया है, पर अल्पसंख्यक मुसलमानों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा निम्न अनुपात में प्रतिनिधित्व रक्खा गया है—निर्वाचित सदस्यों के ५० प्रतिशत पंजाब में, ३० प्रतिशत संयुक्तप्रान्त में, ४० प्रतिशत बंगाल में, २५ प्रतिशत बिहार में, १५ प्रतिशत मध्यप्रान्त में, १ प्रतिशत मदरास में, और एक तिहाई बम्बई में। शर्त यह थी कि बड़ी या प्रान्तीय कौंसिलों के लिए अपने विशेष निर्वाचन क्षेत्रों के अलावा और किसी निर्वाचन-क्षेत्र से वे उम्मीदवार न होंगे। साथ ही यह भी शर्त रक्खी गई कि "गैर-सरकारी सदस्य द्वारा पेश किये गये किसी ऐसे बिल या उसकी किसी धारा या प्रस्ताव के सम्बन्ध में, जिसका एक या दूसरी जाति से सम्बन्ध हो, कोई कार्रवाई न की जायगी, यदि उस कौंसिल (बड़ी या प्रांतीय) के उस जाति के तीन-चौथाई सदस्य उस बिल या उसकी धारा अथवा उसके प्रस्ताव का विरोध करते हों।" बड़ी कौंसिल के लिए कहा गया कि उसमें ⅘ सदस्य निर्वाचित होने चाहिए और निर्वाचित भारतीय सदस्यों में से ⅓ मुसलमान हों, जिनका निर्वाचन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में पृथक् मुसलिम निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा हो और संख्या का अनुपात यथा-सम्भव वही हो जो प्रांतीय कौंसिलों में पृथक् मुसलिम निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा रक्खा गया है। यही हिंदू-मुसलमानों की वह सम्मिलित योजना है जो लखनऊ में पास हुई थी और बाद में माण्ट-फोर्ड शासन-सुधारों में भी ज्यों-की-त्यों जोड़ दी गई थी।

उक्त योजना में तफसील की कई ऐसी बातें हैं जिनका उल्लेख यहां करना ठीक न होगा; आगे परिशिष्ट २ में सम्पूर्ण योजना ही दी गई है। इस योजना को प्रस्ताव द्वारा स्वीकार करके ही कांग्रेस सन्तुष्ट नहीं हो गई, बल्कि सर्व-साधारण को इसे समझाने एवं इसका प्रचार करने के लिए उसने अपनी एक कार्य-समिति भी बनाई। प्रधान मंत्रियों ने श्री एस० वरदाचार्य जैसे प्रसिद्ध वकील के पास, जो हाल में मदरास-हाईकोर्ट के जज हो गये हैं, इसे भेजा और इसपर से भारतीय शासनविधान का एक ऐसा संशोधक-बिल तैयार करने के लिए कहा जिससे 'गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट' में कांग्रेस-लीग-योजना के अनुसार संशोधन हो जायं। श्रीमती बेसेण्ट के नेतृत्व में होनेवाले होमरूल-आन्दोलन, श्रीमती बेसेण्ट की नजरबन्दी, कांग्रेस और मुसलिम लीग द्वारा संयुक्त रूप से सोची गई निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) की योजना, मेसोपोटामिया-प्रकरण पर मि० माण्टेगु का महत्वपूर्ण भाषण, तत्कालीन भारत-मंत्री मि० आस्टिन चैम्बरलेन का पद-त्याग और उनकी जगह मि० माण्टेगु की भारत-मंत्री के पद पर नियुक्ति, भारत सम्बन्धी भावी नीति की द्योतक २० अगस्त १९१७ की सुप्रसिद्ध घोषणा, मि० माण्टेगु का भारत-आगमन, श्रीमती बेसेण्ट का रिहा होकर कांग्रेस के सभापति-पद पर चुना जाना—ये सब बातें ऐसी हैं कि यहां उनका उल्लेख-मात्र किया जा सकता है; विस्तार के साथ उनपर आगे के अध्यायों में विचार किया जायगा, क्योंकि वे सब १९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस की पूर्वपीठिका हैं।

१९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस में इस घोषणा पर कृतज्ञतापूर्वक सन्तोष प्रकट किया गया कि भारतवर्ष में उत्तरदायी शासन स्थापित करना सरकार का उद्देश्य है, पर साथ ही इस बात पर जोर दिया गया कि स्वयं विधान में इसके लिए समय की कोई अवधि नियत कर दी जाय, जिसके अन्दर-अन्दर सम्पूर्ण रूप से यह प्राप्त हो जाय, और शासन-सुधारों की पहली किश्त के रूप में सुधारों-सम्बन्धी कांग्रेस-लीग-योजना को असली रूप दे दिया जाय। सुधारों की कैसी लचीली और अपने-आप फैलने-वाली योजना कांग्रेस के दिमाग में थी, यह ध्यान देने योग्य है।

मि० माण्टेगु नवम्बर १९१७ में भारत आये और माण्ट-फोर्ड (शासन-सुधारों की) रिपोर्ट जून १९१८ में प्रकाशित हो गई। सितम्बर १९१८ के बम्बई के विशेष अधिवेशन में उसपर विचार हुआ, जिसके सभापति श्री हसन इमाम थे। माण्ट-फोर्ड रिपोर्ट में प्रस्तावित शासन-सुधारों की योजना के आगे, जिसका मुख्य भाग द्वैध-शासन था, कांग्रेस-लीग-योजना दब गई। नई (माण्ट-फोर्ड) योजनाके अन्तर्गत केन्द्रीय व्यवस्थापक-मण्डल में राज्यपरिषद् (कौंसिल आफ स्टेट) के नाम से एक परिषद् का आयोजन किया गया; गवर्नर जनरल के सहायतार्थ प्रांतों में बड़ी-बड़ी कमिटियां बनाई गईं और कौंसिलों द्वारा समर्थन न पाने वाली बातों के लिए गवर्नरोंको काफी और कारगर अधिकार दिये गये। बम्बई के (विशेष) अधिवेशन ने निश्चय किया, कि "राज्य-परिषद् न रक्खी जाय; किन्तु यदि राज्य परिषद् बनाई ही जाय, तो भारतीय सरकार के लिए भी प्रान्तों की तरह रक्षित और हस्तान्तरित विभागों की तजवीज की जाय, उसके कम-से-कम आधे सदस्य निर्वाचित हों और सर्टिफिकेट देने का नियम केवल रक्षित विषयों के लिए हो।" साथ ही द्वैध-शासन स्वीकार किया गया और केन्द्र में द्वितीय परिषद् की भी इस शर्त पर स्वीकृति दी गई कि केन्द्र में भी द्वैध-शासन जारी कर दिया जाय, हालांकि माण्ट-फोर्ड योजना में यह बात नहीं थी। वस्तुतः तो कांग्रेस-लीग-योजना द्विपरिषद्-योजना की अपेक्षा होमरूल की कल्पना के कहीं ज्यादा नजदीक थी। द्विपरिषद्-योजना में तो लोअर हाउस की लोकप्रिय आवाज को गवर्नर-जनरल या गवर्नरों द्वारा, 'वीटो' का सहारा लिये बगैर ही, आसानी से दबाया जा सकता था।

इस प्रकार सरकार ने जो-कुछ दिया उसे, अर्थात् राज्य-परिषद् को, बेकार कर दिया, क्योंकि केन्द्र में द्वैध-शासन की जो मांग की गई थी उसे मंजूर नहीं किया। बम्बई के विशेषाधिवेशन ने माण्ट-फोर्ड (शासन-सुधारों के) प्रस्तावों को कुल मिलाकर निराशाजनक और असन्तोषप्रद बतलाया, और पहले के दो अधिवेशनों की मांगों की ताईद करते हुए उसने कानून के सामने सब प्रजा की समानता, स्वतन्त्रता, जानमाल की सुरक्षा और लिखने-बोलने व सभाओं में सम्मिलित होने की आजादी, शस्त्र रखने का अधिकार तथा शारीरिक सजा सब प्रजाजनों पर एक-समान लागू करने के मौलिक अधिकारों-सम्बन्धी एक धारा जोड़ी; फिर भी सच पूछिये तो उसमें मि० माण्टेगु की ही पूरी जीत हुई। १९१८ का दिल्ली अधिवेशन पं० मदनमोहन मालवीय के सभापतित्व में हुआ और उसने भी इन्हीं बातों की ताईद की, परन्तु उसने सब प्रांतों के लिए द्वैध-शासन की नहीं बल्कि पूर्ण उत्तरदायी शासन की मांग की। दिल्ली-अधिवेशन में तो केन्द्रीय शासन में द्वैध-शासन-प्रणाली जारी करने के लिए कहा गया, हालांकि परराष्ट्र-विभाग और जल-थल-सेना के विषय रक्षित मानकर उससे पृथक् रक्खे गये। द्वितीय परिषद् के बारे में बम्बई के विशेष-अधिवेशन का प्रस्ताव ही दोहराया गया और उसके आधे सदस्य निर्वाचित रखने के लिए कहा गया। ११ नवम्बर १९१८ को सुलह की घोषणा के साथ यूरोपीय महायुद्ध का खात्मा हुआ। इस सम्बन्ध में हुई राष्ट्रपति विलसन, प्रधान मन्त्री लायड जार्ज तथा अन्य ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की घोषणाओं को उद्धृत करके, आत्म-निर्णय के सिद्धांत को समस्त प्रगतिशील-राष्ट्रों पर लागू करने की बात पर जोर देते हुए, कांग्रेस ने निश्चय किया कि भारत पर भी इसे लागू किया जाय और समस्त दमनकारी कानून रद कर दिये जायं। लेकिन कांग्रेस के भाग्य में तो कठिन प्रसंग आने बदे थे। अमृतसर में कांग्रेस का अगला अधिवेशन होने से पहले ही रौलट-बिल और उसके विरुद्ध होने वाला सत्याग्रह आन्दोलन, दिल्ली और वीरमगांव के गोली-काण्ड तथा जलियांवाला-बाग का हत्याकाण्ड, पंजाब का मार्शल-लॉ और सर शंकर नायर का भारत-सरकार की नौकरी से इस्तीफा, हण्टर-कमिटी और उसकी असफलता के दृश्य सामने आये, जिन्होंने केवल

राष्ट्र का ध्यान ही अपनी ओर आकृष्ट नहीं किया बल्कि उसमें बड़ी भारी हलचल मचा दी।

३. सरकारी नौकरियां

सरकारी नौकरियों में, खासकर उन उच्च पदों पर, जो सनदी के नाम से मशहूर हैं, भारतीयों की नियुक्ति के प्रश्न को कांग्रेस ने हमेशा बहुत महत्व दिया है। यह याद रखने की बात है कि १८३३ में कानून-द्वारा भारतीयों को सब पदों पर नियुक्त करने की बात स्वीकार की गई थी और १८५३ में जब प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं का आरम्भ हुआ तो कहा गया था कि उसमें हिन्दुस्तानियों के लिए बड़ी रुकावट है। लार्ड सेल्सबरी के शासनकाल में सिविल-सर्विस की प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाओं के उम्मीदवारों की उम्र में कमी की गई। इसे कांग्रेस ने उन कठिनाइयों में और भी वृद्धि करना समझा, जो कि इसके लिए पहले के भारतीयों के सामने उपस्थित थीं। भारतवासियों ने हमेशा यह मतालबा किया है कि ये परीक्षायें इंग्लैण्ड और भारतवर्ष दोनों जगह साथ-साथ होनी चाहिए, जिससे भारतीयों की कुछ तो कठिनाई दूर होजाय। अपने पहले ही अधिवेशन में कांग्रेस ने दोनों देशों में साथ-साथ परीक्षा होने की आवाज उठाई थी।

अब जरा विस्तार से हम इस विषय पर विचार करें। यहां यह बता देना ठीक होगा कि पहले-पहल १८८५ में जब कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तभी से उसने प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें दोनों देशों में साथ-साथ होने की मांग रक्खी है, हांलाकि यों यह आवाज तो अठारह वर्ष पहले से उठती रही है। यही नहीं, बल्कि १८६१ में इण्डिया-कौंसिल की एक कमिटी ने भी यही सिफारिश की थी कि यदि भारत के साथ न्याय करना हो और पार्लमेन्ट द्वारा किये गये वादों को पूरा करना हो तो ऐसा करना आवश्यक है। जून १८९३ में कामन-सभा ने दोनों देशों में साथ-साथ परीक्षायें होने के समर्थन में प्रस्ताव पास किया, जिसका कांग्रेस तथा देश भर ने स्वागत किया, परन्तु दूसरे ही साल सरकार ने घोषणा कर दी कि उस प्रस्ताव पर अमल नहीं किया जायगा जिससे सारा उत्साह नष्ट होकर गहरी निराशा छा गई। भारत की सरकारी नौकरियों के सम्बन्ध में नियुक्त शाही कमीशन के सामने भारतीयों की जो गवाहियां हुईं उनसे यह बात निःसंदिग्ध हो गई कि जबतक यह सुधार न हो जायगा तब तक भारतीय मांगों के साथ हर्गिज न्याय नहीं हो सकता। इस कमीशन की बहुमत रिपोर्ट का जो जोरदार विरोध हुआ। उसका भी मुख्य कारण यही था कि इसने इस प्रस्ताव को मान्य नहीं किया था।

दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस की ओर से इस काम के लिए नियुक्त उप-समिति ने इस सम्बन्धी विस्तृत ब्यौरा तैयार किया और मतालबा किया कि प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें भारतवर्ष और इंग्लैण्ड में साथ-साथ हों और सम्राट् के सब प्रजाजन बिना किसी भेदभाव के उसमें भाग ले सकें, योग्यता के अनुसार नियुक्तियों की क्रमागत सूची तैयार की जाय। प्रथम नियुक्तियों के लिए 'स्टेच्युटरी सिविल सर्विस' बन्द कर दी जाय, परन्तु बे-सनदी नौकरियों तथा उपयुक्त पात्रों के लिए वह खुली रहे और इसके अतिरिक्त जितनी नियुक्तियां हों वे सब प्रान्तों में प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें लेकर की जायं। उस समय प्रचलित प्रथा यह थी, कि कुछ नवयुवकों को चुनकर बस सीधा डिप्टी-कलक्टर बना दिया जाता था। चौथे अधिवेशन तक जाकर कहीं इस सम्बन्धी आन्दोलन में थोड़ी सफलता मिली। सरकारी नौकरियों (पबलिक सर्विसेज) के कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में इस सम्बन्धी जिन सुविधाओं की सिफारिश की उनकी कांग्रेस ने तारीफ की, परन्तु उन्हें अपर्याप्त बताया। इसमें सन्देह नहीं कि कांग्रेसके इच्छानुसार इण्डियन-सिविल-सर्विस की परीक्षा के लिए वय-मर्यादा १९ से २३ कर दी गई, लेकिन दूसरी तरह से कमीशनकी सिफारिशों पर जारी की गई सरकारी आज्ञा से स्थिति और भी खराब हो गई। क्योंकि उससे भारतीय उच्चाधिकारियों के लिए दो ही उपाय रह गये—या तो जिस स्थिति में स्टेच्युटरी सर्विस के

मातहत वे उस समय थे उसी में बने रहें, या प्रान्तीय सर्विस में सम्मिलित हो जायं, जिनके सदस्यों के लिए शासन के सब उच्च पदों पर ताला डाल दिया गया था। इस सम्बन्ध में श्री गोखले ने, कांग्रेस के पांचवें अधिवेशन में, बहुत बिगड़ कर एक भाषण दिया था। उन्होंने कहा—"१८३३ के कानून की भाषा और १८५८ की घोषणा इतनी स्पष्ट है कि जो लोग उस समय दिये गये आश्वासनों के अनुसार सुविधायें नहीं देना चाहते उन्हें दो में से एक बात, और वह भी बड़े दुःख के साथ स्वीकार करनी पड़ेगी, कि या तो वे मक्कार हैं या दगाबाज; उन्हें यह मानने के लिए तैयार होना ही पड़ेगा कि इंग्लैण्ड ने जब वे आश्वासन दिये थे तब उसने ईमानदारी से काम नहीं लिया था, या यह कि अब वह हमारे साथ वचन-भंग करने पर आमादा हो गया है।" स्थिति उस समय यह थी कि प्रथम तो सर्व-भारतीय नौकरियों के लिए प्रतिस्पर्द्धी परीक्षायें होती थी, दूसरे स्टेच्युटरी सनदी सर्विस थीं, जिनकी ⅙ नौकरियां १८६१ के कानून के अनुसार भारतीयों के लिए रक्षित थीं, तीसरे सनदी नौकरियां थीं, जिनमें भारतीय ही भारतीय थे। १८९२ में कांग्रेस ने पब्लिक सर्विस कमीशन की रिपोर्ट पर किये गये भारत सरकार के प्रस्ताव पर असंतोष प्रकट किया और उसके बारे में कामन-सभा को एक प्रार्थना पत्र भेजा। बात यह थी कि दूसरी श्रेणी की ९४१ नौकरियों में ⅙ पद १५८ भारतीयों के लिए रक्खे गये थे, परन्तु पब्लिक-सर्विस-कमीशन ने कहा कि इनमें से १०८ पद उन्हें देने चाहिए और भारत-मंत्री ने उस 'चाहिए' शब्द को भी बदल कर 'दिये जा सकते हैं' कर दिया। और असलीयत तो यह है कि १५८ में से, जो कि भारतीयों का पूर्णतः उचित दावा था, जो १०८ पद सरकार के हाथ में रहे उनमें से सिर्फ ९३ ही १८९२ में भारतीयों को दिये गये!

इसके बाद तो स्थिति और भी खराब होगई। भारत सरकार के इस सम्बन्धी प्रस्ताव की भारत-मंत्री ने अपने खरीते-द्वारा पुष्टि कर दी। फलतः १८९४ में जाति-भेद के आधार पर भारतीयों के खिलाफ अयोग्यता की निश्चित मुहर लग गई, क्योंकि उस खरीते में यह स्पष्ट कर दिया गया कि सनदी नौकरियों (द्वितीय श्रेणी के उच्च पदों) में कम से कम इतने अंग्रेज अफसर तो रहने ही चाहिए। २ जून १८९३ को कामन सभा ने जो प्रस्ताव पास किया था, कि भारतीय जनता के साथ न्याय करने के लिए दोनों देशों में साथ-साथ परीक्षायें होने का क्रम शीघ्र अमल में ले आना चाहिए उसका इससे खात्मा ही गया। इस प्रकार जब कि भारतवर्ष 'इण्डियन सिविल, मेडिकल, पुलिस, इंजिनियरिंग, टेलीग्राफ, फारेस्ट और अकाउण्ट्स सर्विसेज' (नौकरियां) में प्रवेश करने के लिए दोनों देशों में साथ-साथ प्रतिस्पर्द्धी परीक्षाएं होने की सुविधा मांग रहा था, सरकार ने १८९५ में उनसे उलटा रुख अख्तियार किया। शिक्षा विभाग की नौकरियों के लिए जिसमें कि किसी भी ओहदे पर भारत-वासी बिलकुल अंग्रेजों के समान वेतन के साथ काम कर सकते थे, सरकार ने यह प्रस्ताव प्रकाशित किया कि "भविष्य में वे सब भारतवासी, जो कि शिक्षा विभाग में प्रवेश करना चाहेंगे, आम तौर पर भारतवर्ष में ही और प्रान्तीय सर्विस में नौकर रक्खे जायंगे।" इस प्रकार शिक्षा के पुनः संगठनकी योजना में शिक्षा विभाग की नौकरियों के सिलसिले में, भारतवासियों के साथ एक और अन्याय किया गया। भारतवासियों को इस विभाग की ऊंची नौकरियों से महरूम कर दिया गया। शिक्षा विभाग की ऊंची नौकरियों को दो भागों में बांट दिया गया—बड़ी अर्थात् आई० ई० एस० (सर्वभारतीय) और छोटी अर्थात् पी० ई० एस० (प्रान्तीय)। बड़ी नौकरियों की नियुक्ति इंग्लैण्ड में और छोटी नौकरियों की नियुक्ति भारतवर्ष में होने का नियम रक्खा गया। १८८० से पहले ऐसा नहीं था। उस समय बंगाल में उच्चपदस्थ भारतीयों और अंग्रेजों को एक समान वेतन मिलता था। दोनों का प्रारम्भिक वेतन ५०० रुपये होता था। पर १८८० में भारतवासियों का वेतन घटा कर ३३३) कर दिया गया और

१८८९ में २५० रू० ही रह गया, हालांकि भारतवासी थे इंग्लैण्डके विश्वविद्यालयों के ही ग्रेजुएट। भारतवासियोंके लिये अधिक-से-अधिक वेतन १८९६ में ७००रु० था, चाहे कितने ही समय की उनकी नौकरी क्यों न होजाय, परन्तु अंगरेजोंको अपनी नौकरी के दस वर्ष पूरे होते ही १,०००रु० मिलने लगते थे। नयी योजना ने भारतवासियों को ऐसे कुछ कालेजों के प्रिन्सिपल होने से भी महरूम कर दिया जो अंगरेजों की पढ़ाई के लिए रक्षित थे। श्री आनन्दमोहन वसु के कथनानुसार, यह और भी दुःख की बात है कि १८९७ के ही साल में ये सब परिवर्तन हुए जो कि महारानी की हीरक जयन्ती का साल था। इस प्रकार जैसे-जैसे कांग्रेस का आन्दोलन अधिक ठोस और वास्तविक होता गया, उसी हिसाब से नौकरशाही का विरोध भी अधिक निर्लज्ज और नग्न होता गया।

१८९६ और १८९७ में कांग्रेस ने बम्बई और मदरास की कार्यकारिणियों में भारतवासियों को भी स्थान देने की मांग की। सिविल मेडिकल सर्विस (डाक्टरी नौकरियां) पर भी इन तथा इनके बाद के वर्षों में ही कुछ ध्यान दिया जाने लगा। १९०० में कांग्रेस ने पी० डब्लू० डी०, रेलवे, अफयून, चुंगी (कस्टम) और तार-विभाग की ऊंची नौकरियों पर भारतवासियों के न रक्खे जाने तथा कूपर के इंजीनियरिंग (हिल) कालेज से पास-शुदा सिर्फ दो ही भारतवासियों को नौकरी के योग्य शुमार करने के प्रतिबन्ध की निन्दा की। इसके अतिरिक्त एक बुरा भेद-भाव रुड़की कालेज से पास होने वालों की गैरंटीड नौकरियों के बारे में भी रक्खा गया था। इण्डियन सिविल-मेडिकल-सर्विस का मिलिटरी-मेडिकल-सर्विस से अलग हो जाना भी आन्दोलन का विषय रहा और बाद के अधिवेशनों में भी वही पुरानी शिकायतें दोहराई जाती रहीं।

४. सैनिक समस्या

इस समय तक, इन तीस वर्षों में, कांग्रेस ने कोई दो सौ विषयों पर विचार किया। इन विषयों में एक ऐसा है जिसके प्रति लगातार इतनी दिलचस्पी ली जाती रही कि वर्षों तक वह सालाना विषय बना रहा, लेकिन कांग्रेस की ओर से लगातार विरोध और प्रार्थनायें होती रहने पर भी न तो तत्सम्बन्धी शिकायतें दूर हुईं और न उसमें कोई कमी ही हुई। अपने पहले अधिवेशन में ही कांग्रेस ने सैनिक खर्च की प्रस्तावित वृद्धि का विरोध किया और कहा, "यदि यह रहे ही तो इसकी पूर्ति पहले तो फिर से तट-कर लगाकर की जाय, दूसरे उन सरकारी और गैर-सरकारी लोगों पर लाइसेन्स-टैक्स लगाया जाय जो इस समय इस से बरी हैं, किन्तु इस बात का ध्यान रक्खा जाय कि कर निर्धारित करने की निम्नतम सीमा काफी ऊंची हो।" अगले वर्ष इस बिना पर भारतीयों को सैनिक स्वयंसेवक बनाने की प्रथा जारी करने पर जोर दिया गया, कि यूरोप की इस समय जो अस्त-व्यस्त हालत है उसमें यदि कोई खतरनाक वक्त आ जाय तो वे (ब्रिटेन की) सरकार के लिए बड़े सहायक सिद्ध होंगे। तीसरे साल भारत की राजभक्ति और १८५८ की घोषणा में महारानी विक्टोरिया द्वारा दिये गये वचन के आधार पर, सेना-विभाग की ऊंची नौकरियों का दरवाजा भारतवासियों के लिए भी खोलने का मतालबा किया गया। इसके लिए कांग्रेस ने देश में सैनिक-कालेज की स्थापना करने के लिए कहा। चौथे और पांचवें अधिवेशनों में पहले के प्रस्तावों की पुष्टि की गई। छठें में कोई विचार नहीं हुआ, पर सातवें में इसपर चर्चा हुई और सरकार से यह आग्रह करते हुए कि वह "भारतीय लोकमत का सम्मान करके भारतवासियों को प्रोत्साहन देकर इस योग्य बनावे कि वे अपने देश और सरकार की रक्षा कर सकें" मतालबा किया गया कि वह शस्त्र-विधान के नियमों में ऐसा संशोधन करे कि वे धर्म, जाति या वर्ण के भेद-भाव बगैर सब पर एक-समान लागू हों, साम्राज्य के जिस-जिस भाग में अधिक सैनिक प्रवृत्तिके लोग हों, वहां-वहां अनिवार्य सैनिक-सेवा की पद्धति प्रचलित करके उनका संगठन

किया जाय और भारत में सैनिक-विद्यालयों (कालेज) की स्थापना एवं सैनिक-स्वयंसेवकों की भर्ती की प्रथा प्रारम्भ की जाय। इन प्रार्थनाओं और विरोधों के होते हुए भी सैनिक व्यय में उलटे असाधारण वृद्धि हुई; तब आठवें अधिवेशन में कांग्रेस को यह मांग पेश करनी पड़ी कि इस व्यय का एक हिस्सा इंग्लैण्ड को भी बरदाश्त करना चाहिए। नवें अधिवेशन ने इस विषय के सामाजिक पहलू अर्थात् भारत की फौजी छावनियों में होनेवाली वेश्यावृत्ति एवं छूत की बीमारियों पर विचार किया; और दशवें अधिवेशन ने उसी प्रस्ताव की फिर पुष्टि की। १८९४ में वेल्बी-कमीशन नियुक्त हुआ, जो कि सैनिक-व्यय को इंगलैण्ड और भारतवर्ष के बीच विभक्त करने वाला था। ग्यारहवें और बारहवें अधिवेशनों में इस सम्बन्धी कोई विचार नहीं हुआ, परन्तु सीमाप्रान्त में सरकार ने जो नीति ग्रहण की उसके फलस्वरूप तेरहवें अधिवेशन में इसपर विचार हुआ और सरकार से कहा गया कि इस व्यय में इंग्लैण्ड को भी हिस्सा बटाना चाहिए। चौदहवें अधिवेशन ने भी ऐसा ही निश्चय किया। परन्तु पन्द्रहवें अधिवेशन ने इसके एक नये पहलू को स्पर्श किया और कहा, "चूंकि सैनिकों की एक बड़ी संख्या भारतवर्ष के बाहर भेजी जाना उचित समझा जाता है, इसलिए इस काम के लिए रक्खे जाने वाले २०,००० ब्रिटिश-सैनिकों का खर्च ब्रिटेन सरकार को बर्दाश्त करना चाहिए।" सीमाप्रान्त की लड़ाई खत्म हो जाने पर, सोलहवें अधिवेशन में, कांग्रेस फिर सैनिक विद्यालय के प्रश्न पर जा पहुंची। इस अधिवेशन के साथ उन्नीसवीं सदी समाप्त हो गई। १९०१ में महारानी विक्टोरिया भी मर गई और राज सिंहासन पर नये सम्राट् (किंग एडवर्ड सप्तम) का आगमन हुआ, परन्तु भारत के फौजी दुखड़े ज्यों-के-त्यों बने रहे। १९०२ के सत्रहवें अधिवेशन में कांग्रेस ने, अपने पन्द्रहवें अधिवेशन के ही आधार पर, सैनिक व्यय को भारत और इंग्लैण्ड के बीच विभक्त करने की मांग रक्खी। आखिर १८९४ के वेल्बी-कमीशन की रिपोर्ट के फल स्वरूप भारत को थोड़ी-बहुत छूट मिली। परन्तु ब्रिटिश सैनिकों की तनख्वाहों में ७,८६,००० पौंड सालाना बढ़ती करके उससे भी ज्यादा भारी नया बोझ भारत के सिर लाद दिया गया। अठारहवें अधिवेशन में इसका विरोध किया गया।

अलावा इसके, इसी समय यह मालूम पड़ा कि भारत में ब्रिटिश सैनिकों की संख्या और भी बढ़ाई जायगी—और वह उस हालत में जबकि बोअर-युद्ध तथा चीन की लड़ाइयों ने, जिनमें भारत की बहुत-सी सेना भेजी गई थी, निश्चित रूप से यह सिद्ध कर दिया कि भारतवर्ष में इतनी अधिक सेना है कि बिना किसी खतरे की आशंका के उसे भारत से बाहर भेजा जा सकता है। उन्नीसवें अधिवेशन में इस परिस्थिति पर व्यापक-दृष्टि से विचार किया गया और बताया गया कि १८५९ में सेना को मिला देने की योजना से भारत को कितनी कठिनाई का सामना करना पड़ा है। भारतीय सैनिक नीति की आलोचना करते हुए कहा गया कि "देशी दुश्मनों से रक्षा करने या सीमा पर के लड़ाका लोगों के आक्रमण से रक्षा करने के लिए नहीं, बल्कि पूर्व में ब्रिटिश सत्ता को बनाये रखने के लिए वह बरती जा रही है और भारत की सेना में $\frac{1}{3}$ संख्या ब्रिटिश सैनिकों की है, इसलिए इंग्लैण्ड को उसके खर्च में अवश्य हिस्सा बटाना चाहिए।" लार्ड कर्जन की तिब्बत पर चढ़ाई करने की उग्र नीति इस समय अमल में आ रही थी। हालांकि १८५८ के कानून में 'भारतवर्ष का रुपया भारतवर्ष की कानूनी सीमा के बाहर विदेशी आक्रमण से रक्षा करने के सिवा दूसरे किसी काम में पार्लमेण्ट की स्वीकृति बग़ैर खर्च न करने' का नियम था, परन्तु लार्ड कर्जन ने तिब्बत की चढ़ाई को 'राजनैतिक कार्य' बताकर उसकी भी उपेक्षा करदी। और अब, १९३५ में हम देखते हैं कि भारतीय शासन-सुधारों के कानून ने बहुत साल से प्रचलित नियम के इस अंग को जायज करार दे दिया है। बीसवें अधिवेशन में कांग्रेस ने लार्ड कर्जन की इस करतूत का विरोध किया और बताया कि सेना का

पुनस्संगठन करने की लार्ड किचनर की योजना के फलस्वरूप, जिसके लिए एक करोड़ पौंड का अतिरिक्त व्यय हो रहा है, भारत का सैनिक व्यय बढ़ते-बढ़ते असहनीय होता जा रहा है। लार्ड कर्जन के कार्य-काल के बढ़ाये हुए समय के आखिरी दिनों में (१९०५) लार्ड किचनर और उनके बीच इस बात पर तीव्र मतभेद हो गया कि सेना पर गैर-फौजी अधिकारियों का नियंत्रण रहे या नहीं। लार्ड कर्जन चाहते थे कि नियंत्रण रहे और लार्ड किंचनर उसके सख्त खिलाफ थे।

बनारस के अपने इक्कीसवें अधिवेशन में (१९०५) कांग्रेस ने इस बात का विरोध किया कि प्रचलित नीति में, जिसके कि द्वारा फौजी अधिकारियों पर गैर-फौजी अर्थात् मुल्की अधिकारियों का नियन्त्रण होता था, किसी प्रकार परिवर्तन किया जाय और एक बार फिर इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया कि यहां का सैनिक-व्यय पूर्व में ब्रिटिश-साम्राज्य की सत्ता बनाये रखने की ब्रिटिश-नीति को ध्यान में रखते हुए निश्चित किया जाता है। साथ ही इस बात पर भी जोर दिया गया कि सेना पर मुल्की अधिकारियों का नियन्त्रण तभी पूरी तरह हो सकता है जब कि कर-दाताओं को उस नियन्त्रण पर असर डालने की स्थिति में रक्खा जाय। १९०६ में राष्ट्रीय नव-चैतन्यके समय भी साल-दर-साल सामने आने वाले इस दुस्साध्य विषय को भुलाया नहीं गया। उसमें इस बात की ओर ध्यान आकर्षित किया गया कि पिछले बीस वर्षों में भारत का सैनिक-व्यय १७ करोड़ से बढ़कर ३२ करोड़ सालाना, अर्थात् करीब-करीब दुगुना, हो गया है—और यह वह समय है कि जिसके अन्दर भारत में ऐसे सत्यानाशी दुर्भिक्ष पड़े कि जैसे पहले शायद ही कभी पड़े हों और कम-से-कम २ करोड़ २२ लाख व्यक्ति भोजन के अभाव में काल के ग्रास हुए।

१९०८ में कांग्रेस ने जोरों के साथ ३,००,००० पौण्ड के उस नये भार का विरोध किया जो रोमर-कमिटी की सिफारिश पर ब्रिटिश युद्ध-विभाग ने भारतीय कोष पर लाद दिया था, और ब्रिटिश-सरकार से प्रार्थना की कि "इतने दिनों के अनुभव की सहायता से १८५९ की सेना को मिलाने की नीति में परिवर्तन करने की आवश्यकता है और इस बात की आवश्यकता है कि इस सम्बन्ध में एक उचित और न्यायपूर्ण सिद्धान्त निर्धारित किया जाय, जिससे भारतीय कोष पर से इस तरह का अनुचित भार उठ जाय।" १९०९ और १९१० में साल-दर-साल बढ़ते जाने वाले सैनिक व्यय की आलोचना की गई। १९१२ और १९१३ के अधिवेशनों में सेना-विभाग के उच्च पद भारतीयों को न देने के अन्याय की ओर पूर्ण ध्यान आकर्षित किया गया।

१९१४ में कांग्रेस ने अपनी इस मांग को फिर से दोहराया कि सेना-विभाग की ऊंची नौकरियां भारतवासियों को भी मिलनी चाहिए, सैनिक स्कूल कालेज खोले जांय और भारतीयों को सैनिक-स्वयंसेवक बनाया जाय। ड्यूक आफ कनाट ने इनमें पहली दो बातों का समर्थन किया। लार्ड किचनर, कहते हैं, भारतीयों को मेजर तक के पद देने को तैयार थे, और यह भी व्यर्थ ही आशा की गई कि १९११ में सम्राट् इसकी घोषणा कर देंगे। वैसे सैनिक-स्वयंसेवक बनने की उन दिनों भारतवासियों के लिए कोई मुमानियत नहीं थी। कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों में जब पहले-पहल यह प्रश्न उठा तो श्री एस० वी० शंकरम् ने बताया था कि वह सैनिक स्वयंसेवक हैं। स्वयं श्री बी० एन० शर्मा भी, जो १९२० में वाइसराय की कार्य-कारिणी के सदस्य बनाये गये, सैनिक स्वयंसेवक थे। परन्तु १८९८ में भारतीय स्वयंसेवकों के नाम खारिज कर दिये गये और १९१४ में केवल ईसाईयों को ही स्वयंसेवक बनाने का नियम रह गया। इस तरह भारतवासियों के साथ बड़ा भारी अन्याय किया गया। लेकिन १९१७ में भारतवासियों पर से सेना की 'कमीशन्ड' जगहें मिलने की बाधा हटा ली गई और नौ भारतवासियों को ऐसी जगहें भी दी गईं, जिससे उस अन्याय की आंशिक पूर्ति हुई। फलतः, फल-

कत्ता में होने वाली १९१७ की कांग्रेस ने इस विषय में अपना सन्तोष प्रकट किया और १६ से १८ वर्ष तक की उम्र के युवकों की 'केडेट कोर' प्रत्येक प्रान्त में संगठित करने पर जोर दिया।

५. क़ानून और न्याय

कांग्रेस में शुरुआत से ही ऊंचे दर्जे के कानूनदाओं का प्राधान्य रहा है। इसलिए सर्व-साधारण के क़ानूनी अधिकारों की ओर स्वभावतः उसका विशेष ध्यान रहा है। लेकिन न तो सार्वजनिक अनुभव और न नौकरशाही दमन, किसी ने भी हमें इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचाया है कि हमारे देश में जो अदालतें और कानून हैं, वे ऐसे हैं कि जैसे किसी देश की साधारण दशा में हुआ करते हैं और जिनका आदर स्वेच्छापूर्वक किया जा सकता हो। जब लोगों में जागृति होकर उन्हें इनसे प्राप्त होने वाले अधिकारों का भान होता है, अर्थात् जब देश या जाति की निद्रा समाप्त होकर उसमें राष्ट्रीय चैतन्य का प्रारम्भ होता है, तब उनके बाहरी रूपों और कार्य-विधियों का खोखलापन तुरन्त प्रत्यक्ष हो जाता है। यही बात उस समय हुई, जब कि मुकदमे में जूरी-द्वारा विचार होने की प्रथा सम्पूर्ण रूप से प्रचलित करने के बाद १८७२ में सरकार ने उसमें यह बन्दिश लगा दी कि जूरी का मत अन्तिम निर्णय न समझा जायगा और दौरा जज तथा हाईकोर्ट उनके बरी करने के फैसलों को रद कर सकेंगे। दूसरी ही कांग्रेस में (कलकत्ता, १८८६) इस बन्दिश को हानिकारक बताकर तुरन्त उठा देने के लिए कहा गया। साथ ही न्याय-प्रथा में प्रस्तावित अन्य उन्नति-विरोधी फेरफारों का भी विरोध किया गया। इसके बाद समय-समय पर कांग्रेस अपनी इस प्रार्थना को दोहराती रही, लेकिन नतीजा आज तक भी कुछ नहीं निकला।

जूरी के अधिकारों पर प्रश्न तो आवश्यक था ही, परन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता शासन और न्याय-कार्यों के पृथक्करण की थी; क्योंकि एक ही व्यक्ति के हाथ में दोनों कार्य रहने से वही तो शासक होता है और वही निर्णायक—वही मुकदमा चलाता है वही जूरी व जज का काम करता है। इस प्रकार एक ही व्यक्ति सर्वाधिकार-सम्पन्न बन जाता है।

ब्रिटिश-भारत में इस सुधार के लिए आन्दोलन राजा राममोहन राय के समय शुरू हुआ, जिन्होंने अन्य विषयों के साथ इस विषय में भी एक आवेदन-पत्र पार्लमेण्ट में पेश किया था और एक पार्लमेण्टरी कमिटी में गवाही देने के बाद अस्सी वर्ष पूर्व इंग्लैण्ड में ही जिनकी मृत्यु हुई। यह ध्यान देने लायक बात है कि उन्होंने जिन सुधारों का प्रतिपादन किया उनमें एक यह भी था कि शासन और न्याय कार्यों को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् किया जाय, और कांग्रेस तथा मुस्लिम-लीग भी इसके लिए बराबर जोर देती रही है, लेकिन नतीजा आजतक कुछ भी नहीं हुआ है। इस सम्बन्धी इतिहास से यह साफ जाहिर होता है कि मौजूदा परिस्थिति इतनी प्रतिकूल है कि ऐसे आवश्यक सुधार भी हम नहीं करा सकते। और तो और गवर्नर-जनरल लॉर्ड डफरिन, भारत-मंत्री लॉर्ड क्रॉस तथा लॉर्ड किम्बरली, और भारत-सरकार के होम मेम्बर सर हार्वे एडम्सन ने भी मुख्तलिफ समयों में कांग्रेस के इस प्रस्ताव (अर्थात् न्याय और शासन-कार्यों को एक दूसरे से पृथक् करने) का औचित्य स्वीकार किया है; और सर हार्वे एडम्सन ने तो सरकार की ओर से १९०८ में यह वादा भी किया था कि परीक्षा के तौर पर यह आजमाया जायगा। लेकिन अबतक भी न्याय और शासन-कार्य सम्मिलित रूप से एक ही अफसर के सुपुर्द हैं। राजा राममोहन राय के बाद उत्साही कार्यकर्ताओं के एक दल ने जिसमें श्री दादाभाई नौरोजी सबसे प्रमुख थे, इस प्रश्न को हाथ में लिया; और इसके लिए बंगाल, बम्बई व मदरास में संघ बनाये गये, जिनमें बंगीय राष्ट्रीय-संघ खास तौर पर उल्लेखनीय है। शिक्षा-प्रचार

के साथ-साथ इस आन्दोलन का प्रसार और जोर-शोर बढ़ा; और १८८५ में कांग्रेस ने इस प्रश्न को अपने हाथ में ले लिया।

दूसरे अधिवेशन में कांग्रेस ने अपनी यह राय जाहिर की, कि शासन और न्याय-कार्यों का शीघ्र एक-दूसरे से पृथक् होना आवश्यक है। तीसरे अधिवेशन में इसका प्रतिपादन करते हुए कहा कि ऐसा करने में खर्च बढ़ाना पड़ता हो तो भी इसमें देरी न की जाय। अगले साल यह विषय और जूरी-प्रथा का प्रश्न, दोनों एक-साथ कर दिये गये और प्रतीत होने लगा कि सर्वाशयी प्रस्ताव में ही अब उनका भी प्रवेश होजायगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। साल-दर-साल कांग्रेस इस प्रस्ताव को दोहराती रही और १८९३ में तो यहां तक कह दिया कि न्याय और शासन-कार्यों का सम्मिश्रण "भारतवर्ष के ब्रिटिश-शासन के लिए एक बड़ा कलंक है, जिससे देश भर के समस्त जाति और समाज वाले लोगों को बेहद तकलीफ उठानी पड़ती है।" यही नहीं, "किसी दूसरे जरिये की आशा न देखकर, नम्रता-पूर्वक भारत मंत्री से प्रार्थना की गई कि इस सम्बन्धी उपयुक्त योजना बनाने के लिए वह हरेक प्रांत में एक-एक कमिटी नियुक्त करने का हुक्म निकाल दें।" भला कांग्रेस कितनी भोली-भाली थी, अथवा कहना चाहिए कि आपे से बाहर हो गई थी, कि जो सरकार सुधार करने को ही तैयार नहीं थी, उससे भी यह आशा की कि वह उस सुधार-सम्बन्धी विस्तृत योजना को तैयार करने के लिए कमिटी बनायेगी। इससे इस बात का पता लगता है कि कांग्रेसवाले कितनी शून्यता अनुभव करने लग गये थे और उनकी आंखों के सामने अंधेरा छा गया था। क्योंकि इसके एक साल बाद ही (१८९४ में) कांग्रेस ने दो भूतपूर्व भारत-मन्त्रियों (लार्ड किम्बरली तथा लॉर्ड क्रॉस) के जो मत उद्धृत किये वे भी उसके समर्थक ही थे। और यह वस्तुतः बहुत महत्वपूर्ण बात है कि वे मत जिम्मेदार अधिकारियों के थे, किसी ऐरे-गैरे व्यक्ति के नहीं। लेकिन हुआ कुछ भी नहीं और आन्दोलन बराबर जारी रहा। स्वर्गीय मदनमोहन घोष ने इसमें खास तौर पर दिलचस्पी ली और इसे अपने अध्ययन का मुख्य विषय बनाया। १८९६ में उनकी मृत्यु होजाने पर, बारहवें अधिवेशन में कांग्रेस ने उनकी मृत्यु पर शोक मनाते हुए इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि 'न्यायालयों को शासन-कार्य से अलग रखने के विचार का इंगलैण्ड और भारतवर्ष में जनता ने समर्थन किया है।" १८९९ में इस अत्यन्त आवश्यक सुधार को कार्यान्वित करने के लिए कई प्रसिद्ध अंग्रेज न्यायाधीश और सार्वजनिक सेवकों ने सपरिषद् भारत-मन्त्री को प्रार्थना-पत्र भेजा। इससे कांग्रेस को और समर्थन मिला। १९०१ में, कांग्रेस ने देखा कि मामला आगे बढ़ गया है और भारत-सरकार इस पर गौर कर रही है। परन्तु १९०८ तक कोई अमली तरक्की नहीं दिखाई दी; क्योंकि उसी साल कांग्रेस ने इस बात पर सन्तोष प्रकट किया कि बंगाल प्रान्त के लिए सरकार ने कुछ निश्चित रूप में इस बात को स्वीकार कर लिया है—लेकिन बारह महीने पूरे भी नहीं हो पाये थे कि कांग्रेस को अपनी निराशा का पता लग गया, क्योंकि 'अमली कार्रवाई इस दिशा में कुछ भी नहीं की गई।' इसके बाद लगातार दो अधिवेशनों में इसी निराशा का राग अलापा गया।

जूरी के अधिकार कम करने और न्याय व शासन-कार्य सम्मिलित रखने के पुराने घाव अभी हरे ही थे और उनमें सुधार होने के कोई आसार नजर नहीं आरहे थे, कि १८९७ में एक नया घाव और कर दिया गया। १८१८ का तीसरा रेग्युलेशन (बंगाल), १८१९ का दूसरा रेग्युलेशन (मदरास) और १८२७ का पच्चीसवां रेग्युलेशन (बम्बई) ये तीन पुराने कानून प्रकाश में आये, जिनके मातहत हर किसी को मुकदमा चलाये बगैर ही जलावतन किया जा सकता था। सरदार नातू-बन्धुओं पर इस शस्त्र का प्रयोग किया गया, जो १८९७ के कांग्रेस-अधिवेशन होने के वक्त ५ महीने से अधिक

समय से जेल में थे। कांग्रेस यह देखकर दंग रह गई, क्योंकि गिरफ़्तारी से पहले उनको वैसा नोटिस भी नहीं दिया गया था जो कि इन रेग्युलेशनों के मातहत भी देना जरूरी था।

१८९७ का साल हर तरह प्रतिक्रिया का साल था। लोकमान्य तिलक को राजद्रोह के अपराध में ऐसे लेख प्रकाशित करने पर सजा दी गई जो खुद उनके लिखे हुए नहीं थे। पूना में ताजीरी पुलिस तैनात की गई और कानून की राजद्रोह (दफा १२४ ए) तथा ख़तरे की झूठी अफवाहें फैलाने सम्बन्धी (दफा ५०५) धाराओं में ऐसा संशोधन किया गया जिससे वे और भी कठोर हो गईं। कांग्रेस ने सर्वसाधारण के अधिकारों पर किये जानेवाले इस आक्रमण का विधिवत् विरोध किया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपनी विशेष शैली से इसका ज़ोरदार विरोध करते हुए कहा था—

"अंग्रेजों ने अपने लिए मैग्नाचार्टा और हैबियस कार्पस प्राप्त किये हैं। इनके द्वारा उन्हें जो सुविधायें प्राप्त हैं वे सिद्धांत-रूप से उनके गौरवपूर्ण विधान में सम्मिलित हैं। पर, मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती कि, वह शासन-विधान हमारा पैदायशी हक है। हम ब्रिटिश प्रजा हैं, इसलिए ब्रिटिश-प्रजाजनों को जो विशेषाधिकार मिले हैं उनके हम भी हकदार हैं। इन अधिकारों को हमसे कौन छीन सकता है? हमने निश्चय कर लिया है और कांग्रेस इस बात का प्रण करेगी, आप और हम सब मिलकर इसके लिए एक गम्भीर निश्चय करेंगे। इस सभा-भवन से निकलकर उसकी ध्वनि भारत-भर की जनता में फैलेगी कि हम इस बात के लिए तुल गये हैं, इस बात पर जोर देने में हम किसी भी वैध उपाय को बाकी नहीं छोड़ेंगे, कि ईश्वर की छत्र-छाया में ब्रिटिश प्रजाजन की हैसियत से हमारे भी वेही अधिकार हैं जो अन्य ब्रिटिश प्रजाजनों के हैं और उनमें भी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अधिकार किसी तरह कम महत्वपूर्ण नहीं है।"

६. दायमी बन्दोबस्त, आबियाना, गरीबी और अकाल

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है, इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि कांग्रेस ने सबसे पहले नहीं तो भी अपनी शुरुआत में ही थोड़े-थोड़े समय के लिए होने वाले जमीन के बन्दोबस्त पर ध्यान दिया जिसमें सदा लगान-वृद्धि होती रहने से रैयत को बड़ी कठिनाई होती है। इलाहाबाद में (१८८८) होनेवाले कांग्रेस के चौथे अधिवेशन ने अपनी स्थायी (स्टैंडिंग) समिति को यह काम सौंपा कि वह इस सम्बन्ध में विचार करके १८८९ के अधिवेशन में अपनी रिपोर्ट पेश करे। १८८९ में बाबू वैकुण्ठनाथ सेन ने इसका उल्लेख करते हुए बताया कि १८६० में दुर्भिक्ष के कारणों की जांच के लिए जो कमीशन नियुक्त हुआ था उसने दायमी बन्दोबस्त की सिफारिश की थी, जिसे भारत-मन्त्री ने भी १८६२ के अपने खरीते में मंजूर कर लिया था। साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि कभी-कभी तो लगान में बढ़ाई हुई रकम गांव में पैदा होनेवाली फसल से भी बढ़ जाती है, जैसा कि मि० (बाद में सर) ऑकलैण्ड कॉल्विन के सामने आये एक मामले से मालूम पड़ता है। डा० बेसेण्ट ने अपनी पुस्तक में इस सम्बन्धी यह मनोरंजक उदाहरण दिया है—

"बर्त्तन में पानी तो उतना ही है जितना पहले था; परन्तु अब उसमें पानी निकालने के एक की जगह छः छेद हो गये हैं।

"हमारे पास पशुओं की कमी नहीं है, चरागाहों की और उनकी तन्दुरुस्ती के लिए आवश्यक नमक की भी बहुतायत है; परन्तु अब जङ्गलात के महकमे ने सारी जमीन पर कब्जा कर लिया है, जिससे हमारे पास चरागाह नहीं रहे और यदि भूखों मरते पशु चारे की जगह अनाज के खेत में भटक कर चले आते हैं तो उन्हें कांजीहौज में बन्द करके हम पर जुर्माना किया जाता है।

"अपने मकानों, हलों तथा हर तरह के खेती के सभी कामों के लिए हमारे पास लकड़ी की

बहुतायत है, लेकिन अब उस सब पर जंगल-विभाग का ताला पड़ा हुआ है। जहां हमने उसे बिला इजाजत छुआ नहीं कि हम सरकारी शिकंजे में आये नहीं। अब तो हमें एक भी लकड़ी चाहिए तो उसके लिए हफ्ते भर तक एक से दूसरे अफसर के पास भागना पड़ेगा और हर जगह खर्च-ही-खर्च करना होगा, तब कहीं जाकर वह मिलेगी।

"पहले हमारे पास हथियार थे, जिनसे खेती को नुकसान पहुंचानेवाले जंगली जानवरों को हम मार या भगा सकते थे, पर अब हमारे सामने ऐसा शस्त्र विधान है, जो विदेशों से यहां आनेवाले एक हब्शी को तो हर तरह के हथियार रखने की इजाजत देता है, पर जिन गरीब किसानों को अपने गुजारे के एकमात्र सहारे खेती की जंगली जानवरों से रक्षा करने के लिए उनकी ज़रूरत है उन्हें कसम खाने को भी एक हथियार नहीं मिलता।"

१८९२ में कांग्रेस ने लगान को निश्चित और स्थायी करने के लिए कहा, "जिससे कि देश की कृषि को उन्नत करने के लिए पूंजीपति और मजदूर मिलकर काम कर सकें," और कृषि-सम्बन्धी बैंकों की स्थापना के लिए प्रार्थना की। अगले साल भारतमंत्री द्वारा दिये गये उन वचनों की पूर्ति करने के लिए कहा गया, जो उन्होंने अपने १८६२ और १८६५ के खरीतों में दायमी बन्दोबस्त के लिए दिये थे! १८९६ में कांग्रेस ने अपने रुख को और भी नरम किया और प्रार्थना की कि एक के बाद दूसरा बन्दोबस्त करने में कम-से-कम ६० साल का फासला तो रक्खा ही जाय – अर्थात्, मियादी बन्दोबस्त ही हो तो वह भी कम-से-कम ६० साल के लिए तो हुआ ही करे। २२ दिसम्बर १९०० को भारत सरकार ने, अपने रेवेन्यू और कृषि विभाग के द्वारा, इस सम्बन्ध में अपना प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसके चौथे पैरेग्राफ पर प्रकट किये गये प्रान्तीय सरकारों के विचार प्रकाशित करने के लिए कांग्रेस ने कहा। १९०३ में कांग्रेस इससे भी आगे बढ़ी और लगान अधिक न लगाया जाय' इसके लिए कानूनी व अदालती रुकावटें लगाने के लिए कहा। १९०६ में कांग्रेस ने लॉर्ड कैनिंग और लार्ड रिपन की नीति से, जो उन्होंने क्रमशः १८६२ और १८८२ में लगान पर नियन्त्रण रखने के संबंध में प्रतिपादित की थी, १९०२ में एक प्रस्ताव-द्वारा घोषित लॉर्ड कर्जन की नीतिकी तुलना करके दोनों को परस्पर-विरोधी बताया और इस विचार का विरोध किया कि भारतवर्ष में जमीन का लगान 'कर' नहीं बल्कि 'किराया' है। १९०८ में भी इसी तरह का एक प्रस्ताव पास हुआ। इसके बाद निराश होकर अपने आप कांग्रेस ने इस विषय को छोड़ दिया।

इसके साथ ही इससे सम्बन्धित आबियाने (आबपाशी का कर), दुर्भिक्ष और उसके निवारक उपायों पर भी हम विचार कर लें तो अच्छा होगा। आबियाने के प्रश्न पर कांग्रेस ने केवल एक बार विचार किया और वह १८९४ में हुए मदरास के अधिवेशन में, जिस साल कि एक हुक्म निकालकर आबपाशी का कर ४) से बढ़ाकर ५) प्रति एकड़ कर दिया गया था। इन दिनों लगातार जो दुर्भिक्ष हुए उनका आंशिक कारण इन करों और महसूलों की लगातार वृद्धि होते जाना ही था। १८९६ के दुर्भिक्ष की परिस्थिति के कारण कांग्रेस को सरकार की आर्थिक नीति का सिंहावलोकन करना पड़ा! उसने सरकार पर अन्धाधुन्ध सैनिक-व्यय करने का दोष लगाया और दुर्भिक्षों को, उस खर्च की पूर्ति के लिए, लोगों पर लगाये जाने वाले अत्यधिक कर और भारी लगान का नतीजा बतलाया। दूसरा कारण सरकार की उपेक्षा से देशी और स्थानीय कला-कौशल एवं उद्योग-धन्धों का प्रायः नष्ट होजाना बतलाया गया। सरकार से कहा गया कि वह अकालरक्षक कोष बनाकर अपनी की हुई प्रतिज्ञा पूर्ण करे। दायमी बन्दोबस्त और कृषि-सम्बन्धी बैंकों तथा कला-कौशल सम्बन्धी स्कूलों की स्थापना को गरीबी दूर करने का असली उपाय बतलाया गया। इसके बाद ही एक अकाल-कमीशन बैठाया गया।

इसी बीच अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए ब्रिटेन और अमरीका से आई हुई उदारतापूर्ण रकमों के लिए धन्यवाद प्रकट करते हुए कांग्रेस ने १,००० पौण्ड की रकम लन्दन के लार्ड मेयर के पास भेजने का निश्चय किया, ताकि लन्दन के किसी प्रमुख स्थान में वह प्राप्त-सहायता के लिए भारतीयों की कृतज्ञता का सूचक एक स्मारक बना दें। यह १८९८ की बात है। लेकिन ऐसा करते हुए, कांग्रेस ने उन असली उपायों की उपेक्षा नहीं की जिनका वह प्रतिपादन करती आ रही थी; और १८९९ में एक बार फिर उसने सरकार पर जोर डाला कि सरकारी खर्च में कमी की जाय, स्थानीय और देशी उद्योग धन्धों की उन्नति की जाय, और जमीन का लगान तथा दूसरे करों में कमी की जाय। अगले साल सारे प्रश्न पर और भी व्यापक रूप से विचार किया गया और इस बात की मांग पेश की गई कि भारत-वासियों की आर्थिक अवस्था की जांच कराई जाय। इसके बाद के अधिवेशनों में हम इस विषय पर और कुछ नहीं पाते हैं, जिसका कारण शायद यह है कि बाद के वर्षों में कांग्रेस का दृष्टिकोण पहले से काफी बदल गया था।

७. कानून जंगलात

जंगलात के कानूनों से हुए नुकसान को अभी हमने अच्छी तरह नहीं समझा है। उनका मुकाबला तो लगान और नमक के कर से ही हो सकता है, जिन्होंने लोगों पर असह्य बोझ डाल दिया। जैसा कि १८९१ के नागपुर-अधिवेशन में मि० पाल पीटर पिल्ले ने बताया था, कलम की एक ही रगड़ में सरकार ने रैयत के स्थायी अधिकारों को नष्ट करके ग्रामीण समाज-व्यवस्था में उलट-पलट कर दी। जैसा कि डा० बेसेण्ट ने कहा, इस बात में सन्देह की बहुत कम गुंजाइश है कि देहातियों को ब्रिटिश-शासन के बखिलाफ जितना इन कानूनों ने किया उतना और किसी चीज ने नहीं। एक उत्तरी आर्काट के ही जिले में, १८९१ में, नौ महीने के अंदर २,००,००० पशु मर गये। रैयत को प्रकृति के द्वारा मिलने वाली सर्वोत्तम सौगातें इनके द्वारा उनसे छिन गईं। "आपकी जमीन है तो पहाड़ी पर, पर आप वहां के झाड़-झङ्खाड़ों जैसी जंगली चीजों का उपयोग नहीं कर सकते—यहां तक कि अपने पैदा किये हुए पेड़ों की पत्तियां तक आपकी नहीं हैं।"

१८९२–९३ में बड़ी नम्रताके साथ भारत-सरकार से प्रार्थना की गई कि जंगलात के कानूनों से जो कठिनाइयां उत्पन्न हुई हैं—खासकर दक्षिण-भारत और पंजाब के पहाड़ी इलाकों में, उनकी जांच कराई जाय। पंजाब-सरकार ने इस सम्बन्धी जो नियम बनाये वे इतने कठोर और अन्यायपूर्ण थे कि नवें अधिवेशन में पं० मेघनराम ने उन्हे 'अत्यन्त स्वेच्छाचारी और किसी भी सभ्य-सरकार के लिए कलंक-रूप' बतलाया। इनके अनुसार अगर कहीं आग लग जाती, फिर वह चाहे आकस्मिक हो या किसी दूसरे ने लगाई हो, तो उसके लिए वही व्यक्ति जिम्मेदार माना जाता जो उस जमीन का मालिक होता या उस समय उसपर काबिज होता, और उसके साथ उसी तरह का व्यवहार होता, मानों उसने जान-बूझकर कानून की परवाह न की हो। जिन पहाड़ी लोगों के लिए पहाड़ों पर पैदा होने वाली घास और लकड़ी ही सब-कुछ थी, उसीपर उनकी और उनके पशुओं की जिन्दगी का दारोमदार था, उनके लिए उसे लेने की मनाही कर दी गई। यहां तक कि जंगल में तापने के लिए वे आग भी नहीं जला सकते थे। इसके विरुद्ध हुए आन्दोलन के फलस्वरूप २० अक्तूबर १८९४ को भारत-सरकार ने नं० २२ एफ का एक गश्ती प्रस्ताव प्रकाशित किया, जिसमें जङ्गलों के प्रबन्ध में रैयतों की कृषि-सम्बन्धी आवश्यकता के सामने आर्थिक प्रश्नों को कम महत्व देने का सिद्धान्त स्वीकार किया था।

इस पर कांग्रेस ने अपने दसवें अधिवेशन में आग्रह किया कि "तीसरे और चौथे दर्जे के,

जंगलों में जलाने की लकड़ी, पशु चराने के अधिकार, पशुओं के खाने की चीजें, मकान और खेती के औज़ार बनाने के लिए सागौन और खाने की जङ्गली चीजें आदि—उचित प्रतिबन्धों के साथ—हर हालत में मुफ्त दी जायं: और जंगलों की सीमायें इस तरह निश्चित की जायं कि जिससे किसानों को इस महकमे के कर्मचारियों से तंग हुए बिना अपने जातीय (सामूहिक) अधिकारों का उपभोग करने की छूट रहे।" ग्यारहवें और चौदहवें अधिवेशनों में इस बात पर जोर दिया गया कि जंगलात के कानूनों का उद्देश्य जङ्गलों की आमदनी का जरिया बनाना नहीं बल्कि किसानों और उनके पशुओं के लिए उन्हें रक्षित रखना है। साथ ही इस बात की शिकायत भी की गई कि "भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारों ने जो नियम बनाये हैं उनके अनुसार महकमे जङ्गलात के कामोंसे देहाती लोगों पर बुरा असर पड़ता है और वे उस महकमे के छोटे कर्मचारियों के दबाव और तकलीफ में पड़ जाते हैं।" लेकिन १८९९ के बाद के अधिवेशनों में, जंगल-सम्बन्धी कोई प्रस्ताव पास नहीं हुआ। सिर्फ एक बड़ा प्रस्ताव बनाया जाता था जिसके एक अंश के रूप में इसका उल्लेख रहता था।

बात असल में यह हुई कि पुरानी शिकायतों के तो लोग आदी ही हो चुके थे, उनके अलावा जो नई शिकायत उनके सामने आई उसने उनका ध्यान अपनी ओर खींच लिया; फिर बीसवीं सदी की शुरुआत के साथ जो समस्या सामने आई वह पहले से बिलकुल भिन्न प्रकार की थी। अलावा इसके, बोअर-युद्ध और रूस-जापान की लड़ाई ने भी अवश्य ही कांग्रेस वालों के दृष्टि-कोण को बदला और जङ्गलात व आबियाने, नमक व आबकारी के छोटे प्रश्नों से हटाकर उनका ध्यान राष्ट्रीयता एवं स्व-शासन के बड़े प्रश्नों की ओर आकर्षित कर दिया।

८. व्यापार और उद्योग

ब्रिटिश-शासन में भारतवासियों की जो-जो समस्यायें हैं, उनके खास-खास मुद्दों को कांग्रेस के प्रारम्भिक राजनीतिज्ञों ने भली-भांति समझ तो लिया था; परन्तु वे समस्यायें ऐसी थीं कि उनको हल करने का रास्ता उन्हें हमेशा दिखाई न पड़ता था। यह बात वे जान गये थे कि लंकाशायर के मुकाबले में भारतीय हित छोटे और गौण समझे जाते थे; साथ ही यह बात भी उन्होंने बखूबी जान ली थी कि ग्रामीण दस्तकारियों और कला-कौशल को चाहे निश्चित रूप से नष्ट न किया जाता हो मगर उनके प्रति लापर्वाही जरूर की जाती है। श्री करन्दीकर ने, जो कि श्री केलकर और खापर्डे के साथ लोकमान्य तिलक के एक पक्के अनुयायी थे, बम्बई में हुए कांग्रेस के बीसवें अधिवेशन (१९०४) में इस विषय पर मि० आर्थर बालफोर के आयर्लैंण्ड पर दिये एक भाषण का नीचे लिखा अंश उद्धृत किया था—

"एक-के-बाद-एक उसके हरेक उद्योग का या तो शुरुआत में ही गला घोंट दिया गया, या उसे दूसरों (विदेशियों) के हाथ में सौंप दिया गया, अथवा इंग्लैण्ड वालों के हित में उसे नियन्त्रित कर दिया गया; और जब तक कि सम्पत्ति के तमाम स्रोतों को सीमेण्ट लगाकर बन्द नहीं कर दिया गया और सारा राष्ट्र खेती के काम करने के लिए मजबूर न हो गया, तब तक यही क्रम जारी रहा।"

इससे अधिक दिलचस्प और विचारपूर्ण वह जवाब है जो मुसलमानी-राज से ब्रिटिश-राज की तुलना करते हुए एक राजनीतिज्ञ ने दिया था—"रक्षा, शिक्षा और रेलों के लिहाज से तो अंग्रेजी राज्य अच्छा है; मगर हिन्दुस्तान की समृद्धि के लिहाज से मुसलमानी राज्य उससे अच्छा था; क्योंकि मुसलमान हिन्दुस्तान में आकर हिन्दुस्तानी बन गये थे जिससे हिन्दुस्तान की दौलत हिन्दुस्तान में ही रही, लेकिन अंग्रेज लोग यहां का धन देश से बाहर ले जाते हैं।" यही बात कांग्रेस के नवें अधिवेशन में राजा रामपालसिंह ने अपने मलाकिया ढङ्ग पर, इस प्रकार कही थी, कि "अंग्रेज सिविलियनों के

तो हिन्दुस्तान को मौज-मजा करने का अपना शिकारगाह बना रक्खा है।"

१८९४ में कांग्रेस ने ब्रिटिश-भारत में तैयार होने वाले सूती माल पर कर लगाये जाने का विरोध किया और अपना यह निश्चित विश्वास प्रकट किया कि "इस कर का निश्चय करते वक्त लंकाशायर के हितों के सामने भारतीय-हितों का बलिदान किया गया है।" इसमें सन्देह नहीं कि अन्यायी कानून के आगे सिर झुकाकर उसकी सख्तियों को कम करने का प्रयत्न करने की मनोवृत्ति देश में सदा रही है। अतः इस विषय में भी कांग्रेस ने कहा —

"यदि इस तरह कर लगाने की व्यवस्था करने वाला बिल कानून बन जाय तो, उस हालत में, कांग्रेस यह प्रार्थना करती है कि भारत-सरकार बिना विलम्ब के बिल के अनुसार मिले हुए अपने उन अधिकारों से काम लेने की भारत-मन्त्री से अनुमति ले जिसके द्वारा २० से २४ नवम्बर तक का सूती माल इस कानून के क्षेत्र से बाहर हो जाता है।"

ग्यारहवें अधिवेशन में घोषणा की गई कि २० नम्बर से नीचे के भारतीय सूती माल को कर से मुक्त रखने पर लंकाशायर वालों ने जो आपत्ति की है वह बे-बुनियाद है। १९०६ में, दादाभाई नौरोजी के सभापतित्व में, कलकत्ता में कांग्रेस का जो प्रसिद्ध अधिवेशन हुआ उसमें पं० मदनमोहन मालवीय ने इस रहस्य का उद्घाटन किया कि हमारे उद्योग-धन्धों के बारे में हमें सफलता क्यों नहीं मिलती। उन्होंने कहा, कि "हमारे देश का कच्चा माल देश से बाहर चला जाता है और विदेशों से तैयार होकर उसका माल हमारे पास आता है। अगर हम स्वतन्त्र होते तो ऐसा न होने देते। उस हालत में हम भी उसी प्रकार अपने उद्योगों का संरक्षण करते, जिस प्रकार कि सब देश अपने उद्योगों की शैशवावस्था में करते हैं।"

लो० तिलक ने इस बात पर अफसोस जाहिर किया कि विदेशी माल की सबसे ज्यादा खपत मध्य-श्रेणी वालों में ही है। उन्होंने कहा, "हमारे अन्दर स्वावलम्बन, दृढ़-निश्चय और त्याग की भावना होनी चाहिए।" स्वदेशी की भावना उत्पन्न होने पर, और १९०६ तथा उसके बाद के वर्षों में बहिष्कार-आन्दोलन से उसको प्रोत्साहन मिलने के फलस्वरूप, भारतवर्ष का ध्यान भारतीय उद्योग-धन्धों के पुनर्जीवन की ओर खिंचा। १९१० में श्री सी० वाई० चिन्तामणि ने स्वदेशी का प्रस्ताव पेश करते हुए श्री रानडे का नीचे लिखा उद्धरण दिया—

"भारतवर्ष इंग्लैण्ड का ऐसा बगीचा समझा जाने लगा है, जो कच्चा माल पैदा करके ब्रिटिश एजेण्टों के मार्फत ब्रिटिश जहाजों में इसलिए बाहर भेज दे कि ब्रिटिश मजदूरों और ब्रिटिश पूंजी से उसका पक्का माल तैयार हो और ब्रिटिश एजेण्टों द्वारा भारत के ब्रिटिश व्यापारियों के पास उसे भेज दिया जाय।"

श्री रानडे बम्बई-हाईकोर्ट के जज थे और बड़े भारी अर्थ-शास्त्री एवं प्रमुख समाज-सुधारक थे। कई साल तक वे कांग्रेस की असली शक्ति रहे हैं, और खास कर आर्थिक एवं औद्योगिक मामलों में तो कांग्रेस वालों के लिए वेही एक स्फूर्ति के स्रोत थे।

गांव और उनके उद्योग-धन्धों एवं खेती की बरबादी की ओर भी भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान गया। १८९८ में ही पं० मदनमोहन मालवीय ने यह प्रस्ताव रक्खा था, कि "सरकार को देशी उद्योग-धन्धों एवं कला-कौशल की उन्नति करनी चाहिए।" और यह बात तो इससे भी पहले (१८९१ में ही) स्वीकार कर ली गई थी कि जंगलात के कानूनों ने गांव वालों को बड़ी कठिनाइयों में डाल दिया है। सारे ग्रामीण-समाज में उथल-पुथल हो गई है, गांव की कारीगरी नष्ट हो गई है और पशु मर रहे हैं—३ लाख तो सितम्बर १८९१ में ही मर चुके थे। १८९१ की नागपुर-कांग्रेस में, नई

में भाषण करते हुए, ला० मुरलीधर ने इस सम्बन्ध में श्रोताओं से बड़ी जोरदार अपील की थी।

कांग्रेस के नवें अधिवेशन में (१८९३) पण्डित मदनमोहन मालवीय ने अपनी स्वाभाविक शैली में कहा था—

"आपके जुलाहे कहां हैं? वे लोग कहां हैं जिनका निर्वाह भिन्न-भिन्न उद्योग-धन्धों एवं कारीगरियों से होता था! और जो कारीगर साल-दर-साल बड़ी-बड़ी तादाद में इंग्लैण्ड तथा दूसरे यूरोपीय देशों को भेजे जाते थे, वे कहां चले गये? ये सब भूतकाल की बातें हो गईं। आज तो यहां बैठा हुआ लगभग प्रत्येक व्यक्ति ब्रिटेन के बने कपड़ों से ढंका हुआ है और जहां भी कहीं आप जायं, सब जगह विलायती-ही-विलायती माल आप को दिखाई देगा। लोगों के पास सिवा इसके कोई चारा नहीं रहा है कि खेती-बाड़ी के द्वारा बरायनाम अपना गुजारा करें, या जो नाम-मात्र का व्यापार बाकी रहा है उससे टका-धेला पैदा कर लें। सरकारी नौकरियों और व्यापार में पचास साल पहले हमें जो कुछ मिलता था अब उसका सौवां हिस्सा भी हमारे देशवासियों को नसीब नहीं होता। ऐसी हालत में भला देश कैसे सुखी हो सकता है?"

यह विषय कितना महत्वपूर्ण रहा है, यह इस बात से स्पष्ट है कि सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर ने हाईकोर्ट की जजी से अवकाश ग्रहण करने के बाद १९१४ में 'गांवों के पुनर्जीवन और कर्जा-संस्थाओं की आवश्यकता' पर बहुत जोर दिया था। १८९९ में ला० लाजपतराय की प्रेरणा पर कांग्रेस ने आधा दिन शिक्षा एवं उद्योग-धन्धों के विचार में लगाया और इसके लिए एक उपसमिति कायम की। इस सब कार्रवाई के फलस्वरूप औद्योगिक प्रदर्शनी की शुरूआत हुई, जो सबसे पहले कलकत्ता कांग्रेस के साथ १९०१ में हुई। इस के बाद क्रमशः इसमें उन्नति होती गई और अब खद्दर एवं स्वदेशी-प्रदर्शनी के रूप में यह तब्दील हो गई है। इसमें सन्देह नहीं कि उद्योग-धन्धों की ओर कांग्रेस का ध्यान १८९४ में भारतीय सूती माल पर कर लगाये जाने के कारण ही आकर्षित हुआ, जिसका उसी समय उसने विरोध किया, लेकिन हम देखते हैं कि स्वयं गवर्नर-जनरल-द्वारा उसका विरोध किये जाने पर भी वह उठाया नहीं गया। उसे उठाना तो दूर, उलटे लार्ड सेल्सबरी ने यह निर्देश किया बताते हैं कि "भारतीय माल की प्रतिस्पर्द्धा से ब्रिटिश-माल को बचाने के लिए उपाय किये जायं।" गांवों की गरीबी का जिक्र करते हुए बार-बार जो यह कहा जाता रहा है कि ४ करोड़ व्यक्तियों को रोज एक वक्त खाना नसीब होता है, यह सिर्फ खयाली बात नहीं है। श्री वाचा और मुधोलकर ने बड़ी चिन्ता के साथ गोरे शासकों के उद्धरणों से इस बात को सिद्ध कर दिया है। सर चार्ल्स ईलियट के कथनानुसार, "आधे किसानों को साल की शुरुआत से अन्त तक यह भी पता नहीं होता कि पेट भर कर खाना किसे कहते हैं।" लगान का यह हाल था कि एक छोटे से जिले में १८९१ में ६६ फी सदी बढ़ा, दूसरे में ९९ फी सदी और तीसरे में १६६ फी सदी हो गया; और कुछ गांवों में तो २०० से १५०० फी सदी तक बढ़ा, जब कि इसके साथ-साथ फौजी खर्च भी बेशुमार बढ़ता रहा है।

जर्मनी में फी सैनिक १४५ रु० सालाना खर्च पड़ता है, फ्रांस में १८५ रु० और इंग्लैण्ड में २८५ रु०, परन्तु हिन्दुस्तान में प्रत्येक अंग्रेज सैनिक पर ७७५ रु० सालाना खर्च किया जाता है; और यह उस हालत में जब कि फी आदमी की औसत-आमदनी इंग्लैण्ड में ४२ पौण्ड, फ्रांस में २३ पौण्ड और जर्मनी में १८ पौंड है और हिन्दुस्तान में सिर्फ १ ही पौंड है। ये अंक १८९१ के हैं।

अकालों के बारे में बार-बार प्रस्ताव पास हुए हैं और मजदूरी के सिलसिले में सजा देने के कानून को उठा देने के लिए १८८७ में ही प्रस्ताव किया जा चुका है।

६. स्वदेशी, वहिष्कार और स्वराज्य

१९०६ के बाद जो नवीन जागृति और नया तेज देश में इस छोर से उस छोर तक फैल गया था उसका मूल-कारण वंग-भंग था, हालांकि लार्ड कर्जन के प्रतिगामी शासन के कारण वह जागृति इस वंग-भंग की घटना के पहले से भी भीतर-ही-भीतर गर्भ में बढ़ रही थी। पुण्य-नगरी काशी में जब कांग्रेस का २१ वां अधिवेशन १९०५ ईसवी में हुआ तब उसमें वंग-भंग पर विधिवत् विरोध प्रदर्शित किया गया और कहा गया कि वह रद कर दिया जाय। कम-से-कम उसमें ऐसा संशोधन जरूर कर दिया जाय जिससे सारा बंगाली-समाज एक शासन में रह सके। परन्तु वंग-भंग-आन्दोलन को दवाने के लिए जो दमनकारी उपाय काम में लाये गये उनके विषय में इस कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास किया गया वह कुछ गोल-मोल था; क्योंकि एक ओर जहां, उसके द्वारा बंगाल में जारी किये गये दमनकारी उपायों का जोरदार और तत्परता-पूर्वक विरोध किया गया, तहां साथ ही उसमें एक टुकड़ा यह भी जोड़ दिया गया कि "जब बंगाल के लोगों को मजबूर होकर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना पड़ा और बङ्गाल के लोगों की प्रार्थना और विरोध का खयाल न करके भारत-सरकार बङ्गाल का विच्छेद करने पर जिस तरह तुली थी, उसे ब्रिटिश लोगों के ध्यान में लाने का, जब एक मात्र यही वैध उपाय रह गया था..............।" इससे यह साफ नहीं मालूम होता, और शायद यह साफ करने का इरादा भी न हो कि कांग्रेस विदेशी माल के बहिष्कार को पसन्द करती थी या नहीं। एक किस्म की राय भर दे दी गई, जिससे यह मानी निकलते थे कि लोगों के पास शायद दूसरा उचित उपाय बाकी नहीं रह गया था। यह तो जाहिर था कि राष्ट्रीय दल के लोगों को बड़ी आपत्ति होती, अगर कोई ऐसा प्रस्ताव पास किया जाता जो इससे भी कम स्पष्ट होता। परन्तु जैसा-कुछ प्रस्ताव हुआ, उसका समर्थन करते हुए लाला लाजपतराय ने एक बुलन्द आवाज उठाई; "हमने अब गिड़गिड़ाने की नीति छोड़ दी है। हम उस साम्राज्य की प्रजा हैं जहां लोग उस पद को प्राप्त करने के लिए, जो उनका हक है, लड़-झगड़ रहे हैं।" १९०५ में जिस साहस का अभाव था वह १९०६ में आ गया। वंग-भंग पर एक प्रस्ताव करने के बाद कांग्रेस ने वहिष्कार-आन्दोलन का भी समर्थन किया। "यह देखते हुए, कि देश के शासन में यहां के लोगों का कुछ भी हाथ नहीं है और वे सरकार से जो प्रर्थनायें करते हैं उन पर उचित रूप से ध्यान नहीं दिया जाता है, इस कांग्रेस की राय है कि वंग-विच्छेद के विरोध में उस प्रान्त में जो वहिष्कार का आन्दोलन चलाया गया वह न्याय-संगत था और है।" इसके वाद कांग्रेस ने कुछ नुकसान सहकर भी देशी उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देने का प्रस्ताव पास किया। बस, गाड़ी यहीं रुक गई। स्व-शासन की कल्पना कुछ शासन-सुधार-विषयक सूचनाओं से आगे नहीं बढ़ी; जैसे—परीक्षाओंका भारत और इंग्लैण्ड में साथ-साथ होना, कौंसिलों का विस्तार करना और उनमें लोक-प्रतिनिधियों की संख्या का बढ़ाया जाना, भारत-मन्त्री की तथा भारत की कार्यकारिणी कौंसिलों में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति की जाना। बस, १९०६ में भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं का खात्मा इसीमें हो जाता था। दूसरे साल सूरत में कांग्रेस के दो टुकड़े हो गये और नरम-दल-वाली कांग्रेस ने तो आगे के सालों में बहिष्कार को कतई छोड़ दिया, सिर्फ स्वदेशी को कायम रक्खा; और स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव उतरते-उतरते सिर्फ मिण्टो-मॉर्ले सुधार-योजना के परीक्षण तक मर्यादित रह गया। १९१० में नये वाइसराय लॉर्ड हार्डिंञ्ज आये। उसी वर्ष कांग्रेस ने राजनैतिक कैदियों को छोड़ने की अपील उनसे की। दूसरे साल फिर ऐसी अपील की गई। परन्तु १९१४ में जब मदरास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो उसने साहस करके सरकार से यह मतालवा किया, कि "तारीख २५ अगस्त सन् १९११ के खरीते में प्रान्तीय पूर्णाधिकार के

सम्बन्ध में जो वचन दिया गया है उसे पूरा करे, और भारतवर्ष को संघ-साम्राज्य का एक अंग बनाने और उस हैसियत के सम्पूर्ण अधिकार देने के लिए जो कार्य आवश्यक हों वे सब किये जायं।"

१०. साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व

कोई यह खयाल करेंगे कि यह साम्प्रदायिक या जातिगत प्रतिनिधित्व का प्रश्न आजकल ही खड़ा हो गया है। नहीं, सर ऑकलैण्ड कॉलविन (१८८८) जब संयुक्तप्रांत के लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर थे तब से इसकी बुनियाद पड़ चुकी है। उस समय यह दिखाने की कोशिश की गई थी कि मुसलमान कांग्रेस के विरोधी हैं। यहां तक कि ह्यूम साहब ने भी इसे महत्वपूर्ण समझा और इसके विषय में एक लम्बा जवाब उन्होंने सर ऑकलैण्ड को भेजा। इसमें कोई शक नहीं कि कांग्रेस के पहले दो-तीन अधिवेशनों की सफलता ने नौकरशाही के मन में हलचल मचा दी थी, जिसके कि मुख का काम लेफ्टिनेण्ट गवर्नर महोदय ने कर दिया। मुसलमानों पर भी इस विचार का असर तुरन्त ही हुए बिना न रहा। उन्हें सरकारी अधिकारियों का बजुर्गाना रवैया जरूर अखरा होगा, जैसा कि एक घटना से जाहिर होता है। कांग्रेस का चौथा अधिवेशन इलाहाबाद में यूरोपियन लोगों का विरोध होते हुए भी हुआ। उसमें शेख रजाहुसेनखां ने मि० यूल के सभापतित्व के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए कांग्रेस के हक में एक फतवा पेश किया, जो कि लखनऊ के सुन्नियों के शम्सुल्उलमा से प्राप्त किया गया था। उन्होंने धड़ल्ले के साथ कहा, कि "मुसलमान नहीं बल्कि उनके मालिक—सरकारी हुक्काम—हैं, जो कांग्रेस के मुखालिफ हैं।"

फिर भी वास्तव में लॉर्ड मिण्टो के जमाने में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के खयाल ने मूर्त-रूप धारण किया। हां, इससे पहले लार्ड कर्जन ने जरूर जान-बूझकर बंग-भंग के द्वारा और पूर्वी बंगाल और आसाम को अलग प्रान्त बनाकर, जिसमें कि मुसलमानों का बहुमत हो, यह कलुषित जाति-गत भावना जाग्रत की। यद्यपि लॉर्ड मिण्टो उस घोड़े को आराम पहुंचाने के लिए भेजे गये थे जिस पर लॉर्ड कर्जन ७ साल तक सवारी कसकर उसका दम करीब-करीब निकाल चुके थे; फिर भी जाति-गत भेद और अलगाव की वह काठी, जिस पर कर्जन सवार रहते थे, घोड़े की पीठ पर ज्यों-की-त्यों कायम रही। मिण्टो की शासन-सुधार-योजना में मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन-संघ की तजवीज की गई थी, परन्तु साथ ही संयुक्त-निर्वाचन में भी राय देने का उनका हक ज्यों-का-त्यों कायम रक्खा गया था। संकीर्ण बुद्धि के राजनीतिज्ञों ने उस समय यह बताया कि बंगाल, आसाम और पंजाब की छोटी हिन्दू जातियों को ऐसा विशेषाधिकार नहीं दिया गया। परन्तु यह तो असल में सही रास्ता छोड़कर भटक जाना था। जो बड़ी अजीब बात थी वह तो यह कि भिन्न-भिन्न जातियों के लिए भिन्न-भिन्न मताधिकार रक्खा गया था। एक मुसलमान तीन हजार रुपये साल की आमदनी वाला जहां मतदाता हो सकता था वहां एक गैर-मुसलिम तीन लाख सालाना आमदनी वाला हो सकता था। मुसलमान ग्रेजुएट को मतदाता बनने के लिए यह काफी था कि उसे ग्रेजुएट हुए तीन साल हो जायं; परन्तु गैर-मुस्लिम के लिए तीस साल हो जाना जरूरी था। जरा गौर तो कीजिए, एक तरफ तीन हजार रुपये और दूसरी तरफ तीन लाख रुपये! एक तरफ तीन साल और दूसरी तरफ तीस साल! जब तक कोई सार्वजनिक बालिग मताधिकार नहीं मिल जाता है तब तक हम अक्सर ऐसे मतावलम्बियों की प्रतिध्वनि सुना करते हैं। मुसलमान दोनों जातियों के लिए मताधिकार के भिन्न-भिन्न स्टैण्डर्ड चाहते हैं जिनसे कि मतदाताओं में ठीक-ठीक अनुपात कायम रहे।

१९१० में हालत बहुत नाजुक हो गई। सर डब्ल्यू० एन० वेडरबर्न कांग्रेस के सभापति हुए थे। आपने यह चाहा था कि हिन्दू और मुसलमानों की एक परिषद् की जाय, जिससे इस जातिगत

प्रश्न पर मेल हो जाय। उस समय म्युनिसिपैलिटियों और लोकल-बोर्डों में पृथक् निर्वाचन का तरीका जारी होने की बात चल रही थी। युक्तप्रांत में, जहां कि पृथक् निर्वाचन नहीं था, यह पाया गया कि संयुक्त निर्वाचन में मुसलमानों की संख्या कुल आबादी की $\frac{1}{6}$ होते हुए भी जिला-बोर्डों में मुसलमान १८९ और हिन्दू ४४५ चुने गये और म्युनिसिपैलिटियों में मुसलमान ३१० और हिन्दू ५६२। यहां तक कि सर जॉन ह्यूवेट जैसा प्रतिगामी संयुक्तप्रांत का लेफ्टिनेण्ट गवर्नर भी उस प्रान्त में दोनों जातियों के मेल-मिलाप में खलल डालने के हक में नहीं था। हां, श्रीयुत जिन्ना ने जरूर स्थानिक संस्थाओं में पृथक् निर्वाचन प्रचलित करने की निन्दा की थी। एक 'वर्न' सरक्यूलर निकला था जोकि स्थानिक संस्थाओं में जातिगत प्रतिनिधित्व के पक्ष में था। उसमें यह प्रतिपादन किया गया था कि मुसलमानों को पृथक् निर्वाचन के अलावा संयुक्त निर्वाचन में भी राय देने की सुविधा होनी चाहिए; क्योंकि इससे दोनों जातियों में अच्छे ताल्लुकात कायम रखने में मदद मिलेगी। इस पर पं० बिशन-नारायण दर ने, जो कि १९११ में कलकत्ता-कांग्रेस के सभापति थे, कहा था कि "मैं इतना ही कहूंगा कि हमारी एकता बढ़ाने की यह उत्कण्ठा, हमारे भोलेपन से, बहुत भारी हुण्डी लिखवा लेना है।" उन्होंने यह भी बताया, कि "जब सर डब्ल्यू० एम० वेडरबर्न और सर आगा खां की सलाह के मुताबिक दोनों जातियों के प्रतिनिधि एक साल पहले इलाहाबाद में मिलने वाले थे, इस उद्देश से कि आपस के मतभेद मिटा दिये जायं, तब एक गोरे अखबार ने, जो कि सिविल सर्विस वालों का पत्र समझा जाता है, लिखा था कि 'ये लोग क्यों इन दोनों जातियों को मिलाना चाहते हैं, सिवा इसके कि दोनों जातियों को मिलाकर सरकार की मुखालिफत की जाय?' उसका यह वाक्य भारत की राज-नैतिक स्थिति पर एक भयानक प्रकाश डालता है।"

परन्तु इसके थोड़े ही दिनों के बाद दुनिया की हालतों में एक भारी परिवर्तन हो गया। बाल-कन-राज्य जो एक या दो सदी से यूरोप के मुर्गों के लड़ने का अखाड़ा बना हुआ था, फिर एक बार नई लड़ाइयों का मैदान बन गया। तब १९१२ में नवाब सय्यद मुहम्मदबहादुर ने, जो करांची-कांग्रेस (१९१३) के सभापति थे, "यूरोप में तुर्क-साम्राज्य की नींव उखाड़ने और ईरान के दम घोटने के प्रयत्नों" की ओर ध्यान दिलाया था। तुर्की साम्राज्य को लगे उस धक्के को जिस दुःख के साथ मुस-लमानों ने महसूस किया उसी को उन्होंने वहां प्रदर्शित किया। अन्त में उन्होंने हिन्दुओं और मुसलमानों को अपनी मातृभूमि के लिए कन्धे-से-कन्धा लड़ाकर काम करने पर बहुत जोर दिया। यह हमें १९२१ के खिलाफत-आन्दोलन और हिन्दू-मुसलमान-सम्बन्धों पर हुए उसके असर की याद दिलाता है। यूरोप के रोगी (१९ वीं सदी तक के तुर्किस्तान को यही कहा जाता था) ने अब तक हिन्दुस्तान की राजनीति की गति-विधि को बनाने में बड़ा भाग लिया है। ये स्थितियां थीं जिनमें १९१३ की करांची-कांग्रेस में हिन्दू और मुसलमानों ने अपने भेदभाव मिटा दिये और मुस्लिम-लीग के इस विचार को, कि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारतवासियों को स्व-शासन दिया जाय, पसन्द किया और हिन्दू-मुसलमानों के बीच मेल एवं सहयोग का भाव बढ़ाने के मुस्लिम-लीग के कथन को पसन्द किया। कांग्रेस ने मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित इस आशा का भी स्वागत किया कि भिन्न-भिन्न जातियों के नेता राष्ट्रीय हित के तमाम मसलों पर मिलकर एक साथ काम करने का रास्ता निकालने की हर तरह कोशिश करें और सच्चे दिल से हर जाति व तबके के लोगों से प्रार्थना की कि वे इस उद्देश्य की पूर्ति में हर तरह सहायता करें।

उस समय कांग्रेस वालों के मनोभाव कैसे ऊंचे उठ रहे थे, इसका पता उन वक्ताओं के भाषणों की बढ़ी-चढ़ी भाषा से लगता है जो करांची में (१९१३) इस विषय के प्रस्ताव पर बोले थे।

स्वर्गीय भूपेन्द्रनाथ वसु के भाषण के कुछ अंश हम यहां उद्धृत करते हैं—"हम हिन्दू-मुसलमान सबको अपना ध्यान एक ही ओर— संयुक्त आदर्श की ओर— लगाना चाहिए, क्योंकि आज का हिंदुस्तान न तो हिंदुओं का है, न मुसलमानों का, और न अधगोरों का। तब यूरोपियनों का तो और भी दूर। बल्कि यह वह हिंदुस्तान है, जिसमें हम सब हिस्सा रखते हैं। अगर पिछले दिनों कोई गलत-फहमियां हुई हों, तो हमें उन्हें भूल जाना चाहिए। भविष्य-काल का भारत अब से ज्यादा बलवान, ज्यादा शरीफ, ज्यादा महान्, ज्यादा ऊंचा, होगा; नहीं नहीं, वह तो उस भारतवर्षसे भी कहीं उज्ज्वल होगा जिसे अशोक ने अपने राज्य के सम्पूर्ण गौरव में अनुभव किया था और अकबर ने अपने मनो-राज्य में जैसा कुछ चित्र भारत का खींच रक्खा था उससे भी कहीं बेहतर वह भारत होगा।" श्रीयुत् वाचा ने कहा था, "कांग्रेस नये शुभ जीवन में प्रवेश कर रही है और उसके ग्रह भी मङ्गल ही दिखाई देते हैं। इससे हमें विश्वास है कि हम अवश्य नवीन सफलतायें प्राप्त करेंगे।" परन्तु यह सब होने पर भी जातिगत प्रतिनिधित्व ज्यों-का-त्यों बना रहा।

एक बार जहां घाव हुआ कि फिर उसमें से मवाद बहता ही रहा। अगर हिन्दुओं ने चुपचाप और राजी-रजामन्दी से मुसलमानों को जो-कुछ चाहते थे वह दे दिया होता तो यह प्रश्न कभी का हल होगया होता। हां, यह सच है कि जैसे-जैसे खाना खाते जायंगे वैसे-वैसे भूख बढ़ती जायगी; परन्तु उसके साथ यह भी सत्य है कि ज्यों-ज्यों ज्यादा खायंगे त्यों त्यों भूख मरती जायगी। जातिगत प्रति-निधित्व सम्बन्धी मिण्टो-मार्ले-योजना हिंदुस्तान के मत्थे जबरदस्ती मढ़ दी गई थी। लोगों से इस बारे में कोई सलाह मशविरा नहीं लिया गया था। इसलिए १९१६ में जब सुधारों के नये टुकड़े देने की तजवीज चल रही थी, देश ने सोचा कि हिन्दू मुसलमानों का हृदय परस्पर मिल जाना चाहिए और इसके लिए कांग्रेस और मुस्लिम लीग दोनों के प्रतिनिधि (नवम्बर १९१६) कलकत्ते में इण्डियन एसोसियेशन के स्थान पर मिले— इस उद्देश्य से कि १९१५ में कांग्रेस ने जो आदेश दिया था उसके अनुसार आपसी समझौते और रजामन्दी से प्रतिनिधित्व की योजना बनाई जाय। इसी समय मुस्लिम-लीग ने स्व-शासन को अपना उद्देश्य बना लिया था। आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की भावनायें जगह-जगह फैल रही थीं। यूरोपीय युद्ध भी कुछ छोटे और पिछड़े हुए राष्ट्रों पर इस सिद्धांत को लागू करने के लिए ही लड़ा जा रहा था। ऐसी दशा में कलकत्ते में जो बातचीत होरही थी उसके लिए वातावरण अनुकूल था। परन्तु कांग्रेस के हल्के में जो बड़े-बूढ़े लोग थे वे अपनी तरफ से कुछ करने में आगा-पीछा करते थे। फलतः यह काम युवकों पर आ पड़ा। शायद उम्र में सबसे छोटे लोगों ने; जो उस समय मौजूद थे, आगे कदम बढ़ाया। सर सैयद अहमद ने कहा था— 'हिन्दू और मुसलमान हिन्दुस्तान की दो आंखें हैं और दो में से एक भी न हो तो मां का चेहरा बदसूरत हो जायगा।" शीघ्र ही देन-लेन की भावना की विजय हुई। जिन प्रांतों की संख्या १५ फीसदी से कम हो उनमें कम-से कम १५ फीसदी प्रतिनिधि कौंसिल में रखना तय हुआ। अब रह गये पंजाब और बंगाल। हमेशा की तरह इनका मामला है तो पेचीदा, परन्तु १९१६ में लखनऊ में सुलझाया गया। उस समय दिसम्बर में लखनऊ में जो नुसखा तजवीज हुआ उसे मि० मान्टेगु ने ज्यों-का-त्यों मंजूर करके माण्ट फोर्ड योजना में सम्मिलित कर लिया। जब दो में से कोई एक जाति खुद ही मित्र भाव से दूसरी जाति को कुछ रियायत दे देती है तो आपस के सम्बन्ध अच्छे बनाने में वह ज्यादा कारगर साबित होती है—बजाय इस खयाल के कि कोई जाति तबतक महफूज नहीं रह सकती जबतक कि कोई तीसरा उसकी सहायता के लिए मौजूद न हो। लेकिन यह ध्यान में रहे कि पृथक् जातिगत निर्वाचन अटल ही रहा। जातिगत और आम निर्वाचन अनन्य-साधारण बन बैठे और इसीतरह उम्मीदवार होने का हक भी उत्तरोत्तर अनन्य-साधारण होगया।

११. प्रवासी भारतवासी

जहां भारत में भारतीयों की स्थिति काफी खराब थी, तहां दक्षिण-अफ्रीका-स्थित-भारतीयों की हालत बद से बदतर हो रही थी। १८९६ ई० में यह कानून बना कि नेटाल, दक्षिण-अफ्रीका, के शर्तबन्द प्रवासी अपने इकरारनामे की अवधि के समाप्त होने पर या तो अपनी गुलामी को फिर नये सिरे से शुरू करावें—कुली बनने का इकरारनामा फिर से भरें, या अपनी वार्षिक आय के आधे भाग के बराबर मनुष्य-कर (पॉल टैक्स) दें। इस प्रसंग पर डा० मुंजे के शब्द दोहराना असंगत न होगा, जो उन्होंने लगभग १९०३ में बोअर-युद्ध के सिलसिले में एम्बुलेंसकोर के साथ की गई अफ्रीका-यात्रा के बाद वहां से आकर कहे थे—"हमारे शासक हमें मनुष्य नहीं समझते।" इसी प्रसंग में श्री वी० एन० शर्मा ने इंग्लैण्ड को यह चेतावनी दी थी कि साम्राज्य में एक जाति की उन्नति या प्रभुता स्थायी नहीं रह सकती। उन्होंने काशी की २१ वीं कांग्रेस (१९०५) में कहा था—"यदि हम अपने प्रति सच्चे रहें तो बड़े-बड़े दार्शनिकों, महान् राजनीतिज्ञों और वीरवर योद्धाओं को उत्पन्न करनेवाली जाति छोटी छोटी बातों के लिए दूसरी जाति के पांव नहीं पड़ सकती।"

अखिल भारतीय कांग्रेस के सामने पहले श्री मदनजीत ने दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न उपस्थित किया था। इसमें सन्देह नहीं कि और भी अनेक ऐसे भारतीय मित्र थे, जो समय समय पर अफ्रीका जाते थे और वहां के पूरे समाचार यहां की जनता तक पहुंचाते थे, लेकिन श्री मदनजीत प्रतिवर्ष इसी उद्देश्य से आते थे। अपने नारंगी कपड़ों, ठिगने कद तथा लम्बी लाठी के कारण वे कांग्रेस में कभी छिपे न रह सकते थे। हाल ही में बुढ़ापे में हुई उनकी मृत्यु ने राष्ट्रीय सभा से एक परिचित व्यक्ति को उठा दिया है। दक्षिण अफ्रीका-सम्बन्धी अयोग्यताओं का वस्तुतः पहला विरोध १८९४ में हुआ, जब कि अध्यक्ष ने इस आशय का प्रस्ताव पेश किया कि औपनिवेशिक-सरकार का वह बिल रद कर दिया जाय, जिसमें भारतीयों को मताधिकार नहीं दिया गया था। इसके बाद हर कांग्रेस में दक्षिण अफ्रीका का प्रश्न अधिकाधिक महत्व ग्रहण करता गया और हर साल ही यह आवाज उठाई जाती कि "हमें किस तरह बिना पास के यात्रा करने की और ९ बजे रात के बाद घूमने तक की आजादी नहीं है, किस तरह हमें ट्रांसवाल में उन बस्तियों में भेजा जाता है जहां कूड़ा-करकट जलाया जाता है, किस तरह हमें रेलों के पहले और दूसरे दर्जे के डिब्बों में बैठने की इजाजत नहीं है, ट्रामकारों से बाहर निकाल दिया जाता है, फुटपाथ से धक्के दे दिये जाते हैं, होटलों से बाहर रक्खा जाता है, सार्वजनिक बाग-बगीचों का लाभ हमें नहीं उठाने दिया जाता, और किस तरह हमपर थूका जाता है, हमें धिक्कारा जाता है, गालियां दी जाती हैं और उन अमानुष तरीकों से अपमानित किया जाता है जिन्हें कोई मनुष्य धीरता-पूर्वक सहन नहीं कर सकता।"

१८९८ में भारतीयों के अयोग्यता-सम्बन्धी तीन और कानून पास किये जा चुके थे और उसी समय गांधीजी ने अपना प्रसिद्ध आन्दोलन शुरू किया। इसमें भी सबसे अधिक अफसोस की बात यह थी कि तत्कालीन वाइसराय लार्ड एलगिन ने इस कानून के पास होने पर सहमति दी थी और उस समय के भारत-मन्त्री लार्ड जार्ज हैमिल्टन हमें 'जंगलियों की जाति' कहकर संतुष्ट हुए थे। १९०० में भूतपूर्व बोअर-जनतन्त्र ब्रिटिश-उपनिवेश में मिला लिये गये थे। १६ वें अधिवेशन (१९००) में इसका निर्देश करते हुए कहा गया था कि स्वतन्त्र बोअरों पर नियंत्रण करने में सरकार को जो कठिनाई होती थी वह दूर हो गई है और इसलिए अब नेटाल में प्रवेश-सम्बन्धी पाबन्दियां और डीलर्स लाइसेन्स-कानून हटा देने चाहिए। १९०१ की १७ वीं कांग्रेस (कलकत्ता) में गांधीजी ने दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी लाखों भारतीयों की ओर से प्रार्थी के रूप में दक्षिण अफ्रीका के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव

पेश किया था। १९०२ में भारत-मन्त्री से इस प्रश्न पर एक शिष्ट-मण्डल भी मिला, लेकिन कोई नतीजा न निकला। कांग्रेस ने १९०३ और १९०४ में अपने प्रस्तावों को दोहराया। ब्रिटिश-सरकार के जिम्मेदार हलकों में बोअर युद्ध के जितने कारण घोषित किये गये थे, उनमें से एक यह भी था कि "ब्रिटिश सम्राट् की भारतीय प्रजा के साथ जनतन्त्र में दुर्व्यवहार किया जाता है" और यह मांग की गई थी कि "भारतीय प्रवासियों के साथ भी न्याय और समान व्यवहार किया जाय।" कांग्रेस ने इस वक्तव्य की ओर भी सब का ध्यान खींचा। लेकिन १९०५ में हालत और भी खराब हो गई। बोअर-शासन में जिन कानूनों का सख्ती से पालन नहीं होता था, उनका पालन ब्रिटिश-शासन में और भी सख्ती से होने लगा। कांग्रेस ने इसका भी तीव्र विरोध किया और शर्तबन्दी कुली-प्रथा तथा अन्य प्रतिबन्धक कानूनों को हटाने की मांग की। सरकार ने ट्रांसवाल में इस आर्डीनेन्स को 'फिलहाल' चालू करने की आज्ञा नहीं दी। इससे भारतीयों को संतोष हुआ। लेकिन १९०६ में दक्षिण अफ्रीका के लिए जो शासन-विधान स्वीकृत किया गया, उसमें एक प्रस्ताव के अनुसार इसके पुनर्जीवन की स्पष्ट संभावना थी। १९०८ में भी भारतीयों के कष्ट दूर नहीं हुए। इन दिनों दक्षिण-अफ्रीका के नये शासन-विधान की पूर्ति हो रही थी। कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि इस को बनाते हुए भारतीय-हितों की भी पूरी रक्षा की जाय। १९०८ की २३वीं कांग्रेस (मदरास) में श्री मुशीर हुसेन किदवई ने एक प्रस्ताव पेश किया, जिसमें उपनिवेशों में उच्च कुलीन और प्रतिष्ठित भारतीयों तक के साथ होनेवाले कठोर, अपमानजनक और क्रूर व्यवहार पर रोष प्रकट किया गया था और यह चेतावनी भी दी गई थी कि इसके फल-स्वरूप ब्रिटिश-साम्राज्य के हितों को भारी हानि पहुंचेगी।

१९०९ से कांग्रेस ने यह अनुभव किया कि उसके सारे अनुरोध, विनय आदि का कोई परिणाम नहीं निकला। इस वर्ष की कांग्रेस में श्री गोखले ने प्रस्ताव पेश करते हुए "अधिकारियों के विश्वासघात और गांधी जी के नेतृत्व में भारतीयों के लम्बे और शान्त-संग्राम" का वर्णन किया। अब प्रभावकारी आन्दोलन का समय आ चुका था और निष्क्रिय प्रतिरोध (सत्याग्रह) का महान् संग्राम शुरू हुआ। "यह निष्क्रिय प्रतिरोध क्या है?" यह प्रश्न उठाकर श्री गोखले ने इसका जवाब दिया, कि "यह अपने-आप में बिलकुल रचनात्मक है और नैतिक व आध्यात्मिक शस्त्रों के द्वारा इसमें युद्ध किया जाता है। एक सत्याग्रही स्वयं कष्ट सहन कर अत्याचार का मुकाबला करता है। वह पशुबल के सामने आत्मबल का प्रयोग करता है; वह मनुष्य के पशुत्व के विरुद्ध उसके देवत्व को प्रेरित करता है; वह अत्याचार के विरुद्ध कष्ट-सहिष्णुता दिखाता है; वह शक्ति का विरोध अन्तरात्मा से, अन्याय का विरोध विश्वास और श्रद्धा से तथा अनुचित का विरोध उचित से करता है।" उसी स्थान पर १८,०००) का चन्दा भी इकट्ठा हो गया। इसके अलावा सर जमशेद जी ताता के दूसरे पुत्र श्री रतन ताता ने प्रवासी भारतीयों के कष्ट-निवारण के लिए २५,०००) दिये। कांग्रेस ने २४ वें अधिवेशन (लाहौर १९०९) में इस उदारता के लिए श्री रतन जे० ताता को धन्यवाद दिया। कांग्रेस के आगामी अधिवेशन (इलाहाबाद १९१०) तक निष्क्रिय प्रतिरोध का संग्राम अपनी चरम-सीमा पर पहुंच चुका था। कांग्रेस ने ट्रान्सवाल के उन सब भारतीयों के उत्कट देश-प्रेम, साहस और त्याग की प्रशंसा की, जो अपने देश के लिए वीरता-पूर्वक कैद भोगते हुए, अनेक कठिनाइयों के रहते हुए भी, अपने प्रारम्भिक नागरिक अधिकारों के लिए शान्तिपूर्वक और स्वार्थहीन लड़ाई लड़ रहे थे।

कांग्रेस का २७वां अधिवेशन (१९११) अधिक आशामय वातावरण में सम्पन्न हुआ, क्योंकि इसमें रजिस्ट्रेशन और गिरमिट-सम्बन्धी एशिया-विरोधी कानूनों को रद कराने पर ट्रांसवाल के भार-

तीय समाज और गांधी जी को हार्दिक धन्यवाद दिया जा सका था। लेकिन कांग्रेस ने "हाल ही में हुए प्रान्तीय वस्तियों-सम्बन्धी भावी कानून की संभावना में" यह प्रस्ताव पास किया था। अगले साल (१९१३) में भी गिरमिट-कानून की अनेक धाराओं का विरोध करने की आवश्यकता प्रतीत हुई, क्योंकि दक्षिण अफ्रीका की यूनियन ने अपने वचनों को तोड़ दिया था। ब्रिटिश-सम्राट् से कांग्रेस ने इस कानून को रद कर देने का अनुरोध भी किया। उन दिनों लॉर्ड हार्डिञ्ज वाइसराय थे। उन्होंने इस मामले में कड़ाई का रुख लिया और उन्हें और अधिक बलशाली बनाने के लिए करांची-कांग्रेस ने १९१३ में शर्तबन्दी कुली-प्रथा को नष्ट करने का अपना प्रस्ताव दोहराया। इसके बाद शीघ्र ही यह प्रथा तोड़ दी गई और कांग्रेस ने दक्षिण अफ्रीका के आंशिक समझौते के लिए लॉर्ड हार्डिञ्ज के प्रति कृतज्ञता प्रकट की, यद्यपि १९१६ और १९१७ में इस प्रश्न पर फिर से विचार करना पड़ा। करांची-अधिवेशन में गांधी जी तथा उनके अनुयायियों के वीरता पूर्ण प्रयत्नों और भारत के आत्म-सम्मान की रक्षा और भारतीयों के कष्ट-निवारण की लड़ाई में किये गये अपूर्व आत्मत्याग की प्रशंसा में एक प्रस्ताव पास किया गया।

वस्तुतः यह भारत को गांधी जी का वास्तविक परिचय था, क्योंकि गत महासमर के छिड़ने के बाद बहुत जल्दी ही गांधी जी अफ्रीका छोड़कर भारत चले आये और १९१५ से आजतक वह अपने सत्य के प्रयोग कर रहे हैं और चम्पारन, खेड़ा, बोरसद, बारडोली एवं सारे भारत में सत्याग्रह का नेतृत्व करते रहे हैं। इनका परिणाम विश्व-विदित है और इन पर हम दूसरे अध्यायों में यथा-स्थान विचार करेंगे।

कनाडा की प्रिवी कौंसिल ने 'लगातार यात्रा-धारा' के नाम से प्रसिद्ध आज्ञा देकर भी भारत के लिए एक मनोरंजक समस्या उत्पन्न कर दी थी। करांची-कांग्रेस ने १९१३ के २८ वें अधिवेशन में इस आधार पर इसका विरोध किया।

"कनाडा की प्रिवी कौंसिल के हुक्म (नं० ९२०) के अनुसार जो आम तौर पर 'लगातार यात्रा-धारा' कहलाता, है, वह वहां जाने की जो मनाही है उसका यह कांग्रेस विरोध करती है; क्योंकि उससे प्रत्येक ऐसे भारतीय के कनाडा जाने की मनाही हो जाती है जो वहां रहने न लग गया हो। क्योंकि दोनों महाद्वीपों के बीच कोई सीधा जहाज नहीं आता-जाता और जहाज वाले सीधा टिकट देने से इनकार करते हैं, जिससे वहां रहने वाले भारतीय अपने बाल-बच्चों को नहीं ला पाते हैं, इसलिए यह कांग्रेस साम्राज्य-सरकार से प्रार्थना करती है कि उपर्युक्त 'लगातार यात्रा-धारा' रद कर दी जाय।"

गत महासमर छिड़ने के बाद जल्दी ही भारत के इतिहास में एक मजेदार, नवीन और अद्भुत घटना हुई। आने वाली संतति को इस कथा से अनजान न रहना चाहिए। कनाडा की इस धारा को तोड़ने के लिए बाबा गुरुदत्तसिंह नामक एक सिक्ख सज्जन ने 'कोमागाटामारू' जहाज किराये पर लिया और हांगकांग या टोकियो बिना ठहराये ही उस जहाज पर ६०० सिक्खों को कनाडा ले गये।

कोमागाटामारू जहाज के यात्रियों को कनाडा में उतरने नहीं दिया गया और जहाज को भारत में लौटना पड़ा। वापसी पर यात्रियों को बजबज से, जहां वे उतरे थे, सीधा पंजाब जाने की आज्ञा दी गई और दूसरी किसी जगह जाने की मनाही कर दी गई। यात्रियों ने सीधे पंजाब जाना पसन्द नहीं किया। उन्होंने कहा, पहले सरकार हमारी बात तो सुन ले; हमारे साथ इस हुक्म से अन्याय होता है और इसमें आर्थिक हानि भी बहुत होगी। सीधे पंजाब जाने के बजाय, उन्होंने

गिरफ्तार हो जाना अधिक अच्छा समझा१ कोमागाटामारू के आदमियों की, जिनमें सिन्ध के प्रो० मनसुखानी (अब स्वामी गोविन्दानन्द) भी थे, शेष कहानी—दंगा कैसे हुआ, कितने आदमी मारे गये या गिरफ़्तार हुए, बाबा गुरुदत्तसिंह ७-८ साल तक कैसे गुम रहे और उड़ीसा, दक्षिण भारत, ग्वालियर, राजपूताना, काठियावाड़ और सिन्ध में किस तरह १९१८ तक घूमते रहे, उसके बाद कैसे बम्बई जाकर महाल बन्दर में बल्दराज के नाम से एक जहाजी-कम्पनी के मैनेजर हो गये, कैसे वह अपने निर्वासनकाल (नवम्बर १९२१) में गांधी जी से मिले जिन्होंने उन्हें गिरफ़्तार हो जाने की सलाह दी, कैसे उन्होंने इस परामर्श को कार्यान्वित किया, २८ फरवरी १९२२ को वह लाहौर-जेल से उस आर्डिनेन्स की अवधि समाप्त होने पर छोड़े गये जिसके अनुसार वह गिरफ़्तार किये गये थे, आदि—इस पुस्तक के क्षेत्र के बाहर की चीज है।

१२. नमक

१९३० के नमक-सत्याग्रह के कारण, नमक-कर का प्रश्न भारतीय राजनीति में खास तौर पर महत्त्वपूर्ण हो गया है। जो लोग नमक-कर की उत्पत्ति और १८३६ के नमक कमीशन की सिफारिशें जानते हैं उन्हें यह जान कर बहुत आश्चर्य होगा कि १८८८ में कांग्रेस ने इस कर का विरोध इस आधार पर नहीं किया कि यह कर अन्यायपूर्ण था और इसका उद्देश्य ब्रिटेन के जहाजी व्यवसाय और निर्यात-व्यापार को बढ़ाना था; बल्कि इस आधार पर किया, कि "नमक-कर में हाल ही में की गई वृद्धि से गरीब लोगों पर भार और भी बढ़ गया है; और इसके द्वारा सरकार ने शान्ति और सुख के समय में ही ऐसे कोष में से खर्च करना शुरू कर दिया है, जो खास मौकों के लिए साम्राज्य की एक मात्र निधि है।" १८९० में कांग्रेस ने नमक-कर में की गई वृद्धि को वापस लेने की—न कि नमक-कर को हटाने की—मांग की। आठ दूसरे मौकों पर कांग्रेस ने केवल इसी प्रार्थना को दोहराया और एक समय १८६८ की दर को और एक दफा १८८८ की दर को कायम रखने की मांग की। १९०२ में इस प्रश्न पर अन्तिम बार विचार करते हुए कांग्रेस ने यह भी कहा, कि "इस समय जो बहुत-सी बीमारियां फैल रही हैं उनका एक खास कारण (नमक-कर के कारण) नमक का कम इस्तेमाल किया जाना भी है।" इसके बाद 'नमक' कांग्रेस से उठकर कौंसिलों में पहुंच गया और वहां श्री गोखले खास तौर पर इसमें दिलचस्पी लेते रहे।

१३. शराब और वेश्यावृत्ति

नैतिक पवित्रता इतनी आवश्यक वस्तु है कि कांग्रेस उस पर ध्यान दिये बिना न रह सकी। शराब की बढ़ती हुई खपत को देखकर संयम और मद्य-निवारण की मांग की गई। मि० केन और स्मिथ ने कामन-सभा में इस प्रश्न को उपस्थित किया और १८८९ में इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव भी पास हुआ। कांग्रेस ने भी कामन-सभा वाले प्रस्ताव को 'कार्य-रूप में परिणत करने' का अनुरोध किया। १८९० में कांग्रेस ने शराब पर आयात-कर की वृद्धि, हिन्दुस्तानी शराब पर कर लगाने, बङ्गाल-सरकार के ठेके पर शराब बनाने की पद्धति को दूर करने के निश्चय तथा मदरास-सरकार के (१८८९-९०) ७,००० शराब की दूकानें बन्द करने पर हर्ष प्रकट किया; लेकिन इस बात पर खेद भी प्रकट किया, कि सब प्रान्तों ने भारत-सरकार के खरीते की इन हिदायतों पर अमल नहीं किया कि "स्थानीय जनता के भाव को जानने का प्रयत्न किया जाय और मालूम होने पर उचित रूप से उसका सम्मान किया जाय।" इसके बाद दस साल तक कांग्रेस ने इस प्रश्न पर कोई विचार नहीं किया। १९०० में जाकर कांग्रेस ने सस्ती बिकने के परिणाम-स्वरूप शराब की बढ़ती हुई खपत को देखकर सरकार से प्रार्थना की, कि "वह अमेरिका के 'मेन लिकर लॉ' के समान कोई कानून बनावे और सर

विलफीड लॉसन के 'परमिसिव बिल', या 'लोकल आप्शन एक्ट' के समान कोई बिल पेश करे और दवा के सिवा दूसरे कामों के लिए आने वाली नशीली वस्तुओं पर अधिक कर लगावे।" इस प्रसंग में यह याद करना रुचिकर होगा कि कुमार एन० एम० चौधरी ने कांग्रेस में श्री केशवचन्द्र सेन की इस शिकायत को भी उद्धृत किया था, कि ब्रिटिश सरकार जहां हमारे लिए शैक्सपीयर और मिल्टन लाई है वहां शराब की बोतलें भी लाई है।

१८८३ के 'एक्साइज कमीशन' के अनुसार मजदूरी पेशे वालों में शराब का अधिक प्रचार हो रहा था। अतः कांग्रेस ने कहा कि नशीली चीजों ने मजदूरों पर अपना असर डाल दिया है, इसलिए भारतीय कला-कौशल और उद्योग-धन्धों की उन्नति में सहायता करने का सरकार का उदार विचार असफल हो जायगा।

राज्य-नियंत्रित वेश्या-वृत्ति का लोप समाज-सुधार से सम्बद्ध एक विषय था। यह सब जानते हैं कि सरकार अपने सैनिकों के लिए छावनियों में युद्ध-यात्राओं में स्त्रियों को एकत्र करती थी। जब ये चीजें पहले-पहल अमल में लाई गईं तो बहुत भीषण मालूम हुईं, लेकिन ज्यों-ज्यों उनका सहवास बढ़ने लगा त्यों-त्यों क्षोभ कम होता गया। कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (१८८८) ने मि० यूल की अध्यक्षता में उन भारत-हितैषियों के साथ सहयोग की इच्छा प्रकट की, जो भारत में राज्य की ओर से बनने वाले कानूनों और नियमों को पूर्णतया रद कराने के लिए इंग्लैण्ड में कोशिश कर रहे थे। कैप्टेन बैनन ने अपने एक ओजस्वी भाषण में कहा था कि २,००० से अधिक भारतीय स्त्रियों को सरकार ने वेश्यावृत्ति के कुत्सित उद्देश्य से इकट्ठा किया था। इससे युवक सिपाही असंयत जीवन बिताने को प्रोत्साहित हुए। इलाहाबाद में हुए आठवें अधिवेशन (१८९२) में कामन-सभा को "भारत-सरकार द्वारा बनाये गये पवित्रता-सम्बन्धी कानून के विषय में उसकी जागरूकता के लिए" धन्यवाद दिया गया और एक बार फिर भारत में सरकार द्वारा नियमित अनैतिक कार्यों का विरोध किया गया।

इससे अगले साल इण्डिया-आफिस-कमिटी के पार्लमेंट के सदस्यों ने छावनियों की वेश्यावृत्ति तथा छूत रोगों-सम्बन्धी नियमों, आज्ञाओं और प्रथाओं के विषय में एक रिपोर्ट तैयार की। कांग्रेस ने घोषणा की कि रिपोर्ट में वर्णित कारनामे और आज्ञायें कामन-सभा के ५ जून १८८८ के प्रस्ताव के अर्थ और उद्देश्य के विरुद्ध थीं और इन तरीकों और बुरी प्रथाओं को बन्द करने के एक मात्र उपाय स्पष्ट कानून, बनाने की मांग की।

१४. स्त्रियां और दलित जातियां

मि० माण्टेगु की भारत-यात्रा के साथ ही नागरिक अधिकारों के सम्बन्ध में स्त्रियों का दावा भी देश के सामने पेश हुआ—और, वस्तुतः यह बहुत आश्चर्यजनक है कि भारत में कितनी जल्दी पुरुषों के समान स्त्रियों के अधिकार मान लिये गये। कलकत्ता-कांग्रेस ने १९१७ में यह सम्मति प्रकट की थी, कि "शिक्षा तथा स्थानीय सरकार से सम्बन्ध रखने वाली निर्वाचित संस्थाओं में मत देने तथा उम्मीदवार खड़े होने की, स्त्रियों के लिए भी, वही शर्तें रक्खी जायं जो पुरुषों के लिए हैं।" इसीसे मिलते-जुलते दलित जातियों के प्रश्न पर भी, इसी कांग्रेस ने एक उदार प्रस्ताव स्वीकार किया:—

"यह कांग्रेस भारतवासियों से आग्रह-पूर्वक कहती है कि परम्परा से दलित जातियों पर जो रुकावटें चली आ रही हैं वे, बहुत दुःख देने वाली और क्षोभकारक हैं, जिससे दलित जातियों को बहुत कठिनाइयों, सख्तियों और असुविधाओं का सामना करना पड़ता है; इसलिए न्याय और भलमंसी का यह तकाजा है कि ये तमाम बन्दिशें उठा दी जायं।"

१५. विविध

इस अवधि में कांग्रेस ने समय-समय पर और भी अनेक विषयों की ओर ध्यान दिया। शिक्षा के विविध पहलुओं—प्राथमिक, विद्यापीठी, पुरातत्व और कला-कौशल-सम्बन्धी शिक्षा में कांग्रेस ने बहुत दिलचस्पी ली। प्रान्तीय और केन्द्रीय राजस्व, चांदी-कर, आयकर और विनिमय-दर के मुआवजे आदि आर्थिक विषयों पर भी कांग्रेस प्रायः ध्यान देती रही। स्थानीय स्वराज्य-संस्थाओं और विशेषतः मदरास और कलकत्ता के कारपोरेशनों के सम्बन्ध में प्रतिगामी कानूनों से कांग्रेसी बहुत रुष्ट हुए। स्वास्थ्य और विशेपतः प्लेग और क्वारण्टीन-सम्बन्धी, बेगार वगैरा पर भी कभी-कभी विचार हो जाता था। राजभक्ति की शपथ भी कई बार ली गई। १९०१ में महारानी विक्टोरिया की मृत्यु और १९१० में सम्राट् एडवर्ड की मृत्यु पर कांग्रेस को अपनी राजभक्ति फिर प्रकट करने का अवसर मिला। एडवर्ड और जार्ज पंचम के (१९०५ में युवराज और १९१० में सम्राट् की हैसियत से) स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास किये गये।

ब्रह्मदेश

आज हम देखते हैं कि कि बर्मा के पृथक्करण को लेकर एक बड़ा संघर्ष-सा चल पड़ा है। एक क्षण के लिए हम फिर उस वर्ष में चलें जब कि कांग्रेस का जन्म हुआ था। पहली कांग्रेस (१८८५) ने बर्मा के मिलाये जाने पर यह प्रस्ताव पेश किया था—"यह कांग्रेस उत्तरी बर्मा के ब्रिटिश-राज्य में मिलाये जाने का विरोध करती है और उसकी राय में—यदि सरकार दुर्भाग्यवश उसे मिलाने का ही निश्चय कर ले तो—पूरा ब्रह्म देश हिन्दुस्तानी वाइसराय के कार्य-क्षेत्र से अलग रक्खा जाय और एक शाही उपनिवेश बना दिया जाय तथा प्रत्येक कार्य में सीलोन के अनुसार वह इस देश के शासन से अलग रक्खा जाय।"

१६. कांग्रेस का विधान

कांग्रेस के इन ५० सालों के जीवन में विधान-सम्बन्धी इतने क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं कि विधान का इतिहास भी बहुत रोचक हो गया है। यह सब जानते हैं कि कांग्रेस की स्थापना किसी जॉइण्ट स्टॉक कम्पनी की तरह 'आर्टिकल्स' या 'मेमोरेण्डम आफ एसोसियेशन' बनाकर या १८६० के २१ वें कानून के अनुसार 'रजिस्टर्ड सोसाइटी' की तरह पहले से ही नियमादि बनाकर नहीं हुई है। इसकी शुरुआत तो कुछ प्रसिद्ध पुरुषों के सम्मेलनों से हुई। यह अपने ऊंचे उद्देश्य की प्राप्ति नैतिक बल से ही कर सकती थी। इसने धीरे-धीरे अपने नैतिक बल से अपने आकार-प्रकार और शक्ति में वृद्धि प्राप्त की है और इसी नैतिक बल पर इसने अपने महान् उद्देश्य की पूर्ति का दारोमदार रक्खा है। शुरू में १८८६ में कांग्रेस के संचालन के लिए एक विधान तथा नियम बनाने पर गम्भीरता से विचार हुआ। एक प्रस्ताव-द्वारा नियम बनाने के लिए कमिटी तो बना दी गई, लेकिन विधान बनाने का काम पीछे के लिए छोड़ दिया गया, जब तक कांग्रेस को कुछ अधिक अनुभव हो जाय तथा वह अन्य प्रान्तों में भी घूम आवे। फिर भी सारे साल भर कांग्रेस के काम को चलाने की आवश्यकता साफ-साफ अनुभव होने लगी, क्योंकि उस समय कांग्रेस के दो अधिवेशनों के बीच में काम बहुत कम हुआ करता था। १८८९ में कांग्रेस के प्रतिनिधि इतनी भारी संख्या में आये कि कांग्रेस को प्रति दस लाख जन-संख्या के पीछे पांच प्रतिनिधियों की संख्या सीमित कर देनी पड़ी। भारत में कांग्रेस का एक सहायक-मंत्री नियुक्त हुआ और इंग्लैण्ड की कमिटी को भी एक वैतनिक मन्त्री दिया गया। इस पद पर पहले-पहल सुप्रसिद्ध मि० डब्ल्यू० डिग्बी सी० आई० ई० नियुक्त हुए।

यह कांग्रेस का चौथा अधिवेशन (१८८८) था, जब यह निश्चित किया गया कि "जिन

प्रस्ताव के उपस्थित किये जाने में हिन्दू या मुसलमान अपने सम्प्रदाय के नाम पर सर्वसम्मति से या लगभग सर्वसम्मति से आपत्ति करेंगे, वह विषय-समिति में विचार के लिए पेश नहीं किया जा सकेगा।" यह याद रखना चाहिए कि यही नियम उस विधान में भी स्वीकृत हुआ, जो सूरत के झगड़े के बाद १९०८ में बनाया गया था; फर्क सिर्फ अनुपात का रहा, जो अब सर्वसम्मति के बजाय ३/४ कर दिया गया।

प्रतिनिधियों की संख्या घटाकर १००० कर देने का प्रस्ताव १८८९ में पास हुआ, लेकिन अमल में वह दूसरे वर्ष (१८९० में) ही लाया गया।

इंग्लैण्ड में किये जाने वाले काम को कितना महत्वपूर्ण समझा जाता था, यह इसीसे मालूम होता है कि १८९२ में ६०,०००) की भारी रकम ब्रिटिश-कमिटी और कांग्रेस के पत्र 'इण्डिया' के खर्च के लिए पास की गई। १२ वें अधिवेशन (१८९६) में भी इतनी ही रकम पास की गई थी। १८९८ में कांग्रेस के विधान को बनाने का नया प्रयत्न किया गया। वस्तुतः मदरास-कांग्रेस ने विधान का एक मसविदा जगह-जगह भेजा और उस पर विचार करने तथा अगले अधिवेशन तक उसकी एक निश्चित योजना बनाने के लिए एक कमिटी भी नियत की। दूसरे साल (१८९९) लखनऊ में एक सम्पूर्ण विधान स्वीकृत हुआ। उस समय तथा १९०८, १९२० और १९२९ के वर्षों में कांग्रेस ने अपने जो-जो ध्येय निश्चित किये, उनकी तुलना बड़ी मनोरंजक होगी। लखनऊ में कांग्रेस का ध्येय इस प्रकार निश्चित हुआ :—

"वैध उपाय से भारतीय साम्राज्य के निवासियों के स्वार्थों और हित को बढ़ाना अखिल-भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का ध्येय होगा।"

सारी वस्तुस्थिति का ठीक-ठीक अनुमान लगा सकने के लिए पाठकों को १९०८ में स्वीकृत संस्थाओं जैसे स्व-शासन, १९२० में समर्थित शान्तिपूर्ण और उचित उपाय तथा लाहौर (१९२९) में स्वीकृत पूर्ण स्वराज्य के ध्येय की ओर ध्यान देना चाहिए। लखनऊ-विधान के अनुसार कार्य-संचालन के लिए कांग्रेस द्वारा निश्चित ४५ सदस्यों की एक कमिटी बनाई गई। इन ४५ में से ४० सदस्य ऐसे चुनने थे, जिनकी विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों ने सिफारिश की हो। कमिटी के एक अवैतनिक मन्त्री और एक वैतनिक सहायक मन्त्री रक्खे गये। सालके खर्च के लिए ५०००) स्वीकृत किये गये। इसमें २५००) तो गत अधिवेशन की स्वागत-समिति पर और २५००) आगामी अधिवेशन की स्वागत समिति पर डाले गये। स्थायी कांग्रेस कमिटियों की स्थापना तथा प्रान्तीय सम्मेलनों के आयोजन द्वारा कांग्रेस का काम सारे साल-भर चालू रखने की व्यवस्था की गई। अध्यक्ष का चुनाव तथा प्रस्तावों के मसविदे बनाने का काम इण्डियन कांग्रेस कमिटी करती थी। सात ट्रस्टियों के नाम पर कांग्रेस के लिए एक स्थायी कोष भी स्थापित किया गया। प्रत्येक प्रान्त से एक-एक ट्रस्टी कांग्रेस नियुक्त करती थी। १९०० में ४५ सदस्यों वाली इण्डियन कांग्रेस कमिटी और बढ़ा कर दी गई। पद की हैसियत से इतने व्यक्ति और सदस्य मान लिये गये—सभापति; मनोनीत सभापति, जिस दिन से नामजद किया जाय; पिछली कांग्रेसों के सभापति; कांग्रेस के मन्त्री और सहायक मन्त्री तथा स्वागत-समिति द्वारा मनोनीत उसके अध्यक्ष और मन्त्री।

लन्दन में कार्य का संगठन १९०१ में शुरू किया गया। 'इण्डिया' पत्र को और सुचारु-रूप से चलाने के लिए उसकी ४००० कापियां बिकने का इस तरह प्रबन्ध किया गया कि प्रत्येक प्रान्त एक नियत संख्या में 'इंडिया' खरीदे। 'इण्डिया' और ब्रिटिश-कमिटी का खर्च पूरा करने के लिए १९०२ से प्रत्येक प्रतिनिधि से फीस के अलावा १०) और लेने का भी निश्चय किया गया। यह स्पष्ट है कि

उन दिनों कांग्रेस भारत और इंगलैण्ड में अपने कार्य के लिए खर्च करने में कोताही न करती थी। बम्बई के २० वें अधिवेशन (१९०४) में यह निश्चय किया गया कि पार्लमेण्ट के चुनाव से पहले इंग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय और इस कार्य के लिए ३०,०००) इकट्ठे किये जायं। काशी में (१९०५) कांग्रेस के उद्देश्यों को पूरा करने और उसके प्रस्तावों के अनुसार कार्य करने के लिए १५ सदस्यों की एक स्थायी कमिटी बनाई गई। १९०६ में दादाभाई नौरोजी ने कांग्रेस का उद्देश्य एक शब्द में रख दिया—"हमारा सारा आशय केवल एक शब्द स्व-शासन या स्वराज्य (जैसा इंग्लैण्ड या उपनिवेशों में है) में आ जाता है।" तथापि जब इसे प्रस्ताव के रूप में रखने का प्रश्न उठा, तो इसे नरम कर दिया गया। कांग्रेस का प्रस्ताव यह था - "स्वराज्य-प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है, वही भारत में भी जारी की जाय" और इसके लिए अनेक सुधारों की भी मांग की गई।

कलकत्ता-कांग्रेस का वातावरण राष्ट्रीयता की भावना से लबालब था इसमें सन्देह नहीं, इसलिए राष्ट्र को संगठित करने की दिशा में एक और कदम बढ़ाया गया और निश्चय किया गया कि—"प्रत्येक प्रान्त अपनी राजधानी में उस तरह से प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी का संगठन करे, जिस तरह कि प्रान्तीय सम्मेलन में निश्चय किया जाय। कांग्रेस के तमाम विषयों में प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी प्रान्त की ओर से कार्य करेगी और उसे प्रान्त में कांग्रेस का काम बराबर चलाते रहने के लिए जिला-संस्थायें संगठित करने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए।" कांग्रेस के सभापति की निर्वाचन-प्रणाली भी बदल दी गई। प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी द्वारा मनोनीत व्यक्तियों में से स्वागत-समिति अपनी तीन-चौथाई राय से किसीको सभापति चुना करे, किन्तु यदि किसी व्यक्ति के लिए इतना बहुमत न मिले तो केन्द्रीय स्थायी समिति (४९ सदस्यों की बनाई गई नई समिति) इस प्रश्न का अन्तिम निर्णय करे।

विषय-निर्वाचिनी-समिति के निर्णय का भी नया तरीका जारी किया गया। कमिटी के ८५ सदस्य तो प्रतिनिधि ही रहेंगे और उस प्रान्त के १० और प्रतिनिधि लिये जायंगे जिसमें कांग्रेस हो। उस वर्ष के सभापति, स्वागत समिति के अध्यक्ष, पिछले अधिवेशनों के सभापति और स्वागत-समिति के अध्यक्ष, कांग्रेस के प्रधान मन्त्रीगण और कांग्रेस के उस वर्ष के स्थानीय मंत्री भी अपने पद के अधिकार से विषय-निर्वाचिनी-समिति के सदस्य माने गये।

कांग्रेस-विधान में जो नया परिवर्तन हुआ वह वस्तुतः युग प्रवर्तक था। सूरत के झगड़े के कारण जिन नेताओं ने इलाहाबाद में 'कन्वेंशन' खड़ा किया उन्होंने बहुत ही सख्त विधान बनाया। सबसे पहले यह घोषणा की गई कि बाकायदा निर्वाचित सभापति बदला नहीं जा सकेगा, क्योंकि सूरत में डा० रासबिहारी घोष के चुनाव पर ही बड़ा झगड़ा हुआ था। इसके बाद लोगों के विचार का वास्तविक विषय था—कांग्रेस का 'क्रीड' यानी ध्येय। सूरत कांग्रेस के भङ्ग के एक दिन बाद २८ दिसम्बर (१९०७) को वैसे ही विचार रखने वाले लोगों ने मिलकर यह प्रस्ताव पास किया - "कांग्रेस का उद्देश्य है ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्य स्वशासित राष्ट्रों में प्रचलित शासन-प्रणाली भारत के लोगों के लिए भी प्राप्त करना और उन राष्ट्रों के साथ बराबरी के नाते साम्राज्य के अधिकारों और जिम्मेदारियों में सम्मिलित होना।"

१९०८ के विधान के अनुसार महासमिति (आल इण्डिया कांग्रेस कमिटी) के सदस्य इस तरह चुने गये थे:—

१—मद्रास से	१५ प्रतिनिधि
२—बम्बई से	१५ "

३—संयुक्त बंगाल से	२०	प्रतिनिधि
४—संयुक्त प्रान्त से	१५	"
५—पंजाब व सीमाप्रान्त से	१३	"
६—मध्यप्रान्त से	७	"
७—बिहार उड़ीसा से[1]	१५	"
८—बरार से	५	"
९—बर्मा से	२	"

यह भी तय हुआ कि यथासम्भव कुल संख्या का ५ वां हिस्सा मुसलमान सदस्य चुने जायं।

इसके अलावा भारत में उपस्थित या भारत में रहने वाले कांग्रेस के सभापति और प्रधान मंत्री भी महा-समिति के सदस्य माने जायं। कांग्रेस का प्रधान मंत्री इसका भी प्रधान मंत्री समझा जाय।

इसी तरह विषय-निर्वाचिनी समिति भी बहुत बढ़ गई। महा-समिति के सभी सदस्य और कुछ निर्वाचित व्यक्ति उसके सदस्य माने गये। प्रत्येक प्रान्त से आये हुए प्रतिनिधि ही इनका चुनाव करते थे।[2]

इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ये उपाय सोचे गये—(१) वैध उपाय का अवलम्बन, (२) वर्तमान-शासन-प्रबन्ध में क्रमशः स्थायी सुधार करना, (३) राष्ट्रीय एकता को बढ़ाना (४) सार्वजनिक सेवा की भावना को उत्तेजन देना, और (५) राष्ट्र के बौद्धिक, नैतिक, आर्थिक तथा व्यावसायिक साधनों का सङ्गठन व विकास। १९०८ के विधान में पहली बार यह धारा भी रक्खी गई कि ऐसे किसी प्रस्ताव पर विचार न हो, जिसके विरुद्ध तीन-चौथाई हिन्दू या मुसलमान प्रतिनिधि हों। पुराने कागजात देखने से हमें मालूम होता है कि किस विचित्र तरीके से इस धारा का पालन होता था। कांग्रेस के १५ वें अधिवेशन (लखनऊ, १८९९) में 'पञ्जाब लैण्ड एलीनेशन बिल' की निन्दा का प्रस्ताव पास हुआ था। यह बिल उन दिनों बड़ी कौंसिल के सामने पेश था और इसका आशय यह था कि किसानों के हाथ से जमीन न खरीदी जा सके, न बन्धक रखी जा सके, लेकिन आगामी १६ वें अधिवेशन (लाहौर, १९००) ने हिन्दू-मुसलमान प्रतिनिधियों के पारस्परिक मत-भेद के कारण विषय-समिति ने इस कानून (बिल अब कानून बन चुका था) पर विचार करना स्थगित कर दिया, ताकि एक साल तक इस कानून का प्रयोग भी देख लिया जाय।

संयुक्त बङ्गाल-प्रांतीय कांग्रेस-कमिटी ने कांग्रेस के विधान में कुछ परिवर्तन सुझाये, जो इलाहाबाद (१९१०) में एक उप-समिति को सौंपे गये। १९११ में कलकत्ता के अधिवेशन में इस समिति की सिफारिशें स्वीकार कर ली गईं और आगे संशोधनों के लिए वह महासमिति के सुपुर्द किया गया। इसके बाद ५ सालों तक कोई परिवर्तन नहीं हुआ। १९१४ में जब यूरोप का महासमर छिड़ गया, तब श्रीमती एनी बेसेण्ट ने अपना महान् राजनैतिक आन्दोलन अ० भा० होमरूल-

---

१—इस विधान में बिहार, जो अबतक पश्चिमी बङ्गाल का भाग माना जाता था, पहली बार एक पृथक् प्रांत के रूप में माना गया। १९०८ में ही बिहार की पहली प्रांतीय परिषद् श्री० (पीछे सर) सैयद अलीइमाम की अध्यक्षता में हुई।

२—महा-समिति को संख्या और भी बढ़ा दी गई। १९१७ तक इसके सदस्यों का चुनाव इस तरह होता था—१४ मदरास, ११ आंध्र, २० बम्बई, ५ सिंध, २५ बङ्गाल, २५ युक्तप्रांत, ५ दिल्ली, ३ अजमेर-मेरवाड़ा, २० पंजाब, १२ मध्यप्रांत, २० बिहार व उड़ीसा, ६ बरार व ५ बर्मा। विषय-समिति में प्रत्येक प्रांत की ओर से इतने ही सदस्य और प्रतिनिधियों द्वारा चुने जाते थे।

लीग की छत्रछाया में आरम्भ किया। इसी समय लोकमान्य तिलक ने महाराष्ट्र में २३ अप्रैल १९१६ को एक पृथक् होमरूल-लीग स्थापित की थी। इसके बाद १९२० में जाकर कांग्रेस के विधान में परिवर्तन हुआ। कलकत्ता-कांग्रेस अपने विशेष अधिवेशन में असहयोग को स्वीकार कर चुकी थी। नागपुर के अधिवेशन ने कांग्रेस के विधान में अनेक संशोधन किये। कांग्रेस का १९०८ वाला ध्येय 'समस्त शान्तिमय और उचित उपायों से भारतीयों द्वारा स्वराज्य प्राप्त करना' में बदल दिया गया। सम्पूर्ण कांग्रेस-कार्य नये सिरे से संगठित किया गया। भाषा-क्रम के आधार पर प्रान्तों का पुनर्विभाजन किया गया। आन्ध्र को पृथक् बनाने का प्रश्न १९१५ और १९१६ में उठाया गया था और १९१७ में सभापति डॉ० एनी बेसेण्ट तथा मद्रास के अनेक प्रतिनिधियों के तीव्र विरोध करने पर भी स्वीकार कर लिया गया। १९१७ में तो गांधी जी की भी यही सम्मति थी कि यह प्रश्न सुधारों तक स्थगित कर दिया जाय, परन्तु यह लोकमान्य तिलक की दूरदर्शिता थी कि जिससे आन्ध्र को पृथक् प्रान्त का रूप दे दिया गया। इसीके परिणामस्वरूप प्रत्येक प्रान्त के प्रतिनिधित्व पर विचार और संशोधन करके अपनी रिपोर्ट महा-समिति में पेश करने के लिए एक और उपसमिति बनाई गई। इसके बाद ही सिंध ने भी अपने पृथक् प्रान्त बनाये जाने की मांग की। वह स्वीकृत भी हो गई, लेकिन कर्नाटक और केरल की मांगों का तब फैसला हुआ, जब १९२० के नागपुर-अधिवेशन के बाद प्रान्तों का पुनर्विभाजन हुआ।

१७. १९१८ तक सरकार द्वारा अस्वीकृत मांगें

भारत की राष्ट्रीय मांग केवल भावनात्मक नहीं है, उसके पक्ष में प्रबल और व्यावहारिक युक्तियां हैं; और वर्तमान अवस्थाओं में सुधारों की अधिक सम्भावना नहीं है, यह सिद्ध करने के लिए यहां उन प्रस्तावों और विरोधों का उल्लेख मात्र कर देना काफी होगा, जो कांग्रेस ने बार-बार पेश किये मगर जिन पर ३२ साल से भारत-सरकार ने व प्रान्तीय सरकारों ने कोई ध्यान नहीं दिया और १९१८ तक भी वे हमारी मांगें बनी रहीं :—

(१) इण्डिया कौंसिल तोड़ दी जाय (१८८५)
(२) सरकारी नौकरियों के लिए इंग्लैण्ड और भारत दोनों जगह परीक्षायें लीजायं (१८८५)
(३) भारत और इंग्लैण्ड में सेना-व्यय का अनुपात न्यायपूर्ण हो (१८८५)
(४) जूरी-द्वारा मुकदमों की सुनाई अधिकाधिक हो (१८८६)
(५) जूरी के फैसले अन्तिम समझे जायं (१८८६)
(६) वारण्टवाले मामलों में अभियुक्तों को यह अधिकार देना कि उनका मुकद्मा मजिस्ट्रेट के सामने पेश न होकर दौरा-जज की अदालत में पेश हो (१८८६)
(७) न्याय और शासन-विभाग अलहदा किये जायं (१८८६)
(८) भारतीय सैनिक-स्वयंसेवकों में भर्ती किये जायं (१८८७)
(९) सैनिक-अफसरी-शिक्षा देने के लिए भारत में सैनिक कालेजों की स्थापना की जाय (१८८७)
(१०) शस्त्र-कानून व नियमों में संशोधन किया जाय (१८८७)
(११) औद्योगिक उन्नति और कला-कौशल की शिक्षा के सम्बन्ध में असली नीति काम में लाई जाय (१८८८)
(१२) लगान-नीति में सुधार किया जाय (१८८९)
(१३) मुद्रा-नीति के सम्बन्ध में (१८९२)

(१४) स्वतन्त्र सिविल-मेडिकल-सर्विस का निर्माण (१८९३)
(१५) विनिमय-दर-मुआवजे का बन्द करना (१८९३)
(१६) बेगार और जबर्दस्ती रसद की प्रथा बन्द करना (१८९३)
(१७) 'होम-चार्जेज' में कमी करना
(१८) सूती कपड़े पर से उत्पत्ति-कर हटा लिया जाय (१८९३)
(१९) वकीलों में से ऊंचे न्याय-विभाग के अफसर नियुक्त किये जायं (१८९४)
(२०) उपनिवेशों में भारतीयों की स्थिति (१८९४)
(२१) देशी-राज्य-स्थित प्रेसों के सम्बन्ध में भारतीय सरकार द्वारा प्रकाशित नोटिफिकेशन (१८९१) वापिस लिया जाय (१८९४)
(२२) किसानों की कर्जदारी दूर करने के उपाय किये जायं (१८९५)
(२३) तीसरे दर्जे की रेल-यात्रा की स्थिति में सुधार किया जाय (१८९५)
(२४) प्रान्तों को आर्थिक स्वतन्त्रता दी जाय (१८९६)
(२५) शिक्षा-विभाग की नौकरियों का इस तरह पुनः संगठन हो जिससे भारतीयों के साथ न्याय हो सके (१८९६)
(२६) १८१८, १८१९ और १८२७ के क्रमशः बंगाल, मदरास और बम्बई के रेगुलेशन वापस लिये जायं (१८९७)
(२७) १८९८ के राजद्रोह-सम्बन्धी कानून के विषय में (१८९७)
(२८) १८९८ के ताजीरातहिन्द व जाब्ता फौजदारी के विषय में (१८९७)
(२९) १८९९ के कलकत्ता म्युनिसिपल एक्ट के विषय में (१८९८)
(३०) १९०० के 'पंजाब लैण्ड एलीनेशन' एक्ट को रद करना (१८९८)
(३१) भारतीय जनता की आर्थिक स्थिति की जांच की जाय (१९००)
(३२) छोटी सरकारी-नौकरियों में भारतीयों की अधिक भरती की जाय (१९००)
(३३) 'पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट' में ऊंचे पदों पर भारतीयों की नियुक्ति सम्बन्धी पाबन्दियां उठा दी जायं (१९००)
(३४) इंग्लैंड में होने वाली पुलिस-प्रतिस्पर्धा-परीक्षाओं में भारतीयों को भी लिया जाय व पुलिस के ऊंचे ओहदों पर उनकी नियुक्ति की जाय (१९०१)
(३५) भारत-स्थित ब्रिटिश-सेना के कारण भारत पर ७,८६,००० पौण्ड प्रतिवर्ष का जो खर्च लादा गया, उसके विषय में (१९०२)
(३६) इण्डियन यूनीवर्सिटी कमीशन की सिफारिशों के सम्बन्ध में (१९०२)
(३७) इंडियन यूनीवर्सिटी एक्ट १९०४ के विषय में (१९०३)
(३८) आफीशियल सीक्रेट्स एक्ट १९०४ के बारे में (१९०३)
(३९) इण्डिया आफिस के खर्च तथा भारत-मन्त्री के वेतन के विषय में (१९०४)
(४०) भारत के राजकाज की पार्लमेंट-द्वारा समय-समय पर जांच (१९०५)
(४१) स्थानीय स्वराज्य की प्रगति के सम्बन्ध में (१९०५)
(४२) १९०८ के क्रिमिनल लॉ एमेंडमेण्ट एक्ट के बारे में (१९०८)
(४३) १९०८ के अखबार-कानून के विषय में (१९०८)
(४४) मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा दी जाय (१९०८)

(४५) लेजिस्लेटिव कौंसिल रेगुलेशन में सुधार किया जाय (१९०९)
(४६) युक्तप्रान्त के शासन-प्रबन्ध की जांच की जाय (१९०९)
(४७) लॉ-मेम्बरका पद एडवोकेटों, वकीलों और एटर्नियोंके लिए खोल दिया जाय (१९०९)
(४८) राजद्रोही सभाबन्दी क़ानून के विषय में (१९१०)
(४९) इण्डियन प्रेस एक्ट के बारे में (१९१०)
(५०) बढ़ते हुए सार्वजनिक व्यय की जांच की जाय (१९१०)
(५१) राजनैतिक कैदियों की आम रिहाई की जाय (१९१०)
(५२) श्री गोखले के प्रारम्भिक शिक्षा-बिल के विषय में (१९१०)
(५३) संयुक्त-प्रान्त के लिए सपरिषद् गवर्नर मिलने के विषय में (१९११)
(५४) पंजाब में कार्यकारिणी कौंसिल रखने के सम्बन्ध में (१९११)
(५५) इण्डिया कौंसिल में सुधार किया जाय (१९१३)
(५६) इंग्लैण्ड में रहने वाले भारतीय विद्यार्थियों के विषय में (१९१५)

३

कांग्रेस के विकास की प्रारम्भिक भूमिका

कांग्रेस को स्थापित हुए अब तक ५० वर्ष हो गये। इस लम्बे अरसे में भारत के राष्ट्रीय विकास की कई भूमिकाओं से वह गुजर चुकी है। हां, आगे जाकर उसके अन्दर कुछ मतभेद जरूर पैदा हो गये थे। परन्तु पिछला जमाना तो १८८५ से १९१५ बल्कि १९२१ तक ऐसा रहा, जिसमें भिन्न-भिन्न रायों और विचारों के लोगों ने मिलकर अपने लिए प्रायः एक ही कार्यक्रम तजवीज किया था। इसका यह अर्थ नहीं कि उन दिनों भारतीय राजनीति में मत-भेद और विचार-भेद पैदा ही नहीं हुए थे, बल्कि यह कि वे गिनती में आने लायक न थे।

युद्ध का निर्णय करने में या लड़ाई की रचना में सबसे बड़ी कठिनाई है युद्ध-क्षेत्र का चुनाव और व्यूह-रचना। दोनों तरफ के लोग हमला करें या बचाव, प्रार्थना करें या विरोध, युद्ध रोक कर शत्रु को सन्धि-चर्चा के लिए निमन्त्रण दें या एकदम छापा मारकर उसे घेर लें, इन्हीं की उधेड़-बुन में लगे रहते हैं। युद्ध-क्षेत्र में इन्हीं प्रश्नों पर सेनापतियों के दिमाग परेशान रहते हैं। इसी तरह राजनैतिक क्षेत्र में भी ऐसे प्रश्न आते हैं, जहां नेताओं को यह तय करना पड़ता है कि आन्दोलन महज लफ्जी और कागजी हो या कुछ करके बताया जाय। यदि कुछ कर दिखाना हो तब उन्हें यह निश्चय करना पड़ता है कि लड़ाई प्रत्यक्ष हो या अप्रत्यक्ष। यों तो ये प्रश्न बड़ी तेजी से हमारी आंखों के सामने दौड़ जाते हैं और उससे भी ज्यादा तेजी के साथ हमारे दिमाग में चक्कर काटते हैं, परन्तु राजनैतिक लड़ाइयों में बीसों वर्षों में जाकर कहीं एक के बाद दूसरी स्थिति का विकास होता है और जो काम पचास वर्षों की जबरदस्त लड़ाई के बाद आज बड़ा आसान और मामूली दिखाई देता है वह हमारे पूर्वजों को, जिन्होंने कि कांग्रेस की शुरुआत की, अपनी कल्पना के बाहर मालूम हुआ होगा। जरा खयाल कीजिये कि विदेशी माल के या कौंसिलों के, अदालतों या कालेजों के बहिष्कार या कुछ कानूनों के सविनय भंग का कोई प्रस्ताव उमेशचन्द्र बनर्जी या सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, फिरोजशाह मेहता या पं० अयोध्यानाथ, लालमोहन घोष या मनमोहन घोष, सुब्रह्मण्य ऐयर या आनन्दा चालू, ह्यूम साहब और वेडरबर्न साहब के सामने रक्खा गया है। अब यह सोचने में जरा भी देर नहीं लग सकती कि इन विचारों के कारण वे कितने भड़क उठे होते और न ऐसे उग्र कार्य-क्रम, बंग-भङ्ग के, कर्जन और मिण्टो की प्रतिगामी नीतियों के, या गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका सम्बन्धी अनुभवों के या जलियांवालाबाग के हत्याकाण्ड के पहले बन ही सकते थे। बात यह कि पिछली सदी के अन्त के प्रारम्भिक पन्द्रह सालों के लड़ाई-झगड़ों में जो कांग्रेस-नेता रहे वे ज्यादातर वकील-बैरिस्टर और कुछ व्यापारी एवं डॉक्टर थे, जिनका सच्चे दिल से यह विश्वास था कि हिन्दुस्तान सिर्फ इतना ही चाहता है कि अंग्रेजों और पार्लमेण्ट के सामने उसका पक्ष बहुत सुन्दर और नपी-तुली भाषा में रख दिया जाय। इस प्रयोजन के लिए उन्हें एक राजनैतिक संगठन की ज़रूरत थी और इसके लिए उन्होंने

राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की। उसके द्वारा वे राष्ट्र के दुःखों और उच्च आकांक्षाओं को प्रदर्शित करते रहे। जब इस बात को याद करते हैं कि किन-किन व्यक्तियों ने भारत की राजनीति को बनाया और उसे प्रभावित किया, इनके विश्वास क्या थे, तब वे सब भिन्न-भिन्न युग हमारे सामने आ जाते हैं जिनमें कि भारतीय राजनैतिक आन्दोलन इन पचास वर्षों में बंट गया है। किन परिस्थितियों में लोगों की उच्च आकांक्षाओं को, और उससे भी पहले उनके कष्टों को प्रदर्शित करने के लिये एक जोरदार साधन की उन्हें जरूरत थी, यह पहले बताया जा चुका है। साथ ही कांग्रेस की पूर्व पीठिका भी कुछ विस्तार के साथ बता दी गई है। उन्हें देखकर कहना ही पड़ता है कि वह जमाना और हालतें भी ऐसी थीं कि अपने दुख-दर्द दूर करने के लिए हाकिमों के सामने सिवा दलील और प्रार्थना करने के और नई रिआयतों और विशेषाधिकारों के लिए मामूली मांग करने के और कुछ नहीं हो सकता था। फिर यह मनोदशा आगे जाकर शीघ्र ही एक कला के रूप में परिणत हो गई। एक ओर कानून-प्रवीण-बुद्धि और दूसरी ओर खूब कल्पनाशील और भावना-प्रधान वक्तृत्वकला, दोनों ने उस काम को अपने ऊपर ले लिया जो भारतीय राजनीतिज्ञों के सामने था। कांग्रेस के प्रस्तावों के समर्थन में जो व्याख्यान होते थे और कांग्रेस के अध्यक्ष जो भाषण दिया करते थे उनमें दो बातें हुआ करती थीं—एक तो प्रभावकारी तथ्य और आंकड़े, दूसरे अकाट्य दलीलें। उनके उद्‌गारों में जिन बातों पर अक्सर जोर दिया जाता था वे ये हैं—अंग्रेज लोग बड़े न्यायी हैं और अगर उन्हें ठीक तौर पर वाकिफ रक्खा जाय तो वे सत्य और हक के पथ से जुदा न होंगे; हमारे सामने असली मसला अंग्रेजों का नहीं बल्कि अधगोरों का है; बुराई पद्धति में है, न कि व्यक्ति में; कांग्रेस बड़ी राजभक्त है, ब्रिटिश ताज से नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी नौकरशाही से उसका झगड़ा है; ब्रिटिश विधान ऐसा है जो लोगों की स्वाधीनता का सब जगह रक्षण करता है और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट प्रजातन्त्र पद्धति की माता है; ब्रिटिश विधान संसार के सब विधानों से अच्छा है; कांग्रेस राजद्रोह करने वाली संस्था नहीं है; भारतीय राजनीतिज्ञ सरकार का भाव लोगों तक और लोगों का सरकार तक पहुंचाने के स्वाभाविक साधन हैं, हिन्दुस्तानियों को सरकारी नौकरियां अधिकाधिक दी जानी चाहिए, ऊंचे पदों के योग्य बनाने के लिए उन्हें शिक्षा दी जानी चाहिए; विश्व-विद्यालय, स्थानिक संस्थायें और सरकारी नौकरियां ये हिन्दुस्तान के लिए तालीम-गाह होनी चाहिए; धारा-सभाओं में चुने हुए प्रतिनिधि होने चाहिए और उन्हें पूछने तथा बजट पर चर्चा करने का अधिकार भी देना चाहिए; प्रेस और जंगल-कानून की कड़ाई कम होनी चाहिए; पुलिस लोगों की मित्र बन के रहे; कर कम होने चाहिए; फौजी खर्च घटाया जाय; कम-से-कम इंग्लैंड उसमें कुछ हिस्सा ले; न्याय और शासन-विभाग अलहदा-अलहदा हों; प्रांत और केन्द्र की कार्य-कारिणियों और भारत-मन्त्री की कौंसिल में हिन्दुस्तानियों को जगह दी जाय; भारतवर्ष को ब्रिटिश-पार्लमेंट में प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व मिले और प्रत्येक प्रांत से दो प्रतिनिधि लिये जायं; नॉन-रेग्युलेटेड प्रांत रेग्युलेटेड प्रांतों की पंक्ति में लाये जायं; सिविल सर्विस वालों के बजाय इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन के नामी नामी अंग्रेज गवर्नर बनाकर भेजे जायं; नौकरियों के लिए भारत और इंग्लैण्ड में एक-साथ परीक्षायें ली जायं, इंग्लैण्ड को प्रति वर्ष जो रुपया भारत से जाता है वह रोका जाय और देशी उद्योग-धन्धों को तरक्की दी जाय; लगान कम किया जाय और बन्दोबस्त दायमी कर दिया जाय। कांग्रेस यहां तक आगे बढ़ी कि उसने नमक-कर को अन्याय-पूर्ण बतलाया, सूती माल पर लगे उत्पत्ति-कर को अनुचित बतलाया और सिविलियन लोगों को दिये जाने वाले विनिमय-दर-मुआवजे को गैर कानूनी बतलाया तथा ठेठ १८९३ में मालवीय जी महाराज की दृष्टि यहां तक पहुंच गई थी कि उन्होंने ग्राम-उद्योगों के पुनरुद्धार के लिए भी एक प्रस्ताव उपस्थित किया था।

भारतीय राजनीतिज्ञों का ध्यान जिन-जिन विषयों की ओर गया था उनका एक-निगाह में सिंहावलोकन करने से यह आसानी से मालूम हो जाता है कि उनकी मनोरचना किस प्रकार हुई थी। उस समय जब कि भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में कोई पथ-दर्शक नहीं था, उन लोगों ने जो रुख अख्त्यार किया था उसके लिए हम उन्हें बुरा नहीं कह सकते। किसी भी आधुनिक इमारत की नींव में छः फीट नीचे जो ईंट, चूना और पत्थर गड़े हुए हैं क्या उन पर कोई दोष लगाया जा सकता है? क्योंकि वही तो हैं जिनके ऊपर सारी इमारत खड़ी हो सकी है। पहले उपनिवेशों के ढङ्ग का स्व-शासन, फिर साम्राज्य के अन्तर्गत होमरूल, उसके बाद स्वराज्य और सबके ऊपर जाकर पूर्ण स्वाधीनता की मंजिलें एक-के-बाद-एक बन सकी हैं। उन्हें अपनी स्पष्ट बात के भी समर्थन में अंग्रेजों के प्रमाण देने पड़ते थे। अपनी समझ और अपनी क्षमता के अनुसार, उन्होंने बहुत परिश्रम और भारी कुर्बानियां की थीं। आज अगर हमारा रास्ता साफ है और हमारा लक्ष्य स्पष्ट है, तो यह सब हमारे उन्हीं पुरखाओं की बदौलत है कि जिन्होंने जंगल-झाड़ियों को साफ करने का कठिन काम किया है। अतएव इस अवसर पर हम उन तमाम महापुरुषों के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रदर्शित करें जिन्होंने कि हमारे सार्वजनिक जीवन की आरम्भिक मंजिलों में प्रगति की गाड़ी को आगे बढ़ाया था।

कांग्रेसियों के दिलों में कभी-कभी कुछ उत्तेजना और रोष के भाव आ गये हों, पर इसमें कोई शक नहीं कि ठेठ १८८५ से १९०५ तक कांग्रेस की जो प्रगति हुई उसकी बुनियाद थी वैध-आन्दोलन के प्रति उनका दृढ़ और अंग्रेजों की न्याय-प्रियता पर अटल विश्वास ही। इसी भाव को लेकर १८९३ में स्वागताध्यक्ष सरदार दयालसिंह मजीठिया ने कांग्रेस के विषय में कहा था कि "भारत में ब्रिटिश- शासन की कीर्ति का यह कलश है।" आगे चलकर उन्होंने यह भी कहा कि "हम उस विधान के मातहत सुख से रह रहे हैं जिसका विरुद है आजादी, और जिसका दावा है सहिष्णुता।" कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद १८८८) के प्रतिनिधि ने लार्ड रिपन का यह विचार उद्धृत किया था —"महारानी का घोषणा-पत्र कोई सुलह-नामा नहीं है, न वह कोई राजनैतिक लेख ही है; बल्कि वह तो सरकार के सिद्धान्तों का घोषणा-पत्र है।" लार्ड सेल्सबरी के इस वचन पर कि "प्रतिनिधियों के द्वारा शासन की प्रथा पूर्वी लोगों की परम्परा के मुआफिक नहीं है," जोर के साथ नाराजगी प्रकट की गई थी और १८९० में सर फिरोजशाह मेहता ने तो यहां तक कह दिया था कि "मुझे इस बात का कोई अन्देशा नहीं है कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अन्त में जाकर हमारी पुकार पर अवश्य ध्यान देंगे।" बारहवें अधिवेशन (१८९६) के अध्यक्ष-पद से मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी ने तो और भी असंदिग्धरूप में कहा कि "अंग्रेजों से बढ़कर ज्यादा ईमानदार और मजबूत कौम इस सूरज के तले कहीं नहीं है।" और जब कि उस कौम ने हिन्दुस्तानियों के अनुनय- विनय और विरोध का जवाब उलटा दमन से दिया, तब भी मदरास कांग्रेस (१८९८) के अध्यक्ष आनन्दमोहन वसु ने जोर देकर कहा था, कि "शिक्षित वर्ग इंगलैण्ड के दोस्त हैं, दुश्मन नहीं। इंगलैण्ड के सामने जो महान् कार्य है उसमें वे उसके स्वाभाविक तथा आवश्यक मित्र और सहायक हैं।" हमारे इन पूर्व-पुरुषों ने अंग्रेजों और इंगलैण्ड के प्रति जो विश्वास रक्खा वह कभी-कभी दया-जनक और हेय मालूम होता है; परन्तु हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उनकी मर्यादाओं को समझें। डॉ० सर रासबिहारी घोष के शब्दों में (२३ वीं कांग्रेस, मदरास, १९०८) "अपने कोमल विचार उन तक भेजें जिन्होंने अपने समय में अपने कर्तव्य का भरसक पालन किया है, फिर चाहे वह कितना ही अपूर्ण और त्रुटि-युक्त क्यों न हो, उनके बारे में अच्छी-बुरी रायें भी क्यों न हों। हो सकता है कि उनका उत्साह कुछ दबा हुआ हो, परन्तु मैं बिना शेखी के कहूंगा कि वह उत्साह सच्चा और शुद्ध-

भाव से परिपूर्ण था। वह वैसा ही था जिसे देखकर नौजवानों के दिल हिल उठते हैं और अनुप्राणित होते रहते हैं।" कांग्रेस के इतिहास में जो पहला जबरदस्त आन्दोलन हुआ वह पांच वर्षों (१९०६ से १९११) तक रहा। उसे उस समय ऐसे दमनकारी उपायों का सामना करना पड़ा जो उस समय जंगली समझे गये। हालांकि उसमें इधर-उधर मारकाट भी हो गई, मगर अन्त में उसमें पूरी सफलता मिली। आखिर १९११ में शाही घोषणा कर दी गई कि बंग-भंग रद्द कर दिया गया। किन्तु यह ब्रिटिश-सरकार की भारी प्रशंसा का विषय बन गया। इससे ब्रिटिश-न्याय के प्रति लोगों के मन में नया विश्वास पैदा हो गया और धुआंधार वक्तृताओं द्वारा कृतज्ञता-प्रकाश होने लगा। श्री अम्बिकाचरण मजुमदार ने कहा—"ब्रिटिश ताज के प्रति श्रद्धा-भक्ति के भावों से भरा प्रत्येक हृदय आज एक तान से धड़क रहा है; वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञता के प्रति कृतज्ञता और नवीन विश्वास से परिपूर्ण हो रहा है। हममें से कुछ लोगों ने तो कभी—अपनी मुसीबतों के अन्धकारमय दिनों में भी—ब्रिटिश-न्याय के अन्तिम विजय की आशा नहीं छोड़ी थी, उस पर से अपना विश्वास नहीं उठने दिया था।" परन्तु इसी के साथ कांग्रेसियों ने उन दुःखदायी कानूनों की तरफ से भी अपना ध्यान नहीं हटाया था, जो कि १९११ और उससे भी आगे तक जारी ही थे। कांग्रेस के बड़े-बूढ़ों ने, इसमें कोई सन्देह नहीं कि, अपनी सारी शक्ति शासन-विषयक सुधारों में और दमनकारी कानूनों को हटवाने में लगाई थी, परन्तु इससे यह अन्दाज करना गलत होगा कि वे सिर्फ भारतीय-प्रश्न के अंशों का ही खयाल करते थे, पूरे प्रश्न का नहीं। १८८६ के कलकत्ता-अधिवेशन में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा था—"स्व-शासन प्रकृति की व्यवस्था है, विधि का विधान है। प्रकृति ने अपनी पुस्तक में स्वयं अपने हाथों से यह सर्वोपरि व्यवस्था लिख रक्खी है—प्रत्येक राष्ट्र अपने भाग्य का आप ही निर्माता होना चाहिए।" २० वें अधिवेशन के सभापति-पद से सर हेनरी काटन ने 'भारत के संयुक्त राज्य' अथवा 'भारत के स्वतन्त्र और पृथक् राज्यों के संघ' की कल्पना की थी। दादाभाई ने यूनाइटेड किंगडम या उपनिवेशों के जैसे स्व-शासन या स्वराज्य का जिक्र किया था।

कांग्रेस के पहले पचीस सालों में जिनके ऊपर कांग्रेस की राजनीति का दारोमदार रहा, वे सरकार के दुश्मन नहीं थे। यह बात न केवल उन घोषणाओं से ही सिद्ध होती है जो कि समय-समय पर उनके द्वारा की जाती हैं, बल्कि स्वयं सरकार भी उनके साथ रिआयतें करके और जब-जब हिन्दुस्तानियों को ऊंचे पद व स्थान देने का मौका आया तब-तब उन्हीं को उसके लिए चुनकर यही सिद्ध करती रही है। ऐसे उच्च पदों के लिए न्याय-विभाग का क्षेत्र ही स्वभावतः सबसे उपयुक्त था। मदरास के सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर तो कांग्रेस के पहले ही अधिवेशन में सामने आये और श्री वी० कृष्णस्वामी ऐयर १९०८ में हुई मदरास की पहली कनवेंशन-कांग्रेस के एक मात्र कर्त्ता-धर्त्ता थे, जो बहुत कड़े विधान के मातहत हुई थी और जिसके लिए तत्कालीन मदरास गवर्नर ने अपना तम्बू देने की कृपा की थी। राष्ट्रवादियों और कांग्रेस का उल्लेख करते हुए यह कहने वाले श्री कृष्णस्वामी ऐयर

१. पुराने जमाने में कांग्रेसी लोगों को अपनी राजभक्ति की परेड दिखाने का शौक था। १९१४ में जब लार्ड पेण्टलैंड (गवर्नर) मदरास में कांग्रेस के पण्डाल में आये तो सब लोग उठ खड़े हुए और तालियों-द्वारा उनका स्वागत किया। यहां तक कि श्री ए० पी० पेट्रो, जो कि उस समय एक प्रस्ताव पर बोल रहे थे, एकाएक रोक दिये गये और उनकी जगह सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को राजभक्ति का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए कहा गया जिसे कि उन्होंने अपनी समृद्ध-भाषा में पेश किया।

ऐसी ही घटना लखनऊ-कांग्रेस (१९१६) के समय भी हुई थी, जब कि सर जेम्स मेस्टन कांग्रेस में आये थे और उपस्थित लोगों ने खड़े होकर उनका स्वागत किया था।

ही थे कि जो अंग सड़-गलकर बेकाम हो गये हैं उन्हें काट डालना चाहिए। सर शंकरन् नायर अमरावती में हुए अधिवेशन (१८९७) के सभापति हुए थे। और तो और श्री रमेशन् (सर वेपा सिनो) १८९८ से कांग्रेसवादी ही थे, जिस साल कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों की कठिनाइयों के सम्बन्ध में पेश किये गये प्रस्ताव का अनुमोदन किया था। इसके बाद जिनका नम्बर आता है वे हैं (१) श्री टी० वी० शेषगिरि ऐयर, जो १९१० की कांग्रेस में सामने आये, और (२) श्री पी० आर० सुन्दरम् ऐयर, जो १९०८ में श्री कृष्णस्वामी ऐयर के एक उत्साही सहकारी थे। ये छहों मदरास-हाईकोर्ट के जज बनाये गये और इनमें से दो कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्य भी हो गये—एक मदरास में और दूसरा दिल्ली में। इनमें से पहले (सर सुब्रह्मण्य) १८९९ में कांग्रेस के सभापति होने वाले थे परन्तु हाई कोर्ट के जज बना दिये जाने के कारण रह गये थे। श्रीमती बेसेण्ट द्वारा चलाये होमरूल-आन्दोलन के समय, १९१४ में, ये फिर कांग्रेस के क्षेत्र में आ गये। यही नहीं बल्कि अपनी नाइटहुड (सर की उपाधि) का भी परित्याग कर दिया, जिससे मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड दोनों ही इन पर नाराज़ हो गये। कहते हैं कि भूतपूर्व जज की हैसियत से जो पेन्शन इन्हें मिलती थी उसे बन्द कर देने की भी बात उस समय उठी थी, परन्तु बाद में कुछ सोच कर फिर ऐसा किया नहीं गया। और आगे चलें तो, सर पी० एस० शिवस्वामी ऐयर और सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी कांग्रेसी थे। इनमें से पहले तो १८९५ की कांग्रेस में सामने आये थे और दूसरे थे तो बाद के नये रङ्गरूट, लेकिन रहे सदा पहलों से भी ज्यादा उत्साही, क्योंकि डा० बेसेण्ट और उनके साथियों की नजरबन्दी के समय उन्होंने तो सत्याग्रह (निष्क्रिय प्रतिरोध) के प्रतिज्ञापत्र पर भी हस्ताक्षर कर दिये थे। सच तो यह है कि १९१७ और १९१९ के बीच कांग्रेसी क्षेत्र में सर सी० पी० रामस्वामी एक ऐसे चमकते हुये सितारे थे जिन्होंने अपने प्रकाश से भारत के राजनैतिक क्षितिज में चका-चौंध कर रक्खी थी। ये दोनों ही बाद में कार्य कारिणी के सदस्य बना दिये गये। यही हाल सर मुहम्मद हबीबुल्ला का हुआ, जिन्होंने पहले पहल १८९८ में कांग्रेस के मंच पर प्रकट होकर अपने बुद्धि कौशल एवं वक्तृत्व-शक्ति का परिचय दिया था। यह पहले मदरास और फिर भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य बनाये गये। मदरास-सरकार के लॉ-मेम्बर होने वाले सर एन० कृष्ण नैयर १९०४ की कांग्रेस में बोले थे, और उनके उत्तराधिकारी सर के० वी० रेड्डी तो १९१७ में जस्टिस-पार्टी का जन्म होने तक भी एक उत्साही एवं सुप्रसिद्ध कांग्रेसी थे। सर एम० रामचन्द्रराव बहुत समय तक कांग्रेस में रह चुके हैं। असलियत यह है कि १९२१ में मदरास की कार्यकारिणी में उनकी नियुक्ति भी हो चुकी थी, परन्तु फिर ऐन वक्त पर विचार बदल दिया गया। इस प्रकार ६ हाईकोर्ट के जज और ६ कार्यकारिणी के सदस्य तो अकेले मदरास के कांग्रेसमैन ही हो चुके थे। और हाल में टैरिफ-बोर्ड में श्री नटेसन की जो नियुक्ति हुई है उससे तो गैरमामूली क्षेत्रों में भी कांग्रेसियों के पसन्द किये जाने के उदाहरण की वृद्धि हुई है, यही नहीं बल्कि सर षण्मुखम चेट्टी को भी न्याय या शासन के विभागों में ही कोई पद देने के बजाय कोचीन का दीवान बनाना भी इसी बात का पोषक है। जो कांग्रेसमैन इस तरह पुरस्कृत हुए उनमें सब से पहले सम्भवतः श्री सी० जम्बुलिंगम् मुदालियर थे जो मदरास-कौंसिल के एक चुने हुए सदस्य थे और १८९२ में वहां के सिटी सिविल कोर्ट के जज बनाये गये थे। बम्बई में श्री बदरुद्दीन तैयबजी और नारायण चन्द्रावरकर दोनों जो क्रमशः १८८७ की मदरास-कांग्रेस और १९०० की लाहौर कांग्रेस के सभापति हुए थे, तथा श्री काशीनाथ त्र्यम्बक तैलंग बम्बई-हाईकोर्ट के जज बनाये गये। श्री समर्थ और भूपेन्द्रनाथ बसु भारत-मंत्री की (इण्डिया) कौंसिल के सदस्य बनाये गये और सर चिमनलाल सीतलवाड़ को बाद में बम्बई की कार्यकारिणी कौंसिल का एक सदस्य बना दिया गया।

कलकत्ता में श्री ए० चौधरी, जिन्होंने वंग-भंग के विरुद्ध होनेवाले आन्दोलन में प्रमुख भाग लिया था, लगभग उसी समय वहां की हाईकोर्ट के जज बना दिये गये। १९०८ में जब लॉर्ड मिण्टो ने भारत सरकार की लॉ-मेम्बरी के लिए व्यक्तियों का चुनाव किया तो, लेडी मिण्टो ने अपने पति लॉर्ड मिण्टो का जो जीवन-चरित्र लिखा है उससे मालूम पड़ता है कि दो नाम उनके सामने थे—एक तो श्री आशुतोष मुकर्जी का, "जो भारत के एक प्रमुख कानूनदां थे, पर थे सच्चे दिल से पुराणपन्थी, और सावधानी के साथ उनका पक्ष उपस्थित किया गया था," और दूसरा श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह का, जिनके बारे में लॉर्ड मिंएटो ने कहा बताते हैं कि "उनके विचार तो सौम्य हैं परन्तु हैं वे कांग्रेसी।" सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह १८९६ की कलकत्ता-कांग्रेस में, देशी-नरेश को बिना मुकदमा चलाये निर्वासित कर देने के प्रश्न पर बोले थे। और, यह हम सब जानते हैं कि, अन्त में (लॉ-मेम्बरी के लिए) तरजीह कांग्रेसमैन को ही दी गई। इसी प्रकार १९२० में गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी में जब जगह हुई तब भी लॉर्ड चेम्सफोर्ड (१९२०) ने तो महाराजा बर्दवान को रखना चाहा पर मि० माण्टेगु ने बड़ी कौंसिल के किसी चुने हुए सदस्य को ही रखना ज्यादा पसन्द किया। मि० माण्टेगु ने श्री श्रीनिवास शास्त्री का नाम इसके लिए सुझाया, लेकिन चूंकि ऐन मौके पर उन्होंने साथ नहीं दिया था इसलिए चेम्सफोर्ड ने उन्हें रखना पसन्द नहीं किया और श्री बी०एन०शर्मा को रक्खा—जो कि, जैसा हम आगे देखेंगे, अमृतसर-काण्ड के वक्त भी सरकार के पृष्ठ-पोषक बने रहे।

बंगाल में कांग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य जिन व्यक्तियों को ऊंचे सरकारी ओहदे मिले उनमें श्री एस०के० दास और सर प्रभासचन्द्र मित्र मुख्य हैं। इनमें श्री दास, जो १९०५ की कांग्रेस में, कार्यकारिणी में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति के प्रश्न पर बोले थे, बाद में भारत-सरकार के लॉ-मेम्बर हुए और मित्र महोदय बंगाल की कार्यकारिणी के सदस्य।

युक्तप्रान्त में सर तेजबहादुर सप्रू जैसे जबरदस्त व्यक्ति को भारत-सरकार का लॉ-मेम्बर बनाया गया। बिहार के सय्यद हसनइमाम १९१२ की कांग्रेस को पटना में आमंत्रित करने के बाद हाईकोर्ट के जज बन गये और श्री सच्चिदानन्दसिंह को बिहार की कार्यकारिणी का सदस्य बना दिया गया। यहां यह भी बतला देना चाहिए कि सरकारी पुरस्कार का रूप सदा बड़े सरकारी ओहदों का देना ही नहीं रहा है। फिरोजशाह मेहता को १९०५ में 'सर' की उपाधि दी गई—और वह भी लॉर्ड कर्जन के द्वारा जो बड़े प्रतिगामी वाइसराय थे। गोपालकृष्ण गोखले ने तो 'सर' की उपाधि मंजूर नहीं की और न ही वह भारत-सरकार की कार्यकारिणी के सदस्य बनते—यदि उनसे इसके लिए कहा भी जाता। उन्होंने तो खाली, सीधे-सादे, भारत-सेवक ही रहना पसन्द किया, जैसे कि सचमुच वह थे, और अगर सी० आई० ई० की उपाधि भी न दी गई होती तो वह ज्यादा खुश होते।

श्री वी० एस० श्रीनिवास शास्त्री को, यूरोपीय महायुद्ध के समय, लॉर्ड पेण्टलैण्ड ने मदरास-कौंसिल का सदस्य नामजद किया था। माण्ट-फोर्ड शासन-सुधारों का अमल शुरू होने पर उन्हें असेम्बली में नामजद किया गया, १९२१ में महाराजा कच्छ के साथ उन्हें साम्राज्य-परिषद् के लिए 'भारत का प्रतिनिधि' नियुक्त किया गया और उसके बाद ही वे प्रिवी-कौंसिलर बना दिये गये। इसके बाद वह अमरीका में भारत और साम्राज्य के सम्बन्ध में व्याख्यान देने गये। साम्राज्यान्तर्गत सभी उपनिवेशों ने उन्हें व्याख्यानों के लिए आमन्त्रित किया, लेकिन दक्षिण अफ्रीका ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। इस यात्रा के लिए सरकार ने ६०,०००) रु० का खर्च मंजूर किया था। १९२७ में शास्त्रीजी को ही दक्षिण अफ्रीका का सर्वप्रथम एजेण्ट-जनरल बनाकर सरकार ने मानों उस कमी की पूर्ति की, जो दक्षिण अफ्रीका में व्याख्यान के लिए न बुलाने से हुई थी। इस प्रकार जिस पुरस्कार को नापसन्द,

किया गया था वही आगे चलकर साम्राज्य का आधार-स्तम्भ बन गया।

यहां हमने कुछ ऐसे प्रमुख कांग्रेसियों का उल्लेख किया है जो सरकार-द्वारा पुरस्कृत हुए हैं। लेकिन इस पर से किसी को यह खयाल नहीं बना लेना चाहिए कि जो उच्चपद उन्हें दिये गये उनके लायक शिक्षा, संस्कृति और उच्च-चारित्र्य का किसी भी प्रकार उनमें अभाव था। ये उदाहरण तो सिर्फ यह बतलाने की ही गरज से दिये गये हैं कि सरकार को भी अगर योग्य हिन्दुस्तानियों की जरूरत हुई तो इसके लिए उसे भी कांग्रेसियों पर ही निगाह डालनी पड़ी है; और उनके राजनैतिक विचारों को उसने ऐसा नहीं समझा है जो वह उन्हें सरकारी विश्वास एवं बड़ी-से-बड़ी जिम्मेदारी के ओहदों के लिए नाकाबिल मान लेती।

४

ब्रिटेन की दमन नीति व देश में नई जागृति

भारत में ब्रिटिश-शासन का इतिहास दमन और सुधार की एक लम्बी कहानी है। जब-जब कुछ सुधार हुआ, उससे पहले दमन भी जरूर हुआ। जब-जब जनता में कोई आन्दोलन शुरू हुआ है, तब-तब जोरों का दमन किया गया और उसमें यह नीति रक्खी गई कि जबतक लोग आन्दोलन करते-करते बिलकुल थक न जायं तबतक उनकी मांगों पर कोई ध्यान न दिया जाय। लॉर्ड-लिटन का १८७० का प्रेस-ऐक्ट जो जल्द ही वापस ले लिया गया, सरकार की इस नीति की पूर्व-सूचना थी। राष्ट्र के बढ़ते हुए आत्मचैतन्य का दूसरा जवाब शस्त्र-विधान के रूप में मिला, जिसने राष्ट्र के दुःख-रूपी फोड़े को और भी पका दिया। १८८६ में इन्कमटैक्स एक्ट बना। उसका भी तीव्र विरोध उसी समय किया गया। जैसे-जैसे कांग्रेस हर साल बढ़ती गई, सरकारी अधिकारी भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखने लगे। लॉर्ड डफरिन ने ह्यूम साहब को यह सलाह दी थी कि वह कांग्रेस का क्षेत्र केवल सामाजिक न रखकर राजनैतिक भी बनावें। किन्तु वही लॉर्ड डफरिन फिर कांग्रेस के दुश्मन हो गये और उसे राजद्रोही कहने लगे। युक्तप्रान्त के तत्कालीन लेफ्टिनेण्ट गवर्नर सर ऑकलैण्ड कॉलविन के साथ इस विषय पर ह्यूम साहब की जो खतोकितावत हुई थी, वह ध्यान देने लायक है।

यद्यपि ह्यूम साहब के लिए यह आनन्द की बात है कि १८८६ में वाइसराय लॉर्ड डफरिन ने कलकत्ता में और १८८७ में मदरास के गवर्नर ने कांग्रेस का स्वागत किया, लेकिन बाद के सालों में युक्तप्रान्त के सर ऑकलैण्ड जैसे प्रान्तीय शासक इसे शत्रु-भाव से देखने लग गये। इन महाशय ने कांग्रेस को समाज-सुधार तक ही मर्यादित रहने की सलाह दी। शायद उन्हें यह पता न था कि ह्यूम साहब ने भी शुरू में यही सोचा था, परन्तु लॉर्ड डफरिन के कहने से ही इसे राजनैतिक संगठन का रूप दिया गया। सर ऑकलैण्ड की सम्मति में यह आन्दोलन समय से पूर्व, और मदरास के अधिवेशन से उग्र रूप धारण करने के कारण खतरनाक भी था। उन्होंने कहा कि कांग्रेस का सरकार की निन्दा करने का रवैया सर्व-साधारण में सरकार के प्रति घृणा पैदा करेगा और देश में राजभक्त और देशभक्त ऐसे दो भेद खड़े हो जायंगे। साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि कांग्रेस भारतीय जनता की प्रतिनिधि बनने का जो दावा करती है, वह ठीक नहीं है। ह्यूम साहब ने इसका मुंहतोड़ जवाब दिया।

इलाहाबाद के चौथे अधिवेशन में कांग्रेस को अकथनीय कठिनाइयां हुई। उसे पण्डाल तक के लिए जमीन नहीं मिली। श्रीमती एनी बेसेण्ट ने अपनी कांग्रेस-सम्बन्धी पुस्तक में एक ऐसे सज्जन का उदाहरण दिया है, जो अपने जिला-अफसर की इच्छा के खिलाफ मदरास (१८८७) के अधिवेशन में शामिल हुआ था और उससे शान्ति-रक्षा के नाम पर २०,०००) की जमानत मांगी गई थी। हालत तेजी से खराब होती गई और १८९० में सरकार का विरोध बहुत बढ़ गया। बंगाल-सरकार ने सब मंत्रियों और सब विभागों के प्रमुख अफसरों के पास एक गश्ती-पत्र भेजा, जिसमें उन्हें यह

हिदायत दी गई थी कि "भारत-सरकार की आज्ञा के अनुसार ऐसी सभाओं में दर्शक-रूप में भी सरकारी अफसरों का जाना ठीक नहीं है और ऐसी सभाओं की कार्रवाई में भाग लेने की भी मनाही की जाती है।" कांग्रेस ने गवर्नर के प्राइवेट-सेक्रेटरी के पास सात 'पास' भेजे थे, वे भी लौटा दिये गये। २५ जून १८९१ को भारत-सरकार ने देशी रियासतों के प्रेसों पर अनेक पाबन्दियां लगाने के लिए एक गश्ती-पत्र जारी किया। कांग्रेस ने १८९१ में इसका विरोध किया था।

१८९२ में कौंसिलें और बड़ी कर दी गईं और जनता के थोड़े से प्रतिनिधि—७ मदरास में, ६ बम्बई में (सरदारों के दो प्रतिनिधि मिलाकर) और ७ बंगाल में—उनमें ले लिये गये। इस तरह लोक-प्रतिनिधियों की संख्या बढ़ जाने पर सरकार ने जरूरी समझा कि भारतवासियों को सरकारी नौकरियों में जो-कुछ विशेषाधिकार मिले हैं वे कम कर दिये जायं। (विस्तार के लिए दूसरे अध्याय का सरकारी नौकरियों-सम्बन्धी प्रस्तावों के सारांश वाला प्रकरण देखें) पहले शिक्षा-विभाग में यह नियम बनाया गया था कि उसमें भारतीयों और यूरोपियनों के लेने में कोई भेदभाव न रक्खा जाय; परन्तु उनकी योग्यता में जहां समानता कायम रक्खी गई तहां दरजे में विषमता ला दी गई। इसके बाद हिन्दुस्तानी कुछ जगहों पर लिये ही नहीं गये; उनका दरजा कम कर दिया गया और उनकी तनख्वाह और भी कम कर दी गई। होमचार्जेज का प्रवाह भी ३० सालों में ७० लाख पौण्ड से बढ़कर १२० लाख पौण्ड हो गया। १८९७ में १२४ ए और १५३ ए धारायें बनाई गईं। इनसे सरकार के प्रति सचमुच असन्तोष पैदा हो गया। यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि १०८ और १४४ धाराओं का प्रयोग पहले-पहल राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं पर ही किया गया। १८९७ में पूना के प्लेग-सम्बन्धी दंगे के प्रसङ्ग में नातू-बन्धु बिना मुकदमे के गिरफ्तार कर लिये गये थे, वे १८९९ में रिहा हो गये। फिर इसका आक्रमण बङ्गाल पर हुआ और उसके पर काट दिये गये। २० वीं सदी के पहले पांच साल लॉर्ड कर्जन के दमनपूर्ण शासन के थे। कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारों में कमी, सरकारी गुप्त समितियों का कानून, विश्व-विद्यालयों को सरकारी नियन्त्रण में लाना जिससे शिक्षा महंगी होगई; भारतीयों के चरित्र को 'असत्यमय' बताना, बारह सुधारों का बजट, तिब्बत-आक्रमण (जिसे पीछे से तिब्बत-मिशन का नाम दिया गया) और अन्त में बंग-विच्छेद ये सब लॉर्ड कर्जन के ऐसे कार्य थे, जिनसे राजभक्त भारत की कमर टूट गई और सारे देशमें एक नई स्पिरिट पैदा होगई।

बंग-भंग ने बंगाली भाषाभाषी जनता को उनकी इच्छाओं के विरुद्ध दो प्रांतों में बांट दिया था। इसके परिणामस्वरूप जहां जनता में एक व्यापक और जबरदस्त आन्दोलन उत्पन्न हुआ, वहां सरकार ने भी उग्रता से दमन शुरू कर दिया। जुलूस, सभा तथा अन्य प्रदर्शन किये जाते थे—और उधर सरकार उन्हें रोक देती थी। हड़तालें होती थीं और विद्यार्थी तथा नागरिक एकसी सजा पाते थे। शिक्षणालयों के नियम और भी सख्त कर दिये गये तथा विद्यार्थियों को राजनीति में भाग लेने से रोक दिया गया। पूर्वी बंगाल के लैफ्टिनैण्ट गवर्नर सर बैम्फील्ड फुलर ने बड़े-बड़े प्रतिष्ठित नागरिकों को बुलाकर धमकी दी कि "सम्भव है खून-खराबी करनी पड़े।" इसके साथ ही पूर्वी बंगाल में गुरखा पलटन के आने की घोषणा भी की गई। यह सब तब हुआ, जब पण्डित मालवीयजी के कथनानुसार 'जनता में हिंसा की भावना का चिह्न तक नहीं पाया जाता था।' लेकिन जैसे गेंद को जितने जोर से जमीन पर फेंको वह उतनी ही जोर से ऊंची उठती है और ढोल को जितना ही पीटो उतना ही अधिक आवाज करता है, ठीक उसी तरह सरकार की उत्तरोत्तर उग्र और नग्न-रूप धारण करने वाली दमन-नीति के कारण नवजाग्रत चेतना भी सचमुच व्यापक, विस्तृत और गहरी होती गई। देश के एक कोने में जो घटना होती थी वह सारे देश में फैल जाती थी। सरकार का प्रत्येक दमन-कार्य देश में उलटा

असर करता था। सम्पूर्ण भारत ने बंगाल के सवाल को अपना सवाल बना लिया। प्रत्येक प्रान्त ने बंगाल के प्रश्न के साथ अपनी समस्याओं को और जोड़ कर आन्दोलन को ज्यादा गहरा रंग दे दिया। 'कैनल कालोनाइजेशन बिल' ने पंजाब के सैनिक प्रदेश में जनता के अन्दर एक नया तूफान खड़ा कर दिया, जिसके सिलसिले में लाला लाजपतराय और सरदार अजितसिंह को देश-निकाले की सजा मिली। ऐसे समय कलकत्ता कांग्रेस ने ठीक ही भारत के पितामह दादाभाई नौरोजी को अपना सभापति चुना। दादाभाई के 'स्वराज्य' शब्द के प्रयोग ने अधगोरों की रोष-ज्वाला को और भी प्रचंड कर दिया।

राजनैतिक सभाओं व प्रदर्शनों में विद्यार्थियों को सम्मिलित होने से रोकने के फल-स्वरूप स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार तथा राष्ट्रीय-शिक्षा का आन्दोलन शुरू हुआ। केवल पूर्वी बंगाल में २४ राष्ट्रीय हाईस्कूल खुल गये और भूतपूर्व जस्टिस सर गुरुदास बनर्जी के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा के प्रसार के लिए 'वंग जातीय विद्या-परिषद्' की स्थापना की गई। बाबू विपिनचन्द्रपाल सम्पूर्ण देश में घूम-घूमकर राष्ट्रीयता, राष्ट्रीय-शिक्षा और नव-चैतन्य का जोर-शोर से प्रचार करने लगे। १९०७ में आन्ध्र-देश में उनका दौरा बहुत ही शानदार और सफल रहा। राजमहेन्द्री के निवासियों ने उनके आने पर एक राष्ट्रीय हाईस्कूल खोलने का निश्चय किया। ट्रैनिंग कालेज के विद्यार्थियों ने उन्हें मान-पत्र दिया था इस कारण कुछ विद्यार्थियों को सरकारी अधिकारियों ने कालेज से निकाल दिया था। वे विद्यार्थी राष्ट्रीय-संग्राम के सिपाही हो गये। इस तरह सरकार की बेरोक दमन-नीति ने देशभक्तों और वीर सिपाहियों को पैदा किया।

१९०७ में राष्ट्र ने केवल प्रस्ताव पास करना छोड़कर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय-शिक्षा के ठोस क्रियात्मक प्रस्तावों पर जोरों से अमल भी किया। जहां कि बंगाल, महाराष्ट्र, मध्यप्रान्त, पंजाब व आन्ध्र में राष्ट्रीय स्कूलों और विश्वविद्यालयों का जन्म बड़े वेग से हो रहा था, तहां स्वदेशी का आन्दोलन सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गया। हाथ के कपड़े का उद्योग एक बार फिर पुनर्जीवित हो गया। इस बार करघे में 'फटका शाल' भी इस्तेमाल किया गया। इस उद्योग को उत्तेजना देने के लिए विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का आन्दोलन भी किया गया था। सम्पूर्ण वातावरण में ही एक नवीन जीवन का संचार हो गया था। राष्ट्रीय जागृति के साथ-साथ सरकार का दमन भी बढ़ता गया। दमन-नीति से पोषण पाकर राष्ट्रीय अभ्युत्थान उलटा बढ़ने लगा।

इस समय बंगाल से दो व्यक्तियों ने भारतीय इतिहास के रंगमंच पर आकर बहुत महत्वपूर्ण भाग लिया। उनमें से एक विपिन बाबू के सम्बन्ध में हम कुछ ऊपर लिख चुके हैं। दूसरे अरविन्द बाबू भारत के राजनैतिक आकाश में बरसों तक उज्ज्वल सितारे की तरह चमकते रहे। राष्ट्रीय-शिक्षा आन्दोलन उनका शुरू में ही सहयोग मिल जाने के कारण बहुत चमक गया। वह इंग्लैण्ड में उत्पन्न हुए थे, अंग्रेजी वातावरण में ही पले और अंग्रेजी स्कूलों और विश्वविद्यालयों में ही उन्होंने तालीम पाई। घुड़सवारी की परीक्षा में असफल होने के कारण इण्डियन सिविल सर्विस में वह कोई जगह न पा सके थे। वह बड़ौदा के शिक्षा-विभाग में काम करने के लिए भारत में वैसे ही आये, जैसे यहां प्रायः यूरोपियन आते हैं। उनकी प्रतिभा टूटते हुए तारे के समान चमक उठी और उनके प्रकाश की प्रभा एक बाढ़ की तरह हिमालय से कन्या कुमारी तक फैल गई।

बंगाल से नौ नेता निर्वासित किये गये—कृष्णकुमार मित्र, पुलिनबिहारी दास, श्यामसुन्दर चक्रवर्ती, अश्विनीकुमार दत्त, मनोरंजन गुह, सुबोधचन्द्र मल्लिक, शचीन्द्रप्रसाद बसु, सतीशचन्द्र चटर्जी और भूपेनचन्द्र नाग। ये नेता बंगाल को और विशेषकर पूर्व बंगाल को संगठित कर रहे

थे। पराक्रम और शौर्य उस समय आदर्श थे। दूसरी तरफ सर. बैमफील्ड फुलर का आदर्श 'गुरखा सेना' व 'यदि आवश्यक हो तो खून-खराबी' थे। १९०८ में स्थिति चरम-सीमा को पहुंच गई थी। अखबारों पर मुकदमे चलाना एक आम बात हो गई। 'युगान्तर', 'संध्या', 'वन्देमातरम्' नई जाग्रति के प्रचारक पत्र थे, वे सब बन्द कर दिये गये। 'संध्या' के सम्पादक देशभक्त ब्रह्मबांधव उपाध्याय अस्पताल में मर गये। अनेक कठिनाइयों और तीन मुकदमों से गुजरने के बाद श्री अरविन्द ब्रिटिश-भारत ही छोड़कर पांडिचरी चले गये और वहां आश्रम स्थापित करके रहने लगे।

३० अप्रैल १९०८ को मुजफ़्फरपुर में दो स्त्रियों—श्रीमती और कुमारी कैनाडी—पर दो बम गिरे। ये बम स्थानीय जिला जज किंग्लफोर्ड को मारने के लिए बनाये गये थे। इस अपराध के लिए १८ वर्षीय युवक श्री खुदीराम बसु को फांसी की सजा मिली। उसकी तसवीरें सारे देश में घर-घर फैल गईं। स्वामी विवेकानन्द के भाई युवक भूपेन्द्रनाथ दत्त के सम्पादकत्व में निकलनेवाले 'युगान्तर' के कालमों में हिंसावाद का खुल्लम-खुल्ला प्रचार किया जाने लगा। जब उस युवक को लम्बी सजा मिली, तो उसकी बूढ़ी माता ने अपने पुत्र की इस देश-सेवा पर हर्ष प्रकट किया और 'बंगाल' की ५०० स्त्रियां उसे बधाई देने उसके घर पर गईं। उस युवक ने भी अदालत में यह घोषणा की कि मेरे पीछे अखबार का काम सम्हालने के लिए ३० करोड़ आदमी मौजूद हैं। इसी विश्वास के कारण यह आन्दोलन इतना फूला फला। राजद्रोह या दण्ड का भय जनता के दिल से उठ गया। लोग राजद्रोह का यथाशक्ति प्रचार करते और मुकदमा चलने पर तमाम कानूनी साधन अपनी बरीयत या छुटकारे के लिए इस्तेमाल में लाते। 'वन्देमातरम्' में राजविद्रोहात्मक लेखों के लिए श्री अरविन्द पर जो मुकदमा चलाया गया, वह भी इस संग्राम में अपवाद न था। महाराष्ट्र में १३ जुलाई १९०८ को लोकमान्य तिलक गिरफ्तार किये गये और उसी दिन आन्ध्र में श्री हरि सर्वोत्तमराव तथा दो अन्य सज्जन पकड़े गये। पांच दिनों की सुनवाई के बाद लोकमान्य तिलक को छः साल देश-निकाले की सजा मिली। १८९७ में छुटी हुई छः मास की कैद भी इसके साथ जोड़ दी गई। आन्ध्र के श्री हरि-सर्वोत्तमराव को नौ महीने की सजा मिली थी। सरकार ने इतनी थोड़ी सजा के खिलाफ अपील की और हाई कोर्ट ने उनकी सजा बढ़ाकर तीन साल कर दी। राजद्रोह के लिए पांच साल सजा देना तो उन दिनों मामूली बात थी। इसके बाद जल्दी ही राजद्रोह देशसे गायब होगया। वास्तवमें वह अन्दर ही-अन्दर अपना काम करने लगा और उसकी जगह बम व पिस्तौल ने ले ली। १९०८ में राजद्रोही संभाबन्दी-कानून व 'प्रेस एक्ट' नाम के दो कानून जनता के पूर्ण विरोध करने पर भी सरकार ने पास कर दिये और दो साल बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेन्ट एक्ट भी बन गया। सभाबन्दी बिलपर बहस करते हुए श्री गोखले ने सरकार को चेतावनी दी कि "युवक हाथ से निकले जा रहे हैं और यदि हम उन्हें वश में न रख सकें तो हमें दोष मत देना।"

कभी-कभी इक्के-दुक्के राजनैतिक खून भी होने लगे जिनमें सबसे साहसपूर्ण खून १९०७ में लन्दन की एक सभा में सर कर्जन वाइली का हुआ था। यह खून मदनलाल धिंगड़ा ने किया था, जिसे बाद में फांसी दी गई। अभियुक्त को बचाने की कोशिश करने वाले डॉ० लालकाका नामक एक पारसी सज्जन को भी फांसी की सजा दी गई। लाहौर (१९०९) में होने वाले कांग्रेस के २४ वें अधिवेशन से सभापति पं० मदनमोहन मालवीय ने इन घटनाओं तथा नासिक के कलक्टर मि० जैक्सन की हत्या पर दुःख प्रकट किया। लन्दन में रहने वाले कुछ विद्यार्थी भी इसके समर्थक थे। मिण्टो-मॉर्ले सुधारों, या भारत-सरकार और मद्रास व बम्बई की सरकारों की कौंसिल में भारतीयों के लेने से भी यह बढ़ा-चढ़ा वैमनस्य शान्त न हुआ। जब तक बंग-विच्छेद उठा न लिया जाय,

तब तक शान्ति की कोई सम्भावना न थी। लेकिन ऐसा करने से नौकरशाही का रौब जाता था। यदि वह आन्दोलन के आगे एक बार भी झुक जाय, तो उसकी शान किरकिरी होती थी। उसे डर था कि यदि एक बार हमारी शान गई, तो फिर हम हकूमत भी न कर सकेंगे। तब बंग-भंग के कारण जो सांप-छछूंदर की-सी हालत हो गई थी उसमें से छूटने के लिए एक रास्ता ढूंढा गया। जब लॉर्ड मिण्टो ने अपनी जगह लॉर्ड हार्डिङ्ग को दी और लॉर्ड मिडलटन की जगह लॉर्ड क्रू भारत-मंत्री बने, तो भारत में ब्रिटिश नरेश जार्ज पंचम के राज्याभिषेक-महोत्सव का लाभ उठाकर बंग-भंग रद्द कर दिया गया और भारत की राजधानी कलकत्ते से उठाकर दिल्ली ले आये।

जब यह कहा जाता है कि बंग-भंग रद्द कर दिया गया, तो यह नहीं समझना चाहिए कि स्थिति यथापूर्व कर दी गई। पहले पश्चिमी बंगाल और आसाम-सहित पूर्वी बंगाल के रूप में बंग-भंग किया गया था। अब उसका रूप बदल दिया गया। पहले बिहार को पश्चिमी बंगाल में मिला लिया था, लेकिन अब उसे छोटा नागपुर और उड़ीसा के साथ मिला कर एक प्रान्त बना दिया, अर्थात् आसाम के साथ पूर्वी और पश्चिमी बंगाल के दो प्रान्तों के बजाय अब तीन प्रान्त हो गये—बंगाल एक प्रान्त; बिहार छोटा नागपुर और उड़ीसा, दूसरा प्रान्त; और आसाम तीसरा प्रान्त। राज्याभिषेक के उत्सव में जिस एक अन्याय को दूर नहीं किया गया था, वह अब उड़ीसा को पृथक् प्रान्त स्वीकार करके दूर किया गया है। कहते हैं कि लॉर्ड हार्डिङ्ग ने दक्षिण अफ्रीका में शर्तबन्दी कुली-प्रथा को नष्ट कर तथा बंग-भंग को रद्द करके अपना शासन-काल स्मरणीय बना दिया, लेकिन वस्तुतः जिस घटना ने उनका शासन चिरस्मरणीय बनाया वह २५ अगस्त १९११ का खरीता था। यह खरीता ही भावी-सुधारों का आधार रहा है। इसमें उन्होंने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की योजना में प्रान्तीय स्वतन्त्रता के सिद्धान्त को बिना किसी ननुनच के स्वीकार कर लिया था।

इन सब सफलताओं के बाद, जिनका श्रेय कांग्रेस को था, यह स्वाभाविक था कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन (कलकत्ता, १९११) बहुत खुशी के साथ मनाया जाता। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने, बंगाल को जो सारे हिन्दुस्तान ने मदद दी थी उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करते हुए, यह उच्च आशा प्रकट की थी कि "भारत भी स्वशासन-प्राप्त राष्ट्रों के स्वतन्त्र संघ-साम्राज्य का एक अभिन्न अंग बनेगा।" लेकिन इन सब आशाओं और खुशियों में लोग राजद्रोही सभाबंदी-कानून १९०८, प्रेस-एक्ट १९०८ और क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट (१९१०) को भूले नहीं थे। इन्हीं के द्वारा तो जनता की आजादी की जड़पर कुल्हाड़ा चल गया था। इन सबसे बढ़कर १८१८ का रेगुलेशन ३ तथा अन्य प्रान्तों के रेगुलेशन अब तक मौजूद थे, जिनकी रू से १९०६—८ के देश निकाले जगह-जगह दिये गये थे। भारत में बनने वाले कपड़े पर 'उत्पत्ति-कर' भी अब तक मौजूद था। इनकी बदौलत जान-माल की स्वतन्त्रता तथा राष्ट्रीय उद्योग-धन्धों के हित खतरे में थे। इन सबसे भी बढ़ कर अब तक राजनैतिक कैदी जेलों में बन्द थे। लोकमान्य तिलक मधुमेह रोग में ग्रस्त होकर अकेले और बिना किसी मित्र के लेकिन दृढ़ता और धैर्य के साथ मंडाले के किले में कैद थे। इस समय श्री गोखले के प्राथमिक शिक्षा-बिल की बहुत चर्चा थी, जिसके पास होने की उम्मीद बहुत कम थी। दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों की बुरी हालत थी जिसके लिए देशव्यापी आन्दोलन की जरूरत थी।

१९११ में यह हालत थी। १९१२ में राजनैतिक खिंचाव कुछ-कुछ कम हो गया था। लेकिन इसी वर्ष में एक भारी दुर्घटना हो गई। लॉर्ड हार्डिङ्ग जब जुलूस के साथ हाथी पर नई राजधानी दिल्ली में प्रवेश कर रहे थे, किसी ने उन पर बम फेंका, और वह मरते-मरते बचे। इस पर बांकीपुर में कांग्रेस ने, सभापति के भाषण के बाद, बरखास्त होने के रिवाज को तोड़कर, इस घटना पर दुःख

तथा आक्रमण पर रोष-प्रकाश का तार लार्ड हार्डिङ्ग के पास भेजने का प्रस्ताव पास किया। इस घटना के बाद प्रेस का और कठोरता से नियन्त्रण होने लगा, जिससे प्रेस-एक्ट को रद करने की लगातार आवाज ने भी १९१३ में जोर पकड़ लिया। कांग्रेस कई सालों तक इसका विरोध करती रही। १९०८ का प्रेस-एक्ट सबसे अधिक खराब था, जिसे १९१० में स्थायी कानून बना दिया गया। इस समय श्री सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भारत-सरकार के लॉ मेम्बर थे।

माण्टफोर्ड-सुधारों के बाद क्रिमिनल लॉ एमेण्डमेण्ट एक्ट को छोड़कर बाकी सब दमनकारी कानून रद कर दिये गये। बंग-भंग के रद किये जाने और हिंसावाद के शान्त हो जाने के बाद भी प्रेस-एक्ट से लोगों को सख्त तकलीफें झेलनी पड़ती थीं। इधर राजनैतिक वातावरण में जो एक स्तब्धता और शान्ति आ गई थी, उसकी जगह १९१४-१८ के महासमर की हलचल ने ले ली और इस भीषण विश्व-क्रान्ति के आरम्भ में ही एक सन्तोष-जनक घटना हो गई। बंग-भंग के दिनों से ही मुसलमान राष्ट्रीय आदर्शों से अलग रहे थे और नौकरशाही पर अपना विश्वास जमा रक्खा था। १९१३ में उन्होंने भी ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वशासन के ध्येय को स्वीकार कर लिया। मुस्लिम-लीग ने अपने गत अधिवेशन में बड़े जोर के साथ यह विश्वास भी प्रकट कर दिया कि "देश का राजनैतिक भविष्य दो महान् जातियों (हिन्दू और मुसलमानों) के मेल सहयोग और सहकार्य पर निर्भर है।" कांग्रेस ने १९१३ में मुस्लिम-लीग के इस प्रस्ताव की बहुत तारीफ की।

जुलाई १९१४ में महासमर छिड़ गया और नवम्बर में जब जर्मनी फ्रांस का दरवाजा खटखटा रहा था, लार्ड हार्डिङ्ग ने बड़े साहस का काम किया कि भारतवर्ष से फौज बाहर भेज दी। इंग्लैण्ड बड़ी आफत में था। हिन्दुस्तान में फौज इसलिए रक्खी गई थी कि वह इंग्लैण्ड के लिए हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सके, लेकिन यदि इंग्लैण्ड खुद खतरे में हो, तब भारत में ठहरी हुई सेना से लाभ ही क्या? लार्ड हार्डिङ्ग ने भारतीय सेना को यूरोप भेज दिया। मार्सेल्स में एक दिन भी आराम किये बगैर हिन्दुस्तानी फौज फ्लांडर्स-रणक्षेत्र में, जहाँ अग्नि वर्षा हो रही थी, भेज दी गई। उस फौज ने मित्र-राष्ट्रों को उस भारी विपत्ति से बचा दिया, जो उसके न पहुंचने पर १९१५ के फरवरी-मार्च में इनपर आ जाती। १९१४ की कांग्रेस में स्व-शासन की मांग फिर की गई। कांग्रेस ने यह प्रस्ताव पास किया —"वर्तमान आपत्ति के वक्त हिन्दुस्तान के लोगों ने जिस उत्कृष्ट राजभक्ति का परिचय दिया है उसे देखते हुए यह कांग्रेस सरकार से प्रार्थना करती है कि वह इस राजभक्ति को और गहरी व स्थिर बनावे और उसे साम्राज्य की एक कीमती सम्पत्ति बना ले। ऐसा करने के लिए यहां और बाहर सम्राट् की भारतीय और अन्य प्रजा के बीच जो द्वेषजनक भेदभाव है, उसे दूर करदे, २५ अगस्त १९११ के खरीते में प्रान्तीय स्वतन्त्रता के बारे में जो वादे किये हैं उन्हें पूरा करे, और भारत को संघ-साम्राज्य का एक अंश बनाने और उस हैसियत के पूरे अधिकार देने के लिए जो काम जरूरी हों वह सब करे।" हमने यह लम्बा प्रस्ताव इसलिए उद्धृत किया है कि जिससे यह मालूम हो सके कि उस समय हमारी राजनैतिक आकांक्षाओं की कक्षा कितनी ऊंची थी। श्रीमती बेसेण्ट ने भारतीय समस्या को पुरस्कार के आधार पर पेश नहीं किया, बल्कि जन्मसिद्ध अधिकार के रूप में रक्खा। उन्होंने १९१४ के मद्रास-अधिवेशन में बड़ी दिलेरी के साथ 'जैसे के साथ तैसा' के सिद्धान्त के व्यवहार पर अमल होने की यह मांग पेश की, कि जिन देशों से भारतीय निकाले जाते हों उनका माल हिन्दुस्तान में न मंगाया जाय। श्रीमती बेसेण्ट ने लॉर्ड पेण्टलैण्ड के समय में होमरूल का महान् आन्दोलन उठाया। वही पुराना कार्य-क्रम—स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा तथा होमरूल—पुनर्जीवित किया गया। उन्होंने मद्रास-स्थित अपनी थियोसोफ़िकल शिक्षण-संस्थाओं का सरकारी विश्व-विद्यालय से सम्बन्ध तोड़ दिया

और अड्यार में एक राष्ट्रीय हाईस्कूल खोल दिया। सिन्ध तथा अन्य प्रान्तों में भी उन्होंने ऐसे स्कूल खोले और राष्ट्रीय शिक्षा की उन्नति के लिए डॉ० अरण्डेल के सभापतित्व में एक शिक्षा-समिति संगठित की। श्री० बी० पी० वाडिया और श्री सी० पी० रामस्वामी ऐयर ने होमरूल-लीग का जोरों से संगठन किया। दोनों पहले ही से कांग्रेस में काम करने लग गये थे। 'न्यू-इण्डिया' (दैनिक) के कालमों द्वारा होमरूल-लीग का खूब प्रचार व कार्य होता था। विद्यार्थी भी आन्दोलन में बड़ी शक्ति बन गये थे पर, लॉर्ड पेण्टलैण्ड ने उन्हें राजनीति से अलग रहने का हुक्म निकाल दिया। मामूल की तरह आन्दोलन के बाद दमन-नीति का दौर शुरू हुआ और श्रीमती बेसेण्ट तथा मि० अरण्डेल व वाडिया १६ जून १९१७ को उटकमण्ड में नजरबन्द कर दिये गये।

६

हमारे अंग्रेज हितैषी

भारत के राजनैतिक विकास में ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के कुछ सदस्यों और बड़े-बड़े अंग्रेजों ने भी अच्छा भाग लिया है। ह्यूम साहब ने कांग्रेस का संगठन तो बहुत बाद में किया था। इससे पहले ही पार्लमेण्ट के कई सदस्य भारतीय प्रश्नों में दिलचस्पी लेने लग गये थे। भारत के विषय में पार्लमेण्ट में जो चर्चा होती थी उसमें इन लोगों की भावना निःस्वार्थ भी रहती थी। पिछली शताब्दी के पचास से सत्तर वर्ष के बीच जॉन ब्राइट साहब ने भारत का खूब पक्ष-समर्थन किया। उन्होंने १८४७ में पार्लमेण्ट में प्रवेश किया। उस समय से १८८० तक इस देश के भाग्य में बहुत उतार-चढ़ाव आये, पर ब्राइट साहब का भारत प्रेम बराबर बना रहा। इनके बाद फॉसेट साहब की बारी आई। ये १८६५ में पार्लमेण्ट के सदस्य हुए और १८६८ में ही इन्होंने प्रस्ताव किया कि भारत की बड़ी-बड़ी नौकरियों की परीक्षायें केवल विलायत में न होकर भारत और इंग्लैण्ड दोनों में साथ-साथ हों। १८७५ में इंग्लैण्ड में भारतवर्ष के खर्च से तुर्की के सुलतान के लिए लॉर्ड सेल्सबरी ने जो नाच करवाया था इसकी फॉसेट साहब ने निन्दा की। उस समय से अपने सारे कार्य-काल में यह हृदय से भारत के हितैषी बने रहे। इन्हींके विरोध से अबीसीनिया की लड़ाई का सारा खर्च भारत के मत्थे न मढ़ा जाकर आधा इंग्लैण्ड पर पड़ा। ड्यूक ऑफ एडिनबरा ने भारतीय नरेशों को जो उपहार दिये उनका मूल्य भारतीय कोष से दिये जाने का भी इन्होंने विरोध किया था। इसी प्रकार ब्रिटिश-युवराज की भारत-यात्रा के खर्च के ४,५०,०००) के भार से भी इन्होंने हमारे देश को बचाया। लॉर्ड लिटन ने कपड़े का आयातकर बन्द कर दिया, दिल्ली में दरबार किया और अफगान-युद्ध मोल ले लिया था। इन करतूतों का फॉसेट साहब ने विरोध किया। कृतज्ञ भारत ने भी इन उपकारों का बदला तुरन्त दिया। १८७२ में कलकत्ते की जनता ने इन्हें मान-पत्र दिया और जब १८७४ में फॉसेट साहब पार्लमेण्ट के चुनाव में हार गये तो आगामी चुनाव के लिए सहायतार्थ उन्हें १०,०००) से अधिक की थैली भेंट की गई।

ह्यूम साहब ने पार्लमेण्ट की भारत-समिति और कांग्रेस के संगठन में जो भाग लिया उसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परन्तु इस स्कॉचमैन ने साठ वर्ष से भी अधिक सरकारी और गैर-सरकारी हैसियत से भारत की भलाई के लिए जो परिश्रम किया उसका हाल जरा विस्तार से जानना हमारा कर्तव्य है। वे भारत की सिविल सर्विस में अनेक पदों पर रहे। जब वे जिला-मजिस्ट्रेट रहे, इन्होंने साधारण जनता में शिक्षा-प्रसार, पुलिस-सुधार, मदिरा-निषेध, देशी-भाषाओं के समाचार-पत्रों की उन्नति, बाल-अपराधियों के सुधार एवं अन्य घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए परिश्रम किया। इन्हें किसी बात में रस था तो गांव और खेती में। इन्हें किसी बात की चिन्ता थी तो जनता की। इन्होंने घोषित किया था, कि "सरकार तलवार के जोर से अपनी सत्ता भले ही कायम कर ले, किन्तु स्वतन्त्र और सभ्य सरकार की पायदारी और स्थायित्व तो इसी में है कि प्रजा के लाभ की

वृद्धि की जाय और उसमें सरकार की अच्छाइयों की कद्र करने की नैतिक और बौद्धिक योग्यता पैदा की जाय।" ह्यूम साहब के इस लेख का उत्तर सरकार ने २८ जनवरी सन् १८५९ के अपने एक गश्ती पत्र में दिया। इस पत्र में कहा गया था कि शिक्षा-प्रचार के लिए भारतीयों से काम न लिया जाय और कलक्टर साहब लोगों को पाठशालाओं में अपने बालकों को भेजने की या पाठशालाओं की सहायता करने की प्रेरणा न करें। ह्यूम साहब ने इसका जिस प्रकार विरोध किया वह भी मार्के की चीज है। ह्यूम साहब का दूसरा प्रिय विषय था पुलिस का सुधार। उनकी योजना यह थी कि पुलिस और न्याय-विभाग को बिलकुल अलग-अलग कर दिया जाय। आबकारी के बारे में वे लिखते हैं :—"जहां एक ओर हम अपनी प्रजा का आचरण भ्रष्ट करते हैं, तहां दूसरी ओर हमें उसकी बर्बादी से कोई आर्थिक लाभ नहीं होता। यह सारी आय पापकी कमाई है और इस पुरानी कहावत को सिद्ध करती है कि पाप की कमाई यों ही जाती है। आबकारी से हमें एक रुपया मिलता है तो उसके बदले में एक रुपया प्रजा का अपराधों के रूप में खर्च होजाता है और एक सरकार को इन अपराधों के दमन में लगा देना पड़ता है। अभी तो मुझे इस दिशा में सुधार की कोई आशा नहीं दीखती; किन्तु मुझे जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि मैं कुछ वर्ष और जीता रहा तो इन आँखों से अपने भारतीय शासन के इस बड़े भारी कलङ्क को सच्चे ईसाई तरीके पर धुला हुआ देख सकूंगा।"

१८५९ के अन्त में ह्यूम साहब की सहायता से "पीपल्स-फ्रैण्ड" (लोक मित्र) नामक हिन्दुस्तानी पत्र निकाला गया। इसकी छः सौ प्रतियां संयुक्तप्रान्त की सरकार खरीदती थी। वाइसराय ने भी इस पत्र को पसन्द किया और इसका अनुवाद होकर भारतमन्त्री के मार्फत महारानी विक्टोरिया के पास भेजा जाता था। १८६३ में ही ह्यूम साहब ने जोर दिया कि बाल-अपराधियों के सुधार-गृह बनाये जायं। चुङ्गी की अफसरी में उन्होंने मुख्य कार्य यह किया कि चुङ्गी की लम्बी-चौड़ी रुकावटों को धीरे-धीरे दूर करवा दिया। इससे पहले सरकार ने अपने नमक बेचने के एकाधिकार की रक्षा के लिए अढ़ाई हजार मील तक ऐसी हदबन्दी कर रक्खी थी कि राजपूताने की रियासतों से सस्ता नमक अंग्रेजी इलाके में आ ही नहीं सकता था। कहा जाता है कि यह मनहूस किलेबन्दी पश्चिम से पूर्व तक भारत के आर-पार, अटक से कटक तक, सिन्धु नदी से बङ्गाल की खाड़ी तक, फैली हुई थी। ह्यूम साहब की इस सफलता पर भारत-मन्त्री ने भी उनकी प्रशंसा की थी।

१८७९ ई० में ह्यूम साहब ने कृषि-सुधार की एक योजना तैयार की। लॉर्ड मेयो की उसके साथ सहानुभूति भी थी। परन्तु वह योजना यों ही गई। मुकदमेबाजी के बारे में उनकी राय यह थी कि देहाती इलाकों में किसानों को महाजनों की गुलामी में जकड़ने की सीधी जिम्मेदारी दीवानी अदालतों पर है। उन्होंने सिफारिश की कि ग्रामवासियों के कर्ज के मुकदमे जल्दी-से-जल्दी और जहां-के तहां निपटाने चाहिए, उनका अन्तिम निर्णय चुने हुए ईमानदार और समझदार भारतीयों द्वारा होना चाहिए, उन्हें न्यायाधीश बनाकर गांव-गांव भेजना चाहिए और ये लोग सब प्रकार के लेनदेन के मुकदमे गांव के बड़े-बूढ़ों की सहायता से तय कर दिया करें। इन न्यायाधीशों पर कोई जाब्ते या कानून-कायदे की पाबन्दी नहीं होनी चाहिए। ह्यूम साहब कहते थे कि जो लोग देहात को जानते हैं उन्हें यह बताने की जरूरत नहीं होती कि जो आदमी अदालत में पैर रखते ही झूठ बोलने में कुछ भी सङ्कोच नहीं करता उसीसे जब ग्रामवासी पड़ोसियों के बीच में पंचायती चबूतरे पर बैठे हुए व्यक्तिगत प्रश्न किये जाते हैं तब असत्य बात कहने का उसे साहस ही नहीं होता। वहां तो सबको एक-दूसरे की बातें मालूम रहती हैं। १८७२ ई० में इसी ढंग की एक योजना दक्षिण की कष्ट-पीड़ित प्रजा की भलाई के लिए बनाई गई थी। परन्तु बम्बई-सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया।

१८७० ई० से १८७९ तक ह्यूम साहब भारत-सरकार के मन्त्री रहे; परन्तु उन्हें वहां से इसी अपराध पर निकाल दिया गया कि बहुत ज्यादा ईमानदार और स्वतन्त्र प्रकृति के थे। इसकी भारतीय समाचार-पत्रों ने एक-स्वर से निन्दा की, परन्तु कुछ सुनाई नहीं हुई। लॉर्ड लिटन ने ह्यूम साहब को लेफ्टिनेण्ट गवर्नर बनाने का प्रस्ताव किया। ह्यूम साहब को यह स्वीकार न हुआ। वे यह समझते थे कि इसमें खान-पान और राग-रंग की जितनी झंझट है वह उनके बूते का काम नहीं था। दूसरा प्रस्ताव यह था कि उन्हें होम-मेम्बर (गृह-सचिव) बना दिया जाय। यह बात इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री लॉर्ड सेल्सबरी को पसन्द नहीं आई, क्योंकि ह्यूम साहब वाइसराय नॉर्थब्रूक को इस बात के लिए पक्का कर रहे थे कि कपड़े पर आयात-कर न उठाया जाय। ह्यूम साहब ने १८८२ ई० में नौकरी से अवसर प्राप्त किया। उन्होंने लगभग तीन लाख रुपया पक्षियों के अजायबघर पर और लगभग ६० हजार रुपया 'भारत के शिकारी पक्षी' नामक ग्रंथ की तैयारी में खर्च किया था।

सर विलियम वेडरबर्न की सेवायें तो इतनी प्रख्यात हैं कि उनका वर्णन करने की भी जरूरत नहीं है। ब्रिटिश कांग्रेस-कमिटी को चलाने में वर्षों तक उन्हींका मुख्य हाथ रहा। कांग्रेस इसके लिए दस हजार से पचास हजार तक वार्षिक खर्च करती थी। वेडरबर्न साहब बम्बई में १८७९ ई० में, और इलाहाबाद में १९१० ई० में, इस प्रकार राष्ट्रीय महासभा के दो अधिवेशनों के सभापति हुए। जार्ज यूल साहब इलाहाबाद के १८८८ वाले कांग्रेस के चौथे अधिवेशन के सभापति हुए। इसके बाद तो हर साल पार्लमेण्ट के सदस्य भारत-यात्रा करने और कांग्रेस के अधिवेशनों पर उपस्थित रहने लगे। इन प्रसिद्ध लोगों में से नशा-निषेध के महान् प्रचारक डब्ल्यू० एस० केइन साहब, जिसका कोई हिमायती न हो उसके हिमायती चार्ल्स ब्रैडला साहब; सेम्युअल स्मिथ साहब, और डाक्टर रुदरफोर्ड और क्लार्क साहब के नाम उल्लेखनीय हैं।

रैमजे मैक्डॉनल्ड साहब तो १९११ में कांग्रेस अधिवेशन का सभापति-पद भी सुशोभित करते, परन्तु उनकी पत्नी का देहान्त होजाने से उन्हें वापस लौट जाना पड़ा। केअर हार्डी, होलफोर्ज, नाइट, मैक्स्टन, कर्नल वैजवुड, वेनस्पूर, चार्ल्स रॉबर्टसन और पैथिक लॉरेन्स आदि कामन-सभा के कुछ अन्य सदस्य भी भारतवर्ष में आकर और कांग्रेस-अधिवेशनों में उपस्थित रहकर भारत की समस्याओं का अध्ययन कर गये। परन्तु १८८९ ई० में चार्ल्स ब्रैडला साहब का जो स्वागत किया गया वह शान-शौकत में तो राजाओं से कम नहीं था। उत्तर में उन्होंने राजभक्ति की जो व्याख्या की वह बड़ी मार्के की थी। उन्होंने कहा, "जहां आंख मूंदकर आज्ञा-पालन करने की वृत्ति होती है वहां सच्ची राजभक्ति का अर्थ तो यह है कि शासित शासकों की इतनी सहायता करें कि सरकार के लिए कुछ करने को बाकी न रहे।" परन्तु नौकरशाही की व्याख्या राजभक्ति की दूसरी ही है। उसके खयाल से प्रजा को खुद कुछ न करना चाहिए, जो कुछ हो सरकार को ही करने देना चाहिए।

ब्रैडला साहब ने १८८९ में कौंसिलों के सुधार के लिए एक कानून का मसविदा (बिल) बनाया और उसे लोकमत-संग्रह के लिए प्रचारित किया। इस मसविदे में कांग्रेस के तत्कालीन विचारों का समावेश था। और कांग्रेस ने भी ब्रैडला साहब के इच्छानुसार सूचनायें पेश कीं जिनमें भारतीय जनता का गम्भीर मत प्रदर्शित होता था। आगे चलकर यह मसविदा वापस ले लिया गया। परन्तु पार्लमेण्ट में ब्रैडला साहब की स्थिति इतनी मजबूत थी कि लॉर्ड-क्रॉस का पहला मसविदा भी ब्रैडला साहब के विरोध के कारण वापस लेना पड़ा। उनका दूसरा मसविदा भी तब मंजूर हुआ जब उसमें प्रस्तावित सुधारों की पहली किश्त के साथ में, अप्रत्यक्ष ही सही, कौंसिलों में निर्वाचन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया।

विलियम राबर्ट ग्लैडस्टन का नाम भी कम प्रेम के साथ नहीं लिया जा सकता। भारत में ग्लैडस्टन साहब बड़े लोकप्रिय हो गये थे। इसका असली कारण था उनकी कांग्रेस-आन्दोलन के साथ प्रत्यक्ष सहमति। उन्होंने १८८८ में कहा था, "इस महान् राष्ट्र की उठती हुई आकांक्षाओं के प्रति तिरस्कार या उपेक्षा का भी व्यवहार करने से हमारा काम नहीं चलेगा।" लगातार कई वर्ष तक ग्लैडस्टन साहब की वर्षगांठ पर कांग्रेस की ओर से बधाई के प्रस्ताव होते रहे। उनकी ८२ वीं जयंती २९-१२-१८९१ के दिन थी और कांग्रेस ने उसे विधिपूर्वक मनाया। इतने दूर देश के राजनीतिज्ञ के प्रति इतनी असाधारण श्रद्धा का कारण यही था कि उन्होंने आयर्लैंण्ड की भांति भारत के अधिकारों का भी पक्ष-समर्थन किया था। ग्लैडस्टन साहब भारत के एक हितैषी समझे जाते थे और अर्डले नॉर्टन साहब ने १८९४ की दसवीं कांग्रेस के अवसर पर उनके इस मन्तव्य को दोहराया भी था—"मेरा विश्वास है कि पार्लमेण्ट की अनजान में, देश को बताये बिना ही कौंसिल के एकान्त कमरों में, अकस्मात् एक ऐसा कानून पास कर दिया गया है जिसके कारण देशी समाचारपत्रों की स्वतन्त्रता सर्वथा नष्ट हो गई है। मैं समझता हूं कि ऐसा कानून ब्रिटिश-साम्राज्य के लिए कलंक है।" जब १८९८ में ग्लैडस्टन साहब का देहान्त हुआ तो कांग्रेस ने सच्चे दिल से शोक मनाया।

लॉर्ड नॉर्थब्रुक के प्रति भी कांग्रेस ने १८९३ के अपने नवें अधिवेशन में कृतज्ञता प्रकट की। इन्होंने पार्लमेण्ट में इस बात पर जोर दिया था कि भारत के खजाने से 'होम चार्जेज' के नाम पर जो विशाल धन-राशि खींची जाती है उसकी मात्रा कम की जाय। यह धन्यवाद का प्रस्ताव पेश करते समय स्वर्गीय गोखले ने कांग्रेस के सम्मुख ड्यूक ऑफ आर्जाईल के ये वाक्य उद्धृत किये थे कि "भारत में आम लोगों को यह मालूम होने से कि उन्हें कोई कष्ट है, पहले ही वह कष्ट दूर कर दिया जाना चाहिए।" सार्वजनिक प्रश्न पर ड्यूक साहब बड़े प्रमाण-स्वरूप समझे जाते थे। वाचा महोदय ने कांग्रेस के १७ वें अधिवेशन में उनके इस कथन को दोहराया था कि "ग्रामीण भारत की विशाल जन संख्या में जितना चिर-दारिद्र्य फैला हुआ है और उनके जीवन साधनों का माप जितना नीचा और स्थायी रूप से गिर गया है उसका उदाहरण पाश्चात्य जगत में कहीं नहीं मिलता।" इन्हीं ड्यूक महोदय ने १८८८ में कहा था कि "अंग्रेजों ने अपने दिये हुए वचनों और किये हुए कारनामों का पालन नहीं किया।"

इन हितैषियों में एक थे एल्डले के लॉर्ड स्टैनले। उन्होंने अपने जीवन का उत्तम भाग भारत में ही व्यतीत किया और भारत के अभ्युत्थान के लिए परिश्रम किया। १८९४ में उन्होंने भारत-मंत्री की कौंसिल के उठा दिये जाने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा, "यदि भारत-मंत्री पर कौंसिल का नियन्त्रण रहे तो भारत-मन्त्री का पद उठा दो। यदि कौंसिल पर भारत-मन्त्री का नियन्त्रण रहे तो कौंसिल को मिटा दो। यह द्विविध-शासन व्यर्थ है, भयावह है, अपव्यय है और बाधक है।" उन्होंने भारत-मन्त्री और उसकी कौंसिल की व्यापारिक अयोग्यता के प्रमाण भी दिये।

एक महान् व्यक्ति का उल्लेख करना और बाकी है। वह थे जनरल बूथ। इन्होंने १८९१ की नागपुर-कांग्रेस में एक योजना भेजी कि हजारों निर्धन और अपंग लोगों को देश की बंजर भूमि पर किस प्रकार बसाया जा सकता है। इन्हें तार-द्वारा उचित उत्तर दिया गया।

इस संक्षिप्त विवरणमें सर हेनरी कॉटन और उनकी अमर सेवाओंका उल्लेख किये बिनाभी नहीं रहा जा सकता। कॉटन-परिवार का भारतवर्ष से पुराना सम्बन्ध रहा था। ज्यों ही आसाम के इन चीफ कमिश्नर साहब ने पेंशन ली त्योंही कांग्रेस ने अपने १९०४ वाले बम्बई के अधिवेशन का सभापति-पद ग्रहण करने को इन्हें आमन्त्रित किया। इन्होंने पहले-पहल भारत के संयुक्त राष्ट्र की कल्पना की और

६

हमारे हिन्दुस्तानी बुजुर्ग

कांग्रेस की नीति और उसके कार्य-क्रम की आगे की प्रगति पर विचार करने से पहले हमें उन महानुभावों के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलियां अर्पित करनी चाहिए, जिन्होंने राष्ट्रोद्धार के इस आन्दोलन की शुरुआत की और कांग्रेस के प्रारम्भिक दिनों में उसके लिए जमीन को जोत-बोकर तैयार किया। आज हमें कांग्रेस का जैसा विस्तृत संगठन और महान् राष्ट्रीय कार्य-क्रम दिखलाई पड़ता है, हम शायद यह समझें कि यह सब हमारे ही वक्त में और हमारे ही प्रयत्नों के फलस्वरूप हुआ है। कांग्रेस के पूर्ववर्ती नेताओं का जो कार्यक्रम और दृष्टिकोण था वह आज के कांग्रेसियों को शायद पसन्द भी न हो; इसी तरह यह भी सम्भव है कि पुराने नेताओं को शायद आज का कार्यक्रम और दृष्टिकोण पसन्द न हुआ होता। लेकिन हमें यह हर्गिज न भूलना चाहिए कि आज हम जो-कुछ भी कर सके हैं और करने की आकांक्षा रखते हैं, वह सब प्रारम्भ में उनके द्वारा किये गये प्रयत्नों और महान् बलिदानों के फलस्वरूप ही। इसलिए उन बुजुर्गों में से जो लोग स्वर्गवासी हो गये हैं और जो ईश्वर-कृपा से आज भी हमारे बीच मौजूद हैं उनकी महान् सेवाओं और कुरबानियों का यहां उल्लेख किये बिना हम आगे नहीं चल सकते।

दादाभाई नौरोजी

कांग्रेस के बड़े-बूढ़ों की सूची में सबसे पहला नाम दादाभाई नौरोजी का आता है, जो कांग्रेस की शुरुआत से लेकर अपने जीवन-पर्यन्त कांग्रेस की सेवा करते रहे और कांग्रेस को सर्वसाधारण की शासन-सम्बन्धी शिकायतें दूर कराने का प्रयत्नकरनेवाली जन-सभा से बढ़ाते-बढ़ाते स्वराज्य-प्राप्ति (कलकत्ता १९०६) के निश्चित उद्देश्य से काम करनेवाली राष्ट्र-परिषद् पर पहुंचा दिया। १८८६, १८९३ और १९०६ में – तीन बार वे कांग्रेस के सभापति हुए; और बराबर कांग्रेस के साथ रहते हुए इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान दोनों जगह उन्होंने कांग्रेस के झण्डे को ऊंचा रक्खा। दूसरी बार उन्हें जो कांग्रेस का सभापति चुना गया, वह सेण्ट्रल फिन्सबरी से उनके कामनसभा का सदस्य चुने जाने की खुशी में था; क्योंकि उस समय इस बात पर गम्भीरता के साथ विचार हो रहा था, कि भारत के दुःख-दर्द दूर कराने के लिए लन्दन में आन्दोलन जारी किया जाय। १८९१ में तो यह प्रस्ताव भी जोर के साथ पेश हुआ, कि जब तक लन्दन में अधिवेशन न हो ले तबतक कांग्रेस को स्थगित रक्खा जाय; लेकिन वह अस्वीकृत होगया। ठीक इसी समय ह्यूम साहब इंग्लैण्ड जाने वाले थे, और इसी समय के लगभग कामन-सभा में भारत से चुनकर प्रतिनिधि भेजे जाने की मांग भी की गई थी। ऐसी परिस्थितियों में दादाभाई नौरोजी दूसरी बार कांग्रेस के सभापति चुने गये, जिन्होंने इस अवसर से लाभ उठा कर ब्रिटेनवालों को इस बात की प्रेरणा की, कि वे "इस शक्ति (शिक्षित भारतीयों) को अपनी ओर खींचने के बजाय अपने से दूर न फेंकें—अपना विरोधी न बनावें।" ब्रिटिश-राज्य की न्याय-परायणता

में दादाभाई का बहुत विश्वास था और वह अन्त तक कायम रहा। १९०६ में दादाभाई कलकत्ते के अधिवेशन के सभापति हुए। उस समय हिन्दुस्तान मानों एक खौलते हुए कड़ाव में था; १६ अक्टूबर १९०५ को जो वंग-भंग किया गया था, उससे देश भर में एक नई लहर पैदा हो गई थी। पूर्वी बंगाल असन्तोष से उबल रहा था। हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे के खिलाफ उभाड़ा जा रहा था। विशेष कानूनों (आर्डिनेंसों) का शासन जारी किया गया। कानून और व्यवस्था के लिए फौज और ताजीरी पुलिस की तैनाती का नया क्रम चला, और बरीसाल में होने वाली प्रान्तिक परिषद् पुलिस द्वारा भंग की गई— डॉ० रासबिहारी घोष के शब्दों में कहें तो, "शान्ति बनाये रखने के लिए पुलिस ने अन्धा-धुन्धी के साथ शान्ति का ही खून कर डाला था।" दादाभाई ने बताया कि १८९३-९४ के बाद जन-संख्या तो १४ प्रतिशत ही बढ़ी है पर सरकार का शासन-सम्बन्धी खर्च १६ प्रतिशत बढ़ गया है; और १८८४-८५ से लें तब तो जहां जन संख्या १६ प्रतिशत बढ़ी है वहां यह खर्च ७० प्रतिशत बढ़ा है। १७ से बढ़कर ३२ करोड़ तो अकेला सैनिक व्यय ही बढ़ गया, जिसमें का ७ करोड़ खर्च इंग्लैण्ड में किया जाता था। कांग्रेस के सारे वायु-मण्डल में उस समय बहिष्कार की भावना छाई हुई थी। बाबू विपिनचन्द्रपाल ने बहिष्कार शब्द को और भी व्यापक-रूप दिया और सरकार से सब तरह का सम्बन्ध-विच्छेद करने के लिए कहा। प्रस्ताव का प्रत्यक्ष रूप स्वदेशी था, जिसका अर्थ भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने जुदा-जुदा किया। मालवीयजी ने इसका अर्थ देशी उद्योग धन्धों का संरक्षण किया। लोकमान्य तिलक ने मध्य-श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा इस्तेमाल किये जाने वाले विदेशी कपड़े के दुःखद व्यय का अन्त करने के लिए राष्ट्र की ओर से किये जाने वाले दृढ़ निश्चय, बलिदान और स्वावलम्बन को स्वदेशी कहा। लालाजी ने इसका अर्थ देश की पूंजी को बचाना और सुरक्षित रखना बतलाया और स्वयं दादाभाई के लिए, यह आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी सुधार तथा शिक्षा-प्रचार की पुकार थी; क्योंकि शिक्षा-प्रचार के ही कारण लोगों में स्वराज्य की भूख पैदा हुई थी। इस अस्सी वर्ष के बूढ़े ने ६,००० मील दूर (इंग्लैण्ड) से यहां आकर स्वदेशी, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के साथ स्वराज्य की एक नई पुकार और पैदा कर दी, यह देखकर 'इंग्लिशमैन' इनपर उबल पड़ा था। लेकिन भारतीय मांगों के लिए रास्ता इस तरह अपने आप साफ हो रहा था। १९०५ में गोखले ने स्व-शासन की ओर प्रगति करने के लिए चार उपाय बताये थे, जो १९०६ के मुख्य प्रस्ताव में शामिल कर लिये गये। इस प्रकार दादाभाई के सभापतित्व में होनेवाले कलकत्ता अधिवेशन में चार मुख्य प्रस्ताव पास हुए, जिसमें स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव इस प्रकार है—

"इस कांग्रेस की राय है कि स्वराज्य-प्राप्त ब्रिटिश उपनिवेशों में जो शासन-प्रणाली है वही भारतवर्ष में भी चलाई जाय और उसके लिए नीचे लिखे सुधार तुरन्त किये जायं—

(क) जो परीक्षायें केवल इंग्लैण्ड में होती हैं वे भारतवर्ष और इंग्लैण्ड में साथ-साथ हों और भारतवर्ष में ऊंची नौकरियों पर जितनी नियुक्तियां होती हैं वे सब केवल प्रतिस्पर्द्धी-परीक्षा द्वारा हों।

(ख) भारत-मंत्री की कौंसिल तथा वाइसराय और मदरास तथा बम्बई के गवर्नरों की कार्य-कारिणियों में भारतीय प्रतिनिधि पर्याप्त संख्या में हों।

(ग) भारतीय और प्रान्तीय कौंसिलें बढ़ाई जायं, उनमें जनता के अधिक और वास्तविक प्रतिनिधि रहें और उन्हें देश के आर्थिक और शासन-सम्बन्धी कार्यों में अधिक अधिकार रहे।

(घ) स्थानीय और म्युनिसिपल बोर्डों के अधिकार बढ़ाये जायं और उन पर सरकारी नियन्त्रण उससे अधिक न हो जितना ऐसी संस्थाओं पर इंग्लैण्ड में लोकल गवर्नमेंट बोर्ड का रहता है"।

इसके अलावा इस अधिवेशन में वहिष्कार, स्वदेशी तथा राष्ट्रीय-शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव भी पास हुए थे।

जिस व्यक्ति ने भारत की सेवा में अपनी सारी जिन्दगी लगा दी, भारत की मुक्ति के लिए अविश्रान्त परिश्रम किया, अपनी कलम को कभी छुट्टी नहीं दी, और जिसे विधाता ने ८५ वर्ष से अधिक समय तक हमारे बीच बनाये रक्खा, उसकी सेवाओं का उल्लेख कुछ पृष्ठों के थोड़े से स्थान में नहीं किया जा सकता। दादाभाई तो हमारे ऐसे बुजुर्ग हैं जिन्होंने अपनी जिन्दगी में तो काम किया ही, पर अपने पीछे भी न केवल अपने आत्मवलिदान-पूर्ण जीवन का श्रेष्ठ उदाहरण वल्कि अपनी पोतियों के रूप में उसका सजीव रूप वे हमारे सामने छोड़ गये हैं—क्योंकि, उनकी पोतियां उनके द्वारा चलाई गई श्रेष्ठ परम्परा को आज भी भली-भांति कायम रक्खे हुए हैं।

आनन्द चार्लू

कांग्रेस के पहले अधिवेशन में, जो १८८५ में वम्बई में हुआ था, सम्पादक जी० सुब्रह्मण्य ऐयर और श्री आनन्द चार्लू काशीनाथ तैलंग और दादाभाई नौरोजी, नरेन्द्रनाथ सेन और उमेशचन्द्र बनर्जी, एस० सुब्रह्मण्य ऐयर और रंगैया नायडू, फिरोजशाह मेहता और डी० एस० ह्वाइट इन सब प्रमुख व्यक्तियों ने, जो कि कांग्रेस के जनक और वड़े-वूढ़े थे, अपने भाषणों में उन शक्तियों का परिचय दे दिया जो कि भारतीय राजनीति में जोर पकड़ रही थीं। कालान्तर में, इन्हीं से भारत का नरम-दल बना। आनन्द चार्लू ने, जो बाद में १८९१ की नागपुर-कांग्रेस के सभापति हुए थे, अपनी विशेष वक्तृत्व शक्ति के साथ कांग्रेस में प्रवेश किया। नागपुर में हुए ७ वें अधिवेशन (१८९१) का इन्होंने सभापतित्व किया, जिसमें सभापति-पद से वड़ा जोरदार भाषण किया।

दक्षिण भारत के राजनैतिक गगन में लगभग बीस वर्ष तक ये एक चमकती हुई ज्योति रहे। हालांकि न तो इनके अनुयायियों का कोई दल था और न ये किसी राजनैतिक मत के प्रवर्त्तक थे, फिर भी अपनी विशिष्ट तीखी वक्तृत्वशक्ति के साथ इनका एक विशेष व्यक्तित्व रहा है।

दीनशा एदलजी वाचा

हमारे इन आदरणीय वुजुर्ग का खास विषय कौन सा था, जिस पर इन्हें विशेष प्रेम और अधिकार था, यह कहना कठिन है; क्योंकि प्रायः सभी विषयों में इनका एक-समान अवाध प्रवेश था। इनके उज्ज्वल गुण तो पहले ही अधिवेशन में झलकने लगे थे, जवकि इन्होंने अपने महान् भाषणों में का पहला भाषण करते हुए सैनिक परिस्थिति का योग्यतापूर्ण विस्तृत सिंहावलोकन किया। दूसरे अधिवेशन में इन्होंने भारतवासियों की गरीवी को लिया, और हिन्दुस्तान से हर साल ब्रिटेन को जाने वाले उस खराज की ओर सर्व-साधारण का ध्यान खींचा जिससे ब्रिटेन तो समृद्ध हो रहा था पर हिन्दुस्तान कंगाल वनता चला जा रहा था।

"भारत की विशाल जन-संख्या में लगातार बढ़ती जाने वाली गरीबी" का उल्लेख करके, इन्होंने वताया कि "१८४८ से वरावर इसी प्रकार रैयत की हालत विगड़ती गई है—यहां तक कि ४ करोड़ लोगों को दिन में सिर्फ एक ही वार भोजन नसीव होता है, और वह भी हमेशा नहीं।" इसका मुख्य कारण इन्होंने वताया था देश की सम्पत्ति का अनेक मार्गों से विदेशों में चला जाना।

वम्बई में हुए कांग्रेस के ५ वें अधिवेशन में इन्होंने आवकारी नीति को लिया और वताया कि कामन-सभा ने एक प्रस्ताव द्वारा सर्व-साधारण के इच्छानुसार आवकारी-नीति में सुधार करने का आदेश भारत-सरकार को दिया था, लेकिन उसके नौ महीने वाद भी सरकार ने किया कुछ भी नहीं है। छठी कांग्रेस में इन्होंने फिर इस ओर ध्यान दिया, और इसके साथ ही नमक-कर का प्रश्न भी

उठाया। इलाहाबाद में होने वाली कांग्रेस के ९ वें अधिवेशन में चांदी के सिक्के ढालना बन्द करने के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया था।

वाचा इतने चतुर थे कि अब से बहुत पहले, १८८५ में ही इन्होंने लङ्काशायर का प्रश्न उठा लिया था। उन्होंने कहा था, कि "अगर सैनिक-व्यय कम न किया जाय तो इसके लिए बाहर से आने वाले माल पर फिर से तट-कर लगा देना चाहिए, जिसको उठाकर मानों दरिद्रता-ग्रस्त भारत लुटा जा रहा है और वह भी इसलिए कि मालदार लंकाशायर और समृद्ध बनाया जाय।"

१८९४ में फिर वाचा ने "लंकाशायर के लिए भारतीय हितों का बलिदान करने के अभिप्राय से, भारत के शुरू होते हुए मिल-उद्योग को कुचलने के लिए भारतीय मिलों के (सूती) माल पर उत्पत्ति-कर लगाने के अन्याय" पर नजर डाली। उत्पत्ति-कर के (एक्साइज) बिल का विरोध करने के लिए इन्होंने भारत-सरकार की प्रशंसा की और भारत-मंत्री को इस अन्याय-पूर्ण कार्य के लिए दोषी ठहराया। सैनिक-व्यय की जांच के लिए नियुक्त शाही कमीशन के सामने, जो कि आम तौर पर वेल्बी-कमीशन के नाम से मशहूर है, दी गई अपनी योग्यता-पूर्ण गवाही से इनकी प्रसिद्धि बढ़ी, जिसके लिए कांग्रेस और गोखले जैसे विद्वानों ने भी इनकी तारीफ की। १८९७ में वाचा ने, उसी वर्ष अमरावती में होने वाले अधिवेशन में, सरकार की सरहद्दी नीति का विरोध किया। कांग्रेस के १५ वें अधिवेशन (लखनऊ १८९९) में भी इन्होंने मुद्रा-नीति पर अपना हमला जारी रक्खा और भारत में सुवर्ण-मान जारी करने की निन्दा की। "हिन्दुस्तान की गरीबी का मूल कारण तो," इन्होंने कहा, "यहां के धन का हर साल यहां से बाहर चला जाना है। फायदेमन्द तो सिर्फ यहां की देसी दौलत ही है। रुपये में चांदी का अनुपात तो कम कर दिया गया है, लेकिन उसका मूल्य वही रहने दिया गया है। जहां पहले १) तोला चांदी बिकती थी वहां अब सिर्फ ॥=) या ॥≡) तोला बिकने लगी है।" १९०१ में हुए अधिवेशन (कलकत्ता) में राष्ट्र ने वाचा को कांग्रेस का सभापति बनने के लिए आमन्त्रित किया।

१८९६ से लेकर १९१३ तक वाचा कांग्रेस के संयुक्त प्रधान-मन्त्री रहे हैं। इसके बाद उसके काम-काज में गौणरूप से योग देते रहे। १९१५ की बम्बई-कांग्रेस के बाद तो, जिसके कि यह स्वागताध्यक्ष थे, वस्तुतः ये फिर उसमें दिखाई भी न दिये। मगर चौथाई सदी से ज्यादा समय तक यह कांग्रेस के प्रमुख नेता रहे हैं। सर्वतोमुखी प्रतिभा, घटनाओं का जबरदस्त ज्ञान, और सैनिक समस्या जैसे दुरूह विषयों एवं सर्व-साधारण की गरीबी जैसी अस्पष्ट और विस्तृत समस्याओं की भलीभांति जानकारी में इनसे बढ़कर तो कोई था ही नहीं, इनके जोड़ के भी थोड़े ही आदमी थे।

गोपालकृष्ण गोखले

गोखले पहले-पहल १८८९ में कांग्रेस में तिलक के साथ आये। नमक-कर पर हमला करते हुए उन्होंने बहुतेरे तथ्य और आंकड़े पेश किये थे। उन्होंने बताया कि कैसे एक पैसे की नमक की टोकरी की कीमत पांच आने हो जाती है। फिर भी उनमें कड़ी-से-कड़ी बात को बहुत ही मधुर भाषा में कहने का बड़ा गुण था। अपनी आलोचना में गोखले यद्यपि मधुर और मंजुल होते थे तथापि वह कहते थे बात खरी, गोलमाल बातें करना उन्हें पसन्द न था। "नंगे, भूखे; झुर्रियां पड़े हुए, ठिठुरते और सिकुड़ते हुए, सुबह से शाम तक दो रोटियों के लिए खेत में कड़ी मिहनत करनेवाले, चुपचाप धीरज के साथ न जाने कितना सहनेवाले, अपने शासकों के पास जिनकी आवाज जरा भी नहीं पहुंचती और ईश्वर तथा मनुष्यों के द्वारा जो कुछ भी बोझ उनकी पीठ पर लाद दिया जाता है उसे बिना नौ-नखरा किये सहने के लिए सदा तैयार किसानों के लिए" गोखले के हृदय में प्रेम का [illegible]

था और इन्हीं के हित में वह हमेशा कर और खर्च के सवालों को उठाया करते थे। लेकिन ऐसे भी मौके आ जाते थे, जब गोखले की संयत और लोक प्रचलित विनम्रता भी उनका साथ छोड़ देती थी और लार्ड कर्जन की प्रतिगामी नीति के कारण जो जोर पड़ा था वह दरअसल बहुत भारी था। वंग-भंग, कलकत्ता-कारपोरेशन के अधिकारों में कमी करना, विश्वविद्यालय-सुधार जिसके द्वारा कार्य की सुचारुता के नाम पर सरकारी अफसरों का नियंत्रण कर देना और शिक्षा को खर्चीली और मंहगी बना देना, आफिशियल सिक्रेट्स् एक्ट—इन सबने मिलकर लार्ड कर्जन के सत्कार्यों को भी; जैसे उनकी अकाल-सम्बन्धी नीति; शिकार के लिए सिपाहियों को पास देने-सम्बन्धी नियम, प्राचीन स्मृति-रक्षा-कानून, रंगून और ओगारा-प्रकरण में सजायें देना, धर दबाया। गोखले को बहुत बिगड़ कर कहना पड़ा था "तो अब मैं इतना ही कह सकता हूं कि लोक-हित के लिए नौकरशाहीसे किसी तरह के सहयोग की तमाम आशाओं को नमस्कार!" १९०५ में बनारस-कांग्रेस के सभापति की हैसियत से गोखले ने राजनैतिक शस्त्र के रूप में वहिष्कार का समर्थन किया था और कहा था कि इसका इस्तेमाल तभी करना चाहिए जब कोई चारा न रह गया हो और जबकि प्रबल लोक-भावनायें इसके अनुकूल हों। गोखले सामने वाले के साथ बड़ी शिष्टता दिखाया करते थे, परन्तु इससे उनकी भाषा की स्पष्टता और उनके आक्रमण का जोर कम नहीं हो जाता था।

१९०५ और १९०६ दो साल तक गोखले भारत के प्रतिनिधि बनाकर इंग्लैण्ड भेजे गये थे। हां, १८९७ में भी वे इंग्लैण्ड जा चुके थे। जनता और सरकार दोनों के बीच गोखले की स्थिति विषम रहती थी। इधर लोग उनकी नरमी की निन्दा करते थे, उधर सरकार उनकी उग्रता को बुरा बताती थी। इसका मुख्य कारण यह था कि वे दोनों में मध्यस्थ बनकर रहते थे। गोखले जनता की आकांक्षायें वाइसराय तक पहुंचाते थे और सरकार की कठिनाइयां कांग्रेस तक।

पर यह भी मानना पड़ेगा कि ज्यों-ज्यों गोखले की उम्र बढ़ती गई त्यों-त्यों वे शिकायतें करने लगे कि "नौकरशाही स्पष्टतः स्वार्थसाधु और खुल्लमखुल्ला राष्ट्रीय अकांक्षाओं के विरुद्ध होती जा रही है। पहले उसका रवैया ऐसा नहीं था।" उन्हें पश्चिम का पूंजीवाद उतना नहीं अखरता था जितना जातिगत प्रभुत्व, चरित्रनाश, द्रव्य-शोषण और भारत की बढ़ती हुई मृत्यु-संख्या।

गोखले का बहुत बड़ा रचनात्मक काम है भारत-सेवक-समिति। यह ऐसे राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की एक संस्था है, जिन्होंने कि नाम-मात्र के वेतन पर मातृभूमि की सेवा करने का प्रण लिया है। उनके बाद श्रीमती एनी बेसेण्ट ने 'भारत के पुत्र' (Sons of India) नामक संस्था खड़ी की और उसके बाद गांधी जी के आश्रमवासियों और आश्रमों का नम्बर आता है। १९१६ में गांधी जी ने अहमदाबाद में सत्याग्रहाश्रम खोला और उसके बाद १९२० से उसी नमूने पर दूसरे कई आश्रम खोले गये। ये सब आश्रम जीवन की कठोरता और साधना में 'भारत-सेवक-समिति' और 'भारत के पुत्र' से कहीं बढ़े-चढ़े हैं।

सूरत के झगड़े के बाद गोखले ने कांग्रेस के कार्य में प्रमुख भाग लिया। वे दक्षिण अफ्रीका भी गये और वहां गांधीजी के सत्याग्रह-संग्राम में अपूर्व सहायता की। १९०९ की कांग्रेस में तो उन्होंने सत्याग्रह-धर्म की बड़ी प्रशंसा की थी और उसके तत्त्व को बड़ी खूबी के साथ समझाया था। इसके बाद उनकी प्रवृत्तियां मुख्यतः बड़ी कौंसिलों के अखाड़े में ही होती रही हैं। १९१२ में जब कांग्रेस के दोनों दलों को मिलाने की कोशिश की गई तब पहले तो उन्होंने उसे पसन्द किया था, परन्तु बाद को अपना विचार बदल दिया था। इस तरह उत्कृष्ट देश-भक्ति, देश के लिए कठोर परिश्रम, महान् स्वार्थत्याग और देश-सेवामय जीवन व्यतीत करते हुए गोखले ने १९ फरवरी १९१५ को इस लोकसे प्रयाण कर दिया।

जी० सुब्रह्मण्य ऐयर

कांग्रेस के सर्व-प्रथम अधिवेशन में सबसे पहला प्रस्ताव किसने पेश किया, यह जिज्ञासा किसी को भी हो सकती है। 'हिन्दू' के सम्पादक मदरास के श्री जी० सुब्रह्मण्य ऐयर, जो सर्वसाधारण में सम्पादक सुब्रह्मण्य ऐयर के नाम से मशहूर थे, वह व्यक्ति थे जिन्होंने पहला प्रस्ताव पेश किया; और प्रस्ताव यह था, कि भारतीय शासन की प्रस्तावित जांच एक ऐसे शाही कमीशन द्वारा होनी चाहिए जिसमें हिन्दुस्तानियों का भी काफी प्रतिनिधित्व रहे। पश्चात मदरास में होने वाली १० वीं कांग्रेस (१८९४) तक हम सुब्रह्मण्य ऐयर के बारे में कुछ नहीं सुनते। पर मदरास-कांग्रेस में भारतीय राजस्व के प्रश्न पर ये बोले और इस सम्बन्धी जांच करने की आवश्यकता बतलाई। इस अधिवेशन में दिलचस्पी का दूसरा विषय था देशी-राज्यों में अखबारों की स्वतन्त्रता का अपहरण, जिसका श्री सुब्रह्मण्य ने कस कर विरोध किया। १२ वें अधिवेशन (कलकत्ता, १८९६) में इन्होंने प्रतिस्पर्धी-परीक्षायें इंग्लैण्ड व हिन्दुस्तान में एक-साथ ली जाने की आवाज उठाई, और साथ ही लगान के मियादी बन्दोबस्त का प्रश्न भी हाथ में ले लिया। अगले साल अमरावती-कांग्रेस में, सरकार की सरहद्दी-नीति का विरोध किया। १८९८ में जब तीसरी बार मदरास में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ तो श्री सुब्रह्मण्य ऐयर ने सरहद्दी-नीति का प्रश्न फिर से उठाया और उसकी निन्दा की और युद्ध-नीति का भी घोर विरोध किया। परन्तु श्रीसुब्रह्मण्य का प्रिय विषय तो था भारत की आर्थिक स्थिति। लाहौर में होनेवाले १६ वें अधिवेशन (१९००) में इन्होंने बार-बार पड़नेवाले अकालों को रोकने के उपाय मालूम करके उन पर अमल करने के अभिप्राय से भारतीयों की आर्थिक अवस्था की पूरी और स्वतन्त्र जांच कराने के लिए कहा। साथ ही सरकारी नौकरियों के प्रश्न पर भी विचार किया, जिसमें हिन्दुस्तानियों को उनसे महरूम रखने की शिकायत की। १७ वें अधिवेशन में (कलकत्ता, १९०१) रैयत की दुर्दशा और गरीबी पर ध्यान दिया। इन्होंने कहा—"क्या हिन्दुस्तानी रैयत की जिन्दगी जानवरों की तरह जिन्दा रहने और मर जाने के लिए है? और मनुष्यों की तरह क्या उनमें बुद्धि, भावना और छिपी हुई शक्तियां नहीं हैं? लगभग २० करोड़ व्यक्ति आज लगातार भुखमरी और घोर अज्ञान का दुःखी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। न तो वे कुछ बोल सकते हैं न उनकी जिन्दगी में कोई उत्साह है; न उन्हें किसी तरह की सुविधा है न मनोरञ्जन; न उनकी कोई आशा है न महत्वाकांक्षा; वे तो दुनियां में पैदा हो गये इसलिए किसी तरह जी रहे हैं, और जब मरते हैं तो इसलिए कि उनका शरीर और अधिक देर तक उनके प्राणों को धारण नहीं कर सकता।" अकालों के प्रश्न पर भी इस कांग्रेस में इन्होंने ध्यान दिया और औद्योगिक स्वावलम्बन पर जोर दिया। इसके लिए कला-कौशल की संस्थायें कायम करने, छात्र-वृत्तियां देकर भारतीयों को इस सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशों में भेजने और देशी उद्योग-धन्धों की भली-भांति जांच करने के व्यावहारिक उपाय इन्होंने सुझाये।

सुब्रह्मण्य ऐयर का ज्ञान जितना गम्भीर था उतना ही विशाल उनका दृष्टिकोण था। अहमदाबाद में हुए १८ वें अधिवेशन (१९०२) में एक बार इन्होंने सर्व-साधारण की गरीबी पर प्रकाश डाला। इन्होंने कहा, "एक समय ऐसा भी था, जब यहां के लोग इतने समृद्ध थे कि विदेशों से आनेवाले लोग उनपर हसद करते थे और यहां के कला-कौशल एवं उद्योग-धन्धे खूब फल-फूल रहे थे। इंग्लैण्ड की सुविधा के लिए ईस्ट-इण्डिया-कम्पनी ने जान-बूझकर भारत के हितों का बलिदान किया है, और यहां के उद्योग-धन्धों को हतोत्साह करके खेती को प्रोत्साहन दिया गया है जिससे इंग्लैण्ड के कारखानों के लिए हिन्दुस्तान कच्चा माल पैदा करता रहे। इस नीति ने भारतीय उद्योग-धन्धों

को नष्ट कर दिया है।" अपने लेखों के बदौलत इन्हें जेलखाने की हवा खानी पड़ी, जहां से बीमार होजाने पर ही इन्हें रिहाई मिली। इसमें सन्देह नहीं कि अपने समय के राजनीतिज्ञों में ये अत्यन्त निर्भीक और दूरन्देश थे, जिसके लिए भावी-सन्तति सदा इनकी कृतज्ञ रहेगी।

बदरुद्दीन तैयब जी

बदरुद्दीन तैयबजी एक पक्के कांग्रेसी थे, जो बढ़ते-बढ़ते कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन (मदरास, १८८७) के सभापति हुए थे। सभापति-पद से दिये हुए अपने भाषण में इन्होंने कांग्रेस के प्रातिनिधिक रूप पर जोर दिया। इन्हीं के कहने पर इस काम के लिए एक समिति बनाई गई थी कि वह कांग्रेस में वाद-विवाद के लिए जो बहुत से प्रस्ताव आवें उन पर विचार करके कांग्रेस का कार्यक्रम निश्चित करे। इस समिति को वस्तुतः बाद को बनने वाली विषय-समिति का पूर्व-रूप कहना चाहिए। बाद में ये बम्बई-हाईकोर्ट के जज होगये थे। १९०४ में सरकारी नौकरियों में हिन्दुस्तानियों की नियुक्ति-सम्बन्धी प्रस्ताव की बहस में इन्होंने भाग लिया। १९०६ के प्रारम्भ में इनका स्वर्गवास हो गया। कांग्रेस के पहले अधिवेशन का सभापतित्व एक हिन्दू (उमेशचन्द्र बनर्जी) ने किया था, दूसरे के सभापति पारसी दादाभाई नौरोजी हुए थे। इसके बाद तीसरे अधिवेशन के सभापति तैयबजी को बनाना खास तौर पर उचित था, क्योंकि ये मुसलमान थे।

काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग

जस्टिस काशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्ग कांग्रेस के अत्यन्त कर्तव्यशील संस्थापकोंमें से थे और उसके "बम्बई में, सबसे पहले डटकर काम करने वाले मंत्री" रहे हैं। कांग्रेस के पहले ही अधिवेशन में इन्होंने बड़ी (सुप्रीम) और प्रांतीय कौंसिलों-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और सदस्यों के लिए निर्वाचक-मंडलों की एक योजना पेश की। चौथे अधिवेशन में इन्होंने कहा था कि सरकार को अपने विभिन्न कामों के लिए तो हमेशा रुपया मिल जाता है, लेकिन शिक्षा पर वह अपनी आमदनी का सिर्फ १ प्रतिशत ही खर्च करती है। १८९३ में असमय ही इनकी मृत्यु होगई।

उमेशचन्द्र बनर्जी

यदि प्रामाणिक रूप से जानना हो कि कांग्रेस का आरम्भिक उद्देश्य क्या था, तो उसके प्रथम अधिवेशन के सभापति उमेशचन्द्र बनर्जी के भाषण की ही ओर निगाह दौड़ानी पड़ेगी। उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप में उसका वर्णन किया है। इलाहाबाद (१८९२) के आठवें अधिवेशन में ये दुबारा कांग्रेस के सभापति हुए थे। यह याद रहे कि १८९१ में सहवास-बिल के सम्बन्धमें बहुत आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था और लोकमान्य तिलक ने उसका विरोध किया था। उमेशचन्द्र बनर्जी ने इलाहाबाद में अपने भाषण में वे कारण बताये थे जिनसे कांग्रेस ने अपने को सामाजिक प्रश्नों से अलहदा रक्खा था। राजनैतिक आन्दोलन के सम्बन्ध में उनके भाषण में एक मार्के का अंश आया है, जिसे हम यहां देते हैं—

"क्या हमारी आवाज नहीं सुनी जायगी?—और सचमुच वह भी इसलिए, कि हमारी आवाज के साथ यूरोपियन लोगों की आवाज नहीं मिली हुई है! यूरोपियन प्रजाजन जितना कुछ हमारा समर्थन करेंगे उसका हम खुले दिल से स्वागत करेंगे, जरूर स्वागत करेंगे।......परन्तु इसके अलावा भी हमारी आवाज पर क्यों नफरत की जाती है? आखिर हमीं तो हैं जिन्हें तकलीफ भुगतनी पड़ती है, हमीं तो हैं जिन्हें नुकसान सहना पड़ता है; और जब हमीं अपने दुःखों के लिए पुकार मचाते हैं तो हमसे कहा जाता है—हम तुम्हारी बात नहीं सुनेंगे। तुम्हारा आन्दोलन तो फजूल है, घृणा और कमीनेपन से भरा हुआ है और इसलिए हम तुम्हारी बातों पर ध्यान न देंगे। एक समय वह था जब

हम, इस देश के निवासी, किसी विषय पर कोई आन्दोलन करते, और उसमें गैर-सरकारी यूरोपियनों से सहायता नहीं ली जाती तो सरकार की दुहाई देनेवाले बड़े तपाक से कहते—यह आन्दोलन तो भारतीयों का चलाया हुआ नहीं है, कुछ असंतुष्ट यूरोपियनों का खड़ा किया हुआ है, इसलिए इनकी बात मत सुनो। यह भारतवासियों की सच्ची आवाज नहीं है, इन यूरोपियनों की है। पर अब हमसे कहा जाता है—इनकी बात मत सुनो, क्योंकि यह तो हिंदुस्तानियों की आवाज है, यूरोपियनों की नहीं।"

अपने देश की बहुत प्रशंसनीय सेवा करने के बाद १९०६ में इनका स्वर्गवास हुआ।

लोकमान्य तिलक

लोकमान्य तिलक महाराष्ट्र के बिना ताज के बादशाह थे और बाद में, होमरूल के दिनों में भारत के भी हो गये थे। अपनी सेवाओं और तपश्चर्या के द्वारा ही वे इस दर्जे को पहुंचे थे।

शिवाजी महाराज की स्मृति को फिर से ताजा करने का श्रेय लोकमान्य तिलक को ही है। सारे महाराष्ट्र में शिव-जयन्तियां मनाई जाने लगीं, जिनमें उत्सव के साथ सभायें भी होती थीं। पहली ही सभा में दक्षिण के बड़े-बड़े मराठा राजा और मुख्य-मुख्य जागीरदार और इनामदार आये थे। इस सिलसिले में १४ सितम्बर १८९७ को कुछ पद्य तथा अपना भाषण छापने के अपराध में उन्हें १८ महीनों की कड़ी कैद की सजा दी गई थी। पर वह ६ सितम्बर १८९८ को छोड़ दिये गये। अध्यापक मैक्समूलर, सर विलियम हण्टर, सर रिचार्ड गार्थ, मि० विलियम केन और दादाभाई नौरोजी ने एक दरखास्त दी थी, जिसके फल-स्वरूप उनकी रिहाई हुई थी। उनके जेल में रहते हुए ताजीरात हिन्द में १२४ ए और १५३ ए दफायें नई जोड़ी गईं, जिससे कि वे कानून के शिकंजे में फंसाये जा सकें।

अमरावती-कांग्रेस (१८९७) में तिलक की रिहाई के बारे में एक विशेष प्रस्ताव पास करने की कोशिश की गई थी, किन्तु वह सफल न हुई। परन्तु कांग्रेस में प्रस्ताव-द्वारा जो बात न हो सकी वह सभापति सर शंकरन नायर और सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के भाषणों से पूरी हो गई। दोनों ने उस महान् और विद्वान् पुरुष की बहुत प्रशंसा की, जो कि उस समय जेल में सड़ रहा था। इससे तिलक की कीर्ति शिखर पर पहुंच गई थी।

१८९६ से ही तिलक कांग्रेस को प्रेरित कर रहे थे कि वह कुछ ज्यादा मजबूती दिखलाये। १८९९ में जब वे लॉर्ड सेण्डर्स्ट की निन्दा का प्रस्ताव पेश करना चाहते थे तो एक विरोध का तूफान खड़ा हो गया था। उन्होंने दर्शकों को यह साबित करने के लिए चुनौती दी कि लॉर्ड सेण्डर्स्ट का शासन प्रजा के लिए सत्यानाशी नहीं था। उन्होंने नौकरशाही की करतूतें साफ-साफ सामने रक्खीं और पूछा कि बताओ, इनमें कहां अत्युक्ति है? परन्तु रमेशचन्द्र दत्त जो कि सभापति थे और कई दूसरे प्रतिनिधि भी, कहते हैं, तिलक के इस प्रस्ताव के घोर विरोधी थे और जब तिलक ने कहा कि वे इस बिना पर नहीं रोके जा सकते कि कांग्रेस में प्रान्तिक प्रश्न नहीं लिये जा सकते, और वे अपने पक्ष में अध्याय और धाराओं के उदाहरण देने लगे, तो सभापति ने यहां तक कह दिया कि यदि तिलक इस पर अड़े ही रहेंगे तो मुझे इस्तीफा दे देना होगा।

सूरत (१९०७) में कांग्रेस के दो टुकड़ों का हो जाना उस समय बड़ी चर्चा का विषय हो गया था। लोकमान्य तिलक उसमें सबसे बड़े अपराधी गिने जाते थे और कहा जाता था कि इन्होंने २५ वर्ष की जमी-जमाई कांग्रेस को मिट्टी में मिला दिया। दोनों तरफ के लोग अपने-अपने पक्ष की बातें कहते थे। इसमें तो कोई शक नहीं कि खुद कलकत्ते में ही नरम और गरम दल के नेताओं का मतभेद प्रकट होने लगा था, लेकिन दादाभाई नौरोजी के प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण किसी तरह यह टंटा

गया था। वही १९०७ में जाकर प्रकट हो गया। कांग्रेस को नागपुर से सूरत ले जाने का कारण यही मतभेद था कि और राष्ट्रीय तथा गरम दल के लोग खुल्लमखुल्ला कहते थे कि नरम दलवालों ने जान-बूझकर सूरत को पसंद किया है, ताकि वे स्थानिक लोगों की सहायता से अपना चाहा कर सकें। गरम दल के लोग चाहते थे कि लोकमान्य तिलक सभापति हों; परन्तु नरम दल के लोग इसके विरोधी थे और उन्होंने अपने विधान के अनुसार डॉ० रासविहारी घोष को चुन लिया। इसपर गरम दलवालों ने लाला लाजपतराय का नाम पेश किया। उन्होंने सोचा था कि लालाजी हाल ही देश-निकाले से लौट-कर आये हैं, जिससे उनका नाम और भी बढ़ गया है और वे बिना विरोध के चुन लिये जायंगे; परन्तु लाला लाजपतराय ने उस समय बड़े आत्म-त्याग का परिचय देते हुए उस सम्मान से इन्कार कर दिया। जब प्रतिनिधि सूरत पहुंच गये तब लोकमान्य ने अपने विचार के प्रतिनिधियों को अलाहदा कैम्प में जमा किया। मतभेदों को दूर करने की कोशिश की जा रही थी; मगर गलतफहमियां बढ़ती ही चली गईं। गरम दल के लोग इस बात पर जोर दे रहे थे कि स्वशासन, बहिष्कार और राष्ट्रीय शिक्षा के प्रस्तावों की सीमा यदि बढ़ाई न जा सके तो कम-से-कम वे दोहराये तो जायं; परन्तु वे इसी खयाल में रहे कि नरम दल के नेता उन्हें उड़ा देना चाहते हैं अथवा कम-से-कम नरम कर देना चाहते हैं। लेकिन दुर्भाग्य-वश स्वागत समिति ने प्रस्तावों के जो मसविदे बना रक्खे थे, वे अधिवेशन की कार्रवाई शुरू होने तक प्राप्त नहीं हो सके थे और जब यह कहा गया कि चारों प्रस्ताव मसविदे के रूप में हैं तो इस पर विश्वास नहीं किया गया। लोकमान्य तिलक ने कुछ लोगों को बीच में डालकर सम-झौता कराने की कोशिश की, पर वह बेकार हुई और स्वागताध्यक्ष श्री त्रिभुवनदास मालवीय से मिलने की उनकी कोशिश भी व्यर्थ हुई। कांग्रेस २७ दिसम्बर को २॥ बजे शुरू हुई। १६०० से ऊपर प्रतिनिधि मौजूद थे। जब स्वागताध्यक्ष अपना काम खतम कर चुके तब स्वागत-समिति के नियमानुसार मनोनीत सभापति डॉ० रासविहारी घोष का नाम उपस्थित किया गया। इस पर गुलगपाड़ा मचा और जब सुरेन्द्रनाथ बनर्जी इसका समर्थन कर रहे थे तब शोरगुल और उपद्रव इतना बढ़ा कि कार्रवाई दूसरे दिन के लिए मुलतवी करनी पड़ी। ऐसा मालूम होता है कि नये सिरे से फिर निपटारे की कोशिश की गई; मगर कोई फल नहीं निकला। २८ को फिर कांग्रेस शुरू हुई। जब सभापति का जुलूस निकल रहा था, लोकमान्य तिलक ने एक चिट श्री मालवीय को भेजी, जिसमें लिखा था, "जब सभापति के चुनाव के प्रस्तावों का समर्थन हो चुके तब मैं प्रतिनिधियों से कुछ कहना चाहता हूं कि बैठक को स्थ-गित करने का प्रस्ताव पेश करूं और इसके साथ ही एक अच्छा उपाय भी सुझाना चाहता हूं। कृपया मेरे नाम की सूचना दे दीजिए।" कल जहां कार्रवाई अधूरी छोड़ दी गई थी वहीं से आगे शुरू हुई और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने अपना भाषण खतम किया। लेकिन लोकमान्य की चिट पर, याददिहानी के बाद भी, ध्यान नहीं दिया गया। तब लोकमान्य तिलक बोलने के अपने अधिकार का पालन करने के लिए मंच की ओर बढ़े। स्वागताध्यक्ष और डॉ० घोष दोनों ने समझा कि डॉ० घोष का चुनाव विधिपूर्वक हो गया है और उन्होंने तिलक को बोलने की इजाजत नहीं दी। बस क्या था, गुलगपाड़ा और गोल-माल शुरू हुआ। इतने ही में प्रतिनिधियों में से किसी ने एक जूता उठाकर फेंका, जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को छूता हुआ सर फिरोजशाह मेहता को लगा। तब मानों एक लड़ाई शुरू हो गई—कुर्सियां फेंकी गईं और डण्डे चलने लगे, जिससे कांग्रेस उस दिन के लिए खतम हो गई। अब नरम दल के नेता जमा हुए और उन्होंने 'कनवेन्शन' बनाया और ऐसा विधान तैयार किया कि जिससे गरम दल के लोग आ ही न सकें। अब उस घटना को इतना अरसा गुजर चुका है कि दोनों दलों की बातों पर कोई राय बनाई जा सकती है। यह तो मानना ही पड़ेगा कि दोनों का दृष्टि-बिन्दु जुदा-जुदा था

और हर दल उत्सुक था कि कांग्रेस उसके दृष्टि-विन्दु को मान ले। परन्तु, जिस बात पर लोकमान्य तिलक मंच पर खड़े हुए वह मामूली थी। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि कलकत्ते में स्वीकृत विधान के अनुसार स्वागत-समिति सभापति को सिर्फ नामजद करती है और अन्त में उसे चुनते तो हैं कांग्रेस में जमा हुए प्रतिनिधि, इसलिए मुझे अधिकार है कि मैं उस अवस्था में कोई संशोधन या सभा को स्थगित करने का प्रस्ताव पेश करूं। परन्तु उन्हें ऐसा नहीं करने दिया गया। तब उन्होंने इस अन्याय पर बोलने के अपने अधिकार का उपयोग करना चाहा। हम यह नहीं कह सकते कि विधान के अनुसार उनका कहना गलत था। साथ ही यह कहना पड़ेगा कि महज गलतफहमी के कारण लोगों के मनोभाव बहुत विगड़ चुके थे; क्योंकि यह सन्देह पैदा हो गया था कि कलकत्ते वाले प्रस्ताव मसविदे में शामिल नहीं किये गये थे। पर अगर वे नहीं भी थे तो विषय-समिति में वे शामिल किये जा सकते थे, या यदि वे उस रूप में नहीं थे जिससे गरम दल वालों को सन्तोष होता तो विषय-समिति में, यदि उनका बहुमत होता, तो उनमें फेर-फार कराया जा सकता था। महज उनका रह जाना कोई इतनी बड़ी बात नहीं थी कि जिससे इतना भारी काण्ड होने दिया जाय। यदि दोनों दल के नेता आपस में खुलकर बात-चीत कर लेते तो वह दोनों की स्थिति साफ करने के लिए काफी होजाता और तब उचित फैसला कर लिया जाता; परन्तु कुछ नरम नेताओं की तंगदिली ने शायद ऐसा नहीं करने दिया। हां, घटनायें घट जाने पर तो अकल आसानी से आ जाती है, किन्तु जब मनोभावों पर चोट पहुंची हुई होती है तब बड़े-बड़े लोग भी अपनी समता खो देते हैं। अब यदि हम लोकमान्य तिलक और गोखले जैसों के बारे में यह कहें कि इसमें किसका कितना दोष था तो हमारे हक में वह विवेक-हीनता ही होगी। और, इसलिए, हम इस 'अव्यापारेषु व्यापार' में न पड़कर, दोनों नेताओं के प्रति अपने आदर को किसी प्रकार कम न होने देते हुए, उस दुर्घटना को छोड़ कर आगे चलते हैं।

लोकमान्य तिलक जबरदस्त राष्ट्र-धर्म के उपासक थे। परन्तु अपने समय की मर्यादाओं को वे जानते थे। १९१८ में सर वेलेण्टाइन शिरोल पर मुकदमा चलाने के लिए वे इंग्लैण्ड गये। सर वेलेण्टाइन ने उन्हें राजद्रोही बताया था और लोकमान्य ने उन पर मानहानि का दावा किया था। इंग्लैण्ड में उन्होंने मजदूर-दल पर इतना भरोसा रक्खा कि उन्होंने २ हजार पौंड भेंट किया। उन्होंने मान लिया था कि मजदूर-दल का इतना बल है कि उसके द्वारा भारत का उद्धार हो जायगा। इससे पहले के राजनीतिज्ञ अनुदार दल वालों की बनिस्बत उदार दल वालों पर बहुत भरोसा रखते थे; परन्तु उसके बाद के राष्ट्रीय दल के लोग उदार और अनुदार दोनों को एक-सा समझ कर मजदूर-दल को मानते थे। शिरोल वाले मामले में लोकमान्य को निराशा हुई और इसलिए यह आशा की जाती थी कि इससे भारत में ब्रिटिश-शासन के असली रूप को वे देख लेंगे और सरकार से लड़ने की अपनी तजवीजें बदलने पर वे मजबूर होंगे; परन्तु ज्यों ही १९१९ का बिल पास हुआ, उन्होंने प्रति-योगी सहयोग के पक्ष में अपनी राय दी और जब देश में असहयोग पर चर्चा हो रही थी तब उन्होंने उसके विचार में कोई भाग नहीं लिया। उन्होंने यह तो कहा था कि खिलाफत के मामले में मुसल-मानों की सहायता में खुशी से करूंगा, परन्तु १ अगस्त १९२० को उनका स्वर्गवास हो गया। असहयोग उसी दिन शुरू होने वाला था। उस पुराने युग में एक लोकमान्य तिलक ही थे जिन्हें लगातार जेलों में तथा अन्यत्र कष्ट-ही-कष्ट भोगना पड़ा। यहां तक कि जब १९०८ में जज ने उनको सजा दी और उनके बारे में खरी-खोटी बातें कह कर पूछा कि आपको कुछ कहना है, तब उन्होंने उसका जो उत्तर दिया वह सदा याद रखने और प्रत्येक घर में स्वर्णाक्षरों में लिखकर रखने योग्य है—"जूरी के इस फैसले के बावजूद मैं कहता हूं कि मैं निरपराध हूं। संसार में ऐसी बड़ी शक्तियां

भी हैं जो सारे जगत् का व्यवहार चलाती हैं और सम्भव है ईश्वरीय-इच्छा यही हो कि जो कार्य मुझे प्रिय है वह मेरे आज़ाद रहने की अपेक्षा मेरे कष्ट-सहन से अधिक फूले-फले ।"[1] ऐसी ही तेजस्विता उन्होंने १८९७ में दिखलाई थी जब कि उन पर राजद्रोह का मुकदमा चल रहा था और उनसे सिर्फ यह कहा गया कि वे अदालत में यह सच बात कह दें कि ये लेख मेरे लिखे नहीं हैं। (१९०८ में जिन लेखों के विषय में लोकमान्य पर मुकदमा चलाया गया था वे भी उनके लिखे नहीं थे।) उन्होंने कतई इन्कार कर दिया और कहा—"हमारे जीवन में ऐसी भी एक अवस्था आती है जबकि हम अकेले अपने मालिक नहीं हुआ करते; बल्कि हमें अपने साथियों के प्रतिनिधि के रूप में काम करना पड़ता है।" उन्होंने बड़ी शान्ति और अनासक्ति के साथ इन सजाओं को भुगता और जेल में बैठे-बैठे बड़े भव्य-ग्रन्थों की रचना की। यदि उन्हें जेल न मिली होती तो 'आर्कटिक होम ऑफ दी वेदाज़' और 'गीता-रहस्य' वे सम्भवतः राष्ट्र के लिए अपनी सम्पदा नहीं छोड़ जाते। लोकमान्य जुलाई १९१८ में बम्बई की युद्ध-सभा में बुलाये गये थे और वे वहां गये भी थे। वे कोई दो ही मिनट बोलने पाये थे कि रोक दिये गये! बात यह थी कि वे लॉर्ड विलिंगडन की उन बातों का जवाब देने लगे थे जो कि उन्होंने होमरूल वालों के खिलाफ कही थीं।

जब १८९६ में गांधी जी पूना गये और दक्षिण अफ्रीका-वासी भारतीयों के सम्बन्ध में एक सभा करना चाहते थे वे लोकमान्य से मिले और उनकी सलाह के मुताबिक गोखले से भी। गांधीजी पर दोनों की जैसी छाप पड़ी वह याद रखने लायक है। तिलक उन्हें हिमालय की तरह महान्, उच्च, परन्तु अगम्य दिखाई पड़े; लेकिन गोखले गङ्गा की पवित्र धारा की तरह, जिसमें वे आसानी से गोता लगा सकते थे। तिलक और गोखले दोनों महाराष्ट्रीय थे, दोनों ब्राह्मण थे, दोनों चितपावन थे, दोनों प्रथम श्रेणी के देश भक्त थे, दोनों ने अपने जीवन में भारी त्याग किया था, परन्तु दोनों की प्रकृति एक-दूसरे से जुदा थी। यदि हम स्थूल भाषा का प्रयोग करें तो कह सकते हैं कि गोखले 'नरम' थे और तिलक 'गरम'। गोखले चाहते थे कि मौजूदा विधान में सुधार कर दिया जाय, परन्तु तिलक उसे बनाना चाहते थे। गोखले को नौकरशाही के साथ काम करना पड़ता था, तो तिलक की नौकरशाही से भिड़ंत रहती थी। गोखले कहते थे—जहां सम्भव हो सहयोग करो; जहां आवश्यक हो विरोध करो। तिलक का झुकाव अड़ंगा-नीति की तरफ था। गोखले शासन और उसके सुधार की ओर मुख्य ध्यान देते थे, तहां तिलक राष्ट्र और उसके निर्णय को सब से मुख्य समझते थे। गोखले का आदर्श था प्रेम और सेवा, तहां तिलक का आदर्श था सेवा और कष्ट सहना। गोखले विदेशियों को जीतने का उपाय करते थे, तिलक उनको हटाना चाहते थे। गोखले दूसरे की सहायता पर आधार रखते थे, तिलक स्वावलम्बन पर। गोखले उच्चवर्ग और बुद्धि-वादियों की तरफ देखते थे और तिलक सर्वसाधारण और करोड़ों की ओर। गोखले का अखाड़ा था कौंसिल-भवन, तो तिलक की अदालत थी गांव की चौपाल। गोखले अंग्रेजी में लिखते थे, परन्तु तिलक मराठी में। गोखले का उद्देश्य था स्व-शासन, जिसके योग्य लोग अपने को अंग्रेजों की कसौटियों पर कसकर बनावें; किन्तु तिलक का उद्देश्य था 'स्वराज्य', जो कि प्रत्येक भारतवासी का जन्म-सिद्ध अधिकार है और जिसे वह विदेशियों की सहायता या बाधा की परवाह न करते हुए प्राप्त करना चाहते थे।

१—उन्हीं दिनों किसी ने इस भाव को इन कड़ियों में व्यक्त किया था—

"इस जूरी ने यद्यपि मुझको अपराधी ठहराया है, तो भी मेरे मन ने मुझको निर्दोषी बतलाया है।
ईश्वर का संकेत मनोगत दिखलाई यह मुझे पड़े, मेरे संकट सहने से ही इस हलचल का तेज बढ़े।"

पं० अयोध्यानाथ

शुरुआत के कांग्रेस-नेताओं में पं० अयोध्यानाथ का स्थान बहुत ऊंचा था। १८८८ में हुई इलाहाबाद-कांग्रेस के, जो मि० जार्ज यूल के सभापतित्व में हुई थी, ये स्वागताध्यक्ष थे; तभी से कांग्रेस के साथ उनका सम्पर्क शुरु होता है। लेकिन इसी शहर में जब फिर से कांग्रेस का अधिवेशन हुआ (१८९२) तो कांग्रेस को बड़े दुःख के साथ इन दोनों की मृत्यु पर शोक मनाना पड़ा। पं० अयोध्यानाथ का स्मारक उनके पुत्र पं० हृदयनाथ कुंजरू हैं, जिन्हें बतौर विरासत वे राष्ट्र की भेंट कर गये हैं।

सुरेन्द्रनाथ बनर्जी

भारत के स्वर्गीय राजनीतिज्ञों के दरबार में सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की आत्मा का एक प्रमुख स्थान है। ४० साल से ज्यादा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का सम्बन्ध कांग्रेस से रहा। भारत में कांग्रेस के मंच से उठी उनकी बुलन्द आवाज सभ्य संसार के दूर-दूर के कोने तक पहुंचती थी। भाषा-प्रभुत्व, रचना-नैपुण्य, कल्पना-प्रवणता, उच्च-भावुकता, वीरोचित-हुङ्कार, इन गुणों में उनकी वक्तृत्व-कला को पराजित करना कठिन है—आज भी कोई उनकी समता तो अलग, उनके निकट भी नहीं पहुंच सकता। उनके भाषणों का मसाला होता था अपनी राजभक्ति की दुहाई। उन्होंने इसे एक कला की हद तक पहुंचा दिया था। उन्होंने दो बार कांग्रेस के सभापति-पदको सुशोभित किया था—पहली बार १८९५ में पूना में और दूसरी बार १९०२ में अहमदाबाद में। कांग्रेस में प्रतिवर्ष जो भिन्न-भिन्न विषयों पर विविध प्रस्ताव लाये जाते थे उनमें शायद ही कोई उनकी पहुंच के बाहर रहता हो। फौजी विषयों पर रूस १९वीं सदी के अन्त में बरसों तक हौवा बना रहा है। परन्तु सुरेन्द्रनाथ ने इसका जो जवाब दिया वह याद रखने योग्य है—"रूस की चढ़ाई का सच्चा और वैज्ञानिक उपाय तो कोई लम्बा-चौड़ा और अगम्य पर्वत नहीं, जो बीच में बनाकर खड़ा कर देना है, बल्कि वह तो सब तरह सन्तुष्ट और राजभक्त लोगों का दिल है।" सुरेन्द्रनाथ ने यहां तक सुझाया था कि हिन्दुस्तान के राजनैतिक प्रश्नों को ब्रिटिश पार्लमेंट के किसी दल को अपना विषय बना लेना चाहिए। यह एक ऐसी तजवीज थी कि जो आज भी व्यावहारिक क्षेत्र की सीमा के बाहर समझी जाती है। उन्होंने कहा—"राजनैतिक कर्तव्यों के उच्च-क्षेत्र में इंगलैण्ड हमारा राजनैतिक पथ-दर्शक और नैतिक गुरु है।" उनका आदर्श था ब्रिटिश-सम्बन्ध के प्रति अटल श्रद्धा रखकर काम करना। एक-दूसरे मौके पर उन्होंने कहा था—"अंग्रेजी सभ्यता संसार में सर्वोच्च है, इंगलैण्ड और भारत की अखण्ड एकता का चिह्न है। यह सभ्यता भारतवासियों के प्रति अपूर्व आशीर्वादों और प्रसादों से परिपूर्ण है और अंग्रेजों के सुनाम को अपूर्व ख्याति दिलाने वाली है" उनके इन तमाम विश्वासों, मान्यताओं के रहते हुए भी लॉर्ड मिण्टो के वाइसराय-काल में बरीसाल में उन पर लाठी चलाई गई थी, किन्तु उन्हें आगे चलकर बङ्गाल का मंत्री बनना था, इसलिए बच गये।

पण्डित मदनमोहन मालवीय

पं० मदनमोहन मालवीय का कांग्रेस-मंच पर सबसे पहली बार सन् १८८६ में, कांग्रेस के कलकत्ता-अधिवेशन में, व्याख्यान हुआ था तभी से लेकर आप बराबर आजतक अथक उत्साह और लगन के साथ इस राष्ट्रीय संस्था की सेवा करते चले आ रहे हैं। कभी तो एक विनम्र-सेवक के रूप में पीछे रहकर और कभी नेता के रूप में आगे आकर, कभी पूरे कर्त्ता-धर्त्ता बनकर और कभी कुछ थोड़ा-सा विरोध प्रदर्शित करने वाले के रूप में प्रकट होकर, कभी असहयोग और सत्याग्रह-आन्दोलन के विरोधी होकर और कभी सत्याग्रही बनने के कारण सरकारी जेलों में जाकर। आपने कांग्रेस की विविध-रूप में सेवा की है।

सन् १९१८ के अप्रैल मास में २७, २८ और २९ तारीख को वाइसराय ने गत महायुद्ध के लिए जन,धन तथा अन्य सामग्री एकत्र करने के लिए भारतीय नेताओं की एक सभा बुलाई थी। उसमें गवर्नर, लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर, चीफ कमिश्नर, कार्यकारिणी के सदस्य, बड़ी कौंसिल के भारतीय तथा यूरोपियन सदस्य, विभिन्न प्रांतीय कौंसिलों के सदस्य, देशी-नरेश तथा अनेक सरकारी एवं गैर-सरकारी प्रतिष्ठित यूरोपियन और हिन्दुस्तानी नागरिक सम्मिलित हुए थे। इस सभा में शास्त्रीजी, राजा महमूदाबाद, सैयद हसनइमाम, सरदारबहादुर सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया और गांधीजी के भाषण 'सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति' वाले प्रस्तावके समर्थन में हुए थे, जिसे महाराजा गायकवाड़ ने पेश किया था।

इसके बाद पं० मदनमोहन मालवीय ने वाइसराय को सम्बोधन करके कहा, कि "भारत के आधुनिक इतिहास से एक शिक्षा लीजिए। औरङ्गजेब के जमाने में सिक्ख गुरुओं ने उसकी सत्ता और प्रभुत्व का मुकाबला किया था। गुरु गोविन्दसिंह ने छोटे-छोटे लोगों को, जो आगे बढ़े,अपनाया और गुरु और शिष्य के बीच में जो अन्तर है उसे एकदम मिटाकर उन्हें दीक्षित किया। इस तरह गुरु गोविन्दसिंह ने उन लोगों के हृदय पर अधिकार जमा लिया था। अब भी मैं यह चाहता हूं कि आप अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करके भारतीय सिपाहियों के लिए ऐसी व्यवस्था कर दीजिए कि जिससे युद्ध-स्थल में अन्य देशों के जो सैनिक उनके कंधे-से-कंधा भिड़ाकर युद्ध करते हैं उनके बराबर वे अपने को समझ सकें। मैं चाहता हूं कि इस अवसर पर गुरु गोविन्दसिंह के उत्साह एवं साहस से काम लिया जाय।"

देश में जब असहयोग-आंदोलन चला तब मालवीयजी उससे तो दूर रहे, परन्तु कांग्रेस से नहीं। नरम दल वालों ने अपने जमाने में कांग्रेस को हर प्रकार चलाया, लेकिन जब उनका प्रभाव कम हुआ तो वे उससे अलग हो गये। श्रीमती बेसेण्ट ने कांग्रेस पर एक बार अधिकार प्राप्त कर लिया था। पर बाद में उन्होंने भी, अपने से प्रबल दलवालों के हाथों में उसे सौंप दिया। लेकिन मालवीयजी तमाम उतार-चढ़ावों में, प्रशंसा और बदनामी, किसी की परवा न करते हुए, सदैव कांग्रेस का पल्ला पकड़े रहे हैं। मालवीयजी ही अकेले एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिनमें इतना साहस है कि जिस बात को वे ठीक समझते हैं उसमें चाहे कोई भी उनका साथ न दे पर वे अकेले ही मैदान में खम ठोंककर डटे रहते हैं। एक बार वे अपनी लोकप्रियता की चरम-सीमा पर थे। दूसरी बार यह अवस्था हुई कि कांग्रेस-मंच पर उनके भाषण को लोग उतने ध्यान से नहीं सुनते थे। १९३० में जब सारे कांग्रेसी सदस्यों ने असेम्बली की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था उस समय मालवीय जी वहीं डटे रहे। उन्हें ऐसा करने का अधिकार भी था। क्योंकि वे कांग्रेस के टिकट पर असेम्बली में नहीं गये थे। लेकिन इसके चार मास बाद ही दूसरा समय आया। मालवीय जी ने उस समय की आवश्यकता को देखकर असेम्बली की मेम्बरी से इस्तीफा दे दिया। सन् १९२१ में उन्होंने असहयोग-आन्दोलन का विरोध किया था। लेकिन १९३० में हमें वह पूरे सत्याग्रही मिलते हैं। सब मिलाकर उनका स्थान अनुपम और अद्वितीय है। हिन्दू की हैसियत से वे उन्नत विचार वाले हैं और गाड़ी को आगे खींचते हैं। कांग्रेसी की हैसियत से वे स्थिति-पालक हैं, इसीलिए प्रायः वे पिछड़े हुए विचार वालों का नेतृत्व किया करते हैं। फिर भी कांग्रेस इस बात में अपना गौरव समझती है कि वह सरकारी कौंसिल और देश की कौंसिल दोनों में उन्हें निर्विरोध जाने दे। किसी समय में जो बात गांधी जी के लिए कही जा सकती थी, वही इनके लिए भी कही जा सकती है, कि एक समय था जब वे ब्रिटिश-साम्राज्य के मित्र थे। लेकिन अपने सार्वजनिक जीवन के पिछले दिनों में

उन्होंने अपने को, सरकारी निरंकुशता का अपने सारे उत्साह और सारी शक्ति के साथ विरोध करने के लिए विवश पाया। बनारस-हिन्दू-विश्वविद्यालय उनकी विशेष कृति है। लेकिन वह स्वयं भी एक संस्था हैं। पहले-पहल सन् १९०९ में वे लाहौर कांग्रेस के सभापति हुए थे। कांग्रेस के इस २४ वें अधिवेशन के सभापति चुने तो सर फिरोजशाह मेहता गये थे, परन्तु किन्हीं अज्ञात कारणों से उन्होंने अधिवेशन से केवल ६ दिन पूर्व इस मान को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया था। अतः उनके स्थान की पूर्ति मालवीय जी ने ही की थी। १० वर्ष बाद सन् १९१८ में कांग्रेस के दिल्ली वाले ३३ वें अधिवेशन के सभापतित्व के लिए राष्ट्र ने आपको फिर मनोनीत किया था।

लाला लाजपतराय

कांग्रेस के पुराने पूज्य-पुरुषों में लाला लाजपतराय का सार्वजनिक व्यक्तित्व भी महान् था। वे जितने बड़े कांग्रेस-भक्त थे उतने ही बड़े परोपकारी और समाज-सुधारक भी थे। सन् १८८८ में इलाहाबाद में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन हुआ था। उसमें वे सबसे पहली बार सम्मिलित हुए थे। कौंसिलों के बढ़ाये जाने के प्रस्ताव का उन्होंने समर्थन किया था। राजनैतिक क्षेत्र में लाला जी की लगातार दिलचस्पी और समाज-सेवा ने पंजाब में ही नहीं, सारे देश में उनका सबसे ऊंचा स्थान बना दिया था। बनारस-कांग्रेस ने उन्हें एक प्रमुख वक्ता और राष्ट्रवादी के रूप में याद किया। सन् १९०७ में उन्हें सरदार अजीतसिंह के साथ देश-निकाला दे दिया गया था। इस साल की घटनाओं के प्रधान स्तम्भ लाला लाजपतराय ही थे, जिनके चारों ओर घटना-चक्र घूमा था। सन् १९०७ की कांग्रेस के सभापति-पद के लिए राष्ट्रीय-विचार के लोगों ने लाला जी का नाम पेश किया। यह कांग्रेस पहले तो नागपुर में होने वाली थी, परन्तु बाद में स्थान बदल कर सूरत में करने का निश्चय हुआ था। गोखले इस प्रस्ताव के विरोध में थे। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "अगर तुम सरकार की परवा न करोगे तो वह तुम्हारा गला घोंट देगी।" लाला जी ने कभी मान प्रतिष्ठा की परवा नहीं की। यदि किसी पद के लिए उनका नाम लिया जाता तो वे उसे स्वीकार करने से उदा-रता-पूर्वक इन्कार कर देते थे। सूरत में समझौते की बातचीत के समय, लोकमान्य तिलक चाहते थे कि कांग्रेस के सभापति-पद के लिए लाला जी का नाम पेश करते हुए उनके सम्बन्ध में आदरपूर्वक कुछ कहें, लेकिन बाद में इस दिशा में कुछ हुआ-हवाया नहीं।

सन् १९०६ में गोखले के साथ लाला जी भी शिष्ट-मण्डल में इंग्लैंड भेजे गये थे। बाद में खुफिया-पुलिस ने उन्हें इतना तंग किया कि उन्होंने विदेशों में ही ठहरना ठीक समझा। गत महा-युद्ध के दिनों में तो वे अमरीका ही में रहे। लोग समझते थे कि वे विवश होकर ही वहां रहे थे। कांग्रेस के सभापति बनने का लाला जी का नम्बर जरा देर से आया। सन् १९२० के सितम्बर मास में कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन हुआ था। उस समय उनकी अवस्था ऐसी थी जैसे जल से बाहर मछली की होती है। असहयोग-आन्दोलन के जन्मदाता और समर्थकों से उनके विचार कभी नहीं मिले। इतना ही नहीं, अपने अन्तिम भाषण में तो उन्होंने यह भविष्यवाणी भी कर दी थी कि यह आन्दोलन चल नहीं सकेगा। वे वीर और युद्ध-प्रिय थे, मगर सत्याग्रही नहीं। उनके लिए सत्याग्रह या सविनय-भंग का अर्थ कानून-भंग के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। उनका समय बड़ी कठिनाइयों और संघर्षों में बीता। उनके अपने प्रान्त में नौजवानों का एक दल ऐसा था, जो उनके खिलाफ था। कौंसिल में जाने पर उनका जौहर फिर से खिल उठा। लेकिन अफसोस कि पुलिस-अफसर की लाठी के कायरता पूर्ण वार ने अन्त में उनकी जीवन यात्रा को घटा दिया और वे हमारे बीच से असमय में ही चले गये! सन् १८८८ की कांग्रेस में वे उर्दू में ही बोले थे और प्रस्ताव

किया था कि आधा दिन शिक्षा तथा उद्योग-धन्धे सम्बन्धी विषयों पर विचार करने के लिए दिया जाय। यह प्रस्ताव स्वीकार हो गया था और उसी समय से जो औद्योगिक प्रदर्शनियां की जा रही हैं वे उसी कमिटी का प्रत्यक्ष फल है जिसे कि उस समय कांग्रेस ने नियुक्त किया था।

फिरोजशाह मेहता

सर फिरोजशाह मेहता उन व्यक्तियों में हैं जिनका सम्पर्क कांग्रेस के साथ उसके प्रारम्भ से हो रहा है। कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम के निर्माण में इनका बहुत प्रमुख भाग रहा है। कलकत्ता में हुए छठे अधिवेशन (१८९०) के ये सभापति हुए थे, जिसमें सभापति-पद से दिये गये अपने भाषण में इन्होंने लार्ड सेल्सबरी के इस विचार का खण्डन किया कि "प्रतिनिधि-शासन पूर्वी परम्पराओं अथवा पूरब-निवासियों की मनः स्थिति के अनुकूल नहीं है" और अपनी बात की पुष्टि में मि० चिसहाम एन्स्टे का यह उद्धरण पेश किया कि "स्थानिक-स्वराज्य का जनक तो पूर्व ही है; क्योंकि स्व-शासन का अधिक-से-अधिक विस्तृत जो अर्थ हो सकता है, उस रूप में वह प्रारम्भ से ही वहां मौजूद रहा है।" फिरोजशाह ने कहा, "निस्सन्देह कांग्रेस जन-साधारण की संस्था नहीं है, लेकिन जन-साधारण के शिक्षित वर्ग का यह फर्ज है कि वह जन-साधारण की तकलीफों को सामने लाये और उन्हें दूर कराने के उपाय सुझावे।"

"इतिहास हमें बताता है कि" इन्होंने कहा, "सब प्रान्त और देशों में, खासकर स्वयं इंग्लैण्ड में, प्रगति का यही नियम रहा है। इस प्रकार जो काम या कर्त्तव्य हमारे हिस्से आता है वह तभी अच्छी तरह अदा किया जा सकता है जब कि किसी तरह का खतरा और परेशानी न हो, न ऐसी कोई बात हो जिससे मन में क्रोध या क्षोभ पैदा हो, बल्कि हृदय साफ और वफादार हो तथा बुद्धि निर्मल हो। मैं इस बात को फिर कहता हूं कि यह कांग्रेस का ही गौरव है जो देश के शिक्षित और उन्नतिशील लोग उस कृतज्ञता के बदले में, जो उन्हें शिक्षा की नियामत देकर उनके साथ की गई है, समयानुकूल राजनीतिज्ञता दिखाने की प्रार्थना–और वह भी नम्रता और संयम के साथ—कर रहे हैं। इस विषय में मुझे कोई सन्देह नहीं है कि अन्त में ब्रिटिश राजनीतिज्ञ हमारी पुकार को सुनेंगे। अंग्रेजों की संस्कृति के सजीव और उपजाऊ सिद्धान्तों और अंग्रेजी शिक्षा में मेरा अटल विश्वास है।

"अंग्रेजों के जीवन और समाज की सारी नैतिक, सामाजिक, बौद्धिक और राजनैतिक बड़ी बड़ी शक्तियों का प्रभाव, धीरे-धीरे किन्तु अदम्य रूप से दृढ़ता के साथ, हमारे ऊपर पड़ रहा है, जिससे आगे चलकर भारत और इंग्लैण्ड का सम्बन्ध इन दोनों के लिए ही नहीं बल्कि सारे संसार के लिए, और वह भी अगणित पीढ़ियों के लिए, एक आशीर्वाद सिद्ध होगा। मैं सारी अंग्रेज-जाति से अपील करता हूं—खरे मित्रों तथा उदार शत्रुओं, दोनों से, कि इस प्रार्थना को व्यर्थ और निष्फल न जाने दीजिए।"

कई वर्ष तक फिरोजशाह मेहता कांग्रेस के पीछे एक वास्तविक शक्ति के रूप में थे। आपने जो कुछ भी कार्य किया वह अधिकतर उन कमिटियों, शिष्टमण्डलों और प्रतिनिधि-मण्डलों द्वारा ही किया जिनके कि ये सदस्य चुने गये थे। १९०७ में आपने नरम-दल की ओर से सूरत कांग्रेस के अवसर पर कांग्रेस-कार्य में कुछ क्रियात्मक भाग लिया था। उसके बाद आप दृष्टि से बिलकुल ही ओझल होगये। जब आप कांग्रेस के २४ वें अधिवेशन के, जो कि १९०९ में लाहौर में हुआ था, सभापति चुने गये तो यकायक आपने, कांग्रेस के सभापति का आसन ग्रहण करने से, ६ दिन पहले इस्तीफा दे दिया। आपके स्थान पर पं० मदनमोहन मालवीय कांग्रेस के सभापति चुने गये थे।

आनन्दमोहन वसु

यह हम पहले देख ही चुके हैं कि किस प्रकार आनन्दमोहन वसु एक प्रसिद्ध सामाजिक और धार्मिक सुधारक थे, जिनका ब्रह्म-समाज की प्रगति में बहुत स्थान रहा, और किस प्रकार उन्होंने ब्रह्म-समाज के सुधारक-दल का नेतृत्व किया था। १८७६ में स्थापित कलकत्ता के इण्डियन-एसोसियेशन के यह सर्व-प्रथम मन्त्री हुए और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के उत्साही सहकारी रहे। कांग्रेस आंदोलन के साथ १८९६ से पहले तक इनका कोई घनिष्ट सम्बन्ध रहा या नहीं, यह तो हमें नहीं मालूम; पर १८९६ के १२ वें अधिवेशन में इन्होंने शिक्षा-विभाग की नौकरियों के पुनस्संघटन की योजना से होने वाले नये अन्याय का विरोध किया और कहा कि यह योजना तो हिन्दुस्तानियों को शिक्षाविभाग के ऊंचे पदों से अलग रखने के लिए ही बनाई गई है। इसके बाद, शीघ्र ही १८९८ के मदरास अधिवेशन में, आनन्दमोहन वसु कांग्रेस के सभापति हुए। सभापति-पद से दिया हुआ इनका भाषण अकाट्य युक्तियों से, और अन्त में इन्होंने कांग्रेस को जो सन्देश दिया वह प्रेम एवं राष्ट्र-सेवा के उपदेश से, परिपूर्ण है। इन्होंने पार्लमेण्ट में हिन्दुस्तान के चुने हुए प्रतिनिधि रक्खे जाने की बात सुझाई थी। यह देश का दुर्भाग्य है कि जब उसे इनकी सेवाओं की सबसे ज्यादा जरूरत थी तभी, १९०६ में, ईश्वर ने इनको हमसे छीन लिया!

मनमोहन घोष

मनमोहन घोष का नाम हम सबसे पहले १८८८ में हुए चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद) के सिलसिले में सुनते हैं, जबकि इन्होंने सरकारी नौकरियों-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया था। पश्चात् कलकत्ता में हुए छठे अधिवेशन (१८९०) में ये स्वागताध्यक्ष हुए। कांग्रेस पर होने वाले विभिन्न आक्षेपों का अपने जोरदार भाषण में इन्होंने जवाब दिया और कांग्रेस की वास्तविक स्थिति स्पष्ट कर दी। न्याय बनाम शासन कार्यों के विषय का इन्होंने खासतौर पर अध्ययन किया था। पूना में हुए ११ वें अधिवेशन (१८९५) में इन्होंने तत्सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया और मि० जेम्स नामक एक कमिश्नर के वक्तव्य को उद्धृत करके बताया कि, इन दोनों (न्याय व शासन कार्य) का संम्मिश्रण ही "भारत में ब्रिटिश सत्ता का मुख्य आधार है।" इसके बाद इनका स्वर्गवास होगया, जिस पर १२ वीं कांग्रेस (कलकत्ता, १८९६) में शोक मनाया गया।

लालमोहन घोष

लालमोहन घोष १८९० में छठे अधिवेशन में (कलकत्ता) पहले-पहल कांग्रेस मंच पर आये और उन्होंने ब्रैडला साहब के भारत-सरकार-सम्बन्धी बिल पर प्रस्ताव उपस्थित किया था। मदरास (१९०३) में हुए १९ वें कांग्रेस-अधिवेशन के वे सभापति बनाये गये थे। कांग्रेस-मंच से अबतक जितने योग्यतम भाषण हुए हैं उनमें उनके भाषण की गिनती होती है। उनके भाषण से कुछ अंश यहां दिये जाते हैं—

"हालांकि इसमें ऐसा कोई भी शख्स न होगा जो ब्रिटिश-सरकार के प्रति सच्चे दिल से वफादार न होगा, तो भी यह दावा जरूर करेगा कि सरकार के कामों की आलोचना करने का हक हमें है, जैसा कि प्रत्येक ब्रिटिश प्रजाजन को है। ऐसी दशा में क्या हम अदब के साथ अपने शासकों से यह नहीं पूछें—और इस विषय में भिन्न-भिन्न ब्रिटिश राजनैतिक दलों में कोई भेद नहीं करना चाहता – कि आपकी जिस नीति ने बरसों पहले हमारे देशी उद्योगधन्धे नष्ट कर दिये हैं, जिसने हाल ही में उस दिन उदार शासन के नाम पर बेगैरत होकर हमारे सूती कपड़े पर उत्पत्ति-कर लगा दिया, जो करीब २ करोड़ स्टर्लिङ्ग तक हर साल हमारी राष्ट्रीय धन-सामग्री विलायत को ढ़ता के साथ यहां

ले जारही है, जो किसानों पर भारी बोझ लादकर बार-बार जोर के अकाल देश में लाती है—अकाल भी ऐसे कि पहले कभी देखे न सुने—क्या उस नीति पर हमें विश्वास करना होगा ? क्या हमें यह मानना होगा कि जिन विविध शासन-कार्यों के बदौलत ये सब परिणाम निकले हैं वे सब उस मंगलमय परमात्मा की सीधी प्रेरणा से हुए हैं ?

"हमारा राष्ट्र स्वशासित नहीं है। हम, अंग्रेजों की तरह, अपनी रायों के बल पर अपना शासन नहीं बदल सकते। हमें पूर्णतः ब्रिटिश पार्लमेण्ट के निर्णय पर अपना आधार रखना पड़ता है। क्योंकि दुर्भाग्यवश यह बिलकुल सही है कि हमारी भारतीय नौकरशाही लोगों के विचारों और भावों के अनुकूल होने की अपेक्षा दिन-दिन अधिक रूखी बनती जा रही है। क्या आप खयाल करते हैं कि इंग्लैण्ड, फ्रांस, या संयुक्त राज्य (अमरीका) उस हालत में ऐसे खोखले तमाशे पर इतना खर्च करने का साहस करते, जब कि देश में अकाल और महामारी का साम्राज्य छाया हुआ था और इस धृष्टता-पूर्ण आनन्द-मंगल के दूसरी ही ओर यमराज लोगों को समेटने के लिए अपने हाथ पसारे हुए थे ?

"महानुभावो ! जनता और उसके प्रतिनिधियों का लगभग सर्व-सम्मत विरोध होते हुए भी, जिसकी आवाज अखबारों और सभाओं में—दोनों ही तरह—उठाई गई थी, दिल्ली में जो बड़ा भारी राजनैतिक आडम्बर (दिल्ली-दरबार) किया गया था, उसे एक साल हो गया। और उसका विरोध किया किसलिए गया था ? इसलिए नहीं कि विरोध करने वाले लोग सम्राट् की, जिनकी कि तख्त-नशीनी का समारोह होनेवाला था, राजभक्ति में किसी से कम थे; बल्कि इसलिए कि उनका विश्वास था, अगर सम्राट् के मंत्रीगण अपने कर्तव्य का समुचित पालन करते हुए सम्राट् के सामने उनके अकाल-पीड़ित भारतीय-प्रजाजन की कष्ट-कथा का हूबहू वर्णन करते तो दीन-दुःखी लोगों के प्रति सम्राट् की जो गहरी सहानुभूति है उसके कारण स्वयं वही सबसे पहले भारत-स्थित अपने प्रतिनिधियों को भूखों-मरते लोगों के सामने ऐसा आडम्बर-पूर्ण प्रदर्शन करने की मनाही कर देते। लेकिन ऐसा नहीं किया गया और (शाही दरबार का) बड़ा भारी तमाशा कर ही डाला गया, जिसमें इतनी अन्धा-धुन्धी से फजूलखर्ची की गई कि कुछ न पूछिए। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि दिल्ली-दरबार के करने में जो भारी रकम लगाई गई उसकी आधी भी अगर अकाल-पीड़ितों की सहायता में लगाई जाती तो भूखों मरनेवाले लाखों स्त्री, पुरुष, बच्चे मौत के मुंह से निकल आते।"

चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य

सेलम के श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य सबसे पुराने कांग्रेसियों में से हैं, यहां तक कि १८८७ के तीसरे अधिवेशन (मदरास) में कांग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसमें भी इनका नाम मिलता है। इसके बाद लखनऊ में होनेवाले १५ वें अधिवेशन (१८९९) में और उससे अगले साल लाहौर में होनेवाले १६ वें अधिवेशन (१९००) में यह इण्डियन कांग्रेस कमिटी के सदस्य बनाये गये। २२ वें अधिवेशन (कलकत्ता, १९०६) में इन्होंने दायमी बन्दोबस्त का प्रस्ताव पेश किया और इस विचार को गलत बताया कि भूमि-कर (लगान) बतौर किराया है। इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए, इन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान में जमीन पर राजा का अधिकार कभी भी नहीं रहा। ऋषि-मुनियों ने कहा है कि दुनिया उन्हींकी है जो उसमें पैदा हुए हैं; जमीन को जो जोतता-बोता है उसी की वह सम्पत्ति होती है—राजा, जो कि उसकी रक्षा के लिए है, अपनी सेवाओं के बदले में किसानों से पैदावार का एक हिस्सा लेता है। यह विचार कि जमीन राजा की है, भारतीय नहीं बल्कि पश्चिमी है।

सूरत-काण्ड के बादसे, वस्तुतः ये कांग्रेस से अलग ही रहने लगे। नरम दल की कांग्रेस से

इन्हें सन्तोष नहीं हुआ। लेकिन जब १९१६ में लखनऊ में किये गये संशोधन से गरम दलवालों के लिए कांग्रेस का दरवाजा खुल गया, तो ये तो फिर उसमें आगये और १९१८ में हुए विशेषाधिवेशन (बम्बई) तथा १९१९ में हुए अमृतसर-अधिवेशन में इन्होंने क्रियात्मक-रूप से भाग लिया। अमृतसर अधिवेशन में इन्होंने जन-साधारण के मौलिक अधिकारों पर विस्तार से प्रकाश डाला। इसके बाद ही इन्हें नागपुर-अधिवेशन का सभापति चुना गया, जहां बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ इन्होंने कार्य सम्पादित किया।

राजा रामपालसिंह

अन्य प्रमुख कांग्रेसियों में राजा रामपालसिंह का नाम बहुत दिनों तक कांग्रेसी-क्षेत्र में बड़ा प्रमुख रहा है। यह जानने लायक बात है कि दूसरी कांग्रेस में सैनिक-स्वयंसेवकोंवाला प्रस्ताव राजा रामपालसिंह ने ही पेश किया था, जिसके साथ उन्होंने एक गम्भीर चेतावनी भी दी थी। उन्होंने कहा था, कि "ब्रिटिश-शान्ति (पैक्स ब्रिटेनिका) कितनी ही मशहूर क्यों न हों, ग्रेट ब्रिटेन की आकांक्षायें कितनी श्रेष्ठ क्यों न हों, और उसने हमारी भलाई के लिए चाहे जो किया या करने का प्रयत्न किया हो, कुल मिलाकर तो निर्णय उसके विरुद्ध ही होगा; और बजाय प्रसन्न होने के भारत को इस बात पर दुःख ही होगा कि इंग्लैण्ड के साथ उसका कुछ सम्बन्ध रहा। यह बात कहने में कठोर अवश्य है, पर सचाई यही है; क्योंकि एक बार किसी राष्ट्र की राष्ट्रीय-भावना को कुचलकर, और उसको आत्म-रक्षा एवं अपने देश की रक्षा के अयोग्य बनाकर, फिर किसी तरह उसकी क्षति-पूर्ति नहीं की जा सकती। दुनिया में किसी भी ओर आप नजर डालिए, चारों ओर आपको बड़ी-बड़ी फौजें और लड़ाई के भयंकर शस्त्रास्त्र दृष्टि-गोचर होंगे। सारे सभ्य संसार पर कोई आफत आना निश्चतप्राय है। अभी या कुछ ठहरकर भयंकर फौजी हलचल शुरू होगी, जिसमें ब्रिटेन भी निश्चित रूप से शरीक होगा। लेकिन ब्रिटेन अत्यधिक समृद्ध होते हुए भी, अपनी सारी दौलत के जोर पर भी, रण-क्षेत्र में फी हजार व्यक्तियों के पीछे अपने सौ आदमी नहीं रख सकता—जैसा कि यूरोप के अन्य कई देश कर सकते हैं। अतः जब ऐसा मौका आ जायगा तब इंग्लैण्ड को इस बात के लिए पछताना पड़ेगा कि आक्रमण-कारियों से लोहा लेने के लिए लाखों भारतीयों को दक्ष बनाने के बजाय उसने उनके मुकाबले के लिए अपनी ही थोड़ी सेना यहां रख रक्खी है।" अपने पोते कालाकांकर के तरुण राजा के रूप में, जिनका हाल में ही असामयिक स्वर्गवास हो गया है, राजा रामपालसिंह ने मानों सच्चे देशभक्त और कांग्रेस के—जिसके मन्दिर को अपने जीवन-काल में उन्होंने स्वयं ही आलोकित किया था—पुजारी बनकर फिर से जन्म लिया था।

कालीचरण बनर्जी

कांग्रेसी हलचल के पहले पचीस वर्षों में आमतौर पर यह प्रथा रही है कि जो आवश्यक प्रस्ताव एक साल से पुराने हो जाते वे सब एक बड़े प्रस्ताव में इकट्ठे कर दिये जाते थे और साल-दर-साल ऐसे व्यक्तियों को उसे पेश करने के लिए चुना जाता था जिनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी होती—अर्थात् जो उस संयुक्त या व्यापक प्रस्ताव के विभिन्न विषयों का भली-भांति स्पष्टीकरण कर सकते थे। १८८९ में ऐसा प्रस्ताव पेश करने के लिए कालीचरण बनर्जी चुने गये थे, जो एक भारतीय ईसाई थे। कई वर्षों तक उन्होंने कांग्रेस के काम-काज में बड़ी दिलचस्पी ली थी और १८९० में ब्रिटिश जनता के सामने कांग्रेस के विचार रखने के लिए जो शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड गया उसके यह भी एक सदस्य बनाये गये थे। ९ वीं कांग्रेस (लाहौर, १८९३) में उन्होंने न्याय और शासन-कार्य को एक-दूसरे से पृथक् करने का प्रस्ताव पेश किया।

समय की प्रगति के साथ जैसे-जैसे सर्वसाधारण में राजनैतिक जागृति बढ़ती गई, तैसे-तैसे उसकी स्वतंत्रता पर अधिकाधिक प्रतिबन्ध लगने लगे। सरकारी सहायता-प्राप्त संस्थाओं के व्यवस्थापकों और अध्यापकों पर यह पाबन्दी लगा दी गई कि जब तक शिक्षा-विभाग के प्रधानाधिकारी की स्वीकृति न ले ली जाय तबतक वे न तो राजनैतिक हलचलों में कोई हिस्सा लें और न राजनैतिक सभाओं में ही उपस्थित हों। नागरिकों के मौलिक अधिकारों पर किये गये इस प्रहार का, १५वीं कांग्रेस (लखनऊ, १८९९) में, श्री कालीचरण ने जोरों के साथ विरोध किया। इसके दो वर्ष बाद, कलकत्ता की कांग्रेस में, यह प्रस्ताव रक्खा कि हिन्दुस्तानी मामलों की सुनवाई (अपील) के लिए प्रिवी कौंसिल की जो जुडीशियल कमिटी बनती है, उसमें हिन्दुस्तानी वकील भी रक्खे जाने चाहिए।

बाबू कालीचरण बनर्जी यदि अधिक समय तक जिन्दा रहे होते तो जरूर कांग्रेस के सभापति बनते।

नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर

कांग्रेस के मन्त्रियों में हिन्दू के साथ एक मुसलमान को भी रखने की प्रथा १९१४ की मदरास-कांग्रेस से शुरू हुई, जिसमें नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर और श्री एन० सुब्बाराव मंत्री चुने गये थे। लेकिन नवाब साहब तो इससे पहले, १९१३ की करांची-कांग्रेस में, सभापति-पद को भी सुशोभित कर चुके थे। वे पहले कांग्रेसी थे, इसके बाद मुसलमान। १९०३ में हुई मदरास-कांग्रेस (१९ वां अधिवेशन) के वह स्वागताध्यक्ष थे और १९०४ की कांग्रेस (२० वां अधिवेशन, बम्बई) में कांग्रेस का विधान बनाने के लिए जो समिति बनी उसमें उन्हें भी रक्खा गया था। वे ऐसे देशभक्त थे जिनमें मजहबी संकीर्णता बिलकुल नहीं थी। करांची-कांग्रेस के सभापति-पद से उन्होंने राष्ट्रीयता की बुलन्द आवाज उठाई और इस बात पर जोर दिया कि भारत की भिन्न-भिन्न जातियों को अलग-अलग टुकड़ों में बंटने के बजाय संयुक्त-रूप से आगे बढ़ना चाहिए। इस दिशा में हिन्दुओं और मुसलमान द्वारा किये गये प्रयत्न का, जो कि मुस्लिम-लीग द्वारा प्रदर्शित की गई इस आशा से प्रकट होता था कि 'सार्वजनिक हित के प्रश्नों पर मिल-जुलकर काम करने के उपाय सोचने के लिए' दोनों जातियों ने नेताओं को समय-समय पर आपस में मिलते रहना चाहिए, उन्होंने स्वागत किया। यह कहें तो अत्युक्ति न होगी कि करांची में नवाब साहब ने ऊंचो देशभक्ति और शुद्ध राष्ट्रीय दृष्टिकोण से जो बीज बोया था वही फल कर आगे हिन्दू-मुस्लिम एकता और लखनऊ की कांग्रेस-लीग-योजना के रूप में सामने आया।

दाजी आबाजी खरे

कांग्रेस के प्रारम्भिक वर्षों में दायमी बन्दोबस्त और जमीन के पट्टे की मियाद स्थिर कर देने का विषय कांग्रेस में जोरों के साथ उठता रहा है। लाहौर में हुए ९ वें अधिवेशन (१८९३) में श्री दाजी आबाजी खरे ने इस सम्बन्धी प्रस्ताव पेश किया था। कांग्रेस का जो विधान उनके प्रस्ताव पर १९०६ में स्वीकृत हुआ था और जिसका बहुत-कुछ भाग १९०८ में बनने वाले विधान में भी मिला लिया गया था, उसके निर्माण में इन्होंने बहुत भाग लिया था। १९०९ से १९१२ तक, श्री दीनशा वाचा के साथ, ये कांग्रेस के मंत्री रहे हैं और १९११ में इन्होंने भारतीय सूती माल पर लगाया गया वह उत्पत्ति-कर उठा लेने का प्रस्ताव पेश किया जिससे भारत के सूती वस्त्र-व्यवसाय के प्रसार में रुकावट पड़ती थी। १९१३ में जब मुस्लिम लीग ने भारत के लिए स्व-शासन के आदर्श को स्वीकार कर लिया तो श्री खरे ने उसके स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव का समर्थन किया और कहा, स्व-शासन हिन्दू-मुसलमानों के भाई-चारे से ही प्राप्त होगा।

मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा

कांग्रेस के प्रथमाधिवेशन में शुरुआत के जो देशभक्त उपस्थित हुए थे उनमें लखनऊ के मुंशी गंगाप्रसाद वर्मा भी थे। दूसरे अधिवेशन में सरकारी नौकरियों के प्रश्न पर विचार करके कांग्रेस को तत्सम्बन्धी सिफारिशें करने के लिए जो समिति बनाई गई थी उसमें ये भी चुने गये थे। बाद में ये कांग्रेस-समितियों के विभिन्न पद ग्रहण करते रहे और १९०६ में जाकर कांग्रेस की स्थायी-समिति के सदस्य भी बन गये थे।

रघुनाथ नृसिंह मुधोलकर

शुरुआत के कठोर परिश्रम करने वाले कांग्रेसियों में श्री रघुनाथ नृसिंह मुधोलकर का स्थान किसी से कम नहीं है। वे पहली बार इलाहाबाद में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन (१८८८) में शामिल हुए थे। पुलिस-सम्बन्धी प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए उन्होंने कहा था—"पुलिस के सिपाही का तो फर्ज है कि वह प्रजा का प्रेम जीते, लेकिन अब वह कैसे घृणा का का पात्र बन गया है!" २४ साल बाद राष्ट्र ने उन्हें १९१२ की कांग्रेस (बांकीपुर) का सभापति चुना। श्री सी० वाई० चिन्तामणि उनके सहायक के रूप में राजनीति का आवश्यक और प्राथमिक ज्ञान प्राप्त करते रहे और बाद में अपनी प्रचण्ड बुद्धि-शक्ति के बल पर भारतीय राजनीति में चमकने लगे।

सी० शंकरन् नायर

सर सी० शंकरन् नायर अपने वक्त में एक समर्थ पुरुष थे। कांग्रेस की सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप कांग्रेस ने उन्हें बहुत जल्दी, १८९७ में, अमरावती-अधिवेशन का सभापति चुना। बम्बई के चन्दावरकर और तैयबजी की तरह शंकरन् नायर को भी पीछे मदरास के हाईकोर्ट-बेंच का सदस्य बना लिया गया और वहां से १९१५ में वे भारत-सरकार की कार्यकारिणी में ले लिये गये। १९१९ में मार्शल-लॉ लागू करने के प्रश्न पर इस्तीफा देने के कारण वे बहुत लोकप्रिय हो गये। लेकिन 'गांधी एण्ड अनार्की' नामक पुस्तक में गांधी जी पर उन्होंने निराधार आक्षेप किया। इसी पुस्तक के कारण पंजाब के लेफ्टिनैण्ट गवर्नर सर माइकेल ओड्वायर ने उन पर मुकदमा चलाया और सर शंकरन् को मानहानि व खर्चे के लिए तीन लाख रुपये देने पड़े थे।

पी० केशव पिल्ले

दीवानबहादुर पी० केशव पिल्ले कांग्रेस में बहुत पहले ही से भाग लेने लगे थे। १९१७ में उन्होंने कांग्रेस से इस्तीफा दे दिया। कांग्रेस से अपने सम्बन्ध के आखिरी सालों में वे कांग्रेस के मन्त्री और श्रीमती एनी बेसेण्ट के प्रमुख सहायक थे।

विपिनचन्द्र पाल

विपिन बाबू का कांग्रेस से सम्बन्ध बहुत पहले शुरू हुआ। वे मशहूर वक्ता थे। बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय-शिक्षा के नये सिद्धान्त का प्रचार करते हुए उन्होंने सारे देश में अपनी वक्तृत्व-शक्ति का सिक्का जमा दिया था। उन्होंने १९०७ में मदरास में जो भाषण दिये थे, एडवोकेट-जनरल (सर) वी० भाष्यम आयंगर ने उन्हें भड़काने वाले—राजद्रोह पूर्ण नहीं—समझा था और वे मदरास अहाते से निकाल दिये गये। लार्ड मिण्टो के समय उन्हें एक बार देश-निकाला भी मिला था। एक दूसरे वक्त, जब 'वन्देमातरम्' के संपादक की हैसियत से श्री अरविन्द घोष पर मुकदमा चल रहा था, उन्होंने यह जानकर गवाही देने से इन्कार कर दिया था कि उनकी गवाही अरविन्द बाबू के बहुत खिलाफ पड़ेगी। इस कारण ६ मास की सख्त कैद की सजा उन्होंने बड़ी खुशी से भुगत ली। उन्होंने इंग्लैंड में 'हिन्दू रिव्यू' नामक पुस्तक प्रकाशित की थी, जिसमें 'बम के कारणों'

पर विचार किया था। भारत लौटने के बाद उनपर मुकदमा चलाया गया, लेकिन उन्होंने माफी मांग ली। उनका आखिरी इतिहास राष्ट्रीय राजनीति में उनके उत्साह की निरन्तर घटती का इतिहास था। यह हमें स्वीकार करना होगा कि वे उन थोड़े से लोगों में थे, जिन्होंने अपने भाषणों और 'न्यू इण्डिया' तथा 'वन्देमातरम्' के लेखों-द्वारा उस समय के युवकों पर बहुत जादू कर दिया था।

अम्बिकाचरण मजुमदार

बाबू अम्बिकाचरण मजुमदार वकील थे और १९१६ में कांग्रेस के सभापति बनने तक निरन्तर कार्य करते रहे। उनकी वक्तृता की उड़ान बहुत कम वक्ताओं में मिलती है। उन्होंने 'इंडियन नेशनल इवाल्युशन' नामक एक प्रसिद्ध और सुन्दर किताब भी लिखी है।

भूपेन्द्रनाथ वसु

भूपेन्द्रनाथ वसु कलकत्ते के सफल सालिसिटर थे। उनकी प्रैक्टिस खूब चलती थी। ये बड़ी खुशी से राजनैतिक कार्यों में समय दिया करते थे। ये बड़े अच्छे वक्ता थे। इनकी वक्तृत्व-कला बहुत ऊंची कोटि की थी। भिन्न-भिन्न भाव प्रकट करने में ये बड़े कुशल थे। और अपना काम बड़ी योग्यता से संपादन करते थे। १९१४ में मद्रास-कांग्रेस का सभापतिपद उन्हें दिया गया था। भारत की स्व-शासन की मांग के प्रसंग में उन्होंने कहा था—"मौज उड़ानेवालों के दिन गये। संसार समय के साथ-साथ बड़े जोर से आगे बढ़ रहा है। यूरोप के देशों में युद्ध जोरों से चल रहा है। यह युद्ध एक के बहुतों पर, या एक जाति के दूसरी जाति पर के मध्यकालीन शासन के अन्तिम अवशेषों को भी ठोकर मार देगा। पश्चिम के द्वार से पूर्व के शान्त समुद्रों में विशाल जीवन की जो लहर एक बड़े भारी प्रवाह की तरह बह रही है, उसे अब वापस ले जाना गैरमुमकिन है। यदि भारत में अंग्रेजी शासन का अर्थ नौकरशाही का गोला-बारूद ही है, यदि इसका अर्थ पराधीनता और हमेशा का संरक्षण है, भारत की आत्मा पर बढ़ता हुआ भारी भार ही है, तो यह सभ्यता का शाप और मनुष्यता पर कलंक ही है।"

मौ० मजहरुल हक

मौ० मजहरुल हक कांग्रेस के, शारीरिक और बौद्धिक दोनों दृष्टियों से, एक महारथी थे। ये पक्के राष्ट्रवादी थे और बिहार में कांग्रेस के बड़े भारी समर्थक थे। साम्प्रदायिकता से उन्हें चिढ़ थी। कांग्रेस के २५ वें अधिवेशन में (१९१०) जो इलाहाबाद में हुआ था, श्री जिन्ना ने साम्प्रदायिक-निर्वाचन के विरुद्ध प्रस्ताव पेश किया, उसका आपने समर्थन किया था। इस अवसर पर आपने एक योग्यतापूर्ण भाषण दिया, जिसमें हिन्दुओं और मुसलमानों को आपस में मिल जाने की प्रेरणा की। यह याद रखने की बात है कि मिण्टो-मार्ले-शासन-सुधार उस समय अमल में आये ही थे, जिनमें पहले-पहल कौंसिलों के लिए साम्प्रदायिक-प्रतिनिधित्व की योजना का समावेश किया गया था। मुसलमानों से, जो कि अपनी कामयाबी और सफलता के लिए फूलकर कुप्पा हो रहे थे, यह कहना, जैसा कि मौ० मजहरुल हक ने कहा, बहुत ऊंचे दर्जे की ईमानदारी और साहस का ही काम था, कि उन्हें जो कामयाबी मिली दरअसल वह दोनों महान् जातियों की सम्मिलित भलाई के लिए बड़ी घातक है, देश को जरूरत इस बात की है कि दोनों एक-दूसरे से अलग-अलग बन्द दायरों में न रहकर एक-दूसरे के साथ मिलकर काम करें।

१९१४ में जब कांग्रेस का शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड गया तो मौ० मजहरुल हक भी उसके सदस्य बनाये गये। इसके बाद आपने कांग्रेसी मामलों में कोई क्रियात्मक रस नहीं लिया, लेकिन रहे अन्त समय तक पक्के राष्ट्रवादी। जीवन के आखिरी दिनों में आपका झुकाव आध्यात्मिकता की ओर हुआ,

और शुद्ध राष्ट्रीयता में साधुता ने मिलकर सोने में सुगन्ध कर दी। वस्तुतः आपका आखिरी जीवन एक फकीर का जीवन था।

महादेव गोविन्द रानडे

महादेव गोविन्द रानडे, जो आमतौर पर जस्टिस रानडे के नाम से मशहूर हैं, कांग्रेस में एक उच्च शिखर के समान थे। बहुत बारीकी में उतरें तब तो उन्हें कांग्रेसी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वे बम्बई सरकार के न्याय-विभाग के उच्चाधिकारी थे, लेकिन बरसों तक वे पीछे से कांग्रेस का सूत्र-संचालन करनेवाली शक्ति बने रहे थे।

कांग्रेस-आन्दोलन को उन्होंने स्फूर्ति प्रदान की। उनका ऊंचा कद, चेहरे का मूर्तिवत् बनाव और उनका अपना रंग-ढंग भिन्न-भिन्न अधिवेशनों में उन्हें स्पष्ट रूप से पहचानने में सहायक होते रहे हैं। अर्थशास्त्री और इतिहासज्ञ के रूप में वे स्मरणीय हो गये हैं और 'महाराष्ट्र सत्ता का उत्थान' एवं 'भारतीय अर्थशास्त्र पर निबन्ध' के रूप में वे राष्ट्र को अपने पाण्डित्य एवं विद्वत्ता की विरासत छोड़ गये हैं। समाज-सुधार में उनकी खास तौर पर गति थी और बरसों तक समाजसुधार-सम्मेलन, जो कांग्रेस की एक सहायक-संस्था के रूप में बना था, उनके पोष्य-पुत्र के समान रहा है। १८९५ में, पूना अधिवेशन के समय, जब इस बात पर मतभेद पैदा हुआ कि कांग्रेस समाज-सुधार के मामलों और समाज-सुधार-सम्मेलन से सम्बन्ध रख सकती है या नहीं, तो, जैसा कि बाबू सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बताया है, जस्टिस रानडे ने सहिष्णुता और बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से मामला सुलझा लिया। प्लेग की महामारी के समय जस्टिस रानडे ने राष्ट्र की जो सेवा की उसका अनुमान नहीं किया जा सकता, और न उस सबके वर्णन का अभी समय ही आया है। इस प्रकार पन्द्रह वर्ष तक अथक रूप से समाज-सुधार और कांग्रेस का काम करते हुए, १९०१ में, अपनी ऐसी स्मृतियां छोड़कर रानडे हम से विदा हो गये जो सदैव हमारी सहायता करती रहती हैं और जिनके कारण उनके प्रति सदा हमारी श्रद्धा बनी रहेगी।

पं० विशननारायण दर

पं० विशननारायण दर भी उन प्राचीन समय के राजनीतिज्ञों में से हैं, जिन्होंने कांग्रेस के प्रति अपनी निष्ठा से कांग्रेस के इतिहास में एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया है।

१९११ में उन्हें कलकत्ता-कांग्रेस का सभापति बनाया गया। इस कांग्रेस के सभापति मि० रेम्जे मैक्डानल्ड होने वाले थे, लेकिन पत्नी के देहान्त के कारण उन्हें भारत से जाना पड़ गया और श्री विशन-नारायण दर अकस्मात ही सभापति बना दिये गये। वे ऐसे समय कांग्रेस के सभापति बने थे, जब बंग-भंग के रद कर दिये जाने से नौकरशाही को बहुत चोट पहुंची थी।

विशननारायण दर ने नौकरशाही का जो वर्णन किया है वह जहां सुन्दर चित्र है, वहां उतना ही तीक्ष्ण भी है—

"हमारे सब दुःखों का मूल-कारण यह है कि हमारी नई महत्वाकांक्षाओं और आशाओं के प्रति सरकार की सहानुभूति-शून्य और अनुदार-भावना बढ़ती जा रही है। यदि इसमें सुधार न किया गया, तो भविष्य में भयंकर आपत्तियां आये बिना न रहेंगी। जब नवीन भारत धीरे-धीरे उन्नति कर रहा है तब सरकार का रुख भी मन्दा होता जा रहा है और एक नाजुक हालत पैदा होगई है। एक तरफ पढ़े-लिखे लोग नये राजनैतिक अधिकारों का नया ज्ञान और नई चेतना प्राप्त कर रहे हैं, लेकिन एक ऐसे शासन-पद्धति की बेड़ियों और हथकड़ियों से जकड़े जा रहे हैं जो पहले के लिए कभी अच्छी होगी, अब तो वे अप्रचलित हैं, और दूसरी तरफ सरकार उसी रफ्तार पर जा रही है। वह न अपने स्वार्थों को छोड़ती है, न अपनी कठोर शासन की आदतों को, और न पुराने तथा निरंकुश अधिकार को

पुरानी प्रथाओं को। शिक्षा और ज्ञान को वह संदेह की दृष्टि से देखती है, और किसी भी नये परिवर्तन के वह विरुद्ध है। जातीय-पृथक्ता के कारण रियायत से वह दूर भागती है। वह उसी शासन-विधान से चिपटे हुए है, जिसके मातहत उसने अबतक अधिकार व धन का मजा लिया है, लेकिन जो आज के नैतिक उदार आदर्शों के कतई खिलाफ है।"

रमेशचन्द्र दत्त

गत शताब्दी के अन्त की कांग्रेस राजनीति में श्री रमेशचन्द्र दत्त एक और महत्वपूर्ण व्यक्ति थे। अपने जीवन-क्रम में कमिश्नर के ऊंचे पद तक चढ़ चुके थे, फिर भी उन्होंने कांग्रेस का साथ दिया था। आई० सी० एस० के अफसर रहते हुए लम्बे अरसे तक उन्होंने सार्वजनिक प्रश्नों पर जो अमित अनुभव और ज्ञान प्राप्त किया था, उसका लाभ कांग्रेस को पहुंचाया। उनका कहना था कि भूमि पर भारी मालगुजारी और ब्रिटिश कारखानों की खुली प्रतिस्पर्धा के कारण ग्रामीण धंधों का विनाश ही दुर्भिक्ष के कारण हैं। उन्होंने बहुत खेद प्रकट करते हुए कहा कि जिस देश ने ३,००० साल पहले ग्राम-शासन (पंचायतों) का सङ्गठन किया था आज उसी पर पुलिस, जिला अफसरों तथा जनता के बीच की घृणित शृङ्खला द्वारा शासन होरहा है। मालगुजारी, दुर्भिक्ष तथा अन्य आर्थिक प्रश्नों पर वे एक प्रमाण समझते जाते थे। १८९० में लखनऊ-कांग्रेस के अधिवेशन के वे सभापति बने थे। "अखबारों और सभाओं में स्वतन्त्र विचार के दमन की अपेक्षा राजद्रोह को उत्तेजन देने का और कोई अच्छा उपाय नहीं है" अपने इस वक्तव्य के कारण वे स्मरणीय होगये।

एन० सुब्बाराव पन्तुलु

श्री एन० सुब्बाराव पन्तुलु भी कांग्रेस के इन पूज्य बुजुर्गों में से एक हैं। वे आज ८० साल की उमर में भी सार्वजनिक कार्यों में उत्साह दिखाते हैं। उनका कांग्रेस से सम्बन्ध बहुत शुरू में, उसके जन्म के साथ ही, होगया था। वे कांग्रेस के चौथे अधिवेशन (इलाहाबाद, १८८८) में सम्मिलित हुए थे और बोले भी थे। तब से वे कांग्रेस-मंच पर नमक-कर, न्याय और शासन कार्य, भारतीयों का कार्यकारिणी में लिया जाना, जूरी से मुकदमों का फ़ैसला और वकीलों की स्थिति आदि विभिन्न प्रस्तावों को पेश करते, अनुमोदन और समर्थन करते हुए मशहूर हो गये थे। जबकि उनके समकालीन कांग्रेसियों को सरकारी खिताब या पद मिल रहे थे, उन्होंने उसे लेने की कभी परवाह नहीं की। दूसरी ओर उनके प्रान्त ने १८९८ में उन्हें कांग्रेस का स्वागताध्यक्ष चुना और १९१४,१५,१६ व १७ में कांग्रेस उन्हें प्रधानमन्त्री चुनती रही। उन्होंने अपने कार्य-काल में अपने खर्च पर हिन्दुस्तान का दौरा करने और कांग्रेसी मामलों में लोगों की दिलचस्पी बढ़ाने का एक आदर्श रक्खा।

लाला मुरलीधर

हम पंजाब के लाला मुरलीधर का उल्लेख करना नहीं भूल सकते, जो जमानत पर रिहा होकर जेल से सीधे कलकत्ते के दूसरे अधिवेशन (१८८६) में शरीक हुए थे। उन्हें बिना गवाही के सजा दे दी गई थी, क्योंकि उन्हीं के शब्दों में, "मुझे राजनैतिक आन्दोलनकारी खयाल किया जाता है, क्योंकि मैं अपनी राय रखता हूं, और जो सोचता हूं, बेधड़क कह देता हूं।" इसी अधिवेशन में डेरा इस्माइलखां के लाला मलिक भगवानदास ने पहले-पहल उर्दू में भाषण दिया था।

सच्चिदानन्द सिंह

श्री सच्चिदानन्द सिंह को सबसे पहले १८९९ की लखनऊ कांग्रेस (१५ वें अधिवेशन) में लोगों ने देखा। उसीमें उन्होंने न्याय और शासन-विभाग के पृथक्करण के प्रस्ताव पर भाषण भी दिया। लाहौर के अधिवेशन में इस प्रश्न पर बोलते हुए उन्होंने कहा—"सरकार को जनता के प्रेम

पर निर्भर रहना चाहिए और वह प्रेम केवल एक बात से मिल सकता है, कि न्याय का वरदान जनता को दिया जाय। हम आज का न्याय—आधा दूध और आधा पानी—अशुद्ध न्याय नहीं चाहते। हम तो सच्चा और ठीक ब्रिटिश न्याय चाहते हैं। १७ वें अधिवेशन में 'पुलिस-सुधार' पर वे बोले। २० वें अधिवेशन में उन्होंने इस बात का समर्थन किया था कि १९०५ में आम चुनाव होने से पहले इंग्लैण्ड में एक शिष्ट-मण्डल भेजा जाय। उसी अधिवेशन में उन्होंने दादाभाई नौरोजी, सर हेनरी कॉटन और मि० जोन जार्डिन को पार्लमेण्ट का सदस्य चुनने के अनुरोध का प्रस्ताव पेश किया था। १९०८ की पहली 'नरम' कांग्रेस में श्री सिंह क्रियाशील सदस्य के रूप में उपस्थित थे। कलकत्ता-कांग्रेस में श्री सिंह ने युक्तप्रान्त के लिए एक गवर्नर और कार्यकारिणी की मांग पेश की। वे फिर मदरास में १९१४ में शामिल हुए। इस कांग्रेस में उन्हें लन्दन में गये हुए कमीशन के सदस्य के नाते अच्छा काम करने पर धन्यवाद दिया गया था। इस शिष्ट-मण्डल में उनके अतिरिक्त सर्वश्री भूपेन्द्र वसु, जिन्ना, समर्थ, मजहरुल हक, माननीय शर्मा और लाला लाजपतराय थे।

कांग्रेस में बोलने वाली पहली महिला श्रीमती कादम्बिनी गांगुली थीं। उन्होंने १९०० के १६ वें अधिवेशन में सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश किया था।

इनके अलावा और भी बीसियों अच्छे देश-सेवक हैं—जिनमें बहुत-से स्वर्गवासी होचुके हैं और कुछ हमारे बीच मौजूद हैं—जिन्होंने अपनी तीव्र लगन, सेवा और त्याग के द्वारा राष्ट्रीय-कार्य में सहायता पहुँचाई है। आगे आने वाली पीढ़ी उनकी सदा ऋणी रहेगी।

[दूसरा भाग : १९१५—१९१९]

१

फिर मेल की ओर—१९१५

भारतवर्ष के राजनैतिक इतिहास में १९१५ का वर्ष एक नये युग का श्रीगणेश करता है। यहां यह बात अवश्य ही स्मरण रखनी चाहिए कि जापान ने रूस पर जो विजय प्राप्त की थी उससे, इस शताब्दी के प्रारम्भ में, एशिया की जातियों में अपनी वीरता और क्षमता के सम्बन्ध में आत्म-विश्वास की एक नवीन भावना जाग्रत हो गई थी। इसी प्रकार गत महायुद्ध के जमाने में, १९१४ की कड़ाके की सर्दी में, फ्लैण्डर्स और फ्रांस के मैदानों में, जर्मन-सेनाओं के आक्रमणों का भारतीय फौजों ने जिस अद्भुत वीरता, धैर्य और सहनशीलता के साथ सफलता-पूर्वक मुकाबला किया उससे एशिया और यूरोपीय देशों में भारतवासियों की खासी धाक बैठ गई थी। पश्चिमी देशों की दृष्टि में तो वे इतने ऊंचे उठ गये थे जितने अभी तक कभी नहीं थे। भारतीय फौजों द्वारा युद्ध में की गई सेवाओं की इस सराहना का भारतवासियों के मस्तिष्क पर जो स्वाभाविक असर पड़ा वह यह था कि कुछ भारतवासियों के हृदय में तो पुरस्कार की और कुछ के हृदय में अपने अधिकारों की भावना जाग्रत हो गई थी। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पहले दल के लोगों में थे और श्रीमती बेसेण्ट दूसरे दल के लोगों में; क्योंकि भारतीय फौजों को विदेशों के मैदान में इसी आश्वासन पर ले जाया गया था कि पार्लमेण्ट भारत के लिए उचित पुरस्कार स्वीकृत कर देगी। वैसे तो मि० ब्रैडला के समय से ही श्रीमती बेसेण्ट का सारा जीवन गरीबों और भारतवासियों की सेवा में ही व्यतीत हुआ, लेकिन कांग्रेस में वे १९१४ में ही सम्मिलित हुईं। उन्होंने अपने साथ नये विचार, नई योग्यता, नवीन साधन, नया दृष्टि-कोण और संगठन का एक बिलकुल ही नूतन ढंग लेकर कांग्रेस-क्षेत्र में पदार्पण किया। उनका व्यक्तित्व तो पहले से ही सारे जगत् में महान् था। पूर्व और पश्चिम के देशों में, नये और पुराने गोलार्द्ध में, लाखों की संख्या में उनके भक्त एवं अनुयायी थे। इसलिए यह कोई विशेष आश्चर्य की बात नहीं है कि अपने पीछे इतने प्रबल-भक्तों और अनुयायियों और अथक कार्य-शक्ति के होते हुए उन्होंने भारतीय राजनीति को एक नवीन जीवन प्रदान किया।

१९१५ में देश की वास्तविक अवस्था क्या थी? १९ फरवरी १९१५ को गोखले का स्वर्ग-वास हो चुका था। सर फिरोजशाह मेहता भी हमारी दृष्टि से ओझल हो चुके थे। दीनशा वाचा पर वृद्धावस्था-जन्य निर्बलतायें अपना अधिकार जमाती चली जा रही थीं, जैसा कि उन्होंने १९१५ की बम्बई की कांग्रेस में कहा था। अलावा इसके वे बहुत बड़े विद्वान् थे, और मन्त्री-पद के लिए ही बहुत उपयुक्त थे, परन्तु ऐसे सेनानायक नहीं थे जो अपनी फौज को एक विजय के बाद दूसरी विजय के लिए प्रोत्साहित एवं संचालित करता है। सर नारायण चन्दावरकर जजी से फारिग

हो चुके थे। राजनैतिक क्षेत्र में वे एक समाप्त हो चुकी हुई शक्ति के समान थे। हेरम्बचन्द्र मैत्र, मुधोलकर तथा सुब्बाराव पन्तुलु कांग्रेस की सेना में एक अच्छे लेफ्टिनैण्ट, कैप्टिन तथा कर्नल थे; इससे अधिक कुछ नहीं। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भी अनुकूल न थे।

इस प्रकार कांग्रेस का इस समय कोई सेनापति न था। लोकमान्य तिलक जून १९१४ में मण्डाले से लगभग अपनी पूरी सजा काट लेने के बाद रिहा हुए थे। श्रीनिवास शास्त्री ने, 'भारत-सेवक समिति' के प्रथम सदस्य होने के कारण, गोखले का स्थान तो अवश्य लिया था; लेकिन वे सदैव रहे फिसड्डी ही; क्योंकि एक तो उनका अपना आन्तरिक स्वभाव, दूसरे उनकी उग्र-प्रवृत्तियां और नरम विश्वास, तीसरे 'सिद्धान्त' और 'उपयोगिता', 'अन्तिम' और 'तात्कालिक' का उनके हृदय में सदैव संघर्ष होता रहता है। इसलिए, यद्यपि वे भिड़ बैठने की मनोवृत्ति की प्रशंसा करते हैं फिर भी खुद सदैव पीछे रहना पसन्द करते हैं। कुछ भी हो, वे कभी सामने की पंक्ति में दिखाई नहीं पड़े और न कभी प्रकाश में आने की परवा ही की। पंडित मदनमोहन मालवीय की ऐसी स्थिति नहीं थी कि वे नरम मार्ग पर कांग्रेस का नेतृत्व करते। न उनमें वह शक्ति एवं मानसिक दृढ़ता ही थी जिससे कि वे अपने मार्ग पर अग्रसर होते। गांधी जी तो उस समय देश में आये ही थे। हम यदि ऐसा कहें तो अनुचित न होगा कि उन्होंने इस समय तक देश में सार्वजनिक जीवन का निश्चित ढंग पर श्रीगणेश भी नहीं किया था। वे अपने राजनैतिक गुरु गोखले की नसीहत के अनुसार चल रहे थे। वे इस समय चुपचाप देश की अवस्था का अध्ययन कर रहे थे; क्योंकि एक मुद्दत से वे बाहर विदेशों में रहे थे। हां, बीच बीच में केवल थोड़े-से समय के लिए ही यहां दो तीन बार आये थे। लाला लाजपतराय इस समय की देश की और विशेष कर अपने प्रांत की अवस्था से बड़े खिन्न हो चुके थे और अमरीका में देश-निकाले का जीवन व्यतीत कर रहे थे। सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह (बाद में लार्ड) जिन्होंने १९१५ की बम्बई की कांग्रेस का सभापतित्व किया था, इस समय नई धारा के साथ बिलकुल मेल नहीं खा रहे थे। इसलिए बम्बई-कांग्रेस के बाद उन्होंने देश की राजनीति में कोई दिलचस्पी नहीं ली। इस प्रकार देश का नेतृत्व प्रायः राष्ट्र के हाथ से निकल कर नौकरशाही के हाथों में जा रहा था। नरम दलवालों के हाथ से शक्ति निकल चुकी थी। राष्ट्रीय दल अभी तक अपने को सम्हाल न पाया था। श्रीमती बेसेण्ट का १९१४ व १५ का दोनों दलों को एक करने का उद्योग असफल होचुका था। असफलता की इस कहानीका यहां संक्षेपमें अवलोकन करना अनुचित न होगा।

लोकमान्य तिलक जून १९१४ में जेल से छूट कर आये थे। तभी से वे लगातार इस बात का भरसक प्रयत्न कर रहे थे कि होमरूल का विराट् आन्दोलन चलाया जाय। कुछ सद्भावना वाले मित्रों का यह प्रयत्न जारी था कि कांग्रेस के दोनों दलों को एक सूत्र में बांध दिया जाय। लोकमान्य तिलक बुद्धिमता पूर्वक स्वयं चाहते थे कि नरम दल वालों की भावनाओं को ठेस न पहुंचायें। परन्तु नरम दलवालों का हाथ सहयोग के लिए आगे नहीं बढ़ा। तिलक के कार्य-क्रम में तीन बातें थीं—(१) कांग्रेस में मेल पैदा करना, (२) राष्ट्रीय दल का पुनसंगठन करना और (३) एक दृढ़ व सुसंगठित विराट् होमरूल-आन्दोलन चलाना। इन तीनों बातों में से पहली के लिए लोकमान्य तथा राष्ट्रीय-दल के लोग यह चाहते थे कि कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव का क्षेत्र विस्तृत कर दिया जाय। अबतक कांग्रेस के विधान के अनुसार कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव का अधिकार केवल कुछ संस्थाओं को ही था। कांग्रेस के विधान में उस समय कांग्रेस का ध्येय 'नरम' था और ध्येय औपनिवेशिक स्वराज्य था। इस प्रकार कांग्रेस के प्रतिनिधियों के चुनाव को पूर्ण-रूप से नरमदल की संस्थाओं के हाथ में डाल दिया गया था। अतः यह धारा किस प्रकार की जा सकती थी कि राष्ट्रीय-दल के

आदमी अपने विरोधियों की केवल सदेच्छा मात्र पर कांग्रेस के प्रतिनिधि बनने के लिए राजी हो जाय ! इसके लिए आवश्यकता इस बात की थी कि कांग्रेस के नियम नं० २० को जरा विस्तृत कर दिया जाय । इसी कार्य की सिद्धि के लिए श्रीमती बेसेण्ट और कांग्रेस के तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्री सुब्बाराव पन्तुलु दिसम्बर १९१४ के प्रथम सप्ताह में पूना गये और लोकमान्य तिलक, गोखले तथा अन्य नेताओं से परामर्श किया । एक संशोधन पर सब राजी हो गये । फिर श्री सुब्बाराव, सर फिरोजशाह से परामर्श करने के लिए, बम्बई गये, परन्तु वे बिलकुल निराश होकर लौटे । फिर वे तिलक तथा गोखले से मिले । गोखले का यह विश्वास था कि लोकमान्य तिलक का कांग्रेस में पुनः प्रवेश कांग्रेस के पुराने झगड़े के लिए एक सिगनल का कार्य करेगा । इसलिए उस संशोधन के प्रति अपने समर्थन को उन्होंने वापस ले लिया और इसके सम्बन्ध में उन्होंने श्रीमती बेसेण्ट को जबानी कहला दिया । उन्नीसवीं कांग्रेस के मनोनीत सभापति को एक खानगी पत्र में उन्होंने अपने विचार बदलने के कारणों का उल्लेख भी किया था । कुछ ही समय में वह पत्र सारी जनता पर प्रकट हो गया । उसमें यह लिखा था कि तिलक ने खुल्लमखुल्ला अपने ये विचार प्रकट किये हैं कि वे 'सरकार का बहिष्कार करेंगे' और यदि वे कांग्रेस में घुस गये तो आयर्लैंड वालों की भांति अड़ंगा-नीति का अवलम्बन करेंगे । इस सम्बन्ध में श्रीमती बेसेण्ट ने जब जांच-पड़ताल की तो तिलक ने इस बात का खंडन किया । इसपर उनसे क्षमा-याचना भी की गई । लेकिन फिर भी मेल-मिलाप की बात स्थगित ही रही । ८ फरवरी १९१५ के 'न्यू इंडिया' में भी श्री सुब्बाराव ने एक वक्तव्य प्रकाशित कराया, जिसमें कहा गया था कि बम्बई के नरम दल के नेता श्रीमती बेसेण्ट के संशोधन के कट्टर विरोधी थे । वर्ष के आरम्भ में गोखले की असामयिक मृत्यु से देश को बहुत बड़ा धक्का पहुंचा था । लोकमान्य तिलक अपने इस राजनैतिक प्रतिद्वंद्वी के प्रति कितना आदर-भाव रखते थे, यह उनके एक अत्यन्त विह्वल भाषण से जो उन्होंने गोखले की मृत्यु के समय दिया था, स्पष्टतः प्रकट होता है—

"यह तालियां बजाने का समय नहीं बल्कि आंसू बहाने का समय है । भारतवर्ष का यह हीरा, महाराष्ट्र का यह रत्न, और देश-भक्तों का यह सिरमौर आज स्मशान-भूमि पर लेटा हुआ अनन्त विश्राम ले रहा है । इनकी तरफ देखिए और इन्हीं के समान कार्य करने का उद्योग कीजिए । इनके जीवन को नमूने के लिए सदैव अपने सम्मुख रखकर अपने को इन्हीं-जैसा बनाने का आप सबको यत्न करना चाहिए और इस प्रकार इनकी मृत्यु से जो स्थान खाली हो गया है उसकी पूर्ति कीजिए । अगर आप लोगों ने ऐसा किया तो इनकी आत्मा उस दूसरे संसार में भी प्रसन्न होगी ।"

१९१५ और १६ में तिलक ने अपने दल को संगठित करने के लिए घनघोर प्रयत्न किया । उनका विचार था कि "एक सुदृढ़ दल के लिए (१) आकर्षक नेता, (२) एक विशेष लक्ष्य और (३) एक युद्ध-घोष जरूरी है । जोसेफ बेप्टिस्टा के रूप में लोकमान्य को एक बहुत ही योग्य सहयोगी मिल गये और उन्हीं के सभापतित्व में पूना में राष्ट्रीय दल के लोगों की एक परिषद् हुई, जिसमें एक हजार व्यक्ति सम्मिलित हुए । इस परिषद् में और बाद को जो नरम दलवालों का एक सम्मेलन हुआ उसमें जमीन-आसमान का अन्तर था । उसमें बहुत थोड़ी उपस्थिति थी और लॉर्ड विलिंगटन ने पधार कर उसकी शोभा बढ़ाई थी ! पूना-परिषद् से लोगों को 'होमरूल' के रूप में एक 'युद्ध-घोष' मिल गया, और लोकमान्य के पास एकमात्र कार्य यह रह गया था कि किस प्रकार हिन्दुस्तान को उसके लक्ष्य तक ले जावें । उनकी इच्छा थी कि मजदूर-दल के नेताओं द्वारा इस सम्बन्ध में पार्लमेण्ट में एक बिल पेश कराया जाय और स्वयं अपनी सारी शक्तियों को एक विराट् आन्दोलन में केन्द्रीभूत कर दिया जाय ।

१९१५ की कांग्रेस का अधिवेशन बम्बई में होने जा रहा था। और चूंकि मेल-मिलाप के सारे प्रयत्न असफल हो चुके थे, इसलिए वस्तुतः यह कांग्रेस केवल नरम दल वालों की ही थी। कांग्रेस के ऐन मौके पर, अर्थात् नवम्बर मास में, सर फिरोजशाह मेहता का स्वर्गवास हो गया। सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, जिनकी योग्यता और रुतबे की सर्वत्र धाक थी, इस कांग्रेस के सभापति चुने गये थे। वैसे कांग्रेस के साथ उनका सम्पर्क तो बहुत ही थोड़ा रहा था, लेकिन उनके सभापतित्व से बंबई कांग्रेस को वह सारी प्रतिष्ठा अवश्य प्राप्त हुई जोकि सरकार के भूतपूर्व लॉ-मेम्बर के नाम के साथ जुड़ी रहती है।

राष्ट्रीय दृष्टिकोण से आपका भाषण अत्यन्त प्रतिगामी था। आपके विचार से "भारत के भविष्य के लिए एक ऐसे आदर्श की आवश्यकता थी जिससे एक ओर तो उठती हुई पीढ़ी की महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति हो और दूसरी ओर वे लोग भी उसे मंजूर कर लें जिनके हाथ में भारत का भाग्य सौंपा हुआ है।" इसी विचार से वे ऐसी नीति की घोषणा चाहते थे।

लेकिन बम्बई की सन् १९१५ वाली कांग्रेस के प्रति जनता के उस अनुराग के चिह्न फिर से दिखाई पड़ने लगे जो सूरत-काण्ड के बाद विलीन हो गये थे। लखनऊ-कांग्रेस और उसके बाद तो जनता की दिलचस्पी इतनी बढ़ गई कि उसका प्रभाव स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगा। बम्बई की कांग्रेस में २२५९ प्रतिनिधि आये थे, और विभिन्न विषयों पर अनेक प्रस्ताव पास हुए थे। पहले चार प्रस्ताव तो शोक-प्रकाश के थे, जिनमें तीन प्रस्ताव तो कांग्रेस के तीन भूतपूर्व राष्ट्रपतियों के सम्बन्ध में थे—अर्थात् गोपाल कृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता और सर हेनरी कॉटन। चौथा शोक-प्रस्ताव मि० केरहार्डी की मृत्यु के सम्बन्ध में था। ये महानुभाव भारत के बड़े मित्र थे। पांचवें प्रस्ताव-द्वारा जनता की राजभक्ति प्रकट की गई थी। छठे प्रस्ताव-द्वारा कांग्रेस की ओर से उस उदार हेतु में दृढ़ विश्वास प्रकट किया गया था जिसे ग्रेट-ब्रिटेन तथा उसके मित्र-राष्ट्र महायुद्ध करके सिद्ध करने जा रहे थे। साथ ही ब्रिटिश जल-सेना ने जो विशेष सफलता प्राप्त की थी उस पर सन्तोष प्रकट किया गया था। सातवें प्रस्ताव द्वारा लॉर्ड हार्डिंङ्ग का, जो कि उस समय वाइसराय थे, शासन-काल बढ़ा देने के लिए प्रार्थना की गई थी। आठवें प्रस्ताव में कांग्रेस-द्वारा पहले पास किये गये तमाम प्रस्तावों की पुष्टि की गई थी, जिनमें भारतीयों को सेना में कमीशन देने के औचित्य और न्याय का, भारतीय सैनिकों को तत्कालीन सैनिक स्कूल तथा कालेजों में शिक्षा देने की व्यवस्था का तथा भारत में नये स्कूल-कालेज खोलने का जिक्र किया गया था। इस प्रस्ताव में इस बात की आवश्यकता पर भी जोर दिया गया था कि भारतीयों को सेना में, भारतीय जनता के अधिकारों के प्रति उचित सम्मान रखते हुए, जात-पांत के बिना किसी भेद-भाव के, भर्ती किया जाय तथा स्वयंसेवक बनाया जाय। नवें प्रस्ताव-द्वारा १८७८ के आर्म्स-एक्ट के प्रति, जिसके कारण भारतीय जनता पर अनुचित लांछन लगता था, नाराजगी जाहिर की गई। दसवें में दक्षिण अफ्रीका और कनाडा में प्रचलित उन कानूनों के लिए, जो भारतवासियों से सम्बन्ध रखते थे, दुःख प्रकट किया गया, ग्यारहवें प्रस्ताव-द्वारा वाइसराय को उनकी उस दूरदर्शितायुक्त सहायता के लिए धन्यवाद दिया गया, जो कि उन्होंने बड़ी कौंसिल के उस प्रस्ताव के समर्थन में दी थी, जिसमें कि शाही-परिषद् में भारतीय प्रतिनिधियों-द्वारा भारत के प्रतिनिधित्व की मांग की गई थी। इसी प्रस्ताव में सरकार से प्रार्थना भी की गई थी कि बड़ी कौंसिल को कम-से-कम दो प्रतिनिधि चुनने का अधिकार अवश्य दिया जाय। बारहवें प्रस्ताव में युक्तप्रान्त में कार्यकारिणी बनाने की मांग को दोहराया गया था। तेरहवें में कुली-प्रथा को नष्ट करने और चौदहवें में न्याय-विभाग और शासन-विभाग को पृथक् कर देने वाली पुरानी मांग

को दोहराया गया था। १५ वें में पंजाव, वर्मा तथा मध्यप्रान्त में ऊंचे दर्जे की हाईकोर्ट स्थापित करने की मांग की गई थी। १६ वें और १७ वें में स्वदेशी-आन्दोलन का समर्थन तथा प्रेस-एक्ट जारी रखने का विरोध किया गया। १८ वें प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि भारतीयों के हित में यह बात जरूरी है कि पूर्ण आर्थिक स्वाधीनता और विशेष कर आयात-निर्यात तथा उत्पत्ति-कर सम्बन्धी पूर्ण अधिकार भारत सरकार को सौंप दिये जायं। १९ वां प्रस्ताव बहुत ही महत्व-पूर्ण था। उसमें भारत को ऐसे ठोस सुधार देने की मांग की गई थी; जिनमें जनता को शासन पर वास्तविक नियन्त्रण मिले और वह इस रूप में कि प्रान्तीय स्वाधीनता दी जाय, जिन प्रान्तों में कौंसिलें हैं उन्हें सुधारा और बढ़ाया जाय, उन प्रान्तों में उनकी स्थापना की जाय जहां वे नहीं हैं, जिन प्रान्तों में कार्यकारिणी हों वहां उनकी पुनर्रचना की जाय, उन प्रान्तों में उनकी स्थापना की जाय जहां वे नहीं हैं, इण्डिया-कौंसिल या तो तोड़ दी जाय या उसमें सुधार कर दिया जाय और एक उदार ढंग का स्थानिक-स्वराज्य दिया जाय। इसी प्रस्ताव में महासमिति को आदेश दिया गया था कि वह सुधारों की एक योजना तैयार करे और एक ऐसा कार्य-क्रम बनावे जिसमें शिक्षा देने और प्रचार करने का कार्य लगातार होता रहे। इसी प्रस्ताव में महासमिति को यह अधिकार भी दिया गया था कि इस विषय में मुस्लिम-लीग की कमिटी से भी परामर्श करे और इस विषय में अन्य सारी आवश्यक कार्रवाई करे। बीसवें प्रस्ताव में यह कहा गया था कि राज्य को भूमि-कर कितना लेना चाहिए। इसके लिए एक उचित और निश्चित सीमा नियत कर देनी चाहिए और स्थायी बन्दोबस्त करके किसानों को भूमि पर सर्वत्र स्थायी अधिकार दे देना चाहिये, चाहे कहीं रैयतवारी प्रथा हो या जमींदारी। यदि स्थायी बन्दोबस्त न हो तो कम-से-कम ६० साला बन्दोबस्त कर ही देना चाहिए। २१ वें प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि देश के उद्योग धन्धों की तरक्की के लिए कार्रवाई की जाय, औद्योगिक तथा दस्तकारी की शिक्षा देने की व्यवस्था हो, आयात-निर्यात -सम्बन्धी कर लगाने की भारत को आर्थिक स्वतन्त्रता दी जाय, उन सारी अनुचित और आवश्यक रुकावटों को दूर कर दिया जाय जो सूती माल के ऊपर उत्पत्ति-कर के रूप में यहां लगी हुई हैं, और रेल की उन भेदभाव पूर्ण दरों को हटा दिया जाय जिनसे विदेशी माल को भारत भेजने में प्रोत्साहन मिलता है, जिसके फलस्वरूप देशी-व्यापार और उद्योग-धन्धों का गला घुट रहा है। २२ वें प्रस्ताव में इंग्लैण्ड के इंडिया स्टूडेंट्स डिपार्टमेण्ट से नापसन्दगी जाहिर की गई और इस बात पर असन्तोष प्रकट किया गया कि ग्रेट-ब्रिटेन के संयुक्त-राज्य की शिक्षा-संस्थाओं में भारतीय विद्यार्थियों को कम संख्या में दाखिल करने की प्रवृत्ति दिन-दिन बढ़ रही है और भर्ती कर लेने के बाद उनके साथ भेद-भाव का और अन्याय-पूर्ण व्यवहार किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि १९१५ की कांग्रेस में जो प्रस्ताव पास हुए वे उन प्रस्तावों का सार या खुलासा-मात्र हैं जो कांग्रेस के जन्म से लेकर समय-समय पर कांग्रेस में पास होते रहे थे।

स्वशासन के प्रश्न के सम्बन्ध में, जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, १९१५ की कांग्रेस ने अपने १९ वें प्रस्ताव-द्वारा यह आदेश दिया कि महासमिति मुस्लिम-लीग की कार्य-कारिणी से परामर्श करे और स्व-शासन की एक योजना तैयार करे।

१९१५ की एक बड़ी दिलचस्प घटना यह है कि गांधीजी विषय-समिति के सदस्य नहीं चुने जा सके। इसलिए सभापति ने उनको अपने अधिकार से इस समिति में नामजद किया था।

बम्बई-कांग्रेस की एक सफलता यह भी थी कि उसने कांग्रेस के विधान में ऐसा महत्वपूर्ण संशो-

धन कर दिया था, जिसके द्वारा राष्ट्रीय दल के लोग भी कांग्रेस के प्रतिनिधि चुने जा सकते थे; क्योंकि यह तय हो गया था कि "उन संस्थाओं द्वारा बुलाई गई सार्वजनिक सभायें कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि चुन सकेंगी जिनकी स्थापना १९१५ से दो वर्ष पूर्व हो चुकी हो और जिनका उद्देश्य वैध-उपायों से ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य प्राप्त करना हो।" लोकमान्य तिलक ने इसका हृदय से स्वागत किया। उन्होंने तुरन्त ही इस बात की सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि वे और उनका दल इस आंशिक रूप में खुले द्वार से कांग्रेस में प्रवेश करने को सहर्ष तैयार हैं।

७

संयुक्त कांग्रेस—१९१६

नये वर्ष का श्रीगणेश, पिछले वर्ष की अपेक्षा, कांग्रेस-कार्य के लिए और भी शुभ समय, परिस्थिति और वातावरण में हुआ। इधर देश बड़े-बड़े धक्कों के कारण और भी असहाय हो गया था क्योंकि १९१५ में ही गोखले और मेहता जैसे महारथी स्वर्गारोहण कर चुके थे। लोकमान्य के लिए तो अभीतक कोई स्थान ही नहीं था; क्योंकि बम्बई में जो समझौता हुआ था उसके अनुसार उन्हें पूरे साल भर तक इन्तजार करना था। इसी के बाद वे कांग्रेस में आ सकते थे और उसे प्रभावित कर अपने ढंग से चला सकते थे। अतः उन्होंने अपने होमरूल-लीग के विचार को कार्य-रूप देने का निश्चय किया। इस नाजुक समय में वे अपनी शिक्षा-दीक्षा, योग्यता, सेवाओं और त्याग के कारण नेतृत्व करने के लिए पूर्णतः योग्य थे। उन्होंने कांग्रेस को एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड भेजने के लिए राजी करने की काफी कोशिश की, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। तब उन्होंने २३ अप्रैल १९१६ को अपनी होमरूल लीगकी स्थापना की। इसके ६ मास बाद श्रीमती बेसेण्ट ने भी अपनी होमरूल-लीग खड़ी की।

लेकिन नौकरशाही तो उनकी कट्टर शत्रु थी। जब लोकमान्य विद्यार्थियों को डिफेन्स फोर्स (रक्षक-सेना) में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित कर रहे थे उस समय पंजाब सरकार की ओर से उनके लिए यह हुक्म निकला कि वे देहली और पंजाब के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते।

उन्होंने अपनी होमरूल-लीग के लिए कांग्रेस के क्रीड को स्वीकार कर लिया। जान पड़ता है, इससे श्री शास्त्री को बहुत प्रसन्नता हुई। १९१६ में उनकी अवस्था ६० वर्ष की हो गई थी। इस षष्ठि-पूर्ति के अवसर पर उन्हें एक लाख रुपये की थैली भेंट की गई। इसे लोकमान्य ने राष्ट्र-कार्य के लिए अर्पण कर दिया। सरकार ने जितना ही उन्हें दबाया उतने ही वे ऊपर उठे और अन्त में 'उन्हें जेल भेजने की अपेक्षा खामोश करना ही उचित समझकर' उनसे नेकचलनी की २० हजार रुपये की जमानत मांगी गई। लेकिन ९ नवम्बर १९१६ को हाईकोर्ट ने मजिस्ट्रेट का फैसला रद्द कर दिया। इससे लोकमान्य की लोक-प्रियता और भी बढ़ी। उनका आदर हुआ, मान मिला, स्वागत हुआ और जहां कहीं वे गये, थैलियां भेंट हुईं। लेकिन उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। इसका फल यह हुआ कि वे भारत में विस्तृत-प्रचार-कार्य नहीं कर सकते थे, जिसके लिए बड़ी भारी शक्ति की आवश्यकता थी। उन्होंने लोगों की भावनाओं को जाग्रत करने और उनके अन्दर एक प्रकार की बिजली-सी भर देने के महत्वपूर्ण कार्य को एक दूसरे व्यक्ति के लिए छोड़ दिया, जो उम्र में उनसे बड़ी थीं, जिनमें एक विद्युत-शक्ति थी और जो काम करते-करते कभी थकना नहीं जानती थीं।

यह थी दशा १९१६ में भारत की, जिसकी पुकार पर कोई ध्यान नहीं देता था और जिसे अपने लिए एक नेता ढूंढ़ निकालने की आवश्यकता थी। ठीक ऐसे ही नाजुक समय में श्रीमती बेसेण्ट ने रणांगण में पदार्पण किया। धार्मिक क्षेत्र से एकदम राजनैतिक क्षेत्र में कूद पड़ीं। थियोसोफी को

छोड़ उन्होंने होमरूल को अपनाया। 'न्यू इन्डिया' नामक एक दैनिक और इसके बाद "कामन-वील" नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला। होमरूल की आवाज को लोक-प्रिय बनाने में उनका नम्बर प्रथम है। इसके लिए एक छोर से दूसरे छोर तक एक तूफान मचा दिया। वैसे १९१५ में ही "होम-रूल फार इण्डिया लीग" की स्थापना पर विचार-विनिमय हो चुका था। लेकिन उसी समय इसकी स्थापना नहीं की गई थी; क्योंकि सोचा यह गया था कि अगर स्वराज्य के कार्य को स्पष्ट रूप से उस वर्ष की कांग्रेस ही अपने हाथ में ले ले तो ठीक होगा।

बम्बई-कांग्रेस ने कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन करने का जो आदेश दिया था वह यथा-विधि किया गया। उसका परिणाम हुआ भारतवर्ष की दो महान् जातियों में पूर्ण एकमत हो जाना। एक सम्मिलित कमिटी भी बनाई गई जिसके सुपुर्द यह कार्य किया गया कि वह एक योजना तैयार करे और साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्य पाने के उद्देश्य को शीघ्र ही फलीभूत करने के लिए अन्य सारे आवश्यक प्रबन्ध करे। यह तय हुआ था कि इस सम्मिलित कमिटी द्वारा तैयार किया गया स्वराज्य का मसविदा लखनऊ में (१९१६) कांग्रेस और मुस्लिम-लीग दोनों मिलकर पास करें। इसी सम्बन्ध में २२, २३ और २४ अप्रैल १९१६ को, इलाहाबाद में, पं० मोतीलाल नेहरू के निवास-स्थान पर, महा-समिति की बैठक में खूब वाद-विवाद हुआ था। महा-समिति की इस बैठक में जो प्रस्ताव कच्चे तौर पर पास हुए थे उन पर मुस्लिम-लीग की कौंसिल और महासमिति की सम्मिलित बैठक ने, जो अक्तूबर १९१६ को कलकत्ते में हुई थी, विचार किया गया और हिन्दू-मुस्लिम-एकता सम्बन्धी समझौता तय हो गया। केवल बंगाल और पंजाब के प्रतिनिधियों की संख्या की समस्या हल नहीं हुई थी। इसका अन्तिम-निर्णय लखनऊ-अधिवेशन पर छोड़ दिया गया। सम्मिलित कमिटी ने कलकत्ते में जो प्रस्ताव पास किये थे, उन्हें लखनऊ कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। राजनीतिज्ञों के आन्तरिक-क्षेत्र को कांग्रेस का अधिवेशन होने तक उस बात का पता चल गया था जो बाद को "नाइण्टीन मेमोरेण्डम" (१९ का आवेदनपत्र) के नाम से प्रसिद्ध हुआ (देखो परिशिष्ट १) और जो असेम्बली के १९ सदस्यों के हस्ताक्षर से वाइसराय के पास भेजा गया था (नम्बर १९१६)। आवेदन-पत्र में जो योजना थी उसमें भारत के लिए स्व-शासन-प्रणाली के मूल-सिद्धांत समाविष्ट थे। यह विश्वास किया जाता है कि यह आवेदन-पत्र इसलिए भेजा गया था, क्योंकि इस पर हस्ताक्षर करनेवाले सदस्यों को यह सुराग लगा था कि भारत-सरकार ने कुछ ऐसे प्रस्तावों का एक खरीता विलायत भेजा है जो वस्तुतः प्रतिगामी थे।

जाहिर है कि श्रीमती बेसेंट, कांग्रेस का कार्य जिस मन्द गति से चल रहा था, उससे सन्तुष्ट नहीं थीं। कांग्रेस की ब्रिटिश-कमिटी निस्सन्देह इंग्लैण्ड में अपना काम कर रही थी। लेकिन यह वस्तुतः एक प्रकार से, उसी के शब्दों में कहें तो, सिर्फ निगरानी रखती थी। श्रीमती बेसेंट एक तेजतर्रार और जीती-जागती संस्था चाहती थीं। इसलिए उन्होंने १९१४ की मद्रास-कांग्रेस के स्व-शासन-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार १२ जून १९१६ को लन्दन में एक सहायक-होमरूल-लीग की स्थापना की। भारतवर्ष में तो निश्चित रूप से, पहली सितम्बर १९१६ ई०को, मद्रास के गोखले-हाल में उनकी होमरूल लीग की स्थापना हुई थी। इस संस्था ने १९१७ भर धड़ाके से श्रीमती बेसेण्ट-द्वारा निर्धारित प्रणाली पर काम किया। ये इस संस्था की तीन वर्ष के लिए अध्यक्ष चुनी गई थीं। लेकिन सबसे पहले होमरूल लीग की स्थापना तो, जैसा कि पहले हम बता चुके हैं, २१ अप्रैल १९१६ को लोकमान्य तिलक ने की थी, जिसका प्रधान कार्यालय पूना में था। दोनों के नाम में गड़-बड़ न हो इसलिए श्रीमती बेसेण्ट ने अपनी होमरूल-लीग का नाम १९१७ में 'ऑलइंडिया होमरूल-लीग' रख दिया था।

लोकमान्य तिलक अपनी जनवरी की घोषणा के अनुसार १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस में सम्मिलित हुए। उन्हें बम्बई प्रांत से राष्ट्रीय विचार के लोगों की एक अच्छी खासी संख्या को लखनऊ के अधिवेशन के लिए प्रतिनिधि बनाने में पूर्ण सफलता मिली। कांग्रेस के तत्कालीन विधान के अनुसार ऐसा था कि विषय समिति में प्रत्येक प्रांत के महासमिति के सदस्यों के अलावा उन्हीं की संख्या के बराबर सदस्य प्रत्येक प्रांत से, अधिवेशन में सम्मिलित हुए प्रतिनिधियों द्वारा, चुने जायं। लोकमान्य ने नरम-दल वालों के सामने विषय-समिति के चुने जाने वाले सदस्यों के नामों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव रक्खा था वह उन लोगों ने जब स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने बम्बई के प्रतिनिधियों से, जो सारे-के-सारे राष्ट्रीय-विचार के थे, केवल अपने दल के लोगों को ही चुनवाने का निश्चय किया। अधिवेशन में विषय-समिति के सदस्यों के लिए दो-दो नाम एकसाथ पेश किये गये। अर्थात् एक नरम-दल वाले का तो दूसरा राष्ट्रीय-दल वाले का। परन्तु हर बार राष्ट्रीय-दल का ही आदमी चुना गया। जब गांधीजी के नाम के मुकाबले में एक राष्ट्रीय-दल के आदमी का नाम रख दिया गया तो गांधीजी भी नहीं चुने जा सके। लेकिन लोकमान्य ने घोषणा कर दी कि गांधीजी चुन लिये गये।

लखनऊ की इस कांग्रेस के सभापति श्री अम्बिकाचरण मजुमदार चुने गये थे। राष्ट्र के वे एक परखे हुए सेवक थे। राष्ट्रीय कार्यों के लिए उनका जो त्याग था उसके लिए लखनऊ की कांग्रेस का सभापति बनाकर उनका मान करना उचित पुरस्कार ही था। उनका सभापति के पद से दिया गया भाषण वक्तृत्वकला के लिहाज से वैसा ही था जैसा कि कांग्रेस में होने का उस समय तक रिवाज था। लखनऊ कांग्रेस की सबसे बड़ी जो सफलता थी वह थी शासन-सुधारों के लिए कांग्रेस-लीग-योजना की पूर्ति और हिन्दू मुसलमानों में पूर्णतः समझौता और मेल हो जाना। (देखो परिशिष्ट २)

कांग्रेस-लीग योजना में मुख्य बात यह थी कि कार्यकारिणी कौंसिल के अधीन रहे। लेकिन यहां यह बात भूल न जानी चाहिए कि स्वयं कौंसिल में ⅕ भाग नामजद सदस्यों का रक्खा गया था। भारत-मंत्री की कौंसिल को तोड़ देने की बात थी। संक्षेप में उस समय के बाद की कांग्रेस की तेज रफ्तार की दृष्टि से यदि देखा जाय, तो उस योजना में कुछ विशेष सार नहीं था। फिर भी सरकार की हिम्मत उसे स्वीकार करने की नहीं थी। उसने उसके मुकाबले में स्वयं अपनी एक योजना तैयार की, जैसा कि हमें १९१७ के बाद की घटनाओं से मालूम होगा।

लखनऊ की कांग्रेस अपने ढंग की अद्वितीय थी। एक तो उसमें हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हुआ, दूसरे स्वराज्य की योजना तैयार हुई और कांग्रेस के दोनों दलों में, जो कि १९०७ से पृथक्-पृथक् थे, एका हो गया। वास्तव में यह दृश्य देखते ही बनता था—लोकमान्य तिलक और खापर्डे, रासबिहारी घोष और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, एक ही साथ एक ही स्थान पर बराबर बैठे थे। श्रीमती बेसेन्ट भी अपने दो सहयोगी अरण्डेल और वाडिया साहब के साथ, जिनके हाथों में होमरूल के झण्डे थे, वहीं बैठी थीं। मुसलमानों में से राजा महमूदाबाद, मजहरुल हक और जिन्ना साहब भी उपस्थित थे। गांधीजी और मि० पोलक भी वहीं विराजमान थे। कांग्रेस-लीग योजना पर, जिसे कांग्रेस ने पास किया था, तुरन्त ही मुस्लिम-लीग ने भी अपनी मुहर लगा दी।

बम्बई-कांग्रेस की भांति लखनऊ-कांग्रेस में भी उपस्थिति अच्छी थी। २,३०१ प्रतिनिधियों के अतिरिक्त दर्शकों की एक अच्छी खासी भीड़ थी, जिनके मारे सारा पण्डाल खचाखच भर गया था। इसमें प्रायः वे सब प्रस्ताव पास हुए जिन्हें कांग्रेस अब तक हर साल पास करती चली आरही थी। कांग्रेस ने दो प्रस्ताव और पास किये थे। एक तो उत्तरी बिहार के गोरे जमींदारों और वहां की रैयत के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में था, जिसमें इस बात की आवश्यकता पर जोर दिया गया था कि सर-

कार शीघ्र ही सरकारी तथा गैर-सरकारी कुछ सदस्यों की एक ऐसी सम्मिलित कमिटी नियुक्त करे जो विहार के इन किसानों के कष्टों का पता लगावे। दूसरा विश्वविद्यालय-सम्बन्धी बिल था जो कि वहीं कौंसिल में पेश किया जा चुका था।

उत्तरी विहार के गोरे जमींदार और वहां की रैयत के सम्बन्ध का प्रस्ताव बड़ा ही महत्वपूर्ण था; क्योंकि इसके बाद ही गांधीजी किसानों के असन्तोष के कारणों का पता लगाने विहार गये थे, जिस पर आगे के अध्यायों में प्रकाश डाला जायगा।

भारत के स्वशासन वाले प्रस्ताव में यह घोषित किया गया था कि (अ) भारत की प्राचीन सभ्यता और शिक्षा में जो उन्नति हुई, और सार्वजनिक कामों में जो रुचि प्रकट की गई है उनको मद्देनजर रखते हुए, सम्राट् की सरकार को चाहिए कि वह कृपापूर्वक इस आशय की एक घोषणा कर दे कि ब्रिटिश नीति का यह लक्ष्य है कि भारत में शीघ्र ही स्वशासन-प्रणाली को जारी करे, (ब) इस दिशा में एक सीधा कदम इस प्रकार बढ़ाया जा सकता है कि कांग्रेस-लीग-योजना को सरकार स्वीकार कर ले, और (स) साम्राज्य के पुनर्निर्माण में भारतवर्ष को अधीन देशों की स्थिति से निकाल कर साम्राज्य के बराबर के साझीदारों में, औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों की भांति, रक्खा जाय।

यहां यह बात भी गौर से देखने योग्य है कि लखनऊ-कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा डिफेन्स आफ इण्डिया ऐक्ट और १८१८ के ३रे रेग्युलेशन (बंगाल) के इतने विस्तृत रूप में प्रयोग को बहुत ही चिन्ताजनक दृष्टि से देखा था। इसी प्रस्ताव में इस बात पर जोर दिया गया था कि इण्डिया डिफेन्स ऐक्ट के प्रयोग में, जो विशेष परिस्थितियों के लिए है, वही सिद्धान्त प्रयुक्त होना चाहिए जो संयुक्तराज्य के देश-रक्षा क़ानून (डिफेन्स आफ रेल्म ऐक्ट) के अनुकूल हो।

कांग्रेस और लीग दोनों के एक समय में एक ही स्थान पर अधिवेशन करने की प्रथा का जो श्रीगणेश बम्बई में हुआ था वही लखनऊ में भी जारी रक्खा गया। लखनऊ के अधिवेशन में स्वशासन-प्रणाली के लिए जो प्रस्ताव पास हुआ था उसके बाद एक प्रस्ताव इस आशय का भी पास हुआ था कि सारे देश की कांग्रेस-कमिटियां तथा अन्य संगठित संस्थायें और कमिटियां शीघ्र ही एक देशव्यापी प्रचार का कार्य शुरू कर दें। इस आदेश का देश ने आश्चर्यजनक उत्तर दिया। एक प्रांत ने दूसरे प्रांत से इस प्रचार-कार्य करने में प्रतिस्पर्धा की। मदरास ने तो श्रीमती बेसेन्ट के नेतृत्व में इस कार्य में सबसे अधिक बाजी मारी। कांग्रेस का लखनऊ-अधिवेशन कोई सुगमता से समाप्त नहीं हो गया। १८९९ में जब कांग्रेस का इसी स्थान पर १५ वां अधिवेशन होने जा रहा था उस समय अकथनीय कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। लेकिन उस समय, तत्कालीन लेफ़्टिनेन्ट-गवर्नर सर एन्थोनी मैक्डोनल्ड ने उन सबका अन्त कर दिया था। इसी तरह की एक घटना १९१६ में हुई थी। युक्तप्रांतीय-सरकार के मन्त्रि-मन्डल ने कांग्रेस की स्वागत-समिति को एक चेतावनी भेजी थी कि भाषणों में किसी प्रकार के राजद्रोहात्मक भावों को न आने दिया जाय। कांग्रेस के मनोनीत सभापति के पास भी बंगाल-सरकार द्वारा उसी की एक नकल भेज दी गई थी। स्वागत-समिति ने इस अकारण तौहीन का मुंह-तोड़ जवाब दे दिया था और सभापति ने उस पत्र की कोई वक़्त नहीं की थी। श्रीमती बेसेन्ट तो ठीक इन्हीं दिनों बरार और बम्बई की सरकारों से देश-निकाले की आज्ञा पा ही चुकी थीं। इसलिए स्वभावतः लखनऊ में भी कुछ ऐसी ही आशंकायें थीं। लेकिन सर जेम्स मेस्टन की बुद्धिमानी से इस तरह की कोई घटना नहीं घटी और इसलिए कोई पेचीदगी पैदा नहीं हुई। इतना ही नहीं, अधिकारीवर्ग-सहित सर जैम्स मेस्टन और उनकी धर्मपत्नी कांग्रेस में भी पधारे थे। सभापति महोदय ने इनका जो स्वागत किया था, उसका सर जेम्स ने उपयुक्त उत्तर भी दिया था।

३

उत्तरदायी शासन की ओर—१९१७

भारतीय राजनीति के विकास में यहां का साम्प्रदायिक मतभेद सदैव एक बड़ा भारी रोड़ा रहा है। इसका जन्म तो वैसे वस्तुतः लॉर्ड मिण्टो के जमाने में हुआ था; पर १९१७ में जब स्व-शासन की एक योजना तैयार की जाने को थी, उस समय सौभाग्य से भारतवर्ष की दो महान् जातियों में, किसी ऊपरी शक्ति के दबाव से नहीं बल्कि आपसी तौर पर, एक समझौता होगया था। यह आगे आनेवाले राजनैतिक संघर्ष के लिए शुभ-चिह्न था। १९१७ में जो राजनैतिक आन्दोलन चलाया गया था उसकी कल्पना स्पष्ट और भावना शुद्ध थी। १९१७ में सारे देश में बड़ी तेजी के साथ एक राष्ट्रीय-जागृति पैदा हो गई थी। होमरूल के लिए जो विराट् आन्दोलन इस वर्ष हुआ वह भी बहुत ही लोकप्रिय था। इस आन्दोलन के पीछे-पीछे जो चीज सदैव से अधिक तेजी के साथ चली, वह था पुलिस का दमन।

होमरूल आन्दोलन और दमन

होमरूल की आवाज देश के सुदूर कानों तक फैल गई और सर्वत्र होमरूल-लीगों की स्थापना हो गई थी। श्रीमती बेसेण्ट के हाथों में प्रेस की शक्ति खूब ही बढ़ी, यद्यपि प्रेस-ऐक्ट के अनुसार दमन चक्र भी खूब ही चला और लॉर्ड पेण्टलैण्ड की सरकार ने तो सरकारी आज्ञा-पत्र नं० ५५९ के अनुसार विद्यार्थियों को भी राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने से रोक दिया था। उन्होंने 'हिन्दू' के सम्पादक श्री कस्तूरी रङ्गा आयङ्गर को भी बुला भेजा था, जिन्होंने अपनी आध घण्टे की मुलाकात में गवर्नर से साफ-साफ बातें करके देश की स्थिति को जैसा वे समझते थे बता दिया था। लेकिन श्रीमती बेसेण्ट से, जिनका 'न्यू इंडिया' नामक दैनिक और 'कामनवील' नामक साप्ताहिक पत्र निकलता था, प्रेस और पत्र के लिए २०,०००) की जमानत मांगी गई, और वह जब्त भी करली गई।

एक ओर यह हो रहा था तो दूसरी ओर होमरूल का खयाल, दावानल की तरह, सर्वत्र फैल रहा था। "होमरूल आन्दोलन की शक्ति", श्रीमती बेसेण्ट के १९१७ में कलकत्ता कांग्रेस के सभापति-पद से दिये गये भाषण के अनुसार, "स्त्रियों के उसमें एक बहुत बड़ी संख्या में भाग लेने, उसके प्रचार में सहायता करने, स्त्रियोचित अद्भुत वीरता दिखाने, कष्ट सहने और त्याग करने के कारण दसगुनी अधिक बढ़ गई थी। हमारी लीग के सबसे अच्छे रंगरूट और सबसे अच्छे रंगरूट बनाने वाली स्त्रियां ही थीं। मदरास की स्त्रियों का दावा है कि जब आदमियों को जुलूस निकालने से रोक दिया गया तब उनके जुलूस निकलने और मन्दिरों में की गई उनकी प्रार्थना ने नजरबन्दों को मुक्त कर दिया।" इस आन्दोलन की सफलता का एक बड़ा कारण यह भी था कि प्रारम्भ से ही भाषा के आधार पर प्रान्त बनाने के सिद्धान्तों को मान लिया गया था और उसी के अनुसार देश का प्रान्तीय-संगठन किया गया था। इस प्रकार से इस रूप में वह कांग्रेस से भी आगे निकल गया

और सच पूछिए तो कांग्रेस के लिए उसने पूर्व-सूचक का काम किया था।

१५ जून १९१७ को श्रीमती बेसेण्ट, अरण्डेल और वाडिया साहब को नजरबन्दी का हुक्म मिला। उनको ६ स्थान बताये गये थे जिनमें से एक को उन्हें अपने रहने के लिए पसन्द कर लेना था। कोयम्बटूर और उटकमण्ड को इन लोगों ने पसन्द किया। अपने तीन नेताओं की नजरबन्दी के कारण होमरूल-लीग और भी लोक-प्रिय हो गई और श्री जिन्ना भी बाद में फौरन उसमें सम्मिलित हो गये। यह तो एक प्रकट-रहस्य है कि सरकारी हुक्म और खुफिया-पुलिस की निगरानी होने पर भी श्रीमती बेसेण्ट स्वतन्त्रता पूर्वक बराबर अपने पत्र 'न्यू-इंडिया' के लिए लेख लिखती रहीं। 'कामनवील' नामक एक नया साप्ताहिक पत्र भी आपने निकाला। श्री पंढरीनाथ काशीनाथ तैलंग 'न्यू इण्डिया' के सम्पादक बनकर मदरास पहुंच गये। जितने दिन तक ये लोग नजरबन्द रहे उतने दिन तक होमरूल आन्दोलन विद्युत्-गति से दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ा। देश में स्थिति बड़ी विकट हो गई थी। लेकिन इंग्लैण्ड में अधिकारी-वर्ग जरा भी झुकने को तैयार न था। मि० माण्टेगु ने अपनी डायरी में एक कहानी लिखी और उससे एक सबक निकाला : "शिव ने अपनी पत्नी के ५२ टुकड़े कर दिये थे परन्तु अन्त में उन्हें पता चला कि उनके एक नहीं ५२ पार्वतियां मौजूद हैं। वास्तव में यही बात भारत-सरकार पर घटी जब कि उसने श्रीमती बेसेण्ट को नजरबन्द किया।"

भारतवर्ष में जब कि यह राजनैतिक तूफान उमड़ रहा था, लण्डन में एक शाही युद्ध-परिषद् हो रही थी, जिसमें सारे उपनिवेशों के प्रतिनिधि भी उपस्थित थे। भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए महाराजा बीकानेर और सर सत्येन्द्रप्रसन्नसिंह इंग्लैण्ड भेजे गये थे। इन लोगों ने अपनी शान-बान और रङ्ग-ढङ्ग तथा शुद्ध उच्चारण से ऐसा रोब वहां जमाया कि इनका वहां खूब ही स्वागत हुआ, मान हुआ और अखबारों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की। इसका असर यहां तक हुआ कि ब्रिटिश-कमिटी ने, जिसने कि यह राय दी थी कि भारत से शासन-सुधारों सम्बन्धी प्रश्न को हल करने के लिए एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड बुलाया जाय, अपनी राय बदल दी और उसी समय इंग्लैण्ड में एक आन्दोलनकारी कार्यक्रम बनाने की सलाह दी। वास्तव में ७ अप्रैल १९१७ को महासमिति की बैठक बुलाई गई थी, इसीलिए कि वह इंग्लैण्ड में एक शिष्टमण्डल भेजने का और विलायत में ही कांग्रेस का अधिवेशन करने का आयोजन करे। इन महानुभावों को शिष्ट-मण्डल का सदस्य बनने के लिए कहा गया था—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, रासबिहारी घोष, भूपेन्द्रनाथ बसु, मदनमोहन मालवीय, सर कृष्णचन्द्र गुप्त, राजा महमूदाबाद, तेजबहादुर सप्रू, श्रीनिवास शास्त्री और सी० पी० रामस्वामी ऐयर। ब्रिटिश-कमिटी ने बहुतेरा प्रयत्न किया कि भारत-मन्त्री मि० आस्टिन चैम्बरलेन भारत-विषयक सरकारी नीति की घोषणा कर दें और सेना में भारतीयों को कमीशन देना स्वीकार लें; लेकिन वे दोनों में से एक भी करने को तैयार न थे। ८ मई १९१७ को इंग्लैण्ड में एक छोटी-सी परिषद् हुई। उस समय सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भी वहां थे। इसी परिषद् का वह निश्चय था, जिसके अनुसार भारत से शिष्ट-मण्डल भेजने की सलाह वापस ले ली गई थी।

भारतवर्ष इस समय होमरूल के सम्बन्ध में नजरबन्द हुए लोगों को छुड़ाने के लिए सत्याग्रह करने की योजना तैयार कर रहा था। जुलाई १९१७ में महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित बैठक बुलाई गई, जिसमें सबसे पहला जो प्रस्ताव पास हुआ वह था भारत के वृद्ध पितामह की मृत्यु पर दुःख मनाने का। सर विलियम वेडरबर्न की सलाह के अनुसार एक छोटा-सा शिष्टमंडल इंग्लैण्ड भेजने का निश्चय हुआ। इसके सदस्य थे—सर्वश्री जिन्ना, शास्त्री, (

हुआ कि प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियों और मुस्लिम-लीग की कौंसिल से प्रार्थना की जाय कि वे सत्याग्रह पर सिद्धान्ततः राजनैतिक कार्य करने की दृष्टि से विचार करें, कि आया उनकी राय में सत्याग्रह करना उचित और उपयुक्त है या नहीं ? इस विषय में उनकी जो राय हो उसे ६ सप्ताह के अन्दर कांग्रेस के प्रधानमन्त्री के पास भेज देने की बात भी प्रस्ताव में थी। इस सम्मिलित बैठक ने बंगाल-सरकार की उस धांधलेबाजी के प्रति तीव्र विरोध का एक प्रस्ताव पास किया जो कि उसने श्रीमती बेसेएट और मि० अरण्डेल व वाडिया के नजरबन्द होने के विरोध में डा० रासबिहारी घोष के सभापतित्व में होने वाली एक सार्वजनिक सभा रोक कर की थी। प्रस्ताव में यह आशा प्रकट की गई थी कि "बंगाल के निवासी प्रत्येक कानूनी उपाय से अपने अधिकारों की रक्षा करेंगे।" एक बहुत ही युक्ति-पूर्ण वक्तव्य तत्कालीन स्थिति के सम्बन्ध में इस कमिटी ने तैयार किया था। इसमें यह बताया गया था कि यहां भारतवर्ष में किस प्रकार लार्ड चैम्सफोर्ड ने, उन्नीस आदमियों द्वारा भेजे गये उस आवेदन-पत्र को बुरा-भला कहते हुए उसे "महान् आपत्ति का देने वाला परिवर्तन" कहा था, और किस प्रकार इंग्लैण्ड में लॉर्ड सिडेनहम ने 'भारत के खतरे" का भय दिखा कर और इस आवेदन-पत्र को "क्रान्तिकारी प्रस्ताव" कह कर इसकी निन्दा की थी एवं दमन करने की सलाह यह कहकर दी थी कि इसके पीछे 'जर्मनी की साजिश' है। इसके बाद ही सरकार ने स्वराज्य के लिए किये गये लोक-आन्दोलन के सम्बन्ध में सरकार की नीति का निर्देश करते हुए एक गश्ती-पत्र भेजा था, और वही फोनोग्राफ की तरह शीघ्र ही पंजाब में सर माइकल ओडायर और मदरास में लॉर्ड पेण्टलैंड के मुंह से घोषणाओं के रूप में सुनाई देने लगा। इन्होंने लोगों को व्यर्थ की आशायें न रखने की चेतावनी देते हुए दमन करने की धमकी दी। सर माइकल ओडायर ने तो यहां तक कह डाला था कि सुधार मांगने वाले दल ने जो शासन में परिवर्तन चाहे हैं वे क्रान्तिकारी और कानून और व्यवस्था उलट देने वाले हैं। सरकार को जिस बात की सबसे अधिक चिढ़ थी वह यह कि एक ओर तो शिमला और दिल्ली से जो गुप्त खरीते शासन-सुधारों के सम्बन्ध में जा रहे थे, उनसे पहले कांग्रेस तथा लीग और कुछ कौंसिल के सदस्यों की योजना और आवेदन-पत्र विलायत कैसे पहुंच गये ? प्रान्तीय सरकारों के गवर्नरों ने अदूरदर्शिता को नहीं देखा कि जनता से खुल्लम-खुल्ला यह कहने का क्या फल निकलेगा कि शासन-सुधार बहुत ही साधारण से दिये जायंगे। लेकिन यदि वे अदूरदर्शी थे तो कम-से-कम इतना तो कहना ही पड़ेगा कि ईमानदार थे। हां, तो उस वक्तव्य में नजरबन्दी का विरोध किया गया था और स्थिति को सुधारने की दृष्टि से यह सलाह दी थी कि (१) साम्राज्य-सरकार इस बात की घोषणा करे कि वह भारत में शीघ्र ही ब्रिटिश-साम्राज्य की स्वशासन-प्रणाली स्थापित कर देगी, (२) शासन-सुधारों की जो योजना सम्मिलित रूप से तैयार की गई है उसे वह मंजूर करने के लिए फौरन ही आगे कदम बढ़ायेगी, (३) अधिकारी-वर्ग ने जो प्रस्ताव किये हैं उनको शीघ्र ही प्रकाशित करेगी, और (४) दमन-नीति का परित्याग करेगी।

सत्याग्रह के प्रस्ताव पर प्रान्तों के मत

३० जुलाई को भारत-मंत्री, प्रधानमंत्री तथा सर विलियम वेडरबर्न को इस वक्तव्य का मुख्य भाग तार-द्वारा विलायत भेज दिया गया। इस बीच सत्याग्रह करने के प्रस्ताव पर विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों ने गम्भीरतापूर्वक अगस्त और सितम्बर के महीनों में विचार किया। बरार की राय में तो सत्याग्रह करना उचित था; पर बम्बई, बर्मा और पंजाब का कहना था कि अभी सत्याग्रह स्थगित रखा जाय, क्योंकि मि० माण्टेगु के भारत आने की संभावना है। युक्त-प्रान्त ने "वर्तमान अवस्था में" सत्याग्रह करना अनुपयुक्त बताया। बिहार की सम्मति में "होम रूल के नजरबन्दों—

मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयों को छोड़ने के लिए एक तारीख नियत कर देना चाहिए।" इस दी गई मियाद के बीच में बिहार स्वयं स्थान-स्थान पर सभायें करके इस मांग का बल बढ़ाने को तैयार था। यदि सरकार इस पर ध्यान न दे तो, बिहार के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता स्वयं सत्याग्रह का प्रचार करने के लिए तैयार हो जायंगे और उसके लिए हर प्रकार के बलिदान करेंगे और मुसीबतें सहेंगे। मदरास-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने १४ अगस्त १९१७ को सत्याग्रह का समर्थन करते हुए निम्न प्रस्ताव पास किया—

"निश्चय हुआ कि मदरास-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी की राय में जहां तक सरकार की अनुचित और अवैध आज्ञाओं के विरोध से सम्बन्ध है, जो वैध आन्दोलन और शान्तिपूर्ण सार्वजनिक सभाओं को, जो सरकार की दमननीति तथा नजरबन्दी की आज्ञाओं का विरोध करने के लिए की जायं, रोकने के लिए जारी की गई हैं, सत्याग्रह की नीति का अवलम्बन किया जाय।"

मदरास-नगर में तो एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया। इस पर सबसे पहले हस्ताचर करने वाला जो व्यक्ति था वह थे सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर, जो कि मदरास हाईकोर्ट के पेंशनयाफ़्ता जज, पुराने कांग्रेसी तथा आल इंडिया होमरूल-लीग के अध्यक्ष थे। उन्होंने अपनी 'सर' की उपाधि को श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगियों के नजरबन्द किये जाने के विरोध में त्याग दिया था। आपने राष्ट्रपति विल्सन को भी एक पत्र अमरीका श्रीमती और श्रीयुत होचनर के हाथ भेजा था। प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताचर करनेवाले दूसरे व्यक्ति 'हिन्दू' के सम्पादक और निरभिमान देशसेवक श्री कस्तूरी रंगा आयंगर थे।

माण्टेगु की घोषणा

जिस समय भारतवर्ष में आन्दोलन इस प्रगति से बढ़ रहा था उसी समय मि० माण्टेगु की घोषणा प्रकाशित हुई, जिससे स्थिति में बहुत परिवर्तन हो गया। इस पर मदरास-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने यह प्रस्ताव पास किया—"राजनैतिक परिस्थिति में जो परिवर्तन हुआ है उसे मद्देनजर रखते हुए सत्याग्रह के प्रश्न पर विचार करना आगे के लिए स्थगित किया जाय। इस बात की इत्तिला महासमिति को दे दी जाय।"

वह बदली हुई परिस्थिति कौन सी थी, गत महायुद्ध के जमाने में मेसोपोटामिया में युद्ध का प्रबन्ध अच्छा नहीं रहा। इसी सम्बन्ध में कामन-सभा में एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण वाद-विवाद हुआ, जिसमें मि० माण्टेगु ने मि० आस्टिन चैम्बरलेन को, जो कि भारत-मंत्री थे, बुरी तरह आड़े हाथों इसलिए लिया कि मेसोपोटामिया में भारत से प्रचुर-मात्रा में सामग्री तथा सिपाही न पहुंचने के कारण ही गड़बड़ हुई थी। इसी के परिणाम-स्वरूप मि० चैम्बरलेन ने अपने पद से इस्तीफा दे दिया और उनके स्थान पर मि० माण्टेगु भारत-मंत्री नियत हुए। उस समय माण्टेगु साहब बिलकुल नौजवान थे। उनकी अवस्था उस समय ३६ वर्ष से अधिक न थी। लेकिन फिर भी वे इससे पहले ४ वर्ष तक बराबर उपभारत-मंत्री रह चुके थे और १९१२ में भारतवर्ष का पूरा दौरा भी कर चुके थे। मि० बोनर ला का एक कड़ा भाषण हुआ था, जिसमें उन्होंने बताया था कि भारतवर्ष की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली हटाने और बंग-भंग के निर्णय को रद कर देने में खर्च भी अधिक हुआ है और सरकार की प्रतिष्ठा को भी धक्का पहुंचा है। इसके उत्तर में मि० माण्टेगु ने भारत के प्रति बहुत सहानुभूतिपूर्ण भाषण दिया था। मि० माण्टेगु का भारत-मंत्री बना दिया जाना, भारतवर्ष ने अपनी एक बहुत बड़ी विजय समझी। लोगों की आशा के मुताबिक, मंत्री-पद का कार्य सम्हालने के कुछ ही समय बाद २० अगस्त को मंत्रि-मंडल की ओर से, मि० माण्टेगु ने निम्नलिखित घोषणा की,

जिसमें ब्रिटिश नीति का अन्तिम ध्येय भारत को उत्तरदायित्वपूर्ण शासन-प्रणाली देना बताया गया था—

"सम्राट्-सरकार की यह नीति है, और उससे भारत-सरकार पूर्णतः सहमत है, कि भारतीय-शासन के प्रत्येक विभाग में भारतीयों का सम्पर्क उत्तरोत्तर बढ़े और उत्तरदायी शासन-प्रणाली का धीरे-धीरे विकास हो, जिससे कि अधिकाधिक प्रगति करते हुए स्व-शासन-प्रणाली भारत में स्थापित हो और वह ब्रिटिश-साम्राज्य के एक अंग के रूप में रहे। उन्होंने यह तय कर लिया है कि इस दिशा में, जितना शीघ्र हो, ठोस रूप से कुछ कदम आगे बढ़ाया जाय।"

"मैं इतना और कहूंगा", मि० मांटेगु ने कहा, "इस नीति में प्रगति क्रमशः ही अर्थात् सीढ़ी-दर-सीढ़ी होगी। ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार ही जिनके ऊपर कि भारतीयों के हित और उन्नति का भार है, कब और कितना कदम आगे बढ़ाना चाहिए, इस बात के निर्णायक होंगे। वे एक तो उन लोगों के सहयोग को देखकर ही आगे बढ़ाने का निश्चय करेंगे जिन्हें कि इस तरह सेवा का नया अवसर मिलेगा, और दूसरे यह देखा जायगा कि किस हद तक उन्होंने अपनी जिम्मेदारी को ठीक-ठीक अदा किया है और इसलिए कितना विश्वास उन पर किया जा सकता है। पार्लमेण्ट के सम्मुख जो प्रस्ताव पेश होंगे उन पर सार्वजनिक रूप में वादविवाद करने के लिए पर्याप्त समय दिया जायगा।"

लोगों के प्रति अपने विश्वास-भाव को प्रकट करने के लिए उन्होंने उस जातिगत प्रतिबन्ध को भारतीयों पर से हटा दिया जिसके कारण वे सेना में उच्च पद नहीं पा सकते थे। आगे चलकर उन्होंने यह भी घोषित किया कि वे भारत आवेंगे और वाइसराय से परामर्श करेंगे, एवं भारत के स्वराज्य की ओर बढ़ने में जो समुदाय दिलचस्पी रखते होंगे उन सबसे भी बातें करेंगे। २० अगस्त की घोषणा हो चुकी थी और नई नीति के अनुसार श्रीमती बेसेण्ट तथा उनके सहयोगी १६ सितम्बर को मुक्त कर दिये गये थे।

कांग्रेस का आवेदन पत्र

६ अक्तूबर को इलाहाबाद में महासमिति और मुस्लिम-लीग की कौंसिल की एक सम्मिलित बैठक फिर हुई। इस पर कसरत राय यह ठहरी कि सत्याग्रह न किया जाय। श्रीमती बेसेण्ट स्वयं सत्याग्रह करने के विरुद्ध थीं। इससे एक प्रभावकारी कार्यक्रम एकदम रुक गया, जिससे नवयुवकों में बड़ी निराशा फैली। सम्मिलित बैठक ने सत्याग्रह करने की बात तय करने के स्थान पर वाइसराय तथा भारत-मंत्री के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने की बात तय की। इसके अतिरिक्त, इस शिष्ट-मण्डल के हाथ कांग्रेस-लीग-योजना के समर्थन में एक युक्ति-संगत आवेदन-पत्र भी भेजने की बात तय हुई। इस कार्य के लिए १२ व्यक्तियों की एक कमिटी नियुक्त की गई। श्री० सी० वाई० चिन्तामणि उसके मंत्री थे। इसका काम था एक आवेदन-पत्र और एक अभिनन्दन-पत्र तैयार करना। शिष्ट-मण्डल आवेदन-पत्र के साथ लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० मांटेगु से नवम्बर १९१७ में मिला। वह आवेदन पत्र इस प्रकार है—

"भारत-सरकार की रजामन्दी से सम्राट्-सरकार की ओर से जो अधिकार-पूर्ण घोषणा की गई है उसके लिए भारतवासी बड़े ही कृतज्ञ हैं; पर इसके साथ ही यदि उनके आवेदन-पत्र के अनुसार कार्रवाई की जाय तो उन्हें और भी अधिक सन्तोष होगा।

"हर समय और हर परिस्थिति में केवल अधीन-देश की अवस्था वहां के लोगों के स्वाभिमान को ठेस पहुंचानेवाली होती है। खासकर उन लोगों को, जो कांग्रेस के शब्दों में एक प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी हैं और जिन्होंने शासन तथा व्यवस्था करने की अच्छी योग्यता का काफी परिचय दिया

है। जबकि एक ओर अवस्था यह है तो दूसरी ओर गत दो वर्षों से एक ऐसी जरूरी आवश्यकता पैदा हो गई है जिसके कारण यहां के निवासी इस बात पर बल-पूर्वक जोर दे रहे हैं कि उनके देश को साम्राज्य के अन्य उपनिवेशों की श्रेणी में रख दिया जाय। यह तो अब स्पष्ट हो गया है कि अन्य उपनिवेशों की भविष्य में साम्राज्य-सम्बन्धी मामलों में एक जोरदार आवाज होगी। अब वे बाल्यावस्था में नहीं हैं; बल्कि उन्हें ब्रिटेन के साथ बराबरी का समझा जाता है। अब पांच स्वतंत्र राष्ट्र ब्रिटेन के साथ मिलकर एक समूह बन गये हैं। अगर, जैसा कि कुछ लेखकों की राय है, एक पार्लमेण्ट और (या) साम्राज्य की एक कौंसिल बनाई जाय और उसमें संयुक्तराज्य तथा उपनिवेशों के प्रतिनिधि हों और अगर सारे साम्राज्य के मामलों को ये ही या यह कौंसिल तय किया करें, और मौजूदा कामन-सभा और लार्ड-सभा केवल ब्रिटेन के मामलों को ही तय किया करें तो यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष पर ब्रिटेन के साथ-साथ उपनिवेशों का भी शासन हो जायगा। अगर साम्राज्य की नीति में कोई ऐसा परिवर्तन होने जा रहा हो तो भारतवासी उसका बड़ी दृढ़ता से विरोध करेंगे। और उपनिवेशों का रुख भारत और भारतीयों की ओर ऐसा हो जिसमें अपवाद की कोई गुंजाइश ही न हो, तो भी भारतवासी अपनी दासता की हद को बढ़ाने के लिए कभी तैयार न होंगे। भारतवासियों के दृष्टि-कोण से अनिवार्य शर्त केवल यही हो सकती है कि यदि साम्राज्य का नये सिरे से संगठन हो तो उसमें भारत का भी शाही कौंसिल और (या) पार्लमेण्ट में प्रतिनिधित्व अवश्य हो। चुने हुए सदस्यों की वही कसौटी रक्खी जाय जो उपनिवेशों पर लागू हो।

"यदि किसी भी ऐसी कौंसिल या पार्लमेण्ट का निर्माण न हो, और जो कुछ हो वह इतना हो कि सालाना शाही-परिषद् ही हुआ करे और उसके सदस्यों को ब्रिटिश मंत्रि-मंडल की विशेष बैठकों के लिए ही आमंत्रित किया जाया करे, तो उसमें भी भारतीय प्रतिनिधियों का होना आवश्यक होगा, और वह चुने हुए प्रतिनिधियों द्वारा ही। इस वर्ष के आरम्भ में जो शाही-युद्ध परिषद् हुई उसमें महाराजा बीकानेर, सर जेम्स मेस्टन और सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह भारत की ओर से प्रतिनिधि बनाकर भेजे गये थे। युद्ध के मंत्रि-मण्डल में भी इन लोगों को भारत-सरकार के प्रतिनिधि होकर सम्मिलित होने का अवसर दिया गया था। इसपर हमें बड़ी खुशी है और इसको हम आगे बढ़ाया हुआ कदम मानते हैं। न हम लोग शाही-परिषद् द्वारा पास किये गये उस प्रस्ताव के मूल्य को ही भूल सकते हैं जिसके द्वारा शाही-युद्ध-परिषद् में भारत को आगे प्रतिनिधित्व देना तय हुआ था। हमारी प्रार्थना तो केवल यही है कि जबतक भारत-सरकार एक मातहत-सरकार है, वह न तो प्रातिनिधिक ही है और न जनता के प्रति उत्तरदायी ही, तबतक उपनिवेशों के साथ उसकी समानता नहीं मानी जा सकती, और इससे भारतवासियों को एक हद तक ही संतोष प्राप्त होगा; क्योंकि यह प्रतिनिधित्व भारत-सरकार को दिया गया है न कि भारतवासियों को। इसमें तो कोई शक नहीं कि शाही-परिषद् के लिए उनकी ओर से सरकार जिस किसीको चुने वे अपनी शक्तिभर अपने देश के प्रति अपने कर्तव्य का पालन अवश्य करेंगे; लेकिन निस्सन्देह उनके साथ वह स्वाभाविक असुविधा अवश्य लगी रहेगी जो कि जनता के प्रति उत्तरदायी न होनेवाले के साथ होती है। यह उनके मार्ग में एक भारी कठिनाई रहेगी।

"सर्व-साधारण के मतानुसार पिछली परिषद् में महाराजा बीकानेर, सर जेम्स मेस्टन और सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह ने अपने कर्तव्य का बड़ी खूबी से पालन किया। लेकिन प्रवासी भारतवासियों के सम्बन्ध में उन्होंने जो आवेदन-पत्र पेश किया वह भारतीयों के दृष्टि-बिन्दु और उनकी मांगों के साथ पूरा न्याय नहीं करता था। एक चुने हुए प्रतिनिधि को, जो कि जनता के प्रति उत्तरदायी होता, अपने मतदाताओं के सामने ऐसी अवस्था में लेने के देने पड़ गये होते।

"हमारी यह मांग नहीं है कि चुनाव सीधा जनता किया करे। यह भी नहीं कि बहुत अधिक मतदाताओं द्वारा हुआ करे। इतना काफी होगा, यदि बड़ी और प्रान्तीय कौंसिलों के चुने हुए सदस्यों को प्रतिनिधि या प्रतिनिधियों के चुनने का अधिकार दे दिया जाय। आशा है सरकार इसे स्वीकार कर लेगी।"

कांग्रेसी हलचलें

इस बीच में कांग्रेसवाले खामोश नहीं बैठे थे। वे कांग्रेस-लीग-योजना के लिए लोगों के हस्ताक्षर करा रहे थे, जैसा कि पहले बताया जा चुका है। अपनी नजरबन्दी से छुटकारा पाने के बाद श्रीमती बेसेण्ट ने वाइसराय से कितनी ही बार मिलने के लिए समय मांगा, लेकिन उन्हें नहीं दिया गया। लॉर्ड चेम्सफोर्ड श्रीमती बेसेण्ट को दूर ही रखना चाहते थे। मि० माण्टेगु ने भी उनके नेतृत्व के लिए कोई आदर-भाव प्रदर्शित नहीं किया। अपने छुटकारे के बाद ही उन्होंने सत्याग्रह से अपनी अलहदगी दिखलाई। इसका कारण आजतक अगम्य ही रहा है।

१९१७ के अन्त के महीनों में भारत के राजनैतिक वातावरण में माण्ट-फोर्ड ही माण्ट-फोर्ड हो रहे थे। मि० माण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड का सर्वत्र दौरा हो रहा था। इनसे विभिन्न स्थानों पर शिष्ट-मण्डल मिलते थे और ये लोगों से हर जगह मिलते थे। श्रीमती बेसेण्ट ने १९१७ के अन्त में, मि० माण्टेगु से भेंट कर लेने के पश्चात्, अपने कुछ मित्रों से कहा था,—"हमें मि० माण्टेगु का साथ देना चाहिए।" नरम-दल वालों ने श्रीमती बेसेण्ट के इन शब्दों की दुहाई प्रत्येक स्थान पर दी। जाहिर है कि मि० माण्टेगु का उद्देश्य यह था कि वे भारत के परस्पर-विरोधी हित रखनेवाले दलों से परामर्श करें और पार्लमेण्ट में पेश करने के लिए एक मसविदा तैयार करें। इनमें से पहला काम तो लखनऊ में १९१६ में हिन्दू-मुसलिम समझौते ने पहले कर दिया था और उसे मि० मान्टेगु ने ज्यों-का-त्यों मान भी लिया था। लेकिन दूसरी बात के सम्बन्ध में जो असलियत है वह तो बहुत से लोगों के लिए एक बिलकुल ही नवीन बात होगी। वह यह कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड की यह सारी योजना विस्तृत-रूप से मार्च १९१६ में ही तैयार की गई थी। बात यह थी कि लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वाइसराय नियुक्त करने का जब हुक्म पहुंचा उस समय वे भारत की टेरीटोरियल फौज में मेजर थे। मार्च १९१६ में जब वे इंग्लैण्ड पहुंचे तो उन्हें तैयार की हुई यह सारी योजना दिखाई गई जिसके साथ कि उनका नाम जोड़ा जाने वाला था। इसका पता हमें १९२४ में जाकर लगा। इसमें सन्देह नहीं कि मि० माण्टेगु श्रीमती बेसेन्ट, लोकमान्य तिलक और गांधीजी जैसे व्यक्तियों से भी मिले और उनकी बातें सुनीं। लेकिन असलियत में मि० माण्टेगु ने अपनी भारत-यात्रा में जो कुछ किया वह तो यह छांट लेना था कि भावी-शासन में मंत्री, कार्यकारिणी के सदस्य और एडवोकेट जनरल कौन-कौन बनाने लायक हैं। वे उन आदमियों के सम्बन्ध में निश्चित होना चाहते थे जो उनकी योजना को कार्य-रूप में परिणत करते। इसकी प्रतिध्वनि उस सामूहिक ध्वनि के पीछे सुनाई पड़ती थी जिसे हम सुनते थे। वह यह कि "हमें मि०माण्टेगु का साथ देना चाहिए।" मि०माण्टेगु की भारत-यात्रा के सम्बन्ध में जो सबसे दुःखद घटना है, वह यह कि अपनी रिहाई के बाद हर प्रकार के सहयोग के लिए तैयार हो जाने पर भी मि० माण्टेगु ने श्रीमती बेसेण्ट को दाद न दी।

१९१७ के इस काल में जब श्रीमती बेसेन्ट का होमरूल-आन्दोलन उन्नति के शिखर पर पहुंच गया था, गांधीजी अपने कुछ चुने हुए सहयोगियों के साथ—जैसे राजेन्द्र बाबू, बृजकिशोर बाबू, गोरख बाबू, अनुग्रह बाबू (बिहार से) और अध्यापक कृपलानी तथा भारत-सेवक-समिति के डा० देव-को लेकर—बिहार में निलहे गोरों के प्रति वहां के किसानों की जो शिकायतें थीं, उनकी जांच कर रहे

थे। वे पूरे ६ मास तक वे स्वयं आन्दोलन से कतई अलग रहे और अपने सब साथियों को भी अलग रक्खा।

गांधीजी ने, जो अपनी जादू-भरी शक्ति का परिचय चम्पारन में दे चुके थे; एक बहुतही सादा किन्तु कारगर प्रस्ताव रक्खा कि कांग्रेस-लीग योजना देश की भाषाओं में अनुवादित करा दी जाय; लोगों को उसे समझाया जाय और उसमें शासन-सुधारों की जो योजना है, उसके पक्ष में लोगों के हस्ताक्षर कराये जायं। इस प्रस्ताव को ज्योंही कार्य रूप में लाया गया त्योंही देश ने कांग्रेस की शासन-सुधार-योजना का स्वागत किया। यहां तक कि १९१७ के अंत तक दस लाख से ऊपर लोगों ने हस्ताक्षर कर दिये। यह देश-व्यापी संगठन, कांग्रेस की ओर से सम्भवतः पहला ही प्रयत्न था। लेकिन स्व-शासन के सम्बन्ध में देश को संगठित करने का इससे पहले भी एक प्रयत्न किया गया था और उसके लिए देश तथा इंग्लैंड में धन भी एकत्र किया गया था। १९१५ की बम्बई-कांग्रेस के अधिवेशन में, जिसके सभापति सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह थे; महासमिति ने यह तय किया था कि कांग्रेस के लिए एक स्थायी-कोष एकत्र किया जाय। इस कार्य के लिए एक कमिटी भी बनाई गई थी, परन्तु इस दिशा में कोई सक्रिय-कार्रवाही नहीं हुई। १८८९ में इस दिशा में एक बार कोशिश और हुई थी। ५० हजार रुपया इसलिए मंजूर किया गया था कि इतनी रकम एकत्र करके कांग्रेस के स्थायी-कोष का कार्य प्रारम्भ किया जाय। इस रकम में से केवल ५ हजार रुपया एकत्र हुआ और वह ओरियण्टल बैंक में जमा कर दिया गया था। १८९० वाली बम्बई की उथल-पुथल में इस बैंक का दिवाला निकल गया और यह छोटी-सी रकम भी डूब गई।

१९१७ की कांग्रेस के सम्बन्ध में कुछ लिखने से पहले हमें एक और आवश्यक बात बतानी है। इस वर्ष कांग्रेस कलकत्ते में होने वाली थी। कलकत्ता नरम-दल वालों का एक गढ़ था। उनमें और नये होमरूल वालों तथा राष्ट्रीय दल वालों में तीव्र मत-भेद था। राष्ट्रीय दल वालों तथा नये होमरूल वालों ने भी कलकत्ते को ही अपना सुदृढ़ गढ़ बना लिया था। पुराने दल के नेता थे राय बैकुण्ठ नाथ सेन, अम्बिकाचरण मजुमदार, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी तथा भूपेन्द्रनाथ वसु। चित्तरंजनदास भी कांग्रेस-कार्य में दिलचस्पी लेने लगे थे। उन्होंने नये दल के साथ अपना भाग्य जोड़ दिया था जिनमें बी० के० लाहिड़ी, आई० बी० सेन और जितेन्द्रनाथ बनर्जी प्रमुख थे।

यद्यपि अधिकांश प्रन्तीय-कांग्रेस कमिटियों ने श्रीमती बेसेण्ट को आगामी कांग्रेस का अध्यक्ष बनाने की सिफारिश की थी, परन्तु स्वागत-समितिमें इस बात पर तीव्र मत-भेद था। लेकिन तत्कालीन विधान के अनुसार उन दिनों प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों के अधिकांश मत को ही मानना पड़ता था। स्वागत-समिति की ३० अगस्त १९१७ की मीटिंग तो इस विषय पर विकट मत-भेद और विरोध का एक दृश्य बन गई थी। फजलुल हक, लाहिड़ी और जितेन्द्रलाल बनर्जी (तीनों अवैतनिक सहकारी मन्त्री) का तो यह कहना था, कि अधिकांश प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियों की जो सिफारिश है, उसे स्वागत-समिति ने भारी बहुमत से स्वीकार कर लिया है। मीटिंग के प्रारम्भ में ही रायबहादुर बैकुण्ठनाथ सेन तथा ३० अन्य व्यक्ति, कुछ कटुता पैदा हो जाने के कारण, सभा से उठकर चले गये थे। मंत्रियों ने महासमिति को एक वक्तव्य लिखकर भेजा कि श्रीमती बेसेण्ट सभानेत्री चुन ली गई। इधर रायबहादुर साहब ने महासमिति को एक तार दिया जिसमें लिखा था—"स्वागत-समिति अगस्त मास में सभापति का चुनाव न कर सकी। स्वागत-समिति के अध्यक्ष की हैसियत से मामला आपके सुपुर्द करता हूं।" संक्षेप में, श्रीमती बेसेण्ट महासमिति के द्वारा आसानी से सभानेत्री निर्वाचित हो गई। वे अभी तक सरकार की अत्यधिक कोप-भाजन बनी हुई थीं।

१९१७ की कांग्रेस

श्रीमती बेसेण्ट का कांग्रेस के सभानेत्री-पद से दिया गया भाषण, भारत के स्वशासन पर, परिश्रम-पूर्वक लिखा गया एक सुन्दर निबन्ध है। सेना और भारत की व्यापारिक समस्या पर विस्तार के साथ उसमें पूर्णतः प्रकाश डाला गया है। उसमें जानकारी प्राप्त करने के इच्छुक-विद्यार्थियों के लिए बहुत-सी सामग्री है। उन्होंने वस्तुतः १९१८ में पेश करने के लिए एक ऐसे बिल की मांग पेश की थी जिसके अनुसार "भारत को ब्रिटिश उपनिवेशों के समान स्वराज्य दे दिया जाय। वह भी १९२३ तक, या अधिक से-अधिक १९२८ तक। बीच के पांच या दस वर्ष अंग्रेजों के हाथों से सरकार के भारतीय हाथों में आने में लगें। और अंग्रेजों से भारत का वही सम्बन्ध बना रहे जो अन्य उपनिवेशों के साथ है।" श्रीमती बेसेण्ट के सभानेतृत्व में कांग्रेस तीन दिन का कोई मेला होकर नहीं रह गया था। उसमें रोजमर्रा जिम्मेदारी के साथ काम करने की बात थी। इस दृष्टि से, उस समय तक, श्रीमती बेसेण्ट ही कांग्रेस की सर्वप्रथम सभानेत्री कही जा सकती हैं जिन्होंने साल भर तक अपने पद की जिम्मेदारी निबाहने का दावा किया था। यह दावा कोई नया नहीं था, परन्तु कांग्रेस के अबतक के इतिहास में किसी सभापति ने उस पर अमल किया नहीं था। कलकत्ते के अधिवेशन में, ४,९६७ प्रतिनिधि और ,००० दर्शक उपस्थित हुए थे।

१९१७की कांग्रेस के इस कलकत्ते वाले अधिवेशन में जो प्रस्ताव पास हुए वे भी कुछ को छोड़कर पहले-के-से सांचे में ढले हुए ही थे। वृद्ध पितामह दादाभाई नौरोजी और कलकत्ते के ए० रसूल की मृत्युपर शोक-प्रस्ताव और सम्राट् के प्रति भारत की राजभक्ति के प्रस्ताव पास होने के बाद मि० माण्टेगु के स्वागत का प्रस्ताव पास हुआ। मौलाना मुहम्मदअली और शौकतअली के, जो कि अक्तूबर १९१४ से नजरबन्द थे, रिहा कर देने का भी प्रस्ताव पास हुआ। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा, भारतीयों को उचित सैनिक शिक्षा देने की आवश्यकता पर सदा की भांति जोर देते हुए इस विषय में उनके साथ न्याय किये जाने की मांग की और जातिगत भेद-भाव मिटाकर भारतीयों को सेना में कमीशन देने की जो सुविधा सरकार से मिल गई थी उस पर सन्तोष प्रकट करते हुए ९ भारतीयों को सेना में कमीशन देने पर प्रसन्नता प्रकट की और इस बात की आशा प्रकट की कि अधिक संख्या में भारतीयों को कमीशन देने की शीघ्र ही व्यवस्था की जायगी। इस बात पर जोर दिया गया कि उनकी तनख्वाह आदि में वृद्धि की जाय। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा (१) १९१० के प्रेस-एक्ट द्वारा शासकों को बहुत विस्तृत और निरंकुश-सत्ता दिये जाने, (२) आर्म्स-एक्ट, (३) उपनिवेशों में भारतीयों के साथ किये जाने वाले दुर्व्यवहार और उनकी असुविधाओं के प्रति अपने विरोध को दोहराया। कांग्रेस ने कुली प्रथा को पूर्ण रूप से उठा देने के लिए मांग पेश की। एक पार्लमेण्टरी कमीशन की नियुक्ति पर जोर दिया गया जो कि लिखने, व्याख्यान देने, सभा करने आदि की स्वतन्त्रता के दमन के लिए विशेष प्रकार के कानूनों तथा इसी प्रकार के कार्यों के दमन के लिए भारत-रक्षा-कानून के प्रयोग के सम्बन्ध में जांच करे। १० दिसम्बर को सरकार ने रौलट कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की थी। कांग्रेस ने इसकी एक प्रस्ताव-द्वारा इसलिए निन्दा की कि इस कमीशन का उद्देश्य दमन के लिए नये कानूनों की व्यवस्था करना था, लोगों के कष्ट दूर करना नहीं। कांग्रेस की राय में इससे अधिकारियों को बंगाल के क्रांतिकारी कहे जानेवालों के दमन के लिए और भी अधिक शक्ति मिल जाती थी। इसी प्रस्ताव में कांग्रेस ने १८१८ के रेग्यूलेशन ३ और भारत-रक्षा कानून के विस्तृत तौर पर किये गये प्रयोग पर चिन्ता और भय प्रकट किया और इन कानूनों के आंख मींचकर विस्तृत प्रयोग किये जाने के कारण जो असन्तोष फैला हुआ था उसको मद्देनजर रखते हुए सारे राजनैतिक कैदियों को मुक्त कर

देने की प्रार्थना की। एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने, अर्जुनलाल जी सेठी के प्राण बचाने के लिए, जो कि धार्मिक-कारणों से बेलूर-जेल में आमरण अनशन कर रहे थे, सरकार से बीच में पड़कर हस्तक्षेप करने की प्रार्थना की। दूसरे प्रस्ताव-द्वारा, प्रत्येक प्रांत में, भारतीयों के प्रबन्ध में, भारतीय-बालचर-मण्डल स्थापित करने की सिफारिश की। मुख्य प्रस्ताव स्वराज्य के सम्बन्ध में था, जो इस प्रकार है—

"सम्राट् के भारत-मन्त्री ने साम्राज्य-सरकार की ओर से यह घोषित किया है कि उसका उद्देश्य भारत में उत्तरदायी शासन स्थापित करना है—इसपर यह कांग्रेस कृतज्ञता-पूर्वक सन्तोष प्रकट करती है।

"यह कांग्रेस इस बात की आवश्यकता पर जोर देती है कि भारतवर्ष में स्व-शासन की स्थापना का विधान करने वाला एक पार्लमेण्टरी कानून बने और उसमें बताये हुए समय तक पूरा स्वराज्य मिल जाय।

"इस कांग्रेस की यह दृढ़ राय है कि शासन-सुधार की कांग्रेस-लीग-योजना कानून के द्वारा सुधार की पहली किस्त के रूप में प्रारम्भ की जानी चाहिए।"

एक नया प्रस्ताव जो कलकत्ता-कांग्रेस में पास हुआ वह था आन्ध्र-प्रान्त को एक पृथक् कांग्रेस-प्रांत बनाने के सम्बन्ध में। इस विषय में इतना बता देना जरूरी है कि १९१३ से लेकर १९१५ की कांग्रेस तक आन्ध्र में इस सम्बन्ध में एक राष्ट्रीय या यों कहें कि उप-राष्ट्रीय आन्दोलन बराबर चलता रहा था। आन्दोलन की बुनियाद यह थी कि आन्ध्र वाले कहते थे कि भाषा के लिहाज से प्रान्तों का पुनर्निर्माण किया जाय। वास्तव में इसका बीज तो तब से बोया गया जब से कि १८९४ में श्री महेशनारायण ने बंगाल से बिहार को पृथक् कराने का प्रयत्न किया था। १९०८ में कांग्रेस ने बिहार को एक पृथक् प्रान्त बना दिया। २५ अगस्त १९११ को प्रान्तीय स्वाधीनता की योजना के सम्बन्ध में भारत-सरकार का जो खरीता विलायत गया था, उसमें भी यह सिद्धांत मान्य किया गया था और उसी का यह फल था कि बिहार बंगाल से अलग कर दिया गया। इस सम्बन्ध में सब लोगों का दृढ़ विश्वास था कि प्रान्तीय स्वराज्य को सफल बनाने के लिए, शासन और शिक्षा दोनों का माध्यम उस प्रान्त की भाषा हो। यह निश्चित रूप से माना जाता था, कि स्थानीय-शासन के सम्बंध में ब्रिटिश-शासन को जो असफलता मिली है उसका कारण यह है कि ब्रिटिश-भारत में प्रान्तों का विभाजन न तो बुद्धिपूर्वक किया गया है, न जातियों के निवास को ध्यान में रखकर किया गया है; बल्कि जैसे-जैसे इलाका हाथ आता गया वैसे-वैसे प्रांत बनाते चले गये। १९१५ में कांग्रेस इस प्रश्न पर विचार करने के लिए तैयार न थी। लेकिन १९१६ की आन्ध्र-प्रान्तीय-परिषद् ने इस प्रश्न पर बहुत जोर दिया, और ८ अप्रैल १९१७ को महासमिति ने, जिसके पास निर्णय के लिए १९१६ की लखनऊ-कांग्रेस ने इस विषय को भेज दिया था, मदरास तथा बम्बई की प्रांतीय कांग्रेस कमिटियों से पूर्ण परामर्श करके इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया और निश्चय किया कि "मदरास प्रान्त के तेलगू भाषा बोलने वाले जिलों का एक पृथक् प्रान्त बना दिया जाय।" इसके बाद सिन्ध और उसके बाद करनाटक का भी नम्बर आया। इस विषय पर १९१७ की कलकत्ता-कांग्रेस की विषय-समिति में बड़ी गरमागरम बहस हुई। गांधीजी की भी यह राय थी कि शासन-सुधार चालू होजाने तक इस मामले में ठहरे रहें। लेकिन लोकमान्य तिलक ने इस बात को अनुभव किया कि वास्तविक प्रांतीय स्वाधीनता के लिए भाषा के अनुसार प्रान्तों का निर्माण करना अत्यन्त आवश्यक है। कलकत्ता-कांग्रेस की सभा-नेत्री श्रीमती बेसेण्ट ने भी इसका खूब विरोध किया और दक्षिण के तामिल-भाषा-भाषी मित्रों ने भी बहुत जोर से मुखालिफत की। इस विषय पर बहस करते-करते दो घण्टे बीत गये। अन्त में रात के १०½ बजे आन्ध्र का पृथक् प्रान्त बनाना तय हो गया। ६ अक्तूबर १९१७ की महासमिति ने सिन्ध

को भी पृथक् प्रान्त मान लिया। उस समय जो सिद्धान्त स्वीकार किया था, नागपुर-कांग्रेस के बाद, प्रान्तों के पुनर्निर्माण में, उसी के अनुसार काम किया गया। इसके फल-स्वरूप हमारे पास अब २१ प्रांत हैं जब कि ब्रिटिश-सरकार के केवल ९ प्रांत ही हैं।

कलकत्ते में श्रीमती बेसेण्ट, श्री सी० पी० रामस्वामी ऐय्यर को सेक्रेटरी बनाने की बड़ी इच्छुक थीं। इसलिए कांग्रेस-विधान में संशोधन करके वे तीन मंत्रियों की नियुक्ति पर जोर देती थीं। यह बात स्वीकार कर ली गई और श्री सुब्बाराव पन्तुलु ने, जो कि मंत्री चुने जा चुके थे, तुरन्त ही अपना त्यागपत्र दे दिया। श्रीमती बेसेण्ट के सभापतित्व में, कलकत्ता-कांग्रेस में, होमरूल-लीग और कांग्रेस एक-दूसरे के बहुत ही निकट आ गईं। कलकत्ता की कांग्रेस इसलिए स्मरणीय है कि उसमें पहली बार राष्ट्रीय झण्डे का सवाल बाजाब्ता उठाया गया था। वास्तव में होमरूल-लीग तो पहले ही तिरंगे झण्डे को अपनाकर उसे लोकप्रिय बना चुकी थी। इस कार्य के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द यह काम किया गया कि वह झण्डे का नमूना निश्चित करे। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर भी उस कमिटी में थे। लेकिन इस कमिटी की बैठक कभी नहीं हुई। अन्त में होमरूल का झण्डा ही कांग्रेस का झण्डा बन गया। बाद में उसमें चरखा और जोड़ दिया गया था। वे १९३१ तक रहा, फिर झण्डा-कमिटी ने उसमें लाल रंग की जगह केसरिया रंग कर दिया।

४

मारटेगु-चेम्सफोर्ड-योजना—१९१८

१९१७ की कांग्रेस के अधिवेशन के बाद तुरन्त ही ३० दिसम्बर को महासमिति की पहली बैठक में, कांग्रेस के लिए स्थायी-कोष जमा करने के प्रश्न पर विचार किया गया, और प्रान्तीय कांग्रेस कमिटियों से अनुरोध किया गया कि वे भारत और इंग्लैण्ड में शिक्षा और प्रचार-कार्य आरम्भ करने के लिए एक कार्य-समिति बना दें। इसके बाद के महीने अनवरत रूप से कार्य करने में ही व्यतीत हुए। विशेषकर मदरास में तो लाखों नोटिस छपवा कर वितरण कराये गये, जिनमें कांग्रेस लीग-योजना पर प्रकाश डाला गया था। जिस समय मि० माण्टेगु मदरास पहुंचे उस समय उन्हें इस योजना के समर्थन में, केवल उसी प्रान्त से, ९ लाख व्यक्तियों के हस्ताक्षर कराके दिये गये।

महासमिति की दूसरी बैठक दिल्ली में १३ फरवरी १९१८ को हुई। उसमें सर विलियम वेडरबर्न की मृत्युपर शोक-प्रस्ताव पास करने के पश्चात् वाइसराय के पास एक शिष्ट-मण्डल भेजने का प्रस्ताव पास हुआ, जो उनसे जाकर यह प्रार्थना करे कि लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के दिल्ली और पंजाब में प्रवेश करने पर जो प्रतिबन्ध लगा दिया है, उसे मंसूख कर दें। शिष्ट मंडल वाइसराय से मिला, लेकिन निरर्थक। लॉर्ड चेम्सफोर्ड और मि० माण्टेगु शासन-सुधारों सम्बन्धी अपनी रिपोर्ट निकालने ही वाले थे। इसलिए महासमिति ने यह निश्चय किया था कि रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही लखनऊ या इलाहाबाद में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाया जाय। उसने इंग्लैण्ड को एक शिष्ट-मंडल भेजना भी तय किया था।

३ मई १९१८ को महासमिति की तीसरी बैठक हुई। उसमें सीलोन (लंका) और जिब्राल्टर से दोनों होमरूल-लीग के शिष्ट-मण्डलों को, जो इंग्लैण्ड जा रहे थे, वापस लौटा देने पर सरकार का खूब विरोध किया गया। कमिटी ने इस बात पर जोर दिया कि यह अधिकार-पूर्ण घोषणा कर दी जाय कि लड़ाई खतम होने पर भारत को उत्तरदायी-शासन दिया जायगा। इससे कम के लिए हिन्दुस्तानी नौजवान कभी युद्ध की सफलता के लिए काफी तादाद में आगे नहीं बढ़ेंगे।

१९१८ के प्रथम पांच मास में श्रीमती बेसेण्ट ने अथक परिश्रम किया। श्रीमती मारगेरेट कजिन्स और श्रीमती डोरोथी जिनराजदास ने श्रीमती बेसेण्ट को पत्र लिखकर, कांग्रेस-लीग-योजना में, स्त्रियों को मताधिकार देने के लिए अनुरोध किया था। इंग्लैण्ड से मि० जोनस्कर ने उन्हें लिखा था कि कांग्रेस १९१८ में होने वाली मजदूर-परिषद् को निमन्त्रण दे कि वह अपने भाईचारे के नाते १९१८ की कांग्रेस में अपने प्रतिनिधि भेजे। महासमिति ने ऐसा ही किया था। यह विचार लोगों को तथा संस्थाओं को पसन्द आया और फैलने लगा और यह प्रजासत्तात्मक संस्थाओं के लिए

उपयुक्त भी था। "दोनों होमरूल-लीगों ने, दूसरे मास में ही, मि० बैपटिस्टा को, भाईचारे के नाते, अपना प्रतिनिधि बनाकर मजदूर-परिषद् में भेजा।" श्रीमती बेसेण्ट ने अपने सभानेत्री-पद से दिये गये भाषण में कहा, "और मेजर ग्राहम पोल उनकी तरफ से हमारे यहां आ रहे हैं।" वे ब्रिटेन और भारत में सम्बन्ध बनाये रखने की दृढ़ पक्षपाती थीं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनकी कल्पना उन दिनों में होमरूल से, जैसा कि उसका अर्थ उन दिनों लिया जाता था, आगे नहीं बढ़ सकीं, यद्यपि १९२६ के उपनिवेशों के दरजे से उस समय के उपनिवेशों का दरजा कम था और निश्चित-रूप से उसकी तुलना आज के उपनिवेशों से तो कदापि नहीं की जा सकती। कुछ भी हो, श्रीमती बेसेंट शीघ्र ही इस बात को महसूस करने लगीं कि उनकी विचार-धारा का मेल न तो सरकार के साथ ही खाता है और न जनता के साथ ही। सरकार उनकी उग्रता को पसन्द नहीं करती थी और जनता उनके पिछड़ेपन को। बम्बई की विशेष कांग्रेस के समय (सितम्बर १९१८) उनके बहुतेरे अनुयायी थे और उनका बहुत बड़ा प्रभाव था, लेकिन दिल्ली-कांग्रेस में (दिसम्बर १९१८) वे बहुत पिछड़ गई थीं।

भारत-रक्षा-क़ानून का दौर देश में सर्वत्र बड़े जोर के साथ चल रहा था। १९१७ में ही लोकमान्य तिलक और विपिनचन्द्र पाल के खिलाफ दिल्ली और पंजाब से देश-निकाले की आज्ञा निकल चुकी थी। लेकिन वह लोक-प्रिय आन्दोलन दमन के इन चक्रों से भी नहीं दबाया जा सका। जब बम्बई के गवर्नर ने महायुद्ध के सम्बन्ध में नेताओं की एक सभा की तो लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य के प्रश्न को छेड़ा; लेकिन उन्हें दो मिनट से अधिक नहीं बोलने दिया गया। जब वाइसराय ने दिल्ली में एक सभा की तो गांधी जी उसमें उपस्थित थे, यद्यपि पहले उन्होंने उसमें सम्मिलित होने से इन्कार कर दिया था—क्योंकि एक तो लोकमान्य और श्रीमती बेसेंट को उसमें आमन्त्रित नहीं किया था, और दूसरे ब्रिटेन गुप्त-सन्धि करके कुस्तुन्तुनियां रूस को देने जा रहा था। वे इस विषय में लॉर्ड चेम्सफोर्ड से मिले भी थे। उन्होंने गांधी जी को विश्वास दिलाया कि यह समाचार स्वार्थी लोगों का (रूस का) फैलाया हुआ है। गांधी जी से उन्होंने कहा कि फिर ऐसे समय में जबकि युद्ध चल रहा हो, ऐसा प्रश्न न तो उठ ही सकता है और न उस पर विचार ही किया जा सकता है। इस बातचीत का फल यह हुआ कि गांधी जी युद्ध-सभा में सम्मिलित होने के लिए राजी हो गये। उन्होंने लोकमान्य को दिल्ली आने के लिए तार दिया, यद्यपि उनके लिए कोई निमंत्रण नहीं था। लेकिन दिल्ली तो वह स्थान था जहां से लोकमान्य के लिए देश-निकाले की आज्ञा हो चुकी थी। उन्होंने कहा कि जब तक यह आज्ञा मंसूख न हो जाय तबतक मैं दिल्ली नहीं आ सकता। लेकिन ऐसा करने से तो सरकार की शान जो बिगड़ जाती!

अगस्त १९१८ में लोकमान्य को मजिस्ट्रेट की पहले से आज्ञा प्राप्त किये बिना व्याख्यान देने की मनाही का नोटिस मिला। एक सप्ताह पूर्व लोकमान्य युद्ध के लिए रंगरूट भर्ती करने में लगे हुए थे और अपनी सदिच्छा के प्रमाण-स्वरूप उन्होंने ५० हजार का एक चैक गांधी जी के पास भेज कर आश्वासन दिया था कि यदि गांधी जी सरकार से ऐसा वादा करा लें कि भारतीयों को सेना में कमीशन मिलने लगेगा तो वे महाराष्ट्र से ५ हजार सिपाही देंगे। गांधी जी का मत यह था कि सहायता सौदे के रूप में नहीं दी जानी चाहिए। अतः उन्होंने लोकमान्य का चैक लौटा दिया था। १९१७-१८ में कांग्रेस लोकमान्य तिलक से सशंक रहती थी। नौकरशाही तो निश्चित-रूप से उनके पीछे पड़ी ही हुई थी। अकेली श्रीमती बेसेंट ही उनका साथ दे रही थीं।

जून १९१८ में मांटेगु-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट प्रकाशित हुई। साहित्यिक-दृष्टि से यह ऊंचे दरजे की

चीज थी। यह ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा तैयार किये गये राजनैतिक लेखों के समान, भारत को स्व-शासन देने के सम्बन्ध में एक निष्पक्ष बयान था। उसमें सुधारों के मार्ग की रुकावटों का बड़ी स्पष्टता के साथ वर्णन किया गया था और फिर भी जोर दिया गया था कि सुधार अवश्य मिलने चाहिए। रिपोर्ट के पक्ष में एक और भी बात थी। देश की दो महान् संस्थाओं ने मिलकर जिस योजना को तैयार किया था उसमें अपरिवर्तनीय कार्यकारिणी की तजवीज थी। परन्तु उसमें उत्तरदायी शासन की एक बड़ी ही आकर्षक योजना थी, जिसमें मन्त्रि-मंडल बदला जा सकता था। मंत्रिमण्डल की जिम्मेदारी सामूहिक थी, और वह कौंसिल के मतों पर निर्भर करती थी। यह ठीक ब्रिटिश नमूने के स्वराज्य से मिलती हुई थी। भारतवर्ष के लोगों को और चाहिये ही क्या था? इसके अनुसार, हिन्दुस्तानियों की राय में, कौंसिलें भारतीय राजनीतिज्ञों के लिए तालीमगाह न रह कर सार्वजनिक न्यायालय हो जाती थीं, जहां कि मंत्रीगण को मतदाताओं के सामने अपनी स्थिति साफ करनी पड़ती और अपने साथी सदस्यों की राय पर उनका भाग्य अवलम्बित रहता। इसलिए कितने ही भारतीय इसके भुलावे में आ गये और इसकी तारीफों के पुल बांधने लगे। पलड़ा कांग्रेस-योजना की ओर से माण्ट-फोर्ड-योजना की ओर झुक गया था। मि० मांटेगु की डायरी में हमें यह लिखा हुआ मिलता है कि श्रीमती बेसेण्ट ने इस बात का वादा किया था कि सर शंकरन् नायर जो कुछ स्वीकार कर लेंगे वह उन्हें भी मान्य होगा। और सर शंकरन् नायर ने इसे स्वीकार कर लिया था। श्री० सी० पी० रामस्वामी ऐयर के सम्बन्ध में मि० मांटेगु कहते हैं—"मैंने स्पष्ट रूप से उनसे पूछा कि वे क्या चाहते हैं? वे शास्त्री जी की चार कसौटियां मानते हैं। मुझे भय है कि वे कभी समय-समय पर होने वाली जांच-पड़ताल को पसन्द न करेंगे। जो कुछ वे चाहते हैं वह है एक मीयाद का मुकर्रिर हो जाना। लेकिन इस मीयाद के मानी उससे कहीं अधिक हैं जो समझे जाते हैं।" इसके बाद श्री एस० श्रीनिवास आयंगर का जिक्र है, "उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वास्तव में लोग पूरी कांग्रेस-लीग-योजना की स्वीकृति की आशा नहीं रखते हैं। फिर भी यदि लोगों को यह विश्वास हो जाय कि इसमें और विकास की गुञ्जायश है तो वे विशेष परवा न करेंगे।" उनका कहना है कि करटिस की योजना सबसे अच्छी है। श्रीनिवास आयंगर के साथ न्याय करने के लिए हमें यहां यह बता देना जरूरी है कि उस समय वे कांग्रेसी नहीं थे। इन बयानों के बाद हमें मि० मांटेगु द्वारा यह जानने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है कि सीतलवाड, चन्दावरकर और रहीमतुल्ला ने 'संरक्षणों की योजना' का समर्थन किया था।

एक ओर यह था तो दूसरी ओर राष्ट्रीय विचार के लोगों ने मि० माण्टेगु के दिमाग में अपनी मांग के विषय में किसी भी सन्देह की गुंजाइश नहीं रहने दी। "मोतीलाल नेहरू सन्तुष्ट हो जायेंगे यदि उन्हें बीस वर्ष में उत्तरदायी शासन-प्रणाली दे दी जाय।" "चितरंजनदास को पहले ही से निश्चय था कि द्वैध शासन-प्रणाली अवश्य विफल हो जायगी। वह ५ वर्ष के भीतर वास्तविक उत्तरदायी शासन चाहते थे और उसका वादा उसी समय चाहते थे।" मि० माण्टेगु ने सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को पटा लिया था।

रिपोर्ट के सम्बन्ध में लोगों का यह आम तौर पर विश्वास था कि उसका अधिकांश मजमून सर (बाद को लार्ड) जेम्स मेस्टन और मि० (बाद को सर) मैरिस ने तैयार किया था और लायनल करटिस ने इस कार्य में उनकी मदद की थी। मि० करटिस राउण्ड टेबलवालों में से थे, जिनकी कि प्रवृत्ति अध्ययन की ओर विशेष थी। वे "साम्राज्य की सेवा के लिए" अनेक देशों का भ्रमण करते रहते थे। भारतीय-शासन सुधारों के सम्बन्ध में इन्होंने एक पत्र लिखा था। वह गलती

से कहीं-का-कहीं जा पहुंचा और हिन्दुस्तानी पत्रों के हाथ में पड़ गया। वह 'बाम्बे क्रानिकल' तथा 'लीडर' में छपा भी था। पत्रकारों के इस साहसिक कार्य ने नौकरशाही की चालबाजियों का भण्डाफोड़ कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि सारा अधिकारी-जगत् राष्ट्रीय विचारवालों के विरुद्ध क्रोध से उबल पड़ा।

बात यह थी कि राउण्ड टेबल-मण्डल के मंत्री मि० फिलिप केर से मि० लायनल करटिस ने, एक खानगी पत्र में, इस बात की सम्भावना पर चर्चा की थी कि आया भारत को उसके भीतर तथा बाहर सभी मामलों में शाही कौंसिल के अधीन किया जा सकता है, जिसमें कि औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के तो प्रतिनिधि रहेंगे, लेकिन भारत के प्रतिनिधि नहीं होंगे। परन्तु उन्हें भय था कि यदि ऐसा किया जाय तो सम्भव है इससे यहां खून-खराबी हो जाय। लेकिन यदि ऐसा करना ही उचित हो तो इस स्थिति का सामना करना ही पड़ेगा। लेखक ने लिखा था कि मेरे विचारों से "मेस्टन, मैरिस तथा चिरोल" साधारणतः सहमत हैं। इलाहाबाद के गवर्नमेण्ट-प्रेस में राउण्ड टेबल-वालों में बांटने के लिए इस पत्र की कापियां छप गई थीं। उनमें से एक हिन्दुस्तानियों के हाथ लग गई और प्रेसवालों ने उसे फौरन ही अखबारों में छाप दिया। यह १९१६ की लखनऊ कांग्रेस के समय की बात है। मि० करटिस ने इसके बाद अपनी स्थिति साफ करते हुए भारतवासियों के नाम एक पत्र लिखा। पहले ये महाशय दक्षिण अफ्रीका में एक अधिकारी थे और बोअर-युद्ध के बाद ही ब्रिटिश-सरकार ने सर जेम्स मेस्टन और मि० मैरिस की सेवाओं को दक्षिण अफ्रीका में सिविल सर्विस का संगठन करने के लिए हिन्दुस्तान से मांग लिया था। उस समय इन्होंने इन लोगों से परिचय कर लिया था। तभी से इन लोगों ने दक्षिण अफ्रीका, कनाडा और भारत में ब्रिटिश कामनवैल्थ-सम्बन्धी समस्याओं का खूब अध्ययन किया था। १९१६ में मि० करटिस को सर जैम्स मेस्टन ने आमंत्रित किया था कि वे यहां आकर साम्राज्य की भारत-सम्बन्धी समस्या का अध्ययन करें और उसे "दी राउण्ड टेबल" नामक अपने तिमाही पत्र में प्रकाशित करावें। यह पत्र भी इसी प्रकार के अध्ययन के फलस्वरूप ही लिखा गया था, जो इंग्लैण्ड में प्रकाशित होने के लिए वहां भेजा जाने को था, किन्तु उनके दुर्भाग्य से कहीं-का कहीं जा पहुँचा। यह भी कहा जा सकता है कि मि० करटिस भारत के अधिकारी-वर्ग के साथ एक षड्यन्त्र में लगे हुए थे, जिसका काम था कि युद्ध के बाद साम्राज्य की पुनर्रचना की योजना में भारत को इंग्लैण्ड के ही अधीन नहीं, बल्कि उपनिवेशों के अधीन भी कर देना चाहिए। "इस समय की सबसे बड़ी कठिनाई यह है," मि० करटिस भारतवासियों के नाम लिखे अपने पत्र में कहते हैं, "कि मेरे इस बात पर जोर देने से कि हम मौजूदा अवस्था में भारत के शासन और वैदेशिक-विभाग को अलग-अलग नहीं कर सकते, यह गलत-फहमी हो गई है कि उपनिवेश भी भारत पर हुकूमत करना चाहते हैं। परन्तु उनकी रत्ती भर ऐसी इच्छा नहीं है।" अन्त में उन्होंने पुराने दस्तावेजों का हवाला देकर बताया कि पहले से ही उनके विचार क्या थे, "जो सारे ब्रिटिश कामनवेल्थ का शासन करते हैं उनका यह कर्त्तव्य है कि वे अपनी शक्ति भर प्रयत्न करें कि जितना शीघ्र हो सके भारतवासी अपना शासन स्वयं करने लगें और वे समष्टि रूप से ब्रिटिश कामनवेल्थ के शासन में हाथ बटा सकें।" बात यह थी कि मि० मांटेगु ने अपने चारों ओर, भारत के चुनींदा-चुनींदा आई० सी० एस० लोगों तथा इंग्लैण्ड से उनके साथ आने वाले ६ व्यक्तियों को लगा रक्खा था। पहले दल में सर माल्कम हेली, सर जैम्स मेस्टन और मि० मैरिस थे। मि० मैरिस उस समय युक्त-प्रान्त में इन्स्पेक्टर-जनरल-पुलिस थे।

रिपोर्ट के प्रकाशित होते ही, इस बात पर भिन्न-भिन्न नेताओं में तेजी से चर्चा होने लगी कि

इसके विषय में हमें क्या करना चाहिए। ऐसी दशा में यह तो जाहिर ही है कि महासमिति ने कांग्रेस के विशेष अधिवेशन को बुलाने का जो निश्चय किया था उसके अनुसार उसका बुलाया जाना लाजिमी था। लेकिन यह बात अनुभव की जाने लगी कि लखनऊ और इलाहाबाद इसके लिए उपयुक्त स्थान न रहेंगे। अतः बम्बई में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करना तय हुआ और थोड़े ही समय में सारी तैयारी की गई। कांग्रेस वालों में बड़ा तीव्र मतभेद हो गया था। वैसे कोई भी दल योजना से सन्तुष्ट नहीं था। लेकिन हां उनके आलोचना करने के ढंग में अन्तर जरूर था। ऐसा जान पड़ता था कि एक दल तो, जो कि उग्र था, उसे बिलकुल अस्वीकार कर देने पर जोर देगा और दूसरा उसमें सुधार चाहेगा। कांग्रेस से कुछ ही दिन पूर्व ऐसा प्रयत्न किया गया था कि किसी जगह एक बार मिलें और दोनों दलों में समझौता हो जाय। लेकिन इसमें सफलता नहीं मिली। कांग्रेस का अधिवेशन २९ अगस्त १९१८ को हुआ। श्री हसन इमाम सभापति थे। कांग्रेस में उपस्थिति खूब थी। ३,८४५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। श्री विट्ठलभाई पटेल स्वागत-समिति के सभापति थे। दीनशा वाचा, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, भूपेन्द्रनाथ वसु और अम्बिकाचरण मजुमदार जैसे कांग्रेस के पुराने महारथी आये ही नहीं थे। चार दिन के वादविवाद के पश्चात् कांग्रेस ने अपनी पुरानी योजना के आधारभूत सिद्धान्तों का ही समर्थन किया और इस बात की घोषणा कर दी कि भारतीय आकांक्षा साम्राज्य के अन्तर्गत स्व-शासन से कम में सन्तुष्ट नहीं हो सकती। मांटेगु-योजना की उसने विस्तार-पूर्वक आलोचना की। उसने यह घोषणा की कि भारत अवश्य ही उत्तरदायी शासन के योग्य है। मांटेगु-रिपोर्ट में इसके खिलाफ जो बात कही गई थी उसका प्रतिवाद किया। कांग्रेस ने प्रान्तीय तथा केन्द्रीय दोनों शासनों में एक-साथ ही सुधार जारी करने पर जोर दिया और इस बात से सहमति प्रकट की कि प्रान्त ही वह स्थान है जहां उत्तरदायी शासन के क्रमिक विकास के लिए पहले कार्य प्रारम्भ होना चाहिए—और जब तक इस बात का अनुभव न हो जाय कि इन प्रान्तों की शासन-प्रणाली में जो परिवर्तन करने का विचार है उनका क्या असर होता है तबतक आवश्यक बातों में भारत-सरकार का अधिकार अक्षुण्ण रहे। साथ ही कांग्रेस ने यह माना कि जिन बातों से शान्ति और देश-रक्षा का प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध होगा उनमें भारत-सरकार को इन अपवादों के साथ पूरा अधिकार होगा (क) न्यायालय के निर्णय और खुले तौर पर कानूनन् मुकदमा चलाये बिना (सम्राट् की) किसी भी भारतीय प्रजा की स्वतन्त्रता, जान या सम्पत्ति नहीं ली जायगी और न उसकी लिखने या बोलने या सभाओं में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता छीनी जायगी; (ख) ग्रेट-ब्रिटेन के समान लाइसेन्स खरीद कर हथियार रखने का अधिकार प्रत्येक भारतीय प्रजा को होगा; (ग) छापेखाने स्वतन्त्र रहेंगे और किसी छापेखाने या समाचार-पत्र की रजिस्ट्री होते समय कोई लाइसेन्स या जमानत नहीं मांगी जायगी; (घ) समस्त भारतीय कानून के सामने बराबर होंगे। एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा इस बात पर दृढ़ मत प्रकट किया कि बड़ी कौंसिल को आर्थिक मामलों में उस हद तक की स्वतन्त्रता रहे जिस हद तक कि स्वतन्त्र-साम्राज्य के स्वराज्य-प्राप्त प्रान्तों को है। उसी प्रस्ताव में, जिसमें कि सुधार-योजना पर सीधे तौर से मत प्रकट किया गया था, भारत-मन्त्री और वाइसराय के प्रयत्नों की, जोकि उन्होंने भारत में उत्तरदायी शासन प्रणाली प्रारम्भ करने के लिए किये, सराहना की। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि यद्यपि उसमें कुछ प्रस्ताव ऐसे हैं जिनके द्वारा वर्तमान अवस्था की अपेक्षा कुछ दिशाओं में उन्नति होती है, किन्तु आम तौर पर ये प्रस्ताव निराशा-जनक और असंतोषजनक हैं। आगे चलकर प्रस्ताव में वे बातें भी सुझाई गईं जिनका होना उत्तर-दायी शासन की ओर बढ़ने के लिए पूर्णतया आवश्यक था—जैसे भारत-सरकार से सम्बन्धित

बातों के लिए कांग्रेस ने यह इच्छा प्रकट की कि प्रान्तों के लिए जिस तरह स्वरक्षित और हस्तान्तरित विषय रक्खे जायं उसी तरह केन्द्रीय सरकार के लिए भी रक्खे जायं। रक्षित विषय ये होंगे—वैदेशिक कार्य (उपनिवेशों का सम्बन्ध छोड़ कर), सेना, जल-सेना, भारतीय राजाओं के साथ सम्बन्ध, और शेष सब विषय हस्तान्तरित रहेंगे। सुधारों के अनुसार बनाई गई कौंसिल का पहला कार्य-काल समाप्त होने पर हस्तान्तरित विषयों के सम्बन्ध में वाइसराय और कौंसिल का सम्बन्ध वैसा ही रहेगा जैसाकि स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों में है। हरेक कानून कौंसिल में बिल पेश करके ही बनाया जायगा, परन्तु यदि कौंसिल स्वरक्षित विषयों के सम्बन्ध में वह कानून पास न करे जिसे सरकार आवश्यक समझती हो तो गवर्नर-जनरल रेग्यूलेशनों-द्वारा उनका विधान कर सकेंगे। ये रेग्यूलेशन एक वर्ष तक जारी रहेंगे और दुबारा फिर नहीं जारी किये जायंगे, सिवा उस हालत के जब कि कौंसिल के उपस्थित सदस्यों में कम-से-कम ४० प्रतिशत उसके पक्ष में मत देते हों। राज-परिषद् न रहेगी, किन्तु यदि वह बनाई ही जाय तो कम-से-कम उसके आधे सदस्य निर्वाचित हों, और 'सार्टिफिकेट' देने का नियम केवल स्वरक्षित विषयों के लिए हो। स्वरक्षित विषयों के अधिकार में जो कार्य-कारिणी के सदस्य हों उनमें कम-से-कम आधे (यदि उनकी संख्या १ से अधिक हो) भारतीय हों। बड़ी कौन्सिल के सदस्यों की संख्या १५० कर देनी चाहिए और उनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या ⅘ हो। बड़ी कौंसिल के सभापति और उपसभापति बड़ी कौंसिल द्वारा ही चुने जाने चाहिए और उसे अपने कार्य-संचालन के लिए नियम बनाने का अधिकार रहे। कानून द्वारा इस बात का विश्वास दिला दिया जाना चाहिये कि अधिक-से-अधिक १५ वर्षों के भीतर समस्त ब्रिटिश-भारत में पूर्ण-उत्तरदायी शासन स्थापित कर दिया जायगा। जहां तक प्रान्तों से सम्बन्ध है, कांग्रेस ने तय किया कि (क) शासन-विभाग में ऐसे कोई सदस्य न रहने चाहिए जिनके जिम्मे कोई महकमा न हो, (ख) सुधार के अनुसार बनी कौंसिलों का पहला कार्य-काल समाप्त होने पर हस्तांतरित विषयों के सम्बन्ध में गवर्नर और मंत्रियों का वैसा ही सम्बन्ध रहेगा जैसा कि स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशों में है; (ग) मन्त्रियों का दर्जा और उनका वेतन वही होगा जो कार्यकारिणी के सदस्यों का रहेगा। कार्यकारिणी के आधे सदस्य भारतीय हों; (घ) स्वरक्षित विषयों के लिए जो ख़र्च पड़ता है उसे छोड़ कर बजट कौंसिल के अधिकार में रहे और यदि नया कर लगाने की जरूरत पड़े तो वह सारी प्रान्तीय सरकार-द्वारा लगाया जाना चाहिए। यह मानते हुए भी कि लोग पूर्ण प्रान्तीय अधिकार पाने के योग्य हैं, यह कांग्रेस सुधार-योजना के पास होने में सुविधा करने के विचार से इस बात पर तैयार है कि सब प्रान्तों में छः वर्षों के लिए कानून, पुलिस और न्याय के कार्य (जेल छोड़ कर) सरकार के हाथों में रहें, शासन और न्याय-कार्य तुरन्त अलग-अलग कर देने चाहिए। सभापति और उपसभापति कौंसिलों-द्वारा चुने जाने चाहिए। परन्तु कौंसिलों में निर्वाचित सदस्यों का औसत ⅘ रहे। कौंसिलें प्रांतीय अधिकार के प्रत्येक विषय पर—कानून, न्याय और पुलिस पर भी—कानून बना सकेंगी, किन्तु जहां सरकार को कानून, न्याय और पुलिस-सम्बन्धी बातों में कौंसिल के निर्णय से सन्तोष न हो वहां उन्हें भारत-सरकार के सामने पेश कर सकेंगी। भारत-सरकार उसे बड़ी कौंसिल के सामने पेश कर देगी और साधारण तरीका बर्ता जायगा। भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारों का उत्तरदायित्व निर्वाचकों के प्रति बढ़ाया जाय और पार्लमेंट और भारत-मंत्री के अधिकार कम किये जायं। इण्डिया कौंसिल तोड़ दी जाय। भारत मंत्री को सहायता देने के लिए दो स्थायी सहायक-मन्त्री रहें, जिनमें से एक भारतीय हो। जातिगत प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में कांग्रेस ने निश्चय किया कि छोटी और बड़ी कौंसिलों में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व वही रहना चाहिए जो कांग्रेस-लीग योजना में रक्खा गया है। स्त्रियां मताधिकार के अयोग्य न ठह-

राई जायं। आर्थिक मामलों में भारत-सरकार को पूरी स्वतन्त्रता रहनी चाहिए। सेना में भारतीयों को कमीशन दिये जाने के सम्बन्ध में जो मांग पेश की गई थी उसे सरकार ने बिलकुल अपूर्ण रूप से स्वीकार किया था। इस पर कांग्रेस ने गहरी निराशा प्रकट की और यह राय दी कि भारतीयों को सेना में कम-से-कम २५ प्रतिशत कमीशण्ड जगह देने की कार्रवाई होनी चाहिए और यह औसत धीरे-धीरे बढ़कर १५ साल में ५० फीसदी तक हो जाय। कांग्रेस ने इंग्लैण्ड में शिष्ट-मण्डल भेजना तय किया और सदस्यों के चुनाव के लिए एक कमिटी नियुक्त कर दी।

इस तरह यह दीख पड़ेगा कि जिस विशेष अधिवेशन के लिए यह भय हो रहा था कि इसमें सुधार के विषय में फूट पड़ जायगी, वह सफलता पूर्वक समाप्त हो गया और गौर के साथ चर्चा होने के बाद ऐसे निर्णयों पर पहुंचा जिससे विभिन्न मतों में मेल हो गया और सारे देश के अधिकांश कांग्रेसियों ने पूर्णरूप से उनका समर्थन किया। उन्हीं दिनों मुस्लिम-लीग की भी बैठक की गई थी, जिसके सभापति थे महमूदाबाद के राजा साहब। उसमें भी कांग्रेस से मिलता-जुलता ही प्रस्ताव पास हुआ। लेकिन भारत के दुःखों का अन्त नहीं हुआ। भारत-रक्षा-कानून, जो देश के किसी भी व्यक्ति को कुछ भी करने से रोक सकता था, या कुछ भी करने की आज्ञा दे सकता था, जोरों के साथ अपना काम कर रहा था। मौलाना अबुलकलाम आजाद तथा अली-भाइयों की नजरबन्दी का तो हम पहले ही जिक्र कर चुके हैं। अमृतसर-कांग्रेस के पहले अली-बन्धु कांग्रेसी नहीं थे। १९१९ में रिहा होते ही वे अमृतसर-कांग्रेस में पहुंचे थे। मुहम्मदअली "कामरेड" नाम के तेज और चरपरे साप्ताहिक का सम्पादन करते थे। उनके बड़े भाई शौकतअली "हमदर्द" के सम्पादक थे। यह उर्दू का दैनिक पत्र था। महायुद्ध के छिड़ते ही ब्रिटिश-सरकार की तरफ से लोगों को दिखाने के लिए बड़ी शान से एक घोषणा की गई, जिसमें यह कहा गया था कि युद्ध निर्बल राष्ट्रों की रक्षा के लिए लड़ा जा रहा है। मौलाना मुहम्मदअली ने अपने पत्र में एक जोरदार लेख लिखा था, जिसका नाम था "मिश्र को खाली कर दो।" मौलाना और अली बन्धु उसी समय नजरबन्द कर दिये गये थे। वे इसी अवस्था में २५ दिसम्बर १९१९ तक रहे थे, जब कि शाही घोषणा के अनुसार, जिसमें कि राजनैतिक कैदी छोड़ दिये गये थे, वे भी मुक्त कर दिये गये।

महायुद्ध के लिए धन एकत्र करने और सिपाही भरती करने का तरीका निहायत एतराज के काबिल था। इन तरीकों के बदौलत, जिन्हें लार्ड विलिंगडन की सरकार ने "दबाव और समझाने के तरीके" कहा था परन्तु जो दरअसल ज्यादतियां थीं, पंजाब और अन्य जगह आगे चलकर भयंकर स्थितियां पैदा हो गईं। देहात में तो "इंडेण्ट" की प्रथा प्रचलित थी, जिसके अनुसार स्थानीय अधिकारियों को यह बताना आवश्यक था कि उनके हलके से युद्ध के लिए कितना धन मिल सकता था और फिर उसी के अनुसार मातहत अधिकारी, अपनी बात को कायम रखने के लिए, "दबाव तथा समझाने" की नीति को काम में लाकर युद्ध के लिए जितना हो सकता था रुपया वसूल करते थे। इन उपायों से अन्त में ऐसी स्थिति पैदा हुई कि एक बार लोगों ने क्रोध में आकर एक तहसीलदार का बंगला घेर लिया और उसके बाल-बच्चों को छोड़कर उसे मय बंगले के जलाकर भस्म कर दिया।

लार्ड चेम्सफोर्ड के शासन-काल में, जहां तक राजनैतिक क्षेत्र से सम्बन्ध है, दमन-चक्र मुख्यतः प्रेस-ऐक्ट के रूप में बड़ी तेजी से चला था। भारत-रक्षा-कानून के अनुसार लार्ड विलिंगडन ने श्रीमती बेसेण्ट को बम्बई-अहाते में प्रवेश न करने की आज्ञा दे दी थी। बंगाल में नजरबन्द नवयुवकों की

संख्या तीन हजार तक पहुंच गई थी। इसके बाद श्रीमती बेसेन्ट नजरबन्द हुईं। दूसरे वर्ष में रौलट-बिल तथा उसके साथ ही उसके विरुद्ध आन्दोलन दोनों ने पदार्पण किया।

यहां यह बात स्मरण रखना चाहिए कि इससे पहले वर्ष सरकार ने एक कमिटी नियुक्त की थी। सर सिडने रौलट उसके सभापति थे और कुमारस्वामी शास्त्री और प्रभासचन्द्र मित्र सदस्य थे। इसका काम इस बात की जांच करके रिपोर्ट करना था कि भारत में किस प्रकार और किस हद तक क्रान्तिकारी-आन्दोलन से सम्बन्ध रखनेवाले षड्यन्त्र फैले हुए हैं और उनका मुकाबिला करने में जो दिक्कतें पेश आती हैं उनकी भी छानबीन करके, यदि उसके लिए किसी कानून को बनाने की जरूरत हो तो उसके लिए भी, वह सरकार को उचित सलाह दे। कमिटी ने जांच करके अपनी रिपोर्ट सरकार के पास भेज दी। रिपोर्ट में जिस कानून की सलाह दी गई थी, वह बड़ी कौंसिल में पेश भी कर दिया गया। इससे सारे देश में एक तहलका मच गया। सब जगह विरोध-प्रदर्शन किया गया। कांग्रेस के विशेष अधिवेशन के समय तक केवल रिपोर्ट ही प्रकाशित हो पाई थी। कांग्रेस ने रौलट-कमिटी की सिफारिशों की निन्दा की और कहा कि यदि उसे कार्य-रूप में लाया गया तो भारतीयों के मौलिक अधिकारों में हस्तक्षेप होगा और वह उचित लोकमत के बनने में बाधक बनेगा।

दिल्ली-कांग्रेस

कांग्रेस का साधारण वार्षिक अधिवेशन (आगामी दिसम्बर मास में) दिल्ली में होनेवाला था। दिल्ली अधिवेशन का सभापति प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों और स्वागत-समिति ने लोकमान्य तिलक को चुना था। लेकिन उन्हें वेलेन्टाइन चिरोल पर चलाये गये मुकद्दमे के सम्बन्ध में इंग्लैण्ड जाना था। अतः सभापति बनने में उन्होंने अपनी असमर्थता प्रकट की। इसपर पं० मदनमोहन मालवीय को सभापति बनाया गया। हकीम अजमल खां स्वागताध्यक्ष थे। ११ नवम्बर १९१८ की अस्थायी-सन्धि के बाद महायुद्ध का अन्त हो गया था। मित्र-राष्ट्रों को पूर्ण सफलता मिली थी और राष्ट्रपति विल्सन, लायड जार्ज तथा मित्र राष्ट्रों के अन्य राजनीतिज्ञों ने आत्म-निर्णय के सिद्धान्तों की घोषणा करदी थी। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि इन घोषणाओं को तथा आलोचनाओं को, जो माण्टफोर्ड-रिपोर्ट पर विशेष अधिवेशन के बाद हुई थीं, सामने रखकर कांग्रेस शासन-सुधार-योजना पर पुनः विचार करे। दिल्ली-कांग्रेस में भी उपस्थिति बहुत थी। ४,८६५ प्रतिनिधि आये थे।

कांग्रेस ने एक प्रस्ताव-द्वारा सम्राट् के प्रति राजभक्ति प्रकट की और युद्ध के, जो कि संसार के सब लोगों की स्वाधीनता के लिए लड़ा गया था, सफलतापूर्वक समाप्त हो जाने पर बधाइयां दीं। दूसरे प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने स्वतन्त्रता, न्याय और आत्मनिर्णय के लिए मित्र-राष्ट्रों के सैनिकों की वीरता और खासकर भारतीय सेना की सफलताओं की प्रशंसा की। तीसरे-प्रस्ताव द्वारा इस बात की प्रार्थना की गई कि शान्ति-सम्मेलन और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट भारत को उन उन्नतिशील देशों में समझे जिनपर स्व-शासन का सिद्धान्त लागू होगा। इसके लिए जो तत्काल कार्रवाई करनी चाहिए वह यह बताई गई कि उन सारे कानूनों, आर्डिनेंसों और रेग्यूलेशनों को, जिनके कारण स्वतंत्रतापूर्वक राजनैतिक समस्याओं पर खुलकर वादविवाद नहीं किया जा सकता, और जिनके द्वारा अधिकारियों को गिरफ्तार करने, नजरबन्द करने, रोकने, देश-निकाला देने, सजा करने का, साधारण अदालतों में बिना मुकद्दमा चलाये ही अधिकार दे दिया है, तुरन्त ही उठा लिया जाय। कांग्रेस ने एक प्रस्ताव द्वारा यह भी मांग पेश की थी कि साम्राज्य-नीति के पुनर्निर्माण में पार्लमेन्ट शीघ्र ही भारत को ऐसे पूर्ण उत्तरदायी शासन देने का एक कानून पास करे जैसा कि उपनिवेशों में है। कांग्रेस ने यह भी

इच्छा प्रकट की थी कि शान्ति-सम्मेलन में भारत का प्रतिनिधित्व भी चुने हुए व्यक्तियों-द्वारा हो। इसके लिए लोकमान्य तिलक, गांधीजी और श्री हसनइमाम को प्रतिनिधि भी चुना गया।

शासन-सुधारों के लिए कांग्रेस ने उसी विशेष अधिवेशन वाले कांग्रेस-लीग योजना के प्रस्ताव को ही दोहराया। साथ ही यह बात भी दोहराई गई कि भारतवर्ष स्वराज्य के योग्य है और शान्ति एवं देशरक्षा-सम्बन्धी सब अधिकार, कुछ अपवादों को छोड़कर, भारत-सरकार को है। एक दूसरे प्रस्ताव-द्वारा, इनके अलावा जो मुद्दे रह गये थे उन्हें भी दोहराया गया—सिर्फ कुछ अपवादों को छोड़कर, जो कि ये हैं—(१) प्रान्तों में तुरन्त ही पूर्ण उत्तरदायी शासन जारी कर देना चाहिए और (२) प्रस्तावित वैध सुधारों के लाभों से किसी भी भाग को वंचित न रखना चाहिए। रौलट-कमिटी की रिपोर्ट पर भी विचार हुआ। इसके सम्बन्ध में भी बम्बई के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए यह बात कही गई कि इससे शासन-सुधारों को सफलतापूर्वक व्यावहारिक रूप देने में बाधा पड़ेगी। कांग्रेस ने इस बात पर भी जोर दिया कि तुरन्त ही भारत-रक्षा कानून, प्रेस एक्ट, राज-द्रोह, सभाबन्दी-कानून, क्रिमिनल लॉ अमेण्डमेण्ट ऐक्ट, रेग्यूलेशन्स तथा इसी प्रकार के अन्य दमनकारी कानूनों को उठा लिया जाय और सारे नजरबन्दों तथा राजनैतिक कैदियों को मुक्त कर दिया जाय।

औद्योगिक कमीशन की रिपोर्ट पर भी, जिसके पं० मदनमोहन मालवीय भी एक सदस्य थे, विचार हुआ। उसकी सिफारिशों का और इस नीति का स्वागत करते हुए कि भविष्य में सरकार को इस देश की औद्योगिक उन्नति के लिए अधिक काम करना चाहिए, कांग्रेस ने आशा की कि इस सिद्धांत को कार्यान्वित करने में यह उद्देश्य सामने रक्खा जायगा कि भारतीय पूंजी और व्यापार को प्रोत्साहन दिया जाय और विदेशों की लूट से भारत को बचाया जाय। कांग्रेस ने इस बात पर खेद प्रकट किया कि टैरिफ के प्रश्न की जांच को कमीशन की सीमा से बाहर कर दिया गया है। कांग्रेस ने कमीशन की इस सिफारिश का समर्थन किया कि भारत-सरकार की कार्य-कारिणी में उद्योग-धन्धे का पृथक् प्रतिनिधित्व रक्खा जाय और उद्योग-धन्धों के प्रान्तीय विभाग भी हों। कांग्रेस ने प्रान्तीय तथा भारतीय ऐसे सलाहकार-मंडल बनाये जाने की आवश्यकता बताई जिनमें भारतीय औद्योगिक तथा व्यापारिक संस्थाओं और व्यापारी-मंडलों द्वारा चुने गये प्रतिनिधि हों। उसकी राय में, जिन इम्पीरियल, इंडस्ट्रियल और केमिकल नौकरियों का प्रस्ताव किया जारहा था उनका संगठन निश्चित वेतन पर किया जाय और विश्वविद्यालय व्यापारिक कालेजों की स्थापना करें और सरकार उनको मदद दे। रिपोर्ट की सिफारिशों में उद्योग-धन्धों को आर्थिक सहायता पहुंचाने वाली संस्थाओं का संगठन करने की सिफारिश नहीं की गई थी; इस पर कांग्रेस ने खेद प्रकट किया और औद्योगिक बैंक जारी करने पर जोर दिया। एक और प्रस्ताव-द्वारा कांग्रेस ने सरकार से अली-बन्धुओं को मुक्त कर देने की प्रार्थना की। युद्ध के बन्द हो जाने और अभूतपूर्व आर्थिक संकट के कारण कांग्रेस ने सरकार से अनुरोध किया कि युद्ध के कार्यों के लिए ४ करोड़ ५ लाख रुपया देने के भार से भारत को मुक्त कर दिया जाय। आयुर्वेदिक और यूनानी दवाइयों के सम्बन्ध में भी एक बड़ा ही मनोरंजक प्रस्ताव कांग्रेस ने पास किया। उसमें सरकार से सिफारिश की गई कि विदेशी चिकित्सा-प्रणाली के लिए जो सुविधायें प्राप्त हैं उन्हींको व्यवस्था आयुर्वेदिक और यूनानी प्रणालियों के लिए भी कर दी जाय।

इस वर्णन से यह मालूम हो जायगा कि एक ओर जहां इस कांग्रेस ने बम्बई-कांग्रेस के प्रस्तावों को प्रायः दोहराया वहां कुछ आगे भी कदम बढ़ाया। लेकिन यहां की कांग्रेस में वह मेल-मिलाप नहीं रहा जो बम्बई में (सितम्बर १९१८) दिखाई दिया था। मदरास प्रान्त और अन्य नरम-

दलवाले तो बम्बई- प्रस्ताव के पक्ष में थे, लेकिन बहुमत बम्बई-प्रस्ताव को अस्वीकार कर देने के अनुकूल था। और जब इंग्लैण्ड को एक शिष्ट-मंडल भेजने का प्रश्न उपस्थित हुआ तो यह निश्चय हुआ कि शिष्ट-मंडल के सदस्य दिल्ली की मांग के लिए ही उद्योग करें। इससे वे लोग शिष्ट-मंडल में से स्वतः ही निकल गये जो बम्बई-प्रस्ताव के पक्ष में थे। शास्त्रीजी ने "निराशा-जनक और असन्तोषजनक" शब्दों को निकाल देने का संशोधन उपस्थित किया और कहा कि १५ वर्ष की मीयाद को प्रस्ताव में से निकाल दिया जाय। लेकिन बहुमत से मूल-प्रस्ताव ही पास हुआ। अन्त में युवराज का स्वागत-सम्बन्धी प्रस्ताव जहां-का-तहां रह गया।

५

अहिंसा मूर्त्त-रूप में—१९१९

दिल्ली-कांग्रेस से देश में कोई शान्ति स्थापित नहीं हुई। १९१९ के फरवरी में रौलट-बिल ने देश को अपना दर्शन दिया। वे दो बिल थे। एक तो अस्थायी था। उसका उद्देश्य था भारत-रक्षा-कानून के समाप्त हो जाने से जो स्थिति पैदा होती उसका मुकाबला करना। वह भी युद्ध के बाद शान्ति स्थापित होने के ६ मास बाद। उसमें यह विधान था कि क्रान्तिकारियों के मुकदमे हाईकोर्ट के तीन जजों की अदालत में पेश हों और वे शीघ्र उनका फैसला कर दें एवं जिन स्थानों में क्रान्तिकारी अपराध बहुत हों वहां अपील भी न हो सके। इस कानून-द्वारा यह अधिकार भी दे दिया गया था कि राज्य के विरुद्ध अपराध करने का जिस व्यक्ति पर संदेह हो उससे जमानत ले ली जाया करे, उसे किसी स्थान-विशेष में रहने और किसी खास काम को करने से रोका जा सके। किसी व्यक्ति को ऐसा हुक्म देने से पहले उसके विरुद्ध जो आरोप होंगे उनकी जांच एक जज और गैर-सरकारी आदमी किया करेगा। तीसरे प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वे किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिस पर उचित रूप से यह संदेह हो कि वह कुछ ऐसे अपराध करने जा रहा है जिससे सार्वजनिक शान्ति-भंग होने की आशंका हो, तो वे उसे गिरफ्तार करके उल्लिखित स्थानों में बन्द कर दें और यह बता दें कि इन अवस्थाओं या स्थिति में रहना पड़ेगा। और वे खतरनाक आदमी, जो कि पहले से ही जेलों में हैं, उन्हें इस बिल के अनुसार लगातार जेल में रोक रक्खा जा सकता था। दूसरा बिल साधारण फौजदारी-कानून में एक स्थायी परिवर्तन चाहता था। किसी राजद्रोही सामग्री का प्रकाशन या वितरण करने के उद्देश्य से पास रखना, ऐसा अपराध करार दे दिया जाता जिसमें जेल की सजा हो सकती थी। यदि कोई व्यक्ति सरकारी गवाह बनने को राजी हो तो उसकी रक्षा का भार अधिकारियों पर रक्खा गया था। उन अपराधों के लिए, जिनके लिए सरकार की आज्ञा पहले से प्राप्त किये बिना मुकदमा नहीं चल सकता, जिला-मजिस्ट्रेटों को यह अधिकार दिया गया था कि वे पुलिस द्वारा उस मामले को प्रारम्भिक जांच करवा लें। किसी भी ऐसे आदमी से, जिसे राज्य के विरुद्ध कोई अपराध करने में सजा मिल चुकी हो, उसकी सजा के बाद दो वर्ष तक की नेकचलनी की जमानत ली जा सकती थी।

रौलट बिल का विरोध

रौलट-रिपोर्ट के बाद, ६ फरवरी १९१९ को, विलियम विन्सेण्ट ने बड़ी कौंसिल में, रौलट-बिलों को पेश किया। पहला बिल मार्च के तीसरे सप्ताह में पास होगया था और दूसरा वापस ले लिया गया। गांधीजी ने यह घोषणा की कि यदि रौलट-कमीशन की सिफारिशों को बिल का रूप दिया गया तो वे सत्याग्रह-युद्ध छेड़ देंगे। इसके लिए गांधीजी ने देश में सर्वत्र दौरा किया। उनका सब जगह धूमधाम से स्वागत हुआ। गांधीजी तो देश के लिए, अन्य नेताओं की अपेक्षा, अपरिचित व्यक्ति

के समान ही थे। लेकिन फिर भी देश ने उनका और उनके कार्यक्रम का इतना स्वागत क्यों किया? सरकार इसका उत्तर अपनी १९१९ की रिपोर्ट में इस प्रकार देती है—

"मि० गांधी अपनी निःस्वार्थता और ऊंचे आदर्शों के कारण आमतौर पर टाल्स्टाय के अनुयायी समझे जाते हैं। भारतीयों के लिए दक्षिण अफ्रीका में उन्होंने जो लड़ाई लड़ी उसके कारण उन्हें यह सब मान-गौरव प्राप्त है जो कि पूर्वी देशों में एक तपस्वी और त्यागी-नेता को प्राप्त होता है। जबसे वे अहमदाबाद में रहने लगे हैं, बराबर विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवा में लगे हुए हैं। दलितों और पीड़ितों की सेवा के लिए तैयार रहने के कारण, वे अपने देशवासियों को और भी प्रिय होगये हैं। बम्बई अहाते भर में तो, क्या देहात और क्या नगर, अधिकांश जगह उनका अत्यधिक प्रभाव है और उनकी सब पर धाक है। उन्हें लोग जिस आदर-भाव से देखते हैं उसके लिए 'पूजा' शब्द का प्रयोग करना अत्युक्ति नहीं कहा जा सकता। भौतिक-बल से उनका विश्वास आत्मबल में अधिक है। इसलिये गांधीजी का यह विश्वास होगया है कि उन्हें इस शक्ति का प्रयोग सत्याग्रह के रूप में रौलट ऐक्ट के खिलाफ करना चाहिए, जिसे कि उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में सफलता पूर्वक आजमाया था। २४ फरवरी को उन्होंने इसकी घोषणा कर दी कि यदि बिल पास किये गये तो वे सत्याग्रह आरम्भ कर देंगे। सरकार तथा बहुत-से भारतीय राजनीतिज्ञों ने इस घोषणा को बहुत चिन्ता की दृष्टि से देखा। बड़ी कौंसिल के कुछ नरम-दलवाले सदस्यों ने तो सार्वजनिक रूप से ऐसे कार्य के अनिष्ट परिणामों को बतलाया था। श्रीमती बेसेन्ट ने तो, जिन्हें भारतीय मनोवृत्ति का अच्छा ज्ञान था, गांधीजी को अत्यन्त गंभीरतापूर्वक चेतावनी दी कि यदि उन्होंने कोई भी ऐसा आन्दोलन चलाया तो उससे ऐसी शक्तियां उभड़ उठेंगी जिनसे न-जाने क्या-क्या भयंकर बुराइयां हो सकती हैं। यहां यह बात स्पष्ट रूप से बता देना चाहिए कि गांधीजी के रुख या घोषणा में कोई भी ऐसी बात नहीं थी जिससे कि उनके आन्दोलन का श्रीगणेश होने से पहले सरकार उनके विरुद्ध कोई कार्रवाई कर सकती। सत्याग्रह तो आक्रमणकारी नहीं रचनात्मक पद्धति है। गांधीजी तो शुरू ही से पशु-बल की निन्दा करते थे। उन्हें यह विश्वास था कि वे सविनय-भंग के रूप में सत्याग्रह करके सरकार को इस बात के लिए मजबूर कर देंगे कि वह रौलट-ऐक्ट का परित्याग कर दे। १८ मार्च को उन्होंने रौलट बिल के सम्बन्ध में एक प्रतिज्ञा-पत्र प्रकाशित कराया, जो इस प्रकार है—

सच्चे हृदय से मेरा यह मत है कि इंडियन क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट बिल नं० १ और क्रिमिनल इमरजेन्सी पावर बिल नं० २ अन्यायपूर्ण हैं और न्याय और स्वाधीनता के सिद्धान्तों के घातक हैं। उनसे व्यक्ति के उन मौलिक अधिकारों का हनन होता है जिन पर कि भारत की और स्वयं राज्य की रक्षा निर्भर है। अतः हम शपथपूर्वक प्रतिज्ञा करते हैं कि यदि इन बिलों को कानून का रूप दिया गया, तो जबतक इन्हें वापस न ले लिया जाय तब तक हम इन तथा अन्य कानूनों को भी जिन्हें कि इसके बाद नियुक्त की जानेवाली कमिटी उचित समझेगी, मानने से नम्रतापूर्वक इनकार कर देंगे। हम इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि इस युद्ध में हम ईमानदारी के साथ सत्य का अनुसरण करेंगे और किसीके जान-माल को किसी तरह नुकसान न पहुंचावेंगे।"

देश ने चारों तरफ से आन्दोलन में खूब साथ दिया। हां, प्रारम्भ में बंगाल अलबत्ते खामोश रहा था। दक्षिण ने भी उसमें आशातीत साथ दिया। गांधीजी ने उपवास के साथ आन्दोलन का श्रीगणेश किया। ३० मार्च १९१९ का दिन हड़ताल के लिए नियत किया गया था। इस दिन लोगों को उपवास रखने, ईश्वर-प्रार्थना करने, प्रायश्चित्त करने तथा देश-भर में सार्वजनिक सभायें करने के लिए कहा गया था। बाद को यह तारीख बदलकर ६ अप्रैल नियत की गई। परन्तु इस

परिवर्त्तन की सूचना ठीक समय पर दिल्ली नहीं पहुंची। इसलिए वहां ३० मार्च को ही जलूस निकला और हड़ताल हुई। गोली भी चली। इस दिन के जलूस का नेतृत्व स्वामी श्रद्धानन्दजी कर रहे थे। उन्हें कुछ गोरे सिपाहियों ने गोली मारने की धमकी दी। इसपर उन्होंने अपनी छाती खोल दी और कहा—'लो, मारो गोली।' बस, गोरों की धमकी हवा में उड़ गई। लेकिन दिल्ली के रेल्वे-स्टेशन पर कुछ झगड़ा हो गया, जिसमें गोली चली और ५ मरे तथा अनेक घायल हुए। "६ अप्रैल को देशव्यापी प्रदर्शन हुआ।" सरकार की १९१९ की रिपोर्ट में कहा गया है—"सब लोग बड़े ही उत्तेजित थे। उस समय एक बात मार्के की दिखाई पड़ती थी। और वह था हिन्दू-मुस्लिम-भ्रातृभाव। अब दोनों जातियों के नेता बस इसी एकता की रट लगाये हुये थे। हर सभा से यही आवाज निकलती थी। इस जोशो-खरोश के जमाने में छोटी जातियों ने भी अपने मतभेद भुला दिये। वह भ्रातृ-भाव का एक अद्भुत दृश्य था। हिन्दू-मुसलमान एक-दूसरे के हाथ से खुल्लम-खुल्ला पानी लेते-देते थे, जलूसों के झण्डों और नारों दोनों से हिन्दू-मुसलमानों का मेल ही प्रकट होता था। एक जगह तो एक मसजिद के इमाम पर खड़े होकर हिन्दू नेताओं को बोलने भी दिया गया था।" इस प्रकार के मेल का एक तात्कालिक कारण था। युद्ध के पश्चात् टर्की की अस्तव्यस्त अवस्था हो गई थी। इसपर मुसलमान स्वभावतः बहुत खिन्न थे। साथ ही खिलाफत के लिए जो खतरा था उससे तो उनमें और भी उत्तेजना फैली हुई थी। हिन्दुओं ने मुसलमानों की इन भावनाओं के साथ पूरी सहानुभूति प्रकट की।

देश ने इस विचारधारा को तुरन्त ही हृदय से अपनाया। कांग्रेस तथा देश दोनों के लिए गांधीजी बहुत मान्य होगये थे। १९१८ की दिल्ली-कांग्रेस में शान्ति-सम्मेलन में प्रतिनिधि भेजने के सम्बन्ध में श्री चितरंजन दास का एक प्रस्ताव था। उसमें गांधीजी का नाम भूल से छूट गया था। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती ने ज्योंही इस ओर प्रस्तावक का ध्यान खींचा, उन्होंने क्षमा-याचना करते हुए प्रतिनिधियों की सूची में गांधीजी का नाम जोड़ दिया। इंग्लैण्ड के लिए जानेवाले शिष्ट-मण्डल के सदस्यों में भी उनका नाम था। १९१९ के अप्रैल मास से भारतीय इतिहास का नया अध्याय प्रारम्भ होता है।

पंजाब की दुर्घटनायें

भारतवर्ष के कष्ट-सहन और संघर्ष का दृश्य अब पंजाब में दिखाई देने लगा जो कि विदेशी उद्योग-धन्धे और व्यापारिक आक्रमण के लिए भारत का द्वार बना हुआ है। पंजाब सिक्खों तथा भारत की अन्य सैनिक जातियों का निवास-स्थान है। क्या पंजाब को, पढ़े लिखे और कांग्रेसी लोगों को अपने स्वराज्य-आन्दोलन के लिए इस्तेमाल करने को खाली छोड़ दिया जाय? इसलिए पंजाब का निरंकुश शासक सर माइकेल ओडायर इस बात पर तुला हुआ था कि वह अपने प्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन की छूत की बीमारी को न फैलने दे। और वास्तव में कांग्रेस और उसमें इस बात पर रस्साकशी थी कि आया १९१९ में अमृतसर में होनेवाली कांग्रेस पंजाब में हो या न हो। १० अप्रैल १९१९ के दिन प्रातःकाल ही अमृतसर के जिला-मजिस्ट्रेट ने डाक्टर किचलू और डाक्टर सत्यपाल को, जो कि कांग्रेस का संगठन कर रहे थे, अपने बंगले पर बुला भेजा और वहां से चुपचाप किसी अज्ञात स्थान को भेज दिया। इस घटना से एक सनसनी फैल गई। खबर फौरन ही दूर-दूर तक पहुंच गई और लोगों का एक झुण्ड जिला-मजिस्ट्रेट के यहां उनका पता पूछने के लिए जानेवाला था, परन्तु उस चौराहे पर, जो शहर से सिविल-लाइन की ओर जाते हुए सिविल-लाइन और शहर के बीच में है, फौजी सिपाहियों ने भीड़ को रोक लिया। और अब वह ईंटों के फेंकने की कहानी आती है, जो सरकार की मदद के लिए हरवक्त तैयार रहती है। भीड़ पर गोली चलाई गई, जिसके फल-स्वरूप एक या दो

की मृत्यु के साथ-साथ अनेक लोग घायल हुए। लोगों की भीड़ अब शहर को वापस लौटी और मरे हुए और घायलों का शहर में होकर जुलूस निकाला। रास्ते में नैशनल-बैंक की इमारत में आग लगा दी और उसके यूरोपियन मैनेजर को मार डाला। इस प्रकार लोगों की उत्तेजित भीड़ ने ५ अंग्रेजों को मारा और बैंक, रेलवे का गोदाम तथा और सार्वजनिक इमारतों को जला कर खाक कर दिया। स्वभावतः अधिकारी इन घटनाओं से आगबबूला हो गये। स्थानीय अधिकारियों ने अपने ही आप १० अप्रैल को शहर फौज के अधिकार में दे दिया, इस आशा में कि ऊपर के अधिकारी इसकी स्वीकृति दे देंगे।

गुजरानवाला और कसूर में बहुत अधिक खून-खराबी हुई। कसूर में तो १२ अप्रैल को भीड़ ने रेलवे-स्टेशन को बहुत नुक्सान पहुंचाया। तेल के एक छोटे गोदाम को जला दिया। तार और सिगनल तोड़ डाले। एक ट्रेन पर आक्रमण किया, जिसमें कुछ यूरोपियन थे। दो सिपाहियों को इतना पीटा कि उनके प्राण निकल गये। एक ब्रांच-पोस्ट आफिस को लूट लिया। मुख्य पोस्ट आफिस को जला डाला। मुन्सिफी कचहरी में आग लगा दी, और भी बहुत सी इमारतों को नुकसान पहुंचाया। यह सरकारी बयान का सारांश है। परन्तु लोगों का यह कहना है कि पहले भीड़ को उत्तेजना दिलाई गई थी।

गुजरानवाले में १४ अप्रैल को भीड़ ने एक ट्रेन को घेर लिया, और उस पर पत्थर बरसाये। एक छोटे से रेलवे पुल को जला दिया और एक दूसरे रेलवे-पुल को भी जलाया, जहां कि गाय का एक मरा बच्चा लटकता हुआ था। लोगों का कहना है कि उसे पुलिस ने मार डाला और हिन्दुओं की भावनाओं को ठेस पहुंचाने के लिए उसे पुल पर टांग दिया था। इसके साथ-ही साथ तार-घर, डाक-खाना और रेलवे-स्टेशन में भी आग लगा दी थी। डाक-बंगला, कलक्टरी, कचहरी, एक गिरजा, एक स्कूल और एक रेलवे का गोदाम भी जला दिया था।

ये तो हुईं खास-खास घटनायें। अन्य छोटे-छोटे स्थानों में कुछ गड़बड़ हुई। जैसे रेलगाड़ियों पर पत्थरों का फेंका जाना, तारों का काटा जाना, और रेलवे-स्टेशनों में आग का लगाया जाना।

इन्हीं दिनों में देश के विभिन्न भागों में इक्के-दुक्के हिंसा-कांड हुए। लाहौर में भी लूटमार हुई और गोली चली। कलकत्ते जैसे सुदूर स्थान से भी बुरे समाचार प्राप्त हुए। पंजाब की दुर्घटनाओं की बात सुनकर तथा स्वामी श्रद्धानन्द और डॉ० सत्यपाल के बुलाने पर गांधी जी ८ अप्रैल को दिल्ली के लिए चल पड़े। रास्ते में ही उन्हें हुक्म मिला कि पंजाब और दिल्ली के भीतर प्रवेश न करो। उन्होंने इस हुक्म को मानने से इन्कार कर दिया। इस पर उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और दिल्ली से कुछ दूर पलवल नामक स्टेशन से एक स्पेशल ट्रेन में उन्हें बिठा कर १० अप्रैल को बम्बई भेज दिया गया।

गांधीजी की गिरफ्तारी के समाचार से अहमदाबाद में कई उपद्रव हो गये, जिनमें कुछ अंग्रेज और कुछ हिन्दुस्तानी अफसर जान से मारे गये। १२ अप्रैल को वीरमगांव और नड़ियाद में भी कुछ उत्पात हुए। कलकत्ते में भी उपद्रव हुआ था—वहां गोली चली थी, जिससे ५ या ६ आदमी जान से मारे गये थे और १२ बुरी तरह घायल हुए थे। बम्बई पहुंच कर गांधी जी ने स्थिति को शान्त करने में मदद की और फिर वहां से अहमदाबाद को चल पड़े। उनकी उपस्थिति ने शान्ति स्थापित करने में बहुत काम किया। इन उपद्रवों के कारण उन्होंने सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और उसके सम्बन्ध में एक वक्तव्य निकाला।

एक ओर यह स्थिति थी तो दूसरी ओर अमृतसर में दुर्घटनायें विकट-रूप धारण करती जा

रही थीं। यह स्मरण रखना चाहिए कि १३ अप्रैल तक फौजी-कानून जारी करने की कोई घोषणा नहीं की गई थी। वैसे सरकार यह बात स्वीकार करती है कि १० अप्रैल से ही व्यावहारिक रूप में फौजी-कानून जारी था। सच पूछिए तो लाहौर और अमृतसर में तो १५ अप्रैल को ही फौजी कानून जारी करने की घोषणा की गई थी। उसके बाद ही पंजाब के दो तीन जिलों में वह और जारी कर दिया गया था। १३ अप्रैल (वर्ष-प्रतिपदा) को, जो कि हिन्दुओं के संवत्सर का दिन था, अमृतसर में एक सार्वजनिक सभा करने की घोषणा की गई और जलियांवाला-बाग में एक बड़ी भारी सभा हुई। यह खुला हुआ स्थान शहर के मध्य में है। शहर के मकान ही इसकी चहारदीवारी बनाये हुए हैं। इसका दरवाजा बहुत ही संकड़ा है, इतना कि एक गाड़ी उसमें होकर नहीं निकल सकती। बाग में जब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये, जिनमें पुरुष, स्त्रियां और बच्चे भी थे, जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया। उसके पीछे सशस्त्र सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास गोरे सैनिक थे। जिस समय ये लोग घुसे उस समय हंसराज नाम का एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसी समय जनरल डायर ने घुसते ही गोली चलाने का हुक्म दे दिया। जैसे कि हन्टर कमीशन के सामने अपनी गवाही में उसने कहा था कि उसने लोगों को तितर-बितर होने की आज्ञा दी और फिर बस गोली चलाने का हुक्म दे दिया; लेकिन उसने यह स्वीकार किया कि तितर-बितर हो जाने के हुक्म देने के तीन मिनट बाद ही उसने गोली चलवा दी थी। यह बात तो स्पष्ट ही है कि बीस हजार आदमी दो तीन मिनिट में तितर-बितर नहीं हो सकते थे। और वह भी विशेष कर एक बहुत-तंग दरवाजे में होकर। गोली तब तक चलती रही जब तक कि सारे कारतूस खतम नहीं हो गये। कुल सोलह सौ फैर किये गये थे। सरकार के स्वयं अपने बयान के मुताबिक चार सौ मरे और घायलों की संख्या एक और दो हजार के बीच में थी। गोली हिन्दुस्तानी फौजों से चलवाई गई थी, जिनके पीछे गोरे सिपाहियों को लगा दिया गया था। ये सब-के-सब बाग में एक ऊंचे स्थान पर खड़े हुए थे। सबसे बड़ी दुःखद बात वास्तव में यः थी कि गोली चलाने के बाद मृतक और वे लोग जो सख्त घायल हो गये थे, उन्हें सारी रात वहीं पड़ा रहने दिया गया। वहां उन्हें रातभर न तो पानी ही पीने को मिला और न डाक्टरी या कोई अन्य सहायता ही। डायर का कहना था, जैसा कि बाद को उसने प्रकट किया, "चूंकि शहर फौज के कब्जे में दे दिया गया था और इस बात की डोंडी पिटवा दी गई थी कि कोई भी सभा करने की इजाजत नहीं दी जायगी, तो भी लोगों ने उसकी अवहेलना की, इसलिए मैंने उन्हें एक सबक बता देना चाहा, ताकि वे उसकी खिल्ली न उड़ा सकें।" आगे चलकर उसने कहा कि "मैंने और भी गोली चलाई होती, अगर मेरे पास कारतूस होते। सोलह सौ बार ही गोली चलाई, क्योंकि मेरे पास कारतूस खतम हो गये थे।" उसने और कहा—"मैं तो एक फौजी गाड़ी (आरमर्ड कार) ले गया था, लेकिन वहां जाकर देखा कि वह बाग के भीतर घुस ही नहीं सकती थी। इसलिए उसे वहीं बाहर छोड़ दिया था।"

जनरल डायर के राज्य में कुछ ऐसी भी सजायें देखने को मिलीं जिनका सपने में भी खयाल नहीं हो सकता था। उदाहरण के लिए अमृतसर में नलों में पानी बन्द कर दिया गया था, और बिजली का सिलसिला काट दिया गया था। सबके सामने बेंत लगाना आम तौर पर चालू था। लेकिन 'पेट के बल रेंगने के हुक्म' ने इन सब को मात कर दिया था। मिस शेरवुड नाम की एक पादरी लेडी-डाक्टर पर उस समय कुछ लोगों ने आक्रमण किया था जब कि वह एक गली में साइ-कल पर होकर जा रही थी। इसलिए इस गली में निकलनेवाले हरेक आदमी को पेट के बल रेंगकर जाने की आज्ञा थी। उस गली में जितने आदमी रहते थे, सभी को पेट के बल रेंगकर जाना और

आना पड़ता था, हालांकि उस गली में रहनेवाले भले आदमियों ने ही मिस शेरवुड की रक्षा की थी। तारीफ तो यह है कि बड़ी कौंसिल में क्वार्टर-मास्टर-जनरल हटसन के लिए यह घटना एक हंसी का विषय बन गई थी।

रेलवे-स्टेशनों पर तीसरे दर्जे का टिकट बेचने की मनाही कर दी गई थी। इससे लोगों का सफर करना आमतौर पर बन्द हो गया था। दो आदमियों से अधिक एक-साथ पटरियों पर नहीं चल सकते थे। साइकिलें सब-की सब फौज ने अपने कब्जे में ले ली थीं। केवल यूरोपियन लोगों की साइकिलें उनके पास रहने दी गईं थीं। जिन लोगों ने अपनी दूकानें बन्द कर दी थीं उन्हें खोलने के लिए बाध्य किया गया। न खोलनेवाले के लिए कठोर दण्ड की आज्ञा थी। चीजों की कीमत फौजी अफसरों ने नियत कर दी थी। बैलगाड़ियां उन्होंने अपने कब्जे में कर ली थीं। किले के नीचे नंगा करके सबके सामने बेंत लगवाने के लिए एक चबूतरा बनवाया गया था और शहर के अनेक भागों में बेंत लगवाने के लिए टिकटियां लगवा दी गई थीं।

अमृतसर में खास अदालत द्वारा जिन मुकदमों का फैसला किया गया था, उनके कुछ आंकड़े यहां देते हैं। संगीन जुर्मों के अभियोग में २९८ आदमियों पर मार्शल-ला-कमीशन के सामने मुकदमे चले। मुकदमा चलाने में कानून, सफाई तथा जाब्ते के साधारण नियमों के पालन करने का भी, जिनके अनुसार आम तौर पर हर जगह मुकदमे चलाये जाते हैं, कोई ध्यान नहीं रक्खा गया था। इनमें से २१८ आदमियों को सजायें दी गईं। ५१ को फांसी की सजा; ४६ को आजन्म कालापानी, २ को १०-१० बरस की सजा, ७९ को ७-७ बरस की सजा, १० को ५-५ की, १३ को ३-३ की और ११ को बहुत थोड़ी-मीयाद की सजायें दी गईं। इसमें वे मुकदमे शामिल नहीं हैं जिनका फैसला सरसरी में फौजी अफसरों ने किया था। इनकी संख्या ६० थी, जिनमें से ५० को सजा हुई थी, और १०५ आदमियों को मार्शल-ला के अनुसार मुल्की मजिस्ट्रेटों ने सजा दी थी।

हन्टर-कमिटी के सदस्य जस्टिस रैंकिन के प्रश्न के उत्तर में जनरल डायर ने जो उत्तर दिया था उसे भी हम यहां देते हैं—

जस्टिस रैंकिन—जनरल, मुझे इस प्रकार प्रश्न करने के लिए जरा क्षमा कीजिए, कि आपने जो-कुछ किया वह क्या एक प्रकार का भय-प्रदर्शन नहीं था?

जनरल डायर—नहीं, वह भय-प्रदर्शन नहीं था। वह एक भयानक कर्तव्य था, जिसका मुझे पालन करना पड़ा। मेरा खयाल है, वह एक दयापूर्ण कार्य था। मैंने सोचा कि मैं खूब अच्छी तरह गोली चलाऊं और इतने जोर के साथ चलाऊं कि मुझे या अन्य किसी को फिर कभी गोली न चलानी पड़े। मेरा खयाल है कि यह सम्भव है कि बिना गोली चलाये हुए भी मैं भीड़ को तितर-बितर कर देता। लेकिन वे फिर वापस आ जाते और मेरी हंसी उड़ाते और मैं बेवकूफ बना होता।

जनरल डायर के कार्य को सर माइकेल ओडायर ने, जो पंजाब के गवर्नर थे, उचित ठहराया था। आपकी ओर से जनरल डायर को एक तार दिया गया था, जिसमें लिखा था—"आपका कार्य ठीक था। लेफ्टीनेन्ट गवर्नर सराहना करते हैं।"

उपर्युक्त बातें जो लिखी गई हैं वे तो वे हैं जिन्हें हन्टर कमीशन के सामने १९२० के आरम्भ में जनरल डायर ने स्वयं स्वीकार किया था। अमृतसर की दुर्घटना के बाद, पंजाब से आने और जाने वाले लोगों पर इतनी कड़ी निगरानी थी कि दुर्घटना का विस्तारपूर्वक समाचार कांग्रेस-कमिटी को भी जुलाई १९१९ से पहले नहीं ज्ञात हो सका और मालूम भी हुआ तो खुल्लमखुल्ला नहीं। कलकत्ते के लॉ-एसोसियेशन के भवन में जब कांग्रेस-कमिटी की बैठक हो रही थी, यह समाचार कानों-कान उसते-

डरते कहा गया—फिर भी यह सावधानी रक्खी गई कि यह समाचार औरों से न कहा जाय। पंजाब की दुर्घटना अमृतसर तक ही सीमित न रही। बल्कि लाहौर, गुजरानवाला और कसूर आदि स्थानों को भी अत्याचार और बर्बरतापूर्ण अमानुष-कृत्यों का शिकार होना पड़ा था, जिनकी कथा, सुनकर खून खौलने लगता है।

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार, अन्य स्थानों की अपेक्षा लाहौर में फौजी कानून का बहुत जोर था। करफ्यू-आर्डर तो तुरन्त ही जारी कर दिया गया था। यदि कोई व्यक्ति शाम के ८ बजे के बाद बाहर निकलता तो वह गोली से मार दिया जा सकता था, बेंत लगाये जा सकते थे, जुर्माना हो सकता था, कैद हो सकती थी, या और कोई दण्ड दिया जा सकता था। जिनकी दुकानें बन्द थीं उन्हें खोलने की आज्ञा दे दी गई थी। न खोले उसे या तो गोली से उड़ाया जा सकता और या उसकी दुकान खोलकर सारा सामान लोगों में मुफ्त बांट दिया जा सकता था।

वकील तथा दलालों को यह आज्ञा दे दी गई थी कि वे शहर से बाहर कहीं न जावें। जिनके मकानों की दीवारों पर फौजी कानून के नोटिस चिपकाये गये थे उन्हें यह हुक्म दे दिया था कि वे उनकी हिफाजत करें और यदि किसीने उन्हें बिगाड़ दिया या फाड़ दिया तो वे सजा के मुस्तहक होंगे, हालांकि रात्रि के समय उन्हें बाहर रहने की इजाजत नहीं थी। एक-साथ बराबर दो आदमियों से अधिक के चलने की मनाही थी। कॉलेज के विद्यार्थियों के लिए यह आज्ञा थी कि वे दिन में चार बार, फौजी अफसरों के सामने, विभिन्न स्थानों पर हाजिरी दिया करें। लंगर या अन्न-क्षेत्र बन्द कर देने का हुक्म दे दिया गया था। हिन्दुस्तानियों की मोटर-साइकिलें तथा मोटरों को फौज में जमा कर देने का हुक्म जारी कर दिया था। इतना ही नहीं, अधिकारियों को वे इस्तेमाल के लिए भी दे दी गई थीं। हिन्दुस्तानियों के पास अपने जो बिजली के पंखे थे उन्हें तथा बिजली के अन्य सब सामानों को घरों से निकलवाकर गोरे सिपाहियों के इस्तेमाल के लिए जमा करा लिया गया था। किराये पर चलनेवाली सवारियों को शहर से बहुत दूर एक स्थान पर जाकर हाजिरी लिखानी पड़ती थी। एक दिन एक बूढ़ा आदमी, शाम के आठ बजे के बाद, अपनी दुकान के द्वार के बाहर गली में अपनी गाय की देखभाल करते पाया गया। वह तुरन्त ही गिरफ्तार कर लिया गया और करफ्यू-आर्डर तोड़ने के इलजाम में उसके बेंत उड़वा दिये गये। तांगेवालों ने भी हड़तालमें भाग लिया था। इन लोगों को सबक सिखाने के लिए ३०० तांगे जमा कर लिये गये थे, और यह हुक्म दे दिया गया था कि वे नगर की घनी आबादी से बाहर, कुछ खास मुकर्रिर वक्त और जगहों पर, अपनी हाजिरी दिया करें। इसमें तुर्रा यह था कि फौजी अफसर, चाहे जिस तांगे को, चाहे जब, अपनी इच्छा पर ही रोक लेता था और इसमें उसकी दिन-भर की कमाई पर पानी फिर जाता था। कर्नल जॉनसन ने इस बात को स्वीकार किया था कि उसकी बहुत-सी आज्ञायें पढ़े लिखे तथा पेशेवर आदमियों के लिए ही थीं, जैसे वकील आदि। उसका खयाल था कि यही वे लोग हैं जिनमें से राजनैतिक आन्दोलन करनेवाले पैदा होते हैं। व्यापारी लोग तथा अन्य निवासियों को, जिनकी इमारतों पर फौजी कानून के आर्डर चिपके हुए थे, उन नोटिसों की रक्षा के लिए चौकी-पहरा बिठाना पड़ा था ताकि उन्हें कोई बिगाड़ या फाड़ न जाय। मुमकिन था कि पुलिस का गुर्गा ही उन्हें फाड़-फूड़ जाय। एक आदमी ऐसा पकड़ा गया था। जब लोगों ने चौकीदारों के लिए पासों की दरख्वास्त दी ताकि वे लोग रात के ८ बजे के बाद बाहर रहकर उन नोटिसों की रखवाली कर सकें तो उत्तर मिला था कि उन्हें अपने लिए पास मिल सकते हैं, नौकरों के लिए नहीं। १६ से २० वर्ष की उम्र के लड़कों तथा विद्यार्थियों पर विशेष-रूप से कड़ी नजर थी। लाहौर जैसे शहर में, जहां कई कॉलेज हैं, विद्यार्थियों को दिन में चार बार हाजिरी देने का हुक्म था।

जहां हाजिरी ली जाती थी उनमें एक हाजिरी का स्थान कॉलेज से ४ मील दूरी पर था। अप्रैल मास की कड़ाके की धूप में, जोकि पंजाब में वर्ष का सबसे अधिक गर्म महीना होता है और जबकि गरमी १०८ डिग्री से ऊपर होती है, इन नौजवानों को रोजाना १६ मील पैदल चलना पड़ता था। इनमें से कुछ तो रास्ते में बेहोश होकर गिर भी जाते थे। कर्नल जॉनसन का खयाल था कि इसमें उनको लाभ होता है और वे शरारत करने से बाज रहते हैं। एक कॉलेज की दीवार से फौजी कानून का एक नोटिस फाड़ डाला गया था। इस अपराध में कॉलेज के वेतनभोगी सारे कर्मचारी, जिनमें कॉलेज के प्रिन्सिपल भी शामिल थे गिरफ्तार कर लिये गये थे और फौजी पहरे में उन्हें किले तक क़वायद करते हुए ले जाया गया था, जहां कि फौजी पहरे में तीन दिन तक कैद रक्खे गये थे। किले के एक कोने में उन्हें रहने को स्थान दिया गया था।

इतना होने पर भी कर्नल जॉनसन, इन दिनों में जो-कुछ भी उन्होंने किया उससे, बहुत ही प्रसन्न थे; और लाहौर के यूरोपियनों ने तो उन्हें विदाई देते समय एक दावत दी थी और "गरीबों का रक्षक" की उपाधि से अलंकृत करके उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी। गुजरानवाला में कर्नल ओब्रायन ने, कसूर में कैप्टिन डोवटन ने और शेखूपुरा में मिस्टर बॉसवर्थ स्मिथ ने खास तौर पर अत्याचार करने में खूब ही नाम कमाया था।

कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने अपनी गवाही में कहा था कि भीड़ जहां कहीं पाई गई वहीं उस पर गोली चला दी गई। यह बात उन्होंने हवाई जहाजों के सम्बन्ध में कही थी। एक बार एक हवाई जहाज ने, जो कि लेफ्टिनेण्ट डॉडकिन्स के चार्ज में था, एक खेत में २० किसानों को एकत्र देखा। उन्होंने उन पर मशीनगन से तब तक गोली चलाई जब तक कि वे भाग नहीं गये। उन्होंने एक मकान के सामने आदमियों के एक झुण्ड को देखा। वहां एक आदमी व्याख्यान दे रहा था। इसलिए वहां उन्होंने उन पर एक बम गिरा दिया; क्योंकि उनके दिल में इस तरह का कोई शक नहीं था कि वे लोग किसी शादी या मुर्दनी के लिए एकत्र नहीं हुए थे। मेजर कार्बी वह सज्जन हैं जिन्होंने लोगों के एक दल पर इसलिए बम-बरसाये कि उन्होंने सोचा कि ये लोग बलवाई हैं, जो शहर से आ जा रहे हैं। उन्हीं के शब्दों में सुनिए—

"लोगों की भीड़ दौड़ी जा रही थी और मैंने उनको तितर-बितर करने के लिए गोली चला दी। ज्योंही भीड़ तितर-बितर हो गई, मैंने गांव पर भी मशीनगन लगा दी। मेरा खयाल है कि कुछ मकानों में गोलियां लगी थीं। मैं निर्दोष और अपराधी में कोई पहचान नहीं कर सकता था। मैं दो सौ फीट की ऊंचाई पर था और यह भले प्रकार देख सकता था कि मैं क्या कर रहा हूं। मेरे उद्देश्य की पूर्ति केवल बम बरसाने से नहीं हुई। गोली केवल नुकसान पहुंचाने के लिए ही नहीं चलाई गई थी, वह स्वयं गांव वालों के हित के लिए चलाई गई थी। कुछ को मार कर मैं समझता था, मैं गांव वालों को फिर एकत्र होने से रोक दूंगा। मेरे इस कार्य का असर भी पड़ा था। इसके बाद शहर की तरफ मुड़ा। वहां बम बरसाये और उन लोगों पर गोलियां चलाईं जो भाग जाने की कोशिश कर रहे थे।"

गुजरानवाला, कसूर और शेखूपुरा में भी अमृतसर और लाहौर के समान ही करफ्यू-आर्डर जारी कर दिया गया था, हिन्दुस्तानियों की आमद-रफ्त रोक दी गई थी, एकान्त में और सब के सामने बेंत लगवाये जाते थे, झुण्ड-के झुण्ड एक-साथ गिरफ्तार कर लिये जाते थे और सरकारी तथा खास अदालतों से सजायें दिला दी जाती थीं।

कर्नल ओब्रायन ने एक यह हुक्म जारी किया था कि जब कोई हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेज

अफसर को मिले तो वह उसको सलाम करे, अगर सवारी में जा रहा हो या घोड़े पर सवार हो तो उतर जाय, अगर छाता लगाये हुए हो तो उसे नीचे झुका दे। कर्नल ओब्रायन ने कमिटी के सामने कहा था कि "यह हुक्म इसलिए अच्छा था कि लोगों को यह मालूम हो जाय कि उनके नये मालिक आये हैं।" लोगों के कोड़े लगवाये गये, जुर्माना किया गया और पूर्वोक्त राक्षसी हुक्म न मानने पर अन्य अनेक प्रकार की सजायें दी गईं। उन्होंने बहुत से आदमियों को गिरफ्तार कराया था, जिनको बिना मुकदमा चलाये ही ६ हफ्ते तक जेल में रक्खा। एक बार उन्होंने शहर के बहुत-से प्रमुख नागरिकों को यकायक पकड़कर मालगाड़ी के एक डिब्बे में भर दिया। उस डिब्बे में उन लोगों को एक के ऊपर एक करके लाद दिया। सो भी तब जबकि वे कड़ाके की धूप में कई मील पैदल चलाकर लाये गये थे। कुछ लोगों के बदन पर तो पूरे कपड़े भी नहीं थे। मालगाड़ी के डिब्बे में भरकर उन्हें लाहौर भेज दिया था। उन्हें पाखाना पेशाब तक करने की आज्ञा नहीं दी गई थी। इसी अवस्था में वे मालगाड़ी के डब्बे में ४४ घण्टे तक रक्खे गये। उनकी जो भयानक दयनीय दशा हो गई थी उसका वर्णन करके बताने की आवश्यकता नहीं। वे जिस समय गलियों में हो कर ले जाये जा रहे थे, उस समय उनके साथ-साथ रास्ते-चलते और लोग भी यों ही पकड़ लिये जाते थे और इसलिए उनकी संख्या सदैव बढ़ती रहती थी। उन्हें हाथों में हथकड़ियां डालकर और जंजीरों से बांधकर निकाला गया था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जंजीरों में बांध कर ले जाये गये थे। लोग समझते थे कि हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य का यह मजाक उड़ाया जा रहा है। कर्नल ओब्रायन का कहना था कि यह इत्तिफाक से हुआ था। यह सारी कार्रवाई किस स्पिरिट में की जा रही थी, इसे देखने के लिए इतना बता देना काफी होगा कि नगर के एक वयोवृद्ध महानुभाव भी इस घटना के शिकार हुए थे। वे शहर के एक बड़े ही उपकारक सज्जन थे, जिन्होंने एक लाख रुपया सम्राट् की भारत-यात्रा के उपलक्ष्य में किंग जार्ज स्कूल को दान दिया था। बाद में रेलीफ-फण्ड और वार-लोन में भी उन्होंने बहुत कुछ रुपया दिया था।

दूसरी मिसाल, कर्नल ओब्रायन के कारनामों की, यह है कि उन्होंने एक बूढ़े किसान को गिरफ्तार किया था। वह इसलिए कि वह बेचारा अपने दो लड़कों को पेश नहीं करा सका। इतना ही नहीं, आपने उसकी सारी सम्पत्ति भी जब्त कर ली थी और लोगों को यह चेतावनी दे दी थी कि अगर किसी ने भी उसको अपनी फसल से मदद की तो उसे गोली से उड़ा दिया जायगा। उन्होंने कमिटी के सामने यह स्वीकार किया था कि बुड्ढे ने स्वयं—कोई अपराध नहीं किया था, "लेकिन उसने यह नहीं बताया कि उसके बेटे कहां हैं।"

कर्नल ओब्रायन के बड़े-बड़े कारनामे के इतिहास में से ये कुछ नमूने यहां दिये गये हैं। दो सौ आदमियों को सरसरी अदालतों से सजायें मिलीं। बेंत की सजा या एक महीने से लेकर दो वर्ष तक की सजा का दण्ड दिया गया। कमीशन ने १४९ आदमियों को सजा दी जिनमें से २२ को फांसी, १०८ को आजन्म कालापानी तथा शेष को दस साल और उससे कम की सजा का दण्ड दिया गया था। कर्नल ओब्रायन का अन्तिम कार्य यह था कि उन्हें जब यह मालूम हुआ कि कल फौजी कानून समाप्त होनेवाला है तो उन्होंने बहुत-से लोगों के मुकदमों को २४ घण्टे के भीतर ही खतम कर देने की व्यवस्था की। ओब्रायन महाशय इतने आतुर थे कि जिन मुकदमों की तारीख कई दिन पहले की डाली गई थी उनका अदालत-द्वारा तत्काल ही फैसला करा दिया कि कहीं ऐसा न हो कि फौजी कानून खतम हो जाय और लोग उनके न्याय से वञ्चित रह जायं!

कैप्टिन डोवटन कसूर के इलाके में एक प्रकार से सर्वे-सर्वा ही थे। इस स्थान पर लोगों को

खुलेआम फांसी देने के लिए एक फांसी-घर बनाया गया। यह स्थान वहां निवासियों के लिए, एक आतंकगृह होगया था। रेलेवे-स्टेशनके पास एक बड़ा पिंजड़ा बनवाया गया था, जिसमें १५० आदमी रक्खे जा सकते थे। जिन लोगों के ऊपर संदेह होता था उन्हें इसमें बन्द कर दिया जाता था, ताकि आम जनता उन्हें देख सके। नगर के सारे पुरुष-निवासियों की परेड सनाख्त करने के लिए कराई जाती थी।

लोगों को खुलेआम बैंत लगवाये गये। लोगों को सिर से पैर तक नंगा करके तार के खम्भे या टिकटिकियों से बांधा जाता था। वह सार्वजनिक प्रदर्शन सोच समझ के निश्चत किया हुआ था। एकबार नंगा करके पिटता हुआ देखने के लिए शहर की वेश्याओं को लाया गया था। इस घटना के लिए कैप्टिन साहब को हण्टर-कमीशन के सामने गवाही देते हुए जब अधिक दबाया गया तो कुछ 'शर्म' मालूम हुई थी – ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कर्नल जॉनसन को एक बरात को बैंत लगवाने के मामले में कमिटी के सामने 'दुःख हुआ था'। कैप्टिन साहब का कहना था कि उन्होंने पुलिस सब-इन्सपेक्टर को हुक्म दिया था कि बदमाशों को बैंत लगते देखने के लिए लोगों को बुला लाओ। लेकिन जब वहां मैंने स्त्रियों को देखा तो मैं दंग रह गया। परन्तु कैप्टिन साहब उन वेश्याओं को वापस इसलिए नहीं भेज सके कि उनके पास उस समय उन्हें पहुंचाने के लिए सिपाही न थे। सो वे बैंतों की मार देखने के लिए वहां-की वहीं बनी रहीं।

कैप्टिन डोवटन छोटी-मोटी सजाओं का आविष्कार करने में बड़े दक्ष थे। उनके आविष्कार करने में उनका एकमात्र उद्देश्य यह था, उनको "इतना आसान और नरम बनाना" जितना कि उस परिस्थिति में सम्भव था। फौजी कानून के अपराधियों से रेलेवे-स्टेशनों के माल-गोदामों पर माल-गाड़ियों में माल लादने और उतारने का काम लिया जाता था। उन्होंने एक ऐसा नियम चलाया कि जिसके अनुसार लोगों को नाक रगड़नी पड़ती थी।

मि० बॉसवर्थ स्मिथ एक सिविलियन अफसर थे जिन्होंने शेखूपुर में फौजी कानून का दौर-दौरा किया था। उन्होंने अपने बयान में इस बात को स्वीकार किया था कि फौजी-कानून 'आवश्यक तो न था, परन्तु मेरी राय में वह वांछनीय' अवश्य था। उन्होंने अपने हलके के सारे मुकदमों का फैसला किया था और जैसा कि अन्य स्थानों में हुआ था, उनके यहां से भी बैंत की सजायें दी जाती थीं और, अदालत उठते ही अपराधियों के बैंत लगवा दिये जाते थे। ६ मई से २० मई तक उन्होंने ४७७ आदमियों के मुकदमे किये थे।

फौजी अधिकारियों ने एक हुक्म जारी किया था, जिसके अनुसार स्कूल के लड़के बाध्य थे कि वे दिन में तीन बार परेड करें और झण्डे को सलामी दें। यह हुक्म स्कूल की छोटी जमातों के बच्चों के लिए भी लागू था, जिनमें ५ और ६ बरस तक के बच्चे भी शामिल थे। कितने ही बच्चे लू लगने से मर गये थे। कुछ मौकों पर लड़कों से यह कहलाया जाता था, "मैंने कोई अपराध नहीं किया है, मैं कोई अपराध नहीं करूंगा, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है, मुझे अफसोस है!"

मेजर स्मिथ से, जो कि गुजरानवाला, गुजरात और लायलपुर में फौजी कानून के अधिष्ठाता थे, जब सर चिमनलाल सीतलवाड़ ने पूछा कि "आया यह हुक्म उनके सारे इलाके-भर में लागू कर दिया गया था और आया यह सब क्लासों पर लागू था और छोटे बच्चोंकी क्लास भी इसमें शामिल थी?" मेजर ने जवाब दिया कि उनके इलाकों में जहां-जहां फौजें थीं वहां-वहां सब जगह हुक्म किया गया था। यहां तक कि पांच और छः बरस तक के बच्चों से भी परेड कराई जाती थी। लेकिन छोटे बच्चों को शाम की परेड में शामिल होने से बरी कर दिया गया था।

कर्नल ओब्राइन ने अपनी गवाही में कहा था, कि मैं एक दिन वजीराबाद में था। मैंने देखा कि एक लड़का झण्डे की ओर मार्च करने में बेहोश होकर गिर गया। मैंने फौज के अधिकारियों को इसके सम्बन्ध में लिखा। दूसरे दिन दो की जगह तीन बार परेड कराई गई थी। इस प्रश्न के उत्तर में, कि यदि ऐसा किया था तो क्या यह बच्चों के साथ सख्ती नहीं हुई ? कर्नल ओब्राइन ने उत्तर दिया, 'नहीं।'

कुछ भी हो, मि० बॉसवर्थ के दिमाग में लोगों से अफसोस जाहिर कराने की भावना अवश्य प्रबल रही थी। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि उनका विचार एक "प्रायश्चित-गृह" बनाने का था। लेकिन उन्होंने इस बात से इन्कार किया कि इस इमारत में दस हजार रुपये लगे थे। इन घटनाओं के विस्तृत वर्णन पढ़ने के इच्छुकों को तो कांग्रेस-कमिटी के सामने दी गई गवाहियां और कांग्रेस की रिपोर्ट पढ़नी चाहिए।

दुर्घटनाओं के बाद

गांधीजी के हृदय को, घटनाओं के ऐसा अकल्पित रूप धारण कर लेने से बहुत बड़ा धक्का लगा। उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि मैंने हिमालय के समान महान् भूल की है। अतः उन्होंने एक ओर तो सत्याग्रह को स्थगित कर दिया और दूसरी ओर यह घोषणा की, कि मैं शान्ति स्थापित करने में हर प्रकार से सहायता करने को तैयार हूं। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १४ अप्रैल १९१९ को एक हुक्म निकाला, जिसमें स्पष्ट शब्दों में सरकार की यह इच्छा घोषित की गई थी कि वह उत्पातों का शीघ्र ही अन्त कर देनेके लिए जितनी शक्ति उसके पास है उस सबको लगा देगी। इसी बीच तीसरे अफगान-युद्ध ने पञ्जाब की स्थिति को और भी पेचीदा बना दिया। ४ मई को सारी फौज युद्ध के लिए तैयार कर ली गई थी। इधर फौजी कानून अपने खूनी कारनामों को ११ जून तक बराबर चलाता रहा और रेलवे के अहातों में तो यह बहुत दिनों तक इसके बाद भी जारी रहा था। फौजी कानून को आवश्यक-रूप से एक मुद्दत तक जारी रखने के विरोध में सर शंकरन् नायर ने १९ जुलाई को वाइसराय की कार्यकारिणी से इस्तीफा दे दिया। इस सारे समय में पञ्जाब पर एक कठोर सेंसर बिठा दिया गया था। एण्डरूज साहब को पञ्जाब की भूमि में कदम रखने की मनाही कर दी गई थी। बाद में उन्हें गिरफ्तार करके अमृतसर भेज दिया। यह मई मास के प्रारम्भ की बात है। मिस्टर ई० नार्टन बैरिस्टर को, जो कि पञ्जाब इसलिए जाना चाहते थे कि वहां कैदियों की पैरवी करें, पञ्जाब में घुसने की मनाही कर दी गई थी। चारों ओर से पञ्जाब में हुए अत्याचारों की जांच के लिए एक कमीशन बैठाने की पुकार मच रही थी। खास फौजी अदालतों-द्वारा जो लोगों को घातकी और जङ्गली सजायें दी गई थीं उन्हें भी कम करने के लिए एक देश-व्यापी मांग थी। लाला हरकिशनलाल को, जो कि एक प्रतिष्ठित कांग्रेसी और बहुत बड़े धनिक व्यक्ति थे, आजन्म कालेपानी की सजा दी गई थी। ४० लाख रुपये के लगभग की उनकी सारी सम्पत्ति भी जब्त करने का हुक्म दिया गया था।

सितम्बर १९१९ में वाइसराय ने हन्टर-कमीशन की नियुक्ति की घोषणा की, कि वह पञ्जाब के उपद्रवों की जांच करेगा। परन्तु इसके साथ ही, १८ सितम्बर को, इनडेम्निटी-बिल आया, जो कि आम तौर पर फौजी-कानून के साथ आया करता है। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने इसे मुल्तवी कराने के लिए बहुतेरा जोर लगाया, वे साढ़े चार घण्टे तक बराबर बोले, लेकिन जवाब यह दिया गया कि बिल की मंशा केवल कानूनी सजा से रहित रखने की ही है—उन अधिकारियों को जिन्होंने 'शान्ति और व्यवस्था के कायम रखने की इच्छा से प्रेरित होकर ही' सब कुछ किया था। फिर भी उनके साथ महकमे की कार्रवाई तो की ही जा सकती है।

सर दीनशा वाचा ने यह घोषित किया कि इनडेम्निटी-बिल के सम्बन्ध में सरकार का जो रुख है वह ठीक है। श्री वेसेण्ट, जो अब तक बराबर गांधीजी से लड़ती रही थीं, बोलीं कि रौलट-बिल में कोई भी ऐसी बात नहीं है जिसपर कि किसी ईमानदार नागरिक को ऐतराज हो सके। "जब लोगों की भीड़ सिपाहियों पर रोड़े बरसावे तब सिपाहियों को गोली के कुछ फैर करने की आज्ञा दे देना अधिक दयापूर्ण है।" इस लेख के बाद ही श्रीमती वेसेण्ट के नाम के साथ यह वाक्य—"ईंट के रोड़ों के बदले में बन्दूक की गोलियां"—सदा के लिए जुड़ गया था। इस समय श्रीमती वेसेण्ट की लोकप्रियता रसातल को पहुंच गई थी।

२० और २१ अप्रैल को महासमिति की बैठक हुई, उसमें सरकार ने गांधीजी को दिल्ली और पञ्जाब से देश-निकाले का जो हुक्म दिया था उसका विरोध किया गया और पञ्जाब में किये गये अत्याचारों की जांच करने पर जोर दिया गया। देश में जो गम्भीर राजनैतिक परिस्थिति पैदा होगई थी उसको मद्देनजर रखते हुए श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर का एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड भेजने का भी निश्चय हुआ। ये लोग २९ अप्रैल १९१९ को इंग्लैण्ड के लिए रवाना भी हो गये थे। ८ जून को महासमिति की दूसरी बैठक इलाहाबाद में हुई। इधर गवर्नर-जनरल ने २१ अप्रैल को ही एक आर्डिनेन्स जारी कर दिया था, जिसमें पञ्जाब की सरकार को यह अधिकार दे दिया था कि ३० मार्च तक जितने जुर्म हुए हों उनका मुकदमा वह खास फौजी अदालत द्वारा करा सके। गिरफ्तार शुदा लोगों को अपने इच्छानुसार वकील चुनने की इजाजत नहीं थी। देश के सारे प्रमुख-पत्रों के सम्पादकों ने, श्रीमती वेसेण्ट ने और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भी, एण्डरूज साहब से अनुरोध किया था कि वह पञ्जाब जाकर दुर्घटना और उपद्रव के सम्बन्ध में स्वतन्त्र रूप से जांच करें। पर वहां गिरफ्तार कर लिये गये। ८ जून की बैठक में इस और अन्य दूसरे मामलों पर विचार हुआ था। उसमें यह बात भी सुझाई गई कि तहकीकात के लिए जो कमिटी नियत हो वह पञ्जाब जाकर इस बात की भी जांच करे कि सर माइकेल ओडायर के शासन में फौज के लिए रंगरूट भरती करने में किन हथकण्डों और ढंगों को काम में लाया गया था, किस प्रकार 'लेबर कोर' में आदमियों को भरती किया था, किस प्रकार लड़ाई के लिए कर्ज लिया गया, और फौजी-कानूनों के दिनों में किस प्रकार शासन किया गया था। मि० हार्निमैन को इसलिए देश-निकाला कर दिया गया था, कि उन्होंने 'बाम्बे क्रानिकल' में सरकार की पंजाब-सम्बन्धी नीति की कड़े शब्दों में निन्दा की थी। महासमिति ने इस सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया कि सरकार हार्निमैन साहब को दिये गये देश-निकाले के हुक्म को मंसूख कर दे।

यहां पर प्रसंगवश यह बात भी बता देना अनुचित न होगा कि हार्निमैन साहब के चले जाने के कारण लोगों को एक राष्ट्रीय-पत्र की आवश्यकता अनुभव होने लगी, जिसकी 'यंग-इंडिया' द्वारा पूर्ति करने का यत्न किया गया। आरम्भ में 'यंग-इण्डिया' को श्री जमनादास द्वारकादास ने होमरूल के दिनों में निकाला था। बाद में वह एक संस्था के हाथों में आ गया। श्री शंकरलाल बैंकर इस संस्था के एक सदस्य थे। जब मि० हार्निमैन को देश-निकाला दे दिया गया, और 'बाम्बे क्रानिकल' के ऊपर कड़ा सेंसर बिठा दिया गया था, तब गांधी जी ने 'यंग-इण्डिया' को अपने हाथों में ले लिया।

हां, तो फिर महासमिति ने एक कमिटी इसलिए नियुक्त की कि वह पंजाब की दुर्घटनाओं की जांच करे, इस सम्बन्ध में इंग्लैण्ड तथा दोनों स्थानों में आवश्यक कानूनी कार्रवाई करे और इस कार्य के लिए धन एकत्र करे। इस कमिटी में बाद को, यानी १६ अक्तूबर को, गांधीजी, एण्डरूज

स्वामी श्रद्धानन्द तथा अन्य लोगों को भी शामिल कर लिया गया था। नम्बवर के प्रारम्भ में मि० एएडरूज को तो यकायक ऐन मौके पर दक्षिण-अफ्रीका चला जाना पड़ा था। उन्होंने गवाहियों के रूप में जितनी सामग्री एकत्र की थी वह सब कांग्रेस-कमिटी को देते गये थे। यह भी निश्चय हुआ था कि लन्दन और बम्बई के श्री नेविली और कैप्टिन को, जो कि क्रमशः दोनों स्थानों में सालिसिटर थे, इस कमिटी में सहायता के लिए रख लिया जाय। महासमिति की तरफ से एक तार पण्डित मदन-मोहन मालवीय ने प्रधानमंत्री को, एक भारत-मन्त्री को, और एक लार्ड सिंह को दिया था, जिसमें इन लोगों से अनुरोध किया गया था कि जबतक कांग्रेस की जांच पूरी न हो जाय तबतक फौजी कानून के अनुसार दी गई तमाम सजायें मुल्तवी रक्खी जायं। इस समय तक सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह प्रिवी-कौंसिल के मेम्बर हो गये थे, नाइट हो गये थे, और लार्ड हो गये थे। तभी से वे रायपुर के लॉर्ड सिंह कहलाये जाने लगे। वह उपभारत-मन्त्री नियुक्त किये गये, और बाद में उन्होंने ही लॉर्ड सभामें गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया बिल पेश किया था। १९ और २० जुलाई को कलकत्ते में महासमिति की बैठक फिर हुई, जिसमें विचारणीय मुख्य बात यह थी कि कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कहां किया जाय और उसे अमृतसर में ही करने का निश्चय हुआ। एक प्रस्ताव द्वारा उस मांग को फिर दोहराया गया था जिसमें सम्राट् की सरकार-द्वारा जांच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने की प्रार्थना की गई थी। यहां यह बात स्मरण रखने योग्य है कि १९ जुलाई को ही सर शंकरन् नायर ने वाइसराय की कार्यकारिणी से फौजी-कानून जारी रखने के विरोध में इस्तीफा दे दिया था। महासमिति ने उनके इस्तीफे की बड़ी कृतज्ञता-पूर्वक सराहना की, और उनसे प्रार्थना की कि वे तुरन्त ही इंग्लैण्ड के लिए रवाना हो जायं और वहां जाकर भली प्रकार से पञ्जाब के मामले को रक्खें और उन लोगों के सारे दुःखों को दूर करावें। १० हजार रुपये की एक रकम पञ्जाब कमिटी के लिए जमा की गई। २१ जुलाई को गांधीजी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ, जिसमें सत्याग्रह को कुछ समय के लिए स्थगित करने का जिक्र था। वह इस प्रकार है—

"बम्बई के गवर्नर के द्वारा भारत-सरकार ने मुझे एक बहुत ही गम्भीर चेतावनी दी है, कि सत्याग्रह के फिर से आरम्भ करने से जनता के लिए बहुत ही बुरा परिणाम निकल सकता है। बम्बई के गवर्नर ने मुझे मिलने के लिए बुलाया था, उस समय यह चेतावनी उन्होंने और भी जोर के साथ दोहराई थी। इन चेतावनियों को और दीवानबहादुर एल०ए० गोविन्द राघव ऐयर, सर नारायण चंदावरकर तथा अन्य कई सम्पादकों ने जो खुले रूप से इच्छा प्रकट की उन सबको ध्यान में रखकर, मैंने बहुत सोच-विचार करने के बाद यह निश्चय किया है कि फिलहाल सत्याग्रह आरम्भ न करूं। मैं यहां पर इतना और बता देना चाहता हूं कि उन कुछ मित्रों ने भी, जो गरम-दल के माने जाते हैं, मुझे यही सलाह दी है। उनका कहना सिर्फ इतना ही था कि इससे सम्भव है वे लोग, जिन्होंने सत्याग्रह के सिद्धान्त को भले प्रकार नहीं समझा है, फिर मार-काट कर बैठें। जब दूसरे सत्याग्रहियों के साथ में इस नतीजे पर पहुंचा कि अब समय आगया है कि सविनय-भंग के रूप में सत्याग्रह शुरू कर दिया जाय, तब मैंने वाइसराय को एक पत्र भेजकर उन पर अपना यह इरादा प्रकट कर दिया और उनसे यह अनुरोध किया था कि वे रौलट-बिल को वापस ले लें, एक जोरदार और निष्पक्ष कमिटी शीघ्र नियुक्त करने की घोषणा करें, जिसे यह भी अधिकार रहे कि पञ्जाब की दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में दी गई सजाओं की फिर से निगरानी कर सके और बा० कालीनाथ राय (सम्पादक 'ट्रिब्यून') को जिनके मुकदमे के कागजात देखकर सिद्ध होता है कि उन्हें अन्याय-पूर्वक दण्ड दिया गया है, छोड़ दें। भारत-सरकार ने श्री राय के मामले में जो निर्णय किया उसके लिए वह धन्यवाद की पात्र

है, यद्यपि इससे उनके साथ पूरा न्याय नहीं होता। मुझे इस बात का विश्वास दिलाया गया है कि जिस जांच-कमिटी के लिए मैंने जोर दिया था वह नियुक्त की जा रही है। सद्भावना के इन प्रमाणों के मिलते हुए मेरी ओर से यह बड़ी ही नासमझी होगी, यदि मैं सरकार की चेतावनी पर ध्यान न दूं। वास्तव में मेरा सरकार की सलाह मान लेना लोगों को सत्याग्रह का पाठ पढ़ाना है। एक सत्याग्रही कभी सरकार को विषम-स्थिति में डालना नहीं चाहता। मैं अनुभव करता हूं कि मैं देश की सरकार की और उन पञ्जाबी नेताओं की, जिन्हें कि मेरी राय में अन्याय-पूर्वक सजा दी गई है, और वह भी बड़ी ही निर्दयतापूर्वक, और भी अधिक सेवा करूंगा, यदि मैं इस समय सत्याग्रह को स्थगित कर दूँ। मेरे ऊपर यह इल्जाम लगाया गया है कि आग तो मैंने ही लगाई थी। अब मेरा कभी-कभी सत्याग्रह करना आग लगाना है, तो रौलट-कानून और उसे कानून की किताब में ज्यों-का-त्यों बनाये रखने का हठ देश के हजार स्थानों में आग लगाना है। सत्याग्रह फिर से न होने देने का एक-मात्र उपाय यही है कि उस कानून को वापस लेलिया जाय। भारत-सरकार ने उस बिल के समर्थन में जो कुछ भी प्रमाण दिये हैं उनसे भारतीय-जनता के दिल पर कोई ऐसा असर नहीं हुआ है जिससे उसके विरोधी रुख में कोई परिवर्तन हो जाय।" अन्त में गांधीजी ने अपने साथी सत्याग्रहियों को सलाह दी कि वे हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को बढ़ावें और स्वदेशी के प्रचार में सबका सहयोग प्राप्त करें।

इस समय इंग्लैण्ड में लॉर्ड सेलबार्न की अध्यक्षता में संयुक्त पार्लमेण्टरी कमिटी की बैठक हो रही थी। अब हम यहां भारत से इंग्लैण्ड को गये हुए शिष्ट-मण्डलों की कार्रवाई को देखें, यद्यपि हमारा मुख्य सम्बन्ध कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल से ही है, जिसमें श्री विट्ठलभाई पटेल और वी०पी० माधवराव ने बड़ी योग्यता से भारतवर्ष का पक्ष उपस्थित किया था। इनके साथ लोकमान्य तिलक, विपिनचन्द्र पाल, गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे, डाक्टर प्राणजीवन मेहता, ए० रङ्गास्वामी आयंगर, नृसिंह चिन्तामणि केलकर, सय्यद हसनइमाम, डा० साठये, मि० हार्निमैन आदि भी थे। इस शिष्ट-मण्डल का काम था कि वह ब्रिटिश जनता के सामने भारतवर्ष के दावे को रक्खे। श्री वी० पी० माधवराव मैसूर राज्य के भूतपूर्व दीवान थे। उनकी शिष्टता और सौजन्य तथा स्पष्टवादिता और स्वतन्त्रता-प्रिय स्वभाव ने कांग्रेस को इंग्लैण्ड की जनता की नजरों में बहुत ही ऊंचा उठा दिया था और मि० बेन स्पूर (एम० पी०) जैसों ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की थी।

भारतीय प्रतिनिधियों की उपस्थिति का लाभ उठा कर, इंग्लैण्ड के विभिन्न भागों में प्रचारार्थ सभाओं का आयोजन किया गया। मजदूर-दल ने कामन सभा के भवन में उन्हें विदाई की दावत दी और भारतीय राष्ट्र-महासभा को सहानुभूति का सन्देश भेजा। स्वतन्त्र-मजदूर-दल ने ग्लासगो में हुए अपने सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास किया, जिसमें आयर्लैण्ड और मिस्र के साथ-साथ भारत को भी आत्मनिर्णय का अधिकार देने के लिए कहा गया। इसी प्रकार 'नेशनल पीस कौंसिल' ने भी अपने वार्षिकोत्सव में प्रस्ताव पास किया; और मजदूर-दल ने स्कारबरो में होने वाले अपने वार्षिकोत्सव में मांग की कि "अल्पसंख्यकों के लिए पर्याप्त संरक्षण रखते हुए, आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार, भारतीय सरकार का पुनस्संगठन किया जाय।" पंजाब के जोरो-जुल्म का तो सभी संस्थाओं ने समान-रूप से प्रबल विरोध किया।

श्री विट्ठलभाई पटेल और कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल का लन्दन में दुहेरा मुकाबला था। एक ओर तो उन्हें कांग्रेस की ब्रिटिश-कमिटी से सुलझना था, दूसरी ओर श्रीमती बेसेण्ट से जो अपनी अथक शक्ति के साथ कांग्रेस का विरोध कर रही थीं। कांग्रेसी-शिष्ट-मण्डल आत्म-निर्णय और पूर्ण उत्तरदायी शासन की मांग के साथ दिल्ली वाले प्रस्ताव पर जोर दे रहा था। मांटेगु-योजना में स्त्रियों के

मताधिकार की बात प्रान्तीय कौंसिलों के निर्णय पर छोड़ दी गई थी, लेकिन कांग्रेसी शिष्ट-मंडल ने सुधार-कानून में ही उसे स्वीकार करा लेना चाहा। २५ अक्तूबर १९१९ को अलबर्ट-हाल में जो सभा हुई, उसमें दोनों दलों के मतभेद इस खुले तौर पर सामने आये कि सभापति मि० लान्सबरी बड़ी दुविधा में पड़ गये। यह सभा भारतीय होमरूल-लीग की लन्दन-शाखा की ओर से की गई थी, जिसकी श्रीमती बेसेण्ट ने स्थापना की थी। अन्त में एक ऐसा प्रस्ताव पास हुआ, जिस पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती थी। प्रस्ताव में कहा गया, कि "ब्रिटिश राष्ट्र समूह की यह विशाल सभा जो इस बात पर जोर देती है कि राष्ट्र-समूह के अन्तर्गत सब राष्ट्रों को स्व-शासन का अधिकार मिलना चाहिए, इस बात का ऐलान करती है कि भारतीय जनता भी शीघ्र-से-शीघ्र आत्म-निर्णय का सम्पूर्ण स्वत्व पाने की हकदार है।"

मि० लान्सबरी इस सभा के चुने हुए सभापति थे। उनके बीच में पड़ने से ही प्रस्ताव को यह रूप प्राप्त हुआ, नहीं तो पहले जो मसविदा बनाया गया था उसमें तो मि० मांटेगु के बिल का समर्थन किया गया था। लेकिन इतने पर भी श्रीमती बेसेण्ट ने स्पष्ट रूप से मि० मांटेगु के बिल का समर्थन किया, जिस पर श्री विट्ठलभाई पटेल को उनका प्रतिवाद करना पड़ा। इतने जोर के साथ श्रीमती बेसेण्ट ने क्यों मि० मांटेगु का समर्थन किया था, इसका कुछ कारण मालूम नहीं हुआ।

महासमिति के प्रस्तावानुसार, जून के अन्तिम सप्ताह में स्वामी श्रद्धानन्द, पं० मोतीलाल नेहरू और मदनमोहन मालवीय पंजाब में हुई दुर्घटनाओं की जांच के लिए पंजाब गये। कुछ ही समय बाद दीनबन्धु एण्डरूज भी वहां पहुंच गये। इसके बाद पं० मोतीलाल और मालवीय जी लौट आये, लेकिन मोतीलाल जी दुबारा फिर वहां गये। पं० जवाहरलाल नेहरू और पुरुषोत्तमदास टण्डन एण्डरूज साहब के साथ हुए। गांधी जी भी, जैसे ही उन पर से प्रवेश-निषेध का हुक्म उठाया गया, १७ अक्तूबर को सबके साथ जा मिले। पंजाब के लोग भयभीत हो रहे थे, लेकिन ज्यों ही गांधी जी उनके पास पहुंचे त्यों ही उनमें फिर से आत्म-विश्वास आ गया। लाहौर और अमृतसर में, दोनों जगह, उनके आगमन को विजय से कम नहीं समझा गया। इसी बीच सरकारी जांच की घोषणा हुई। जिन बातों की जांच सरकारी जांच-कमिटी करने वाली थी उनकी मर्यादा कांग्रेस की जांच से बहुत कम थी। फिर भी सरकारी कमिटी से सहयोग करना ठीक समझा गया। चित्तरंजन दास तुरन्त कलकत्ता से पंजाब आये और कांग्रेस की ओर से हण्टर-कमीशन के सामने हाजिर हुए। लेकिन कांग्रेस-उप-समिति को ऐसी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा जिनकी पहले कल्पना भी न थी, इसलिए दुर्घटनाओं की जांच करने वाली कमिटी (हंटर-कमिटी) से उसको अपना सहयोग हटा लेना पड़ा। इस समय की परिस्थिति का इतिहास एक आवेदन-पत्र में अंकित है। कांग्रेस-उप-समिति चाहती थी कि मार्शल लॉ के कुछ कैदियों को पहरे के अन्दर जांच के समय हाजिर रहने व जांच में मदद करने के लिए बुलाया जाय, लेकिन इस बात की इजाजत नहीं दी गई। उप समिति ने इस पर पंजाब-सरकार के खिलाफ भारत-सरकार और भारत-मन्त्री से अपील की, लेकिन उन्होंने हस्तक्षेप करने से इन्कार किया। ऐसी हालत में उन लोगों ने भी, जो कि फौजी कानून के मातहत जेलों में थे, सहयोग न करने के निश्चय की ही ताईद की—और, बाद के अनुभव ने भी इस निश्चय को उचित ही सिद्ध किया। और तो और, पर उसकी जांच की परिधि इतनी सीमित थी कि वे घटनायें भी उसके कार्य-क्षेत्र में समाविष्ट नहीं थीं, जो न्यायतः अप्रैल १९१९ की घटनाओं में ही सम्मिलित होती हैं पर अनुचित रूप से उन्हें उससे अलग रक्खा गया। अतएव कांग्रेस ने एक कमिटी के द्वारा अपनी जांच अलग शुरू की। गांधी जी, मोतीलाल नेहरू,

चित्तरंजन दास, फजलुल हक और अब्बास तैयबजी इस कमिटी के सदस्य थे और के० सन्तानम् मन्त्री। लेकिन इसके बाद शीघ्र ही पं० मोतीलाल नेहरू अमृतसर-कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए, इसलिए उन्होंने पद-त्याग किया और श्री मुकुन्दराव जयकर उनकी जगह सदस्य बनाये गये। लन्दन के सालिसिटर मि० नेवली भी, जिनके सुपुर्द प्रिवी-कौंसिल में की जाने वाली अपीलों का काम था, कमिटीके साथ थे। साथ ही यह भी निश्चय हुआ कि जलियांवाला-बाग को प्राप्त करके वहां शहीदों का एक स्मारक बनाया जाय,और इसके लिए मालवीय जी की अध्यक्षता में एक कमिटी बना दी गई। प्रसंगवश यह भी बता देना चाहिए कि अब यह बाग ले लिया गया है और राष्ट्र की ही सम्पत्ति है।

परन्तु गैर-सरकारी रिपोर्ट अमृतसर-कांग्रेस तक तैयार न हो सकी। तब सोचा तो यहां तक गया कि सुविधा पूर्वक विस्तृत रूप से जब वह तैयार हो जाय तब उस पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन किया जाय। लेकिन इतना तो कमिटी ने कही दिया था, कि "हंटर-कमीशन के सामने जनरल डायर ने जो कुछ कहा है उससे यह बात बिलकुल निस्संदिग्ध हो गई है कि उसका १३ अप्रैल का कार्य निर्दोष, निरीह, निःशस्त्र मर्दों और बच्चों के जान-बूझ कर किये हुए नृशंस हत्या-कांड के सिवा और कुछ नहीं है। यह ऐसी हृदय-हीन और बुजदिल पशुता है जिसकी आधुनिक काल में और कोई मिसाल नहीं मिलती।" जो हो; कुल मिलाकर १९१९ के साल की परिस्थित न केवल निराशा-जनक बल्कि बड़ी भयावह भी थी।

महायुद्ध में जो शक्तियां लगी हुई थीं उन्हें पार्लमेंट की तरफ से धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए मि० लायड जार्ज ने कहा था—"हिन्दुस्तान के विषय में कहूं तो, उसने हमारी इस विजय में, और खास कर पूर्व में, जो प्रशंसनीय सहायता दी है उसके कारण उसे यह नया अधिकार मिल गया है कि जिससे हम उसकी मांगों पर ज्यादा ध्यान दें। उसका यह दावा इतना जोरदार है कि हमें अपने तमाम पूर्व-विश्वासों और (हमारी) आशंकाओं को, जो कि उसकी प्रगति के रास्ते में रुकावट डाल सकती हैं, दूर कर डालना चाहिए।" जहां तक इस 'नये दावे' से सम्बन्ध है, अस्थायी सन्धि के बाद भारत-सरकार ने भारत की इन गौरव पूर्ण सेवाओं का बदला धारा सभाओं और अधिकारियों-द्वारा दमन के रूप में चुकाया है। मांट-फोर्ड बिल ने लोगों के दिलों को और भी आघात पहुंचाया। द्विविध प्रणाली, कौंसिल में नामजद-सदस्यों का रहना, राज्य-परिषद्, 'सर्टिफिकेशन' और 'विटो' के अधिकार,ऑर्डिनेन्स बनाने की सत्ता और ऐसी तमाम पीछे हटाने वाली बातें उस बिल में थीं। अब १९३५ के कानून में ये और भी बढ़ा-चढ़ा कर दाखिल कर दी गई हैं! यही वे भयानक राक्षस थे, जिनका मुकाबला करने के लिए अमृतसर-कांग्रेस बुलाई गई थी। यह बताने की जरूरत नहीं है कि इस बीच आपस में फूट फैलाने और तोड़-फोड़ करने वाली शक्तियां अवश्य जोर शोर के साथ हिन्दुस्तान में काम कर रही होंगी। क्योंकि भारतीय राजनीति में ये हमेशा काम करती रहीं हैं और विदेशी-शासन में तो वे अपना जोर जताती ही हैं। खुद होमरूल-लीग में भी उनके दर्शन हुए थे। अमृतसर में वे अपने दल-बल के साथ प्रकट हुईं। लोकमान्य तिलक उस समय तक इंग्लैंड से लौट आये थे। सर वेलन्टाइन चिरोल पर चलाये गये मान-हानि के मुकद्दमे में उनकी हार हो चुकी थी। उन्होंने यह सुनते ही कि पार्लमेंट में बिल पास हो गया है, सम्राट् को भारतीय राष्ट्र की तरफ से बधाई का तार भेजा। उस समय वे अमृतसर जा रहे थे। उन्होंने सुधारों को कार्यान्वित करने के सम्बन्ध में 'प्रतियोगी-सहयोग' करने का आश्वासन दिया था। यह शब्द घड़ा हुआ तो था मि० बेपटिस्टा का, और तार का मजमून बनाया था केल्कर साहब ने। कांग्रेसी हलके में

इसकी कल्पना भी नहीं की जाती थी और, इसलिए, अमृतसर-कांग्रेस भिन्न-भिन्न विचार वालों के संघर्ष का एक अखाड़ा ही बन गई।

अमृतसर-कांग्रेस

अमृतसर-कांग्रेस में श्री चित्तरंजन दास प्रमुखता से सामने आये। उस अधिवेशन में उपस्थित करने के लिए प्रस्ताव का मसविदा दास बाबू बना कर लाये थे और संशोधन के बाद विषय-समिति ने उसे मंजूर किया था। वह इस प्रकार है—

"(क) यह कांग्रेस अपने पिछले वर्ष की इस घोषणा को दोहराती है कि भारतवर्ष पूर्ण उत्तर-दायित्वपूर्ण शासन के योग्य है और इसके खिलाफ जो बातें समझी या कही जाती हैं उनको यह कांग्रेस अस्वीकार करती है।

(ख) वैध सुधारों के सम्बन्ध में दिल्ली की कांग्रेस-द्वारा पास किये गये प्रस्तावों पर ही कांग्रेस दृढ़ है और इसकी राय है कि सुधार कानून अपूर्ण, असन्तोषजनक और निराशापूर्ण है।

(ग) आगे यह कांग्रेस अनुरोध करती है कि आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारतवर्ष में पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम करने के लिए पार्लमेंट को शीघ्र कार्रवाई करनी चाहिए।"

गांधी जी ने 'निराशापूर्ण' शब्द को हटा देने और उसमें चौथा पैरा और जोड़ने का संशोधन पेश किया, जो इस प्रकार है—

"(घ) जब तक ऐसा न हो, यह कांग्रेस शाही घोषणा में प्रदर्शित मनोभावों का अर्थात् यह कि 'यह नया युग मेरी प्रजा और अधिकारी दोनों के इस निश्चय के साथ आरम्भ हो कि वे सबके एक ध्येय के लिए मिलकर काम करेंगे', राजभक्तिपूर्वक उत्तर देती है और विश्वास रखती है कि अधिकारी और प्रजा दोनों मिलकर शासन-सुधारों को कार्यान्वित करने में इस तरह सहयोग करेंगे कि जिससे पूर्ण उत्तरदायी शासन शीघ्र स्थापित हो और यह कांग्रेस माननीय मांटेगु को इस सिलसिले में किये उनके परिश्रम के लिए हार्दिक धन्यवाद देती है।"

कांग्रेस ने दास बाबू के असली प्रस्ताव और गांधीजी के पूर्वोक्त टुकड़े की जगह यह टुकड़ा जोड़कर मंजूर किया—"यह कांग्रेस विश्वास करती है कि जबतक इस प्रकार की कार्रवाई नहीं की जाती तबतक, जहांतक संभव हो, लोग सुधारों को इस प्रकार काम में लावेंगे जिससे भारतवर्ष में शीघ्र पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो सके। सुधारों के सम्बन्ध में माननीय मांटेगु साहब ने जो मिहनत की है उसके लिए यह कांग्रेस उन्हें धन्यवाद देती है।" श्रीमती बेसेण्ट ने इसकी जगह जो प्रस्ताव रक्खा था वह गिर गया।

फिर भी यह समझौता असंदिग्ध नहीं था—हालांकि देशबन्धु ने अपने भाषण में यह साफ कर दिया था कि जहां कहीं सम्भव हो, वहां सहयोग और जहां आवश्यक होगा वहां अड़ंगा नीति काम में लाने का राष्ट्र का अधिकार सुरक्षित है। परन्तु इसमें विधि की गति तो देखिए—दास बाबू या तो अड़ंगा-नीति चाहते थे या सुधारों को अस्वीकृत कर देना—क्या इसे हम असहयोग न कहें? और गांधीजी वहां सहयोग के पुरस्कर्ता बने हुए थे। इसमें कोई शक नहीं कि वह सारी कांग्रेस गांधीजी की ही एक विजय थी। उनके व्यक्तित्व, दृष्टि-बिन्दु, सिद्धान्त और आदर्श, नीति-नियम एवं उनके सत्य और अहिंसाधर्म का प्रभाव पहले ही कांग्रेस पर पड़ चुका था। अमृतसर-कांग्रेस में ५० प्रस्ताव पास हुए, जिनमें ठेठ लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुलाने से लेकर कानून मालगुजारी, मजदूरों की दुरवस्था और तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के दुःखों की जांच की मांग तक के प्रस्ताव थे।

खुद कांग्रेस में ३६ हजार लोग आये थे, जिनमें ६ हजार मामूली प्रतिनिधि थे और कोई १२०० किसान-प्रतिनिधि भी थे। कांग्रेस के सारे वातावरण में मानो बिजली फैली हुई थी। पंजाब और उसपर हुए अत्याचारों पर स्वभावतः ही सबसे अधिक ध्यान दिया गया था। गांधीजी उत्सुक थे कि पंजाब और गुजरात में जो मारकाट लोगों की तरफ से हो गई थी उसकी निन्दा की जाय। लेकिन विषय-समिति में उनका प्रस्ताव गिर गया। गांधीजी को इससे निराशा हुई। रात बहुत हो चुकी थी। उन्होंने, यदि कांग्रेस उनके दृष्टि-बिन्दु को न अपना सके तो दृढ़ता परन्तु साथ ही शिष्टता और अदब के साथ कांग्रेस में रहने की अपनी असमर्थता प्रकट की। दूसरे ही दिन सुबह प्रस्ताव नं० ५ मंजूर हुआ, जो इस प्रकार है—"यह कांग्रेस इस बात को स्वीकार करती है कि बहुत अधिक उत्तेजित किये जाने पर (ही) जन-समूह के लोग क्रोध से बावले हुए थे, तो भी पिछले अप्रैल के महीने में पंजाब और गुजरात के कुछ हिस्सों में जो ज्यादतियां हुईं और उनके कारण जानमाल का जो नुकसान हुआ उसपर यह कांग्रेस दुःख प्रकट करती है और उन कृत्यों की निन्दा करती है।" इस विषय पर गांधीजी ने जो व्याख्यान दिया वह तो बड़ी उच्चकोटि का और प्रभावशाली था। उन्होंने बहुत संक्षेप में अपने संग्राम की योजना और भावी-नीति का दिग्दर्शन कराया था। "इससे बढ़कर कोई प्रस्ताव कांग्रेस के सामने नहीं है। हमारी भावी सफलता की सारी कुञ्जी इसी बात में है कि हम इसके मूलभूत सत्य को समझ लें, हृदय से स्वीकार कर लें और उसके अनुसार आचरण भी रक्खें। जिस अंश तक हम उसके मूल शाश्वत सत्य को मानने में असमर्थ होंगे उसी हद तक हमारी असफलता भी निश्चत है। मैं कहता हूं कि यदि हम लोगों ने मारकाट न की होती—जिसके कि हमारे पास बहुत प्रमाण हैं और उन्हें मैं आपके सामने पेश कर सकता हूं, वीरमगाम, अहमदाबाद और बम्बई-काण्ड के उदाहरण दे-देकर कि वहां हमने जान-बूझ कर हिंसा कांड किया है—हां, मैं मानता हूं कि डॉ० किचलू, डॉ० सत्यपाल और मुझे पकड़ कर—मैं तो डॉ० सत्यपाल और स्वामी जी का निमंत्रण पाकर शांति-स्थापना के लिए कमर कसकर जा रहा था, सरकार ने लोगों को भड़कने और गरम हो जाने का जबर्दस्त कारण दिया था—तो यह बखेड़ा न खड़ा होता; लेकिन उस समय सरकार भी पागल होगई थी और हम भी पागल हो गये थे। मैं कहता हूं, पागलपन का जवाब पागलपन से मत दो, बल्कि पागलपन के मुकाबले में समझदारी से काम लो और देखो कि सारी बाजी आपके हाथमें है।" कैसे आत्मा को जगानेवाले शब्द हैं ये, जो अबतक कानों में गूंजते हैं! परन्तु सवाल यह है कि क्या लोगों ने उस समय उनके पूरे रहस्य को समझा होगा? सच पूछिए तो फिर कांग्रेस में सारी बातें इसी प्रस्ताव के सुर में हुई थीं। उस समय तक गांधी जी सरकार से सहयोग तोड़ने के लिए न तो राजी थे और न तैयार ही थे। इसीलिए युवराज के स्वागत करने का प्रस्ताव यहां पास किया गया; गोया दिल्ली में जो बात छूट गई थी उसकी पूर्त्ति यहां की गई। यही कारण है कि अमृतसर में सहयोग के आश्वासन वाले प्रस्ताव में जोड़ा गया टुकड़ा पास हो गया, हालांकि समझौते के कारण वह बहुत-कुछ कमजोर हो गया था। सत्य और अहिंसा को माननेवाले इस प्रस्ताव से मिलते-जुलते प्रस्ताव थे (१) स्वदेशी-सम्बन्धी—हाथ-कताई और हाथ-बुनाई के पुराने धन्धों को फिर से जीवित करने की सिफारिश करना, (२) दुधार गाय और सांडों का निर्यात बन्द करने सम्बन्धी, (३) प्रांतों में आबकारी-नीति-सम्बन्धी और (४) तीसरे तथा मंझले दर्जे के मुसाफिरों के दुःख दूर करने के विषय में। इस श्रेणी के प्रस्तावों के ही ढङ्ग के प्रस्ताव थे—बकरीद पर गोकुशी बन्द कर देने की मुसलमानों-द्वारा की गई सिफारिश के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना और तुर्की एवं खिलाफत के मसले पर ब्रिटिश सचिवों के विरोधी रुख का विरोध करना। वर्षों के बाद इस अमृतसर-कांग्रेस ने किसानों की

ओर ध्यान दिया। मजदूरों की तरफ भी उसने उतनी ही तवज्जह दी। यूनानी और आयुर्वेदिक-चिकित्सा-पद्धति की ओर सरकार का ध्यान दिलाया। ब्रिटिश-कमिटी को उसकी सेवाओं के बदले धन्यवाद दिया गया। उसी तरह इंगलैंड के मजदूर-दल को, और खास कर बेन स्पूर को भी। लाला लाजपतराय को भी, उनकी अमरीका में की गई भारत के प्रति सेवाओं के लिए धन्यवाद दिया गया। इसी तरह कांग्रेस के शिष्ट-मंडल को भी उन सेवाओं के लिए धन्यवाद दिया जो उसने इंग्लैंड में की थीं। भला 'प्रवासी-भारतवासी' भी कैसे छूट सकते थे? ट्रांसवाल-निवासियों से अबतक भी जमीन-जायदाद और व्यापार करने के अधिकार छीने जा रहे थे। पूर्व-अफ्रीका में भारतीयों का आन्दोलन अलग अपना सिर उठा रहा था। प्रवासी भारतीयों के लिए की गई एंडरूज साहब की सेवायें पंजाब में की गई उनकी सेवाओं से कम देश के धन्यवाद की पात्र नहीं थीं। कांग्रेस ने खुले-आम इस बात को स्पष्ट किया कि क्यों उसे हंटर-कमीशन का बहिष्कार करना पड़ा? लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर ने "पंजाब के जो नेता कैद हैं उनमें से कुछ को भी, कैदी की तरह हिरासत में भी, कमिटी-रूम में बैठकर अपने वकील को सहायता और सलाह देने की आज्ञा नहीं दी" इसलिए कांग्रेस ने उसके बहिष्कार को योग्य और शानदार कार्य माना और उप-समिति को अपनी स्वतन्त्र रिपोर्ट का आदेश दिया। कांग्रेस ने सर शंकरन् नायर को इस्तीफा दे देने पर बधाई दी और लार्ड चेम्सफोर्ड को वापस बुलाने, जनरल डायर को अपने पद से हटा देने और सर माइकेल ओडायर को फौजी कमिटी की सदस्यता से हटा देने की मांग की।

पंजाब में किये गये अत्याचारों के प्रश्न पर विचार करते हुए कांग्रेस ने उस हर्जाना लेने की व्यवस्था को, जो कुछ लोगों पर कहीं-कहीं लागू की गई थी, तथा फौजी कानून के मातहत स्कूलों और कालेजों के विद्यार्थियों को जो सजायें दी गईं उन्हें रद्द करने की प्रार्थना की। मौलिक अधिकारों सम्बन्धी भी एक प्रस्ताव पास हुआ, जिससे शासन-सुधार-सम्बन्धी प्रस्ताव का बल और बढ़ गया। इस प्रस्ताव को पास कराने के लिए रात के दस बजे तक मदरास के पितामह विजयाराघवाचार्य जोर देते रहे। इसके बाद कांग्रेस ने प्रेस-ऐक्ट और रौलट-ऐक्ट को उठा देने और साम्राट् की ओर से मुक्ति की घोषणा होने पर भी जो कैदी तब तक जेल में पड़े हुए थे, उनकी रिहाई के लिए जोर दिया।

मि० हार्निमैन का देश-निकाला भी कांग्रेस के विरोध का एक विषय था और उसे रद करने पर बड़ा जोर दिया गया। यह भी आग्रह किया गया कि ब्रह्मदेश को भी सुधार दिये जावें और दिल्ली तथा अजमेर-मेरवाड़ा को पूरे प्रान्त के हक दे दिये जायं। दो और प्रस्तावों में आडिट तथा लोगों से रुपया वसूल करने की कार्रवाई की गई और अधिवेशन खतम हुआ। इस अधिवेशन में इतना अधिक काम करना पड़ा कि सभापति पण्डित मोतीलाल नेहरू बहुत थक गये, उनकी आवाज बैठ गई। विषय-समिति की बैठकें रोज रात-रात भर चलतीं। पंजाब में सर्दी भी बड़े जोरों की पड़ती थी।

उस समय की दो घटनायें मनोरंजक हैं और उनका वर्णन यहां कर देना ठीक होगा। राजनैतिक कैदियों को छोड़ देने की शाही घोषणा हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के एक दिन पहले वह अमृतसर पहुंची और उसके साथ ही आये अली-भाई! बस, लोगों के उत्साह और खुशी की सीमा न रही। एक बड़ा जुलूस निकला और मौ० मुहम्मदअली ने कहा कि 'मैं छिन्दवाड़ा-जेल से रिटर्न टिकट लेकर' आ रहा हूं। तब से उनके ये शब्द बहुत प्रचलित हो गये हैं। दूसरी घटना लन्दन के एक सालिसिटर मि० रेजिनल्ड नेविली से सम्बन्ध रखती है, जो कुछ दिनों से भारतवर्ष में थे और कांग्रेस-सप्ताह में अमृतसर ही थे। २५ दिसम्बर १९१९ को जालन्धर के तोपखाने के कोई २० गोरे सिपाही

रात को (होटल में) उनके कमरे में घुस गये, उनका अपमान किया और पूछा कि एक यूरोपियन होकर तुमने डायर के खिलाफ काम कैसे किया? उनमें से एक ने कहा—"हमने सारे समूह को गोली से भून दिया। वह एक खौलता हुआ जन-समूह था। वे रजील हिन्दुस्तानी थे।" उसने यह भी बताया कि जनरल डायर के उन सिपाहियों में से वह भी एक था। बाद में मालूम हुआ कि उन सिपाहियों को मि० नेविली से मांफी मांगनी पड़ी थी।

[तीसरा भाग १९२०—१९२८]

१

असहयोग का जन्म—१९२०

खिलाफत-सम्बन्धी-अन्याय

१९२० का आरम्भ भारतीय राजनैतिक क्षेत्र में दलबन्दियों से हुआ। उदार अर्थात् नरम दल वाले कांग्रेस से अलग हो गये थे और १९१९ के दिसम्बर में कलकत्ते में एकत्र हुए थे। कांग्रेस में भी ताजा होने वाली घटनाओं के कारण बाकी बचे कांग्रेसियों में फूट के लक्षण दिखाई पड़ रहे थे। अमृतसर में मुख्य प्रश्न था असहयोग या अड़ंगा। नये साल का आरम्भ होने के कुछ महीने बाद अमृतसर में बने दलों की स्थिति उलट गई। गांधीजी ने असहयोग का बीड़ा उठा लिया था और जो लोग अमृतसर में उनके सहयोग के विरुद्ध थे वे अब एकबार फिर उनके खिलाफ एकत्र हो गये थे। वह आकस्मिक परिवर्तन किस कारण हुआ? असली बात यह थी कि पंजाब के अत्याचार और खिलाफत के सवाल पर जनता में खलबली बढ़ रही थी।

१९२० की घटनायें खिलाफत के महान् आन्दोलन को लेकर हुई थीं। यहां खिलाफत के प्रश्न की उत्पत्ति का परिचय कराना आवश्यक है। महायुद्ध के समय प्रधान मन्त्री मि० लायड जार्ज ने भारत के मुसलमानों को कुछ वचन दिये थे, जिनके कारण भारतीय मुसलमान देश के बाहर गये और अपने तुर्की सहधर्मियों से लड़े। जब युद्ध समाप्त हो गया तो दिये गये वचनों का बुरी तरह भंग किया गया। ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री के विश्वासघात से भारत के मुसलमानों में क्रोध की लहर फैल गई। लायड जार्ज ने स्पष्ट शब्दों में वचन दिया था, कि "हम टर्की को उसके एशिया-माइनर और थ्रेस के प्रसिद्ध और समृद्ध द्वीपों से वंचित करने के लिए, जिनकी आबादी मुख्यतः तुर्क है, लड़ाई नहीं लड़ रहे हैं।" मुसलमानों का कहना था कि जजीरतुलअरब, जिसमें मेसोपोटामिया, अरबिस्तान, सीरिया, फिलस्तीन और उनके सारे धार्मिक स्थान शामिल हैं, हमेशा खलीफा के सीधे अधिकार में रहना चाहिए। परन्तु अस्थायी सन्धि की शर्तों के फल-स्वरूप तुर्की को अपने प्रदेशों से वंचित होना पड़ा। थ्रेस यूनान की नजर कर दिया गया और तुर्की-साम्राज्य के एशियाई प्रदेशों को ब्रिटेन और फ्रांस ने लीग के आज्ञा-पत्रों के बहाने आपस में बांट लिया। मित्र-राष्ट्रों द्वारा एक हाई-कमीशन नियुक्त किया गया जो हर लिहाज से तुर्की का असली शासक बना दिया गया था और सुलतान एक कैदी-मात्र रह गया था। भारत के मुसलमान ही नहीं, बल्कि अन्य जातियां भी ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री के इस विश्वासघात से क्रुद्ध हो गई थीं। अमृतसर में प्रमुख कांग्रेसी और खिलाफती नेता एकत्र हुए और उन्होंने लायड जार्ज की करतूत से उत्पन्न हुई देश की स्थिति के सम्बन्ध में चर्चा की और अन्त में गांधीजी के नेतृत्व में खिलाफत आन्दोलन करने का निश्चय किया गया।

१९ जनवरी १९२० को डा० अन्सारी की अध्यक्षता में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला और उन्हें बताया कि तुर्की-साम्राज्य को और सुलतान को खलीफा बनाये रखना कितना आवश्यक है। वाइसराय का उत्तर बहुत कुछ निराशाजनक था। इसपर मुसलमान नेताओं ने एक वक्तव्य प्रकाशित किया, जिसमें उन्होंने यह दृढ़ संकल्प प्रकट किया कि यदि संधि की शर्तें मुसलमानों के धर्म और भावों के खिलाफ गई तो इससे मुसलमानों की वफादारी को धक्का लगेगा।

फरवरी और मार्च के महीनों में खिलाफत का प्रश्न भारत के राजनैतिक क्षेत्र में बराबर प्रमुख स्थान प्राप्त किये रहा। १९२० के मार्च में एक मुस्लिम शिष्ट-मण्डल मौलाना मुहम्मदअली के नेतृत्व में इंग्लैण्ड गया। इस शिष्ट-मण्डल से भारत-सचिव की ओर से मि० फिशर मिले। शिष्ट-मण्डल प्रधानमन्त्री से भी मिला। उसने अपने विचार शान्ति-परिषद् की बड़ी कौंसिल के आगे रखने की अनुमति चाही, पर वह न मिली।

१७ मार्च को लायड जार्ज ने मुस्लिम शिष्ट-मण्डल को उत्तर दिया, जिसके दौरान में उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि ईसाई राष्ट्रों के साथ जिस नीति का व्यवहार किया जा रहा है, तुर्की के साथ उससे भिन्न नीति का व्यवहार नहीं किया जा सकता। परन्तु साथ ही इस बात पर जोर दिया कि वैसे तुर्की तुर्की-भूमि पर अधिकार रख सकेगा, पर जो प्रदेश तुर्की नहीं है उसपर कोई अधिकार न रख सकेगा। बस, इसने तो भारत के खिलाफत-सम्बन्धी सारे प्रश्न की ही जड़ काट डाली। इसलिए १९ मार्च राष्ट्रीय शोक-दिवस नियत हुआ जिस दिन उपवास, प्रार्थनायें और हड़तालें की गई। गांधीजी फिर मैदान में आये, उन्होंने फिर घोषणा की कि यदि तुर्की के साथ संधि की शर्तें भारत के मुसलमानों के भावों के अनुकूल न हों तो मैं असहयोग-आन्दोलन शुरू करूंगा। गांधीजी ने अपने विचार अपने १० मार्च के घोषणा-पत्र में प्रकट कर दिये थे, जिसमें उन्होंने अपनी असहयोग-सम्बन्धी तजवीज पहली बार प्रकट की थी। वह इस प्रकार है—

"यदि हमारी मांगें स्वीकार न हुई तो हमें क्या करना चाहिए, इसपर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लम-खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िए, क्योंकि यह अव्यवहार्य है। यदि मैं सबको समझा सकूं कि यह उपाय हमेशा बुरा है, तो हमारे सब उद्देश्य बहुत जल्दी सिद्ध हो जायं। कोई व्यक्ति या कोई राष्ट्र हिंसा के त्याग-द्वारा जो शक्ति उत्पन्न कर सकता है उसका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। परन्तु आज तो मैं हिंसा के विरुद्ध तर्क पेश कर रहा हूं सो इस कारण कि परिस्थिति ऐसी ही है, और ऐसी अवस्था में हिंसा बिलकुल व्यर्थ सिद्ध होगी। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एक-मात्र औषधि है। यदि यह सब तरह की हिंसा से मुक्त रक्खी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि सहयोग के द्वारा हमारा पतन और तेजोनाश होता हो और हमारे धार्मिक भावों को आघात पहुंचता हो, तो असहयोग हमारे लिए कर्तव्य हो जाता है। इंग्लैण्ड हमसे यह आशा नहीं रख सकता कि हम उन अधिकारों का हनन चुपचाप सह लेंगे जो मुसलमानों के जीवन-मृत्यु का प्रश्न हैं। इसलिए हमें जड़ और चोटी दोनों ओर से काम आरम्भ करना चाहिए। जिन लोगों को सरकारी उपाधियां और सम्मान प्राप्त हैं उन्हें वे त्याग देनी चाहिए। जो नीचे दर्जे की सरकारी नौकरियों पर हैं उन्हें भी नौकरियां छोड़ देनी चाहिए। असहयोग का खानगी नौकरियों से कोई वास्ता नहीं है। पर मैं उन लोगों के, जो असहयोग की औषधि को नहीं अपनाते, सामाजिक बहिष्कार की धमकी देने की बात को पसन्द नहीं कर सकता। आप होकर नौकरी छोड़ देना ही जनता के भावों और असंतोष की कसौटी है। सैनिकों से सेना में काम करने से इन्कार करने को कहने का समय अभी नहीं आया है।

यह उपाय अन्तिम है, पहला नहीं है। जब वाइसराय, भारत-मंत्री और प्रधान-मंत्री हमें दाद ही न दें तभी हमें इस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए। इसके अलावा सहयोग तोड़ने में एक-एक कदम बहुत समझ-बूझकर रखना होगा। हमें धीरे-धीरे बढ़ना होगा, जिससे बड़े-से-बड़े उत्तेजन पर भी हम अपना आत्म-संयम बनाये रख सकें।"

असहयोग का प्रारंभ

इस सम्बन्ध में सरकार ने "इंडिया १९२०" में जो लिखा है वह यह है—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि उनके (गांधीजी) आत्म-बल के उपदेश उनकी सहधर्मी जनता को रुचे। जनता ने उनके आत्म-त्याग के सिद्धांत को माना और उनके साधु-जीवन की सराहना की। अपने अनेक देश-वासियों के आहत राष्ट्र-गौरव को वे 'मुक्ति का द्वार' प्रतीत हुए। उनके आदेश अर्द्ध-दैवी आदेशों का प्रभाव रखते थे।" अशान्ति के इस वातावरण में २५ मार्च १९२० को पंजाब के अत्याचारों पर गैरसरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई। उसने सर माइकेल ओडायर को ही अपने कटाक्षों का लक्ष्य बनाया। उसने शिक्षित-समुदाय की जिस प्रकार जान-बूझकर अवहेलना की थी, उसने जिस ज्यादती के साथ रंगरूटों की भर्ती और चन्दा-संग्रह किया था और लोकमत को दबा रक्खा था, उससे वह स्वभावतः ही जनता के अभियोग का पात्र बन गया था। १९१९ की घटनायें ६ अप्रैल से आरम्भ हुईं और उनका अन्त १३ तारीख को जलियांवाला-बाग-हत्या-काण्ड के रूप में हुआ। अतः वह सप्ताह १९२० में राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया और तबसे अबतक मनाया जाता है। १४ मई १९२० को तुर्किस्तान के साथ संधि की शर्तें प्रकाशित हुईं, जिससे खिलाफत-आन्दोलन ने और भी जोर पकड़ा। इसके बाद ही गांधीजी ने इस संकल्प की घोषणा की कि मैं शर्तों में संशोधन कराने के लिए असहयोग-आन्दोलन आरंभ करूंगा। लोकमान्य तिलक ने इस आन्दोलन का समर्थन हृदय से नहीं किया, पर साथ ही इसका विरोध भी नहीं किया।

इन दोनों महान् नेताओं ने अप्रैल के तीसरे हफ्ते में महत्वपूर्ण वक्तव्य प्रकाशित कराये। इसी अवसर पर गांधीजी ने होमरूल-लीग का सभापतित्व ग्रहण किया, और निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया—

"मेरी राय में स्वराज्य शीघ्र प्राप्त करने का साधन स्वदेशी, हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य, हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा मानना, और प्रान्तों का भाषाओं के अनुसार नये सिरे से निर्माण करना है। इसलिए मैं लीग को इन कामों में लगाना चाहता हूं।

"मैं इस बात को खुले तौर से कहता हूं कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण की किसी भी योजना में सुधारों का स्थान गौण है; क्योंकि मैं समझता हूं कि मैंने जिन कामों का जिक्र किया है यदि राष्ट्रीय शक्ति उनमें लग जाय तो हममें से घोर अतिवादी (extremist) भी जो सुधार चाहेगा वे स्वतः ही प्राप्त हो जायंगे; और चूंकि इन कार्यों में लगने से पूर्ण स्व-शासन जल्दी-से-जल्दी प्राप्त हो सकता है, इसलिए मैंने इन्हें राष्ट्रीय कार्यक्रम में सबसे आगे रक्खा है। मैं अखिल-भारतीय होमरूल-लीग को किसी भी रूप में किसी खास दल की संस्था समझने को तैयार नहीं हूं। मैं किसी दल से संबंध नहीं रखता और न रक्खूंगा। मैं जानता हूं कि लीग के नियमों के अनुसार कांग्रेस की सहायता करना आवश्यक है। पर कांग्रेस किसी दल-विशेष की संस्था नहीं है। ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में सभी दल रहते हैं। समय-समय पर एक-न-एक दल का उस पर अधिकार रहता है, पर वह किसी दल-विशेष की संस्था नहीं है। मुझे आशा है कि सारे दल कांग्रेस को एक ऐसी राष्ट्रीय संस्था बनाना चाहेंगे जिसके द्वारा वे कांग्रेस की नीति निर्धारित करने के लिए राष्ट्र से अपील कर सकें। मैं लीग

की नीति को ऐसी बनाना चाहता हूं जिससे कांग्रेस दल-बन्दियों से ऊपर रहकर अपना राष्ट्रीय पद कायम रख सके।

"अब मेरे साधन की बारी आई है। मेरा विश्वास है कि देश के राजनैतिक जीवन में कठोर सत्य और ईमानदारी का वातावरण उत्पन्न करना सम्भव है। मैं लीग से यह आशा नहीं रखता कि वह सत्याग्रह के मामले में मेरा साथ देगी, पर मैं शक्ति भर चेष्टा करूंगा कि हमारे सारे राष्ट्रीय कामों में सत्य और अहिंसा से काम लिया जाय। तब हम सरकार और उसके उपायों से न भयभीत होंगे, न उनके प्रति अविश्वास रखेंगे। मैं इस प्रसंग पर और अधिक कुछ नहीं कहना चाहता। मैं यह समय पर ही छोड़ता हूं कि मैंने जो यह साहसपूर्ण वक्तव्य दिया है उससे उत्पन्न होने वाले अनेक प्रश्नों का वह किस ढंग से निपटारा करता है। फिलहाल मेरा उद्देश्य अपने काम के औचित्य या उसमें समाविष्ट नीति की सत्यता का प्रदर्शन करना नहीं है, बल्कि लीग के सदस्यों पर विश्वास करके अपने कार्यक्रम पर उनकी आलोचना-सूचनाओं को आमंत्रित करना है।"

लोकमान्य तिलक ने अपने वक्तव्य में नये सुधारों के प्रति अपनी नीति प्रकट की—

"जैसा कि नाम से प्रकट है, कांग्रेस-प्रजातंत्र-दल में कांग्रेस के प्रति अगाध भक्ति और प्रजातंत्र के प्रति आस्था काम कर रही है। इस दल का विश्वास है कि भारत की समस्याओं को सुलझाने में प्रजातंत्र के सिद्धान्त अचूक हैं। यह दल शिक्षा के प्रसार और राजनैतिक मताधिकार को अपने दो सबसे बढ़िया हथियार समझता है। यह दल चाहता है कि जाति या रिवाज के कारण जो नागरिक, राजनैतिक या सामाजिक बंधन लगा दिये गये हैं उन्हें उठा दिया जाय। इस दल का धार्मिक सहिष्णुता और अपने लिए अपने धर्म की पवित्रता में विश्वास है और उस पवित्रता की खतरे से रक्षा करना सरकार का अधिकार और कर्तव्य है। यह दल मुसलमानों के उस दावे का समर्थन करता है जो खिलाफत-संबंधी प्रश्नों का हल इस्लाम धर्म के सिद्धान्तों और धारणाओं और कुरान के आदेशों के अनुसार चाहता है।

"यह दल मानवता के मंगल और मानव समाज के भ्रातृत्व की वृद्धि के लिए ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह के रूप में भारत की स्थिति में विश्वास करता है, पर भारत के लिए स्वतंत्र शासन का अधिकार चाहता है, और यह चाहता है कि इसे ब्रिटिश राष्ट्र समूह के अन्य हिस्सेदारों के साथ, जिनमें स्वयं ब्रिटेन भी शामिल है, बराबरी और भाई-चारे का अधिकार मिले। यह दल राष्ट्र-समूह के भीतर भारतीयों के लिए बराबरी के नागरिक-अधिकारों पर जोर देता है और चाहता है कि जहां यह अधिकार न मिले उस उपनिवेश के प्रति बदले का व्यवहार किया जाय। यह दल राष्ट्र-संघ का, संसार की शान्ति बनाये रखने, देशों का स्वतंत्र अस्तित्व कायम रखने, राष्ट्रों और जातियों की स्वतन्त्रता और स्वतन्त्रता की रक्षा करने, और एक देश के द्वारा दूसरे देश का रक्त शोषण बन्द करने वाली संस्था के रूप में स्वागत करता है।

"यह दल जोर के साथ प्रतिपादन करता है कि भारत प्रातिनिधिक और उत्तरदायी शासन के सर्वथा योग्य है, और आत्म-निर्णय के सिद्धान्त पर भारत की जनता के लिए अपनी सरकार का ढांचा स्वयं तैयार करने का और यह निर्णय करने का कि कौन-सी शासन-प्रणाली भारत के लिए सबसे अच्छी रहेगी, पूर्ण अधिकार चाहता है। यह दल माण्टेगु-सुधार-विधान को अपर्याप्त, असन्तोष-पूर्ण और निराशाजनक समझता है और इस दोष को दूर करने की चेष्टा करने के निमित्त मजदूरदल के सदस्यों और ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के अन्य भारत-हितैषियों की सहायता से शीघ्र-से-शीघ्र एक नवीन सुधार-बिल पास करायेगा जिसका उद्देश्य भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करना हो और जो सेना

पर पूरा अधिकार और अर्थ-सम्बन्धी नीति में पूरी स्वतंत्रता प्रदान करे और वैधानिक-गारण्टियों-सहित अधिकारों की विस्तृत घोषणा करे। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यह दल विचार रखता है और सिफारिश करता है कि भारत में और उन देशों में जो राष्ट्र-संघ के सदस्य हैं खूब जोर का प्रचार किया जाय। इस मामले में इस दल का गुरुमंत्र होगा—प्रचार, आन्दोलन और संगठन।

"यह दल माण्टेगु-सुधारों को, जैसे कुछ भी वे हैं, सफल बनाने का विचार रखता है, जिससे देश में जल्दी ही पूर्ण उत्तरदायी सरकार कायम हो जाय; और इसलिए यह दल, बिना किसी संकोच के, लोकमत को कार्य-रूप देने के लिए जब जैसी जरूरत पड़े सहयोग प्रदान करेगा या वैध रूप से विरोध करेगा।"

इसके बाद केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार-सम्बन्धी उन विषयों की एक सूची दी गई थी जिनके लिए उनका दल आन्दोलन करना चाहता था। उनमें दमनकारी कानूनों, राजद्रोह के अभियोगों का जूरी-द्वारा निर्णय, जेल-व्यवस्था में इंग्लैण्ड के जैसा सुधार, मजदूरों का संगठन और सुधार, जीवन के लिए आवश्यक-पदार्थों के निकास पर नियंत्रण, स्वदेशी का प्रचार, रेलवे को राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाना, सैनिक-खर्च में कमी, कर-व्यवस्था, सैनिक-शिक्षा, नौकरियां, राष्ट्रभाषा, राष्ट्रीय एकता, कर पद्धति, प्रान्तिक स्वराज्य, ग्रामवासियों को जंगलों के उपभोग करने की छूट, अनिवार्य-शिक्षा, ग्राम-पंचायत की स्थापना, नशा-निषेध सहयोग-समितियां, आयुर्वेद-पद्धति को प्रोत्साहन, और, औद्योगिक तथा इंजीनियरी शिक्षा आदि विषयों का समावेश किया गया था।

अभी मुसलमानों का शिष्ट-मण्डल यूरोप में ही था कि तुर्किस्तान के साथ संधि की प्रस्तावित शर्तें प्रकाशित हो गईं और भारत में उनके साथ-ही-साथ वाइसराय का संदेश भी प्रकाशित हुआ, जिसमें भारतीय मुसलमानों को वे शर्तें समझाई गई थीं। संदेश में यह बात स्वीकार की गई थी कि संधि की शर्तों से भारत के मुसलमानों के दिलों में अवश्य ठेस पहुंची होगी, पर साथ ही उनसे कहा गया था कि वे अपने तुर्की सहधर्मियों के इस दुर्भाग्य को सन्तोष और धैर्य के साथ सहन करें। किन्तु इन शर्तों के प्रकाशन से मुसलमानों के क्रोध का ठिकाना न रहा। हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट भी उसी समय प्रकाशित हुई थी। बस, सारे देश में आग लग गई। खिलाफत-कमिटी की बैठक बम्बई में हुई जिसमें गांधीजी के असहयोग-कार्यक्रम पर विचार किया गया और १९२० की २८ मई को असहयोग भारतीय मुसलमानों का एकमात्र शस्त्र समझ कर अपना लिया गया। ३० मई को महा-समिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमें हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट और तुर्किस्तान के साथ संधि की शर्तों पर विचार किया गया। लम्बे-चौड़े वाद-विवाद के बाद असहयोग पर विचार करने के लिए कांग्रेस का विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया।

गांधीजी ने 'तिलक संबंधी-स्मृतियां' नामक पुस्तक में बताया है कि असहयोग के प्रति लोकमान्य तिलक का क्या रुख था। "असहयोग के सम्बन्ध में उन्होंने मार्मिक ढंग से उसी बात को फिर दोहराया जिसे पहले भी मुझसे कह चुके थे, असहयोग का कार्यक्रम मुझे पसन्द है पर इसमें जिस आत्म-त्याग की जरूरत है, उसके लिए देश हमारे साथ होगा या नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। मैं आपकी सफलता चाहता हूं। यदि आप जनता का ध्यान अपनी ओर खींच सकें तो मुझे आप अपना कट्टर समर्थक पायेंगे।"

इस समय गांधीजी चम्पारन, खेड़ा और अहमदाबाद में सत्याग्रह करके या करने की धमकी देकर देश को स्थायी लाभ पहुंचाने का श्रेय प्राप्त कर चुके थे। उन्होंने चम्पारन में सत्याग्रह किया। खेड़ा जिले में वर्षा अधिक होने के कारण फसल मारी गई थी। वहां गांधीजी ने लगान न देने के

सम्बन्ध में सत्याग्रह किया और अन्त में अहमदाबाद में मिल-हड़ताल का अन्त कराया। १९१८में गांधीजी ने खेड़ा जिले के किसानों के कष्ट दूर करने का काम अपने हाथ में लिया। उन्होंने किसानों को सलाह दी कि जबतक समझौता न हो जाय, तबतक लगान अदा न किया जाय। गुजरात-सभा ने शिष्ट-मण्डल बनाया, जो अधिकारियों के पास पहुंचा। परन्तु उस ताल्लुके का कमिश्नर बिगड़ गया और शिष्ट-मण्डल से बड़ी अभद्रता के साथ पेश आया। इसपर गुजरात-सभा ने किसानों के नाम नोटिस जारी करके उन्हें लगान न देने की सलाह दी। इस कार्रवाई की जिम्मेदारी गांधी जी ने अपने ऊपर ली। सत्याग्रह अनिवार्य हो गया। खेड़ा के मामले में श्री मोहनलाल पण्ड्या पहले सत्याग्रही थे जो गिरफ्तार किये गये (शोक है कि १८ मई १९३५ को उनका देहान्त हो गया)। अन्त में खेड़ा के किसानों को आंशिक छूट मिल गई। तीसरी घटना अहमदाबाद मिल-हड़ताल थी, जो १९१८ के मार्च में आरम्भ हुई। अन्त में मजदूरों और मालिकों के बीच में एक समझौता ठहराया गया, पर इसी बीच में कुछ मजदूरों ने दुर्बलता और विह्वलता का परिचय दिया और मजदूरों का संगठन टूटता-सा दिखाई देने लगा। इस नाजुक अवसर पर गांधी जी ने उपवास करने की प्रतिज्ञा की। इस प्रकार की भीषण प्रतिज्ञा करने का गांधी जी का यह पहला अवसर था, पर इसके सिवा और कोई चारा न था। उन्होंने कहा—"आने वाली पीढ़ी कहेगी कि दस हजार आदमियों ने उस प्रतिज्ञा को अचानक तोड़ दिया जो उन्होंने बीस दिन तक लगातार ईश्वर के नाम पर दोहराई थी, इससे तो यही अच्छा है कि मैं अपनी प्रतिज्ञा के द्वारा मिल-मालिकों की स्थिति और स्वतंत्रता को अनुचित-रूप से कठिनाई में डालनेवाला कहलाऊं।" (इसके विस्तृत विवरण के लिए इसी अध्याय के अन्त में दिये टिप्पण देखिए।)

कुली-प्रथा का अन्त

भारत के राजनैतिक क्षेत्र में १९२० की घटनाओं का जिक्र करने से पहले हमें १९२० की १ जनवरी के उत्सव की चर्चा करनी है। इस दिन उपनिवेशों में शर्तबन्दी कुली-प्रथाका अन्त हुआ। यह प्रथा एक शताब्दि से जारी थी। जब भारत-सरकार ने और अधिक मजदूर भर्ती करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया तो नेटाल में इस प्रथा का अन्त हो गया। मारिशस में कुली-प्रथा का अन्त स्वतः ही हो गया, क्योंकि वहां मजदूरों की और अधिक जरूरत न रही। परन्तु पृथ्वी के अन्य भागों के उपनिवेशों में शर्तबन्दी कुली-प्रथा उसी प्रकार जारी थी। जब १९१४-१५ में भारत-सरकार ने उन प्रान्तों की सरकारों से पूछ-ताछ की तो उसे पता चला कि गांव वाले इस प्रथा के घोर विरुद्ध हैं। १९१५ में दीनबन्धु एण्डरूज और मि० पियरसन फिजी गये और वहां से बड़े ही बुरे समाचार लेकर आये, जिसे रिपोर्ट के रूप में प्रकाशित किया गया। इस रिपोर्ट का इतना प्रभाव पड़ा कि जब पण्डित मदनमोहन मालवीय ने बड़ी कौंसिल में कुली-प्रथा उठाने का प्रस्ताव पेश किया तो लार्ड हार्डिङ्ग ने उसे मंजूर कर लिया। पर साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि सब कुछ ठीक-ठाक करते-कराते कुछ समय लग ही जायगा। बाद को पता चला कि वे औपनिवेशिक विभाग से इस बात पर राजी हो गये हैं कि भारत में अभी पांच साल तक भरती होती रहे। एण्डरूज साहब ने भारत-सरकार को चुनौती दी कि इस प्रकार का गुप्त राजीनामा हुआ है या नहीं? और जब यह बात प्रकट की गई कि इस प्रकार के राजीनामे पर व्हाइट-हाल के दोनों—औपनिवेशिक और भारतीय—विभागों ने दस्तखत किये हैं, तो सारे देश में क्रोध की लहर फैल गई। गांधीजी ने उत्तर और पश्चिम भारत में कुली-प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ कर दिया। श्रीमती बेसेण्ट ने मद्रास में श्रीगणेश किया। १९१७ के मार्च-अप्रेल में आन्दोलन पूरे जोर पर था। भारत-सरकार ने १५ जून को जिन कारणों से श्रीमती

एनी बेसेन्ट को नजरबन्द किया उनमें से एक यह भी रहा होगा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने गांधीजी को बुलाया और तब उनकी समझ में स्थिति की गम्भीरता आई। हरेक प्रान्त की भारतीय महिलाओं का एक शिष्ट मण्डल लॉर्ड चेम्सफोर्ड से अपनी मजूर बहिनों की ओर से मिला। गांधीजी ने ३१ मई १९१७ का दिन नियत कर दिया कि उस दिन तक यह प्रथा बन्द होनी चाहिए, नहीं तो भरती रोकने के लिए सत्याग्रह आरम्भ होगा। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने १२ अप्रैल १९१७ को घोषणा की कि भारत-रक्षा-विधान के अन्तर्गत युद्ध-कालीन कार्रवाई के रूप में मजदूरों की भरती बन्द की जाती है। पर यह स्पष्ट था कि युद्ध समाप्त होते ही वे सारे उपनिवेश इस प्रश्न को फिर उठायेंगे जिनका उसमें बहुत बड़ा आर्थिक-हित था। इसलिए एंडरूज साहब गांधीजी की सलाह और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की हार्दिक सहानुभूति प्राप्त करके ताजा मसाला इकट्ठा करने के लिए एकबार फिर फिजी गये, जिससे युद्ध के बाद प्रश्न उठने पर उसका उपयोग किया जा सके। वे कोई एक साल तक फिजी में रहे और पहली बार से भी अधिक भयंकर हकीकतें इकट्ठा कर लाये। उन्होंने इस प्रश्न के नैतिक पहलू पर आस्ट्रेलियन महिलाओं का ध्यान भी काफी आकर्षित कर लिया और उन्हें कुलीप्रथा को उठाने के पक्ष में प्रबल समर्थन प्राप्त होगया। १९१८ के मार्च में उन्होंने मि० माण्टेगु से दिल्ली में भेंट की और उनके सामने सारा मामला पेश करके साबित कर दिया कि शर्तबन्दी कुली-प्रथा घोर अनैतिक है। १९१९ में सरकार ने यह घोषणा की कि अब गिरमिट के लिए अनुमति न मिलेगी और जिन मजदूरों की पांच साल की मियाद पूरी नहीं हुई है उन्हें बन्धन-मुक्त किया जायगा। फलतः पहली जनवरी १९२० को फिजी, ब्रिटिश गायना, ट्रिनडाड, सुरीनाम और जमैका के प्रवासी भारतीयों में हर्ष का वारापार न रहा; क्योंकि वहां अभी तक यह प्रथा जारी थी। उस बन्धन-मुक्ति के दिन, जो भारतीय गिरमिट के अनुसार यहां पहुंचे थे, वे भी आजाद कर दिये गये। यह प्रथा १८३५ में आरम्भ की गई थी, जिससे उपनिवेशों में शकर को खेती के लिए मजदूर मिल सकें। इसके पहले अफ्रीका के हबशी गुलाम काम करते थे, पर १८३३ में गुलामी का अन्त कर दिया गया था। इस प्रकार शकर की खेती जारी रखने के लिए जो तरकीब सोची गई थी वह गुलामी से कुछ विशेष भिन्न न थी। इतिहासकार सर डब्ल्यू० विलसन हन्टर ने इस प्रथा को अर्द्ध-गुलामी मजदूरी कहा था और यह वर्णन ठीक भी है।

हण्टर-रिपोर्ट

१९२० की २८ मई को हन्टर रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिससे देश में निराशा और क्षोभ की बाढ़ आ गई। रिपोर्ट में सब सदस्य सहमत न थे। हिंदुस्तानी सदस्यों का अंग्रेज सदस्यों से मतभेद था। मतभेद इस विषय पर था कि पंजाब का उपद्रव आकस्मिक था या पहले से निश्चित किया हुआ था? अंग्रेज सदस्यों की राय थी कि वह पहले से निश्चित किया हुआ था, और हिन्दुस्तानी सदस्यों की राय इसके विपरीत थी, इसीलिए उनकी सम्मति थी कि फौजी-कानून की कोई आवश्यकता न थी तथा इस उपद्रव का दोष चन्दा इकट्ठा करने और रंगरूट भरती करने में पंजाब के गवर्नर ओडायर के जुल्म को दिया। उन्होंने सरकार को ऐसी खबरें दबाने का दोषी ठहराया, जिनसे भ्रान्त धारणा फैली। सरकार ने यह बात स्वीकार की कि "फौजी-कानून का शासन, शक्ति के दुरुपयोग, अव्यवस्था, अन्याय और उत्तरदायित्व-हीन कार्यों द्वारा दूषित कर दिया गया था। जनरल डायर ने जो किया वह अनावश्यक था, दूसरा कोई समझदार आदमी ऐसा न करता। उस स्थिति में जिस मानवी-भाव से काम लेना चाहिए था, उसने उससे काम न लिया।" सम्राट् की सरकार ने इन कई निर्दयतापूर्ण और अनुचित सजाओं को बिलकुल नापसन्द किया और भारत-सरकार को ताकीद कर दी कि इस

प्रकार के कार्यों के लिए जिम्मेदार अफसरों को धिक्कार-द्वारा तथा दूसरे उपायों से इस नापसन्दगी का खुले-तौर से परिचय करा दिया जाय। परन्तु मि० मांटेगु ने कहा कि "जनरल डायर ने जैसा उचित समझा उसके अनुसार बिलकुल नेकनीयती के साथ काम किया। अलबत्ता, उससे परिस्थिति को ठीक-ठीक समझने में गलती होगई।" भारत को इस बात से कोई सान्त्वना न मिली कि भविष्य के लिए फौजी-कानून की नियमावली तैयार करने के लिए भारत-सरकार को हिदायत कर दी गई है। न पंजाब या भारत को इस बात से ही कोई तसल्ली हुई कि जो अधिकारी फौजी-कानून की करतूतों के लिए जिम्मेदार थे उनके सम्बन्ध में बड़े ध्यान के साथ जांच-पड़ताल की गई है, क्योंकि जिन अधिकारियों के आचरण को धिक्कारा गया था उनमें से बहुत से चले गये थे या भारत-सरकार की नौकरी छोड़ चुके थे।

हण्टर-कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद ही ३० मई को महासमिति की बैठक बनारस में हुई, जिसमें इन सारे प्रश्नों पर भारत की ओर से क्रोध प्रकट किया गया और मामले पर विचार करने के लिए विशेष कांग्रेस करने का निश्चय किया गया। लोकमान्य तिलक उस अवसर पर बनारस से होकर गुजरे, पर उन्होंने महासमिति में भाग न लिया, क्योंकि खिलाफत-आन्दोलन उन्हें कुछ रुचा न था। फिर भी उन्होंने देशभक्ति और सौजन्य का परिचय देते हुए यह अवश्य कह दिया कि वे महासमिति के आदेश का पालन करेंगे। इसी अवसर पर गांधीजी ने असहयोग-आन्दोलन को, नेताओं का एक सम्मेलन बुलाकर उसके सामने रखने का निश्चय किया। अबतक असहयोग-आन्दोलन खिलाफत के प्रश्न से ही सम्बन्ध रखता था। सारे दलों के नेता २ जून १९२० को इलाहाबाद में इकट्ठे हुए। इस सम्मेलन में असहयोग की नीति अपनाने का निश्चय किया गया और कार्यक्रम तैयार करने के लिए गांधीजी और कुछ मुसलमान नेताओं की एक कमिटी बनाई गई। इस कमिटी ने रिपोर्ट प्रकाशित करके स्कूलों, कालेजों और अदालतों के बहिष्कार की सिफारिश की। वास्तव में नवम्बर १९१९ में दिल्ली अ० भा० खिलाफत-परिषद् ने गांधीजी की सलाह के मुआफिक सरकार से असहयोग करने का निश्चय कर लिया था। इस निश्चय की पुष्टि कलकत्ता और अन्य स्थानों के मुसलमानों ने, और १७ अप्रैल १९२० को मदरास की खिलाफत-परिषद् ने, कर दी थी। मदरास की खिलाफत-परिषद् ने असहयोग की योजना की जो परिभाषा की थी उसके अनुसार उपाधियों और सरकारी नौकरियों का परित्याग, आनरेरी पदों और कौंसिलों की मेम्बरी तथा पुलिस और फौज की नौकरी का त्याग और कर अदा करने से इन्कार करना भी आवश्यक था। खिलाफत और पंजाब के अत्याचारों और अपर्याप्त सुधारों की फल्गु ने उबलती हुई त्रिवेणी का रूप धारण कर लिया। इस त्रिधारा ने राष्ट्रीय असन्तोष के प्रवाह को और भी प्रबल कर दिया। असहयोग के लिए वातावरण तैयार था। लोकमान्य तिलक तक ने महासमिति के निश्चय को मानने का वचन दे दिया था। पर शोक, ३१ जुलाई की आधी रात को वे परलोक सिधार गये और इस प्रकार गांधी जी एक महान्-शक्ति की सहायता से वंचित रह गये।

इधर मुसलमानों ने अफगानिस्तान को हिजरत करने का निश्चय किया, क्योंकि अब तुर्किस्तान के साथ ब्रिटेन की संधि के बाद भारत में अंग्रेजों के शासन में रहना उन्होंने ठीक नहीं समझा। यह आन्दोलन सिन्ध में आरम्भ हुआ और सीमान्त प्रदेश में जा फैला। कचगढ़ी में मुहाजिरीन और सैनिकों में जोर की मुठभेड़ हो गई, जिससे जनता में और भी आग लग गई और अगस्त के भीतर-भीतर अनुमानतः १८,००० आदमी अफगानिस्तान के लिए चल पड़े। पर अफगान-सरकार ने शीघ्र ही इन मुहाजिरीन का दाखिला बन्द कर दिया और अनेक कष्ट झेलने और मरने-खपने के बाद इन मुसलमानों के विचारों में परिवर्तन हुआ।

जब अगस्त में बड़ी कौंसिल की बैठक हुई तो असहयोग जारी था। कई सदस्यों ने अपने पदों से इस्तीफा दे दिया था। वाइसराय ने घोषणा की कि असहयोग नीति से अव्यवस्था उत्पन्न होगी और पूछा कि क्या कोई इससे भी अधिक अविवेक-पूर्ण कार्य हो सकता है? उन्होंने आन्दोलन को "सारी मूर्खता-पूर्ण योजनाओं में सबसे अधिक मूर्खता-पूर्ण-योजना" बताया, परन्तु नई कौंसिल खोलने के लिए युवराज को भारत बुलाने का विचार, जिसका विरोध बम्बई लिबरल परिषद् में श्री शास्त्री तक ने किया था, अन्त में छोड़ दिया गया। अगस्त में ही डा० सप्रू को वाइसराय की कार्य-कारिणी का सदस्य नियुक्त किया गया।

असहयोग का प्रस्ताव

असहयोग की योजना का बाकायदा आरम्भ १ अगस्त को हुआ। गांधी जी और अली-भाइयों ने देश का दौरा किया। गांधी जी ने जनता को अनुशासन का पाठ पढ़ाया और उसके उछलते हुए उत्साह को संयम में रक्खा। जैसा हमेशा से होता आया है, गांधी जी ने जब-जब अपने अनुयायियों को लताड़ बताई तो सरकार ने उसका उद्धरण भीड़ की निरंकुशता सिद्ध करने में किया। कांग्रेस को अपने पुराने वैध रास्ते को छोड़ कर नया रास्ता अपनाने को कहा गया था। यह असाधारण बात थी, जिसके लिए कांग्रेस के विशेष-अधिवेशन की आवश्यकता थी। इस अधि-वेशन का निश्चय मई में ही हो चुका था। यह १९२० के ४ से ९ सितम्बर तक कलकत्ते में हुआ।

यह अधिवेशन बड़ा ही महत्वपूर्ण था। बंगाल गांधी जी से पूरी तरह सहमत न था और देशबन्धु दास तो गांधी जी के असहयोग-कार्यक्रम के सोलह आने विरुद्ध थे। उनके या अधिकांश प्रतिनिधियों के हृदयों में कौंसिलों और अदालतों के बहिष्कार की योजना के प्रति बिलकुल सहानुभूति न थी। पर तो भी ७ मत के संकीर्ण पर निश्चयात्मक बहुमत से कार्य-समिति ने गांधी जी का प्रस्ताव पास कर दिया, जिसमें उन्होंने शनैः-शनैः बहिष्कार करने की सलाह दी थी। उस समय वातावरण ही ऐसा था कि असहयोग अवश्यम्भावी था। भारत सरकार ने हंटर-रिपोर्ट के बहुसंख्यक-पक्ष की बात ग्रहण कर ली थी और वह अधिकारियों की काली करतूतों पर अन्धकार का पर्दा डालना चाहती थी। बहुसंख्यक-पक्ष की राय में डायर का आचरण केवल "समझ की बड़ी भूल" था, "जिसके कारण वह आवश्यकता की परिधि से बाहर चला गया।" उसकी राय में डायर ने जो किया वह कर्त्तव्य को नेकनीयती के साथ, पर गलत ढंग से अपना कर्त्तव्य समझने के कारण, किया। मि० मांटेगु ने भी इन सिफारिशों को बिना चूं तक किये स्वीकार कर लिया और पंजाब के अधिकारियों की करतूतों की ओर से एक प्रकार आंखें बन्द कर लीं। उन्होंने कहा कि "डायर ने कठोर कर्त्तव्य और नेकनीयती से काम लिया था।" कामन सभा में डायर के प्रति किये गये अत्याचार और उसे दिये गये अन्याय-पूर्ण दण्ड के सम्बन्ध में वाद-विवाद हुआ। लॉर्ड-सभा में लॉर्ड फिनले का प्रस्ताव स्वीकार किया गया जो गलत, एक-पक्षीय; और शब्द तथा भाव दोनों प्रकार से झूठी बातों से भरा हुआ था। इस वाद-विवाद के द्वारा भारतीय जनता के अधिकारों और स्वतन्त्रता के साथ विश्वास-घात किया गया। इस वाद-विवाद और खिलाफत-सम्बन्धी अन्याय को लेकर कलकत्ते के विशेष अधिवेशन में कड़े प्रस्ताव पास किये गये।

कांग्रेस का यह विशेष अधिवेशन कलकत्ते में बड़े जोशोखरोश के बीच हुआ। श्री व्योमकेश चक्रवर्ती स्वागत-समिति के प्रधान थे और लाला लाजपतराय, जो हाल ही अमरीका से लौटे थे, सभापति थे। पहले प्रस्ताव में लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक की मृत्यु पर कांग्रेस के गहरे दुःख को प्रकट करते हुए कहा गया कि उनका निर्मल एवं विशुद्ध जीवन, देश के लिए किया गया उनका

त्याग और सेवायें, जनता के हित के लिए उनकी तीव्र लगन और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के युद्ध में किये गये उनके भगीरथ प्रयत्नों के कारण उनकी स्मृति हमारे देशवासियों के हृदय-पटल पर सदा आदर-सहित अंकित रहेगी और अनगिनत पीढ़ियों तक हमारे देशवासियों को बल व स्फूर्ति प्रदान करती रहेगी। डॉ० महेन्द्रनाथ ओहदेदार की मृत्यु से देश को जो क्षति पहुंची थी, उस पर भी कांग्रेस ने अपने दुःख को प्रकट किया।

दूसरा प्रस्ताव सर आशुतोष चौधरी ने, जो कलकत्ता-हाईकोर्ट की जजी से फारिग हुए ही थे, पेश किया। उसमें पंजाब-जांच-कमिटी के निर्णय स्वीकार किये गये; हंटर कमिटी के बहुमत की पक्षपात तथा वर्ण-द्वेष-पूर्ण नीति की निन्दा की गई; और यह कहा गया कि उसके द्वारा ब्रिटिश न्याय की निष्पक्षता से लोगों का विश्वास उठ गया है।

तीसरा प्रस्ताव भी पंजाब के बारे में था। पंजाब में किये गये अत्याचारों के विरुद्ध ब्रिटिश-सरकार-द्वारा पर्याप्त कार्रवाई न किये जाने पर, ब्रिटिश-सरकार द्वारा भारत-सरकार की सिफारिशों को ज्यों-का-त्यों मान लिये जाने पर, और उसके द्वारा पंजाब के अधिकारियों के काले कारनामों को असलियत में दर-गुजर कर देने पर घोर निराशा प्रकट की गई।

लेकिन अधिवेशन का मुख्य प्रस्ताव असहयोग से सम्बन्ध रखनेवाला था, जिसे गांधीजी ने पेश किया और जो ८८४ प्रतिनिधियों के विरुद्ध १८८६ प्रतिनिधियों की राय से पास हुआ। यह प्रस्ताव इस प्रकार था—

"चूंकि खिलाफत के प्रश्न पर भारत व ब्रिटेन दोनों देशों की सरकारें भारत के मुसलमानों के प्रति अपना फर्ज अदा करने में खास तौर से असफल रही हैं और ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने जान-बूझ कर उन्हें दिये हुए वादे को तोड़ा है और चूंकि प्रत्येक गैर-मुस्लिम भारतीय का यह फर्ज है कि अपने मुसलमान भाई पर आई हुई धार्मिक-विपत्ति को दूर करने में प्रत्येक उचित उपाय से सहायता करे;

"और चूंकि अप्रैल १९१९ की घटनाओं के मामले में उक्त दोनों सरकारों ने पंजाब की बेकसूर जनता की रक्षा करने में और उन अफसरों को सजा देने में, जो पंजाब की जनता के प्रति असभ्य व सैनिक-धर्म-विरुद्ध आचरण करने के दोषी ठहरे हैं, घोर लापरवाही की है और चूंकि उक्त दोनों सरकारों ने सर माइकेल ओडायर को, जो अफसरों द्वारा किये गये बहुत-से अपराधों के लिए स्वयं प्रत्यक्ष-रूप से उत्तरदायी था और जिसने जनता के दुःखों व कष्टों की सरासर अवहेलना की, बरी कर दिया; और चूंकि इंग्लैण्ड की लॉर्ड-सभा में हुए वाद-विवाद से भारतीय जनता के प्रति सहानुभूति का दुःखपूर्ण अभाव स्पष्टतः प्रकट हो गया है और पंजाब में सुसंगठित रूप से आतंक और त्रास फैलाया गया है; और चूंकि वाइसराय की सबसे ताजी घोषणा इस बात का प्रमाण है कि खिलाफत व पंजाब के मामलों पर तनिक भी पछतावे का भाव नहीं है; अतः इस कांग्रेस की राय है कि भारत में तबतक शान्ति नहीं हो सकती जबतक कि उक्त दोनों भूलों का सुधार नहीं किया जाता। राष्ट्रीय-सम्मान की मर्यादा को कायम रखने के लिए और भविष्य में इस प्रकार की भूलों को दोहराने से बचाने के लिए उपयुक्त मार्ग केवल स्वराज्य की स्थापना ही है। इस कांग्रेस की यह राय है कि जबतक उक्त भूलों का सुधार न हो जाय और स्वराज्य की स्थापना न हो जाय, भारतवासियों के लिए इसके सिवा और कोई मार्ग नहीं है कि वे गांधीजी-द्वारा संचालित क्रमिक अहिंसात्मक असहयोग की नीति को स्वीकार करें और अपनावें।

"और चूंकि इसकी शुरुआत उन लोगों को ही करनी चाहिए जिन्होंने अबतक लोकमत को बनाया और उसका प्रतिनिधित्व किया है, और चूंकि सरकार अपनी शक्ति का संगठन लोगों को दी गई

उपाधियों व सम्मान से, अपने द्वारा नियन्त्रित स्कूलों से, व अपनी अदालतों व कौंसिलों से ही करती है, और चूंकि आन्दोलन को चलाने में यह वाञ्छनीय है कि कम-से-कम खतरा रहे और वाञ्छित उद्देश्य की सिद्धि के लिए आवश्यक कम-से-कम त्याग का आह्वान किया जाय, यह कांग्रेस सरगरमी के साथ सलाह देती है कि—

(अ) सरकारी उपाधियों व अवैतनिक पदों को छोड़ दिया जाय और जिला और म्युनिसिपल-बोर्ड व अन्य संस्थाओं में जो लोग नामजद हुए हों, वे स्तीफा दे दें।

(ब) सरकारी दरबारों, स्वागत-समारोहों तथा सरकारी अफसरों-द्वारा किये या उनके सम्मान में किये जाने वाले अन्य सरकारी व अर्ध-सरकारी उत्सवों में भाग लेने से इनकार किया जाय।

(स) सरकार के, सरकार से सहायता प्राप्त करने वाले व सरकार-द्वारा नियन्त्रित स्कूल व कालेजों से छात्रों को धीरे-धीरे निकाल लिया जाय, उनके स्थान में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में राष्ट्रीय स्कूल व कालेजों की स्थापना की जाय।

(द) वकीलों व मुवक्किलों-द्वारा ब्रिटिश अदालतों का धीरे-धीरे बहिष्कार हो और उनकी मदद से खानगी झगड़ों को तय करने के लिए पंचायती अदालतों की स्थापना हो।

(य) फौजी, क्लर्की व मजदूरी करने वाले लोग मेसोपोटामिया में नौकरी करने के लिए भरती होने से इनकार करें।

(फ) नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए उम्मीदवार अपने नाम उम्मीदवारी से वापस ले लें और यदि कांग्रेस की सलाह के बावजूद कोई उम्मीदवार चुनाव के लिए खड़ा हो तो मतदाता उसे वोट देने से इनकार करें।

(ज) विदेशी माल का बहिष्कार किया जाय।

"और चूंकि असहयोग को अनुशासन व आत्म-त्याग के एक साधन के रूप में पेश किया गया है जिसके बिना कोई भी सच्ची उन्नति नहीं कर सकता, और चूंकि असहयोग के सबसे पहले युग में ही हर स्त्री-पुरुष व बालक को इस प्रकार के अनुशासन व आत्म-त्याग का अवसर मिलना चाहिए, यह कांग्रेस सलाह देती है कि एक बड़े पैमाने पर स्वदेशी वस्त्रों को अपनाया जाय; और चूंकि भारतीय-श्रम व प्रबन्ध से चलने वाली भारत की वर्तमान मिलें देश की जरूरियात के लिए पर्याप्त सूत व कपड़ा तैयार नहीं कर सकतीं और न ही इस बात की कोई सम्भावना है कि एक लम्बे अर्से तक वे ऐसा करने में समर्थ हो सकेंगी, यह कांग्रेस सलाह देती है कि हरेक घर में हाथ की कताई को फिर से और देश के उन असंख्य जुलाहों द्वारा, जिन्होंने अपने पुराने व सम्मानित पेशे को उत्साह न मिलने के कारण छोड़ दिया था, हाथ की बुनाई को पुनरुज्जीवित करके बड़े पैमाने पर वस्त्रों की उत्पत्ति तुरन्त ही बढ़ाई जाय।"

इस प्रस्ताव पर गरमागरम बहस हुई। बाबू विपिनचन्द्र पाल ने एक संशोधन पेश किया, जिसका देशबन्धु चित्तरञ्जनदास ने समर्थन किया। इस संशोधन के अनुसार ब्रिटेन के प्रधान-मंत्री को भारत के एक शिष्ट-मण्डल से मिलने के लिए कहा गया।

बहुत देर के विवाद के बाद अन्त में गांधीजी का प्रस्ताव पास होगया।

यहां प्रसङ्गवश यह भी कह दिया जाय कि गांधीजीने पहले जिला व म्युनिसिपल बोर्ड आदि स्थानिक संस्थाओं के बहिष्कार को भी अपने कार्यक्रम में शामिल कर लिया था, लेकिन फिर मित्रों की मर्जी के खातिर उसे निकाल दिया। राष्ट्रीय दल भी कार्यक्रम में कुछ मतभेद रखता था, लेकिन जिस-

पर भी वह कांग्रेस के प्रति वफादार रहा। अमृतसर-कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार जो राष्ट्रीय पक्ष के उम्मीदवार नई कौंसिलों के चुनाव के लिए खड़े हुए थे और जिन्होंने चुनाव-आन्दोलन में काफी समय-परिश्रम व धन व्यय किया था, वे लगभग सब एकदम चुनाव से हट गये। मतदाताओं तक ने, लगभग ८० प्रतिशत ने, कांग्रेस के निर्णय को माना और वोट देने से इनकार किया। कई जगहों से तो वोट की पर्चियां डालने के बक्स रीते-के-रीते लौट गये। स्वयं सरकार ने इस बात को स्वीकार किया कि "गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन में नई कौंसिलों का बहिष्कार अवश्य ही अगले कुछ वर्षों के इतिहास पर जबरदस्त प्रभाव डालकर रहेगा।" इस बहिष्कार के कारण नई कौंसिलों में कई लोक-प्रतिष्ठित व उग्र-विचारवादी न आ सके और नरमदलियों का रास्ता साफ हो गया।

नवम्बर के शुरू होते ही सरकार ने इस आन्दोलन के प्रति अपनी नीति को स्पष्ट करना आवश्यक समझा। सरकार ने कहा, "उसने प्रान्तीय सरकारों को आदेश किया है कि वे केवल उन्हीं लोगों के विरुद्ध कार्रवाई करें जो आन्दोलन को चलाते-चलाते उस हद से भी बाहर निकल जायं जो उसके संचालकों ने नियत कर रक्खी है और जिन्होंने लेखों व भाषणों से जनता को खुलेआम हिंसा के लिए भड़काया है, या जिन्होंने पलटन व पुलिस की वफादारी को बिगाड़ने का प्रयत्न किया है।" सरकार ने अपना यह विश्वास भी प्रकट किया कि "उच्च-वर्ग के व्यक्ति व सर्वसाधारण दोनों ही असहयोग-आन्दोलन को एक शेखचिल्ली की योजना समझकर रद कर देंगे; क्योंकि यदि यह योजना सफल हो जाय तो उससे चारों ओर अशान्ति व राजनैतिक गोलमाल फैले बिना नहीं रह सकता और जिन लोगों के देश में कुछ भी स्वार्थ-सम्बन्ध हैं उनका सर्वनाश हुए बिना नहीं रह सकता। असहयोग-आन्दोलन अज्ञान और पूर्व-विश्वासों के सहारे ही टिक सकता है; और उसके उद्देश्य में रचनात्मक तत्वों के तो कीटाणु भी नहीं हैं।"

२ अक्टूबर १९२० को महासमिति ने अपनी बैठक में अखिल-भारत तिलक-स्मारक-कोष व स्वराज्य-कोष नाम के दो कोष इकट्ठे करने का निश्चय किया, लेकिन उसका यह प्रस्ताव दिसम्बर १९२० तक रद्दी की टोकरी में ही पड़ा रहा। असहयोग-आन्दोलन-सम्बन्धी नये प्रस्तावों का भी बंगाल और महाराष्ट्र में कुछ अच्छा स्वागत न हुआ। लोकमान्य तिलक के एक साथी गणेश श्रीकृष्ण खापर्डे ने एक छोटी-सी पुस्तिका प्रकाशित करके तुलनात्मक रूप से बताया कि किस प्रकार कलकत्ता कांग्रेस के प्रस्ताव, कांग्रेस की शक्तियों को आत्मबल व नैतिक श्रेष्ठता प्राप्त करने की दिशा में तो ले जाते हैं, लेकिन प्रश्न के राजनैतिक पहलू को बिलकुल भुला देते हैं। "देश की वास्तविक सरकार से हमारा सब सम्पर्क हटाकर यह आन्दोलन हमें राजनीतिक रंग में रंगे जाने से और एक इस प्रकार का राजनैतिक स्वभाव बनाने से रोकता है जो एक करारी लड़ाई को शान्ति से किन्तु सुव्यवस्थित रूप से और जमकर चलाने के लिए आवश्यक है। असहयोग का आन्दोलन सहनशक्ति को बढ़ाने में सहायक हो सके, यह सम्भव है; लेकिन वह हमारे अन्दर वह कार्य-शक्ति, सहनशीलता व व्यावहारिक-चातुर्य्य पैदा करने में असमर्थ है, जो एक राजनैतिक आन्दोलन के लिए आवश्यक है। कांग्रेस ने जिन तीन बहिष्कारों की सिफारिश की है वे बेकार हैं और उनमें सुदूर राजनैतिक दृष्टि का बिलकुल अभाव है। आल-इण्डिया होमरूल-लीग (जो अब स्वराज सभा के नाम से जानी जाती है) के ध्येय को बदलते समय जो विवाद व कार्रवाई हुई उसे देखने से प्रतीत होता है कि अब सारा झुकाव फिर एकतन्त्र व व्यक्तिगत सत्ता की ओर है। चाहे वह सत्ता एक बहुत ही बढ़े-चढ़े व नीतिवान् व्यक्ति को क्यों न दी जाय, है आपत्तिजनक और समय की स्पिरिट के विरुद्ध।"

इसमें होमरूल-लीग के ध्येय-परिवर्तन और गांधीजी द्वारा स्वराज्य सभा बनाने की ओर

ध्यान दिलाया गया। कलकत्ते में असहयोग का भाग्य तराजू के पलड़ों पर लटका हुआ था। गांधीजी ने पुराने होमरूल-वादियों को, जिनसे श्रीमती बेसेण्ट अलग-सी हो गई थीं, एक झण्डे के नीचे इकट्ठा किया और लीग का ध्येय बदल डाला। इस ध्येय को नागपुर में फिर कांग्रेस ने भी अपना लिया। गांधीजी ने लीग का नाम भी बदल कर स्वराज्य सभा रक्खा; लेकिन इस सभा को चलने का मौका नहीं मिला, क्योंकि कलकत्ता में तो कांग्रेस ने असहयोग के मार्ग को ग्रहण कर लिया था और नागपुर में उस पर फिर दोहरी छाप लगा दी। यह विधि के विधान में और राजनीति में कैसी घटना है कि असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव दो बार ऐसे प्रान्तों की राजधानियों में पास हुए जहां कि असहयोग-आन्दोलन का प्रबल-से-प्रबल विरोध किया गया था।

नागपुर-कांग्रेस

नागपुर-कांग्रेस में असहयोग के कार्य-क्रम पर अन्तिम रूप से विचार होकर निश्चय होना था। कांग्रेस में आये हुए प्रतिनिधियों की संख्या बहुत अधिक थी। नागपुर के पहले या बाद को कोई भी कांग्रेस इस बात का दावा नहीं कर सकती कि उसके अधिवेशनों में प्रतिनिधियों की संख्या नागपुर के बराबर थी। नागपुर में प्रतिनिधियों की संख्या १४,५८२ थी, जिसमें १०५० मुसलमान थे और १६९ स्त्रियां। कांग्रेस के सभापति दक्षिण के पुराने व अनुभवी नेता चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य थे। कर्नल वेजवुड, मि० हालफोर्ड नाइट व मि० बेन स्पूर ने कांग्रेस में इंग्लैण्ड के मजदूर-दल के मित्र-प्रतिनिधि की हैसियत से भाग लिया और मजदूर-दल की सहानुभूति को प्रदर्शित किया।

श्री चित्तरंजनदास पूर्वी बंगाल व आसाम से लगभग २५० प्रतिनिधियों का एक दल लाये थे। उनका दोनों ओर का खर्चा भरा और अपनी जेब से लगभग ३६०००) इसलिए खर्च किया कि कलकत्ते के निर्णय पर पानी फेरा जा सके। श्री दास के आदमियों में और उनके विरोधी श्री जितेन्द्र-लाल बनर्जी के आदमियों में एक मामूली-सी तकरार भी हो गई। महाराष्ट्र का विरोध भी कुछ कम तगड़ा या कुछ कम संगठित न था। कर्नल वेजवुड ने और मि० बेन स्पूर व मि० हालफोर्ड नाइट ने विषय-समिति की बैठक में भी भाग लिया था। कर्नल वेजवुड ने असहयोग के विरोध में दलीलें पेश करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी। परन्तु नतीजा कुछ भी न हुआ। खादी-सम्बन्धी धारा और भी कड़ी कर दी गई। असहयोग का प्रस्ताव फिर दोहराया गया और कांग्रेस का ध्येय "इस तर्ज से बदल डाला गया कि उसमें ब्रिटिश-सम्बन्ध व वैध-आन्दोलन का, जिसमें कांग्रेस अभी-तक विश्वास करती थी, कोई उल्लेख ही न रहा।" ये सरकार के शब्द हैं। अधिवेशन में गांधीजी के व्यक्तित्व की विजय हुई।

अब हम नागपुर-कांग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाली घटनाओं पर और उसने कांग्रेस के ध्येय व विधान तथा आदर्शों व दृष्टिकोण में क्या-क्या आमूल-परिवर्तन किये, इसपर भी दृष्टिपात करें। असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव का पास हो जाना स्वयं एक बड़ी भारी बात थी, लेकिन उसके बारे में सबसे बड़ी बात यह थी कि उसे श्री चित्तरंजनदास ने पेश किया और उसका लाला लाजपतराय ने समर्थन किया। नागपुर में गांधीजी को निस्सन्देह कलकत्ते से अधिक समर्थन प्राप्त हुआ। कलकत्ते में केवल एक ही परले सिरे के राजनीतिज्ञ पं० मोतीलाल नेहरू ने गांधीजी का साथ दिया था, और सो भी अधिवेशन की समाप्ति के करीब जबकि गांधीजी ने नेहरूजी का यह संशोधन स्वीकार कर लिया कि अदालतों व कालेजों का बहिष्कार धीरे-धीरे हो।

नागपुर के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव ने करीब-करीब कलकत्तावाले प्रस्ताव को ही दोह-राया। एक ओर पदवियां छोड़ देने की बात तो दूसरी ओर करों के न देने तक की बात उसमें

शामिल कर ली गई। व्यापारियों से अनुरोध किया गया कि वे धीरे-धीरे विदेशी व्यापारिक सम्बन्धों को छोड़ें और हाथ की कताई बुनाई को प्रोत्साहन दें। देश से अनुरोध किया गया कि वह राष्ट्रीय आन्दोलन में अधिक-से-अधिक त्याग करे। राष्ट्रीय सेवक दल (इण्डियन नेशनल सर्विस) को संगठित करने और 'अखिल-भारतीय तिलक-स्मारक-कोष' को बढ़ाने के लिए कांग्रेस पर जोर दिया गया। कौंसिलों के लिए चुने गये सदस्यों से इस्तीफा देने की और मतदाताओं से उन सदस्यों से किसी भी प्रकार की राजनैतिक सेवा न लेने की प्रार्थना की गई। पुलिस व पलटन और जनता में मित्रता के जो भाव बढ़ रहे थे उनको स्वीकार किया गया। सरकारी कर्मचारियों से अपील की गई कि वे जनता से बर्ताव करते समय अधिक नरमी व ईमानदारी का परिचय देकर राष्ट्र-कार्य में सहायता करें और सब सार्वजनिक सभाओं में बिना डर के खुले तौर पर भाग लें। इस बात पर भी जोर दिया गया कि अहिंसा असहयोग-आन्दोलन का अविच्छिन्न अंग है। वचन और कर्म दोनों में अहिंसा का होना आवश्यक माना गया और उस पर जोर दिया गया, क्योंकि हिंसा-भाव लोकशासन की स्पिरिट के विरुद्ध ही नहीं बल्कि असहयोग की आगे की सीढ़ियों तक पहुंचने के मार्ग में भी बाधक है। प्रस्ताव के अन्त में इस बात पर जोर दिया गया कि सब सार्वजनिक संस्थायें सरकार से अहिंसात्मक असहयोग करने में अपना सारा ध्यान लगा दें और जनता में परस्पर पूर्ण सहयोग स्थापित करें। इस प्रकार के परिवर्तित वातावरणमें इंग्लैण्ड के साप्ताहिक 'इण्डिया' को बन्द करना निश्चित हुआ, यद्यपि इस बात को महसूस किया गया कि भारत और विदेशों में भारत के बारे में सच्ची बातों के फैलाने की आवश्यकता है। आयर्लैण्ड के वीर योद्धा स्वर्गीय मैक्स्विनी को, जिन्होंने आयर्लैण्ड के उत्थान के लिए लड़ते-लड़ते ६५ दिन की भूख-हड़ताल के पश्चात् अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दिया था, इसके लिए उन्हें श्रद्धांजली दी गई।

विनिमय की दर में वृद्धि होने और उसके फल-स्वरूप "रिवर्स कौंसिलों" द्वारा स्वर्ण-विनिमय-मान-कोष (Gold Exchange Standard Reserve) व कागजी-मुद्रा कोष (Paper Currency Reserve) में "लूट" मचने के कारण नागपुर में जोरों से इस बात की मांग पेश की गई कि ब्रिटिश-सरकार इस घाटे को पूरा करे। पांचवें प्रस्ताव में तो यह भी कहा गया कि "ब्रिटिश माल की तिजारत करनेवाले व्यापारी विनिमय की वर्तमान दरों पर अपना वादा पूरा करने से इन्कार करने के हकदार हैं।" ड्यूक ऑफ कनाट के सम्मान में किसी उत्सव व समारोह में भाग न लेने के लिए देश से अनुरोध किया गया। मजदूरों को प्रोत्साहित किया गया और ट्रेड-यूनियनों के जरिये जारी किये गये उनके संग्राम के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की गई। खाद्य-पदार्थों के निर्यात की नीति की निन्दा की गई। मुकदमा चलाकर या बिना मुकदमा चलाये जिन राजनैतिक कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार करके सजा दी गई उनके प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। पंजाब, दिल्ली व अन्य स्थानों में पुनः प्रारम्भ हुए दमन को ध्यान में रक्खा गया और जनता से कहा गया कि वह सब कुछ धैर्य से सहे। कांग्रेस ने सब देशी नरेशों से भी प्रार्थना की कि वे अपनी-अपनी रियासतों में पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्र-से-शीघ्र प्रयत्न करें। हार्निमैन साहब को भारतीयों से अलग रखने की सरकारी नीति की निन्दा की गई और मि० हार्निमैन के प्रति भारत की कृतज्ञता प्रकाशित की गई। ईशर-कमिटी व उसकी सिफारिशों को भारत की पराधीनता व असहायता को बढ़ाने में सहायक मानकर उनकी निन्दा की गई और उन सिफारिशों को भी असहयोग आन्दोलन का एक

१—कोष एकत्र करने का निश्चय तो अक्तूबर में ही हो गया था, लेकिन बाद में अखिल-भारत-लोकमान्य-स्मारक-कोष व स्वराज्य-कोष को मिलाकर एक कर दिया गया।

और कारण माना गया। मुसलमानों को गो-वध के विरुद्ध प्रस्ताव पास करने पर धन्यवाद दिया गया और जनता से आग्रह किया गया कि वह जानवर और चमड़े के निर्यात को निरुत्साहित करे। निःशुल्क शिक्षा व देशी-चिकित्सा-पद्धति के बारे में भी प्रस्ताव पास हुए।

अन्त में हम कांग्रेस के विधान पर आते हैं। कांग्रेस का ध्येय बदल दिया गया। कांग्रेस का ध्येय "शान्तिमय व उचित उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना" घोषित किया गया। कांग्रेस का प्रांतीय संगठन प्रान्तों की भाषा के अनुसार किया गया। विषय-समिति की बैठकों का कांग्रेस के खुले अधिवेशन से दो-तीन दिन पहले करना व उसकी सदस्यता केवल महासमिति के सदस्यों तक सीमित रखना—ये मार्के के परिवर्तन थे; लेकिन विषय-समिति के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ३५० तक कर दी गई। सभापति, मन्त्री व कोषाध्यक्ष समेत १५ सदस्यों की एक कार्य-समिति का नियुक्त होना नये विधान का एक ऐसा अंग था जिसने कांग्रेस के रोजमर्रा के कार्य में एक क्रांति ही कर दी है।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले हम यह बता दें कि कांग्रेस ने पूर्वी व दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों को उनके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार के विरुद्ध उच्चता और वीरतापूर्ण संग्राम छेड़ने पर सहायता देने का भी प्रस्ताव पास किया और पूर्वी अफ्रीका में भारतीयों द्वारा प्रारम्भ की गई शान्तिमय असहयोग की नीति को पसन्द किया। फिजी के भारतीयों की, जिन्हें भारत लौटने के लिए बाध्य किया गया था, भारत द्वारा कोई सहायता न हो सकने पर दुःख प्रकट किया। सबसे अन्त में प्रवासी भारतीयों की सेवा करने के उपलक्ष्य में कांग्रेस ने दीनबन्धु एण्डरूज को धन्यवाद दिया।

टिप्पण

१. चम्पारन-सत्याग्रह

बिहार के उत्तर-पश्चिमी कोने में चम्पारन एक जिला है। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में गोरे खेतिहरों ने इस जिले में नील की खेती करना प्रारम्भ किया। आगे चलकर इन लोगों ने वहां के जमींदारों से, अस्थायी और स्थायी जैसे भी सौदा बना, भूमि के बड़े-बड़े भाग अपने हाथ में कर लिये। विशेषकर महाराज बेतिया की जमीन ली, क्योंकि उनके सिर कर्ज का बहुत बड़ा बोझा लदा हुआ था। इन गोरे खेतिहरों ने अपने प्रभाव और रुतबे से, जो कि उन्होंने जमीन प्राप्त करके यहां पैदा कर लिया था, और कुछ उस प्रभाव के कारण भी जो कि उन्हें हुकूमत करनेवाली जाति का होने के नाते प्राप्त था, शीघ्र ही वहां के गांवों के किसानों से अपने लिए नील की खेती कराना प्रारम्भ कर दिया। आगे चलकर यह अनिवार्य हो गया कि किसान अपनी ३/२० या ५/२० भूमि पर नील अवश्य बोयें। कुछ ही दिनों में इन लोगों ने बंगाल टेनेन्सी एक्ट में इस बात को कानून का रूप दिलवा दिया। नील पैदा करने की यह प्रथा आगे चलकर 'तीन कठिया' के नाम से मशहूर हुई, जिसके मानी थे एक बीघे का ३/२० भाग। किसानों को यह शिकायत थी कि नील की खेती से उन्हें कोई फायदा नहीं है। लेकिन फिर भी उसे करने के लिए उन्हें मजबूर किया जाता था। इससे उनकी अन्य खेती को नुकसान पहुंचता था और इसके लिए उन्हें जो मजदूरी मिलती थी वह नाममात्र की थी। कई बार उनकी शिकायतों ने जोर मारा, परन्तु कड़ाई के साथ उन्हें वहीं का-वहीं दबा दिया गया। लेकिन कभी-कभी इतना अवश्य हो जाता था कि किसानों के इस सिर उठाने के बाद नील के मूल्य में कुछ वृद्धि अवश्य हो जाती थी। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में अन्य अनेक चीजों के मेल से रंग तैयार होने लगे। इसका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि पूर्वोक्त व्यवस्था में नील पैदा कराने पर भी नील का व्यवसाय लाभप्रद नहीं रहा। फलतः उनके

नील के कारखाने बन्द होने लगे। लेकिन इस नुकसान को अपने-अपने कंधे पर लेने के बजाय उन्होंने उसे गरीब किसानों के सिर मढ़ देने के उपाय सोचे। इसके लिए उन्होंने दो उपायों से काम किया। उन गांवों में, जिनकी जमीनों के लिए उनके पास स्थायी पट्टा था, उन्होंने किसानों से लगान में बढ़ोतरी कराने के इकरारनामे लिखा लिये और बदले में उन्हें नील पैदा करने के बन्धन से मुक्त कर दिया।

इस प्रकार के हजारों ही शर्त्तनामे लिखाये गये। किसानों का कहना था कि ये शर्त्तनामे उनसे जबरदस्ती लिखाये गये हैं। आमतौर पर तो लगान के ये बाढे गैर-कानूनी होते; लेकिन टेनेंसी-ऐक्ट में एक धारा थी जिसके कारण ये गैर-कानूनी होने से बच गये। टेनेंसी ऐक्ट में यह नियम निलहे गोरों के प्रस्ताव करने पर बनाया गया था। सरकार ने लोकमत का तीव्र विरोध होने पर भी; कौंसिलों के भीतर और बाहर, निलहे गोरों के ये शर्त्तनामे लिखाने और उन्हें पूरा कराने में मदद ही की। इन शर्त्तनामों की रजिस्ट्री कराने के लिए सरकार ने खास रजिस्ट्रार नियुक्त किये थे। लेकिन जहां उनके स्थायी पट्टे नहीं थे, वहां किसानों से उन्होंने, जैसा कि किसानों का आरोप था, नील पैदा करने से मुक्त करने के लिए जबरदस्ती नकद रुपया वसूल किया, या रुपये के मूल्य की कोई और चीज ले ली। इन जमीनों के लगान में बाढ़ा इसलिए नहीं कराया कि पट्टे की मियाद पूरी हो जाने के बाद तो वह लाभ असली जमींदार को पहुंचता। परन्तु इस तरह नकद रुपया लेना तो टेनेंसी-एक्ट में दी गई विशेष रिआयतों के भी विरुद्ध था। इस प्रकार इन गोरों ने गरीब किसानों से कोई १२ लाख रुपया वसूल किया; क्योंकि सारा चम्पारन जिला इन्हीं गोरों के हाथों में आ गया था, इसलिए उन्होंने उसके मुख्तलिफ टुकड़े कर लिये थे। गोरों के प्रत्येक संघ के पास चम्पारन जिले का कोई न कोई भाग था जिसमें उनकी हुकूमत थी। इनका प्रभाव सरकारी हलकों में इतना था कि बेचारे गरीब किसान इस बात का साहस, जिस्मानी और माली जोखिम उठाने के लिए तैयार हुए बिना, कर ही नहीं सकते थे कि इन गोरों के विरुद्ध दीवानी या फौजदारी किसी भी प्रकार का मामला चलावें या किसी भी हाकिम से शिकायत कर सकें। उच्च-जाति के हिन्दुओं तक को पिटवाना, कांजी हौजों में उन्हें बन्द करा देना तथा हजार ढंग से उन्हें तंग करना और उनपर अत्याचार करना, जिनमें मकानों की लूट, नाई, धोबी, चमार बन्द करा देना, उनके मकानों से उन्हें बाहर निकाल देना, उन्हीं के मकानों के भीतर उन्हें बन्द कर देना, अछूतों को उनके दरवाजों पर बिठा देना आदि बातें भी शामिल थीं, जो आये दिन बराबर उनपर बीतती रहती थीं। ये लोग किसानों से जबरदस्ती अनुचित रूप से भांति-भांति के नजराने भी लिया करते थे। जांच करने पर यह ज्ञात हुआ था कि ५० प्रकार के नजराने वसूल किये जाते थे। उनमें से कुछ के नाम यहां देना अनुचित न होगा। विवाह पर, चूल्हे पर, कोल्हू पर लाग लगी हुई थी। यदि साहब बीमार हैं और पहाड़ पर जाने की आवश्यकता है, तो वहां के किसानों को इसके लिए 'पहाड़ही' नामक लाग देनी पड़ती थी। यदि साहब को सवारी के लिए घोड़ा, हाथी या मोटर की जरूरत होती तो किसानों को उसके मूल्य के लिए "घोड़ाही" "हाथीयाही" या "हवाई" नामक विशेष लाग देनी पड़ती थी। इन लागों के अतिरिक्त किसानों से भारी-भारी जुर्माने भी वसूल किये जाते थे। यदि किसी किसान से कोई ऐसा कार्य बन पड़ा जिससे साहब को या किसी दूसरे को बुरा लगा, तो उसपर जुर्माना कर दिया जाता था। इस प्रकार से ये लोग एक तरह से उस जिले की अदालत और हाकिम ही बन बैठे थे।

सार्वजनिक सेवकों के, इन किसानों की मुसीबत को दूर करने के सारे प्रयत्न बेकार हो गये थे। सरकार किसानों की इन मुसीबतों को जानती थी, उन्हें मानती थी, और किसानों के साथ सहानु-

भूति भी प्रकट करती थी, लेकिन उनके कष्ट दूर करने में या तो अपने को शक्तिहीन समझती थी और या कुछ खास करना नहीं चाहती थी।

यह अवस्था थी जब कि कुछ इन किसानों के और कुछ बिहार के प्रतिनिधि गांधीजी के पास लखनऊ-कांग्रेस के अवसर पर पहुंचे। उन्होंने उन्हें चम्पारन आकर स्थिति का अध्ययन करने का वचन दे दिया।

१९१७ में गांधीजी मोतीहारी पहुंचे। यह जिले का मुख्य स्थान था। गांवों को देखने के लिए वे रवाना होने वाले थे कि दफा १४४ का नोटिस मिला कि तुरन्त ही जिले से बाहर चले जाओ। गांधीजी भला इस हुक्म को कब माननेवाले थे! उन्होंने अपना 'कैसरेहिन्द' का स्वर्ण-पदक, जो कि सरकार ने उन्हें उनके लोकोपयोगी कार्यों के पुरस्कार में दिया था, सरकार को लौटा दिया। मजिस्ट्रेट की अदालत में उन पर दफा १४४ भंग करने का मुकदमा चला। उन्होंने अपने को अपराधी स्वीकार करते हुए एक विलक्षण बयान अदालत के सम्मुख दिया, जो उस समय एक अपरिचित और नई स्फुरण को लिये हुए था, हालांकि आज हम उससे भलीभांति परिचित हो चुके हैं। सरकार ने अन्त में मुकदमा वापस ले लिया और उन्हें अपनी जांच करने दी। इस जांच में उन्होंने अपने मित्रों की सहायता से कोई २० हजार किसानों के बयान कलमबन्द किये। इन्हीं बयानों के आधार पर गांधीजी ने किसानों की मांगें पेश कीं। आखिरकार सरकार को एक कमीशन नियुक्त करना पड़ा जिसमें जमींदार, सरकार और निलहे गोरों के प्रतिनिधि थे। गांधीजी को किसानों की ओर से प्रतिनिधि रक्खा गया था। इस कमीशन ने जांच के बाद एकमत होकर अपनी रिपोर्ट लिखी, जिसमें किसानों की लगभग सभी शिकायतों को जायज माना गया। उस रिपोर्ट में एक समझौता भी लिखा गया था, जिसमें किसानों पर बढ़ाये गये लगान को कम कर दिया गया था और जो रुपया गोरों ने नकद वसूल किया था उसका एक भाग लौटा देना तय हुआ था। इनकी सिफारिश को बाद में कानून का रूप दे दिया गया था, जिसके अनुसार नील को पैदा करना या 'तीन-कठिया' लेना मना कर दिया गया। इसके कुछ वर्ष बाद ही अधिकांश निलहे गोरों ने अपने कारखाने बेच दिये, जमीन बेच दी और जिला छोड़कर चले गये। आज उन स्थानों के, जो कभी निलहे गोरों के महल थे, खण्डहर ही शेष हैं। वे लोग, जो अभीतक वहां मौजूद हैं, नील का काम कतई नहीं कर रहे हैं; बल्कि दूसरे किसानों की तरह खेती-बाड़ी करके बसर करते हैं। अब न तो उनकी वह गैर-कानूनी आमदनी ही रह गई है और न वह प्रतिष्ठा ही, जो उनकी आमदनी का एक कारण थी। जिन अत्याचारों और मुसीबतों को देश के अनेक नेता और सरकार दोनों पिछले सौ वर्षों से दूर न कर सके वे इस प्रकार कुछ ही महीनों में मिट गये।

२. खेड़ा-सत्याग्रह

सफलता की दृष्टि से चाहे नहीं, बल्कि सत्याग्रह के सिद्धान्त का जहांतक प्रश्न है, चम्पारन-सत्याग्रह के समान ही महत्वपूर्ण खेड़ा का (१९१८) भी सत्याग्रह है। गांधीजी के भारत के सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने से पहले, भारतीय किसान यह नहीं जानते थे कि घोर-से-घोर अकाल के दिनों में भी वे सरकार के लगान लेने के अधिकार के सम्बन्ध में कुछ एतराज कर सकते हैं। उनके प्रतिनिधि सरकार के पास आवेदन एवं प्रार्थनापत्र भेजते थे, स्थानीय कौंसिल में प्रस्ताव करते थे। बस, यहां पर उनका विरोध समाप्त हो जाता था। १९१८ में गांधीजी ने एक नये युग का श्रीगणेश किया। गुजरात के खेड़ा जिले में इस वर्ष ऐसा बुरा समय आया कि जिले भर की सारी फसल खराब हो गई। अवस्था अकाल के समान हो गई थी। किसान लोग यह महसूस करने लगे थे कि अवस्था

को देखते हुए लगान स्थगित होना चाहिए। आमतौर पर ऐसे मौकों पर जो उपाय काम में लाये जाते थे, उन सबको आजमाया जा चुका था। सारे उपाय बेकार हो चुके थे। किसानों का कहना था कि फसल रुपये में चार आना भी नहीं हुई। दूसरी ओर सरकारी अफसरों का कहना था कि चार आने से ज्यादा हुई है, और इसलिए किसानों को, कानून के अनुसार, लगान मुल्तवी कराने का कोई अधिकार नहीं है। किसानों की सारी प्रार्थनायें निरर्थक साबित हो चुकी थीं, अतः गांधीजी के पास किसानों को सत्याग्रह की सलाह देने के अलावा कोई चारा ही नहीं था। उन्होंने लोगों से स्वयं-सेवक और कार्यकर्ता बनने की भी अपील की और कहा कि वे किसानों में जाकर उन्हें अपने अधिकारों आदि का ज्ञान करावें। गांधीजी की अपील का असर तुरन्त ही हुआ। सबसे पहले स्वयं-सेवक बनने को आगे बढ़ने वाले सरदार वल्लभभाई पटेल थे। आपने अपनी खासी और बढ़ती हुई वकालत पर लात मार दी, और सब कुछ छोड़कर गांधीजी के साथ फकीरी ले ली। खेड़ा का सत्याग्रह ही इन दो महान् पुरुषों को मिलाने का कारण बना। सरदार वल्लभभाई के सार्वजनिक जीवन में प्रवेश करने का यह श्रीगणेश था। उन्होंने अन्तिम निश्चय करके अपने-आपको गांधीजी के अर्पण कर दिया। जैसे-जैसे समय गया उनका सहयोग बढ़ता ही गया। किसानों ने एक प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर किये कि वे अपने को झूठा कहलाने की अपेक्षा और अपने स्वाभिमान को नष्ट करके जबरदस्ती बढ़ाया हुआ कर देने की अपेक्षा अपनी जमीनों को जब्त कराने के लिए तैयार हैं। उनका यह भी कहना था कि हमसे जो लोग खुशहाल हैं, यदि गरीबों का लगान मुल्तवी कर दिया जाय, तो वे अपना लगान चुका देंगे।

अब किसानों को एक नये ढंग से शिक्षित किया जाने लगा। उन सिद्धान्तों की शिक्षा उन्हें दी गई जो उन्होंने पहले कभी सुने तक न थे। उन्हें यह बताया जाता कि आपका यह हक है कि आप सरकार के लगान लगाने के अधिकार पर ऐतराज करें। यह भी कि सरकारी अफसर आपके मालिक नहीं नौकर हैं, इसलिए आपको अफसरों का सारा भय अपने दिल से निकालकर डराये-धमकाये जाने की, दमन और दबाव की और उससे भी बदतर जो आ पड़े उन सबकी परवाह न करते हुए अपने हकों पर डटे रहना चाहिए। उन्हें नागरिकता के प्रारम्भिक नियमों को भी सीखना था, जिनके जाने बिना बड़े-से-बड़ा साहस-कार्य भी आगे चलकर दूषित और भ्रष्ट हो सकता है। गांधीजी, सरदार पटेल तथा उनके अन्य साथियों का रोज यही काम था कि वे नित्य-प्रति एक गांव से दूसरे और वहां से तीसरे में जाकर किसानों को यही उपदेश और शिक्षा देते थे और कहते थे कि मवेशियों तथा अन्य वस्तुओं के कुर्क किये जाने, जुर्माने और जमीन जब्त होने की धमकी के मुकाबले में भी दृढ़तापूर्वक डटे रहो। इस युद्ध के लिए धन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं थी, फिर भी बम्बई के व्यापारियों ने चन्दा करके आवश्यकता से अधिक भेज दिया। इस सत्याग्रह से गुजरात को सविनय-भंग का पहला सबक सीखने का अवसर प्राप्त हुआ। किसानों के हृदय को मजबूत बनाने के खयाल से गांधीजी ने लोगों को सलाह दी कि जो खेत बेजा कुर्क कर लिया गया है उसकी फसल काटकर ले आवें और (स्वर्गीय) श्री मोहनलाल पण्ड्या इस कार्य में किसानों के अगुआ बने। लोगों को अपने ऊपर जुर्माने कराने और जेल की सजा को आमंत्रित करने की शिक्षा ग्रहण करने का यह अच्छा अवसर था, जो कि सत्याग्रह का आवश्यक परिणाम हो सकता है। मोहनलाल पण्ड्या एक खेत की प्याज की फसल काट कर ले आये। उन्हें इस कार्य में कुछ किसानों ने मदद दी। उन सब लोगों की गिरफ्तारियां हुईं, मुकदमे चले और थोड़े-थोड़े दिन की सजायें हुईं। लोगों के लिए यह एक अद्भुत प्रयोग था। इन

सब बातों को वे आनन्द के साथ करते थे। वे अपने नेताओं की जय-जयकार करते थे और जेल से छूटने पर उनके जुलूस निकालते थे।

इस झगड़े का यकायक ही अन्त हो गया। अधिकारियों ने गरीब किसानों के लगान को मुल्तवी कर दिया। लेकिन उन्होंने यह कार्य किया बिना किसी प्रकार की सार्वजनिक घोषणा किये हुए। उन्होंने किसानों को यह भी न अनुभव होने दिया कि यह उनके साथ किसी प्रकार का समझौता करके हुआ है। चूंकि यह रिआयत एक तो देर से दी गई, दूसरे यह जाहिर नहीं होने दिया कि यह लोगों के आन्दोलन के फल-स्वरूप है, तीसरे दी भी बिना मन के, इसलिए इससे बहुत कम किसानों को लाभ पहुंचा। यद्यपि सिद्धान्ततः सत्याग्रह की विजय हुई, फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्ण-विजय थी। लेकिन उससे अप्रत्यक्ष फल बहुत बड़े निकले। उस लड़ाई से गुजरात के किसानों में एक महान् जागृति की नींव पड़ी और वास्तविक राजनैतिक शिक्षा का सूत्रपात हुआ। गांधीजी अपनी 'आत्म-कथा' में लिखते हैं—

"गुजरात के प्रजा-जीवन में नया तेज आया, नया उत्साह भर गया। सबने समझा कि प्रजाकी मुक्ति का आधार खुद अपने ही ऊपर है, त्याग-शक्ति पर है। सत्याग्रह ने खेड़ा के द्वारा गुजरात में जड़ जमाई।"

३. अहमदाबाद-सत्याग्रह

गांधीजी द्वारा अहमदाबाद के मिल-मजदूरों के संगठन की कहानी उपन्यास की भांति ऐसी रोमांचकारी है कि उससे किसी भी जाति की स्वतन्त्रता के इतिहास की शोभा बढ़ सकती है। उस समय महात्माजी ने कांग्रेस का नेतृत्व ग्रहण नहीं किया था। औद्योगिक झगड़ों को सुलझाने के लिए इतिहास में सबसे पहली बार अहमदाबाद में ही उन उपायों को काम में लाया गया जिनका आधार सत्य और अहिंसा था। उसके ऐसे मजबूत और दूरगामी परिणाम निकले हैं जिनके कारण अहमदाबाद का मजदूर-संघ कितने ही औद्योगिक तूफानों का सामना कर चुका है और जिसे देख-देखकर पश्चिमी यात्री दंग रह जाते हैं और बहुत प्रशंसा करते हैं। उस कहानी का यदि संक्षिप्त वर्णन भी इतिहास में किया जाय तो अनेक पृष्ठ रंगे जा सकते हैं—परन्तु मैं यहां केवल इतनी ही बात लिखकर संतोष करूंगा कि गांधीजी ने उसमें कितना कार्य किया है और इस संगठन की मुख्य रूपरेखा क्या है जिससे यह मालूम हो जाय कि इसमें तथा भारत के और संसार के ऐसे ही दूसरे मजदूर-संगठनों में कितना अन्तर है।

१९१६ से श्रीमती अनसूया बेन साराभाई मजदूरों में शिक्षा-सम्बन्धी कार्य कर रही थीं। मजदूरों के इस सम्पर्क के कारण उन्हें अनेक कठिनाइयों और मुसीबतों का ज्ञान हो गया था। सबसे पहले तानीवालों को उनकी सलाह और सम्पर्क से लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हुआ। लेकिन उन्हें शीघ्र ही यह अनुभव होने लगा कि यदि सारे मजदूरों का सङ्गठन किया जाय और उन्हें कुछ वास्तविक सहायता पहुंचाई जाय, तो उसके लिए उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति के पथ-प्रदर्शन और सलाह की आवश्यकता है जिसमें उनका पूर्ण-विश्वास हो। १९१८ में बुनकरों और मिल-मालिकों में जो झगड़ा उठ खड़ा हुआ था उसके सम्बन्ध में परामर्श लेने के लिए उन्हें गांधीजी के पास जाना पड़ा। उन्होंने मिल-मालिकों को जबरदस्ती मनवाने की कोशिश करने की अपेक्षा उनसे पंचायत के सिद्धांत को स्वीकार करा लिया। यह मजदूर-आंदोलन के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात थी। गांधीजी और सरदार वल्लभभाई पटेल ने मजदूरों की ओर से पंच होना स्वीकार कर लिया। लेकिन पंच-फैसले की बात बीच में ही टूट गई, क्योंकि थोड़ी मिलों के कुछ मजदूरों ने बीच ही में हड़ताल

कर दी। गांधीजी ने स्वयं इसके लिए खेद प्रकाशित करके मजदूरों को वापस काम पर भेज दिया। यद्यपि समझौता-भङ्ग दोनों ओर से हुआ था, तो भी मिल मालिक कुछ सुनते ही न थे। गांधीजी ने मजदूरों को कुछ निश्चित कार्य करने की सलाह देने से पहले खुद इस समस्या का गहराई के साथ अध्ययन किया। व्यापारिक अवस्था, उससे मिलों को होने वाले लाभ, जीवन की आवश्यक वस्तुओं की महंगाई और दूसरी ओर मिलों में उत्पत्ति खर्च की वृद्धि—ये उनकी जांच के मुख्य विषय थे। इस जांच के पश्चात् जिस परिणाम पर गांधीजी पहुँचे वह यह था कि मजदूरों की मजदूरी में कम-से-कम ३५ फी सदी की वृद्धि की जाय। मजदूरों की मांग यद्यपि इससे बहुत अधिक थी, तो भी वे उसे स्वीकार कर लेने पर राजी कर लिये गये। इसके बाद उन्हें इस बात की शिक्षा दी गई कि अपनी मांग को सदैव कम-से-कम और जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति तक ही सीमित करके पेश करना चाहिए। यह सु-परम्परा वहां आजतक बराबर चली आ रही है।

इस प्रकार जो मांग तैयार की गई थी उसे मिल-मालिकों के सामने रक्खा गया। उन्होंने २० फी सदी से अधिक देने से कतई इन्कार कर दिया और कह दिया कि २२ फरवरी १९१८ से मिलों में ताले डाल दिये जायंगे। इस पर गांधीजी ने सारे मजदूरों की एक सभा बुलाई और एक पेड़ के नीचे, जो अभीतक पवित्र समझा जाता है, उनसे प्रतिज्ञा कराई, कि वे तबतक काम पर नहीं लौटेंगे जबतक कि उनकी पूरी मांग स्वीकार नहीं हो जाती। प्रतिज्ञा में यह बात भी थी कि वे लोग जबतक मिलों में ताले पड़े रहेंगे तबतक किसी हालत में शांति-भङ्ग न करेंगे। यह प्रतिज्ञा कराने के बाद मजदूरों में शिक्षा देने का कार्य बड़े जोर-शोर के साथ प्रारम्भ किया गया। श्रीमती अनसूया बेन दरवाजे-दरवाजे जाती थीं। श्री शंकरलाल बैंकर तथा छगनलाल गांधी भी इसी कार्य में जुट पड़े थे। नोटिस बांटे जाते थे, रोज स्थान-स्थान पर विराट सार्वजनिक सभायें की जाती थीं। इन नोटिसों को गांधीजी स्वयं लिखते थे। उनमें वे मजदूरों को बड़ी आसान भाषा में यह समझाते थे कि जिस संघर्ष में वे लोग जुटे हुए हैं वह केवल औद्योगिक ही नहीं है बल्कि एक आध्यात्मिक और नैतिक संघर्ष भी है जिसमें उनका प्रत्येक दृष्टि से उत्थान होगा और साथ-ही-साथ मजदूरी में भी वृद्धि हो जायगी। यह संघर्ष एक पखवाड़े तक बराबर चलता रहा। लेकिन मजदूर लोग इस बात के आदी नहीं थे कि वे अधिक समय तक अपनी मजदूरी का घाटा सह सकें, इसलिए उनमें कमजोरी के लक्षण प्रतीत होने लगे। उन लोगों में जो नासमझ थे वे तो यहां तक बड़बड़ाने लगे कि गांधीजी के लिए यह बात ठीक हो सकती है कि वह हमें इस बात का उपदेश दें कि हम लोग अपनी प्रतिज्ञाओं पर डटे रहें, लेकिन हम लोगों के लिए, जिनके बाल-बच्चों के भूखों मरने की नौबत आ गई है, यह इतना आसान नहीं है। यह गांधीजी के लिए एक ईश्वरीय चेतावनी सिद्ध हुई। उन्होंने शाम की सभा में यह घोषित कर दिया कि जबतक मजदूर लोग अपनी प्रतिज्ञा पर डटे रहने की शक्ति नहीं पा जाते तबतक न तो किसी सवारी में ही चलेंगे और न भोजन ही करेंगे। यह समाचार विद्युत्-गति से सारे भारतवर्ष में फैल गया। यह आमरण-अनशन था। यद्यपि उसमें जिस भाषा का प्रयोग किया गया था वह भिन्न थी, लेकिन उन्होंने अपने जीवन की बाजी उस महान् नैतिक कार्य के लिए लगा दी थी, जिसमें कि मजदूरों का एक विशाल जन-समूह प्रतिज्ञाबद्ध था। नुकताचीनी करने वालों ने इस पर खूब आलोचनायें कीं, कि यह मिल-मालिकों पर बेजा दबाव डालना है। गांधीजी ने इस बात को स्वीकार किया कि हां, मेरे उपवास का असर उन पर पड़े बिना नहीं रह सकता और इस हद तक यह बलात्कार भी हो सकता है। लेकिन उपवास का यह अप्रत्यक्ष प्रभाव मात्र ही होगा। क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य

तो मजदूरों को अपनी प्रतिज्ञा पर, जो कि उन्होंने बड़ी सचाई के साथ की थी, डटे रहने के लिए बल प्रदान करना ही है। गांधीजी प्रतिज्ञा की पवित्रता और ईमानदारी के साथ उसे पालन करने की बात से जितने प्रभावित होते हैं उतने और किसी से नहीं। फिर चाहे वह कितनी ही छोटी क्यों न हो। प्रतिज्ञा-भंग करने से उन्हें जितनी पीड़ा पहुंचती है, उतनी और किसी बात से नहीं। मजदूरों ने उन्हें बहुतेरा समझाया, पर उनका निर्णय अटल था। इस पर गांधीजी ने उनसे अपील की कि वे अपना समय व्यर्थ ही नष्ट न करें, और उन्हें जो कोई भी काम मिल जाय उस पर ईमानदारी के साथ अपनी रोटी पैदा करें। गांधीजी के लिए यह बहुत आसान था कि वे इन मजदूरों की आर्थिक सहायता के लिए धन की अपील करते, जिससे काफी धन अवश्य आ जाता, लेकिन इस तरह भिक्षान्न देना उन्हें पसन्द न था। उनका कहना था कि मजदूरों की सारी तपस्या निष्फल हो जायगी और उनका सारा मूल्य चला जायगा, यदि उन्हें इस प्रकार भिक्षा द्वारा सहायता दी जाय। सत्याग्रहाश्रम साबरमती की भूमि पर सैकड़ों मजदूरों को काम मिल भी गया, जहां कि इमारतें बन रही थीं। वे आश्रम के सदस्यों के साथ बड़े आनन्द से काम करने लगे। इनमें सबसे आगे श्रीमती अनसूया बेन थीं, जो मिट्टी, ईंट और चूना ढो रही थीं। इसका बड़ा ही नैतिक प्रभाव पड़ा। इससे मजदूर अपनी प्रतिज्ञा पर और भी दृढ़ हो गए, और मिल-मालिकों के भी दिल दहल गए। देश के विभिन्न भागों से नेताओं ने उनसे अपीलें कीं। अपील करने वाले नेताओं में डा० बेसेण्ट का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने मिल-मालिकों को यह तार भेजा था—"भारत के नाम पर मान जाओ और गांधीजी के प्राण बचाओ।" उपवास के चौथे दिन एक ऐसा रास्ता हाथ आया जिससे मजदूरों की भी प्रतिज्ञा-भङ्ग नहीं होती थी और इधर मिल-मालिक भी अपनी प्रतिष्ठा कायम रखते हुए उनके साथ न्याय कर सकते थे। दोनों ने पंच-फैसला मानना स्वीकार कर लिया। पंचों ने मजदूरों की मांग के अनुसार ही ३५ फी सदी बढ़ोतरी कर देने का निर्णय किया।

मजदूरों की समस्या के शान्ति-पूर्ण ढङ्ग से सुलझ जाने के कारण कांग्रेसी नेताओं और मजदूरों में एक सुदृढ़ सम्बन्ध स्थापित हो गया। इसीके फलस्वरूप मजदूरों का 'मजूर-महाजन' नामक एक ऐसा स्थायी संगठन हो गया जो आज १५ वर्ष से श्रीमती अनसूया बेन और श्री शंकरलाल बैंकर की देख-रेख में प्रगति के साथ काम करता हुआ चला आ रहा है। ये दोनों कांग्रेस के प्रमुख व्यक्ति हैं। इस संस्था के बदौलत मजदूर अब तक कितने ही कठिन तूफानों को पार कर गये हैं और अहमदाबाद नगर को बड़े-बड़े औद्योगिक संकटों से बचाया है। यहां के मजदूर बहुत ही सुसंगठित हैं। 'मजूर-महाजन' के प्रधान-मन्त्री लाला गुलजारीलाल की देख-रेख में उसके कार्यकर्त्ताओं द्वारा उन्हें जो सुन्दर शिक्षा दी जा रही है वह ऐसी है कि जिसके द्वारा मजदूरों ने समय पड़ने पर ठोस और व्यापक सार्वजनिक सेवायें की हैं। गांधीजी के परामर्श से 'मजूर-महाजन' ने १९२७ के बाढ़-पीड़ितों की अच्छी सहायता की थी। १९३० के सत्याग्रह-युद्ध के जमाने में इन मजदूरों ने बड़े जोरों से नशा-निषेध का कार्य किया। कांग्रेस के आदेशानुसार कोई २०० स्वयंसेवक इन लोगों में से पिकेटिंग के लिए आगे आये और उनमें से १६२ जेल गये। उसके बाद उनमें और मिल-मालिकों में बड़ा-सा झगड़ा खड़ा होगया था। लेकिन उनके भारी अनुशासन की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता कि उन्होंने १६ महीने तक, जब तक गांधी जी पंच-फैसले की बातचीत करते रहे, बराबर शान्ति रक्खी। संसार-भर में अहमदाबाद का ही यह ऐसा मजदूर-संघ है जिसने सत्य और अहिंसा की प्रतिज्ञा की हुई है और जिसका उद्देश्य है कपड़े के उद्योग का राष्ट्रीकरण। इसके

लगभग ३० हजार चन्दा देने वाले सदस्य हैं। इसके पास १९३४ में लगभग चार हजार शिकायतें आईं, जिनमें इसे ८० फी सदी सफलता प्राप्त हुई। ३९ हड़तालें कराईं, जिनमें २३ मजदूरों के पक्ष में तय हुईं। 'मजूर-महाजन' ने १,१८५ स्त्रियों के लिए 'जापे का लाभ' प्राप्त किया, जो २९ हजार रुपये के करीब था। १८,०७४) दुर्घटना के हर्जाने और १६४ मजदूरों को ९,८५६) 'विक्टमाइजेशन बेनिफिट' दिलवाया। सेवा के मुख्य कार्यों में डाक्टरी सहायता, शिक्षा, व्यायाम और खेल-कूद व मनोरंजन का प्रबन्ध, म्युनिसिपैलिटी से सुविधायें प्राप्त कराना, नशे से बचाना तथा सामाजिक सुधार करना आदि हैं।

२

असहयोग पूरे ज़ोर में—१९२१

नागपुर-कांग्रेस से वास्तव में भारत के इतिहास में एक नया युग पैदा होता है। निर्बल क्रोध और आग्रह-पूर्वक प्रार्थनाओं का स्थान जिम्मेदारी का एक नया भाव और स्वावलम्बन की स्पिरिट ले रहे थे। अब १९२० के आखीर और १९२१ की शुरुआत में भारत में जो कुछ घटनायें हुईं उन पर हम जरा देर के लिए ग़ौर करें। १९२० के अन्त तक नरम-दल वालों ने सदा के लिए कांग्रेस से अपना सम्बन्ध तोड़ लिया। लिबरल फेडरेशन के दूसरे वार्षिक अधिवेशन में श्री० सी० वाई० चिन्तामणि ने उत्तम भाषण दिया। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी 'सर' हो गये थे। लॉर्ड सिंह बिहार और उड़ीसा के पहले गवर्नर हो चुके थे। १९२१ के आरम्भ में ही नये मन्त्रियों में लाला हरकिशनलाल (पंजाब) जैसों का भी नाम आया, जो कुछ ही महीने पहले बुरे बताये जाते थे, जिन्हें आजन्म देश-निकाले की सजा दी गई थी और जिनकी सारी जायदाद जब्त कर ली गई थी। ड्यूक ऑफ कनाट, सम्राट् पंचम जार्ज के चाचा, भारतवासियों के मनोभावों को शान्त करने और भारत में नया युग जारी करने के लिए यहां भेजे गये। उन्होंने एक बढ़िया वक्तृता दी—

"मैं अपने जीवन के उस काल में पहुंच गया हूं जब कि मेरी इच्छा हो सकती है कि पुराने जख्मों को भरूं और जो अलग हो गये हैं उन्हें फिर से मिलाऊं। मैं भारत का एक पुराना मित्र हूं और उसी नाते आप सबसे अपील करता हूं कि मृत भूत-काल के साथ पिछली गलतियों को भी कब्र में गाड़ दीजिए; जहां माफ ही करना है, माफ कर दीजिए और कन्धे-से-कन्धा भिड़ाकर एक साथ काम कीजिए, जिससे उन सब आशाओं की पूर्ति हो जो आज के दिन पैदा हो रही हैं।"

इसके बाद, जब बड़ी कौंसिल में पंजाब-हत्या-काण्ड पर प्रस्ताव लाया गया उस समय सरकार की तरफ से बहस का नेतृत्व सर विलियम विंसेण्ट कर रहे थे। "उन्होंने उन अनुचित कार्यों के किये जाने पर शासकों की ओर से दिली अफसोस जाहिर करते हुए अपना यह दृढ़ निश्चय प्रकट किया था कि जहां तक मनुष्य की दृष्टि जाती है अब फिर से ऐसी घटनाओं का होना असम्भव हो जायगा।" इतना कह चुकने के बाद सरकार ने चतुराई खेलकर प्रस्ताव का तीसरा टुकड़ा, जिसमें कि "सबक देने लायक सजा देने" की तजवीज थी, प्रस्ताव से वापस करा लिया। परन्तु बात दरअसल यह थी कि जनरल डायर जो अपने पद से हटा दिया गया था, और इसलिए जो सम्भवत; पेंशन के हक से भी हाथ धो बैठा था, उसे अर्पण करने के लिए अंग्रेज महिलाओं ने भारत में २०,००० पौंड एकत्र किये; क्योंकि वे उसे "अपना त्राता" समझती थीं। इतना ही नहीं, बल्कि उसे एक तलवार भेंट करके इंग्लैण्ड और हिन्दुस्तान में उसका खुले-आम बड़ा आदर किया गया। उसे जो कुछ हानि उठानी पड़ी हो उसकी जरूरत से ज्यादा पूर्ति इस तरह हो गई थी। कर्नल जॉन्सन, जो दूसरा प्रमुख अपराधी था, उसे भारत में एक व्यापारिक जगह मिल गई और अपने 'नुकसान' का कलकर

बदला मिल गया। न तो ड्यूक साहब की अपील से और न होम-मेम्बर सर विलियम विंसेण्ट के 'शासकों की तरफ से खेद-प्रकाशन' से भारतवासियों के मनोभावों को शान्ति मिली। असहयोग की जड़ जम चुकी थी। परन्तु एक बात ठीक होरही थी और वह यह कि बड़ी कौंसिल ने १९२१ की शुरुआत में एक कमिटी बैठाई थी कि वह दमनकारी कानूनों की जांच करे और अन्त को वे सब कानून, क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ड-एक्ट को छोड़कर १९२२ की शुरुआत में ही सचमुच रद कर दिये गये थे। परन्तु इस सारी मरहम-पट्टी के होते हुए भी भारत का जख्म तो ताजा ही बना रहा, उसमें से बराबर मवाद बहता रहा और कांग्रेस को 'शाही-घोषणा-पत्रों' और 'कौंसिलों-द्वारा कानूनों को रद' कराने की पुरानी दवाओं का अवलम्बन छोड़कर खुद उसका इलाज अपने हाथों में लेना पड़ा।

नागपुर-कांग्रेस के आदेश का उत्तर लोगों ने काफी दिया। कौंसिलों के बहिष्कार में सराहनीय सफलता मिली। हां, अदालतों और कालेजों के बहिष्कार में उससे कम सफलता मिली, फिर भी उनकी शान और रौब को तो गहरा धक्का पहुँचा। देश भर में कितने ही वकीलों ने वकालत छोड़ दी और दिलो-जान से अपने को आन्दोलन में झोंक दिया। हां, राष्ट्रीय-शिक्षा के क्षेत्र में अलबत्ता आशातीत सफलता दिखाई पड़ी। गांधीजी ने देश के नौजवानोंसे अपील की थी और उसका जवाब उनकी ओर से बड़े उत्साह के साथ मिला। यह काम महज बहिष्कार तक ही सीमित न था। राष्ट्रीय-विद्यापीठ, राष्ट्रीय-कॉलेज और राष्ट्रीय-स्कूल जगह-जगह खोले गये। युक्तप्रान्त, पंजाब और बम्बई अहाते में यह युवक-आन्दोलन जोरों से चला। बङ्गाल भी पीछे नहीं रहा। लगभग जनवरी के मध्य में देशबन्धुदास की अपील पर हजारों विद्यार्थियों ने अपने कॉलेजों और परीक्षाओं को ठोकर मार दी। गांधीजी कलकत्ता गये और उन्होंने ४ फरवरी को वहां एक राष्ट्रीय-कॉलेज का उद्घाटन किया। इसी तरह वे पटना भी (दोबारा) गये और वहां राष्ट्रीय-कॉलेज को खोलकर बिहार-विद्यापीठ का मुहूर्त्त किया। इस तरह चार महीने के भीतर-ही-भीतर राष्ट्रीय-मुस्लिम विद्यापीठ अलीगढ़, गुजरात-विद्यापीठ, बिहार-विद्यापीठ, बङ्गाल-राष्ट्रीय विश्वविद्यालय, तिलक-महाराष्ट्र-विद्यापीठ और एक बड़ी तादाद में राष्ट्रीय-स्कूल देश में चारों ओर खुल गये। हजारों विद्यार्थी उनमें आये। राष्ट्रीय-शिक्षा को जो देश में प्रोत्साहन मिल रहा था उसका यह फल था। आन्ध्र देश में १९०७ में राष्ट्रीय शिक्षा की ज्योति प्रज्वलित हुई थी। वह कभी टिमटिमाती और कभी तेजी से जलने लगती थी। वह अब फिर तेजी और स्पष्टता के साथ जलने लगी। रेग्यूलेशन-संस्थाओं से असहयोग करने वालों की संख्या बहुत थी और आज के बहुतेरे प्रान्तीय और जिला-नेता उन्हीं लोगों में से हैं, जिन्होंने १९२०-२१ में वकालत और विद्यालय छोड़े थे।

नागपुर के प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए कार्य-समिति की बैठक १९२१ में अक्सर हर महीने में मुख्तलिफ जगहों में हुई। महासमिति की पहली बैठक जो नागपुर में हुई उसने कार्य-समिति का चुनाव किया और २१ प्रान्तों में महासमिति के सदस्यों की संख्या का बंटवारा किया। जनवरी १९२१ में नागपुर कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष सेठ जमनालाल बजाज ने अपनी रायबहादुरी पदवी छोड़ दी और असहयोगी वकीलों की सहायता के लिए तिलक स्वराज्य-कोष में एक लाख रुपया दिया। ३१ जनवरी १९२१ को कलकत्ते में कार्यसमिति ने तिलक-स्वराज्य-कोष के उपयोग के नियम बनाये। इस कोष का २५ फीसदी भिन्न-भिन्न प्रान्तों की रकम से कार्य-समिति को देना तय हुआ था। किसी वकील को १००) महीने से ज्यादा सहायता नहीं मिल सकती थी और किसी राष्ट्र-सेवक को ५०) मासिक से अधिक नहीं। कर्ज का होना इस सेवा के लिए एक अपवित्रता मानी गई। राष्ट्रीय शिक्षा के लिए सविस्तर पाठ्यक्रम अभी नहीं बन सका था। परन्तु हिंदुस्तानी भाषा और चर्खा

कातना सिखाना तय हुआ और ग्राम-कार्यकर्त्ता के लिए एक तालीम का क्रम निश्चित हुआ। देशबन्धुदास के जिम्मे हुई मजदूर-सङ्गठन की देख-रेख और श्री तेरसी आर्थिक-बहिष्कार कमिटी के संयोजक बनाये गये। बेजवाड़ा में ३१ मार्च और १ अप्रैल को कार्य-समिति की बैठक हुई। कार्य-समिति में सबका यही मत था कि लगानबन्दी का समय अभी नहीं आया है। बेजवाड़ा में ही महा-समिति ने यह तय किया कि स्वराज्य-कोष के लिए एक करोड़ रुपया जमा किया जाय, एक करोड़ कांग्रेस के मेम्बर बनाये जायं और बीस लाख चर्खे चलवाये जायं। प्रान्त की आबादी के अनुपात से इनकी पूर्ति करनी थी। पञ्चायत का सङ्गठन और शराब छुड़वाने पर ज्यादा जोर दिया गया था। हालांकि लोग ऐसे सुधार और सङ्गठन के निर्दोष कार्यों का प्रचार करते थे, तो भी सरकार ने पहले ही से दफा १४४और १०८ का दौर शुरू कर दिया था। उस समय महा-समिति ने यह ठहराया कि देश में अभी इतना नियम-पालन का गुण और सङ्गठन-बल नहीं आ गया है कि जिससे तुरन्त ही सविनय-भंग जारी किया जा सके और जिन-जिनके नाम पूर्वोक्त दफाओं के अनुसार आज्ञायें जारी हुई थीं उन्हें उनको मान लेने के लिए कहा गया। कमिटी ने ननकाना-हत्याकाण्ड पर अपना तीव्र-संताप प्रकट किया और सिक्खों को उससे जो भारी हानि पहुंची उसके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित की। सच तो यह है कि देश में मार्च के दूसरे सप्ताह से ही जोश उमड़ रहा था। देशबन्धु दास मैमनसिंह जाने से रोक दिये गये। बाबू राजेन्द्रप्रसाद और मौ० मजहरुल हक को आरा जाने की मनाही कर दी गई। श्री याकूबहुसेन कलकत्ता जाने से और लाला लाजपतराय पेशावर जाने से रोके गये। कुछ और लोगों के नाम भी हुक्म निकले थे। लाहौर में सभाबन्दी-कानून जारी कर दिया गया था। परन्तु ननकाना-काण्ड के मुकाबले में ये कुछ भी नहीं थे। मार्च के पहले हफ्ते में गुरुद्वारा में कुछ सिक्ख इकट्ठे हुए। वह शान्तिमय समुदाय था। एकाएक उनपर धावा बोला गया और गोलियां चलाई गईं, जिसमें लोगों के कथनानुसार १९५ और सरकार के अनुसार ७० मौतें हुई थीं। वहां के महन्त ने, जो कि राजभक्त था, ४००० कारतूस और ६५ पिस्तौल जमा कर रक्खे थे। एक गड्ढा खोद कर रक्खा गया था और बड़ी-सी आग जलाई जा रही थी। ५ मार्च को किसी सार्वजनिक विषय पर परामर्श करने के लिए लोग इकट्ठे होनेवाले थे। कई बदमाशों ने मिलकर यह करतूत की थी। सरकार की ओर से कहा गया था कि यह तो सिक्खों के दो फिरकों की लड़ाई थी। ननकाना जैसा भीषण-काण्ड जहां कि यात्री इस तरह मार डाले गये हों और जिनमें अभी कुछ जान बाकी थी वे भी उस जलते हुए गड्ढे में डाल दिये गये हों, पहले कहीं नहीं हुआ था।

कांग्रेस की शुरूआत के सालों में, हमने देखा ही है कि, सारे कार्य का केन्द्र ब्रिटिश कमिटी बन रही थी और उसका खर्च-वर्च और जरूरतें बहुत बढ़ी-चढ़ी थीं। कई साल तक लगभग ६०,०००) साल उसके खर्च के लिए मंजूर किये जाते रहे। परन्तु अब उसकी जगह भारतवर्ष आन्दोलन-केन्द्र बन गया था। इसलिए बेजवाड़ा में यह निश्चय हुआ कि इस वर्ष के शेष दिनों के लिए १०,०००) मंजूर किया जाय, जो कि अध्यक्ष, मंत्री और खजांची के दफ्तर-खर्च में काम आवे। लालाजी और केलकर साहब की सलाह से अमरीका की होमरूल-लीग वाले श्रीयुत राय को तार-द्वारा एक हजार डालर भेजे गये। ६ और १३ अप्रैल के दिन उपवास और प्रार्थना के रूप में मनाये जाने तय हुए। महा-समिति में कांग्रेस-प्रान्तों के प्रतिनिधियों की संख्या का बटवारा इस तरह किया गया कि जिससे भूतपूर्व सभापतियों को छोड़कर ३५० की संख्या में गड़बड़ न हो। १० मई को जब इलाहाबाद में कार्य-समिति बैठी तो अगली बैठक के लिए तंजौर और शोलापुर से उसे निमंत्रण मिले थे; परन्तु इस बैठक में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हुई। १५ जून को बम्बई में फिर उसकी बैठक हुई,

जिसमें गांधीजी ने वाइसराय के साथ हुई अपनी मुलाकात के सम्बन्ध में वक्तव्य पेश किया।

यह मुलाकात मालवीय जी ने करवाई थी। उस समय लार्ड रीडिंग वाइसराय हुए थे। यह अप्रैल १९२१ की बात है। इस मुलाकात में उन्हें गांधीजी की सचाई और शुद्धभाव को देखने का अवसर मिला। वे इस नतीजे पर पहुंचे कि खुद असहयोग-आन्दोलन के खिलाफ कोई कार्रवाई करना मुनासिब न होगा। प्रसंगवश उन्होंने अली-भाइयों के कुछ व्याख्यानों की ओर गांधीजी का ध्यान दिलाया, जिनसे गांधीजी के असहयोग-आन्दोलन-सम्बन्धी विचारों का खंडन होता था। गांधीजी को बताया गया कि इन व्याख्यानों का तात्पर्य हिंसा को सूक्ष्म रूप से उत्तेजना देने के पक्ष में लगाया जा सकता है। गांधीजी तो ठहरे बड़े ही मुंसिफ-मिजाज। उन्हें भी जंचा कि हां, इन भाषणों का ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है; इसलिए उन्होंने अली-भाइयों को लिखा और उनसे इस आशय का वक्तव्य निकलवाया कि उनका आशय ऐसा नहीं था।

यह 'माफी-प्रकरण' इस आन्दोलन के इतिहास में एक युगान्तरकारी घटना है। गोरे लोग सरकार की इस विजय पर बड़े खुश थे। माफी से लार्ड रीडिंग को तसल्ली हो गई और उन्होंने अली-भाइयों पर मुकदमा चलाने का इरादा छोड़ दिया।

बम्बई वाली कार्य-समिति की बैठक में राजनैतिक मुकदमों की सफाई देने के सम्बन्ध में स्थिति साफ की गई। कार्य-समिति ने यह तय किया कि किसी असहयोगी पर यदि दीवानी और फौजदारी मुकदमा चलाया जाय तो उसे उसकी सुनवाई में कोई हिस्सा न लेना चाहिये। सिर्फ अदालत में अपना एक वक्तव्य दे देना चाहिए, जिससे लोगों के सामने उसकी निर्दोषता सिद्ध हो जाय। यदि जाब्ता फौजदारी की रू से कोई जमानत तलब की जाय तो वह उसे देने से इन्कार करदे और उसकी एवज में जेल भुगत ले। आगे चलकर यह भी नियम बनाया कि असहयोगी वकीलों को फीस लेकर या बिना फीस के किसी अदालत में पैरवी न करना चाहिए। उस समय यह अन्देशा था कि कहीं अंगोरा में तुर्किस्तान की सरकार के साथ भिड़न्त न हो जाय। इसपर कार्य-समिति की यह राय थी कि मुसलमानों की राय की परवा न करते हुए यदि लड़ाई छिड़ जाय तो प्रत्येक भारतवासी का यह कर्तव्य होगा कि इस कार्य में वह ब्रिटिश-सरकार की मदद न करे और हिन्दुस्तानी सिपाहियों का यह कर्तव्य है कि वे इस सिलसिले में ब्रिटिश-सरकार की कोई सेवा या कार्य न करें।

२८, २९ और ३० जुलाई १९२१ को बम्बई में महासमिति की एक महत्वपूर्ण बैठक हुई। बेजवाड़ा-कार्यक्रम को देश में जो सफलता मिली थी उससे चारों ओर खुशियां छाई हुई थीं। तिलक-स्वराज्य-कोष में निश्चित से १५ लाख रुपये अधिक आ गये थे। कांग्रेस सदस्यों की संख्या आधे के ऊपर पहुंच कर रह गई; मगर चर्खे करीब-करीब २० लाख चलने लगे थे। इसके बाद अब बुनने तथा खादी सम्बन्धी विविध क्रियाओं की ओर देश का ध्यान गया। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए विदेशी कपड़े के बहिष्कार और खादी की उत्पत्ति में सारी शक्ति लगाने का प्रश्न देश के सामने था। महासमिति ने यह भी सलाह दी कि "तमाम कांग्रेसी आगामी १ अगस्त से विदेशी कपड़ों का उपयोग छोड़ दें।" बम्बई और अहमदाबाद के मिल-मालिकों से अनुरोध किया कि "वे अपने कपड़ों की कीमत मजदूरों की मजदूरी के अनुपात से रक्खें और वह ऐसी हो जिससे गरीब भी उस कपड़े को खरीद सकें और मौजूदा दरों से तो दाम हर्गिज न बढ़ाये जायं।" विदेशी कपड़े मंगानेवालों से कहा गया कि वे विदेशी कपड़ों के आर्डर न भेजें और अपने पास के माल को हिन्दुस्तान के बाहर खपाने का उद्योग करें।

महासमिति ने यह राय जाहिर की कि किसी भी नागरिक का यह कुदरती हक है कि वह सर-

कारी नौकरों पर सरकार की मुल्की या फौजी नौकरी छोड़ने सम्बन्धी अपनी राये जाहिर करे और साथ ही यह भी हरेक नागरिक का कुदरती हक है कि हरेक फौजी या मुल्की कर्मचारी से खुले तौर पर इस बात की अपील करे कि उस सरकार से वे अपना सम्बन्ध-विच्छेद करलें जिसने भारतीय जनता के विशाल बहुमत का विश्वास एवं समर्थन गंवा दिया है। मद्य निषेध-आन्दोलन के सम्बन्धमें, शराबियों को शराब की दूकानों पर न जाने के लिए समझाने में सरकारी कर्मचारियों द्वारा किये अनुचित और अकारण हस्तक्षेप के बदौलत, धारवाड़, मतियां तथा अन्य स्थानोंमें कुछ कठिनाइयां खड़ी हो गई थीं। इसपर महासमिति ने चेतावनी दी कि अगर ऐसा ही होता रहा तो उसे ऐसे हस्तक्षेपों की अवहेलना करके पिकेटिंग जारी रखने का आदेश देना पड़ेगा। थाना के जिलाबोर्ड ने पिकेटिंग के सिलसिले में पास किये अपने प्रस्ताव में पिकेटिंग जारी रखने का निश्चय किया था, उसके लिए उसे धन्यवाद देते हुए महासमिति ने भारत के अन्य जिला व म्युनिसिपल बोर्डों से थाना-बोर्ड द्वारा बताये गये रास्ते का तुरन्त अनुसरण करने के लिए कहा। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि इस समय तक कांग्रेस में पिकेटिंग के बारे में कोई प्रस्ताव पेश नहीं हुआ था और इस समय भी उसे सार्वजनिक-संस्थाओं तक ही महदूद रक्खा था। व्यापारियों से प्रार्थना की गई थी कि वे नशीली चीजों का व्यापार बन्द कर दें। पूर्ण अहिंसा बनाये रखने के राष्ट्र के कर्तव्य के प्रति कांग्रेस सतर्क थी, परन्तु अलीगढ़ शहर के विभिन्न भागों में कुछ व्यक्तियों ने जोर-जबरदस्ती कर डाली थी—हालांकि वह की गई थी बहुत उत्तेजित किये जाने पर ही—उसके कारण महासमिति ने कांग्रेस-कमिटियों को पूर्ण अहिंसा की भावना भलीभांति हृदयंगम करनेका आदेश दिया; साथ ही धारवाड़, मतियां, गुन्टूर, चिराला-पेराला, केरल तथा अन्य स्थानों में भारी उत्तेजना के बावजूद लोगों ने जो आत्म-संयम प्रकट किया उसके लिए उन्हें बधाई दी गई।

दमन-चक्र बड़े भयावह और विस्तृत-रूप में जारी था। खासकर युक्तप्रान्त में उसका बहुत जोरशोर था। कई जगह तो गोली-काण्ड भी हुए थे। बहुत से लोग, बिना मुकदमा लड़े, जेलों में पड़े हुए थे। उन सबको बधाई देते हुए महासमिति ने घोषणा की, कि स्वेच्छापूर्वक कष्ट-सहन और सफाई या जमानत दिये बगैर जेल जाने से ही हम स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसर होंगे। परिस्थिति यह थी कि देश के विभिन्न भागों ने प्रान्तीय सरकारों द्वारा किये गये दमन के जवाब में सविनय अवज्ञा शुरू करने की मांग की थी। सीमाप्रांत की सरकार ने तो उस कमिटी के सदस्यों के प्रान्त में प्रवेश करने की मनाही कर दी थी, जो अधिकारियों द्वारा बन्नू में किये गये कथित अत्याचारों की जांच के लिए कांग्रेस की ओर से नियुक्त की गई थी। इतने पर भी, यह प्रस्ताव पास किया गया कि "हिन्दुस्तान भर में अहिंसात्मक वातावरण को और भी अधिक सुदृढ़ करने, इस बात की परीक्षा करने के लिए कि सर्व-साधारण के ऊपर कांग्रेस का प्रभाव किस हद तक कायम हुआ है, और देश में ऐसा वातावरण पैदा करने के लिए कि जिससे स्वदेशी का काम क्षणिक जोश की बात न रह कर नियमित रूप से और सुगमता पूर्वक चलने लगे, महासमिति की राय है कि सविनय अवज्ञा को उस वक्त तक स्थगित कर देना चाहिए जबतक कि स्वदेशी-सम्बन्धी प्रस्ताव में उल्लिखित कार्यक्रम पूरा न हो जाय।" युवराज के आगमन के सिलसिले में महासमिति ने निश्चय किया, कि "(उनके) आगमन के सिलसिले में सरकारी तौर पर या अन्य किसी प्रकार के जो भी समारोह हों, हरेक का यह कर्तव्य है कि न तो उनमें शरीक हो और न किसी प्रकार की कोई सहायता ही उनके आयोजन में करें।"

धारवाड़ में १ जुलाई १९२१ को अधिकारियों ने भीड़ पर जो गोली-वार किया था उसकी जांच करके विस्तृत रिपोर्ट पेश करने के लिए कार्य-समिति ने नागपुर के असहयोगी वकील श्री भवानीशंकर नियोगी (जो अब मध्य-प्रान्तीय हाईकोर्ट के एक जज हैं), बड़ौदा के अवकाश-प्राप्त

जज अब्बास तय्यबजी तथा मैसूर में कुछ समय तक जज रहने वाले श्री सेटलूर की एक समिति नियुक्त की। विधान के अनुसार कांग्रेस के प्रान्तीय केन्द्र वहां बोली जाने वाली भाषाओं के अनुसार बनने थे, इसलिए ऐसे जिलों का सवाल स्वभावतः विवादास्पद हो गया जिनमें एक से अधिक भाषायें प्रचलित थीं। बेलारी जिलों के लिए कर्नाटक और आन्ध्र में झगड़ा हुआ। आखिर इसके निपटारे के लिए पंचायती बोर्ड की नियुक्ति की गई। यही बात गंजाम के बारे में भी हुई, जोकि आन्ध्र और उत्कल के बीच में था। कांग्रेस-कोष से खर्च करने के लिए जो प्रार्थनायें प्राप्त हों उनको भुगताने का काम गांधीजी, पं० मोतीलाल और सेठ जमनालाल बजाज की एक समिति के सुपुर्द किया गया। १६ अगस्त को जब पटना में कार्य-समिति की बैठक हुई तो उसमें हरदोई जिले (युक्तप्रान्त) का वह पत्र पेश हुआ, जिसमें वहां लगाई गई दफा १४४ के विरुद्ध सविनय अवज्ञा शुरू करने की इजाजत मांगी गई थी; लेकिन उसका विचार अगली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। ३० सितम्बर से पहले-पहले विदेशी कपड़े का भली-भांति बहिष्कार हो जाय, इसके लिए कार्य-समिति ने, घर-घर जाकर विदेशी कपड़े जमा करने की आवश्यकता पर जोर दिया और इस काम के लिए उपयुक्त नियन्त्रण में अलग स्वयं-सेवकों को रखने के लिए कहा। अखिल-भारत तिलक-स्वराज्य-फण्ड में जमा होनेवाली प्रान्त की कुल रकम का कम-से-कम एक-चौथाई विस्तृत-रूप से हाथ-कताई का संगठन करने, हाथ-कते सूत व हाथ-बुने कपड़े का संग्रह करने और खद्दर का विभाजन करने के लिए अलग रखने को कहा गया। चूंकि कुछ प्रान्तों ने यह २५ फी सदी रकम कार्य-समिति को नहीं भेजी थी, कार्य-समिति ने उन प्रांतों को मदद देना बन्द कर दिया। कार्य-समिति की अगली बैठक भी जल्दी ही ६,७,८,९ सितम्बर को कलकत्ता में हुई। यह बैठक महत्त्वपूर्ण थी। धारवाड़-गोली-काण्ड और मोपला-उत्पात की जांच की रिपोर्ट उसमें पेश हुई। इनमें से मोपला-उत्पात पर कार्य-समिति ने यह प्रस्ताव पास किया—

"मलाबार के कुछ हिस्सों में मोपलों ने जो हिंसात्मक कार्य किये हैं उनपर कार्य-समिति बहुत अफसोस जाहिर करती है, क्योंकि इन कृत्यों से यह साबित होता है कि हिन्दुस्तान में अब भी ऐसे लोग मौजूद हैं जिन्होंने कांग्रेस और सदर खिलाफत कमिटी के सन्देश को नहीं समझा है। कांग्रेस और खिलाफत के हरेक कार्यकर्त्ता को चाहिए कि गम्भीर-से-गम्भीर उत्तेजनाओं के बीच भी वे भारत-भर में अहिंसा के सन्देश का प्रसार करें।

"मोपलों-द्वारा किये गये हिंसात्मक कृत्यों की तो कार्य-समिति निन्दा करती ही है, लेकिन इसके साथ ही यह भी जाहिर कर देना चाहती है कि इस सम्बन्धी जो सामग्री उसके पास है उससे मालूम पड़ता है कि मोपलों को असहनीय रूप से उत्तेजित किया गया था, सरकारी तौर पर या सरकार के द्वारा इस सम्बन्ध में जो खबरें प्रकाशित हुई हैं उनमें मोपलों-द्वारा किये गये अत्याचारों का इकतरफा और बहुत अतिरंजित वर्णन किया गया है तथा शान्ति और व्यवस्था के नाम पर सरकार ने जो अनावश्यक-जन-संहार किया उसको उससे बहुत कम बताया गया है जितना कि वस्तुतः वह हुआ है।

"कार्य-समिति को यद्यपि इस बात का दुःख है कि कुछ धर्मोन्मत्त मोपलों-द्वारा जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन कराने के उदाहरण पाये गये हैं, तथापि सर्व-साधारण को वह इस बात से आगाह करती है कि सरकारी या जान-बूझ कर गढ़ गई बातों पर वे एकाएक विश्वास न करें। समिति को प्राप्त खबरों से मालूम पड़ता है कि जिन परिवारों के जबरदस्ती मुसलमान बनाये जाने की खबर है वे मंजेरी के आस-पास रहते थे। यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं को जबरदस्ती मुसलमान इसी धर्मोन्मत्त-दल ने बनाया जो हमेशा खिलाफत व असहयोग-आन्दोलन का विरोधी रहा है; और जहां तक हमें मालूम हुआ है, अभी तक तीन ही ऐसे मामले हुए हैं।

"कार्य-समिति को बताया गया है कि सिर्फ उन्हीं भागों में उपद्रव हुआ जहां कांग्रेस व खिलाफत की हलचलों को रोक दिया गया था, लेकिन फिर भी कांग्रेस व खिलाफत के कार्यकर्ताओं ने काफी खतरा अपने ऊपर लेकर भीड़ के जोश को दबाकर हिंसात्मक कृत्य करने से रोकने का काफी प्रयत्न किया।"

अली-भाइयों की गिरफ्तारी

घटनाएं एक के बाद एक तेजी से घट रही थीं। १९२१ की अखिल भारतीय खिलाफत-परिषद् ८ जुलाई को करांची में हुई जिसको लेकर अलीबन्धु, डा० किचलू, शारदा-पीठ के जगद्गुरु श्री शंकराचार्य, मौलाना निसारअहमद, पीर गुलाममुजदीद और मौलवी हुसेनअहमद पर मुकदमा चला। मुस्लिम मांगों की ताईद करते हुए, उस परिषद् ने एक प्रस्ताव-द्वारा घोषणा की थी कि "आज से किसी भी ईमानदार मुसलमान के लिए फौज में नौकर रहना, या उसकी भरती में नाम लिखाना या उसमें मदद करना हराम है।" साथ ही यह भी ऐलान किया गया कि अगर ब्रिटिश-सरकार अंगोरा-सरकार से लड़ाई करेगी तो हिन्दुस्तान के मुसलमान सिविल नाफरनामी (सविनय-अवज्ञा) शुरू कर देंगे और अपनी कामिल आजादी कायम करके कांग्रेस के अहमदाबाद वाले जलसे में भारतीय प्रजातन्त्र का झण्डा लहरा देंगे।

मौलाना मुहम्मदअली ने सभापति की हैसियत से बड़ा साहसपूर्ण भाषण दिया। तबसे उस भाषण का नाम 'करांची-स्पीच' पड़ गया। वह भाषण १६ अक्तूबर को देश भर में हजारों सभाओं में दोहराया गया। इसके लिए कांग्रेस के उच्चाधिकारियों ने आदेश दिया था कि सरकार को उसकी अली-भाइयों पर मुकदमा चलाने की आज्ञा के लिए चुनौती दी जाय। इस भाषण का मूल-कारण एक प्रस्ताव था जिसके द्वारा सरकारी फौज को नौकरी छोड़ने के लिए कहा गया था। इस प्रस्ताव में "कलकत्ता और नागपुर की कांग्रेसों में निश्चित किये गये सिद्धांत की पुष्टि-मात्र की गई थी।" ५ अक्तूबर को कार्य-समिति की बैठक बम्बई में हुई, जिसमें एक वक्तव्य के दौरान में कहा गया—"किसी भी भारतीय का किसी भी हैसियत में ऐसी सरकार की नौकरी करना, जिसने जनता की न्याय-पूर्ण अभिलाषाओं को कुचलने के लिए फौज और पुलिस से काम लिया (जैसे, रौलट-एक्ट के आंदोलन के अवसर पर किया गया), जिसने फौज का उपयोग मिस्र-वासियों, तुर्कों, अरबों और अन्य राष्ट्रवालों की राष्ट्रीय भावना को कुचलने के लिए किया, राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रीय हित के विरुद्ध है।" अली-भाइयों और उनके सहयोगियों पर मुकदमा चलाने की आज्ञा दी गई थी। कार्य-समिति ने अली-भाइयों और उनके सहयोगियों को उस पर बधाई दी और घोषणा की कि मुकदमा चलाने का जो कारण बताया गया है वह धार्मिक-स्वतन्त्रता में बाधा डालने वाला है। उसने यह भी कहा—"कार्य-समिति ने अब तक फौजी सिपाहियों और सिविलियनों को कांग्रेस के नाम पर नौकरी छोड़ने को इसलिए नहीं कहा कि जो सरकारी नौकरी छोड़ सकते हैं पर अपना भरण-पोषण करने में असमर्थ हैं उनके निर्वाह का प्रबन्ध करने में कांग्रेस अभी समर्थ नहीं है। परन्तु साथ ही कार्य-समिति की यह राय है कि कांग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार हरेक सरकारी नौकर का, चाहे वह फौजी नौकरी में हो चाहे मुल्की में, यह कर्तव्य है कि वह यदि कांग्रेस की सहायता के बिना निर्वाह कर सकता हो तो वह नौकरी छोड़ दे।" उन्हें बताया गया कि कातना, बुनना आदि स्वतन्त्र निर्वाह करने के सम्मानपूर्ण साधन हैं। देश-भर की कांग्रेस-कमिटियों से कहा गया कि वे इस प्रस्ताव को अपनावें और १६ अक्तूबर को इस आज्ञा का पालन किया गया। विदेशी कपड़े का बहिष्कार अभी अधूरा पड़ा था। कार्य-समिति ने कहा कि

जबतक यह पूरा न होगा किसी भी जिले या प्रांत में सामूहिक-सत्याग्रह आरम्भ करना असम्भव है; और जबतक हाथ से कातने और बुनने का काम उतना न बढ़ जायगा कि उससे उस जिले या प्रांत की आवश्यकतायें पूरी हो सकें, तबतक सत्याग्रह की इजाजत भी न दी जायगी। हां, व्यक्तिगत सत्याग्रह उन लोगों के द्वारा किया जा सकता है जिनके स्वदेशी का प्रचार करने के काम में रुकावट डाली जाय। पर इसकी अनुमति-कांग्रेस-कमेटी से लेना जरूरी है और प्रांतीय-कांग्रेस-कमिटी को इस बात का आश्वासन मिलना चाहिए कि अहिंसात्मक वातावरण बना रक्खा जायगा। युवराज के स्वागत के बहिष्कार के सम्बन्ध में विस्तृत योजना बनाई गई। तय हुआ कि उनके भारत में पैर रखने के दिन देश-भर में स्वेच्छा-पूर्वक पूर्ण हड़ताल मनाई जाय और वे भारत के नगरों में जहां-जहां जायं, हड़तालें की जायं। इसके प्रबन्ध का कार्य कार्य-समिति ने भिन्न-भिन्न प्रांतीय-कांग्रेस-कमिटियों को सौंप दिया। साथ ही विदेशी राष्ट्रों के प्रति यह महत्वपूर्ण घोषणा की गई कि भारत-सरकार भारतीय-लोकमत व्यक्त नहीं करती और स्वराज्य-प्राप्त भारत को अपने पड़ोसियों से डरने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि भारतवासियों का उनके प्रति किसी प्रकार का बुरा भाव नहीं है, इसलिए उनका इरादा ऐसे व्यापारिक-सम्बन्ध जोड़ने का नहीं है जो अन्य राष्ट्रों के हितों के विरुद्ध हों या जिन्हें वे न चाहते हों। उन पड़ोसी राज्यों को जो भारत के प्रति शत्रुता का भाव न रखते हों, यह चेतावनी भी दी गई कि वे ब्रिटिश-सरकार के साथ किसी प्रकार का समझौता न करें। मुसलमान राष्ट्रों को आश्वासन दिया गया कि जब स्वराज्य -प्राप्त हो जायगा तो भारत की परराष्ट्र-सम्बन्धी नीति ऐसी बनाई जायगी कि जिससे इस्लाम-द्वारा मुसलमानों पर आयद होने वाले धार्मिक कर्तव्यों का लिहाज रक्खा जाय।' ये विचार कार्य-समिति के थे। कार्य-समिति इन विचारों को उस समय तक महासमिति के नाम पर प्रसारित नहीं करनी चाहती थी जबतक कि जनता उन पर पूरी तरह चर्चा न कर ले और महासमित उन्हें अपनी बैठक में अपना न ले।

इस अवसर पर अली-भाइयों को गिरफ्तार किया गया। मौलाना मुहम्मदअली को, जो कि आसाम से मदरास जा रहे थे, १४ सितम्बर को वाल्टेयर में गिरफ्तार किया गया। उन्हें कुछ दिनों तक एक छोटी-सी जेल में रक्खा गया, फिर उन्हें रिहाई की आज्ञा सुनाई गई और दुबारा गिरफ्तार करके करांची ले जाया गया। मुहम्मदअली की गिरफ्तारी के बाद ही फौरन बम्बई में शौकतअली पकड़े गये। जब यह पता चला कि करांची के भाषण को लेकर मामला चलाया जायगा तो गांधीजी ने, जो इस अवसर पर त्रिचनापल्ली में थे, भाषण को स्वयं दोहराया। उन्होंने इस गिरफ्तारी को इतना महसूस किया कि सारे राष्ट्र को कार्य-समिति के इस विषय पर पास किये गये प्रस्ताव को दोहराने की आज्ञा दी। समय तेजी के साथ बीतता चला जा रहा था और स्वराज्य की अवधि में केवल एक महीना रह गया था। देश ने अली-भाइयों की और अन्य नेताओं की गिरफ्तारी पर जिस संयम का परिचय दिया उससे प्रभावित होकर दिल्ली की ५ नवम्बर १९२१ की महासमिति की बैठक ने प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियों को अपनी जिम्मेदारी पर सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार दे दिया। सत्याग्रह में कर-बन्दी भी शामिल थी। सत्याग्रह किस प्रकार आरम्भ किया जाय, इसके निर्णय का भार प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियों पर छोड़ दिया गया। हां, इन शर्तों का पूरा होना जरूरी समझा गया हरेक सत्याग्रही ने असहयोग के कार्य-क्रम के उस अंश की जो उस पर लागू होता हो, पूर्ति कर ली हो, वह चर्खा चलाना जानता हो, विदेशी कपड़ा त्याग चुका हो, खद्दर पहनता हो, हिन्दू-मुस्लिम एकता में विश्वास रखता हो, खिलाफत और पंजाब के अन्यायों को दूर करने और स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अहिंसा में विश्वास रखता हो, और यदि हिन्दू हो तो अस्पृश्यता को

राष्ट्रीयता के लिए कलंक समझता हो। सामूहिक सत्याग्रह के लिए एक जिले या तहसील को एक इकाई समझा जाय जहां के अधिकांश लोग स्वदेशी का पालन करते हों और वहीं पर हाथ से तैयार हुई खादी पहनते हों, और असहयोग के अन्य सारे अंगों में विश्वास रखते और उनका पालन करते हों। कोई सार्वजनिक चन्दे से किसी प्रकार की सहायता की आशा न करे। कार्य-समिति यदि चाहे तो प्रान्तीय कमिटी के अनुरोध पर किसी खास शर्त को कमिटियों पर लागू न करे।

मलाबार की अवस्था पर भी प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें हिन्दुओं के जबरदस्ती मुसलमान बनाये जाने और हिंदू-मंदिरों के अपवित्र किये जाने का भी जिक्र किया गया।

यहां अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन में महत्वपूर्ण अवस्थाओं के उत्पन्न होने के सम्बन्ध में कुछ कहना आवश्यक है। १९२१ में सरकार का मुकाबला करने की प्रवृत्ति देश के सार्वजनिक जीवन में मुख्य बात थी, और जनता इस प्रवृत्ति का परिचय भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अपने आस-पास की स्थिति को देख कर तथा वहां की स्थानिक और नागरिक समस्याओं के अनुसार दे रही थी। महा-समिति की बैठक ३१ मार्च को आंध्र-प्रांत के बेजवाड़ा नगर में हुई, जिससे जनता में उत्साह की लहर आ गई। कुछ दिनों ही बाद चिराला के लोगों को अपने गांव के म्युनिसिपैलिटी के रूप में बदले जाने की समस्या का सामना करना पड़ा। स्थानिक स्वराज्य के मंत्री पनगल के राजा थे, जो कांग्रेस-दल के घोर विरोधी थे। अब कांग्रेस-दल भी इसकी कसर निकालने के लिए आतुर था। चिराला की जनता म्युनिसिपैलिटी नहीं चाहती थी। जब गांधीजी की सलाह ली गई तो उन्होंने कहा कि यदि जनता म्युनिसिपैलिटी की परवा नहीं करती तो वह उसकी सीमा छोड़कर बाहर जा बसे। गांधीजी ने यह भी चेतावनी दे दी कि यह सब कांग्रेस के नाम पर न किया जाय। विचार बड़ा आकर्षक था और उस महान् कार्य का बीड़ा उठाने के लिए नेता भी योग्य ही मिला। आंध्र-रत्न डी० गोपालकृष्णय्या ने इस विचार की पूर्ति करने में अपनी सारी शक्ति लगादी और हिजरत का नेतृत्व किया। यह हिजरत हमें सिंध के मुसलमानों की अफगानिस्तान-यात्रा की याद दिलाती है। चिराला के लोगों को बहुत दिनों तक अनेक कष्ट उठाने पड़े। वे म्युनिसिपैलिटी की सीमा के बाहर १० महीनों तक झोंपड़ों में पड़े रहे। इधर अनेक नेताओं की गिरफ्तारी एक-एक करके जारी रही। जिन्होंने असहयोग नहीं किया था वे बहलाने-फुसलाने से राजी हो गये और एक साल तक घर-बार छोड़े रहने के बाद लोगों ने म्युनिसिपैलिटी को मान लिया। इसी प्रकार का एक दूसरा महत्वपूर्ण कार्य चटगांव की हड़ताल थी। चटगांव पूर्व-बंगाल में एक बन्दरगाह है। श्री सेनगुप्त ने मजदूरों की जो हड़ताल कराई उसमें कांग्रेस का एक लाख से अधिक रुपया खर्च हो गया। इस प्रकार के कामों में दिक्कत यह होती है कि अधिकारी लोग हड़तालियों की शक्ति थका देते हैं और सरकार को उन लोगों की पूरी जानकारी रहती है जो ऐसे आन्दोलनों का संचालन करते हैं। जब उस स्थान के प्रभावशाली व्यक्ति किसी-न-किसी कानून के द्वारा जेलों में ठूंस दिये जाते हैं तो भ्रष्टकारी शक्तियों के साथ तोड़ फोड़ करने वाली शक्तियां भी आ मिलती हैं और आन्दोलन भंग हो जाते हैं।

मोपला-उत्पात

यहां उन परिस्थितियों का जिक्र करना भी आवश्यक है जिनसे मलाबार में मोपला-उत्पात उत्पन्न हुआ। मोपले वे मुसलमान हैं जिनके पूर्वज अरब थे, मलाबार के सुन्दर स्थान पर आ बसे थे और वहीं शादी-ब्याह करके रहने लगे थे। साधारणतया वे छोटा-मोटा व्यापार या खेती-बाड़ी करते हैं। पर धार्मिक उन्माद की धुन में वे इतने असहिष्णु हो जाते हैं कि प्राणों की या शारीरिक सुख तक की बिलकुल चिन्ता नहीं करते। मोपलों के आये दिन के दंगों ने "मोपला दंगा-विधान" नामक

एक विशेष कानून को जन्म दिया। सरकार आरम्भ से इस बात के लिए चिन्तित थी कि 'भड़क जाने वाले' मोपलों में असहयोग की चिनगारी न लगने पावे। पर आन्दोलन और सब जगहों की भांति केरल में भी पहुँचा। फरवरी में चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और मौ० याकूबहसन जैसे प्रमुख नेता अहिंसा का प्रचार करने के लिए उस प्रान्त में गये। याकूबहसन ने खासतौर से कह दिया था कि असहयोग पर व्याख्यान न दूंगा, परन्तु इतने पर भी उनके खिलाफ निषेधात्मक आज्ञा जारी की गई और १६ फरवरी १९२१ को याकूबहसन, माधव नैयर, गोपाल मेनन और मुईउद्दीन कोया नामक चार नेता गिरफ्तार कर लिये गये। मोपले मुख्यतः वाल्वनद और एरणड ताल्लुकों में रहते हैं। सरकार ने इन ताल्लुकों में दफा १४४ लगा दी। अगस्त आते-आते रंग-ढंग ही बदल गया और मोपलों ने, जो अपने ढंगलों या मुल्लाओं के मस्जिदों में किये गये अपमान से क्षुब्ध हो रहे थे, मार-काट आरम्भ कर दी। शीघ्र ही उनकी हिंसा ने सैनिक रूप धारण कर लिया। मोपालों ने बन्दूकों और तलवारों से लुक-छिपकर छापे मारने आरम्भ कर दिये। अक्तूबर के मध्य में पहले की अपेक्षा अधिक कठोर फौजी-कानून जारी किया गया। मोपले सरकारी अफसरों को लूटने और बरबाद करने के अलावा हिन्दुओं को बल पूर्वक मुसलमान बनाने, लूटने, आग लगाने और हत्यायें करने के भागी बने। अंग्रेजों के प्राण संकट में थे। श्री एम० पी० नारायण मैनन नामक एक कांग्रेसी सज्जन ने, जिन्होंने सारे मलाबार में कांग्रेस का संगठन करने के काम में बहुत-कुछ भाग लिया था, मोपलों को समझा-बुझा कर अंग्रेजों के प्राण बचाये। पर इसी कार्यकर्ता को नवम्बर में पकड़ कर पहले शाही कैदी के रूप में रक्खा और फिर सरकार के खिलाफ दंगा करने के अभियोग में आजीवन निर्वासित कर दिया गया। यह १९३४ में पूरी सजा काटने के बाद छूटे। इन्हें पहले भी छोड़ा जा सकता था पर इनसे यह शर्त जुबानी मानने को कहा गया कि छूटने पर तीन वर्ष तक वालवनद ताल्लुके में न घुसेंगे। इन्होंने यह शर्त मंजूर न की, और जान-बूझकर वीरता पूर्वक जेल में रहे। मोपला-विद्रोह ने आगे क्या क्या रूप धारण किये, या अगस्त के बाद उसमें जो मार-काट चलने लगी, उनसे हमारा प्रयोजन केवल इतना ही है कि महासमिति ने अपनी नवम्बर की बैठक में उनके अत्याचारों का विरोध किया।

सफल बहिष्कार

१७ नवम्बर को युवराज भारत में आये। नई बड़ी कौंसिल को वही खोलने वाले थे, पर १९२ के अगस्त के वातावरण को देखकर भारत-सरकार ने ड्यूक ऑफ कनाट को बुलाया। १९२१ के नवम्बर में युवराज को ब्रिटिश सरकार की आन बनाये रखने के लिए भेजा गया। कांग्रेस ने पहले ही निश्चय कर लिया था कि युवराज की अगवानी से सम्बन्ध रखने वाले सारे उत्सवों का बहिष्कार किया जाय। यही किया गया। जगह-जगह विदेशी कपड़ों की होली भी जलाई गई। युवराज के बम्बई-पदार्पण के दिन शहर में केवल मुठभेड़ ही नहीं हुई बल्कि चार दिनों तक दंगे और खून-खच्चर होते रहे, जिनके फलस्वरूप ५३ आदमी मरे और लगभग ४०० आदमी घायल हुए। ये दंगे सरोजिनी देवी और गांधीजी के रोके भी न रुके, यद्यपि उन्होंने घमासान लड़ाइयों में घुस-घुस कर लोगों को तितर-बितर होने को कहा। इन दंगों में असंख्य आदमी घायल हुए। गांधीजी ने जब तक शांति स्थापित न हो जाय, जनता की ज्यादतियों का प्रायश्चित्त करने के निमित्त ५ दिन का व्रत किया। इन्हीं दृश्यों को देखकर गांधीजी ने कहा था कि मुझे स्वराज्य की सड़ांद आ रही है। युवराज के आगमन के फलस्वरूप देशभर में स्वयंसेवकों के दल सङ्गठित हुए। अबतक कांग्रेस के स्वयंसेवक ऐसे सामाजिक कार्यकर्ता मात्र थे जो मेलों और उत्सवों के अवसर पर यात्रियों की सहायता

करते, संक्रामक रोगों के फैलने पर रोगियों की और कोई स्थानिक विपत्ति होने पर पीड़ितों की सहायता करते और परिषदों और अन्य राष्ट्रीय अवसरों पर काम में आते। पर खिलाफत के स्वयंसेवक 'सैनिक ढंग के थे, जो कि सरकार के कथनानुसार "कवायद करते और बाकायदा दल बनाकर मार्च करते और वर्दियां पहनते थे।" इन दोनों संस्थाओं के स्वयंसेवकों ने हड़तालों का और विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का सङ्गठन किया। ये दोनों दल मिल गये और महा-समिति की शर्तों का पालन करने की शर्त के साथ सत्याग्रही बन गये। हजारों को संख्या में गिरफ्तारियां हुईं। युवराज २५ दिसम्बर को कलकत्ता जाने वाले थे। बङ्गाल-सरकार ने बम्बई-सरकार की तरह नहीं किया और पहले से ही क्रिमिनल लॉ-अमेण्ड-मेण्ट-एक्ट के अनुसार स्वयंसेवक भरती करना गैर-कानूनी करार दे दिया। बहुत से आदमी गिरफ्तार हुए जिनमें देशबन्धुदास, उनकी धर्मपत्नी और पुत्र भी थे। इसके बाद ही युक्तप्रान्त और पंजाब की बारी आई। अहमदाबाद-कांग्रेस होते-होते लालाजी, पण्डित मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और सपरिवार देशबन्धु दास क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेंण्ट एक्ट के अंतर्गत या ताजीरात-हिन्द की १४४ धारा या १०८ धारा के अनुसार जेल में थे। १९२० के अगस्त में सर तेजबहादुर सप्रू वाइसराय की कार्यकारिणी के कानून-सदस्य (लॉ मेम्बर) हुए थे। ऐसा कहा जाता है कि इन धाराओं को इन्होंने खोज निकाला था और राजनैतिक लोगों पर लागू करने की सलाह दी थी। बम्बई ने साधारण कानून का उपयोग किया, पर बङ्गाल, युक्तप्रान्त और पंजाब ने दमनकारी कानूनों की शरण ली।

इसी अवसर पर कांग्रेस और सरकार में समझौते की बातचीत चल पड़ी। भारत की राजधानी को कलकत्ते से दिल्ली जाते समय यह प्रबन्ध किया गया था कि वाइसराय हर साल बड़े दिनों में तीन-चार सप्ताह कलकत्ते में व्यतीत करेंगे। युवराज के बड़े दिन भी कलकत्ते में ही बिताने का निश्चय किया गया। पण्डित मदनमोहन मालवीय जैसे मध्यस्थ सज्जनों ने कलकत्ते में लॉर्ड रीडिंग की उपस्थिति का उपयोग करके सरकार और जनता में समझौता कराने की चेष्टा की। लॉर्ड रीडिंग भी राजी होगये, चाहे २५ दिसम्बर के उत्सव का बहिष्कार टालने के लिए ही सही। २१ दिसम्बर को पण्डित मदनमोहन मालवीय के नेतृत्व में एक शिष्ट-मण्डल वाइसराय से मिला। देशबन्धुदास कलकत्ते की अलीपुर-ज़ेल में थे। उनसे मध्यस्थों की टेलीफोन-द्वारा बात हुई। शीघ्र ही गांधीजी से तार-द्वारा बातचीत करना आवश्यक समझा गया। वे अहमदाबाद में थे। सरकार इस बात पर राजी होगई कि सत्याग्रह के कैदियों को छोड़ दिया जाय और मार्च में गोलमेज-परिषद् बुलाई जायं, जिसमें कांग्रेस की ओर से २२ प्रतिनिधि हों। इस परिषद् में सुधार-योजना पर विचार किया जाय। देशबन्धुदास की मांग यह थी कि नये कानून (क्रि० लॉ० अ० एक्ट) के अनुसार सजा पाये हुए सारे कैदियों को छोड़ दिया जाय। समझौते के निश्चय का फल यह होता कि लालाजी जैसे कैदी और फतवे के कैदी, जिनमें मौलाना मुहम्मदअली, मौलाना शौकतअली, डॉ० किचलू और अन्य नेता शामिल थे, जेल में ही रह जाते। करांची के कैदी वे थे जिन्हें १ नवम्बर १९२१ को अखिल-भारतीय खिलाफत-परिषद् में, जिसमें फौजी नौकरियां छोड़ने के सम्बन्ध में प्रस्ताव पास हुआ था, भाग लेने के अपराध में दण्ड दिया गया था। कुछ उलेमा ने इस प्रस्ताव का समर्थन फतवे में किया था। फतवा मुसलमानों के मौलवियों द्वारा जारी किया धार्मिक आदेश होता है, जिसमें खास परिस्थितियों में आचरण करने के सम्बन्ध में निर्देश होता है।

परन्तु गांधीजी करांची के कैदियों का छुटकारा चाहते थे। सरकार ने आंशिक रूप में इसे भी स्वीकार कर लिया। उन्होंने मांग पेश की कि फतवे के कैदियों को भी छोड़ा जाय और पिकेटिंग जारी रखने का अधिकार माना जाय। ये मांगें नामंजूर करदी गईं। इस स्थिति के सम्बन्ध में लॉर्ट रीडिंग

के नाम गांधीजी का तार-द्वारा उत्तर कलकत्ता समय पर न पहुंच सका—अभाग्यवश तार को रास्ते में देर लग गई और लॉर्ड रीडिंग के सहयोगी कलकत्ते से रवाना हो गये (२३ दिसम्बर)। फलतः समझौते की बात असफल रही। श्री० जिन्ना और पण्डित मदनमोहन मालवीय मध्यस्थ थे। (१९२१ के दिसम्बर की सन्धि-चर्चा का पूरा हाल जानना हो तो पाठकों को श्रीकृष्णदास की अंग्रेजी पुस्तक "गांधीजी के साथ सात महीने" पढ़नी चाहिए। पढ़ने योग्य है।) समझौते की बात असफल होने पर युवराज के आगमन के सम्बन्ध में बहिष्कार के कार्यक्रम का पालन अवशिष्ट भारत ने भी उसी प्रकार किया। कलकत्ते में पूर्ण हड़ताल हुई। कसाइयों तक की दूकानें बन्द थीं। इससे यूरोपियनों को बड़ा क्रोध आया। १९२१ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में अहमदाबाद-कांग्रेस हुई, जिसमें असहयोग का कार्य-क्रम अपनी चरम-सीमा पर जा पहुंचा था। नागपुर के अधिवेशन के बाद से राजनैतिक अवस्था में कोई परिवर्तन न हुआ था। ड्यूक ऑफ कनाट द्वारा माण्ट-फोर्ड सुधार जारी किये जाने के अवसर पर सम्राट् ने सन्देश दिया। जिसमें कहा गया था—

"वर्षों से, शायद पीढ़ियों से, देश-भक्त और राज-भक्त भारतीय अपनी मातृ-भूमि के लिए स्वराज्य का स्वप्न देखते आरहे होंगे। आज आपके लिए मेरे साम्राज्य के भीतर स्वराज्य का श्रीगणेश हुआ है, मेरे अन्य उपनिवेश जिस स्वतन्त्रता का उपभोग कर रहे हैं उसकी ओर बढ़ने का आपके लिए यह सबसे अच्छा अवसर है।"

परन्तु न तो 'स्वराज्य' का आधे दिल से किया उल्लेख, न ड्यूक की अपील कि 'गये-गुजरे को दफनाओ और एक-दूसरे को क्षमा कर दो' और न पञ्जाब-काण्ड-सम्बन्धी असेम्बली की बहस, जिसमें सर विलियम विंसेन्ट ने शासन की ओर से खेद-प्रकाश किया था और वह निश्चय प्रकट किया गया था कि आयन्दा ऐसे काण्ड न होने पावेंगे, लोगों के दिलों को तसल्ली या शान्ति दे सके और न उनके मनमें विश्वास का भाव ही उत्पन्न कर सके।

सत्याग्रह की तैयारी और अहमदाबाद-कांग्रेस

वातावरण में सनसनी थी। हरएक के दिल में यही आशायें उमड़ रही थीं—एक साल में स्वराज्य। गांधीजी ने यह वादा किया था कि यदि मेरे कार्यक्रम को पूरा कर दोगे तो स्वराज्य एक साल में मिल जायगा। साल खतम होने को था, और हर शख्स राजनैतिक आकाश की ओर ध्यान लगाये हुए था कि कोई चमत्कार हो जाय और स्वराज्य उसके चरणों में आकर खड़ा हो जाय। परन्तु हां, हर शख्स अपनी तरफ से शक्ति-भर कुछ करने और जो-कुछ भी भुगतना पड़े उसे भुगतने के लिए तैयार था—इसलिए कि वह दैवी-घटना जल्दी-से-जल्दी हो जाय, वह सुदिन जल्दी-से-जल्दी आ जावे। कोई २० हजार से ऊपर व्यक्तिगत सत्याग्रही पहले ही जेल जा चुके थे। उनकी संख्या शीघ्र ही ३० हजार तक हो जानेवाली थी, लेकिन सामूहिक सत्याग्रह लोगों को बहुत लुभा रहा था। और वह क्या था? उसका क्या रूप होगा? गांधीजी ने इसका खुद कोई लक्षण नहीं बताया, कभी उसे विस्तार से नहीं समझाया; न खुद उनके दिमाग में ही इसकी स्पष्ट कल्पना रही होगी। वह तो एक शोधक, एक शुद्ध हृदय के सामने उसी तरह अपने आप खुल जाता है, उसके एक-एक कदम दिखाई पड़ते हैं, जिस तरह एक बयाबान जंगल में एक आदमी चलता है और उस थके-मांदे निराश मुसाफिर को घूमते-घामते अपने-आप रास्ता मिल जाता है। सामूहिक सत्याग्रह तो सुयोग्य व्यक्तियों द्वारा किसी अनुकूल क्षेत्र में नियत शर्तों के पालन होने के बाद ही शुरू करना था। न तो उसमें जल्दी की गुंजाइश थी, न थकावट की। इसके अनुसार गांधीजी गुजरात में लगानबन्दी आन्दोलन करना चाहते थे। परन्तु इधर गन्टूर के लोग उसी उत्साह और जोश के साथ और उतने

ही त्याग और कष्ट-सहन की तैयारी से पहले से ही अपने जिले को कर-बन्दी के लिए तैयार कर रहे थे। उस समय देश की क्या दशा थी और कांग्रेस का क्या कर्तव्य था, इसका समुचित वर्णन अहमदाबाद-अधिवेशन के मुख्य प्रस्ताव के आरम्भिक पैराग्राफ में दिया गया है।

अब लोग भय छोड़ चुके थे। एक तरह का आत्मसम्मान का भाव राष्ट्र में पैदा हो चुका था। कांग्रेसियों ने समझ लिया कि सेवा-भाव और त्याग के ही बल पर लोगों का विश्वास प्राप्त किया जा सकता है। सरकार की प्रतिष्ठा और रौब की भी जड़ बहुत-कुछ हिल गई थी और स्वराज्य की कल्पना के सम्बन्ध में लोगों का काफी ज्ञान बढ़ गया था।

अहमदाबाद का अधिवेशन कई सुधारों के लिए प्रसिद्ध है। प्रतिनिधियों के बैठने के लिए कुरसियां और बेंच तो हटा ही दिये गये थे, जिनके लिए नागपुर-अधिवेशन में कोई ४० हजार रुपया खर्च हुआ था। स्वागताध्यक्ष वल्लभभाई पटेल का भाषण छोटे-से-छोटा था। कम-से-कम प्रस्ताव—, कुल ९ उस अधिवेशन में पास हुए। हिन्दी कांग्रेस की मुख्य भाषा रही और कांग्रेस-कार्य के लिए जो तम्बू और डेरे लगे थे, उनके लिए २ लाख से ऊपर की खादी मोल ली गई थी।

गांधीजी ने एण्डरूज साहब को अहमदाबाद-अधिवेशन में आने और एक धार्मिक संदेश देने का निमंत्रण दिया था। उन्होंने यह मंजूर तो किया, लेकिन साथ ही यह भी बतलाया कि "मैं विदेशी कपड़े की होली के खिलाफ हूं, क्योंकि मुझे डर है कि वह हिंसा के भाव जाग्रत करेगी।" अपनी मामूली पोशाक को छोड़कर वे यूरोपियन लिबास में आये, जिससे कि वे विदेशी कपड़े की होली-नीति पर अपना विरोध स्पष्ट कर सकें। अपने व्याख्यान में उन्होंने यह स्पष्ट किया कि वे इस मौके पर क्यों खद्दर पहन कर नहीं आये। यहां यह ध्यान देने योग्य है कि लोगों ने उनकी बातों को बहुत आदर और प्रेम से सुना, हालांकि वे उनके विचार से सहमत नहीं थे। भाषण में उन्होंने यह भी कह दिया कि मैं गांधीजी के कहने से आज ही रात को मोपला प्रदेश में शान्ति स्थापित करने जा रहा हूं।

यहां हम संक्षेप में उन सब घटनाओं को एक निगाह से देख लें जिनकी तरफ कांग्रेस का ध्यान था। देशबन्धु की जगह हकीम साहब इसलिए सभापति चुने गये कि वे हिन्दू-मुस्लिम एकता की प्रति-मूर्ति थे। यहां तक कि दिल्ली में हिन्दू-महासभा की एक परिषद में वह उसके सभापति चुने गये थे। देशबन्धु के प्रतिनिधि के योग्य ही उनका भाषण था। देशबन्धु का भाषण उनकी भाषा और भाव के अनुरूप योग्यता से ही सरोजिनी देवी ने पढ़ा। देशबन्धु ने भारतीय राष्ट्र-धर्म का ठीक और व्यापक रूप से सिंहावलोकन किया। संस्कृति में ही उसकी जड़ हैं, इसलिए उन्होंने कहा, "पेश्तर इसके कि हमारी संस्कृति पश्चिमी-सभ्यता को आत्मसात करने के लिए तैयार हो, उसे पहले अपने आपको पहचान लेना होगा।" इसके बाद उन्होंने भारत-सरकार-कानून (गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया एक्ट) पर विचार किया और कहा, "इस कानून को सरकार के साथ सहयोग करने की बुनियाद पर स्वीकार करने की सिफारिश मैं आपसे नहीं कर सकता। मैं इज्जत को खोकर शान्ति खरीदना नहीं चाहता। जबतक इस कानून का वह प्राक्कथन कायम है, और जबतक हमारा अपने घर का इन्तजाम हम आप करें, अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का विकास करें और अपने भाग्य का निर्माण आप करें, इस अधिकार को तसलीम नहीं कर लिया जाता, मैं सुलह की किसी शर्त पर विचार करने के लिए तैयार नहीं हूं।"

देशबन्धु के उस शानदार भाषण से अहमदाबाद के भव्य प्रस्तावों को देखने की सही दृष्टि मिल जाती है। मुख्य प्रस्ताव तो सचमुच असहयोग, उसके सिद्धान्त और कार्य-क्रम पर एक खासा निबन्ध ही है। यहांतक कि खुद गांधीजी ने उसे पेश करते समय कहा था कि इस प्रस्ताव को

अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी में मुझे बारीकी से पढ़ने में ३५ मिनट लगे हैं। उन्होंने कहा कि पिछले १५ महीनों में देश में जो कुछ राष्ट्रीय कार्य हुए वे उनका वह बिलकुल स्वाभाविक परिणाम है। इस प्रस्ताव के द्वारा सुलह का रास्ता बन्द नहीं कर दिया था, बल्कि वाइसराय यदि सद्भाव रखते हों तो दर्वाजा उनके लिए खुला रक्खा गया था। "परन्तु यदि उनके भाव ठीक न हों तो दर्वाजा उनके लिए बन्द है। परवा नहीं कितने ही लोगों को तबाह हो जाना पड़े, परवा नहीं यह दमन कितना ही उग्र-रूप धारण करले। हां, उनके लिए गोलमेज-परिषद् का पूरा अवसर है, परन्तु वह वास्तविक परिषद् होनी चाहिए। यदि वह ऐसी परिषद् चाहते हैं कि जिसमें बराबरी के लोग बैठे हों औ उनमें एक भी भिखारी न हो, तो दर्वाजा खुला रहेगा। इस प्रस्ताव में ऐसी कोई बात नहीं है कि जिससे विनय और विवेक रखने वाले को शर्मिन्दा होना पड़े।" उन्होंने फिर कहा कि "यह प्रस्ताव किसी व्यक्ति के लिए कोई उद्धत चुनौती नहीं है, बल्कि यह तो उस हुकूमत को चुनौती है, जो उद्धतता के सिंहासन पर विराजमान है। यह एक नम्र परन्तु दृढ़ चुनौती है, उस हुकूमत को जो अपने को बचाने की गरज से राय देने और मिलने-जुलने की आजादी को कुचल देना चाहती है; और यह दो तरह की आजादी तो मानों स्वाधीनता की शुद्ध वायु की सांस लेने के लिए दो फेफड़ों के समान है।" असहयोग और उसके प्रति देश के कर्तव्य के सम्बन्ध में जो मुख्य प्रस्ताव वहां पास हुआ वह इस प्रकार है—

(१) "चूंकि कांग्रेस के पिछले अधिवेशन के समय से भारतीय जनता को अपने अनुभव से मालूम हुआ है कि अहिंसात्मक असहयोग के करने से देश ने निर्भयता, आत्म-बलिदान और आत्म-सम्मान के मार्ग पर बहुत उन्नति की है और चूंकि इस आन्दोलन ने सरकार के सम्मान को बहुत बड़ा धक्का पहुंचाया है और चूंकि देश की प्रगति स्वराज्य की ओर तीव्र गति से हो रही है; इसलिए यह कांग्रेस कलकत्ता के विशेष अधिवेशन द्वारा स्वीकृत और नागपुर में दोहराये गए प्रस्ताव को स्वीकार करती है और दृढ़ निश्चय प्रकट करती है कि जबतक पंजाब और खिलाफत के अत्याचारों का निवारण नहीं हो जायगा, स्वराज्य की स्थापना नहीं हो जायगी और भारतवर्ष का शासन-सूत्र एक उत्तरदायित्व-हीन संस्था के हाथ से निकालकर लोगों के हाथ में नहीं आ जायगा, तबतक अहिंसात्मक असहयोग का कार्यक्रम इस समय की अपेक्षा अधिक उत्साह से उस प्रकार चलता रहेगा जिस प्रकार प्रत्येक प्रांत निश्चय करेगा।

"और चूंकि वाइसराय ने अपने हाल के भाषण में धमकी दी है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि भारत सरकार ने अनेक प्रान्तों में गैर-कानूनी और उच्छृङ्खल-रूप से स्वयंसेवक-संस्थाओं को विच्छिन्न करके, और सार्वजनिक सभाओं और कमिटियों की बैठकों की भी मनाही करके और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अनेक कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को गिरफ्तार करके दमन प्रारम्भ किया है और चूंकि यह स्पष्ट है कि यह दमन कांग्रेस और खिलाफत के कामों को विच्छिन्न करने और जनता को उनकी सहायता से वंचित करने की गरज से चलाया है; इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि जहां तक आवश्यकता हो कांग्रेस के सब कार्य स्थगित रक्खे जायं। और सब लोगों से प्रार्थना करती है कि वे शान्ति के साथ बिना किसी धूम-धाम के स्वयंसेवक-संस्थाओं के सदस्य होकर गिरफ्तार होवें। ये स्वयंसेवक-संस्थायें देश भर में कार्य-समिति के बम्बई के गत २३ नवम्बर के निश्चयानुसार संगठित की जावें। किंतु जो व्यक्ति नीचे लिखे प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेगा वह स्वयंसेवक नहीं बनाया जायगा—

'ईश्वर को साक्षी करके मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि—

(१) मैं राष्ट्रीय स्वयंसेवक-संघ का सदस्य होना चाहता हूं।

(२) जबतक मैं संघ का सदस्य रहूंगा तबतक वचन और कर्म में अहिंसात्मक रहूंगा और इस बात का अत्यन्त अधिक प्रयत्न करूंगा कि मन से भी अहिंसात्मक रहूं; क्योंकि मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति में अहिंसा से ही खिलाफत और पंजाब की रक्षा हो सकती है और उसीसे स्वराज्य स्थापित हो सकता है और भारतवर्षकी समस्त जातियों में—चाहे वे हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, ईसाई या यहूदी हों—एकता स्थापित हो सकती है।

(३) मुझे ऐसी एकता पर विश्वास है और उसकी उन्नति के लिए सदैव प्रयत्न करता रहूंगा।

(४) मेरा विश्वास है कि भारतवर्ष के आर्थिक, राजनैतिक और नैतिक उद्धार के लिए स्वदेशी (का प्रयोग) आवश्यक है और मैं दूसरी तरह के सब कपड़ों को छोड़कर केवल हाथ के कते और बुने खद्दर का ही इस्तेमाल करूंगा।

(५) हिन्दू होने की हैसियत से मैं अस्पृश्यता को दूर करने की न्यायपरता और आवश्यकता पर विश्वास करता हूं और प्रत्येक सम्भव अवसर पर दलित लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क रक्खूंगा और उनकी सेवा करूंगा।

(६) मैं अपने बड़े अफसरों की आज्ञाओं और स्वयंसेवक-संघ, कार्य-समिति या कांग्रेस-द्वारा स्थापित दूसरी संस्थाओं के उन सब नियमों का पालन करूंगा जो इस प्रतिज्ञा-पत्र के प्रतिकूल न होंगे।

(७) मैं अपने धर्म और अपने देश के लिए बिना विरोध किये जेल जाने, आघात सहने और मरने तक के लिए तैयार हूं।

(८) अगर मैं जेल जाऊं तो अपने कुटुम्बियों या जो लोग मुझ पर निर्भर हैं, उनकी सहायता के लिए कांग्रेस से कुछ नहीं मागूंगा।

" इस कांग्रेस को विश्वास है कि १९ वर्ष और उससे अधिक उम्र का प्रत्येक व्यक्ति स्वयं-सेवक-संघ में शामिल हो जायगा।

"सार्वजनिक सभाओं के किये जाने की जो मनाही की गई है उसकी परवा न करते हुए और यह देखते हुए कि कमिटी की बैठकों को भी सार्वजनिक सभा कह देने का प्रयत्न किया गया है, यह कांग्रेस सलाह देती है कि कमिटी की बैठकें और सार्वजनिक सभायें हुआ करें। सार्वजनिक सभायें घिरी हुई जगहों में टिकट के द्वारा और पहले से सूचना देकर की जावें, जिनमें संभवतः वही वक्ता अपना लिखा हुआ भाषण पढ़ें जिनकी सूचना पहले से ही दी जा चुकी हो। हर हालत में इस बात का ख्याल रक्खा जाय कि लोग उत्तेजित न हो जावें और उसके फल-स्वरूप जनता के द्वारा हिंसक कार्य न हो जायं।

"आगे इस कांग्रेस की राय है कि जब किसी व्यक्ति या संस्था के अधिकारों का निरंकुश, अत्याचारी और अपमानप्रद प्रयोग रोकने के लिए और सब प्रयोग किये जा चुके हों तो सशस्त्र क्रांति के स्थान पर सत्याग्रह ही एक-मात्र सभ्य और प्रभावप्रद उपाय रह जाता है। इसलिए यह कांग्रेस समस्त कांग्रेस-कार्य-कर्त्ताओं और उन दूसरे लोगोंको, जिन्हें शांतिपूर्ण उपायों पर विश्वास हो और जिनका यह निश्चय हो गया हो कि वर्त्तमान सरकार को भारतीयों के प्रति पूर्णतया अनुत्तरदायी-पद से

उतारने के लिए किसी-न-किसी प्रकार के त्याग के सिवाय अब दूसरा उपाय नहीं रह गया है, यह सलाह देती है कि लोगों को अहिंसा के नियमों की पूर्ण शिक्षा मिल चुकने पर या महासमिति की दिल्लीवाली पिछली बैठक के उस विषय के प्रस्तावानुसार देशभर में व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह का संगठन करें।

"इस कांग्रेस की राय है कि सामूहिक या व्यक्तिगत आक्रमणात्मक या रक्षात्मक सत्याग्रह पर पूरा ध्यान रखने के लिए उचित प्रबन्धों और समय-समय पर कार्य-समिति या उस प्रांत की प्रांतीय कांग्रेस-कमिटी की सूचनाओं के अनुसार जब, जहां और जितने स्थान पर आवश्यक समझा जाय तब, वहां और उतने स्थान पर कांग्रेस के लिए और सब कार्य स्थगित कर दिये जांय।

"यह कांग्रेस १८ वर्ष और उससे अधिक उम्र के विद्यार्थियों से और विशेषकर राष्ट्रीय-विद्यालयों के विद्यार्थियों और अध्यापकों से कहती है कि वे तुरन्त उपर्युक्त प्रतिज्ञा-पत्र पर हस्ताक्षर करके राष्ट्रीय-स्वयंसेवक-संघ के सदस्य बन जायं।

"यह देखते हुए कि थोड़े समय में बहुत-से कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं के गिरफ्तार होने का भय है और चूंकि यह कांग्रेस चाहती है कि कांग्रेस का प्रबन्ध उसी तरह चलता रहे और वह जहां शक्ति हो वहां साधारण तौर से काम करती रहे, इसलिए जब तक आगे कोई सूचना न दी जाय तबतक यह कांग्रेस महात्मा गांधी को अपना सर्वाधिकारी नियत करती है और उन्हें महासमिति के समस्त अधिकार देती है। इनमें कांग्रेस का विशेष अधिवेशन बुलाने और महासमिति और कार्य-समिति की बैठक कराने के अधिकार भी शामिल हैं। इन अधिकारों का प्रयोग महासमिति की किन्हीं दो बैठकों के बीच किया जायगा और उन्हें (महात्मा गान्धी को) मौका आ जाने पर अपना उत्तराधिकारी नियत करने का भी अधिकार रहेगा।

"यह कांग्रेस उपर्युक्त उत्तराधिकारी और उनके बाद नियत किये जाने वाले अन्य उत्तराधिकारियों को ऊपर के सब अधिकार देती है।

"किन्तु इस प्रस्ताव के किसी अंश का यह अर्थ नहीं है कि महात्मा गांधी या उनके उपर्युक्त उत्तराधिकारियों को महासमिति की स्वीकृति और उसपर इसी कार्य के लिए किये गये कांग्रेस के विशेष अधिवेशन की मंजूरी के बिना भारत-सरकार से संधि करने का अधिकार है, और कांग्रेस के संगठन की पहली धारा भी कांग्रेस की पूर्व-स्वीकृति के बिना महात्मागांधी या उनके उत्तराधिकारियों-द्वारा नहीं बदली जायगी।

"यह कांग्रेस उन सब देश-भक्तों को बधाई देती है जो अपने अन्तःकरण के विश्वास या देश के लिए जेल की यातना भोग रहे हैं और यह समझती है कि उनके बलिदान से स्वराज्य बहुत निकट आ गया है।"

(२) "जो लोग पूर्ण असहयोग या असहयोग के सिद्धान्त पर विश्वास नहीं करते किन्तु जो राष्ट्रीय सम्मान के लिए खिलाफत और पंजाब के अत्याचारों का प्रतिकार होना आवश्यक समझते हैं और उसपर जोर देते हैं और राष्ट्र के पूर्ण विकास के लिए तुरन्त स्वराज्य स्थापित कराने पर जोर देते हैं, उन सबसे कांग्रेस यह प्रार्थना करती है कि वे भिन्न-भिन्न धार्मिक समाजों में एकता कराने में पूरी सहायता दें, जो लाखों कृषक भूखों मरने की अवस्था पर पहुंचे हुए हैं उनकी आमदनी बढ़ाने के लिए आर्थिक-दृष्टि से धुनने, हाथ से कातने और बुनने का प्रचार करें और इसके लिए हाथ से कते और बुने कपड़ों को पहनने की शिक्षा दें और पहनें, नशीली वस्तुओं का प्रयोग पूर्णतया बन्द करने में

सहायता दें और यदि वे हिन्दू हों तो अस्पृश्यता दूर करने और दलित जाति के लोगों की अवस्था सुधारने में मदद दें।''

हम उस बहस की ओर भी मुखातिब हों जिसे मौलाना हसरतमोहानी ने शुरू किया था। उनकी तजवीज थी कि कांग्रेस के ध्येय में स्वराज्य की व्याख्या इस तरह की जाय—''पूर्ण स्वतंत्रता, विदेशियों के नियंत्रण से बिलकुल आजादी।'' इस घटना को अब इतना अरसा गुजर चुका है कि अब तो यह भी ताज्जुब हो सकता है कि कांग्रेस और गांधीजी ने इसका विरोध क्यों किया?

गांधीजी ने उस समय कड़ी भाषा का प्रयोग किया था, किन्तु सवाल यह है कि क्या वह बहुत कड़ी थी? गांधीजी ने एक नया आन्दोलन चलाया, नया ध्येय तजवीज किया और नये ढंग से हमला करने की मोर्चाबन्दी की थीं। यह एक ऐसा संग्राम था कि जिसमें उद्देश्य और उसे पाने के लिए की गई व्यूह-रचना स्पष्ट रूप से निश्चित थी। दोनों तरफ के सैनिकों में छोटी-बड़ी मुठभेड़ हो जाया करती थी। एक कड़ी लड़ाई की तैयारी हो रही थी। ठीक ऐसे मौके पर यदि कोई सिपाही आकर जनरल और सेना से कहे कि हमारे उद्देश्य का निर्णय फिर से होना चाहिए, तो लड़ाई की सारी रचना न बिगड़ जायगी? लेकिन उनकी जिस दलील ने असर किया वह तो थी—''सबसे पहले तो हम शक्ति संग्रह करें—सबसे पहले हम यह देख लें कि हम कितने गहरे पानी में हैं। हमें ऐसे समुद्र में न कूद पड़ना चाहिए जिसकी गहराई का पता हमें न हो और हसरत मोहानी साहब का यह प्रस्ताव हमको अथाह समुद्र में ले जा रहा है।'' यह दलील लाजवाब थी। कोई जनरल अपनी सेना को इतनी गहराई में नहीं ले जा सकता जिसका खुद उसीको पता न हो। उस समय तो वह प्रस्ताव गिर गया, परन्तु बाद को प्रतिवर्ष वह पेश किया जाता रहा। अन्त को १९२९ में जाकर कांग्रेस ने तो उसे अपने ध्येय में ही शामिल कर लिया।

दूसरे प्रस्तावों में एक तो विधान सम्बन्धी था और दूसरे के द्वारा पदाधिकारियों की नियुक्ति की गई थी। एक मोपला-उत्पात के विषय में था, जिसमें कहा गया था कि असहयोग या खिलाफत-आन्दोलन से इसका कोई सम्बन्ध नहीं था। इस उत्पात के छः महीने पहले ही से अहिंसा के सन्देश के प्रचारकों का जाना ही वहां रोक दिया गया था, और यह हलचल इतने दिनों तक न रही होती, यदि याकूब हसन जैसे या खुद महात्मा गांधी जैसे प्रमुख असहयोगियों को वहां जाने दिया गया होता। जब मोपला कैदी बेलारी भेजे गये तब कोई १०० मोपलाओं को एक मालगाड़ी के डिब्बे में भर दिया, जिससे १९ नवम्बर १९२१ की रात को दम घुटकर ७० कैदी मर गये थे। इस अमानुष-व्यवहार पर रोष और सन्ताप प्रकट किया गया। १७ नवम्बर को बम्बई में जो दुर्घटनायें हुईं, कांग्रेस ने उनकी निन्दा की और सब दलों तथा सब जातियों को आश्वासन दिया कि कांग्रेस की यही इच्छा और यह दृढ़ निश्चय है कि उनके अधिकारों की पूरी-पूरी रक्षा करे। इसके बाद मुस्तफा कमालपाशा को यूनानियों पर मिली फतह के लिए, जिससे सेवर की सन्धि में परिवर्तन किया गया, कोमागाटामारू वाले बाबा गुरुदत्तसिंह को, जो ७ वर्ष तक अज्ञातवास में रहकर अपने-आप पुलिस के सुपुर्द हो गये थे, और उन सिक्खों को धन्यवाद दिया गया जो इस तथा अन्य अवसरों पर पुलिस और फौजी सिपाहियों द्वारा बहुत जोश दिलाये जाने पर भी शान्त और अहिंसात्मक बने रहे।

अहमदाबाद-कांग्रेस में एक खास बात हुई मुसलमान उलेमा का राजनैतिक मामलों में कांग्रेस को सलाह देना। व्यक्तिगत तथा सामूहिक सत्याग्रह की शर्तों के विषय में अहिंसा पर बहुत बहस मुबाहसा हुआ था—यह कि आया, मन, वचन और कर्म से उसपर अमल किया जाय? यहां यह याद रहे कि कलकत्तावाले प्रस्ताव में सिर्फ 'वचन और कर्म' का ही उल्लेख था। स्वयंसेवकों की प्रतिज्ञा में

'मन' शब्द के जोड़ने पर मुसलमानों को ऐतराज था। उनका कहना था कि यह 'शरीयत' के खिलाफ जाता है। इसलिए 'मन' की जगह 'इरादा' शब्द रख दिया गया। इन सब मामलों में अलकुरानं, 'शरीयत और हदीस' के मुताबिक राजनैतिक विचारों और भावों का अर्थ और निर्णय करने में उलेमा ने बहुत बड़ा काम किया। आगे चलकर हम देखेंगे कि कौन्सिल-प्रवेश और उसके बाद की कार्रवाइयों के बारे में भी उनकी राय और फतवे लिये जाते थे।

अहमदाबाद में एक नई बात हुई जो ध्यान देने योग्य है। बैठक के बाद भी प्रतिनिधिगण जल्दी ही वहां से जाने को तैयार न थे। तब गांधीजी हर कैम्प में गये और उन्हें सविनय-भंग का विधि विधान समझाया। आन्ध्र-कैम्प में उन्होंने यह बताया कि जब कहीं कर-बन्दी करनी हो तो किस तरह स्वयंसेवकों को गांव-गांव जाकर उन लोगों की सही लेना चाहिए जो लड़ाई में शामिल होना चाहते हों। व्यक्तिगत और सामूहिक सत्याग्रह की अन्य शर्तों के अलावा यह भी जरूरी था।

३

गांधीजी जेल में—१९२२

अभी १९२१ अच्छी तरह खत्म भी न हुआ था कि कांग्रेस के हितैषी मित्रों ने, जो उसका नया कार्यक्रम स्वीकार नहीं कर सकते थे, कांग्रेस और सरकार में समझौता कराने की उत्सुकता प्रकट की। अभी अहमदाबाद के प्रस्तावों की स्याही सूखने भी न पाई थी कि १४, १५ और १६ फरवरी को बम्बई में एक सर्व-दल-सम्मेलन बुलाया गया, जिसमें भिन्न-भिन्न दलों के लगभग ३०० सज्जनों ने भाग लिया।

सम्मेलन के आयोजकों ने एक ऐसा प्रस्ताव तैयार करने की बात सोची जिसके आधार पर अस्थायी-संधि की बात चलाई जा सके। गांधीजी ने असहयोगियों की स्थिति साफ करते हुए कहा कि सम्मेलन में तो वे बाजाब्ता भाग न ले सकेंगे, हां, वैसे वे सम्मेलन की सहायता अवश्य करेंगे। इसका कारण उन्होंने बताया कि सरकार की तरफ से दमन बराबर जारी है; और जबतक कि सरकार के मन में उसपर कोई अफसोस नहीं है तबतक ऐसे सर्वदल-सम्मेलन करने से क्या फायदा ? सम्मेलन के बीस सज्जनों की एक विषय-समिति ने जो प्रस्ताव तैयार किया वह सम्मेलन के इजलास में रक्खा गया और गांधीजी ने फिर असहयोगियों की स्थिति स्पष्ट की। सर शंकरन् नायर इस सम्मेलन के सभापति थे। उन्होंने इस प्रस्ताव को ना-पसंद किया और सम्मेलन छोड़कर चले गये। उनका स्थान सर एम० विश्वेश्वरय्या ने लिया। सम्मेलन ने एक ऐसा प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास किया कि जिसमें सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया था और साथ में यह भी सलाह दी गई थी कि जबतक समझौते की बात-चीत चलती रहे, अहमदाबाद के प्रस्ताव के अनुसार सत्याग्रह शुरू न किया जाय। इस प्रस्ताव के द्वारा एक ऐसी गोलमेज-परिषद् शीघ्र ही बुलाने की पुष्टि की गई जिसे खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी मामलों पर समझौता करने का अधिकार हो, और साथ ही जो देश में अनुकूल वातावरण तैयार करने के लिए क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट के अंतर्गत संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देनेवाले सारे आदेशों को और राजद्रोहात्मक सभाबन्दी-कानून को रद करने और उनके सजायाफ्ता या विचाराधीन लोगों को और साथ ही फतवा-कैदियों को छोड़ने के लिए सरकार से अनुरोध करे। कमिटी के जिम्मे उन मुकदमों की जांच का भी काम किया गया जिनके मातहत आन्दोलन में भाग लेनेवालों को साधारण कानून के अनुसार सजा दी गई थी। सम्मेलन के बाद सर शंकरन् नायर ने गलत बातों से भरा एक वक्तव्य प्रकाशित करके गांधीजी पर घोर आक्रमण किया। इस वक्तव्य के खण्डन में श्री जिन्ना, जयकर और नटराजन को मंत्री की हैसियत से और अन्य सज्जनों को भी अपने-अपने बयान प्रकाशित करने पड़े।

इस सम्मेलन ने जो प्रस्ताव असहयोगियों के सम्बन्ध में पास किये थे, कार्य-समिति ने अपनी, ७ जनवरी की बैठक में उनकी पुष्टि कर दी और सत्याग्रह उस महीने के अन्त तक के लिए मुल्तवी

कर दिया गया। वाइसराय ने सम्मेलन की शर्तों को मंजूर करने से इन्कार कर दिया। इससे यह स्पष्ट हो गया कि कलकत्ते में लॉर्ड रीडिंग ने जो आश्वासन दिया था वह कितना खोखला था। इसपर गांधीजी ने १-२-२२ को वाइसराय के नाम पत्र भेजा, जिसमें उन्होंने बारडोली में सत्याग्रह-आन्दोलन करने का विचार प्रकट किया।

वे सामूहिक सत्याग्रह का प्रथम प्रयोग अपनी देख-रेख में करना चाहते थे। बारडोली ताल्लुके में बहुत से दक्षिण अफ्रिका से वापस आये लोग थे, जो गांधीजी की कार्य-प्रणाली से परिचित थे। गांधीजी की इच्छा थी कि बाकी हिन्दुस्तान के लोग उनके प्रयोग को देखें और उनमें साहस और बल का संचार करें। वे यह चाहते थे कि जिस ओर उनका ध्यान और चेष्टायें लगी हुई हैं उस ओर से उन्हें खींचने के लिए कोई काम न किया जाय। बिलकुल यही स्थिति ३१ जनवरी १९२२ के कार्य-समिति के प्रस्ताव में रक्खी गई थी। पर हुआ यह कि अहमदाबाद-अधिवेशन के बाद ही ७ जनवरी को आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी की बैठक बेजवाड़ा में हुई, जिसमें जिला-कांग्रेस कमिटियों को अधिकार दिया गया कि वे अपने-अपने हलकों में पता लगायें कि कर-बन्दी-आन्दोलन कहां-कहां आरम्भ किया जा सकता है? कृष्णा, गोदावरी, गन्तूर और कुडापा नामक चार जिलों ने इसके लिए अनुमति प्राप्त की। अहमदाबाद के कांग्रेस-अधिवेशन के १५ दिन पहले, १५-१२-२१ को, आन्ध्र-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी की कार्यकारिणी-समिति ने गन्तूर में एक प्रस्ताव पास करके आन्ध्रवालों को कर देना बन्द करने का आदेश दिया था। यह कार्रवाई कांग्रेस के निश्चय की उपेक्षा से की गई थी। इधर अन्य जिले तो गांधीजी की इच्छा के अनुसार जो उन्होंने अहमदाबाद-अधिवेशन के बाद पारस्परिक बातचीत में प्रकट की थी, स्थानिक स्थिति का पता लगाने और किसानों के हस्ताक्षर लेने में लगे रहे। मगर गन्तूर में १२ जनवरी १९२२ को करबन्दी की घोषणा करदी गई। गांधीजी ने बम्बई के सर्व-दल-सम्मेलन के अवसर पर आन्ध्र के दो प्रतिनिधियों से बातचीत करने के बाद १७ जनवरी को एक पत्र आन्ध्र-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी के सभापति के नाम और एक वक्तव्य प्रेस के नाम दिया, जिसमें उन्होंने लिखा कि २५ जनवरी तक लगान अदा हो जाना चाहिए। किसी-न-किसी कारण से प्रेस-वक्तव्य तो प्रकाशित न हो सका, पर उस पत्र को लेकर गांधीजी और गन्तूर के कार्यकर्ताओं में पत्र-व्यवहार चल पड़ा। जब गांधीजी की इच्छा अन्य जिलों को मालूम हुई तो लगान अदा कर दिये गये। पर गन्तूर में आन्दोलन बराबर चलता रहा। जब गांधीजी से आन्दोलन जारी रखने के सम्बन्ध में बार-बार साग्रह अनुमति मांगी गई तो उन्होंने इस प्रकार तार दिया—

"यदि सामूहिक सत्याग्रह-सम्बन्धी दिल्ली की शर्तों के अनुकूल वातावरण तैयार हो, और यदि आप लोगों का विश्वास हो कि गन्तूर को सफलता मिलने की काफी सम्भावना है, तो मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मैं आपके मार्ग में बाधक नहीं बनना चाहता। ईश्वर आपकी सहायता करे।"

इसका अर्थ यह निकाला गया कि गांधीजी ने स्वीकृति दे दी, पर यह ठीक नहीं था। तिस पर भी एक कमिटी नियुक्त की गई जिसका काम जिलों में दौरा करके देखना था कि दिल्ली वाली शर्तें पूरी होती हैं या नहीं, और आन्दोलन जारी रखना ठीक होगा या नहीं? कर-बन्दी-आन्दोलन ने यह रूप धारण किया कि मैदानों में खेतों का लगान रोक लिया गया और जंगलों में चराने का कर न दिया गया। इन्हीं में से एक स्थान पर एक थानेदार एक गांव में पशुओं की कुर्की करने गया। जब उसने एक बछड़े को कुर्क कर लिया तो गांववालों ने विरोध किया। फल-स्वरूप उसने एक

प्रतिष्ठित गांववाले को गोली मार दी। फौज ने गन्तूर शहर में डेरा जमाया और गवर्नर के शरीर-रक्षक सवार गांवों में गये। गांवों से बाहर आदमियों को इकट्ठा किया गया और उनसे कर वसूल करने की व्यर्थ चेष्टा की गई एवं सामान कुर्क करने और गिरफ्तार करने की धमकी दी गई। ऐसी अवस्था में जो हालत हुई होगी, उसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

इधर ३१ जनवरी १९२२ को कार्य-समिति की बैठक में बारडोली ताल्लुका-परिषद् का प्रस्ताव पेश हुआ, जिस पर विचार करने के बाद ताल्लुके के लोगों को सामूहिक सत्याग्रह-द्वारा आत्म-बलिदान करने के निश्चय पर बधाई दी गई। कार्य-समिति ने भारतवर्ष के अन्य सारे भागों को सलाह दी कि वे बारडोली के साथ सहयोग करें और उस समय तक किसी प्रकार का सामूहिक सत्याग्रह न करें जबतक उन्हें महात्मा गांधी की अनुमति पहले से प्राप्त न हो जाय।

अन्तिम चेतावनी

अब जरा हमें गुजरात और अन्य प्रान्तों का दौरा करना चाहिए। गांधीजी ने अपना कर-बन्दी-आन्दोलन आरम्भ करने का संकल्प किया था। इस आन्दोलन को उन्होंने सर्व-दल-सम्मेलन के बाद ३१ जनवरी १९२२ तक के लिए स्थगित कर दिया था। तदनुसार उन्होंने १ फरवरी को वाइसराय के नाम एक पत्र लिखा, जिसकी श्री जिन्ना आदि ने कड़ी आलोचना की। पत्र (१ फरवरी १९२२) इस प्रकार है—

"बारडोली बम्बई-प्रांत के सूरत-जिले का एक छोटा-सा ताल्लुका है जिसकी जन-संख्या मिलाकर कुल ८७,००० है।

"गत नवम्बर की दिल्ली वाली महासमिति की बैठक में जो प्रस्ताव पास हुआ था, इस ताल्लुके ने उसकी सारी शर्तों के अनुसार अपनी योग्यता साबित कर दी और गत २९ जनवरी को श्री विट्ठलभाई पटेल की अध्यक्षता में सामूहिक सत्याग्रह करने का निश्चय किया। पर चूंकि इस निश्चय की जिम्मेदारी मुख्यतः शायद मेरे ऊपर ही है, इसलिए मैं उस हालत को, जिसमें यह निश्चय किया गया है, आपके और जनता के सामने रखना अपना कर्तव्य समझता हूँ।

"महासमिति के प्रस्ताव के अनुसार बारडोली को सामूहिक सत्याग्रह का पहला केन्द्र बनाने का निश्चय किया गया था जिससे सरकार की भारत के खिलाफत, पंजाब और स्वराज्य-सम्बन्धी संकल्प की अक्षम्य अवहेलना करने की नीति के विरुद्ध देश-व्यापी असन्तोष प्रकट किया जा सके।

"इसके बाद ही बम्बई में १७ नवम्बर को शोचनीय दंगा हो गया, जिसके फल-स्वरूप बारडोली की कार्रवाई स्थगित कर देनी पड़ी।

"इधर भारत सरकार की रजामन्दी से बंगाल, आसाम, युक्तप्रान्त, पंजाब, दिल्ली-प्रान्त और एक प्रकार से बिहार में और अन्य स्थानों पर भी घोर दमन से काम लिया गया। मैं जानता हूं कि इन प्रान्तों के अधिकारियों ने जो कुछ किया है, उसे 'दमन' के नाम से पुकारने पर आपको एतराज है। पर मेरी सम्मति यह है कि यदि जरूरत से ज्यादा कार्रवाई की गई हो तो निस्सन्देह उसे 'दमन' के नाम से पुकारा जायगा। सम्पत्ति का लूटना, निर्दोष व्यक्तियों पर हमला करना, जेल में लोगों पर पाशविक अत्याचार करना और उनपर कोड़े बरसाना किसी तरह भी कानूनी, सभ्यता पूर्ण या आवश्यक कार्य नहीं कहा जा सकता। इस सरकारी गैर-कानूनीपन को केवल गैर-कानूनी दमन के नाम से पुकारा जा सकता है।

"हड़ताल और पिकेटिंग के सिलसिले में असहयोगियों या उनके साथ हमदर्दी रखने वालों-द्वारा डराने-धमकाने की बात किसी हद तक ठीक है, पर केवल इसी कारण शान्तिपूर्ण पिकेटिंग या-

उतनी ही शान्तिपूर्ण सभाओं को एक ऐसे असाधारण कानून का अनुचित उपयोग करके जिसे उद्देश्य और कार्य दोनों प्रकार से हिंसा पूर्ण हलचलों को दबाने के लिए पास किया गया था, अन्धा-धुन्ध गैर-कानूनी करार देना न्यायपूर्ण नहीं कहा जा सकता। निर्दोष व्यक्तियों के ऊपर साधारण कानून का जिन गैर-कानूनी ढङ्गों से प्रहार किया गया है, न उसे ही दमन के अलावा और किसी नाम से पुकारा जा सकता है। रही प्रेस की आजादी का अपहरण करने की बात, सो यह जिस कानून के अनुसार किया गया है वह अब रद्द होने ही वाला है। यह सरकारी हस्तक्षेप भी दमन के नाम से ही पुकारा जा सकता है।

"फलतः देश के सामने सबसे बड़ा काम लिखने-बोलने और सभा करने की आजादी को इस साधन से जीवन-दान देना है।

"आजकल भारत-सरकार जिस मनोवृत्ति का परिचय दे रही है, और हिंसा के मूल-स्रोतों पर अधिकार करने के मामले में देश जिस प्रकार गैर-तैयार अवस्था में है, उसे देखते हुए असहयोगियों ने मालवीय-परिषद् से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने से इन्कार कर दिया था। इस परिषद् का उद्देश्य था कि वह आपको एक गोलमेज-परिषद् करने के लिए तैयार करे। मैं अनावश्यक दुःख-कष्ट से लोगों को बचाना चाहता था, इसलिए मैंने बिना संकोच कांग्रेस की कार्य-समिति को मालवीय-परिषद् की सिफारिशों को स्वीकार करने की सलाह दी। मेरी सम्मति में शर्तें आपकी आवश्यकताओं के अनुसार, जैसा मैंने आपके कलकत्तेवाले भाषण से और अन्य सूत्रों से समझा, वाजिब ही थीं; फिर भी आपने उन्हें एकबारगी नामंजूर कर दिया।

"ऐसी हालत में अपनी मांगें मनवाने के लिए—जिनमें भाषण देने, मिलने-जुलने और लिखने की आजादी सम्बन्धी मांगें भी शामिल हैं—किसी अहिंसात्मक उपाय का अवलम्बन करने के सिवा देश के आगे और कोई रास्ता नहीं है। मेरी विनम्र सम्मति में हाल की घटनायें उस सभ्यतापूर्ण नीति के बिलकुल खिलाफ हैं, जिसका आरम्भ आपने अली-भाइयों की उदारता और वीरतापूर्ण और बिना किसी प्रकार की शर्त के क्षमा-याचना करने के अवसर पर किया था। वह नीति यह थी कि जबतक असहयोगी शब्दों और कार्यों में अहिंसात्मक रहें, तबतक उनके कार्य-कलाप में सरकार कोई बाधा न डाले। यदि सरकार उदासीन रहने की नीति बरतती और जनता की सम्मति को परिपक्व होने और अपना प्रभाव दिखाने का अवसर देती तो उस समय तक के लिए सत्याग्रह मुल्तवी करना सम्भव होता जबतक कांग्रेस उपद्रवकारी शक्तियों पर पूरा अधिकार न कर लेती और अपने लाखों अनुयायियों में अधिक संयम और नियम-बद्धता न ला देती। परन्तु गैर-कानूनी दमन-नीति के कारण (जो इस अभागे देश के इतिहास में अपने ढंग की निराली है) सामूहिक सत्याग्रह तत्काल ही आरम्भ करना हमारा कर्तव्य होगया है। कार्य-समिति ने सत्याग्रह को कुछ खास-खास इलाकों तक ही सीमित कर दिया है। इन हलकों को समय-समय पर मैं स्वयं निश्चित करूंगा। फिलहाल सत्याग्रह बारडोली तक ही सीमित रहेगा। यदि मैं चाहूं तो इस अधिकार के द्वारा तत्काल ही मदरास प्रान्त के गन्टूर जिले के १०० गांवों में सत्याग्रह आरम्भ करने की स्वीकृति दे दूं, बशर्ते कि वे अहिंसा, भिन्न-भिन्न श्रेणियों में मेल बनाये रखने, हाथ का कता-बुना खद्दर पहनने और बनाने और अस्पृश्यता दूर करने की शर्तों का पालन कर सकें।

"परन्तु पेश्तर इसके कि बारडोली की जनता सचमुच सत्याग्रह आरम्भ करे, आपके सरकार के प्रधान अफसर होने की हैसियत से, मैं आपसे एक बार फिर अनुरोध करता हूं कि आप अपनी नीति में परिवर्तन करें और उन सारे असहयोगी कैदियों को मुक्त कर दें जो अहिंसात्मक-कार्यों के लिए

जेल गये हैं या जिनका मामला अभी विचाराधीन है। मैं आपसे यह भी अनुरोध करता हूं कि आप साफ़-साफ़ शब्दों में देश की सारी अहिंसात्मक हलचल में—चाहे वह खिलाफत के सम्बन्ध में हो, चाहे पन्जाब या स्वराज्य के सम्बन्ध में, चाहे और किसी विषय में हो, यहां तक कि वह ताजीरात हिंद या जाब्ता फौजदारी की दमनकारी धाराओं के या दूसरे दमनकारी कानूनों के भीतर क्यों न आती हो—सरकार की तटस्थता की घोषणा कर दें। हां, अहिंसा की शर्तें अवश्य हमेशा लागू रहे। मैं आपसे यह भी अनुरोध करूंगा कि आप प्रेस पर से कड़ाई उठा लें और हाल में जो जुर्माने किये गये हैं उन्हें वापस करा दें। मैं आपसे जो यह करने का अनुरोध कर रहा हूं, सो संसार के उन सभी देशों में किया जा रहा है, जहां की सरकारें सभ्य हैं। यदि आप सात दिन के भीतर इस प्रकार की घोषणा कर दें तो मैं उस समय तक के लिए उग्र सत्याग्रह मुल्तवी करने की सलाह दूंगा जब तक सारे कैदी छूटकर नये सिरे से अवस्था पर विचार न कर लें। यदि सरकार उक्त प्रकार की घोषणा कर दे तो मैं उसे सरकार की ओर से लोकमत के अनुकूल कार्य करने की इच्छा का सबूत समझूंगा और फिर निःसंकोच भाव से सलाह दूंगा कि दूसरे पर हिंसात्मक दबाव न डालते हुए देश अपनी निश्चित मांगों की पूर्ति के लिए और भी ठोस लोकमत तैयार करे। ऐसी अवस्था में उग्र सत्याग्रह केवल तभी किया जायगा जब सरकार बिलकुल तटस्थ रहने की नीति का परित्याग करेगी, या जब वह भारत के अधिकांश जन-समुदाय की स्पष्ट मांगों को मानने से इन्कार कर देगी।"

भारत-सरकार ने तुरन्त ही गांधीजी के वक्तव्य का उत्तर छपवाया, जिसमें दमन-नीति का यह कहकर समर्थन किया गया कि यह नीति बम्बई के दंगों, अनेक स्थानों पर खतरनाक और गैर-कानूनी प्रदर्शनों और स्वयं-सेवक दलों द्वारा हिंसा, डराने धमकाने और दूसरे के काम-काज में बाधा डालने के फल-स्वरूप है। इस उत्तर में यह भी स्पष्ट कर दिया गया कि सरकार की नीति वही है जो अली-भाइयों के माफी मांगने के अवसर पर वाइसराय ने बताई थी क्योंकि उस अवसर पर वाइसराय ने यह बात स्पष्ट करदी थी कि "सरकार जब और जैसे समझेगी, राजद्रोहात्मक आचरण के विरुद्ध कानून का उपयोग करेगी।" उत्तर में यह भी कहा गया कि सरकार ने गोलमेज-परिषद् के प्रस्ताव को बिलकुल ही रद्द नहीं कर दिया। वास्तव में इस प्रकार की परिषद् के लिए यह आवश्यक था कि असहयोगी-दल गैर-कानूनी कार्रवाइयां बन्द कर दे। पर यह बात सर्व-दल-सम्मेलन के प्रस्तावों में कहीं नहीं थी। केवल हड़ताल, पिकेटिंग और सत्याग्रह बन्द करना तय हुआ था, और यह कहा गया था कि अन्य गैर-कानूनी काम बदस्तूर जारी रहेंगे। इसके अलावा 'गांधीजी ने यह बात भी साफ कर दी है कि गोलमेज-परिषद् का काम उनके निर्णयों पर सही करना मात्र होगा।" उनकी मांगें दो श्रेणियों में बांटी जा सकती हैं (१) अहिंसात्मक आचरण के लिए दण्डित अथवा विचाराधीन सभी कैदियों को छोड़ दिया जाय; (२) यह आश्वासन दिया जाय कि सरकार असहयोग-दल के सभी अहिंसात्मक कार्यों में तटस्थता की नीति बरतेगी, फिर ये कार्य ताजीरात-हिंद के भीतर भी क्यों न आते हों।

पर कांग्रेस के सिर पर एक अशुभ मंडरा रहा था। ५ फरवरी को युक्तप्रांत में गोरखपुर के निकट-चौरी-चौरा में एक कांग्रेस-जुलूस निकाला गया। इस अवसर पर २१ सिपाहियों और एक थानेदार को भीड़ ने एक थाने में खदेड़ दिया और आग लगादी। वे सब आग में जल मरे। उधर १३ जनवरी को मदरास में वही हुआ जो १७ नवम्बर को बम्बई में हुआ था, जिसमें ५३ आदमी मरे थे और ४०० घायल हुए थे। इस अवसर पर मदरास में युवराज गये थे। मदरास के काण्ड ने बम्बई जैसा विशाल रूप धारण नहीं किया। तब १२ फरवरी को बारडोली में कार्य-समिति की एक बैठक हुई, जिसमें इन घटनाओं के कारण सामूहिक सत्याग्रह आरम्भ करने का विचार छोड़ दिया गया। कांग्रे-

स्त्रियों से अनुरोध किया गया कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए कोई काम न किया जाय और स्वयंसेवकों का संगठन और सभायें केवल सरकार की आज्ञा को तोड़ने के लिए न की जायं। एक रचनात्मक-कार्यक्रम तैयार किया गया जिसमें कांग्रेस के लिए एक करोड़ सदस्य भरती करना, चरखे का प्रचार, राष्ट्रीय विद्यालयों को खोलना और मादक-द्रव्य-निषेध का प्रचार और पंचायत संगठित करना आदि शामिल था। उधर जिस कमिटी को गन्तूर जिले का दौरा करने के लिए नियुक्त किया गया था उसने अपनी सिफारिश प्रकाशित करके लोगों से कर अदा करने को कहा और सारा लगान १० फरवरी तक अदा कर दिया गया। यह बात माननी पड़ेगी कि आंध्र-देश में करबन्दी का आन्दोलन सफल हुआ, क्योंकि जब तक कांग्रेस की निषेधाज्ञा जारी रही तबतक ५ फीसदी लगान तक वसूल न किया जा सका।

बारडोली के प्रस्तावों से देश में कई प्रकार के भाव उत्पन्न हुए। बहुत लोग ऐसे थे जो गांधीजी और उनके निश्चय में अगाध-विश्वास रखते थे कुछ ऐसे भी थे जो आपत्ति प्रकट करने-योग्य कोई अवसर हाथ से न जाने देते थे। जब २४ और २५ फरवरी को दिल्ली में महासमिति की बैठक हुई तो उसमें कार्यसमिति के बारडोली-सम्बन्धी लगभग सारे प्रस्तावों का समर्थन हुआ। हां, व्यक्तिगत रूप से किसी खास कानून के खिलाफ सत्याग्रह करने की अनुमति अवश्य दे दी गई। विदेशी कपड़े की पिकेटिंग की भी इजाजत उन्हीं शर्तों पर दी गई थी जो बारडोली-प्रस्ताव में शराब की पिकेटिंग के लिए रक्खी गई थीं। महासमिति ने सत्याग्रह में अपनी आस्था प्रकट की और यह राय कायम की कि यदि कार्यकर्त्ता रचनात्मक-कार्य में अपनी सारी शक्ति लगा दें तो जिस अहिंसात्मक-वातावरण की आवश्यकता है वह अवश्य उत्पन्न हो जायगा।

महासमिति ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह की यह परिभाषा की कि व्यक्तिगत सत्याग्रह वह है जिसके अनुसार एक व्यक्ति या व्यक्ति-समूह के द्वारा किसी सरकारी आज्ञा या कानून का उल्लंघन किया जाय। उदाहरण के लिए ऐसी निषिद्ध-सभा जिसमें प्रवेश करने के लिए टिकटों की आवश्यकता हो, और जिसमें सबको खुलेआम आने की इजाजत न हो, व्यक्तिगत सत्याग्रह की मिसाल है; और ऐसी निषिद्ध-सभा जिसमें जन-साधारण बिना किसी रोकटोक के जा सकें, सामूहिक-सत्याग्रह की। यदि इस प्रकार की सभा कोई रोजमर्रा का कार्यक्रम पूरा करने के लिए की जाय तो वह आत्म-रक्षा के लिए की गई समझी जायगी। यदि सभा कोई दैनिक-कार्यक्रम पूरा करने के लिए नहीं बल्कि गिरफ्तार होने और सजा पाने के लिए की गई हो तो वह उग्र-स्वरूप की सभा समझी जायगी।

जब महासमिति ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रस्ताव पास किया तो मध्यस्थ लोगों में,दिल्ली में हलचल मच गई। ये सज्जन कांग्रेस और सरकार के पारस्परिक-समझौते की तो आशा छोड़ बैठे थे, पर साथ ही गांधीजी की गिरफ्तारी की विपद को बचाना चाहते थे। यदि महासमिति अब भी सामूहिक सत्याग्रह को अपना अन्तिम लक्ष्य और व्यक्तिगत सत्याग्रह को तुरन्त शुरू किया जाने वाला कार्यक्रम न बनाती तो सम्भव था सरकार कोई कार्रवाई न करती। उधर गांधीजी के विरुद्ध यह आवाज उठी कि उन्होंने आन्दोलन को बिलकुल ठण्डा कर दिया। पण्डित मोतीलाल नेहरू और लाला लाजपतराय ने जेल के भीतर से लम्बे-लम्बे पत्र लिखे। उन्होंने गांधीजी को किसी एक स्थान के पाप के कारण सारे देश को दण्ड देने के लिए आड़े हाथों लिया। जब महासमिति की बाकायदा बैठक हुई तो गांधीजी पर चारों ओर से बौछारें पड़ने लगीं। आन्दोलन से पीछे हटने और बारडोली के प्रस्तावों के लिए उन्हें आड़े हाथों लिया गया। बङ्गाल और महाराष्ट्र तो गांधीजी पर टूट पड़े। व्यक्तिगत-सत्याग्रह क्यों न जारी रक्खा जाय? चाहे कुछ भी हो, बङ्गाल तो चौकीदारी टैक्स देने से

रहा। बाबू हरदयाल नाग जैसे गांधीभक्त ने बगावत का झण्डा खड़ा किया। सत्याग्रही खद्दर क्यों पहनें ? बारडोली के प्रस्तावों की एक-एक सतर की कड़ी आलोचना की गई। महासमिति की बैठक में डॉ० मुन्जे ने गांधीजी के विरुद्ध निंदा का प्रस्ताव पेश किया और कुछ सज्जनों ने भाषणों द्वारा उनका समर्थन भी किया। पर राय लेने के वक्त केवल उन्हीं सज्जनों ने प्रस्ताव के लिए मत दिये जो गांधीजी के विरुद्ध बोले थे। गांधीजी ने इस प्रस्ताव के विरोध में किसी को बोलने की अनुमति न दी। तूफान आया और निकल गया, और गांधीजी उसी प्रकार पर्वत की भांति अचल रहे।

गांधीजी की गिरफ्तारी

पांसा पड़ चुका था। अब गांधीजी को धर दबोचने की सरकार की बारी थी। कोई भी सरकार देश में किसी नेता पर उस समय हमला नहीं करती जब उसकी लोक-प्रियता बढ़ी हुई हो। वह सब्र के साथ अपना अवसर देखती रहती है और जब सेना पीछे हटने लगती है तो दुश्मन अपने पूरे वेग के साथ आ टूटता है। १३ मार्च को गांधीजी गिरफ्तार कर लिये गये, यद्यपि उनकी गिरफ्तारी का निश्चय फरवरी के अन्तिम सप्ताह में ही कर लिया गया था। गांधीजी को राजद्रोह के अपराध में सेशन सुपुर्द कर दिया गया।

यह 'ऐतिहासिक मुकदमा' १८ मार्च को अहमदाबाद में आरम्भ हुआ। सरोजिनी देवी ने एक छोटी-सी पुस्तक की भूमिका में लिखा है, "जिस समय गांधीजी की कृश, शान्त और अजेय-देह ने अपने भक्त, शिष्य और सहबन्दी-शङ्करलाल बैंक के साथ अदालत में प्रवेश किया तो कानून की निगाह में इस कैदी और अपराधी के सम्मान के लिए सब एक साथ उठ खड़े हुए।" कानूनी अहलकारों ने तीन लेख छांटे जिनके लिए गांधीजी पर मुकदमा चलाया गया था—(१) 'राजभक्ति में दखल', (२) 'समस्या और उसका हल', (३) 'गर्जन-तर्जन'। ज्यों ही अभियोग पढ़कर सुनाये गये, गांधीजी ने अपना अपराध स्वीकार किया। श्री बैंकर ने भी अपने को अपराधी कबूल किया। इसके बाद गांधीजी ने अपना लिखित बयान पढ़ा, जो निम्न प्रकार है—

"यह जो मुकदमा चलाया जारहा है वह इंग्लैण्ड की जनता को सन्तुष्ट करने के लिए। इसलिए मेरा कर्तव्य है कि मैं इंग्लैण्ड की और भारतीय जनता को यह बता दूं कि मैं कट्टर सहयोगी से पक्का राजद्रोही और असहयोगी कैसे बन गया। मैं अदालत को भी बताऊंगा कि मैं इस सरकार के प्रति, जो देश में कानूनन कायम हुई है, राजद्रोहपूर्ण आचरण करने के लिए अपने आपको दोषी क्यों मानता हूं।

"मेरे सार्वजनिक जीवन का आरम्भ १८९३ में दक्षिण-अफ्रीका में विषम परिस्थिति में हुआ। उस देश के ब्रिटिश अधिकारियों के साथ मेरा पहला समागम कुछ अच्छा न रहा। मुझे पता लगा कि एक मनुष्य और एक हिन्दुस्तानी के नाते वहां मेरा कोई अधिकार नहीं है। मैंने यह भी पता लगा लिया कि मनुष्य के नाते मेरा कोई अधिकार इसलिए नहीं है, क्योंकि मैं हिन्दुस्तानी हूं।

"पर मैंने हिम्मत न हारी। मैंने समझा था कि भारतीयों के साथ जो यह दुर्व्यवहार किया जा रहा है यह दोष एक अच्छी-खासी शासन-व्यवस्था में यों ही आकर घुस गया है। मैंने खुद ही दिल से सरकार के साथ सहयोग किया। जब कभी मैंने सरकार में कोई दोष पाया तो मैंने उसकी खूब आलोचना की, पर मैंने उसके विनाश की इच्छा कभी नहीं की।

"जब १८९० में बोअरों की चुनौती ने सारे ब्रिटिश-साम्राज्य को महान विपद में डाल दिया, उस अवसर पर मैंने उसे अपनी सेवायें भेंट कीं—घायलों के लिए एक स्वयंसेवक-दल बनाया और लेडी स्मिथ की रक्षा के लिए जो कुछ लड़ाइयां लड़ी गईं, । उनमें काम किया इसी प्रकार जब

१९०६ में जूलू लोगों ने 'विद्रोह' किया तो मैंने स्ट्रेचर पर घायलों को ले जानेवाला दल संगठित किया और जबतक 'विद्रोह' दब न गया, बराबर काम करता रहा। इन दोनों अवसरों पर मुझे पदक मिले और खरीतों तक में मेरा जिक्र किया गया। दक्षिण अफ्रीका में मैंने जो काम किया उसके लिए लार्ड हार्डिंग ने मुझे कैसर-ए-हिन्द पदक दिया। जब १९१४ में इंग्लैंड और जर्मनी में युद्ध छिड़ गया तो मैंने लन्दन में हिन्दुस्तानियों का एक स्वयंसेवक-दल बनाया। इस दल में मुख्यतः विद्यार्थी थे। अधिकारियों ने इस दल के काम की सराहना की। जब १९१७ में लार्ड चेम्सफोर्ड ने दिल्ली की युद्ध-परिषद में खास तौर से अपील की तो मैंने खेड़ा में रंगरूट भर्ती करते हुए अपने स्वास्थ्य तक को जोखिम में डाल दिया। मुझे इसमें सफलता मिल ही रही थी कि युद्ध बन्द हो गया और आज्ञा हुई कि अब और रंगरूट नहीं चाहिए। इन सारे सेवा-कार्यों में मेरा एकमात्र यही विश्वास रहा कि इस प्रकार मैं साम्राज्य में अपने देशवासियों के लिए बराबरी का दर्जा हासिल कर सकूंगा।

"पहला धक्का मुझे रौलट-ऐक्ट ने दिया। यह कानून जनता की वास्तविक स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिए बनाया गया था। मुझे ऐसा महसूस हुआ कि इस कानून के खिलाफ मुझे जोर का आन्दोलन करना चाहिए। इसके बाद पंजाब के भीषण कांड का नम्बर आया। इसका आरम्भ जलियांवाला बाग के कत्ले-आम से और अन्त पेट के बल रेंगाने, खुले आम बेंत लगाने और दूसरे बयान से बाहर अपमानजनक कारनामों के साथ हुआ। मुझे यह भी पता लग गया कि प्रधान-मन्त्री ने भारत के मुसलमानों को जो आश्वासन दिया कि तुर्की और इस्लाम के तीर्थ स्थानों की पवित्रता बदस्तूर रक्खी जायगी, वह कोरा आश्वासन ही रहेगा।

"वैसे १९१९ की अमृतसर-कांग्रेस में अनेक मित्रों ने मुझे सावधान किया और मेरी नीति की सार्थकता में संदेह प्रकट किया, पर फिर भी मैं इस विश्वास पर अड़ा रहा कि भारतीय मुसलमानों के साथ प्रधान-मंत्री ने जो वादा किया है उसका पालन किया जायगा, पंजाब के जख्मों को भरा जायगा और लाख नाकाफी और असन्तोष-जनक होने पर भी सुधार, भारत के जीवन में एक नई आशा को जन्म देंगे। फलतः मैं सहयोग और मांटगु-चेम्सफोर्ड-सुधारों को सफल बनाने की बात पर अड़ा रहा।

"पर मेरी सारी आशायें धूल में मिल गईं। खिलाफत-सम्बन्धी वचन पूरा किया जानेवाला नहीं था। पंजाब-सम्बन्धी अपराध पर लीपापोती कर दी गई थी। इधर अधपेट भूखे रहनेवाले भारतवासी धीरे-धीरे निर्जीव होते जा रहे हैं। वे यह नहीं समझते कि उन्हें जो थोड़ा-सा सुख-ऐश्वर्य मिल जाता है वह विदेशी शोषक की दलाली करने के कारण है और सारा नफा और सारी दलाली जनता के खून से निकाली जाती है। वे यह नहीं जानते कि ब्रिटिश-भारत में जो सरकार कानूनन कायम है वह इसी जनता के धन-शोषण के लिए चलाई जाती है। चाहे जितने झूठे-सच्चे तर्क से काम लिया जाय, हिन्दुस्तान के साथ चाहे जैसी चालाकी की जाय, असंख्य गांवों में जो नर-कंकाल दिखाई पड़ रहे हैं उनकी प्रत्यक्ष गवाही को किसी तरह नहीं झुठलाया जा सकता। यदि हमारा कोई ईश्वर है, तो मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि इतिहास में जो यह अपने ढंग का निराला अपराध किया जा रहा है उसकी जवाबदेही इंग्लैंड की जनता और हिन्दुस्तान के नगरवासियों को करनी होगी। इस देश में कानून का उपयोग विदेशी धन-शोषकों के सुभीते के लिए किया गया है। पंजाब के फौजी कानून के सम्बन्ध में मैंने जो निष्पक्ष जांच की है, उससे मैं इस नतीजे पर पहुंचता हूं कि १०० पीछे ९५ मामलों में सजा के फैसले बिलकुल खराब रहे। हिन्दुस्तान के राजनैतिक

मुकदमों का तजुर्बा मुझे बताता है कि दस पीछे नौ दण्डित आदमी सोलह आने निर्दोष थे। इन आदमियों का केवल इतना ही अपराध था कि वे अपने देश से प्रेम करते थे। १०० पीछे ९९ मामलों में देखा गया है कि हिन्दुस्तान की अदालतों में हिन्दुस्तानी को यूरोपियन के मुकाबले में न्याय नहीं मिलता। मैं अतिशयोक्ति से काम नहीं ले रहा हूं। जिस-जिस भारतवासी को इस तरह के मामलों से काम पड़ा है उसका यही तजुर्बा है। मेरी राय में कानून का दुरुपयोग, जानबूझ कर सही या बिना जानेबूझे सही, धन-शोषक के लाभ के लिए किया जाता है।

"सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात यह है कि जिन अंग्रेजों और उनके हिन्दुस्तानी सहयोगियों के जिम्मे इस देश का शासन-भार है वे खुद यह नहीं जानते कि मैंने जिस अपराध का वर्णन किया है उसमें उनका हाथ है। मैं अच्छी तरह जानता हूं कि बहुत-से अंग्रेज और हिन्दुस्तानी अधिकारी हृदय से इस बात में विश्वास रखते हैं कि वे जिस शासन-व्यवस्था को अमल में ला रहे हैं वह संसार की बढ़िया-से-बढ़िया शासन-व्यवस्थाओं में से है और हिन्दुस्तान धीरे-धीरे परन्तु निश्चित-रूप से उन्नति कर रहा है। वे यह नहीं जानते कि कैसे सूक्ष्म परन्तु कारामद ढंग से आतंक का सिक्का बैठाया गया है और किस तरह एक ओर शक्ति का संगठित प्रदर्शन करके और दूसरी ओर आत्म-रक्षा या बदले में प्रहार करने की तमाम शक्तियां छीनकर लोगों को निःसत्व और पौरुषहीन बना दिया गया है। इससे लोगों को अब इस प्रकार रहने की टेव पड़ गई है कि जिससे शासक-वर्ग का अज्ञान और आत्म-प्रवंचना और भी बढ़ गई है। जिस १२४ ए धारा के अंतर्गत मुझ पर मुकदमा चलाया गया है वह नागरिकों की आजादी का अपहरण करने में ताजीरात हिंद की धाराओं में सिरताज है। प्रेम न तो उत्पन्न किया जा सकता है न कायदे-कानून के मातहत रह सकता है। यदि किसी आदमी के हृदय में किसी दूसरे आदमी के प्रति प्रेम के भाव न हों, तो जबतक वह हिंसा-पूर्ण कार्य या विचार या प्रेरणा न करे तबतक उसे अपने अप्रीति के भाव प्रकट करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। पर श्रीयुत बैंकर पर और मुझपर जिस धारा का प्रयोग किया गया है उसके अनुसार अप्रीति फैलाना अपराध है। इस धारा के अंतर्गत चलाये गये कुछ मामलों का मैंने अध्ययन किया है, और मैं जानता हूं कि इस धारा के अनुसार देश के कई परमप्रिय देश-भक्तों को सजा दी गई है। इसलिए मुझपर जो इस धारा के अनुसार मामला चलाया गया है उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ। मैंने संक्षेप में अपनी अप्रीति के कारणों का दिग्दर्शन करा दिया है। किसी शासक के प्रति मेरे मन में किसी प्रकार का दुर्भाव नहीं है, और स्वयं सम्राट् के व्यक्तित्व के प्रति तो मुझ में अप्रीति का भाव बिलकुल है ही नहीं। परन्तु जिस शासन-व्यवस्था ने इस देश को अन्य सारी शासन-व्यवस्थाओं की अपेक्षा अधिक हानि पहुंचाई है उसके प्रति अप्रीति के भाव रखना मैं सद्गुण समझता हूँ। अंग्रेजों की अमलदारी में हिन्दुस्तान में पुरुषत्व का अन्य अमलदारियों की अपेक्षा अधिक अभाव हो गया है। जब मेरी ऐसी धारणा है तो इस शासन-व्यवस्था के प्रति प्रेम के भाव रखना मैं पाप समझता हूँ और इसलिए मैंने अपने इन लेखों में, जो मेरे खिलाफ प्रमाण के तौर पर पेश किये गये हैं, जो कुछ लिखा है उसे लिख पाना अपना परम सौभाग्य समझता हूँ।

"वास्तव में मेरा विश्वास तो यह है कि इंग्लैण्ड और भारत जिस अ-प्राकृतिक रूप से रह रहे हैं, मैंने असहयोग के द्वारा उससे उद्धार पाने का मार्ग बताकर दोनों की एक सेवा की है। मेरी विनम्र सम्मति में जिस प्रकार अच्छाई से सहयोग करना कर्तव्य है उसी प्रकार बुराई से असहयोग करना भी कर्तव्य है। इससे पहले बुराई करनेवाले को क्षति पहुंचाने के लिए असहयोग को हिंसात्मक ढंग से प्रकट किया जाता रहा है। पर मैं अपने देशवासियों को यह बताने

की चेष्टा कर रहा हूँ कि हिंसा बुराई को कायम रखती है, इसलिए बुराई की जड़ काटने के लिए यह आवश्यक है कि हिंसा से बिलकुल अलग रहें। अहिंसा का मतलब यह है कि बुराई से असहयोग करने के लिए जो कुछ भी दण्ड मिले उसे स्वीकार कर लें। इसलिए मैं यहां उस कार्य के लिए जो कानून की निगाह में जान-बूझकर किया गया अपराध है और जो मेरी निगाह में किसी नागरिक का सबसे बड़ा कर्तव्य है, सबसे बड़ा दण्ड चाहता हूँ और उसे सहर्ष ग्रहण करने को तैयार हूँ। आपके जज और असेसरों के सामने सिर्फ दो ही मार्ग हैं। यदि आप लोग हृदय से समझते हैं कि जिस कानून का प्रयोग करने के लिए आपसे कहा गया है, वह बुरा है और मैं निर्दोष हूं, तो आप लोग अपने-अपने पदों से इस्तीफा दे दें और बुराई से अपना सम्बन्ध अलग कर लें; अथवा यदि आपका विश्वास हो कि जिस कानून का प्रयोग करने में आप सहायता दे रहे हैं वह वास्तव में इस देश की जनता के मंगल के लिए है और मेरा आचरण लोगों के अहित के लिए है, तो मुझे बड़े-से-बड़ा दण्ड दें।"

जज ने फैसले में लोकमान्य तिलक का दृष्टान्त देते हुए गांधीजी को छः वर्ष की सजा दी और श्री शंकरलाल बैंकर को एक वर्ष की सजा और १०००) जुर्माने का दण्ड हुआ। जुर्माना न देने पर छः मास और। गांधीजी ने गिने-चुने शब्दों में उत्तर दिया, जिसमें उन्होंने कहा कि यह मेरे लिए परम-सौभाग्य की बात है कि मेरा नाम लोकमान्य तिलक के नाम के साथ जोड़ा गया। उन्होंने जज को सजा देने के मामले में विचारशीलता से काम लेने के लिए और उसकी शिष्टता के लिए धन्यवाद दिया। अदालत में उपस्थित लोगों ने गांधीजी को विदा किया। बहुतों की आंखों में आंसू भी भरे हुए थे।

इस प्रकार गांधीजी को दण्ड देकर राष्ट्र की गोद में से हटा दिया गया। यह बात अचानक हुई हो, सो नहीं। स्वयं गांधीजी ने ९ मार्च को 'यंगइण्डिया' में "यदि मैं गिरफ्तार हो गया" शीर्षक लेख में लिखा था कि चौरी-चौरा के मामले में श्री कुंजरू की रिपोर्ट निश्चयात्मक है और बरेली से कांग्रेस मंत्री की रिपोर्ट से भी यह बात जाहिर है कि वैसे स्वयं-सेवकों का जुलूस निकालने में चाहे हिंसा न हो पर हिंसा की प्रवृत्ति अवश्य मौजूद है। फलतः उन्होंने सत्याग्रह बन्द करने का आदेश दिया और लिखा कि जैसी हालत है उसमें सत्याग्रह 'सत्याग्रह' नहीं 'दुराग्रह' होगा। पर गांधीजी की समझ में सत्याग्रह के विरुद्ध उस अंग्रेज-जाति का दृष्टिकोण न आया, जो सशस्त्र-विद्रोह तक की सराहना करती आई है। अंग्रेज की दृष्टि में सत्याग्रह अनैतिक-सी चीज दिखाई पड़ी। यदि गांधीजी की गिरफ्तारी से सारे देश में तूफान आ जाता तो बड़े दुःख की बात होती। गांधीजी की इच्छा थी कि सारे कांग्रेस-कार्यकर्त्ता यह दिखा दें कि सरकार की आशंका निर्मूल है; न हड़तालें हों, न शोरगुल के साथ प्रदर्शन किये जायं, न जुलूस निकाले जायं। यदि बारडोली में निश्चित किया गया कार्यक्रम पूरा किया जायगा तो उससे वे तो आजाद हो ही जायेंगे, स्वराज्य भी मिल जायगा। गांधीजी ने इन्हीं शब्दों के साथ गिरफ्तारी का आह्वान किया था, क्योंकि उन्होंने समझ लिया कि इससे उनके दैवी-शक्ति सम्पन्न होने के सम्बन्ध में जो धारणा फैली हुई है, उसका अन्त हो जायगा। यह खयाल भी दूर हो जायगा कि लोगों ने असहयोग-आन्दोलन उनके प्रभाव में आकर अपनाया था, हमारी स्वराज्य की योग्यता साबित हो जायगी, और साथ ही उन्हें शान्ति और शारीरिक विश्राम मिल जायगा, जिसके सम्भवतः वे अधिकारी थे। देश ने भी उनकी इच्छा का पालन किया—उनकी गिरफ्तारी और सजा पर चारों ओर शान्ति कायम रही।

जेल जाने के बाद

गांधीजी की सजा के बाद तीन महीने तक कार्य-समिति काम-काज को ठीक-ठाक करती रही।

खद्दर-विभाग सेठ जमनालाल बजाज के जिम्मे कर दिया गया और ५ लाख रुपये उनके हाथ में रखने का निश्चय किया गया। मलाबार में कष्ट-निवारण के लिए कमिटी ने ८४,०००) की मंजूरी दी। सेठ जमनालाल बजाज ने वकीलों के भरण-पोषण के लिए उदारतापूर्वक एक लाख रुपया और भी दिया। खद्दर के अनिवार्य 'उपयोग' का अर्थ 'पहनना' लगाया गया। असहयोगी वकीलों को एक बार फिर चेतावनी दी गई कि वे मुकदमे हाथ में न लें, और असहयोगियों को आदेश दिया गया कि वे अपनी पैरवी न करें। एक कमिटी बनाई गई, जिसके जिम्मे इन बातों की जांच और रिपोर्ट पेश करने का काम हुआ—(१) मोपला-विद्रोह होने के कारण; (२) विद्रोह ने क्या-क्या रूप धारण किया; (३) सरकार ने विद्रोह को दबाने के लिए फौजी-कानून आदि किन-किन उपायों से काम लिया; (४) मोपलों-द्वारा बलपूर्वक मुसलमान बनाया जाना; (५)सम्पत्ति का विध्वंस;(६)हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य स्थापित कराना, यदि आवश्यक हो तो किन-किन उपायों से काम लिया जाय। मध्यप्रान्त (मराठी) की कांग्रेस-कमिटी ने असहयोग कार्यक्रम में कुछ संशोधन पेश किये। अस्पृश्यता-निवारण-संबन्धी योजना बनाने के लिए एक कमिटी नियुक्त की। ७, ८ और ९ जून १९२२ को लखनऊ में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें ऊपर लिखी और अन्य सिफारिशों पर गौर किया गया। असल में महासमिति का काम था असहयोग, सविनय-भंग और सत्याग्रह के सिद्धान्त और व्यवहार का मूल्य फिर से निश्चित करना और उनके विज्ञान और कला का सिंहावलोकन करना। देशबन्धु दास और विट्ठलभाई पटेल जैसे चोटी के नेता, जिन्होंने बहुत-कुछ संकोच के बाद अपनाया और बाद को उसकी जोरदार पुष्टि की थी, मूल में कुछ परिवर्तन करना चाहते थे। ये ऐसा असहयोग चाहते थे जिसका प्रवेश खास नौकरशाही के गढ़ में हो सके। तदनुसार महासमिति तथा गांधीजी ने शान्ति और सत्य के संदेश के द्वारा मानव-समाज की जो सेवा की थी उसकी सराहना की, अहिंसात्मक असहयोग में अपनी आस्था प्रकट की और कार्य-समिति का वह प्रस्ताव पास किया जिसे पण्डित मोतीलाल नेहरू ने, जो हाल ही में जेलसे छूट कर आये थे, पेश किया था और जिसमें मालवीयजी ने संशोधन किया था। इस प्रस्ताव में सरकार की दमन-नीति को धिक्कारा गया और इस नीति का मुकाबला करने के लिए किसी-न-किसी रूप में सत्याग्रह या और इसी प्रकार का कोई उपाय अपनाया जाय, इस बात को अगस्त के लिए स्थगित कर दिया गया। साथ ही सभापति से अनुरोध किया गया कि कुछ सज्जनों को देश का दौरा करके वर्तमान हालत की रिपोर्ट आगामी कमिटी में पेश करने के लिए नियुक्त किया जाय। तदनुसार सभापति ने पण्डित मोतीलाल नेहरू, डा० अन्सारी, श्रीयुत विट्ठलभाई पटेल, सेठ जमनालाल बजाज, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और सेठ छोटानी को मुकर्रर किया। हकीम अजमलखां को कमिटी का अध्यक्ष बनाया गया। सेठ जमनालाल ने नियुक्ति स्वीकार न की और उनके स्थान पर श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर को नियुक्त किया गया। सेठ छोटानी शरीक न हो सके।

सत्याग्रह-कमिटी की कार्रवाई और उसकी रिपोर्ट का जिक्र करने से पहले हमें मार्च महीने को एकबार फिर देख लेना चाहिए। मि० माण्टेगु ने तुर्की से की गई सेवर्स की सन्धि के सम्बन्ध में एक सरकारी कागज का भेद खोल दिया था, इसलिए उन्हें २३ मार्च १९२२ को मन्त्रि-मण्डल से इस्तीफा देना पड़ा। उस समय तुर्की ने यूनानियों को करारी हार दी थी। गिरफ्तारियों और सजाओंका चारों तरफ दौर-दौरा था। पंजाब में लारेंस की मूर्ति जनता के क्रोध का भाजन बन गई थी। आन्ध्र में गोदावरी में राष्ट्रीय झण्डा फहराने से नौकरशाही भड़क उठी थी और करबन्दी-आन्दोलन भी मौजूद था ही। कानून का शासन १०८ और १४४ धाराओं का शासन रह गया था। सरकारी कार्यकारिणी के भारतीय सदस्य अपनी लाचारी प्रकट करते थे—क्योंकि कलक्टर (डिप्टी-कमिश्नर)

ही सर्वेसर्वा बने हुए थे। न्याय-विभाग को अपील करने से कुछ होने की सम्भावना थी, पर असहयोगी अपील को तैयार न होते थे। लोगों के बिगड़ उठने का एक कारण प्रधान-मन्त्री लायड जार्ज की 'स्टील फ्रेम स्पीच' थी। यह इसलिए दी गई थी कि ओडानल-सर्कुलर नामक एक गश्ती-पत्र सारी प्रान्तीय सरकारों में घुमाया गया था। उनसे ऊंचे पदों पर भारतीय रखने के प्रश्न पर राय पूछी गई थी, जिससे भारत-सरकार सारी स्थिति पर विचार कर सके। यह बात कहीं खुल गई और भारत और इंग्लैण्ड के अफसर बिगड़ खड़े हुए। उन्हें शान्त करने के लिए लायड जार्ज ने भाषण में कहा कि भारत की सिविल-सर्विस सारे शासन-तन्त्र का फौलादी ढांचा है। उन्होंने यह भी कहा कि मेरी समझ में तो ऐसा कोई समय न आयगा जब भारत ब्रिटिश-सिविल-सर्विस की सहायता और पथ-प्रदर्शन के बगैर काम चला सकेगा। ब्रिटिश-सिविल-सर्विस का इसी प्रकार सहायता प्रदान करते रहना ब्रिटेन की भारत-स्थित बड़ी भारी जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए आवश्यक है। ये जो सुधार जारी किये गये हैं सो उस जिम्मेदारी से छुटकारा पाने के लिए नहीं, बल्कि उसमें भारतवासियों को हिस्सेदार बनाने के लिए किये गये हैं। परन्तु वाइसराय ने भारत में असन्तोष को शान्त करने के लिए लायड जार्ज से यह भी कहलवा लिया कि उनके इस भाषण का पहले के दिये हुए आश्वासनों और घोषणाओं पर कोई असर न होगा। लेकिन एक के बाद दूसरी घटनायें होती चली गई जिनसे उत्तेजना बराबर कायम रही।

बोरसद-सत्याग्रह

अब हमें ऐसे सत्याग्रह का जिक्र करना है जिसके साथ बोरसद का नाम जुड़ा हुआ है। यह सत्याग्रह १९२२ में बोरसद में हुआ। कुछ दिनों से बोरसद-ताल्लुका में देवर बाबा नाम का एक छटा हुआ डाकू उपद्रव कर रहा था। उधर एक मुसलमान डाकू उठ खड़ा हुआ और देवर बाबा के मुकाबले में छापे मारने शुरू कर दिये। पुलिस लाचार थी। सरकार ने अपना सबसे बढ़िया अफसर इस काम पर नियुक्त किया, पर उसे भी सफलता न हुई। बड़ौदा-पुलिस भी उपद्रवियों का पता लगाना चाहती थी, क्योंकि बड़ौदा रियासत बोरसद के बगल में ही है। अन्त में ताल्लुके और रियासत के पुलिस और रेवेन्यू अफसरों ने मिल कर अपराधियों का पता लगाने की एक तरकीब सोच निकाली। उन्होंने देवर बाबा को पकड़ने के लिए मुसलमान डाकू को मिला लिया। मुसलमान डाकू इस शर्त पर राजी हुआ कि उसके पास हथियार रहें और ४-५ सशस्त्र सिपाही दिये जायं। अधिकारी राजी हो गये। चोर को पकड़ने के लिए चोर मुकर्रर किया गया। पर पुलिस के इस नये संगी ने अपने आदमियों और हथियारों का उपयोग तहसील में और भी धूम-धड़ाके के साथ लूटमार करने में किया।

अपराधों की संख्या बढ़ी और अन्त में सरकार ने सोचा कि इन अपराधों में गांववालों की भी साजिश है। तहसील में दण्ड-स्वरूप अतिरिक्त-पुलिस बैठाई और एक भारी ताजीरी-कर भी लोगों पर लगा दिया और वह कर हमेशा की बेरहमी के साथ वसूल किया जाने लगा। इधर गुजरात के नेताओं को पुलिस और मुसलमान डाकू के समझौते का पता चला और श्री वल्लभभाई पटेल ने इस मामले में सरकार को चुनौती दी। वे बोरसद गये और लोगों से कर न देने को कहा। जिन लोगों को डाकुओं ने घायल किया था उनके शरीर से गोलियां निकाली गई तो साबित हुआ कि गोलियां सरकारी हैं। अब कोई सन्देह न रहा कि डाकुओं ने सरकारी गोलियां और सरकारी रायफलों का उपयोग किया है। श्री वल्लभभाई पटेल ने २०० स्वयंसेवक रात दिन चौकी-पहरा देने के लिए तैनात किये। लोग बाग कई हफ्तों से शाम से ही घरों के दरवाजे बन्द कर लेते थे। श्री पटेल ने उन्हें दरवाजे खुले रखने को राजी किया। गांववालों ने फोटो की तसवीरों द्वारा प्रमाणित कर दिया कि

ताल्लुके में जो ताजीरी पुलिस नियुक्त की गई है उसके आदमी भीतर से स्वयं दरवाजे बन्द कर देते हैं और बाहर से भी ताले लगा देते हैं, जिससे डाकुओं को भ्रम हो जाय कि घर खाली हैं। बाहर जहां जरा-सा शोर हुआ कि पुलिसवाले अपनी चारपाइयों के नीचे घुस जाते थे। फोटो की तसवीरों के द्वारा ये सारी बातें बिलकुल सच्ची साबित हुईं। अब सरकार के आगे दो मार्ग थे। या तो वह इस प्रकार के अभियोग लगानेवालों पर मुकदमा चलाती, या चुप्पी साधकर अपने-आपको कसूरवार साबित करती। जब इस प्रकार के अभियोग लगाये गये, तो बड़ौदा-पुलिस गांवों से झटपट रियासत में हटा ली गई। पर ब्रिटिश पुलिस उसी प्रकार बनी रही और ताजीरी-कर के लिए सामान कुर्क करती रही। इसी समय बम्बई के गवर्नर लॉर्ड लायड भारत से चले गये और उनका स्थान सर लेसली विल्सन ने लिया। जब उन्होंने बोरसद की कथा सुनी तो वहां तत्काल होम-मेम्बर को भेजा, जिसने सारी बातों की तसदीक कराई और उसी समय पुलिस हटा ली गई। इधर देवर बाबा वल्लभभाई और स्वयंसेवकों के पहुंचते ही वहां से गायब हो गया था।

गुरु-का-बाग

इसके बाद वर्ष में दो महत्त्वपूर्ण घटनायें हुईं। एक सत्याग्रह-कमिटी का गर्मियों में देश में दौरा करना, और दूसरी गुरु-का-बाग की घटना जो अन्त में हुई। शिरोमणि-गुरुद्वारा प्रबन्धक-कमिटी सिक्खों का सुधारक-दल था। ये लोग अपने-आपको अकाली कहते थे। जो सनातनी सिक्ख थे वे अपने-आपको उदासी कहते थे और गुरुद्वारों के महन्त इन्हींका पक्ष करते थे। सुधारक सिक्ख सत्याग्रह करके गुरुद्वारों पर दखल करना चाहते थे। कुछ अकालियों ने गुरु-का-बाग के गुरुद्वारे की जमीन का पेड़ काट डाला। महन्त ने पुलिस से शिकायत की। पुलिस ने रक्षा का भार लिया। अब सिक्खों के जत्थे अहिंसा का व्रत लिये पुलिस की टुकड़ियों के बीच में से निकलते और उन्हें गैर-कानूनी समुदाय की हैसियत से खूब पीटा जाता। देश में इस दृश्य से सनसनी मच गई। यह अहिंसा का पाठ था, जो भारत की वह वीर जाति पढ़ रही थी जिसने यूरोप में जर्मनों से मोर्चे लिये थे और अंग्रेजों के निमित्त विजय प्राप्त की थी।

अकालियों के इस आत्म-नियंत्रण की प्रशंसा सरकार ने भी खुले दिल से की। दस वर्ष बाद भारतीय राजनीति में जिस लाठी-चार्ज को इतना प्रमुख भाग मिलनेवाला था उसकी कला में गुरु-का-बाग में ही प्रवीणता प्राप्त की गई थी। अन्त में १९२२ के नवम्बर में सर गंगाराम नामक एक सज्जन ने वह जगह महन्त से पट्टे पर ले ली और अकालियों के पेड़ काटने पर कोई ऐतराज न किया।

सत्याग्रह-कमिटी ने देश-भर का दौरा किया। लोगों का उत्साह भंग न हुआ था। कमिटी के सदस्य जहां कहीं गये, उनका जोरदार स्वागत हुआ। कमिटी ने अपना काम समाप्त करके रिपोर्ट पेश की। आरम्भ में महासमिति इसकी चर्चा १५ अगस्त की बैठक में करना चाहती थी; पर ऐसा न हो सका और कुछ दिनों बाद कलकत्ते में जब देशबन्धु दास की दूसरी कन्या के विवाह के अवसर पर कुछ लोग एकत्र हुए तो खानगी तौर से इसकी चर्चा की गई। कहते हैं कि इस अवसर पर पण्डित मोतीलाल नेहरू को सत्याग्रह के स्थान पर कौंसिल-प्रवेश के लिए राजी कर लिया गया। कुछ समय बाद जब रिपोर्ट प्रकाशित हुई तो पता चला कि सब-के-सब सदस्यों के सामने यह प्रश्न था कि कौंसिल के लिए खड़ा होना चाहिए या नहीं? खिलाफत-कमिटी ने भी इसी ढंग की एक कमिटी कायम की, जिसने अपनी रिपोर्ट में कौंसिलों का बहिष्कार जारी रखने की सिफारिश की। सत्याग्रह-कमिटी की रिपोर्ट तैयार करने में जो-जो शक्तियां काम कर रही थीं उनके सम्बन्ध में विशेष

कहने की कोई आवश्यकता नहीं है। हां, इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि कई वाजिब शक्तियां काम कर रही थीं। सत्याग्रह-कमिटी की सिफारिशें नीचे दी जाती हैं—

१. सत्याग्रह—देश फिलहाल छोटे पैमाने पर या सामूहिक-सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है, जैसे किसी खास कानून का भंग या किसी खास कर की गैर-अदायगी। हम सिफारिश करते हैं कि प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को अधिकार दे दिया जाय कि यदि महासमिति की सत्याग्रह-सम्बन्धी शर्तें पूरी होती हों तो वे अपनी जिम्मेदारी पर छोटे पैमाने पर सामूहिक-सत्याग्रह की मंजूरी दे सकें।

२. कौंसिल-प्रवेश—(अ) कांग्रेस और खिलाफत अपने गया के अधिवेशनों में यह बात घोषित कर दे कि चूंकि कौंसिलों ने अपने पहले सत्र (सेशन) के द्वारा यह दिखा दिया है कि वे खिलाफत और पंजाब-सम्बन्धी ज्यादतियों की दादरसी रुकावट बन रही हैं, स्वराज्य की शीघ्र-प्राप्ति में बाधक हो रही हैं, और जनता के लिए बड़ी कष्ट-दायिनी साबित हुई हैं, इसलिए अहिंसात्मक असहयोग के सिद्धान्तों का कड़ाई के साथ पालन करते हुए, जिससे भविष्य में ऐसी बुराइयां न उत्पन्न हों, निम्न-लिखित उपायों से काम लेना चाहिए—

(१) असहयोगियों को उम्मीदवारी के लिए पंजाब और खिलाफत की ज्यादतियों की दादरसी और तत्काल स्वराज्य-प्राप्ति के उद्देश्य से खड़ा होना चाहिए और अधिक-से-अधिक संख्या में पहुंचने की कोशिश करनी चाहिए।

(२) यदि असहयोगी इतनी अधिक संख्या में पहुंच जायं कि उनके बगैर कोरम पूरा न हो सके तो उन्हें कौंसिल-भवन में जाकर बैठने के बजाय एक साथ वहां से चले आना चाहिए और फिर किसी बैठक में शरीक न होना चाहिए। बीच-बीच में वे कौंसिल में केवल इसलिए जायं कि उनके रिक्त स्थान पूरे न हो सकें।

(३) यदि असहयोगी इतनी संख्या में पहुंचें कि अधिक होने पर भी उनके बिना कोरम पूरा हो सकता हो, तो उन्हें हरेक सरकारी कार्रवाई का जिसमें बजट भी शामिल हो, विरोध करना चाहिए और केवल पंजाब, खिलाफत और स्वराज्य-सम्बन्धी प्रस्ताव पेश करने चाहिए।

(४) यदि असहयोगी अल्पसंख्या में पहुंचें तो उन्हें वही करना चाहिए जो नं० २ में बताया गया है, और इस प्रकार कौंसिल के बल को घटाना चाहिए।

नई कौंसिल का निर्वाचन १९२४ की जनवरी से पहले न होगा, इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि कांग्रेस का अधिवेशन १९२३ के दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह के बजाय पहले सप्ताह में हो, और यह मामला एक बार फिर उसमें पेश किया जाय जिससे निर्वाचन के सम्बन्ध में कांग्रेस अपना अंतिम वक्तव्य दे सके।

(हकीम अजमलखां, पं० मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल की सिफारिश)

(आ) कौंसिलों के बहिष्कार के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति में किसी प्रकार का परिवर्तन न होना चाहिए।

(डा० एम० ए० अंसारी, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर की सिफारिश)

३. स्थानिक संस्थायें—हमारी सिफारिश है कि स्थिति को साफ करने के लिए यह घोषणा करना वांछनीय है कि असहयोगी रचनात्मक कार्यक्रम को अमली शक्ल देने के लिए म्युनिसिपैलिटियों, जिला और लोकल बोर्डों की उम्मीदवारी के लिए खड़े हों, परन्तु असहयोगी सदस्यों के वहां आचरण के सम्बन्ध में अभी किसी खास ढंग के नियम-उपनियम न बनाये जायं। हां, यह जरूरी है कि वे प्रान्तीय और स्थानिक कांग्रेस-संस्थाओं के साथ मिल-जुल कर काम करें।

४. स्कूल-कालेजों का बहिष्कार—स्कूल-कालेजों के सम्बन्ध में हमारी सिफारिश है कि इस मामले में बारडोली के बहिष्कार-प्रस्ताव का पालन करना चाहिए और मौजूदा जोरदार प्रचार बन्द करके विद्यार्थियों को स्कूलों और कालेजों का बहिष्कार करने की सलाह न देनी चाहिए। जैसा कि प्रस्ताव में कहा गया है, हमें अपने राष्ट्रीय-विद्यालय इतने उत्तम बना देने चाहिए कि विद्यार्थी स्वयं ही सरकारी स्कूल-कालेजों से खिंचकर वहां चले आयें। हमें पिकेटिंग आदि उग्र उपायों का अवलम्बन न करना चाहिए।

५. अदालतों का बहिष्कार—पंचायतें स्थापित करने की कोशिश करनी चाहिए और इस ओर लोक-प्रवृत्ति जाग्रत करनी चाहिए।

हमारी यह भी सिफारिश है कि इस समय वकीलों पर जो प्रतिबंध लगे हुए हैं, वे उठा दिये जायं।

६. मजदूर-संगठन—नागपुर-कांग्रेस-द्वारा पास किया गया प्रस्ताव नं० ८ तत्काल अमल में लाना चाहिए।

७. आत्मरक्षा का अधिकार (अ) हमारी सिफारिश है कि कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने की स्वतन्त्रता सबको दी जाय। हां, जब कांग्रेस का काम कर रहे हों, या उसके सिलसिले में कोई अवसर उपस्थित हो, तो दूसरी बात है। पर इस बात का हमेशा खयाल रहे कि इससे खुल्लम-खुल्ला हिंसा की नौबत न आ जाय। धर्म के मामले में, स्त्रियों की रक्षा करने में, या लड़कों और पुरुषों पर अनुचित अत्याचार होने पर शारीरिक-बल का प्रयोग किसी हालत में मना नहीं है।

(श्री विट्ठलभाई पटेल को छोड़कर सबकी सहमति)

(आ) असहयोगियों को कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने का अधिकार रहना चाहिए; शर्त सिर्फ यही रहनी चाहिए कि इससे सामूहिक हिंसा की नौबत न आ जाय। और किसी प्रकार की शर्त न होनी चाहिए।

(श्री विट्ठलभाई पटेल)

८. अंग्रेजी माल का बहिष्कार—(अ) हम इसे सिद्धांत-रूप में स्वीकार करते हैं और सिफारिश करते हैं कि इस प्रश्न को विशेषज्ञों के सुपुर्द करना चाहिए और उनकी विशद रिपोर्ट कांग्रेस के पहले आ जानी चाहिए।

(चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य को छोड़कर सबकी सहमति)

(आ) विशेषज्ञों के सारी बातों के संग्रह करने और उनकी जांच-पड़ताल करने में कोई हानि नहीं है, परन्तु महासमिति-द्वारा सिद्धांत-रूप में स्वीकृति होने से देश को गलतफहमी होगी और आंदोलन को हानि पहुंचेगी।"

(चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य)

इस पर से यह स्पष्ट है कि असहयोग के पुराने और नवीन दल समान-रूप से बंटे हुए थे। पर दोनों थे असहयोग के ही दल; और सरकार से सहयोग करने को दोनों में से कोई दल तैयार न था। अन्तर केवल इतना ही था कि नवीन दल असहयोग की कमान में एक दूसरी डोरी चढ़ाकर उससे नौकरशाही के गढ़ कौंसिलों के भीतर से ही तीर छोड़ने का समर्थक था। स्थानिक बोर्डों के निर्वाचन के सम्बन्ध में जो सिफारिशें की गईं उनकी कल्पना तो पहले ही से की जा सकती थी। कांग्रेसियों और असहयोगियों ने म्युनिसिपैलिटियों और स्थानिक बोर्डों के लिए खड़ा होना आरम्भ कर दिया था। सफल होने पर ये अस्पतालों में खद्दर और नौकरों के लिए खादी की वर्दियों के व्यवहार पर जोर देते,

आफिसों पर राष्ट्रीय-झण्डा फहराने का आग्रह करते, स्थानिक और म्युनिसिपल स्कूलों में चर्खा और हिन्दी के प्रचार की सिफारिश करते और यदा-कदा गवर्नरों और मिनिस्टरों के आगमन का बहिष्कार करने पर जोर देते। इस प्रकार इन्होंने सरकार की नाक में दम करना आरम्भ कर दिया था। पर इन सारी कार्रवाइयों से केवल उनके रुख का पता लगता था, कोई ठोस काम होता नजर न आता था।

महासमिति की बैठक १५ अगस्त को होनेवाली थी, वह नवम्बर तक के लिए रुक गई। उस महीने की २०, २१, २२, २३, और २४ तारीख को कमिटी की ऐतिहासिक बैठकें हुई। कांग्रेस-कमिटी की चर्चा क्या थी एक प्रकार का टूर्नामेण्ट था, जिसमें अपने-अपने पक्ष के योद्धाओं को ध्यान पूर्वक छांटा गया था। पहले दिन की बैठक इण्डियन एसोसियेशन के कमरों में हुई, पर वहां खुली हवा न मिलती दिखाई दी, इसलिए बाकी चार दिन की बैठक १४८ रसा रोड में देशबन्धु चित्तरंजन दास के भव्य-भवन में शामियाने के नीचे हुई। वैसे वृद्ध नेहरू और दास जैसे चोटी के नेता कौंसिल-प्रवेश के कार्यक्रम की पुष्टि कर रहे थे, और उनकी सहायता पर उनका पुराना सहयोगी महाराष्ट्र था; परन्तु एक तो गांधीजी जेल में थे, फिर उनके प्रति उनके अनुयायियों की श्रद्धा और भक्ति ने भी जोर लगाया, असहयोग का कार्यक्रम लड़ायक था और दूसरी ओर का कार्यक्रम ऐसा जोरदार नहीं था। फिर इन सबसे बढ़कर बाधाओं के मौजूद रहते हुए भी लक्ष्य के नजदीक आ जाने और अन्त में सब कुछ होम देने का निश्चय अधिकांश असहयोगियों के पास था। इन सब बातों ने मिलकर ऐसा सुदृढ़ विरोध तैयार कर दिया जिसपर काबू पाना न नेहरूजी की प्रतिभा के लिए सम्भव हो सका, न देशबन्धु दास के प्रभावशाली व्यक्तित्व के लिए। पांच दिन की उधेड़बुन, नुकताचीनी, तानाजनी और वाक्-प्रहारों के बाद कमिटी ने निर्णय किया कि देश सामूहिक सत्याग्रह के लिए तैयार नहीं है। पर कमिटी ने प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को अधिकार दे दिया कि यदि कोई मौका आ पड़े तो वे अपनी जिम्मेदारी पर सीमित रूप में सत्याग्रह की मंजूरी दे सकती हैं, बशर्ते कि उस सम्बन्ध में लगाई गई सारी शर्तें पूरी होती हों। कौंसिल-प्रवेश का अधिक जटिल प्रश्न गया-कांग्रेस के लिए मुल्तवी कर दिया गया। इसी प्रकार अंग्रेजी माल के बहिष्कार का प्रश्न, स्थानिक बोर्डों में प्रवेश करने का प्रश्न, स्कूलों, कालेजों और अदालतों के बहिष्कार का प्रश्न, कांग्रेस का काम करते समय को छोड़कर अन्य हर समय कानून के भीतर आत्म-रक्षा करने के अधिकार का प्रश्न—ये सब भी मुल्तवी कर दिये गये। बोर्डों में प्रवेश के प्रश्न को इसलिए स्थगित किया गया कि जिससे रचनात्मक कार्य में बाधा न पड़े। इस प्रकार सत्याग्रह-कमिटी की चर्चा समाप्त हुई, जिसमें कांग्रेस के १६,०००) खर्च हुए।

गया-कांग्रेस

गया-कांग्रेस का जिक्र करने से पहले कार्य-समिति की बैठकों का पूरा विवरण दे देना ठीक होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की जांच करने के लिए एक प्रभावशाली कमिटी मुकर्रर की गई। 'अमृत-बाजार पत्रिका' के वयोवृद्ध देशभक्त सम्पादक मोतीलाल घोष की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया गया और मुलतान में हिन्दू-मुस्लिम-एकता कराने के लिए एक कमिटी मुकर्रर की गई।

पिछले दो वर्षों से हिन्दू-मुसलमानों में जैसा सराहनीय मेल रहा था वह १९२२ के मुहर्रमों में मुलतान में भंग हो गया। दंगा हुआ, आदमी मरे और खूब लूटमार हुई। यह बड़े शोक की बात हुई। लाख कोशिशें की गईं, पर बेकार साबित हुईं। 'इण्डिया १९२२-२३' नामक पुस्तक में लिखा है—"गांधीजी ने जिस इमारत को इतने परिश्रम से तैयार किया था वह बुरी तरह से नष्ट हो गई।" जिस प्रकार १९१७ के सितम्बर से हर महीने की १५ वीं तारीख को एनीबेसेण्ट-दिवस, जबतक एनी-बेसेण्ट छूट न गईं, मनाया जाता रहा, उसी प्रकार १८ अप्रैल के बाद से प्रति मास की १८ वीं तारीख

को देश-भर में गांधी-दिवस मनाया जाता रहा। एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि जवाहरलाल नेहरू युवराज का बहिष्कार करने के सिलसिले में मिली सजा भुगतकर लौटे तो १९२२ की मई में उन्हें फिर गिरफ्तार करके जेल भेज दिया गया। उनकी गिरफ्तारी के वारण्ट पर वही चिर-परिचित १२४ ए लिखा हुआ था। पर उनपर मुकदमा चलाया गया—"धमकाने और रुपया वसूल करने की कोशिश में सहायता देने" के लिए! उन्होंने एक व्याख्यान में विदेशी दूकानों पर धरना देने का इरादा जाहिर भी किया था। उन्होंने एक कमिटी की मीटिंग का सभापतित्व भी ग्रहण किया था, जिसमें कपड़े के व्यापारियों से अपने नियमों के अनुसार जुर्माना मांगने के लिए एक पत्र लिखने का निश्चय किया गया था। मामला ताज़ीरातहिन्द की ३५८ धारा के अनुसार चलाया गया। असली बात यह थी कि उन पर विदेशी कपड़ों की दूकानों पर पिकेटिंग करने के लिए मामला चलाया जा रहा था। उन्होंने १७ मई १९२२ को अदालत में बड़ा ही सुन्दर बयान दिया, जिसमें उन्होंने बताया कि किस प्रकार अब से दस साल पहले वे हैरो और कैम्ब्रिज की सभ्यता में पले हुए अंग्रेज हो गये थे, और किस प्रकार दस वर्ष के समय में भारत-सरकार की वर्तमान शासन-प्रणाली के कट्टर शत्रु (बागी) हो गये। उन्होंने कहा—"मुझे अपने सौभाग्य पर स्वयं ही आश्चर्य होता है। स्वतंत्रता के युद्ध में भारत की सेवा करना बड़े सौभाग्य की बात है। और उसकी सेवा महात्मा गांधी जैसे नेता के नेतृत्व में करना दुगुने सौभाग्य की बात है। परन्तु प्यारे देश के लिए कष्ट सहना! किसी भारतीय के लिए इससे बढ़कर सौभाग्य और क्या हो सकता है कि अपने गौरवपूर्ण लक्ष्य की सिद्धि में उसके प्राण चले जायं।"

१९२२ की गया-कांग्रेस हर प्रकार से अपने ढंग की निराली थी।

प्रतिनिधियों में जिस बात को लेकर सबसे ज्यादा हो-हल्ला मचा और सबसे अधिक मत-भेद उपस्थित हुआ वह कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी समस्या थी। कलकत्ते वाली महासमिति की बैठक ने यह समस्या कांग्रेस के अवसर के लिए मुल्तवी कर दी थी। कांग्रेस को इस मामले पर और अन्य मामलों पर निर्णय करने के लिए पांच दिन तक बैठना पड़ा। कुछ लोग ऐसे थे जो समझते थे कि यदि कौंसिल-प्रवेश की इजाजत दे दी गई तो असहयोग की योजना भंग हो जायगी, इसलिए वे इस बात पर जोर देते थे कि कौंसिल-प्रवेश-सम्बन्धी प्रतिबन्ध न उठाया जाय। कुछ ऐसे बुद्धिशाली व्यक्ति थे, जो कहते थे, कि हम कौंसिलों में जाकर न शपथ लेंगे न स्थान ग्रहण करेंगे और इस ढंग से शत्रु को पराजित कर देंगे। इसके बाद उन जोशीले राजनीतिज्ञों की बारी थी, जो कहते थे कि हम कौंसिलों पर कब्जा कर लेंगे, मंत्रि-मंडलों और मंत्रियों को तहस-नहस कर देंगे, शेर को उसकी मांद में जाकर पराजित करेंगे, रुपये की मंजूरी न देंगे और धिक्कार का प्रस्ताव पास करेंगे, और सरकारी यंत्र का चलना असम्भव कर देंगे।

देशबन्धु दास ने जो भाषण पढ़ा वह तर्क, अध्ययन और व्यावहारिक आदर्शवाद में अपना सानी नहीं रखता। यद्यपि असहयोग की नाव को दूसरी ओर ले जाने के विरुद्ध अनेक शक्तियां जुट गईं, तो भी एस० श्रीनिवास आयंगर और पण्डित मोतीलाल नेहरू की प्रतिभा के बावजूद वह नाव अपने रास्ते चलती रही। एस० श्रीनिवास आयंगर ने संशोधन पेश किया कि कांग्रेसी उम्मीदवारी के लिए खड़े हों परन्तु कौंसिलों में स्थान ग्रहण न करें। पण्डित मोतीलाल नेहरू कुछ शर्तों के साथ इसपर रज़ामन्द हो गये। श्रीनिवास आयंगर ने एक वर्ष पहले मद्रास-कौंसिल से इस्तीफा दे दिया था, अपना एडवोकेट-जनरल का पद और सी० आई० ई० की उपाधि त्याग दी थी और बधाइयों की वर्षा के मध्य आन्दोलन में पैर रक्खा था। खिलाफत वाले जमैयत-उल-उलेमा के प्रभाव में थे, जिसने फतवा

निकाला था कि कौंसिल-प्रवेश ममनू है, हराम नहीं है। पर गया में किसी की न चली। गांधीवाद का चारों ओर दौरा दौरा था। हर किसीका यह विश्वास था कि कांग्रेस का अपने नेता के अनुपस्थित होते ही उसके प्रति पीठ दिखाना कृतघ्नता होगी। स्वर्गीय मोतीलाल घोष और अम्बिकाचरण मजुमदार के प्रति सम्मान प्रकट करने के बाद गांधीजी और उनके सिद्धान्तों को साधुवाद दिया गया।

शहीद अकालियों की उनकी असाधारण वीरता और अन्य राजनैतिक कैदियों की उनके अहिंसा का सुन्दर उदाहरण पेश करने के लिए प्रशंसा की गई। कमालपाशा को उसकी सफलता के लिए बधाई दी गई। कौंसिलों का बहिष्कार करने को कहा गया। सरकार को चेतावनी दी गई कि वह और अधिक ऋण न ले। और लोगों को भी सावधान किया गया और नामधारी कौंसिलों के नाम पर जारी किये गये नौकरशाही के ऋण में रुपया न लगाने के लिए कहा गया। गत नवम्बर की महासमिति के सत्याग्रह-सम्बन्धी प्रस्ताव की एक प्रकार से पुष्टि की गई। इस बीच में देश से इस कार्य के लिए रुपया और आदमी एकत्र करने को कहा गया। कालेजों और अदालतों का बहिष्कार जारी रहा और नवम्बर में आत्म-रक्षा-सम्बन्धी अधिकार के विषय में जो कुछ निश्चित किया गया था उसे मान लिया गया। मजदूरों का संगठन करने के लिए एण्डरूज साहब, श्री सेनगुप्त और चार दूसरे सज्जनों की कमिटी बनाई गई जिसे आवश्यकतानुसार बढ़ाया जा सकता था। दक्षिण अफ्रीका और काबुल की कांग्रेस संस्थाओं को कांग्रेस के साथ शामिल किया गया और उन्हें कांग्रेस में क्रमशः १० और २ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया।

जिस समय देशबन्धु दास ने गया-कांग्रेस का सभापतित्व ग्रहण किया था उस समय उनकी जेब में वास्तव में दो महत्वपूर्ण कागज थे। एक था सभापति का भाषण और दूसरा था सभापति-पद से त्याग पत्र, जिसके साथ उनकी स्वराज्य-पार्टी के नियम-उपनियम भी थे। यह किसी को आशा न थी कि दास जैसे व्यक्तित्व का पुरुष, पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री विट्ठलभाई पटेल जैसे चोटी के आदमियों का सहारा पाकर भी, जनता के आगे चुपचाप सिर झुका देगा और कौंसिल बहिष्कार के लिए राजी हो जायगा। फलतः एक पार्टी बनाई गई और कार्यक्रम तैयार किया गया। श्री दास के जिम्मे बंगाल की प्रान्तीय कौंसिल पर कब्जा करने का काम रहा और नेहरूजी को दिल्ली और शिमला पर धावा बोलने का काम दिया गया।

१९२२ का साल खत्म करने से पहिले यहां राजनैतिक कैदियों और जेल के नियमों का जिक्र करना ठीक होगा। पिछले सालों की तरह अब सरकार राजनैतिक शब्द से उतना नहीं बचती थी। उनके साथ अब अधिक उदारता का व्यवहार किया जाने लगा। पर इनमें वे कैदी शामिल न थे जो हिंसात्मक कार्यों के लिए, या जमीन-जायदाद आदि के मामलों में या सैनिकों या पुलिस को फुसलाने के मामले में, या किसी को डराने-धमकाने के सिलसिले में दण्डित हुए थे। किस कैदी के साथ कैसा व्यवहार किया जाय, यह उसके अपराध, शिक्षा, सामाजिक स्थिति और चरित्र के ऊपर निर्भर किया गया। इस तरह चुने हुए कैदियों को मामूली कैदियों से अलग रक्खा जाता था और उन्हें पुस्तकें रखने, अपना खाना खाने और बिछौना इस्तेमाल करने, समय-समय पर चिट्ठियाँ लिखने और इष्ट-मित्रों से मुलाकात करने की अधिक छूट दी गई। उन्हें कठिन परिश्रम से बरी किया गया। हमने भारत-सरकार की इन सारी हिदायतों को विशद रूप से इसलिए दिया है कि उनका पालन जेल-अधिकारियों ने अधिकांश कैदियों के सम्बन्ध में न उस समय किया था, न बाद को। बाद को तो सरकार ने 'राजनैतिक' शब्द ही मानने से इनकार कर दिया।

४

कौंसिलों के भीतर असहयोग—१९२३

समझौते का यत्न

देश के राजनैतिक वातावरण को १९२३ के आरम्भ में साम्प्रदायिक मत-भेदों ने फिर गंदा कर दिया था। १९२२ में मुलतान में दंगा हो ही चुका था। १९२३ के मुहर्रमों में बंगाल और पंजाब में भयंकर दंगे हुए। १९२२ में खिलाफत के प्रश्न का अचानक अंत हो गया था। १९२२ के अक्तूबर में मुदानिया में अस्थायी संधि हुई। २० नवम्बर को लूसान में मित्र राष्ट्रों की एक परिषद् हुई। यहां दो महीने तक बातचीत होती रही। इसी अवसर पर अंगोरा-सरकार के प्रतिनिधियों ने नगर के शासन की बागडोर अपने हाथ में लेली और तुर्की के सुलतान को एक अंग्रेजी जहाज में छिपकर प्राण बचाने के लिए माल्टा भागना पड़ा। उसके विदा होते ही वह सुलतान और खलीफा दोनों पदों से च्युत कर दिया गया। उसका भतीजा अब्दुलमजीद एफेन्दी नया खलीफा चुना गया। सुलतान का अस्तित्व समाप्त हो गया और तुर्की में प्रजातन्त्र हो गया। इस प्रकार खिलाफत सिर्फ मजहबी बातों तक ही सीमित रह गई।

गया में अपरिवर्त्तनवादियों की जो विजय हुई वह स्थायी साबित न हुई। १ जनवरी १९२३ को महासमिति ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल १९२३ तक २५ लाख रुपया एकत्र किया जाय और ५०,००० स्वयंसेवक भरती किये जांय। कार्य-समिति के जिम्मे यह सारा काम सौंपा गया। उसे यह भी अधिकार दिया गया कि तुर्की की अवस्था के कारण यदि कोई खास मौका आ पड़े तो सत्याग्रह-सम्बन्धी दिल्ली की कड़ाई को ढीला कर दिया जाय। डा० अन्सारी को दूसरी बैठक के लिए एक राष्ट्रीय-पैक्ट का मसविदा तैयार करने को कहा गया। परन्तु सबसे अधिक जरूरी बात सभापति का त्याग-पत्र था। उन्होंने पहले ही विषय-समिति को अपनी स्वराज्य-पार्टी वाली योजना बता दी थी, इसलिए पद-त्याग आवश्यक ही था। पर त्याग-पत्र पर विचार महासमिति की २७ फरवरी १९२३ को इलाहाबाद में होनेवाली बैठक के लिए स्थगित कर दिया गया। इस बैठक में आपस में समझौता करके दोनों दलों ने निश्चय किया कि ३० अप्रैल तक किसी ओर से कौंसिल-सम्बन्धी प्रचार-कार्य न हो और इस बीच में अपने-अपने कार्य-क्रम का बाकी हिस्सा दोनों दल पूरा करने को स्वतन्त्र रहें। कोई किसी के काम में दखल न दे। ३० अप्रैल के बाद जैसा तय हो उसके अनुसार दोनों दल अपना रवैया रक्खें।

इस समय तक मौलाना अबुलकलाम आजाद और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जेल से छूट गये थे। महासमिति ने यह समझौता करने के लिए दोनों को धन्यवाद दिया।

इधर कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम जोर-शोर से फैलाया गया। इस काम के लिए जो शिष्ट-मंडल नियुक्त किया गया था उसमें बाबू राजेन्द्रप्रसाद, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य, सेठ जमनालाल

बजाज और श्री देवदास गांधी थे। इस शिष्ट-मंडल ने देशभर का दौरा किया और तिलक स्वराज्य-कोष के लिए काफी चन्दा इकट्ठा किया। मई १९२३ को बम्बई में हुई कार्य-समिति की बैठक में इसने अपने कार्य की रिपोर्ट पेश की थी।

१९२३ की २५, २६ और २७ मई को कार्य-समिति की बैठक के साथ महासमिति की एक बैठक हुई, जिसमें तय किया गया कि गया-कांग्रेस के अवसर पर मतदाताओं में कौंसिल प्रवेश-प्रचार करने का जो प्रस्ताव पास किया गया था उस पर अमल न किया जाय। इस बैठक में कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हुई। हां, मध्यप्रांत के स्वयंसेवकों को नागपुर में झण्डा सत्याग्रह जारी रखने के लिए बधाई दी गई और साथ ही देश के स्वयंसेवकों को आवश्यकता पड़ने पर नागपुर-सत्याग्रह में भाग लेने को तैयार रहने का आदेश दिया गया।

बम्बई के इस समझौते से कई प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियां स्वभावतः ही क्षुब्ध हुईं। बाद को नागपुर में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें २६ मई के समझौते वाले प्रस्ताव को जायज और उपयुक्त समझा गया और इस बात की जोरदार शब्दों में घोषणा की गई। पर इसी कमिटी में अचानक एक ऐसा प्रस्ताव पेश किया गया और पास हुआ जिसका नोटिस पहले से नहीं दिया गया था। इस प्रस्ताव के अनुसार अगस्त में बम्बई में कांग्रेस का एक विशेष अधिवेशन करने का निश्चय किया गया, जिसमें कौंसिल-बहिष्कार के प्रश्न पर विचार किया जाय। मौलाना अबुलकलाम आजाद को इसका सभापति चुना गया और कार्य-समिति को इस सम्बन्ध में जरूरी कार्रवाई करने का अधिकार सौंपा गया।

जैसी आशंका थी, विशेष-अधिवेशन करने के इस अचानक निश्चय ने काफी विरोध उत्पन्न कर दिया। वोटों की संख्या में इतना कम अंतर था कि इससे यह विरोध और प्रबल हो गया। इन दो कारणों को लेकर अगस्त में विजगापट्टम में महासमिति की एक खास बैठक करने का निश्चय किया गया। ३ अगस्त को इस बैठक में जो कार्रवाई हुई उसके सम्बन्ध में दफ्तर की रिपोर्ट कहती है—"सभापति ने कहा कि इस सभा को बुलाने की आवश्यकता के विषय में जो सज्जन बोलना चाहें, बोलें। जब और कोई न उठा तो चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने एक प्रस्ताव पेश किया, जो अनुमोदन के बाद पास हुआ। उसके अनुसार सितम्बर में (अगस्त में नहीं) विशेष अधिवेशन के अनुकूल निश्चय हुआ। यदि स्थान के सम्बन्ध में कोई दिक्कत हो तो सभापति को अधिकार दिया गया कि वे बैठक किसी और स्थान पर करें। इस प्रस्ताव को चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने पेश किया, यह मार्के की बात थी। यह भी उल्लेखनीय बात है कि मीटिंग के सभापति देशभक्त कोंडा वेंकटपय्या जैसे कट्टर अपरिवर्त्तनवादी थे।

झण्डा-सत्याग्रह

कांग्रेस का विशेष-अधिवेशन बम्बई में नहीं, दिल्ली में हुआ। पर पहले हमें उस समय की महत्वपूर्ण घटनाओं का जिक्र करना चाहिए। इसमें नागपुर-सत्याग्रह की ओर हमारा ध्यान सबसे पहले जाता है। नागपुर की पुलिस ने १ मई १९२३ को १४४ धारा के अनुसार सिविल लाइन्स में राष्ट्रीय झण्डे समेत जुलूस ले जाने का निषेध कर दिया। स्वयंसेवकों ने कहा—'हमें अधिकार है, जहां चाहें झण्डा ले जायेंगे।' बस, गिरफ्तारियां और सजायें आरम्भ हो गईं। बात-की बात में इस घटना ने आन्दोलन का रूप धारण कर लिया जिसे पहले कार्य-समिति ने, जैसा कि हम कह आये हैं, आशीर्वाद दिया और फिर महासमिति ने ८, ९ और १० जुलाई की नागपुर वाली बैठक में। कमिटी ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए उसकी सहायता करने का निश्चय किया और साथ

ही देश को आह्वान किया कि आगामी १८ तारीख को जो गांधी-दिवस होने वाला है, उसे झण्डा-दिवस कहकर मनाया जाय। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को आज्ञा हुई कि उस दिन जुलूस निकालकर जनता द्वारा झंडा फहरायें। इस समय तक इस सत्याग्रह के सिलसिले में सेठ जमनालाल बजाज भी गिरफ्तार हो चुके थे। कमिटी ने सेठजी को उनकी सजा पर बधाई दी। सेठजी की मोटर ३,०००) जुर्माना न देने के कारण कुर्क कर ली गई। पर नागपुर में कोई उसके लिए बोली लगानेवाला न निकला और अन्त में उसे काठियावाड़ ले जाया गया। नागपुर के इस आन्दोलन में भाग लेने के लिए कार्य-समिति और महासमिति ने देश का जो आह्वान किया था उसके उत्तर में देश के कोने-कोने से सत्याग्रही आकर गिरफ्तार होने लगे और इन्हें कष्ट भी काफी मिले। नागपुर झंडा-सत्याग्रह शीघ्र ही एक अखिल-भारतीय आन्दोलन होगया और श्री वल्लभभाई पटेल से १० जुलाई से उसकी जिम्मेदारी लेने का अनुरोध किया गया। देश के कोने-कोने से स्वयंसेवक भेजे जारहे थे। अगस्त के आरम्भ में कार्य-समिति की बैठक हुई उसमें श्री विट्ठलभाई पटेल को उनके नागपुर-सत्याग्रह के संचालन में सहायता देने के लिए साधुवाद दिया गया और आशा की गई कि वे इसी प्रकार स्थल पर मौजूद रहकर सञ्चालक वल्लभभाई पटेल की आन्दोलन में सहायता करेंगे। सरकार का कहना था कि जुलूस-वालों को इजाजत मांगनी चाहिए। कांग्रेस कहती थी कि सड़क सबके लिए है; हमें अधिकार है, जहां चाहेंगे बगैर किसी रुकावट के जायंगे। एक जोरदार आन्दोलन का निश्चय किया गया। वल्लभभाई पटेल ने जनता की सारी गलतफहमी दूर कर दी और १८ तारीख के लिए जुलूस का मार्ग निश्चित कर दिया। दफा १४४ अभी बदस्तूर लगी हुई थी; यही नहीं, उसे हाल ही दुबारा लगाया गया था। पर इतने पर भी १८ तारीख को जुलूस को जाने दिया गया। बाद को इस विषय को लेकर खूब हो-हल्ला मचा। अधगोरे अखबार कहते थे, सरकार की जीत हुई, क्योंकि कांग्रेस ने इजाजत की दरख्वास्त की; और कांग्रेस का कहना था कि ऐसा कभी नहीं किया गया, और ठीक भी यही था। दिल्ली-कांग्रेस ने नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह के आयोजकों और स्वयंसेवकों को अपने वीरता-पूर्ण बलिदान और कष्ट-सहिष्णुता द्वारा युद्ध को अन्त तक निवाहने और इस प्रकार अपने देश के गौरव की रक्षा करने के लिए हृदय से बधाई दी।

प्रवासी भारतीय

जुलाई, अगस्त और सितम्बर में प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण हल-चल हुई, जिसकी ओर कांग्रेस का ध्यान खिंचा रहा। केनिया में अवस्था दिन-पर-दिन बुरी होती जा रही थी। यहां के प्रवासी भारतीयों की अवस्था बहुत दिनों से असन्तोषजनक थी। यह उपनिवेश जो इतना आबाद होगया उसका श्रेय भारतीय मजदूरों और भारतीय धन को बहुत कुछ था। कई मामलों में भारतीयों ने ही सबसे पहले कदम आगे बढ़ाया था और यूरोपियनों की अपेक्षा वे आबादी में अधिक थे। मि० विन्स्टन चर्चिल ने सिक्ख सैनिकों की वीरता की, हिन्दुस्तानी व्यापारी की और हिन्दुस्तानी महाजन की, जो यूरोपियन निवासी तक को रुपया उधार देता था, जो सराहना की थी और उन स्थानों से जहां भारतवासी विश्वास करके कानूनन बस गये थे, उन्हें जान-बूझकर निकाल बाहर करने की नीति का उन्होंने जो विरोध किया था, उसका भारतीय कौंसिल में नरम-दल के राजनीतिज्ञों ने खूब विस्तार के साथ जिक्र किया। भारतवासियों को इस उपनिवेश के उस हाइलेंड्स (ऊंची भूमि) की खेती योग्य जमीनें देने की जो मुमानियत कर दी गई थी, जो युगाण्डा को जानेवाली सड़क के दूसरी ओर तक चली गई है और जहां कपास की खेतियों में भारतीयों का काफी धन लगा हुआ है, उससे भारतीयों में बड़ा असन्तोष फैला। यह आशङ्का की जाने लगी कि यूरोपियनों की असहिष्णुता के

कारण कहीं केनिया में भारतीयों को अनिवार्यतः अलग बसने, मताधिकार से हाथ धोने और अपना (नये भारतवासियों का) वहां आना बन्द करने के लिए बाध्य न होना पड़े। जिन चर्चिल महोदय ने साम्राज्य-परिषद् की यह बात स्वीकार की थी कि भारत को साम्राज्य में बराबरी का दर्जा देना और उन भारतवासियों के सम्बन्ध में, जो कानूनन आकर बसे हैं, कड़ाइयां पैदा करना—दोनों बातें एक-दूसरे के विरुद्ध हैं, वेही १९२१ में औपनिवेशिक मन्त्री थे। १९२३ के आरम्भ में उन्होंने केनिया के गवर्नर को बुला भेजा। गवर्नर के साथ अन्तिम समझौते की शर्तों पर चर्चा करने के लिए यूरोपियन और भारतीय प्रतिनिधि भी गये। भारतीय (बड़ी) कौंसिल ने भी एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा, जिसके सदस्य माननीय श्रीनिवास शास्त्री थे। केनिया के प्रतिनिधि मण्डल ने एण्डरूज साहब से अपने साथ चलने का आग्रह किया। एण्डरूज साहब ने इस हैसियत से केनिया के भारतवासियों का जो उपकार किया उसके लिए कार्य-समिति ने १९२३ के अप्रैल में उनको धन्यवाद दिया।

यह समस्या इसलिए और भी महत्वपूर्ण होगई थी, क्योंकि रोडेसिया, टांगानिका, न्यासालैंड, युगाण्डा और केनिया का एक बड़ा यूनियन बनाने की बातचीत हो रही थी। युगाण्डा के प्रवासी भारतवासियों की अवस्था केनिया-प्रश्न के निपटारे पर निर्भर थी। "अलग रखने" का जहर इस उपनिवेश में भी काम कर रहा था। कम्पाला की बस्ती में यूरोपियन आबादी से दूर एक जगह एशिया-वालों के लिए नियत कर दी गई थी। भारत सरकार की इस सम्बन्ध में सारी लिखा-पढ़ी बेकार गई। १९२१ में टांगानिका में लॉर्ड मिलनर के आश्वासन पर भारतवासियों ने शत्रु की जमीन-जायदाद खरीद ली थी। अब तीन आर्डिनेन्स "आर्थिक प्रयोजन के लिए" जारी किये गये, जिनके द्वारा भारतीयों के बराबरी के अधिकार छीनने की चेष्टा की गई। इसके सम्बन्ध में व्यापक हड़ताल की गई जो १९२२ के अप्रैल तक जारी रही। पहले दर्जे में भारतीयों के सफर करने की मुमानियत की गई, पर बाद को यह मुमानियत उठा दी गई।

हमने यह सब विस्तार के साथ इसलिए दिया है कि अगस्त १९२३ में ही कांग्रेस ने इस मामले में निश्चयात्मक कारवाई आरम्भ की थी। इस विषय पर महासमिति ने जो प्रस्ताव पास किया वह इस प्रकार है—

"केनिया के सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार ने जो निश्चय किया है उससे यह प्रकट है कि ब्रिटिश-साम्राज्य में भारत के लिए बराबरी और सम्मान का स्थान मिलना सम्भव नहीं है। अतएव इस महा-समिति की राय है कि इस घटना के विरुद्ध देश भर में जोरदार प्रदर्शन किया जाय।"

कमिटी ने बताया कि २६ अगस्त को देश भर में हड़ताल की जाय और जगह-जगह सभायें की जायं जिनमें जनता से ब्रिटिश साम्राज्य-प्रदर्शिनी में, साम्राज्य-परिषद् में और साम्राज्य-दिवस में भाग न लेने को कहा जाय।

विशेष अधिवेशन

अब हम दिल्ली के विशेष अधिवेशन की चर्चा करते हैं। यह अधिवेशन सितम्बर के तीसरे हफ्ते में हुआ। सभापति मौलाना अबुलकलाम आजाद थे, जो बड़े मुसलमान मौलवी हैं। बंगाल और दिल्ली में इनकी एक-समान ख्याति और मान है। कांग्रेस के दोनों दल इनकी बुद्धि और निष्पक्षता के कायल थे। कौंसिल-प्रवेश का समर्थन करने वाले दल ने बिना कठिनता के कांग्रेस से अनुमति-सूचक प्रस्ताव पास करा लिया कि "जिन कांग्रेस-वालियों को कौंसिल प्रवेश के विरुद्ध धार्मिक या और किसी प्रकार की आपत्ति न हो उन्हें अगले निर्वाचनों में खड़े होने और अपनी राय देने के अधिकार का उपयोग करने की आजादी है, इसलिए कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध सारा प्रचार बन्द

किया जाता है।" साथ ही यह भी कहा गया कि रचनात्मक कार्य-क्रम को पूरा करने में दूनी शक्ति से काम लेना चाहिए। रामभजदत्त चौधरी के स्वर्गवास, जापान के भूकम्प, महाराजा नाभा के जबर्दस्ती गद्दी छोड़ने और बिहार, कनाडा और बर्मा में बाढ़ आने के सम्बन्ध में सहानुभूति और समवेदना-सूचक प्रस्ताव पास किये गये। एक कमिटी नियुक्त की गई जिसके सुपुर्द सत्याग्रह-सम्बन्धी आन्दोलन संगठित करने और विभिन्न प्रान्तों की तत्सम्बन्धी हलचल को व्यवस्थित करने का काम हुआ। एक और कमिटी नियुक्त हुई जिसके जिम्मे कांग्रेस के विधान में परिवर्त्तन-परिवर्द्धन करने का काम हुआ। एक दूसरी कमिटी राष्ट्रीय-पैक्ट तैयार करने के लिए नियुक्त की गई। समाचार-पत्रों को चेतावनी दी गई कि साम्प्रदायिक मामलों में बड़े संयम से काम लिया जाय और जिले-जिले में मेल-कमिटियां मुकर्रर करने की सलाह दी गई। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक कमिटी ने जांच के लिए जो कमिटी नियुक्त की थी उसे भी गिरफ्तार कर लिया गया था। अकाली लोग दमन का जिस साहस और अहिंसा के साथ सामना कर रहे थे, उसके लिए उन्हें एक बार फिर बधाई दी गई। खद्दर के उत्तेजन के द्वारा विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने पर जोर दिया गया और एक कमिटी देशी-माल बनाने वालों को उत्तेजन और खासकर अंग्रेजी माल का बहिष्कार करने के लिए सबसे बढ़िया उपाय निश्चत करने को मुकर्रर की गई। झण्डा-सत्याग्रह-आन्दोलन को उसकी सफलता के लिए बधाई दी गई और जेल से छूटे नेताओं का, खास कर लाला जी और मौलाना मुहम्मदअली का, स्वागत किया गया।

केनिया के सम्बन्ध में क्रोध और तुर्की के सम्बन्ध में हर्ष प्रकट किया गया। दो कमिटियां और भी नियुक्त की गईं जिनमें से एक के सुपुर्द हिन्दू-मुस्लिम-कलह को रोकने का काम, जो अब फिर शुरू हो गया था, और दूसरी के सुपुर्द शुद्धि और शुद्धि-विरुद्ध आन्दोलनों में बल का प्रयोग करने की सत्यता की जांच करने का काम हुआ। शान्ति और सुव्यवस्था कायम रखने के लिए रक्षक-दल बनाने और शारीरिक बल की वृद्धि करने के सम्बन्ध में जोर दिया गया।

इस प्रकार दिल्ली में कांग्रेस के क्रम को फिर से निश्चित करने का मार्ग सफल हो गया। गया में जो बगावत की गई थी अब वह लगभग फलित हो गई। दिल्ली के प्रस्ताव इस बात के प्रमाण थे कि जिनके हाथ में शक्ति थी उनके दृष्टि-कोण में परिवर्त्तन हो चला है। इतनी सारी कमिटियों—कुल मिलाकर पांच—की नियुक्ति ही इस बात की सबूत थी कि नये सिरे से फुरसत निकाली गई है, जिसका उपयोग उन कमिटियों के सुपुर्द किये कामों की जांच-पड़ताल करने की अपेक्षा अधिक अच्छे ढङ्ग से नहीं किया जा सकता। कांग्रेस की कार्रवाई कौंसिल-प्रवेश से आरम्भ हुई थी और "रक्षक-दल और शारीरिक बल-वृद्धि" पर खत्म हुई। कसर इतनी ही थी कि कौंसिल-प्रवेश सम्बन्धी प्रस्ताव केवल अनुमति-सूचक था, परन्तु इस प्रश्न पर जन-साधारण की जो प्रवृत्ति थी उसे भी ध्यान में रखना आवश्यक था। अस्तु, जो लोग आगामी निर्वाचनों में भाग लेना चाहते थे उनके लिए रास्ता साफ हो गया। अब कांग्रेसवादियों में पहली बार उस कार्यक्रम के ऊपर मत-भेद हुआ, जो खुद भी आगे जाकर बंट गया था। स्वराज्य-पार्टी को किस नीति और किन सिद्धांतों का अनुसरण करना चाहिए, यह एक घोषणा-पत्र में रख दिया गया।

कोकनडा-कांग्रेस

कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कोकनडा में होना निश्चित हुआ। कुछ अपरिवर्त्तनवादियों को अब भी थोड़ी-बहुत आशा थी कि दिल्ली ने जो कुछ कर डाला, कोकनडा उसे चाहे बिलकुल मिटा न सके, क्योंकि उस समय तक चुनाव खत्म हो जायंगे, फिर भी वार्षिक अधिवेशन के अवसर

पर उसी पुराने असहयोग का झण्डा खड़ा रक्खा जायगा। मौलाना मुहम्मदअली को सभापति चुना गया। कोकनडा-कांग्रेस में खूब कश-म-कश रही। अपरिवर्त्तनवादी-दल के कुछ प्रसिद्ध नेता शरीक नहीं हुए। राजेन्द्र बाबू अस्वस्थता के कारण कोकनडा-कांग्रेस में न आ सके और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने दिल्ली के प्रस्ताव पर अपना वजन डाला। श्री वल्लभभाई उपस्थित थे, परन्तु दिल्ली के प्रस्ताव के समझौते के सम्बन्ध में दिल्ली-अधिवेशन के अवसर पर उनकी स्वीकृति बंगाल के वृद्ध जर्जर बाबू श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने हासिल कर ली थी। उन्हें देश-निर्वासन और कारावास, निर्धनता और दरिद्रता में अनेक वर्ष बिताने पड़े थे। इन्होंने कोकनडा-कांग्रेस के प्रबल समुदाय को अपने कौंसिल-प्रवेश-विरोधी भाषण से थर्रा दिया। परन्तु पासा पड़ चुका था। कौंसिल-बहिष्कार के भाग्य का निपटारा हो चुका था। वहां का मुख्य प्रस्ताव इस प्रकार है—

"यह कांग्रेस कलकत्ता, नागपुर, अहमदाबाद, गया और दिल्ली में पास किये प्रस्ताव को फिर दोहराती है।

"दिल्ली में कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में जो असहयोग का प्रस्ताव पास किया था उसे लेकर सन्देह उठ खड़ा हुआ है कि कांग्रेस की नीति में कहीं कोई परिवर्त्तन तो नहीं हुआ। यह कांग्रेस स्पष्ट-रूप से प्रकट करती है कि बहिष्कार के सिद्धान्त और उसकी नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ है।

"और यह कांग्रेस इस बात की भी घोषणा करती है कि उक्त नीति और सिद्धान्त रचनात्मक-कार्य के आधार-रूप हैं और देश से प्रार्थना करती है कि बारडोली में निश्चित रचनात्मक कार्य-क्रम को उसी रूप में पूरा करे और सत्याग्रह के लिए तैयारी करे। यह कांग्रेस सारी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को आदेश करती है कि इस सम्बन्ध में आवश्यक कार्रवाई शीघ्र करें, जिससे लक्ष्य-सिद्धि में विलम्ब न हो।"

कोकनडा-कांग्रेस को एस० कस्तूरी रंगा आयंगर और अश्विनीकुमार दत्त जैसे नेताओं की मृत्युपर शोक-प्रकाश करने का अप्रिय-कर्तव्य पालन करना पड़ा। श्री एस० कस्तूरी रंगा आयंगर का देश-प्रेम दादाभाई की भांति उनकी आयु के साथ-साथ दिन-दिन बढ़ता जाता था। श्री अश्विनीकुमार दत्त को सारा बंगाल प्रेम करता था और उनकी स्मृति का मान सारा देश करता है। विनायक दामोदर सावरकर को लगातार जेल में बन्द रखने की निन्दा की गई। जो राष्ट्रीय पैक्ट तैयार किया गया था उसे देशबन्धु दास के बंगाल पैक्ट के साथ वितरित करने का निश्चय किया गया। कांग्रेस ने अखिल भारतीय स्वयंसेवक-दल की रचना करने के आन्दोलन का स्वागत किया। इस संस्था में यात्री को रक्षक-दल भी मिला दिया गया।

कांग्रेस के अलग-अलग विभाग करने की योजना तैयार करने की आवश्यकता समझी गई और इन अनेक विभागों के वेतनभोगी कार्यकर्ताओं के संबंध में राष्ट्रीय सर्विस की भी एक योजना तैयार करने को कहा गया। केनिया-प्रवासी भारतीयों के प्रति हार्दिक परन्तु शक्तिहीन समवेदना प्रकट की गई, और केनिया इण्डियन कांग्रेस में भाग लेने के लिए श्रीमती सरोजिनी नायडू और मि० जार्ज जोसेफ को तैनात किया गया।

दिल्ली में जो सविनय-भंग कमिटी नियुक्त की गई थी वह और सत्याग्रह-कमिटी कार्यसमिति में मिला दी गई। अखिल-भारतीय चर्खा-संघ बनाया गया, जिसे खद्दर का काम चलाने का अधिकार दिया गया। भारत से देशान्तर प्रवास न करने की सलाह दी गई और सीलोन में गये भारतीय मजदूरों की अवस्था की जांच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई। कांग्रेस के विधान में कई संशोधन पेश किये गये, जो पास हुए। सरकार ने शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी के अकाली-दल

पर आक्रमण करके भारतीयों के अहिंसात्मक उद्देश्य से एकत्र होने के अधिकार को जो चुनौती दी थी उसे कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया और उनके वर्तमान संघर्ष में उनका साथ देने और उन्हें आदमी और रुपये और हर प्रकार की सहायता देने का निश्चय किया।

गुरुद्वारा-आन्दोलन

यहां वर्तमान प्रसंग को छोड़कर, सिक्खों में सुधार-सम्बन्धी जो आन्दोलन उठ खड़ा हुआ था उसका थोड़ा-सा जिक्र करना ठीक होगा। काली पगड़ी बांधे "सत्-श्रीकाल" का घोष करनेवाले सिक्ख और उनके लंगरखाने अब कांग्रेस के जाने-बूझे अंग होगये हैं। जब कोई विदेशी सरकार किसी देश का शासन अपने अधिकार में लेती है तो स्वभावतः ही उस देश की सारी संस्थाओं पर चाहे वे आर्थिक हों या शिक्षण-सम्बन्धी, चाहे धार्मिक ही क्यों न हों—केंकड़े की भांति अपने पंजे फैला देती है। अंग्रेजों ने पंजाब को, १८४९ में ब्रिटिश-भारत में मिलाया। इस रद्दोबदल के अवसर पर सिक्ख धर्म के केन्द्र और गढ़-स्वरूप अमृतसर के दरबार साहब के बंदोबस्त में गड़बड़ मची हुई थी। इस अवसर पर अमृत छके हुए सिक्खों की एक कमिटी को ट्रस्टी बनाया गया और सरकार द्वारा नियत व्यक्ति सरबराह या अभिभावक बना। एक मैनेजर नियुक्त किया गया जिसके हाथों से हर साल लाखों रुपये निकलते थे। जैसा अकसर होता है, १८८१ में यह कमिटी भंग हो गई और मैनेजर के हाथ में ही सारे अधिकार आगये। नियंत्रण के अभाव में गैर-जिम्मेदारी और आचार-हीनता का जन्म हुआ। एक ओर मैनेजर और ग्रन्थियों और दूसरी ओर सिक्ख जनता में आये दिन मुठभेड़ होने लगी। सरकार परेशान थी कि क्या करे। अन्त में १९२० के अन्त में एक कमिटी बनाई गई जो बाद को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी हुई। इस कमिटी के पहले सभापति सरदार सुन्दरसिंह मजीठिया हुए, जो कुछ दिनों के बाद ही पंजाब-सरकार की कार्य-कारिणी के सदस्य नियुक्त किये गये। सुधारक सिक्ख अकाली कहलाते थे। इन्होंने अपेक्षा-कृत अधिक ऐतिहासिक गुरुद्वारों को अपने हाथ में किया। तरन-तारन में फसाद हो गया और कई सिक्ख घायल हुए और दो मरे। हम कह ही आये हैं कि १९२१ के आरम्भ में ननकानासाहब में किस प्रकार निर्दोष यात्रियों की हत्या की गई थी। पुलिस की निगाह में यह आन्दोलन गुरुद्वारों के साथ प्राप्त होनेवाली शक्ति और सामर्थ्य को अपने कब्जे में करने के लिए था। इस दृष्टिकोण से महन्तों को बढ़ावा मिला। इन महन्तों में वे लोग भी थे जिन्होंने अकालियों से समझौता कर लिया था। अब वे इस समझौते से हट गये। सरकार "सुधारक सिक्खों के अन्धा-धुन्ध दमन पर उतारू थी।" १९२१ के मई मास में सैकड़ों सिक्ख जेलों में ठूंस दिये गये और प्रतिष्ठा-हीन महन्तों को फिर अधिकार दिया गया। फलतः जहांतक इस सुधार का सम्बन्ध था, शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने १९२१ की मई में सरकार से असहयोग का प्रस्ताव पास कर दिया।

सरकार जो गुरुद्वारा-बिल पास कराना चाहती थी, वह सिक्खों में नरम-दलवालों और सहयोगियों तक को मंजूर न हुआ। फलतः उसका विचार छोड़ दिया गया। सिक्खों पर एक निश्चित लम्बाई से अधिक बड़ी कृपाणें पहनने के लिए मुकदमे चलाये गये। पंजाब-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने १० जुलाई १९२१ को इसका विरोध किया, और महीने के अन्त में सिक्खों को जेल से छोड़ दिया गया। खब्बा के भाई करतारसिंह और भूचड़के भाई राजासिंह को १८ और ७ वर्ष का बर्बरता-पूर्ण कारावास-दण्ड दिया गया। २८ अगस्त १९२१ को कौंसिलों के सिक्ख सदस्यों को इस्तीफा देने को कहा गया। सरदारबहादुर सरदार महताबसिंह बैरिस्टर ने गुरुद्वारा-आन्दोलन के सम्बन्ध में सरकार की नीति के विरोध में सरकारी वकालत और पंजाब-कौंसिल के उपाध्यक्ष के पद से इस्तीफा दे दिया।

१९२१ के सितम्बर के आरम्भ में उपर्युक्त लम्बी सजा पाये हुए दोनों सिक्खों तथा अन्य कई को छोड़ दिया गया। परन्तु पंजाब प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के प्रधान-मन्त्री सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर को जिन्हें १९२१ के जून में १२४ ए धारा के अनुसार पांच वर्ष का सपरिश्रम कारावास हुआ था, और गुरुद्वारे के अन्य कार्यकर्त्ताओं को न छोड़ा गया। अचानक १९२१ की ७ नवम्बर को सरकार ने अमृतसर के दरबारसाहब की चाबियां छीन लीं, जिसके फल-स्वरूप गुरु नानक के जन्म-दिवस पर सजावट न हो सकी। सरकार की ओर से एक मैनेजर नियुक्त किया गया, पर उसे शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने चार्ज न लेने दिया और उसे इस्तीफा देना पड़ा। बस, इसके बाद से चाबियां ही सारे झगड़े की जड़ बन गईं और जन-सभाओं-द्वारा उसका विरोध किया जाने लगा। सरकार ने राजद्रोही सभाबन्दी-कानून जारी किया और सरदार खड्गसिंह और सरदार महताबसिंहको कड़ी कैद की सजा दी गई। गुरु गोविंदसिंह का जन्म-दिवस ५ जनवरी १९२२ को था। सरकार ने चाबियां उस समय तक के लिए सौंपने की तैयारी दिखाई जबतक कि उसके द्वारा दीवानी अदालतमें दायर किये गये मुकदमे का फैसला न हो। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी ने चाबियां लेने से इन्कार कर दिया। जब २०० सिक्ख-कार्यकर्ता गिरफ्तार हो चुके तो सरकार ने हाथ रोक लिया और सारे कैदियों को बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। १९२२ की ११ जनवरी को चाबियां भी सौंप दी गईं; पर पण्डित दीनानाथ को न छोड़ा। फलतः राजद्रोही सभाबन्दी-कानून के विरुद्ध फिर सत्याग्रह जारी हुआ और १९२२ की ८ फरवरी को शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी की प्रबंध-समिति के सारे सदस्य एक सभा में बोले। अन्त में पण्डित दीनानाथ को रिहा कर दिया गया और कोमागाटामारू (१९१४) वाले बाबा गुरुदत्तसिंह को भी छोड़ दिया गया।

अकाली काली पगड़ी पहनते थे। १९२२ के मार्च मास के दूसरे सप्ताह से, पहले से ही निश्चित किये गये कार्यक्रम के अनुसार, पंजाब के १३ चुने हुए जिलों में और पटियाला और कपूरथला की रियासतों में अकाली सिक्खों को एक-साथ पकड़ना आरम्भ कर दिया गया। १५ दिन के भीतर-भीतर १७०० काली पगड़ी वाले सिक्ख गिरफ़्तार कर लिये गये। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक-कमिटी और पंजाब-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के सभापति सरदार खड्गसिंह को ५ वर्ष का कठिन कारावास-दण्ड दिया गया। मार्च १९१२ के आरम्भ में सरकार ने कहा—'कृपाण तलवारें हैं जिनके बनाने के लिए लाइसेन्स की जरूरत है।' लोगों को निर्देश किया गया कि सरकार-द्वारा बताये गये ढंग से कृपाण पहनी जाय। फौजी सिक्खों का कृपाण धारण करना भी जुर्म माना गया। कुछ को गिरफ्तार करके २ वर्ष से लेकर १८ वर्ष तक की कड़ी सजा दी गई। कोमागाटामारूवाले बाबा गुरुदत्तसिंह को फिर गिरफ्तार कर लिया गया और १९२२ में उन्हें ५ वर्ष का निर्वासन-दण्ड मिला। रौलट-कानून के विरुद्ध आन्दोलन में प्रसिद्धि पाये हुए मास्टर मोतासिंह को ८ साल की सजा मिली।

चारों ओर क्रिमिनल लॉ-अमेण्डमेण्ट-ऐक्ट का दौर-दौरा था और जमानत सम्बन्धी धारायें उसकी सहायिका थीं। एक नेता ने लिखा—"सब कुछ पुलिस के हाथ में था, और पुलिस ने भी उससे खूब आनन्द उठाया।" पण्डित मदनमोहन मालवीय पंजाब गये और राजा नरेन्द्रनाथ की अध्यक्षता में कमिटी नियुक्त कराई, जिसके जिम्मे सरकारी ज्यादतियों, गैर-कानूनी कार्रवाइयों और निर्दयता के सम्बन्ध में जांच करना था। १९२२ की चौदह मई को पंजाब-सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाल कर धार्मिक सुधारकों को चेतावनी दी कि वे उन लोगों के "जिनका सुधार से कोई वास्तविक सम्बन्ध नहीं है, बदअमनी फैलानेवाले और गैर-कानूनी कामों से" अलग रहें। १५ जून १९२१ तक १९०० से २००० तक सिक्ख गिरफ्तार किये जा चुके थे।

इसी अवसर पर गुरु-का-बाग-काण्ड हुआ जिसका जिक्र १९२२ की चर्चा में हो चुका है। इतना ही कहना काफी है कि सिक्खों ने गांधीजी का यह कहना चरितार्थ कर दिखाया कि गोली खाने के बजाय लाठी की मार सहना कठिन है, और जो उस मार को सहते हैं वे आदर के पात्र हैं। इस काण्ड के सिलसिले में जो ज्यादतियां की गईं उनकी जांच पंजाब-सरकार के एक यूरोपियन सदस्य ने की। एण्डरूज साहब जैसे व्यक्तियों ने इन ज्यादतियों के गम्भीर स्वरूप की पुष्टि की। उन्होंने कहा, "अब तक मैंने जितने हृदय-विदारक और करुणाजनक दृश्य देखे हैं, यह उनमें सबसे बढ़कर है। अहिंसा की पूरी विजय हुई है। ये लोग सचमुच शहीद हो रहे हैं।" जैसा कि पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा है, 'एक घेरा डाल दिया गया था और कई दिन तक कांटेदार लोहे के तारों को भेदकर कोई अन्न का दाना भीतर न ले जा सका। जो ले गये, उन्हें बुरी तरह पीटा गया। जब मेरी मोटरकार की गुरुद्वारे के द्वार पर तलाशी ले ली गई, तब कहीं उस घेरे के एक छोटे-से प्रवेश-द्वार में जाने की इजाजत मिली।"

एक स्त्री घायल करदी गई, क्योंकि उसने कुछ पीड़ितों की सुश्रूषा की थी। एक के शरीर पर घोड़े की टाप के निशान थे। दो आदमी मारे गये थे और सरकार ने कथित अपराधियों पर मुकदमा चलाया तो वे बरी कर दिये गये। कुछ दर्शकों को परेशान किया गया। अखबारों में पुलिस के विरुद्ध चोरी, डाकेजनी और लूटमार के अभियोग लगाये गये। पुलिस-सुपरिण्टेण्डेण्ट मि० मैकफरसन ने लाठी के अभ्यास पर एक पुस्तक लिखी। उन्होंने अभियोग की सत्यता की इस प्रकार तसदीक की—

"बहुत सम्भव है, सिर आदि फूटने की किस्म की चोटें आ गई हों। जत्थों ने पुलिस का मुकाबला कभी नहीं किया और वे बराबर अहिंसात्मक आचरण करते रहे। सम्भव है, कुछ घायल बेहोश भी हो गये हों। चोटों के ९५३ केस नजर से गुजरे जिनमें से २६९ ऊपर के भाग में थे, ३०० शरीर के आगे के भाग में, ७९ सिर पर, ६० फोतों पर, १९ गुदा-द्वार पर, ७ दांतों पर, १५८ रगड़ के घाव, ८ बन्द चोटों के, २ छिल जाने के, ४० पेशाब-सम्बन्धी शिकायतें, ९ सिर फटने के, और ३ हड्डियों के जोड़ टूटने के थे।"

इस सिलसिले में २१० गिरफ्तारियां हुईं। एक ही आनरेरी मजिस्ट्रेट ने ५ इजलासों में १,२७,०००) के जुर्माने किये। स्वामी श्रद्धानन्द को १८ महीने की सजा मिली। २२ अक्तूबर को एक जत्था अमृतसर से गुरु-का-बाग को रवाना हुआ। इस जत्थे में १०१ फौजी पेन्शनयाफ्ता लोग थे, जिनमें से ५५ नान-कमिशण्ड अफसर थे और बाकी सिपाही थे। ये लोग मारू बाजा बजाते रवाना हुए। इनके साथ ५०,००० आदमी दर्शक-रूप में थे। पंजासाहब के स्टेशन से होकर एक रेलगाड़ी गुजरनेवाली थी, जिसमें फौजी कैदी थे। स्टेशन पर कुछ लोग उनके लिए भोजन की सामग्री लिये बैठे थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि गाड़ी स्टेशन पर न रुकेगी तो वे पटरियों पर लेट गये। रेलगाड़ी तब भी न रोकी गई। फलतः २ आदमी मरे और ११ घायल हुए। कुछ दिनों बाद पीटना बन्द कर दिया गया और गिरफ्तारियां आरम्भ हुईं। जत्थों में मुखियों को कड़ी सजायें मिलीं। पर अभी इससे भी बुरी घटनायें आने को थीं। जनता के दबाव और ८ मार्च १९२३ के कौंसिल के प्रस्ताव के उत्तर में अकालियों को थोड़ा-थोड़ा करके छोड़ा जाने लगा। १७० अकालियों को रावलपिण्डी में छोड़ा गया, पर उन्हें बुरी तरह मारा-पीटा गया। कसूर यह बताया गया कि रेलवे-स्टेशन से बताये रास्ते से होकर नहीं गये थे। फौजी सिपाही, और घुड़सवार—सबने एक साथ मिलकर उन्हें तितर-बितर किया। १२८ लोगों को संगीन चोटें आईं। ३ मई से रावलपिण्डी ने पूर्ण हड़ताल मनानी

आरम्भ की। जब पंजाब-कौंसिल में इस मामले की जांच करने के लिए एक कमिटी नियुक्त करने का सवाल उठाया गया तो सरकार के चीफ सेक्रेटरी ने बड़ी शान्ति से सलाह दी कि पुरानी बातों को भुला देना ही ठीक है। हंटर-कमिटी की भांति पुराने जख्मों को दुबारा खोलने का नतीजा ठीक न होगा। गुरु-का-बाग-काण्ड की दुःखदायी घटनाओं की स्मृति को जितनी जल्दी भुला दिया जाय, अच्छा है। परन्तु अकालियों के दुर्दिन अभी पूरे न हुए थे। यद्यपि अब हमें १९२४ की घटनाओं का कुछ जिक्र करना पड़ेगा, फिर भी अकाली-आन्दोलन का वर्णन यहीं एक सिलसिले में कर देना ठीक है। १९२३ के मध्य में महाराजा नाभा ने गद्दी 'त्याग दी', पर शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबंधक-कमिटी ने इसे महाराजा को गद्दी से उतारा जाना समझा और उन्हें दुबारा गद्दी पर बिठाने के लिए नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर और दूसरी जगहों पर सभायें आदि करके एक आन्दोलन खड़ा कर दिया। जो भाषण दिये गये उन्हें राजद्रोहात्मक समझा गया और वक्ताओं को अखण्ड पाठ पढ़ते-पढ़ते गिरफ्तार कर लिया गया।

इस प्रकार नाभा-रियासत के जैतो नामक स्थान पर अखण्ड पाठ के ऊपर झगड़ा शुरू हो गया और कुछ समय तक २५-२५ सिक्खों के जत्थे रोज जैतो भेजे जाने लगे। बाद को फरवरी में ५०० आदमियों का शहीदी जत्था भेजा गया। डा० किचलू और आचार्य गिडवानी इस जत्थे के साथ दर्शक की हैसियत से गये। जैतो के निकट इस जत्थे पर गोली चलाई गई और कुछ आदमी मरे। किचलू और गिडवानी दोनों को नाभा के अधिकारियों ने गिरफ्तार कर लिया, क्योंकि वे घायलों की सुश्रूषा कर रहे थे। कुछ दिनों बाद किचलू को तो छोड़ दिया गया, पर गिडवानी उस वर्ष के अन्त तक नाभा जेल ही में रहे। शहीदी जत्थे बराबर जाते रहे और गिरफ्तारियां भी होती रहीं। इस प्रकार अकाली हजारों की संख्या में जेल में पहुंच गये। उनके साथ जो व्यवहार किया गया उसकी खराब रिपोर्टें आईं। अकाली-सहायक ब्यूरो में आचार्य गिडवानी का स्थान श्री पणिक्कर ने लिया। कांग्रेस की कार्य-समिति ने जेल में अकालियों के साथ किये गये दुर्व्यवहार की जांच के लिए जांच-कमिटी भेजी और साथ ही अकाली-परिवारों को काफी आर्थिक सहायता भी दी। बाद को जब गुरुद्वारों के प्रबन्ध के सम्बन्ध में कानून बना दिया गया तो यह प्रश्न भी तय हो गया।

कांग्रेस चौराहे पर—१९२४

जब १९२४ का आरम्भ हुआ तो देश के वातावरण में भारी उदासी फैली हुई थी। गांधीजी की अचानक और भयानक बीमारी ने सारी बातों को ढक दिया था।

१२ जनवरी १९२४ को महात्मा गांधी के 'अपेंडिसाइटिस' रोग से भयंकर रूप में बीमार पड़ने और आधी रात में कर्नल मैडॉक-द्वारा भारी आपरेशन किये जाने के समाचार से देशभर में चिन्ता उत्पन्न हो गई। पर गांधीजी के स्वस्थ होने लगने और अन्त को ५ फरवरी को उन्हें समय से पहले ही बिना किसी शर्त के छोड़ दिये जाने से वह चिन्ता दूर हो गई।

पर जेल से छूटकर भी उन्हें न शान्ति मिली, न विश्रान्ति। कोकनडा-कांग्रेस में जो फूट पैदा हो गई थी वह दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही थी। एक ओर अपरिवर्त्तनवादी आशा कर रहे थे कि गांधीजी अब छूट ही गये हैं, इससे कांग्रेस का इंजन फिर सत्याग्रह के पुराने मार्ग पर लौट पड़ेगा दूसरी ओर परिवर्त्तन-वादियों को चिन्ता थी कि दिल्ली और कोकनडा में प्राप्त हुई विजयों को पक्का करके अपने ऊपर जो कुछ धब्बा बाकी रह गया है उसे धो लिया जाय। देश के परस्पर-विरुद्ध दृष्टिकोणों और समस्याओं में सामंजस्य स्थापित करने की जी-तोड़ चेष्टा की गई। गांधीजी ने बम्बई के निकट जुहू नामक समुद्रतटवर्ती स्थान पर कुछ समय व्यतीत किया। यहां पर गांधीजी, दास बाबू और नेहरूजी में कुछ दिनों तक बात-चीत चलती रही, जिससे लोगों को आशा होती रही कि समझौता हो जायगा। १९२४ के मई मास में गांधीजी ने वक्तव्य प्रकाशित किया, साथ ही श्री दास और नेहरू ने भी एक सम्मिलित वक्तव्य दिया।

परन्तु इन ऐतिहासिक वक्तव्यों को देने से पहले यहां यह बताना ठीक होगा कि कौंसिलों में स्वराज्य-पार्टी ने क्या किया और कौंसिलों से भीतर विभिन्न शक्तियों को किस प्रकार अपने अधिकार में कर लिया।

स्वराज्य-पार्टी बनने के बाद देश की विभिन्न कौंसिलों के निर्वाचनों में भाग लिया गया। बड़ी कौंसिल में ४५ स्वराजी पहुंचे जिनमें खूब अनुशासन था और जो अपना कार्यक्रम पूरा करने का व्रत लिए हुए थे। वे राष्ट्रीय-दल का सहयोग और सहानुभूति प्राप्त करके कौंसिल में आसानी से बहुमत प्राप्त कर सके। पहली विजय तब हुई जब श्री टी० रंगाचारी ने शासन-व्यवस्था में तत्काल परिवर्तन करने के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने यह संशोधन पेश किया कि भारत में पूर्ण उत्तरदायी सरकार की सिफारिश करने के लिए एक गोलमेज-परिषद् बुलाई जाय।

सरकार को यों तो कई बार हार खानी पड़ी; परन्तु इन प्रस्तावों पर उसकी हार विशेष रूप से उल्लेख-योग्य है—कुछ राजनैतिक कैदियों को छोड़ने का प्रस्ताव; १८१८ के रेगुलेशन ३ को रद

करने का प्रस्ताव; दक्षिण-अफ्रीका से भारत में आने वाले कोयले पर कर लगाने का प्रस्ताव; और सिक्ख आन्दोलन की व्यवस्था के सम्बन्ध में जांच करने के लिए एक कमिटी बैठाने का प्रस्ताव। सरकार की पराजय स्वराज्य-पार्टी की विजय थी, जिसका बल स्वतंत्र, राष्ट्रीय तथा कभी-कभी नरम-दल तक का सहयोग प्राप्त होने के कारण भी बढ़ गया था। हम यह इसलिए कहते हैं कि स्वराज्य-पार्टी ने अपने कार्यक्रम में रख छोड़ा था कि "हमारी मांग सारे राजनैतिक कैदियों की रिहाई, दमनकारी-कानूनों को रद करने और एक ऐसा राष्ट्रीय कन्वेंशन बुलाने की अन्तिम चेतावनी का रूप धारण करे जो भारत के लिए भावी शासन-व्यवस्था तैयार करे।"

स्वराज्य-पार्टी ने दूसरा काम यह किया कि सरकारी मांगों की चार मदों को नामंजूर कर दिया। ऐसा पहले कभी न हुआ था, यह तो मानो रसद बन्द करना हुआ। पर पण्डित मोतीलाल ने कहा कि मेरे "इस प्रस्ताव का असहयोग की विध्वंसकारिणी नीति से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह प्रस्ताव देशवासियों की शिकायतों की ओर ध्यान आकर्षित करने का बिलकुल वैध और वाजिब उपाय है।"

१९२४ की गर्मियों में जो कुछ हो रहा था उसका चित्र पाठकों के आगे पेश करने के लिए हम अब गांधीजी, दास बाबू और नेहरूजी के वक्तव्य देते हैं जो शुरू की वार्तालाप के बाद प्रकाशित किये गये।

गांधीजी का वक्तव्य

"अपने स्वराजी मित्रों के साथ कांग्रेसवादियों के द्वारा कौंसिल-प्रवेश के जटिल प्रश्न पर बातचीत करने के बाद मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि मैं उनसे सहमत न हो सका। × × × देश के कुछ परम-आदरणीय और बहुमूल्य नेताओं के विरोध का विचार करना भी मेरे लिए सुखदायी नहीं हो सकता। × × × परन्तु चेष्टा करने और इच्छा रहने पर भी मैं उनके तर्कों को न समझ सका। मेरी अब भी यही सम्मति है कि असहयोग के सम्बन्ध में जैसी मेरी धारणा है उसके अनुसार कौंसिल-प्रवेश असंगत है। हमारा मतभेद 'असहयोग' शब्द की भिन्न-भिन्न परिभाषा तक ही सीमित हो सो बात भी नहीं है; यह मतभेद तो चित्तवृत्ति से सम्बन्ध रखता है, जिसके कारण महत्वपूर्ण समस्याओं के सुलझाने में मतभेद अनिवार्य हो जाता है। उस मनोवृत्ति के पैमाने से ही बहिष्कार-त्रयी की सफलता या विफलता को जांचना होगा, फल-सिद्धि के पैमाने से नहीं। मैं इसी दृष्टि-कोण से कह रहा हूं कि देश के लिए कौंसिलों से बाहर रहना उनके भीतर रहने की अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायक होगा। परन्तु मैं अपने स्वराजी मित्रों को अपने दृष्टि-कोण पर न ला सका। तथापि मैं यह समझता हूं कि जब तक उनका विचार दूसरा रहेगा उनका स्थान निस्सन्देह कौंसिल में है। हम सबके लिए यही अच्छा भी है।..............

"दिल्ली और कोकनडा-कांग्रेस ने उन कांग्रेसवादियों को इच्छा होने पर कौंसिलों और असेम्बली में जाने की इजाजत दे दी है जिनकी आत्मा उन्हें न रोकती हो। इसलिए मेरी राय में स्वराजी कौंसिलों में जाने का और अपरिवर्तन-वादियों से तटस्थ रहने की आशा रखने का अधिकार रखते हैं। उनको वहां जाकर अड़ंगा-नीति धारण करने का भी हक है; क्योंकि उनकी नीति ही यह थी और कांग्रेस ने उनके कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शर्त नहीं लगाई थी। यदि स्वराजियों को सफलता हुई और देश को लाभ पहुँचा, तो मेरे जैसे संशयशील व्यक्तियों को अपनी भूल अवश्य मालूम हो जायगी और यदि अनुभव के द्वारा स्वराजियों का मोह दूर हो गया, तो मैं जानता हूं कि वे देश-भक्त हैं और अवश्य अपना कदम पीछे हटा लेंगे। इसलिए मैं उनके मार्ग में बाधा डालने के काम में शरीक न होऊंगा और न स्वराजियों के कौंसिल-प्रवेश के विरुद्ध प्रचार करने में

ही भाग लूंगा। हां, मैं ऐसे कार्य में स्वयं कोई ऐसी सहायता नहीं दे सकता जिसमें मेरा विश्वास नहीं है............।

"कौंसिलों में क्या ढङ्ग अपनाना चाहिए, इसके सम्बन्ध में मेरा कहना यही है कि मैं कौंसिलों में तभी घुसूंगा जब मुझे मालूम हो जाय कि मैं उसके उपयोग से लाभ उठा सकूंगा। अतएव यदि मैं कौंसिलों में जाऊंगा तो मैं सोलह आने अड़ंगा-नीति का अवलम्बन न करके कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को सफल बनाने की चेष्टा करूंगा। मैं उस हालत में प्रस्ताव पेश करके केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकारों से चाहूंगा कि—

(१) वे सारे कपड़े हाथ के कते और हाथ के बुने खद्दर के खरीदें।

(२) विदेशी कपड़ों पर बहुत भारी चुङ्गी लगा दें।

(३) शराब आदि की आय को ही रद कर दें, और सेना-विभाग के व्यय में, अपेक्षाकृत ही सही, कमी कर दें।

"यदि सरकार कौंसिलों में पास होने के बाद भी इन प्रस्तावों पर अमल करने से इन्कार कर दे, तो मैं सरकार से कौंसिलों को भंग करने के लिए कहूंगा और उन्हीं खास-खास बातों पर फिर निर्वाचकों के वोट हासिल करूंगा। यदि सरकार कौंसिल भंग करने से इन्कार कर दे तो मैं अपनी जगह से इस्तीफा दे दूंगा और देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करूंगा। जब यह अवस्था आ पहुंचे तो स्वराजी मुझे फिर अपने साथ और अपने नेतृत्व में पायेंगे। सत्याग्रह-सम्बन्धी योग्यता के सम्बन्ध में मेरी कसौटी वही पुरानी है।"

स्वराजी-वक्तव्य

देशबन्धु चित्तरंजन दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपने वक्तव्य में कहा—

"हमें अफसोस है कि हम गांधीजी को कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में स्वराजियों की स्थिति के औचित्य का कायल न कर सके। हमारी समझ में यह नहीं आता कि कौंसिल-प्रवेश नागपुर के कांग्रेस के असहयोग-सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुकूल क्यों नहीं है। परन्तु यदि असहयोग मनोवृत्ति से ही सम्बन्ध रखता हो और हमारे राष्ट्रीय जीवन की वास्तविक अवस्था से उसका कोई विशेष सम्बन्ध न हो, जब कि हमारे राष्ट्रीय-जीवन की गति-विधि नौकरशाही के हमेशा बदलते रहने वाले रंग-ढंग पर निर्भर रहती है, तो हम देश के वास्तविक हित के लिए असहयोग तक का बलिदान करना अपना कर्तव्य समझते हैं। हमारी राय में इस सिद्धान्त में उन सभी कामों में, जिनके द्वारा राष्ट्रीय-जीवन की समुचित वृद्धि हो और स्वराज्य के मार्ग में बाधा डालनेवाली नौकरशाही का सामना किया जा सके, आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है।.........

"हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमने अपने कार्यक्रम में 'अड़ंगा' शब्द का जो व्यवहार किया है सो ब्रिटेन की पार्लमेण्ट के इतिहास के वैधानिक अर्थ में नहीं। मातहत और सीमित अधिकारों वाली कौंसिलों में उस अर्थ में अड़ंगा डालना असम्भव है, क्योंकि सुधार-कानून के अन्तर्गत असेम्बली और कौंसिल के अधिकार गिने-चुने हैं। पर हम यह कह सकते हैं कि हमारा विचार अड़ंगा डालने की अपेक्षा स्वराज्य के मार्ग में नौकरशाही-द्वारा डाली गई रुकावटों का मुकाबला करने का अधिक है। 'अड़ंगा' शब्द का व्यवहार करते समय हमारा मतलब इसी मुकाबले से है। हमने स्वराज्य-पार्टी के विधि-विधान की भूमिका में असहयोग की परिभाषा करते हुए इस बात को अच्छी तरह स्पष्ट कर दिया है।

"पर यहां भी हम इस बात के व्यर्थ वाद-विवाद का अन्त करना चाहते हैं कि इस नीति को

"सतत और लगातार अड़ंगे की नीति" कहा जा सकता है या नहीं। हम तो अपनी नीति को विस्तार के साथ बताकर ही सन्तुष्ट हो जाते हैं। हमारे मित्र यदि चाहें तो इसे अधिक उपयुक्त नाम प्रदान कर सकते हैं।

"अब हम इसी सिद्धान्त और नीति को सामने रख कर अपना भावी कार्यक्रम, जिसे हम कौंसिलों में और बाहर पूरा करेंगे, बयान करते हैं।

"कौंसिलों के भीतर हमें निम्नलिखित काम जारी रखना चाहिए—

१. बजट रद करना—जबतक हमारे अधिकारों की मान्यता के रूप में वर्तमान सरकार के विधान में परिवर्त्तन न कर दिया जाय, या जबतक पार्लमेण्ट और इस देश की जनता के बीच में समझौता न हो जाय, तबतक बजट रद करते रहना। इस ढंग के अपनाने के औचित्य के सम्बन्ध में केन्द्रीय बजट की कुछ खास-खास बातों का जिक्र कर देना काफी है। प्रान्तीय बजटों के सम्बन्ध में भी यही बात है। १२१ करोड़ में से (रेलवे को छोड़कर) केवल १६ करोड़ पर राय दी जा सकती है और बाकी जिस रकम पर राय नहीं दी जा सकती उसमें से ६७ करोड़ अकेले सेना पर खर्च कर दिया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस देश की जनता बजट के केवल ⅙ अंश पर राय दे सकती है, और इस सीमित अधिकार को भी रद करने का गवर्नर-जनरल को अधिकार है। यह साफ जाहिर है कि न जनता का बजट बनाने में कोई हाथ है, न बजट बनाने वालों पर कोई अधिकार। जनता को कर बढ़ाने के संबंध में या उसके खर्च के मामलों में कोई अधिकार नहीं है। हम पूछते हैं कि फिर हम किस सिद्धान्त से ऐसा बजट पास करना अपना कर्त्तव्य समझें और उसका उत्तरदायित्व अपने ऊपर लें।

२. कानून-सम्बन्धी प्रस्तावों को रद करना—कानून बनाने के संबंध में सारे प्रस्तावों को जिनके द्वारा नौकरशाही अपनी जड़ मजबूत करना चाहती है, रद करना।

३. रचनात्मक कार्यक्रम—जो प्रस्ताव, योजनायें और बिल हमारे राष्ट्रीय-जीवन की वृद्धि करने के लिए और फलतः नौकरशाही की जड़ उखाड़ने के लिए आवश्यक हों, उन सबको पेश करना।

४. आर्थिक नीति—एक ऐसी निश्चित आर्थिक नीति का अवलम्बन करना जो पूर्वोक्त सिद्धान्तों के ऊपर तय की गई हो और जिसका उद्देश्य भारत से बाहर जाते हुए धन-प्रवाह को रोकना हो। इसके लिए धन-शोषण करने वाले सारे कामों में रुकावट करना आवश्यक है।

"इस नीति को फलदायिनी बनाने के लिए हमें प्रान्तीय और केन्द्रीय कौंसिलों पर कब्जा कर लेना चाहिए जो चुनाव के लिए खुली हों। हमें ऐसी सारी प्राप्य जगहों पर तो कब्जा करना ही चाहिए, साथ ही हमें हरेक कमिटी में भी जहांतक सम्भव हो घुस जाना चाहिए। हम अपनी पार्टी के सदस्यों का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं और उन्हें निमन्त्रण देते हैं कि इस सम्बन्ध में निश्चय शीघ्र-से-शीघ्र कर डालें।

"कौंसिलों से बाहर हमारी नीति इस प्रकार होनी चाहिए—पहली बात यह है कि हमें महात्मा गांधी के कार्यक्रम का हृदय से समर्थन करना चाहिए और कांग्रेस की संस्थाओं के द्वारा उसको पूरा करना चाहिए। हमारी यह निश्चित राय है कि कौंसिलों के बाहर रचनात्मक कार्य की सहायता में बिना कौंसिलों के भीतर हमारे काम का बल बहुत कम हो जायगा; क्योंकि हमें जिस बल की जरूरत है वह कौंसिलों के भीतर नहीं, बाहर तलाश करना होगा, और उस बल के बिना हमारी कौंसिल-नीति की सफलता असम्भव है। रचनात्मक कार्य के मामले में कौंसिलों के भीतर और बाहर

के कार्य का एक दूसरे की सहायता करना आवश्यक है जिससे उस बल में, जिस पर हम निर्भर करते हैं, मजबूती आये। इस सम्बन्ध में हम महात्मा गांधी की सत्याग्रह सम्बन्धी सलाह को बिना हिचकिचाहट के स्वीकार करते हैं। हम उन्हें आश्वासन देते हैं कि ज्यों ही हमें मालूम हो जायगा कि सत्याग्रह के बिना नौकरशाही की स्वार्थ-पूर्ण हठधर्मी का सामना करना असम्भव है, हम तत्काल कौंसिलों को छोड़कर देश को सत्याग्रह के लिए तैयार करने में, यदि वह स्वयं ही उस समय तक तैयार न कर दिया गया हो तो, उनकी सहायता करेंगे। तब हम बिना किसी हीला-हवाले के उनके पीछे हो लेंगे और कांग्रेस की संस्थाओं के द्वारा उनके झण्डे के नीचे काम करेंगे जिससे सब मिलकर सत्याग्रह का ठोस प्रोग्राम पूरा कर सकें।

"साथ ही हमें मजदूरों और किसानों का देश-भर में संगठन करके कांग्रेस के काम की पूर्ति करनी चाहिए। मजदूर-समस्या सारे देशों में कठिन समस्या है, पर इस देश में उसकी कठिनता और भी बढ़ गई है। जहां हमें एक इस प्रकार का संगठन करना चाहिए जिसके द्वारा पूंजीपति और जमींदार मजदूरों का शोषण न कर सकें, वहां इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि कहीं यही संस्थायें बढ़ी-चढ़ी और गैरवाजिब मांगें पेश करके अत्याचार के साधन न हो जायं। मजदूरों को सचमुच संरक्षण की आवश्यकता है, पर इसी तरह उद्योग-धन्धों को भी संरक्षण मिलना आवश्यक है। हमारी संस्था को इन दोनों को रक्त-शोषण से बचाना होगा। ट्रेड-यूनियन-कांग्रेस का संगठन इस रूप में होना चाहिए कि वह दोनों के लिए लाभकारी सिद्ध हो। हमारी सम्मति में तो अन्त में दोनों पक्षों के हित और देश के हित समान ही हैं।"

अहमदाबाद में २७, २८ और २९ जून को जो निश्चय किया गया, जुहू के वार्तालाप ने उसके लिए पहले से ही मार्ग तैयार कर दिया था। निर्वाचित कांग्रेस-संस्थाओं के सारे सदस्यों के लिए हर महीने २,००० गज अच्छी तरह ऐंठा और कता हुआ सूत भेजना लाजिम कर दिया गया। न भेजने पर उस सदस्य का स्थान खाली समझने को कहा गया। जिस समय इस विषय पर चर्चा हो रही थी, कुछ सदस्य इस जुर्माने वाली बात के विरुद्ध रोष प्रकट करने के लिए बैठक से उठकर चले गये। यह प्रस्ताव पास हो गया। ६७ अनुकूल और ३७ प्रतिकूल रहे। पर यह सोचकर कि जो लोग उठकर चले गये थे यदि वे खिलाफ राय देते तो सम्भव था कि यह गिर जाता, गांधीजी ने जुर्माने वाली बात हटा ली और महासमिति ने नागा करनेवालों के खिलाफ जाब्ता कार्रवाई करने की सिफारिश की।

विदेशी कपड़े, अदालतों, स्कूलों-कालेजों, उपाधियों और कौंसिलों के पांचों प्रकार के (कोकनडा के प्रस्ताव को ध्यान में रखते हुए) बहिष्कार पर जोर दिया गया और कांग्रेस के मतदाताओं को खास तौर से हिदायत कर दी गई कि उन लोगों को कांग्रेस की मातहत-संस्थाओं में न चुना जाय जो पांचों प्रकार के बहिष्कार के सिद्धांत में विश्वास न रखते हों और स्वयं भी उस पर अमल न करते हों। सरकार की अफीम-सम्बन्धी नीति की निन्दा की गई और एण्डरूज साहब से अनुरोध किया गया कि वे आसामवालों के अफीम-व्यसन के सम्बन्ध में जांच करें। सिक्खों ने जैतो के अनावश्यक और निर्दयता-पूर्ण गोली-काण्ड के अवसर पर जो शांतिपूर्ण साहस दिखाया था उसके लिए उन्हें बधाई दी गई।

इस बैठक में जिस प्रस्ताव ने काफी जोश पैदा किया वह गोपीनाथ साहा-द्वारा अर्नेस्ट डे की हत्या के धिक्कार और मृत व्यक्ति के परिवार के प्रति समवेदना-प्रकाशन के सम्बन्ध में था। प्रस्ताव में गोपीनाथ साहा के देश-प्रेम की बात को, जिससे प्रेरित होकर उसने हत्या की, हृदय के

साथ स्वीकार किया गया, पर साथ ही उसे पथ-भ्रष्ट बताया गया। महासमिति ने इस और इसी प्रकार की सारी राजनैतिक हत्याओं को जोरदार शब्दों में धिक्कारा और अपनी स्पष्ट राय प्रकट की कि इस प्रकार के कृत्य कांग्रेस की अहिंसा की नीति के विरुद्ध हैं, स्वराज्य के मार्ग में रुकावट डालते हैं और सत्याग्रह की तैयारी में बाधक बनते हैं। इस प्रस्ताव पर खूब वाग्युद्ध हुआ। यह बात छिपी नहीं थी कि यह प्रस्ताव देशबन्धु को पसन्द न आया। इसलिए नहीं कि वे अहिंसा के कायल थे, बल्कि इसलिए कि वे प्रस्ताव के भिन्न-भिन्न अंशों के जोर को बहुत बदल देना चाहते थे। गांधीजी को यह देखकर बड़ा ही सन्ताप हुआ कि उनके कुछ निकटस्थ और अभिन्न-हृदय अनुयायियों ने इस प्रस्ताव के विरुद्ध राय दी। इसी प्रसंग को लेकर उनकी आंखों में आंसू आ गये। ऐसे अवसर उनके जीवन में अधिक नहीं आये हैं। वाताकाश में तीव्रता इसलिए और भी उत्पन्न हो गई थी कि दीनाजपुर (बंगाल) की प्रांतीय-परिषद् में एक और भी अधिक जोरदार प्रस्ताव पास हो चुका था, जिसमें गोपीनाथ साहा के स्वार्थ-त्याग और बलिदान की सराहना की गई थी और उसकी देशभक्ति के प्रति सम्मान प्रकट किया गया था।

स्वराजी इस बैठक में अपने इच्छानुसार सब-कुछ प्राप्त न कर सके और उन्हें अपनी कठोर परिश्रम से प्राप्त की सफलता को मजबूत बनाने के लिए नवम्बर तक रुकना पड़ा। जहांतक अपरिवर्त्तनवादियों का सम्बन्ध था, सूतवाली शर्त्त को उन्होंने आश्चर्यजनक रीति से पूरा किया। अगस्त में २७८० सदस्य थे, सितम्बर में ६३०१ हुए, अक्तूबर में ७७४१ और नवम्बर में ७९०५ हो गये।

परन्तु उस वर्ष की सबसे बुरी बात थी जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगों का होना, खासकर दिल्ली, गुलबर्गा, नागपुर, लखनऊ, शाहजहांपुर, इलाहाबाद और जबलपुर में। सबसे अधिक भयंकर दंगा कोहाट में हुआ। कोहाट के दंगे ने तो भारतवर्ष की कमर तोड़ दी। दंगों के कारणों और परिस्थितियों के सम्बन्ध में गांधीजी और मौ० शौकतअली की एक कमिटी नियुक्त की गई। दोनों ने रिपोर्ट पेश की, पर दुर्भाग्य से दोनों का इस विषय में मत-भेद था कि दंगों की जिम्मेदारी किस पर है। १९२४ की ९ और १० सितम्बर की घटनाओं को बीते आज दस वर्ष से भी अधिक हुए, पर दंगे के फौरन बाद ही कोहाट के भ्रातृस्कूल के हेडमास्टर लाला नन्दलाल ने जो रिपोर्ट लिखी और जिसे कोहाट-दंगा-पीड़ित-सहायक समिति ने प्रकाशित किया, उसे पढ़ने पर तो अब भी शरीर में रोमांच हो आता है। हम इससे अधिक और कुछ नहीं कह सकते कि ९ और १० सितम्बर के गोलीकाण्ड और कत्लेआम के बाद एक स्पेशल ट्रेन ४००० हिन्दुओं को सवार कराकर ले गई। इनमें से २६०० दो महीने बादतक रावलपिण्डी की जनता की और १४०० अन्य स्थानों की जनता की दान-शीलता पर जीते रहे।

ऐसी दशा में यह कोई आश्चर्य की बात नहीं जो गांधीजी ने २१ दिन के उपवास का व्रत लिया। इस क्रोधोन्माद और हत्या-प्रवृत्ति का जिम्मेदार उन्होंने अपने-आपको ठहराया और उपवास के द्वारा प्रायश्चित्त करने का निश्चय किया। अभी अपेण्डिसाइटिस के भयंकर और लगभग सांघातिक प्रकोप से उठे उन्हें अधिक दिन नहीं हुए थे। अतः यह उनके लिए अग्नि-परीक्षा थी। गांधीजी ने व्रत मौलाना मुहम्मदअली के मकान पर आरम्भ किया, पर बाद को उन्हें शहर के बाहर एक मकान में ले जाया गया। इस अवसर का लाभ उठाकर सारी जातियों के नेताओं को एकत्र किया गया। कलकत्ते के बड़े पादरी भी शरीक हुए। यह एकता-परिषद् २६ सितम्बर से २ अक्तूबर सन् १९२४ तक होती रही। परिषद् के सदस्यों ने प्रतिज्ञा की कि वे धर्म और मत की स्वतन्त्रता के सिद्धांत का पालन कराने का अधिक-से-अधिक प्रयत्न करेंगे और उत्तेजन मिलने पर भी इनके विरुद्ध किये गये

आचरण की निन्दा करने में कोई कसर न रक्खेंगे। एक केन्द्रीय राष्ट्रीय पंचायत बनाई गई, जिसके संयोजक और अध्यक्ष गांधीजी हुए और हकीम अजमलखां, लाला लाजपतराय, के० एफ० नरीमान, डा० एस० के० दत्त और लायलपुर के मास्टर सुन्दरसिंह सदस्य हुए। परिषद् ने धार्मिक सिद्धांतों को मानने, धार्मिक विचारों को प्रकट करने और धार्मिक रीति-रिवाजों का पालन करने, धर्मस्थानों की पवित्रता का ध्यान रखने और गोवध और मस्जिद के आगे बाजा बजाने के सम्बन्ध में सबका एक-समान अधिकार माना, पर साथ ही उनकी मर्यादाओं का भी निदर्शन किया। अखबारों को चेतावनी दी कि वे सांप्रदायिक मामलों में समझबूझ कर लिखा करें और जनता से अनुरोध किया गया कि गांधीजी के उपवास के अंतिम सप्ताह में देशभर में प्रार्थना की जाय। ८ अक्तूबर जन-सभाओं द्वारा ईश्वर का धन्यवाद देने के लिए नियत किया गया।

अभी गांधीजी ने अपना उपवास समाप्त ही किया था कि उन्हें बम्बई में २१ और २२ नवम्बर को सर्वदल-सम्मेलन में और उसके बाद ही और उसी के सिलसिले में २३, २४ को महा-समिति की बैठक में शरीक होना पड़ा। सर्वदल-सम्मेलन करने का उद्देश्य यह था कि बंगाल में सरकार का दमन जोर पकड़ता जा रहा था। यह दमन-नीति स्वराज्य-पार्टी और तारकेश्वर में सत्या-ग्रह करनेवाले कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध आरम्भ की गई थी। लोकमत को इसके विरुद्ध तैयार करना था। परिषद् ने बंगाल-सरकार-द्वारा जारी किये गये क्रिमिनल-ला-अमेण्डमेण्ट-आर्डिनेन्स के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पास किया और उसके साथ ही १८१८ के रेगूलेशन ३ को रद करने पर जोर दिया। सर्वदल-सम्मेलन ने बंगाल की अशान्ति का कारण स्वराज्य न मिलना ठहराया और एक कमिटी नियुक्त की, जिसके सुपुर्द स्वराज्य की योजना और साम्प्रदायिक समझौता तैयार करने का काम किया गया। इस कमिटी में देश के सारे राजनैतिक दलों के प्रमुख व्यक्तियों को रक्खा गया। ३१ मार्च १९२५ तक रिपोर्ट मांगी गई। परिषद् के द्वारा कुछ विशेष काम होने की आशा न थी। पर इससे सम्भवतः देशबन्धु चित्तरंजन दास की गिरफ्तारी टल गई। उस वर्ष की मुख्य घटना थी गांधीजी का देशबन्धु और नेहरूजी के आगे बहिष्कार के मामले में झुक जाना। इन तीनों प्रमुख व्यक्तियों ने एक सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया और उसे महासमिति ने मान लिया। इस वक्तव्य का सारांश यह था कि सारी पार्टियों का सहयोग प्राप्त करने के लिए असहयोग को राष्ट्रीय कार्य क्रम के रूप में स्थगित किया जाता है। हां, विदेशी कपड़ा न पहनने के सम्बन्ध में वही पुरानी नीति रहेगी। यह भी कहा गया कि अन्य दल भिन्न-भिन्न दिशाओं में रचनात्मक-कार्य करें, और स्वराज्य-पार्टी कौंसिलों में काम करे। इसके एवज में गांधीजी ने यह तय कराया कि कांग्रेस-सदस्यों के द्वारा ।) साल के बजाय २००० गज हाथ का कता सूत प्रति मास दिया जाय।

वेलगांव-कांग्रेस

असहयोग के इतिहास में वेलगांव-कांग्रेस खास महत्व रखती है। गांधीवाद के विरुद्ध जो विद्रोह उठा था वह करीब-करीब अन्तिम सीमा तक पहुंच चुका था। कांग्रेस अब ऐसे स्थान पर खड़ी थी जहां से दो मार्ग दो ओर को जाते थे। कांग्रेस-वादियों को अब दो परस्पर-विरुद्ध दलों में बंट जाना चाहिए या समझौता करके अपने भेद-भाव को मिटा लेना चाहिए, और यदि समझौते की बात ठीक हो तो इस जटिल काम को गांधीजी के सिवा और कौन हाथ में ले? केवल गांधीजी ही ऐसे थे जो सत्याग्रह का कार्य-क्रम वापस लेकर भी अपरिवर्तन-वादियों को शांत कर सकते थे और कौंसिल-प्रवेश का सामना करके भी स्वराजियों को सन्तुष्ट रख सकते थे। यदि किसी महती योजना के आरम्भ करने के लिए महान् व्यक्ति की आवश्यकता है, तो उसे बन्द करने में भी महान् व्यक्ति ही

समर्थ हो सकता है। इसलिए यह समय के अनुकूल ही हुआ कि १९२४ की कांग्रेस के सभापति गांधीजी हुए। उन्होंने अपना अद्‌भुत भाषण पेश किया; पर कांग्रेस में उसका संक्षेप ही सुनाया गया। इस भाषण में उन्होंने १९२० से उस समय तक की घटनाओं पर प्रकाश डाला और बताया कि किस प्रकार कांग्रेस मुख्यतः एक ऐसी संस्था रही है जिसके द्वारा भीतर से शक्ति का विकास होता रहा है। सब तरह के बहिष्कारों को भिन्न-भिन्न दलों ने अपनाया। वैसे कोई भी बहिष्कार पूरा न हो सका, फिर भी जिन-जिन संस्थाओं का बहिष्कार किया गया उनका रौब बहुत-कुछ कम हो गया। सबसे बड़ा बहिष्कार हिंसा का बहिष्कार था। पर अहिंसा ने असहायावस्था की निष्क्रियता को छोड़कर अभी साधन-सम्पन्न और परिष्कृत रूप धारण नहीं किया था। जिन्होंने असहयोग में साथ नहीं दिया उनके विरुद्ध एक प्रकार की छिपी हुई हिंसा से काम लिया गया। पर अहिंसा जैसी कुछ भी थी, उसने हिंसा को दबाये रक्खा। इसमें कोई सन्देह नहीं रहा कि किसी आदर्श के लिए कष्ट सहने की क्षमता उस आदर्श की पूर्ति में अवश्य सहायक होगी। पर 'ठहरो' कहने का भी समय आया और जिन्होंने असहयोग किया था उनमें से बहुत से लोग पश्चात्ताप भी करने लगे। फलतः सब प्रकार के बहिष्कार उठा लिये गये और केवल एक बहिष्कार—विदेशी कपड़ों का - रह गया। इस प्रकार बहिष्कार करने का जनता का न केवल अधिकार ही था, बल्कि कर्त्तव्य भी था। विदेशी कपड़े का बहिष्कार वैसा ही आवश्यक है जैसा विदेशी पानी या गेहूं या चावल का बहिष्कार करना। इसमें सन्देह नहीं कि बहिष्कार एक प्रकार दबाव डालना है, पर यह दबाव क्रोध से नहीं, सदिच्छा से प्रेरित होकर डाला जाता है। लंकाशायर का व्यापार अनैतिक था, क्योंकि वह भारत के लाखों किसानों को बर्बाद करके बढ़ा और कायम रहा। एक प्रकार के अनैतिक आचरण ने दूसरे प्रकार के अनैतिक आचरण को जन्म दिया है और ब्रिटेन के अनेक अनैतिक आचरणों की जड़ में यह अनैतिक व्यापार छिपा हुआ था। फलतः हमें हाथ से कातने और हाथ से बुनने का काम अपनाना पड़ा, जिसके द्वारा हम किसानों के संसर्ग में आये। पर गांधीजी के कहने का यह मतलब न था कि सब प्रकार का अंग्रेजी माल हमारे लिए हानिकर है; परन्तु कपड़ा चाहे अंग्रेजी हो, चाहे और किसी विलायत का हो, हमारे लिए हानिकर सिद्ध होगा। यन्त्रों के सम्बन्ध में उनके विचार जो हैं उन सबको अपनाने के लिए वे जनता से नहीं कह रहे थे। अहिंसा के सम्बन्ध में भी उनका यही रुख था। परन्तु अकेले घरेलू-धन्धे ने ही जिन हजारों आदमियों के दरवाजे से सुख-चैन को दूर कर रक्खा था उनके विनाश से उनका जी बहुत दुःखी था। उनके और स्वराजियों के मतभेदों में समझौता हो गया था। स्वराजी सूत कात कर देने को राजी हो गये और गांधीजी ने उनके कौंसिलों में काम करने पर आपत्ति नहीं की। उन्होंने कोहाट के दंगे पर सन्ताप प्रकट किया, अकालियों के साथ सहानुभूति प्रकट की, अस्पृश्यता के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और स्वराज्य-योजना का जिक्र किया। यह तो लक्ष्य है, पर हम इसे नहीं जानते। चरखा, हिन्दू-मुसलिम ऐक्य और अस्पृश्यता-निवारण ये साधन हैं। "मेरे लिए तो साधनों का जानना ही काफी है। मेरे जीवन-सिद्धांत में साधन और साध्य पर्य्यायवाची शब्द हैं।" इस प्रकार भूमिका बांधने के बाद गांधी जी ने स्वराज्य की योजना के सम्बन्ध में कुछ बातें बताईं।

मताधिकार के लिए शारीरिक परिश्रम की शर्त, सैनिक व्यय में कमी, सस्ता न्याय, मादक-द्रव्य और उससे आने वाली चुंगी का अन्त, सिविल और सैनिक नौकरियों के वेतनों में कमी, प्रांतों का भाषा की दृष्टि से पुनर्निर्माण, इस देश में विदेशियों के इजारों (मोनोपली) की नये सिरे से जांच-पड़ताल, भारतीय नरेशों को उनकी पद-मर्यादा की गारण्टी और केन्द्रीय सरकार-द्वारा ग़लत न पहुंचने

का आश्वासन, तानाशाही का अन्त, नौकरियों में जाति-भेद का अन्त, भिन्न-भिन्न संस्थाओं को धार्मिक स्वतन्त्रता, देशी-भाषाओं द्वारा सरकारी काम-काज, और हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा मानना।...

पूर्ण स्वराज्य के प्रश्न की ओर भी गांधीजी का ध्यान आकर्षित हुआ। अहमदाबाद के बाद से उनके विचार सौम्य ही गये थे; क्योंकि उस समय वे आशा से भरे हुए थे, किन्तु अब जहां तक सरकार के रंग-ढंग और स्थिति का सम्बन्ध था, गांधीजी की आशाओं पर पानी पड़ गया था। उन्होंने कहा—"मैं साम्राज्य के भीतर ही स्वराज्य पाने की चेष्टा करूंगा, पर यदि स्वयं ब्रिटेन के दोष से ही उससे सारे नाते तोड़ना आवश्यक हुआ तो मैं ऐसा करने में संकोच नहीं करूंगा।" इसके बाद उन्होंने स्वराज्य-पार्टी और रचनात्मक कार्य-क्रम का जिक्र किया और बंगाल की अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के बाद अहिंसा में अपनी आस्था प्रकट करके भाषण समाप्त किया। बंगाल में लॉर्ड रीडिंग ने १९२४ का आर्डिनेन्स नं० १ जारी कर दिया था, जिसके द्वारा उन लोगों को, जिन पर स्थानिक सरकार-द्वारा क्रांतिकारी-दल से सम्बन्ध रखने का सन्देह किया जाता हो, गिरफ्तार किया जा सकता था और स्पेशल कमिश्नरों की अदालतों में उनके मामले का सरसरी में फैसला किया जा सकता था। गांधीजी ने इस बात को माना कि यह सब कुछ स्वराजियों के विरुद्ध किया जा रहा है।

कांग्रेस ने बी० अम्मा, सर ए० चौधरी, सर आशुतोष मुकर्जी, भूपेन्द्रनाथ वसु, डा० सुब्रह्मण्य ऐयर, ए० जी० एम० भुरग्री और अन्य कई कांग्रेसी कार्यकर्ताओं और नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। नवम्बर में महासमिति ने गांधीजी, दास बाबू और नेहरूजी के जिस समझौते को पास किया था उसे सही किया गया। कांग्रेस-मताधिकार में भी परिवर्तन किया गया। हिन्दुओं के कोहाट-त्याग पर खेद प्रकट किया गया। कोहाट के मुसलमानों को सलाह दी गई कि वे हिन्दुओं को उनके जान-माल के सम्बन्ध में आश्वासन दें, साथ ही हिन्दू मुहाजरीन को सलाह दी गई कि जबतक कोहाट के मुसलमान उन्हें सम्मानपूर्वक न बुलावें तबतक वे वापस न जायं। इसी तरह गुलबर्गा के पीड़ितों के प्रति भी सहानुभूति दिखाई गई। अस्पृश्यता और वायकोम-सत्याग्रह के संबंध में उचित कारंवाई की गई। वैतनिक राष्ट्र-सेवा को पूर्ण सम्मानप्रद बताया गया। अकाली-दल, मदिरा और अफीम के सम्बन्ध में भी विचार हुआ और कांग्रेस के विधान में कुछ जरूरी तब्दीलियां की गईं।

प्रवासी-भारतवासियों के लिए श्री वझे, पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और श्रीमती सरोजिनी नायडू की सेवाओं की सराहना की गई। सरकार भी चुपचाप नहीं बैठी थी। वह भी केनिया के मामले में काफी जोर की लड़ाई लड़ रही थी। भारत-सरकार ने "भारत-मन्त्री को चेतावनी दी कि यदि निश्चय केनिया-प्रवासियों के विरुद्ध गया तो भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य से पृथक् होने और उपनिवेशों के विरुद्ध बदले की कारंवाई करने के सम्बन्ध में जोर का आन्दोलन आरम्भ हो जायगा।" यह भी याद रखने की बात है कि १९२३ में जो साम्राज्य-परिषद् हुई थी, जिसमें भारत की ओर से सर तेजबहादुर सप्रू और महाराजा अलवर गये थे, उसमें उपनिवेशों में भारतीयों का बराबरी का दर्जा स्वीकार करने वाले १९२१ के प्रस्ताव की तो पुष्टि की ही गई, साथ ही भारत-सरकार से एक ऐसी समिति भी नियुक्त करने को कहा गया जिससे भिन्न-भिन्न उपनिवेश मशविरा किया करें। इस निश्चय में दक्षिण-अफ्रीका शरीक नहीं हुआ। इस उपनिवेश-समिति में मि० होप सिम्पसन, श्रीमान् आगाखां, सर बेन्जमिन राबर्टसन, दीवानबहादुर टी० रंगाचारी और श्री के० सी० राय नियुक्त किये गये और इसकी बैठक १९२४ के आरम्भ में हुई और जुलाई के अन्त में भंग हुई। इसमें केनिया, फिजी और टांगानिका के प्रवासी भारतीयों की शिकायतों के सम्बन्ध में

भी चर्चा की गई। अगस्त १९२४ में उपनिवेश-मन्त्री मि० थामस ने निश्चय किया कि दूसरे देशों से आकर बसने पर प्रतिबन्ध लगाने के सम्बन्ध में जो आर्डिनेन्स बनाया गया था वह अमल में न लाया जाना चाहिए, परन्तु हाइलेण्ड्स और मताधिकार के सम्बन्ध में जो निश्चय है वही कायम रहेगा। यह भी निश्चय किया गया कि जो भारतवासी दक्षिण-अफ्रीका में जाकर बसना चाहें वे निचली भूमि पर जाकर बस सकते हैं और उसपर खेती कर सकते हैं। १९२४ के जून में सम्राट् की सरकार ने एक ईस्ट अफ्रीकन कमिटी नियुक्त की, जिसके चेयरमैन लॉर्ड साउथबरो थे। इसके सामने भारतीय दृष्टिकोण रक्खा जा सकता था। इसी बीच दक्षिण-अफ्रीका की सरकार में परिवर्तन हो गया, इसलिए 'क्लास-एरिया बिल' अपने आप ही रद हो गया। साथ ही 'नेटाल बरोज आर्डिनेन्स' पास हो गया, जिसके अनुसार और अधिक भारतीय नागरिक या रईस न हो सकते थे।

६

हिस्सा या साझा ?—१९२५

१९२५ की राजनीति मुख्यतः कौंसिलों में किये गये काम तक सीमित रही। अब स्वराजियों को अपरिवर्त्तनवादियों की तरफ से परेशानी न रही; क्योंकि गांधीजी दोनों दलों को एक तराजू पर रखने को मौजूद थे ही। मध्यप्रदेश और बंगाल में द्वैधशासन का अन्त हो गया था। लॉर्ड लिटन के निमंत्रण पर देशबन्धु दास ने बंगाल में मंत्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया और न दूसरों को ही बनाने दिया। वे इसी प्रकार के विध्वंस की बात सोचते आ रहे थे। जब लॉर्ड रीडिंग का १९२४ का नं० १ आर्डिनेन्स समाप्त हुआ तो बंगाल-कौंसिल में एक बिल पेश किया गया, जिसे स्वराजियों ने और स्वराजियों के प्रभाव ने १९१५ की जनवरी में रद कर दिया। लॉर्ड लिटन ने उसे सही कर दिया और लन्दन सम्राट्-सरकार की मंजूरी के लिए भेजा। १७ फरवरी को बंगाल-कौंसिल ने प्रस्ताव पास करके बजट में मंत्रियों के वेतन की गुंजायश रखने की सिफ़ारिश की। स्वराजियों को हारना पड़ा। पर उन्होंने शीघ्र ही इस क्षति को पूरा कर लिया। २३ मार्च को बजट पर बहस के दौरान में मंत्रियों के वेतन ६९ रायों से रद कर दिये गये। पक्ष में ६३ रायें थीं। इधर बंगाल असहयोग के इस निश्चित मार्ग पर चल रहा था, उधर मध्यप्रान्त में इस बात की चर्चा की जा रही थी कि स्वराज्य-पार्टी को मंत्रित्व ग्रहण क्यों नहीं करना चाहिए, जिससे वह भीतर से विध्वंस कर सके? बड़ी कौंसिल में स्वराज्य-पार्टी १९२४ और १९२५ में विरोधी दल का काम करती रही। स्वराजियों ने सिलेक्ट कमिटियों में भाग लिया और लाभदायक कानून पास करने में सहयोग दिया। कभी किसी पार्टी का साथ दिया, कभी किसी का, और यदाकदा सरकार का भी।

जब श्री सी० दौरास्वामी आयंगर ने बंगाल-आर्डिनेन्स को एक कानून के द्वारा रद करने का प्रस्ताव पेश किया तो उसके पक्ष में ५८ और विपक्ष में ४५ रायें आईं। १९२५ की ३ फरवरी को श्री विट्ठलभाई पटेल ने १८५० का शाही कैदियों का कानून, १८६७ का सीमान्त के अत्याचार का कानून और १९२१ का राजद्रोही सभाबन्दी कानून रद करने के लिए बिल पेश किया तो सीमान्तवाले कानून के सिवा बाकी हिस्सा पास हो गया।

श्रीयुत नियोगी ने अपना बिल पेश किया, जिसके द्वारा वे रेलवे-ऐक्ट का संशोधन करके किसी जाति-विशेष के लिए डब्बे रिजर्व करने की प्रथा को मिटा देना चाहते थे। यह बिल नामंजूर हुआ। डा० गौड़ ने बिल पेश किया कि लन्दन की प्रिवी कौंसिल में अपीलें न भेजी जाया करें, पर वह रद होगया और स्वराजियों ने उसमें सरकार का साथ दिया। वेंकटपति राजू का यह प्रस्ताव कि देश में तत्काल सैनिक-विद्यालय कायम किया जाय, पास होगया और सरकार को हार खानी पड़ी। २५ फरवरी १९२५ को रेलवे-बजट की बहस में स्वराजियों और स्वतन्त्र-दल वालों ने सरकारी सदस्यों का मुकाबला करने के बजाय एक-दूसरे पर प्रहार किया और फलतः पण्डित मोतीलाल के बजट को रद करने का

प्रस्ताव ६६ रायों से रद होगया। पक्ष में केवल ४१ रायें आईं। इस प्रकार बजट और उसकी मदों पर उनके गुण-दोषों के अनुसार ही विचार किया गया। आरम्भ में लगातार और एकसा अड़ंगा डालने का जो संकल्प किया गया था, उससे कहीं काम न लिया गया। पण्डित मोतीलाल का कार्य-कारिणी के सदस्यों का सफर-खर्च घटाने का प्रस्ताव ६५:४८ से पास होगया। कोहाट का दंगा, सेना में भारतीयों का अभाव, मुडीमैन-कमिटी की रिपोर्ट, गोलमेज-परिषद्, दमन आदि सब लिये गये थे। जब असेम्बली में ऐसा बिल पेश किया गया जिसके अनुसार बंगाल-क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-ऐक्ट के मातहत मामलों की अपील हाईकोर्ट में की जा सकती थी, तो बड़ी विचित्र अवस्था हुई। बिल में तीन अन्य धारायें ऐसी थीं जिनके द्वारा अदालत में हाजिर होने के हुक्मनामे को रद किया और अभियुक्तों को बंगाल से बाहर नजरबन्द रक्खा जा सकता था। स्वतन्त्र-दलवाले और स्वराजी बिल के पहले भाग का तो अनुमोदन करना चाहते थे और बाकी तीन भागों को रद करना। सरकार की दृष्टि से बिल इस प्रकार बिलकुल अधूरा रह जाता। फलतः जब उसे राज्य-परिषद् ने पास कर दिया तो लॉर्ड रीडिंग ने उस पर सही कर दी।

इस समय तक देशबन्धुदास ने कांग्रेस में अपने लिए एक गौरवपूर्ण स्थान तैयार कर लिया था। इसके अतिरिक्त बेलगांव-कांग्रेस के अवसर पर एक समाचार प्रकाशित हुआ कि देशबन्धु दास ने अपनी सारी सम्पत्ति देश को अर्पण कर दी है, जिसका उपयोग परोपकार में किया जायगा। इस बात से देशबन्धु दास जनता की निगाह में बहुत ऊंचे उठ गये। इधर डॉ० बेसेण्ट के नेशनल कन्वेन्शन ने 'कामनवैल्थ आफ इण्डिया बिल' का मसविदा भी प्रकाशित कर दिया था। एकता-परिषद् ने साम्प्रदायिक समस्या को सुलझाने के लिए जो कमिटी नियुक्त की थी वह अलग माथा-पच्ची कर रही थी। लाला लाजपतराय ने हिन्दू-महासभा की ओर से २५ फरवरी को एक प्रश्नावलि प्रकाशित की। गत नवम्बर में जो सर्व-दल-सम्मेलन हुआ था, उसके द्वारा नियुक्त की गई उपसमिति कोई अच्छी स्वराज्य-योजना तैयार न कर सकी और अन्त को मार्च में अनिश्चित समय के लिए स्थगित होगई। १९२५ के मार्च और अप्रैल में गांधीजी ने दक्षिण-भारत और केरल में दौरा किया। वायकोम-सत्याग्रह जोरों पर था। गांधीजी की उपस्थिति ने समझौता होने में मदद दी। कुछ खास सड़कों पर से होकर अस्पृश्य न गुजर पाते थे। यह आन्दोलन इस कड़ाई को दूर करने के लिए आरम्भ किया गया था। त्रावणकोर-सरकार ने सत्याग्रहियों का प्रवेश रोकने के लिए कुछ बाड़े बना दिये थे और सिपाही तैनात कर दिये थे। त्रावणकोर-सरकार को यह बात सुझाई गई कि उसके इस रवैये से वह जनता में यह धारणा उत्पन्न कर देगी कि वह त्रावणकोर के हिन्दुओं की संकीर्णता का अपने शारीरिक बल-द्वारा समर्थन कर रही है। जब सरकार ने बाड़े और सिपाही हटा लिये तो सत्याग्रहियों का शत्रु केवल लोकमत रह गया और सत्याग्रह का कारण उस समय के लिए हट गया।

दक्षिण से गांधीजी बंगाल जानेवाले थे। दास बाबू अस्वस्थ होने लगे थे। उन्हें शाम को ज्वर रहने लगा, जो चिन्ता का कारण होरहा था। इसके लिए उनके यूरोप जाने का प्रबन्ध किया गया था। साथ ही यह आशा थी कि वे ब्रिटिश-सरकार के साथ समझौता करा सकेंगे। यह 'सफलता' की मनोवृत्ति उन सारे कार्यकर्त्ताओं में मिलती है जिन्होंने बड़े-बड़े आन्दोलनों का संचालन किया है। जब १९१७ में मि० माण्टेगु ने भारत का दौरा किया था तो श्रीमती बेसेण्ट पर भी इस प्रकार की मनोवृत्ति ने अधिकार कर लिया था।

देशबन्धु की मृत्यु और उसके बाद

फ़रीदपुर की बङ्गाल-प्रान्तीय-परिषद् के अवसर पर यही स्थिति थी। देशबन्धु ने फ़रीदपुर में

कुछ शर्तों पर सहयोग प्रदान करने की जो बात कही सो इसी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर। गांधीजी का विश्वास था कि वर्तमान अशान्ति दूर करने के लिए जिस प्रकार के हृदय-परिवर्तन की आवश्यकता है, वह दिखाई नहीं पड़ता। पर दास बाबू का विश्वास था कि हृदय में परिवर्तन होगया है। उन्होंने 'स्टेट्समैन' के प्रतिनिधि से कहा—"मैं हृदय-परिवर्तन के लक्षण हर जगह देख रहा हूं। मेल-जोल के चिह्न मुझे हर जगह दिखाई पड़ रहे हैं। संसार संघर्ष से थक गया है और उसमें मुझे सर्जन और सङ्गठन की इच्छा दिखाई पड़ रही है।" दास बाबू ने ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को संबोधन करते हुए कहा—"आज आप ऐसी शान्ति प्राप्त कर सकते हैं जो हम दोनों के लिए सम्मान-प्रद हो।" इन दिनों गांधीजी ने दास बाबू को अपना 'एटर्नी' कहा था और स्वराज्य-पार्टी को कौंसिलों में कांग्रेस की प्रतिनिधि कहा करते थे। उनकी अपने-आपको भुला देने की क्षमता अद्भुत थी और कभी-कभी उनके पुराने अनुयायियों की भक्ति तो नहीं, पर धैर्य भंग करने वाली अवश्य सिद्ध होती थी।

इस अवसर पर लॉर्ड रीडिंग कुछ महीने की छुट्टी पर इंग्लैण्ड गये थे। लॉर्ड बर्कनहेड ने स्वराजियों को सलाह दी थी कि वे विध्वंस के बजाय सहयोग करें। इन दोनों बातों ने मिलकर दास बाबू के हृदय में आशा उत्पन्न कर दी थी। इसके अलावा कर्नल वेजवुड और मि० रैमजे मैकडानल्ड भारत में समझौता कराने की चेष्टा कर रहे थे। गांधीजीने दास बाबू की मृत्यु के बाद एक मर्मपूर्ण बात कही थी। उन्होंने कहा था कि दास बाबू को लॉर्ड बर्कनहेड में बड़ी आस्था थी और उन्हें विश्वास था कि बर्कनहेड भारत के लिए बहुत कुछ करेंगे।

देशबन्धु दास ने पण्डित मोतीलाल नेहरू को जो अन्तिम पत्र लिखा था, जिसे पण्डितजी देशबन्धु का अन्तिम राजनैतिक वसीयतनामा कहा करते थे, उसमें उन्होंने कहा—"हमारे इतिहासकी सबसे अधिक नाज़ुक घड़ी आरही है। इस वर्ष के अन्त में ठोस काम होना चाहिए और दूसरे साल के आरम्भ में हमारी सारी शक्तियां काम में लग जायंगी। इधर हम दोनों बीमार पड़े हैं। ईश्वर ही जाने, क्या होने वाला है।" इसके कुछ ही दिनों बाद ईश्वर की ऐसी इच्छा हुई कि उसने देशबन्धु को स्वर्ग में बुला लिया। १६ जून १९२५ को दार्जिलिंग में उनका परलोकवास हुआ। दास बाबू का जीवन स्वयं ही भारत के इतिहास का एक परिच्छेद था। दास बाबू के देहान्त के सम्बन्ध में खुलना में गांधीजी ने गद्‌-गद्‌ होकर कहा था—"उनकी स्मृति को अमर बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए। आंसू बहाना बड़ा आसान है। परतु आंसुओं से हमें या उनके निकटस्थ और प्रिय व्यक्तियों को कोई लाभ न होगा। यदि हम सब हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, ये सब जो अपने-आपको भारतीय कहते हैं, संकल्प कर लें कि जिस काम के लिए देशबन्धु जिये और जिस काम में वे निमग्न रहे उसे पूरा करेंगे, तो हम सचमुच उनके स्मारक के रूप में कुछ कर सकेंगे। हम सब परमात्मा में विश्वास रखते हैं। हमें जानना चाहिए कि शरीर नाशवान् है। आत्मा का नाश कभी नहीं होता। जिस शरीर में देशबन्धु दास की आत्मा का निवास था वह नष्ट हो गया। पर उनकी आत्मा का नाश कभी न होगा। उनकी आत्मा ही क्यों, उनका नाम भी, जिन्होंने इतनी सेवा की है और इतना त्याग किया है, अमर रहेगा और जो कोई बूढ़ा या जवान उनका जरा भी अनुकरण करेगा वह उनकी स्मृति को अमर बनाने में सहायक होगा। हम सबमें उनकी जैसी बुद्धि नहीं है, पर वे जिस उत्साह के साथ अपनी मातृभूमि को प्रेम करते थे, हम उनका अनुकरण अवश्य कर सकते हैं।" यहां जरा सरकारी राय का उद्धरण भी देना चाहिए—"श्री दास में अपने प्रतिद्वन्द्वी की दुर्बलताओं को अचूक खोज निकालने की जन्म-जात शक्ति थी। वे अपनी योजनाओं को पूरा करने में लौह-संकल्प से काम लेते थे, जिसके कारण उनका स्थान अपने योग्य-से योग्य साथियों से कहीं ऊंचा रहता

था।" महात्मा गांधी की तरह उनकी भी प्रशंसा शत्रु तक करते थे। उनके प्रति जिन असंख्य लोगों ने सम्मान प्रकट किया था उनमें से अनेक यूरोपियन और सरकार के उच्चपदस्थ अफसर भी थे। जिन-जिन ने सन्देश भेजे उनमें भारत-मन्त्री और वाइसराय भी थे। जब कौंसिल की बैठक अगस्त में हुई तो सबसे पहले देशबन्धु दास की और फिर वयोवृद्ध देश-भक्त सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी की, जिनका परलोक ६ अगस्त को हुआ, मृत्यु के द्वारा हुई देश की क्षति का उल्लेख उपयुक्त शब्दों में किया गया।

गांधीजी देशबन्धु दास से अत्यन्त स्नेह रखते थे। वे बंगाल ही में रुक गये और उनकी स्मृति में एक महान् स्मारक बनाया। उन्होंने दस लाख रुपया एकत्र किया। देशबन्धु दास का भवन १४८ रसा-रोड, देश के अर्पण हुआ। इस भवन को दास बाबू की उस ट्रस्ट-योजना के अनुसार, जो उन्होंने बेलगांव-कांग्रेस से पहले प्रकट की थी, स्त्रियों और बच्चों का अस्पताल बना दिया गया। गांधीजी ने स्वराजियों के हाथ में सारी शक्ति देने और बंगाल में स्वराज्य-पार्टी की जड़ मजबूत जमाने में कोई कसर न उठा रक्खी। इस प्रकार श्री जे० एम० सेनगुप्त को कौंसिल में स्वराज्य-पार्टी का नेता, कलकत्ता-कारपोरेशन का मेयर, और बंगाल प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी का सभापति बनाने का काम उन्हीं का था। यह तिहरा राजमुकुट जो दास बाबू धारण किये हुए थे, सेनगुप्त के सिर पर रख दिया गया।

इधर गांधीजी स्वराजियों को निश्चिंत करने की भरसक चेष्टा कर रहे थे, उधर गांधीजी की इस उदारता का उत्तर स्वराज्य-पार्टी दूसरे ढंग से दे रही थी। स्वराज्य-पार्टी की जनरल कौंसिल का विरोध सूत देने की उस शर्त के खिलाफ हुआ था, जो बेलगांव में तय हो चुकी थी। यह विरोध बढ़ता ही गया, और अन्त में इस शर्त को उड़ा देने का फैसला महासमिति के हाथ में सौंप दिया गया। महासमिति में स्वराज्य-पार्टी का बहुमत था ही। १५ जुलाई को महासमिति की कलकत्ते की बैठक के बाद सम्भवतः गांधीजी ने पण्डित मोतीलाल नेहरू के पास एक पर्ची लिखकर भेजी कि चूंकि कांग्रेस में स्वराजियों की बहुलता है, और चूंकि आप स्वराज्य-पार्टी के सभापति हैं, इसलिए आपको कार्य-समिति के सभापतित्व का भार भी अपने ऊपर लेना चाहिए। गांधीजी ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि मैं इसका सभापति और अधिक रहना नहीं चाहता। इस पर्ची से स्वराजियों में हलचल मच गई। पर अन्त में यह तय हुआ कि कम-से-कम उस साल के अन्त तक गांधीजी ही महासमिति के सभापति बने रहेंगे, पर यदि अगली बैठक में सूत कातने की शर्त उठा दी जायगी तो वे इस्तीफा दे देंगे और एक अलग चर्खा-संघ स्थापित करेंगे। कार्य-समिति ने सूत कातने की शर्त में परिवर्तन करने के प्रश्न पर विस्तार के साथ विचार किया और अन्त में सारे प्रश्न पर दुबारा विचार करने के लिए १ अक्तूबर को बैठक करने का निश्चय किया। इस बीच में गांधीजी ने स्वराज्य-पार्टी का समर्थन करने में कुछ उठा न रक्खा। अगस्त में गांधीजी ने लिखा था—"मुझे कांग्रेस के मार्ग में और अधिक खड़ा न होना चाहिए। कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन मुझ-जैसे आदमी के द्वारा, जिसने अपने आपको अपढ़ जनता में मिला दिया है और जिसका भारत के शिक्षित-समाज की मनोवृत्ति से मौलिक अन्तर है, होने की अपेक्षा शिक्षित भारतीयों के द्वारा होने के मार्ग में मैं बाधक बनना नहीं चाहता। मैं अब भी उन पर अपना असर डालना चाहता हूं, परन्तु कांग्रेस को छोड़ कर नहीं। यह काम तभी अच्छी तरह हो सकता है, जब मैं रास्ते में से हट जाऊं और कांग्रेस की सहायता से, उसके नाम पर, अपना सारा ध्यान रचनात्मक कार्य में लगा दूं। मैं कांग्रेस की सहायता और उसके नाम का उपयोग उसी हद तक करूंगा जिस हद तक शिक्षित भारतीय मुझे अनुमति देंगे।" असली बात यह थी कि एक ओर तो स्वराजी लोग गांधीजी के सिद्धान्तों का खण्डन करते

थे और दूसरी ओर उनका नेतृत्व भी चाहते थे। वे उनका सहयोग अपनी शर्तों पर चाहते थे। इस अवसर पर श्रीमती सरोजिनी नायडू ने कई सज्जनों से कहा—"उनका सन्देश केवल एक है, और वह पुराना पड़ गया है।"

स्वराजी प्रस्ताव

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने असेम्बली के १९२५-२६ के शिमला-अधिवेशन से कुछ पहिले ही भारतीय सैण्डहर्स्ट कमिटी में स्थान ग्रहण किया था। इस कमिटी को आम तौर से स्कीन-कमिटी कहा जाता था। इस मौके पर स्कीन-कमिटी का इतिहास भी संक्षेप में सुन लें। १९२५ से पहले कुछ दिनों से भारत के कुछ लोग भारत में सैण्डहर्स्ट के मुकाबले में एक सैनिक-विद्यालय खोले जाने की मांग कर रहे थे। १९२५ के असेम्बली के दिल्ली-अधिवेशन में एक प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें अधिकारियों से इस प्रकार की संस्था तत्काल खोलने को कहा गया। तदनुसार भारत-सरकार ने एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी का काम यह देखना था कि सम्राट् की सेना में अफसरों के पद के लिए योग्य भारतीय उम्मीदवार किस प्रकार प्राप्त हों, और उनके मिलने पर उन्हें सबसे अच्छे ढंग से किस प्रकार शिक्षा दी जाय। इसलिए कमिटी से यह पता लगाने को कहा गया कि भारत में सैनिक-विद्यालय खोलना उचित और सम्भव है या नहीं, और यदि सम्भव हो तो इस विद्यालय में ही शिक्षा की पूरी व्यवस्था हो या उम्मीदवारों को इंग्लैण्ड भेजा जाय। भारत में कमिटी की कई बैठकें हुईं और १९२६ के वसन्त में इस कमिटी के सदस्यों की एक उपसमिति यूरोप यह देखने के लिए गई कि इंग्लैंड, फ्रांस, कनाडा और अमरीका में सैनिक अफसर तैयार करने के लिए किस प्रकार की शिक्षा दी जाती है।

कमिटी की रिपोर्ट पर जो महत्वपूर्ण चर्चा हुई थी उसकी ओर भी ध्यान देने की आवश्यकता है। १९२४ में मुडीमैन-कमिटी की नियुक्ति यह पता लगाने के लिए हुई कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड-सुधार कैसे चल रहे हैं। इस कमिटी की दो रिपोर्टें थीं—बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक। बहुसंख्यक-रिपोर्ट सरकारी थी, पर सरकार इस रिपोर्ट की सिफारिशें भी मानने को तैयार न थी। १९२५ के सितम्बर में एक प्रस्ताव पेश किया गया कि सरकारी रिपोर्ट को सिद्धान्तरूप में मान लेना चाहिए और वह सिद्धांत यह था कि सुधारों की मशीन जहां-जहां आवाज दे रही है, उसमें तेल लगाया जाय, और उसके कल-पुर्जों में तेल लगाकर उन्हें चिकना कर दिया जाय, जिसमें मन्त्रियों को नियुक्त करना आसान हो, उनके वेतनों पर बजटों की बहस में रायें न ली जायं और वें अड़ंगा डालने पर भी सरकारी काम करते रहें। मान्ट-फोर्ड सुधारों में तो इस प्रकार की घटनाओं को सुदूरवर्ती सम्भावना-मात्र समझा गया था, पर अब तो वे कल ही की प्रत्यक्ष घटनायें हो चुकी हैं। स्वराज्यपार्टी ने बड़ी कौंसिल में घुसने के कुछ ही दिनों बाद पता लगा लिया था कि माण्टेगु-चेम्सफोर्ड सुधार-योजना में क्या-क्या बातें पीछे हटाने वाली है। उसने १९२४ की फरवरी में निम्नलिखित प्रस्ताव पेश किया था—

"यह बड़ी कौंसिल स-कौंसिल गवर्नर-जनरल से सिफारिश करती है कि भारत-सरकार-विधान में इस प्रकार संशोधन कराने के लिए आवश्यक कार्रवाई करे कि देश में पूर्ण उत्तरदायी शासन कायम हो जाय, और इस उद्देश्य से (१) शीघ्र ही एक गोलमेज परिषद् बुलाये जो महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक जातियों या वर्गों के अधिकारों और हितों को ध्यान में रखकर, भारत के लिए शासन-विधान की सिफारिश करे, और (२) बड़ी कौंसिल को भंग करके नई निर्वाचित कौंसिल की स्वीकृति के लिए उसके आगे वह योजना पेश करे और फिर उसे कानून का रूप देने के लिए ब्रिटिश पार्लमेन्ट के पास भेज दे।"

इस प्रस्ताव के फल-स्वरूप ही मुडीमैन-कमिटी नियुक्त हुई थी, जिसने अल्प-संख्यक और बहु-संख्यक दो रिपोर्टें पेश की थीं। इन रिपोर्टों पर ७ सितम्बर १९२५ को सर अलेक्जेण्डर मुडीमैन के प्रस्ताव के रूप में विचार किया गया था। इस प्रस्ताव के ऊपर पण्डित मोतीलाल नेहरू ने एक लम्बा-चौड़ा संशोधन पेश किया था, जिसका सारांश यह था कि (१) सम्राट् की सरकार को पार्लमेन्ट में तत्काल ही यह घोषणा करने का प्रबन्ध करना चाहिए कि भारत की शासन-व्यवस्था और शासन-प्रणाली में ऐसे परिवर्तन किये जायंगे कि देश की सरकार पूर्णतया उत्तरदायी हो जायगी, (२) एक गोलमेज-परिषद् या इसी प्रकार का कोई उपयुक्त साधन पैदा किया जाय जिसमें भारतीय, यूरोपियन और अधगोरों के हितों का पूरा प्रतिनिधित्व रहे। यह बैठक अल्पसंख्यक जातियों या वर्गों के हितों को ध्यान में रखकर ऊपर लिखे सिद्धान्तों के अनुसार एक विस्तृत योजना बड़ी कौंसिल की स्वीकृति के लिए तैयार करे। स्वीकृति के बाद उसे विधान का रूप देने के लिए ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के पास भेजा जाय। यह संशोधन दो दिनों के वाद-विवाद के बाद सरकार के खिलाफ ४५ रायों के मुकाबले ७२ रायों से पास हो गया।

१९२५ के सितम्बर में पटना में जो कुछ हुआ उसका वर्णन करने से पहले हम उस विचार-धारा का जिक्र करना चाहते हैं जो स्वराजियों में ही छिपे-छिपे काम कर रही थी। गांधीजी ने कांग्रेस की सारी मशीनरी पं० मोतीलाल नेहरू के हाथ में सौंपने की जो तत्परता दिखाई उसकी स्वराज्य-पार्टी के नेता ने बड़ी सराहना की और गांधीजी को लिखा—

"देशबन्धु ने जिस सम्मानपूर्ण सहयोग के लिए हाथ बढ़ाया था, मालूम होता है कि लार्ड बर्कनहेड ने उसका तिरस्कार किया है। इससे उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि स्वराज्य के युद्ध में हमें अनेक अनावश्यक रुकावटों का और अनेक उन विरोधियों का सामना करना पड़ेगा जिन्हें वस्तुस्थिति की गलत जानकारी पहुंचती है। अब हमारा स्पष्ट कर्त्तव्य यह है कि हमारे लिए जो मार्ग स्थिर कर दिया गया है, उस पर हम बढ़े चले जायं और घमण्डी सरकार की चुनौती का बढ़िया-सा जवाब देने के लिए वातावरण तैयार करें।" बंगाल में जहां स्वराजी-दल ने मन्त्रि-मण्डल का निर्माण असम्भव-सा कर दिया था वहां अब उसका प्रभाव कौंसिल में कम होता जा रहा था। कौंसिल के अध्यक्ष-पद का स्वराजी उम्मीदवार एक स्वतन्त्र दलवाले के मुकाबले पर ६ रायों से हार गया। अन्तिम जोर आजमाई के अवसर पर भी, जब दासबाबू को भी स्ट्रेचर पर डाल कर कौंसिल-भवन में ले जाया गया था, अवस्था संदिग्ध थी। डॉ० सुहरावर्दी ने स्वराज्य-पार्टी से इस्तीफा दे दिया था। उन्होंने गवर्नर से मुलाकात की थी, जिसके ऊपर गांधीजी ने उन्हें बड़ा आड़े हाथों लिया और कहा कि उन्होंने यह बड़ा अनुचित काम किया और इस तरह "अपने देश को बेच दिया।" जब डॉ० सुहरावर्दी ने यह सुना तो उन्होंने इस्तीफा दे दिया और कहा—"मैं इस नई जो-हुक्मी के आगे सिर झुकाने के बजाय राजनैतिक-मृत्यु कर लेना अधिक सम्मान-प्रद समझता हूं।" डा० सुहरावर्दी के गवर्नर से मुलाकात करने का समाचार प्रकाशित होने के दूसरे दिन गांधीजी ने कलकत्ते के अधगोरे पत्र को अपने रुख के सम्बन्ध में पूरा वक्तव्य दिया और कहा—

"मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि स्वराज्य-पार्टी के सदस्यों को बिना पार्टी की अनुमति लिये सरकारी अफसरों से मिलने से रोकने के सम्बन्ध में जो नियम है, वह अच्छा है।"

२२ अगस्त को श्री विट्ठलभाई पटेल बड़ी कौंसिल के पहले गैर-सरकारी अध्यक्ष चुने गये।

पटना महासमिति

इस समय २१ सितम्बर १९२५ को पटना में महासमिति की बैठक हुई। जब हम स्मरण करते हैं कि पटने की १९२४ की मई की बैठक में सत्याग्रह उठाया गया था तो हमें यह बैठक विशेष

रूप से दिलचस्प मालूम होती है, क्योंकि इस बैठक में कांग्रेस की स्थिति में तीन महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये थे। खद्दर का राजनैतिक महत्व छिन गया। हाथ-कता सूत देने की शर्त केवल चार आना न देने की हालत में ही लागू रही। राजनैतिक काम का भार स्वराज्य-पार्टी को सौंप दिया गया। अब स्वराज्य-पार्टी कांग्रेस का एक अङ्ग-मात्र—वह अल्पमत जिसे रिआयतें मिलें या वह थोड़ा-सा बहुमत जिसे सहायता के लिए औरों का मुंह ताकना पड़े—न रही। वह स्वयं कांग्रेस हो गई। इसके बाद से निर्वाचन का काम स्वराज्य-पार्टी नहीं स्वयं कांग्रेस करेगी। कौंसिल-प्रवेश में विश्वास रखने वाले बड़ी कौंसिल के सदस्य अब "स्वराजिस्ट" नहीं कहलायेंगे, बल्कि कौंसिलों में कांग्रेस-सदस्य कहलायेंगे। सूत कातने की शर्त अब एकमात्र शर्त नहीं रही। इसका कारण यह न था कि उस शर्त को मानने वाले कम थे—१०,००० सदस्य मौजूद थे—परन्तु यह था कि स्वराजियों को यह शर्त पसन्द न थी। गांधी जी ने लॉर्ड बर्केनहेड और लॉर्ड रीडिंग को करारा उत्तर देने के लिए स्वराजियों को जो उन्होंने मांगा दे डाला। जब गोपीनाथ साहा के सम्बन्ध में सीराजगंज के प्रस्ताव को लेकर दास बाबू की स्थिति और स्वतन्त्रता खतरे में पड़ी, और बंगाल-आर्डिनेन्स ऐक्ट बना, तो गांधी जी ने दास बाबू का साथ देने का निश्चय किया। वर्ष बीत गया पर बर्केनहेड की शेखी मौजूद थी। गांधी जी ने बचा-खुचा असहयोग भी समेटने का निश्चय किया, जिससे कौंसिलों के मोर्चे पर पूरी सहायता पहुँचाई जा सके। उन्हें भारत-मन्त्री को उत्तर देने की कोई जरूरत नहीं थी। उन्होंने राजनैतिक अवस्था का सामना करने के लिए स्वराज्य-पार्टी को कांग्रेस का अधिकार दे दिया।

उस समय गांधी जी की जैसी मनोदशा थी उसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू के लिए कोई चीज सिर्फ मांगने की देर थी, और वह उन्हें तुरन्त मिल जाती। गांधी जी ने महासमिति के अध्यक्ष की हैसियत से स्वराज्य-पार्टी-द्वारा बड़ी कौंसिल में किये गये काम की आलोचना तक न होने दी, क्योंकि इससे सौहार्द्र-पूर्ण वातावरण में खलल पड़ता और उदाराशयता की शोभा और मूल्य बहुत कुछ कम हो जाता। जब राजेन्द्र बाबू ने गांधी जी से पूछा कि क्या उनका दास बाबू और नेहरू जी के साथ कोई पैक्ट हुआ है, तो उन्होंने कहा कि "नहीं; परन्तु मेरा सम्मान यह कहता है कि दूसरा पक्ष जो कुछ मुझसे मांगे, मैं दे दूं।" उनका अनुकरण करने वालों का भी सम्मान यह कहता था कि गांधीजी उनसे जो मांगें दे दें।

पटना की बैठक के अवसर पर और उसके बाद प्रश्न यह था कि पटना के निश्चय के द्वारा कांग्रेस की दोनों पार्टियों में साझा तय हुआ था या हिस्सा ? कांग्रेस में परिवर्तन बड़ी तेजी से एक-के बाद-एक होते गये। हर बार कोई नया दृश्य, नया रंग और नई बात दिखाई देती थी। जून में कोई बात निश्चित न हो सकी। जब १९२४ के जून में अहमदाबाद में बैठक हुई तो गांधी जी अब भी अपनी स्थिति के मूल-सिद्धान्तों पर अड़े हुए थे। उन्होंने खद्दर-सम्बन्धी कड़ाई को और भी कड़ा कर दिया और कार्य-समिति के सदस्यों को कातने पर विवश कर दिया। सीराजगंज के प्रस्ताव के ऊपर नौकरशाही ने दास बाबू का अनुकरण करनेवालों को धमकी दी तो गांधी जी कांग्रेस के भीतरी मत-भेद को मिटाने पर तुल गये। एक इंच झुकने का परिणाम यह होता है कि सोलह आने झुकना पड़ता है। यहां भी यही बात हुई। बेलगांव के निर्णय को पटना में रद कर दिया गया। पटना में कौंसिल ने कांग्रेस की सारी मर्यादा अपने हाथ में ले ली और सूत कातने की शर्त को भी उड़ा दिया। इस प्रकार खद्दर के सामर्थकों और कौंसिल के समर्थकों में कांग्रेस का बंटवारा हो गया। एकता ऊपर-ही-ऊपर थी। वास्तव में खद्दर के सामर्थकों में असंतोष फैला हुआ है, यह बात छिपाई न जा सकती थी। स्वराज्य-पार्टी ने गोलमेज परिषद् या और किसी उपयुक्त साधन की जो मांग पेश की थी

वह नाकाफी समझी गई। लोगों में यह भाव उत्पन्न हुआ कि अटर्नी ने अपने स्वामी की आज्ञा का उल्लंघन किया है या उसका पूरी तौर से पालन नहीं किया है। पर गांधी जी इस प्रकार के गणित का हिसाव-किताव नहीं लगाते। वे जब कभी झुकते हैं तो पूरे तौर से झुकते हैं, जिससे न उन्हें पछतावा रहे न दूसरे पक्ष को। भीष्म ने भी सब प्रकार के दान में इसी नीति का अनुसरण करने की सलाह दी है। फलतः पटना में जो कुछ निश्चित हुआ, कानपुर में हमें उसपर सही करनी पड़ी।

कानपुर-कांग्रेस

१९२५ की कानपुर-कांग्रेस के दिन आ लगे थे। जनता ज्यों-की-त्यों थी—उसमें पहले की भांति प्रवल शक्ति उत्पन्न हो सकती थी, पर वह तभी जब "शिक्षित" समुदाय उसके पास कोई जीता-जागता आदर्श, कोई फड़कता हुआ कार्यक्रम ले जाय। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया फलतः मसाला मौजूद था, पर उसकी 'शक्ति' गायब हो गई थी। जिस प्रकार किसी मोटरकार के साधारण उपायों से न चलने पर उसे पीछे से ढकेलने का उपाय अपनाया जाता है, और इस प्रकार ढकेले जाने के दो-चार कदम वाद मोटर के इंजन में गति उत्पन्न हो जाती है और वह दुवारा रोके जाने तक काम करता रहता है, उसी प्रकार सत्याग्रह की सारी शक्तियां उस समय के लिए रुकी हुई थीं और उसमें गति उत्पन्न करने के लिए हर तरह का उपाय किया जा रहा था। स्थानिक संस्थाओं पर कब्जा करने का कार्यक्रम दिन-पर-दिन आकर्षक होता जा रहा था। कलकत्ते के मेयर-पद को देशवन्धु दास और वाद को श्री० सेनगुप्त ने जिस सुन्दरता के साथ सुशोभित किया था, उससे आकर्षण और भी वढ़ गया था। देश के चार कारपोरेशन कांग्रेसवादियों के हाथ में थे। श्री वल्लभभाई पटेल अहमदावाद म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन थे और १९२८ तक उसी पद पर रहे। वम्वई-कारपोरेशन के मेयर का पद श्री विट्ठलभाई पटेल सुशोभित कर रहे थे। पं० जवाहरलाल इलाहावाद-म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष वनाये गये, पर उन्हें यह पता लगाने में देर न लगी कि वे वहां निभ न सकेंगे और स्थानिक संस्थाएं कांग्रेस-वादियों के मतलव की चीज नहीं हैं। वावू राजेन्द्रप्रसाद पटना-म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष हुए, पर उन्हें जो अनुभव हुए वे आनन्ददायक न थे, फलतः वे १५ महीने के वाद ही वहां से अलग हो गये। परन्तु जीवन की वर्णमाला हरेक को खुद सीखनी पड़ती है। अधिकांश मनुष्यों को अपने अनुभव से शिक्षा प्राप्त होती है, दूसरों के अनुभव से नहीं। इसलिए मदरास को भी स्थानिक-संस्थाओं के अनुभव प्राप्त करने थे। इसी अवसर पर—अर्थात् १९२५ के मई मास में—कांग्रेस ने मदरास-कारपोरेशन की जगहों पर कब्जा करने की ओर ध्यान दिया और खूव आन्दोलन करने के वाद—जिसमें न धन की परवा की गई, न दौड़-धूप में कसर रक्खी गई—वह १० में से ७ जगह पर अधिकार करने में सफल हुई। नये नेता नया कार्यक्रम अपने साथ लाते हैं। इसी के अनुसार मदरास के म्युनिसिपैलिटी में नेता श्री श्रीनिवास आयंगर कांग्रेस के भी नेता हो गये—परन्तु सरकार की चक्की के पहिये वैसे धीरे-धीरे पीसते हैं; पर पीसते अचूक हैं। इसलिए थोड़े ही दिनों में सरकार ने कांग्रेसियों के लिए यह असम्भव कर दिया कि वे स्थानिक संस्थाओं के द्वारा रचनात्मक कार्यक्रम को आगे वढ़ा सकें। वे जेल हो आनेवालों को नौकरी नहीं दिला सकते थे, खादी नहीं खरीद सकते थे, हिन्दी की शिक्षा नहीं दे सकते थे, शालाओं में चरखा नहीं चला सकते थे, राष्ट्रीय नेताओं को मान-पत्र नहीं दे सकते थे और न म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों पर राष्ट्रीय झण्डा फहरा सकते थे।

१९२५ का साल वड़ी हलचल का साल रहा है। अव इतने समय के वाद जव हम पुरानी घटनाओं पर निगाह दौड़ाते हैं तो उस समय कांग्रेस के भीतर भिन्न-भिन्न दलों में, और दलों के भीतर भिन्न-भिन्न वर्गों में जो कशमकश चल रही थी उसकी ओर ध्यान गये विना नहीं रह सकता।

जब अपरिवर्त्तनवादी ही, जिनके जिम्मे खद्दर, अस्पृश्यता-निवारण और साम्प्रदायिक एकता के रूप में बची-खुची वसीयत आई थी, आपस में मतभेद उपस्थित कर रहे थे तो परिवर्त्तन-वादियों का कार्यक्रम तो नया और आन्दोलनकारी समझा जाने वाला कार्यक्रम था, फिर उनमें मत-भेद होना कोई आश्चर्य की बात न थी। स्वराज्य-पार्टी के सिद्धांतों के विरुद्ध मध्यप्रान्त और महाराष्ट्र ने झगड़ा खड़ा किया। ये प्रान्त बङ्गाल के योग्य सहयोगी थे और जबतक देशबन्धु जीवित रहे, बङ्गाल के साथ-साथ चलते रहे। देशबन्धु का स्वभाव किसी बगावत को सहन करने का न था, वे उसे कठोरता के साथ कुचल देते थे। परन्तु उनकी मृत्यु होते ही महाराष्ट्र आदि प्रान्तों में अनहोनी बातें हो गईं। मध्यप्रांतीय कौंसिल के अध्यक्ष श्री ताम्बे ने मध्यप्रान्त की सरकार की कार्यकारिणी का पद स्वीकार कर लिया। इसपर मध्यप्रांत और बरार के नेताओं और बम्बई प्रान्त के महाराष्ट्र के नेताओं में खूब घमासान युद्ध हुआ। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने भी श्री ताम्बे के आचरण पर और श्री केलकर और श्री जयकर जैसे व्यक्तियों के उनकी सफाई पेश करने पर बड़ी आपत्ति की और इन दोनों के विरुद्ध जाब्ता कार्रवाई करने की धमकी दी और कहा कि इन्होंने "अपराध में सहायता की है।" इधर श्री केलकर और श्री जयकर ने भी बम्बई प्रान्त की स्वराज्य-पार्टी से इन्हीं विचारों को दोहराने के लिए कहा।

१ नवम्बर को नागपुर में अखिलभारतीय स्वराज्य-पार्टी की बैठक हुई, जिसमें श्री श्रीपाद बलवन्त ताम्बे की कार्रवाई नियम के विरुद्ध और दल के साथ विश्वासघात समझी गई और उनकी निन्दा की गई। फिर पण्डित मोतीलाल नेहरू, श्री जयकर और केलकर के विद्रोह को कुचलने के लिए नागपुर से झटपट बम्बई पहुंचे। इस बीच इन दोनों ने 'प्रतियोगी सहयोग' की आवाज पहले से ही ऊंची कर रक्खी थी। इन्होंने अखिलभारतीय स्वराज्य-पार्टी की कार्य-समिति से इस्तीफा दे दिया, यही नहीं, इसके बाद डा० मुंजे, श्री जयकर और श्री केलकर ने बड़ी कौंसिल से भी इस्तीफा दे दिया, क्योंकि वे स्वराज्य-पार्टी के टिकट पर चुने गये थे।

अब हम कानपुर कांग्रेस पर आते हैं। कानपुर को पटना के निर्णय पर सही करनी थी। पटना में भी यह बात संदिग्ध समझी जा रही थी कि बेलगांव के आदेश के विरुद्ध सूत कातने के, मिल्कियत का बटवारा करने के और कार्य-विभाग करने के सम्बन्ध में जो निश्चय किया गया है, वह महासमिति भी स्वीकार करेगी या नहीं। इसके बाद यह बात और भी अधिक विचारणीय थी कि स्वराज्य-पार्टी के मूडीमैन-कमिटी वाले प्रस्ताव पर प्रस्तुत किये गये संशोधन में की गई मांग की पुष्टि करेगी या नहीं। कानपुर-कांग्रेस के अधिवेशन के सामने, जिसकी सभानेत्री भारत की कवियित्री थीं, इसी प्रकार के जटिल प्रश्न मौजूद थे। इस कांग्रेस की एक अजूबा बात थी पिछले वर्ष के सभापति गांधीजी द्वारा इस वर्ष की सभानेत्री श्रीमती सरोजिनी नायडू को कांग्रेस का भार सौंपा जाना। गांधीजी केवल ५ मिनट बोले। उन्होंने कहा कि "अपने ५ वर्ष के काम का पर्यालोचन करने के बाद मैं अपनी ऐसी एक भी बात नहीं पाता जिसे रद करूं, न अपना ऐसा कोई वक्तव्य ही पाता हूं जिसे वापस लूं। यदि मुझे विश्वास हो जाय कि लोगों में जोश और उत्साह है तो मैं आज सत्याग्रह आरम्भ कर दूं। पर अफसोस!, हालत ऐसी नहीं है।" सरोजिनीदेवी ने गिने-चुने शब्दों के साथ भार ग्रहण किया। उन्होंने सभानेत्री की हैसियत से जो भाषण दिया वह कांग्रेस-मंच से दिया गया शायद सबसे छोटा भाषण था और साथ ही वह मधुरता में अपना सानी न रखता था। उन्होंने राष्ट्रीय एकता पर जोर दिया और उस राष्ट्रीय मांग की चर्चा की जो बड़ी कौंसिल में पेश की गई थी और भय को दूर करने की सलाह दी। उन्होंने कहा—"स्वतन्त्रता के युद्ध में भय ही एकमात्र अक्षम्य विश्वास-घात है, और निराशा एकमात्र अक्षम्य पाप।" फलतः उनका भाषण मानों साहस और आशा की प्रतिमूर्ति था।

इस सुकुमार हस्त-द्वारा अनुशासन और सहिष्णुता के उपयोग करने का फल यह हुआ कि कानपुर कांग्रेस का अधिवेशन मजदूरों के प्रदर्शन और कुछ प्रतिनिधियों के उपद्रव को छोड़कर, जिन्हें काबू करने के लिए जवाहरलाल जैसे कठोर व्यक्तित्व की आवश्यकता पड़ी, निर्विघ्न समाप्त हो गया।

कानपुर-कांग्रेस का अधिवेशन स्वभावतः ही देशबन्धु दास, सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, डा० सर रामकृष्ण गोपाल भाण्डारकर और अन्य नेताओं की मृत्यु पर शोक-प्रकाश के साथ प्रारम्भ हुआ। उस समय देश में दक्षिण अफ्रीका से एक शिष्ट-मण्डल आया हुआ था। कांग्रेस ने उसका स्वागत किया और यह जाहिर किया कि 'एरिया रिजर्वेशन और इमिग्रेशन रजिस्ट्रेशन बिल', अर्थात् भिन्न-भिन्न जातियों के लिए पृथक् स्थान नियत करने और आकर बसने के लिए नाम लिखाने के सम्बन्ध में पेश किया गया बिल, १९१४ के गांधी-स्मट्स-समझौते के विरुद्ध है, और यह भी कहा कि १९१४ के समझौते का ठीक-ठीक अर्थ करने के लिए एक पंचायत बैठाकर निपटारा करा लिया जाय। कांग्रेस ने इस प्रश्न के निपटारे के लिए एक गोल-मेज-परिषद् की बात की पुष्टि की और सम्राट् की सरकार से अनुरोध किया कि यदि बिल पास हो जाय तो उसे स्वीकृति प्रदान न की जाय, बंगाल आर्डिनेन्स और गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियों के सम्बन्ध में भी उपयुक्त प्रस्ताव पास हुए। बर्मा के गैर-बर्मन अपराधियों को निर्वासित करने और समुद्र-यात्रा करनेवालों पर कर लगाने के सम्बन्ध में पेश किये गये बिलों को नागरिकों की स्वतंत्रता पर नया आक्रमण समझा गया। उसके बाद कांग्रेस का मताधिकार सम्बन्धी प्रस्ताव आया, जिसने २२ सितम्बर १९२५ के पटनावाले प्रस्ताव के (आ) भाग की पुष्टि की जिसमें कांग्रेस से, उस कोष को छोड़कर जो अखिल-भारतीय चर्खा-संघ के सुपुर्द कर दिया गया है, बाकी सारे कोष और मशीनरी का उपयोग देश-हित के लिए आवश्यक राजनैतिक कार्य में करने को कहा गया था। कांग्रेस ने सत्याग्रह अर्थात् सविनय-भंग में अपनी आस्था प्रकट की और इस बात पर जोर दिया कि सारे राजनैतिक कामों में आत्मनिर्भरता ही एक पथ-प्रदर्शक समझी जाय। इसके बाद कांग्रेस ने नीचे लिखा कार्यक्रम अपनाया—

कार्यक्रम

१. देश के भीतर कांग्रेस का काम यह होगा कि देश-वासियों को उनके राजनैतिक अधिकारों के सम्बन्ध में शिक्षा दी जाय और उन्हें इतना बल और प्रतिकार करने की शक्ति हासिल करने की तालीम दी जाय कि वे अपने अधिकार प्राप्त कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा किया जाय। इस रचनात्मक कार्यक्रम में विशेषकर चर्खे और खद्दर के प्रचार, साम्प्रदायिक ऐक्य की वृद्धि करने, अस्पृश्यता-निवारण करने, दलित जातियों का उद्धार करने और नशे की चीजों का सेवन न करने पर जोर दिया जायगा और इस कार्यक्रम में स्थानिक संस्थाओं पर अधिकार करना, ग्राम-संगठन करना, राष्ट्रीय ढंग से शिक्षा का प्रचार करना, मिल-मजदूरों और खेती का काम करने वाले मजदूरों का संगठन करना, मजदूरों और मालिकों, तथा जमींदारों और किसानों में सौहार्द्र स्थापित करना, और देश के राष्ट्रीय, आर्थिक, उद्योग-सम्बन्धी एवं व्यापारिक हितों की वृद्धि करना शामिल रहेगा।

२. देश से बाहर कांग्रेस का काम विदेशी राष्ट्रों में वस्तुस्थिति का प्रसार करना होगा।

३. यह कांग्रेस देश की ओर से समझौते की उन शर्तों को मंजूर करती है जो बड़ी कौंसिल की इण्डिपेण्डेण्ट और स्वराज्य-पार्टियों ने अपने १८ फरवरी १९२४ के प्रस्ताव-द्वारा सरकार के आगे रक्खी थीं, और यह देखते हुए कि सरकार ने अभीतक कोई उत्तर नहीं दिया है, निश्चय करती है कि निम्नलिखित कार्रवाई की जाय—

(१) स्वराज्य-पार्टी जल्दी-से-जल्दी बड़ी कौंसिल में सरकार से उन शर्तों पर अपना आखिरी निर्णय सुनाने का अनुरोध करेगी और यदि फरवरी के अन्त तक कुछ निर्णय सरकार न दे सके या जो निर्णय सुनाया जाय उसे कांग्रेस की कार्य-समिति-द्वारा नियुक्त विशेष समिति ने और उन सदस्यों ने, जिन्हें महासमिति नियुक्त करना चाहे, संतोषजनक न समझा, तो स्वराज्य-पार्टी उचित कारवाई-द्वारा बड़ी कौंसिल में सरकार को सूचित कर देगी कि अब वह पहले की तरह वर्तमान कौंसिलों में काम न करेगी। बड़ी कौंसिल और राज्यपरिषद् के स्वराजी-सदस्य बजट की नामंजूरी के लिए वोट देंगे और तत्काल ही अपनी जगह छोड़ कर चले जायंगे। जिन प्रान्तीय कौंसिलों की बैठक उस अवसर पर न हो रही हो, उसके सदस्य फिर उन कौंसिलों में न जायंगे और वे भी उसी प्रकार विशेष-समिति को इस बात से सूचित कर देंगे।

(२) उसके बाद स्वराज्य-पार्टी का कोई सदस्य—चाहे वह राज्यपरिषद् में हो, चाहे बड़ी कौंसिलों में, चाहे छोटी कौंसिलों में—उनकी किसी बैठक में, या उनके द्वारा नियुक्त की गई किसी कमिटी में शरीक न होगा। हां, अपनी जगह को खाली घोषित होने से रोकने और प्रान्तीय बजटों को नामंजूर करने या कोई नया कर लगाने वाले बिल को रद करने के लिए कौंसिलों में जाया जा सकता है।

परन्तु शर्त है कि अपनी जगहें छोड़ने की आज्ञा मिलने तक कौंसिलों के सदस्य अपनी-अपनी कौंसिलों में हस्बमामूल वे सारे काम करते रहेंगे जिनके लिए पार्टी के मौजूदा नियम उन्हें अनुमति देते हैं।

यह भी शर्त है कि विशेष समिति को किसी खास कौंसिल के सदस्यों को, कोई खास या आकस्मिक अवसर आ पड़ने पर, उन कौंसिलों में जाने की अनुमति देने का अधिकार रहेगा।

(३) विशेष समिति (१) उपधारा में वर्णित रिपोर्ट प्राप्त होने पर तत्काल ही महासमिति की बैठक बुलायेगी जिसमें कार्यक्रम तैयार किया जायगा। इस कार्यक्रम को कांग्रेस और स्वराज्य-पार्टी मिल-जुलकर देशभर में पूरा करेंगी।

(४) इस कार्यक्रम में (१) और (२) धाराओं में वर्णित कार्य-समूह का पूरा करना और साथ ही यहां वर्णित नीति से निर्वाचकों को अभिज्ञ करना शामिल रहेगा। यह कार्यक्रम यह भी स्पष्ट कर देगा कि आगामी निर्वाचन कांग्रेस के नाम पर किन तरीकों पर किया जायगा। इस कार्यक्रम के द्वारा वे बातें स्पष्ट कर दी जायंगी जिन्हें लेकर उम्मीदवार अपने निर्वाचन के लिए खड़ा होगा।

किन्तु शर्त यह है कि सरकार से प्राप्त होने वाले ओहदों को अस्वीकार करने की नीति उस समय तक अपनाई जाती रहेगी जब तक सरकार उपर्युक्त समझौते की शर्तों का ऐसा उत्तर न दे, जो कांग्रेस की सम्मति में सन्तोषजनक हो।

(५) यह कांग्रेस विभिन्न प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों की कार्य-समितियों को अधिकार देती है कि वे अगले वर्ष के कौंसिलों और बड़ी कौंसिलों के निर्वाचन के लिए अपने प्रान्तों में उम्मीदवार शीघ्र-से शीघ्र चुनना आरम्भ करदें।

(६) यदि बड़ी कौंसिल-द्वारा पास प्रस्ताव में वर्णित समझौते की शर्तों के सम्बन्ध में सरकारी निर्णय विशेष समिति-द्वारा सन्तोष-जनक और स्वीकार करने योग्य समझा गया तो तत्काल ही महासमिति की बैठक विशेष-समिति के निश्चय की पुष्टि या अस्वीकार करने और भावी कार्यक्रम तैयार करने के लिए बुलाई जायगी।

(७) जबतक स्वराजी उपर्युक्त ढंग से कौंसिलों से निकल न आवें, तबतक स्वराज्य-पार्टी के विधान और उसके अनुसार बने नियमों का ही पालन कौंसिलों में होता रहेगा। हां, कांग्रेस या महासमिति समय-समय पर, जब चाहेगी, उनमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर सकेगी।

(८) (३) और (४) उपधाराओं में वर्णित कार्य आरम्भ करने के उद्देश्य से महासमिति जितनी रकम आवश्यक प्रचार करने के लिए काफी समझेगी नियत कर देगी, और यदि इस काम में और अधिक धन की आवश्यकता पड़ेगी तो वह धन कार्य-समिति के द्वारा या उसकी देखरेख में सार्वजनिक चन्दे के द्वारा एकत्र किया जायगा।

कानपुर-कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव बिना तू-तू मैं-मैं के पास न हो सका। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने एक संशोधन पेश किया जिसका अनुमोदन श्री जयकर ने किया। उनका संशोधन इस प्रकार था—

"कौंसिलों में काम इस प्रकार जारी रक्खा जायगा कि उनका उपयोग शीघ्र ही पूर्ण उत्तर-दायी सरकार के स्थापित करने में किया जा सके; जब राष्ट्रीय हित की वृद्धि सहयोग के द्वारा होगी तो सहयोग किया जायगा, और रुकावट डालने से होगी तो रुकावट डाली जायगी।"

इस संशोधन का अनुमोदन करते हुए ही श्री जयकर ने अपने और श्री केलकर व डॉ० मुंजे के बड़ी कौंसिल से इस्तीफा देने का जिक्र किया। इस चर्चा के दौरान में पं० मोतीलालजी पर भार-तीय सैण्डहर्स्ट या स्कीन कमिटी की सदस्यता स्वीकार करने के लिए भयंकर आक्रमण किया गया। उन्होंने कहा—"बड़ी कौंसिल ने भारतीय सैण्डहर्स्ट की मांग पेश की थी और सरकार ने कहा, 'अच्छा मार्ग दिखाओ।' हम लोग यह चाहते थे कि ऐसा मार्ग दिखाने के लिए, जिसके द्वारा सरकार हमारी मांगें स्वीकार कर ले, उससे बात-चीत चलाई जाय। यदि इसी प्रकार सरकार हमसे सुधारों का मार्ग दिखाने को कहे तो हम निश्चय ही उसके साथ सहयोग करेंगे।"

अन्त में कांग्रेस और महासमिति की कार्रवाई के लिए हिन्दुस्तानी भाषा अपनाई गई। महासमिति को प्रवासी भारतवासियों के हितों की देख-भाल रखने के लिए अपने अन्तर्गत एक वैदेशिक-विभाग खोलने का अधिकार दिया गया। अगला अधिवेशन आसाम में करना तय हुआ। डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी, श्री ए० रंगस्वामी आयंगर और श्री के० सन्तानम प्रधानमन्त्री नियत हुए। कानपुर-कांग्रेस के कुछ ही दिनों बाद १९२६ की जनवरी के दूसरे सप्ताह में मि० बी० जी० हार्निमैन भारत वापस लौट आये।

कानपुर कांग्रेस की एक विशेषता यह थी कि उसमें अमरीका के मि० होम्स मौजूद थे। ये वैसे अमरीकन कपड़े पहने थे पर सिर पर गांधी-टोपी दिये थे। करतल ध्वनि के बीच ये उठे और बोले—"कल मैंने डॉ० अब्दुलरहमान को यह दावा करते सुना कि गांधीजी तो दक्षिण अफ्रीकन हैं। क्या मैं आज यह दावा नहीं कर सकता कि वे सारे संसार के हैं? क्या मैं यह नहीं कह सकता कि 'मित्र-मण्डल' (सोसायटी आफ फ्रेण्ड्स), जिसकी ओर से मैं बोल रहा हूं, उन्हें उसी आदर की दृष्टि से देखता है जिससे आप देखते हैं और आपकी ही भांति वह भी उनके काम में विश्वास करता है? मुझे कहना चाहिए कि हम लोग अपनी पाश्चात्य-सभ्यता की धुन में बहुत गलत रास्ते पर चले गये हैं। हम लोग धन और शक्ति की खोज में बहुत आगे बढ़ गये हैं। हमारी सारी पाश्चात्य सभ्यता में यह एक बहुत बड़ा दुर्गुण है। हम पैसे से प्रेम करते रहे, फलतः वह एक स्थान पर एकत्र हो गया। हम शक्ति के लिए लालायित रहे, फलतः युद्धों पर युद्ध होते गये और सम्भवतः और भी होंगे और अन्त में हमारी सभ्यता विध्वंस हो जायगी। इसीलिए हम आपको और प्रसन्नता-पूर्वक

मुखातिब हुए हैं। आप एक नया और अधिक अच्छा मार्ग दिखा रहे हैं, और हम आशा करते हैं कि जहां हम प्रकृति और आविष्कारों की अच्छी-अच्छी चीजों को अपनाये रक्खेंगे, वहां हम उस भ्रातृभाव का अनुकरण करेंगे जिसकी अभिव्यक्ति आपके मध्य में इस महान् पैगम्बर ने की है।"

इस वर्ष को समाप्त करने से पहले हमें उन हिन्दू-मुस्लिम दंगों का जिक्र करना है जो बीच-बीच में १९२५ में और १९२६ में भी होते रहे। हिन्दू-मुस्लिम-दंगों का जिक्र करते हुए १९२५ की पहली मई को गांधीजी ने कलकत्ते के मिर्जापुर-पार्क में कहा था—"मैंने अपनी अयोग्यता स्वीकार कर ली है। मैंने स्वीकार कर लिया है कि इस रोग की औषधि बतानेवाले वैद्य की विशेषता मुझमें नहीं है। मैं तो नहीं देखता कि हिन्दू वा मुसलमान मेरी औषधि को स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। इसलिए आजकल मैंने इस समस्या की यों ही उड़ती-सी चर्चा करके सन्तोष करना आरम्भ कर लिया है। मैं यह कहकर सन्तोष कर लेता हूं कि यदि हम अपने देश का उद्धार करना चाहते हैं तो एक-न-एक दिन हम हिन्दू और मुसलमानों को एक होना पड़ेगा और यदि हमारे भाग्य में यही बदा है कि एक होने से पहले हमें एक-दूसरे का खून बहाना चाहिए, तो मेरा कहना यह है कि जितनी जल्दी हम यह कर डालें हमारे लिए उतना ही अच्छा है। यदि हम एक-दूसरे का सिर तोड़ने पर उतारू हैं तो हमें ऐसा मर्दानगी के साथ करना चाहिए, हमें झूठ-मूठ के आंसू न बहाने चाहिए; और यदि हम एक-दूसरे के साथ दया नहीं करना चाहते तो हमें किसी दूसरे से सहानुभूति की याचना नहीं करनी चाहिए।"

१९२५ की जुलाई में सारे महीने-भर दंगे होते रहे। इनमें प्रमुख स्थान दिल्ली, कलकत्ता और इलाहाबाद थे। बकर-ईद के अवसर पर निजाम की रियासत में गुलबाद नामक स्थान पर भी दंगा हो गया। १९२५ का साल समाप्त करने से पहले सिक्खों की समस्या का भी जिक्र करना आवश्यक है। १९२५ में सिक्खों की समस्या ने शान्ति धारण कर ली थी। पंजाब-कौंसिल में गुरुद्वारा बिल पेश किया गया और पास हो गया। साथ ही सर मालकम हेली ने कहा कि यदि गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदी शर्तनामे पर दस्तखत करके नये कानून को मंजूर कर लेंगे और पहले की भांति आन्दोलन न करने का जिम्मा लेंगे तो उन्हें छोड़ दिया जायगा। बहुतों ने इसपर क्रोध प्रकट किया, पर धीरे-धीरे क्रोध शान्त हो गया। बहुत-से कैदियों ने कानून मानने का जिम्मा लिया। शिरोमणि-गुरुद्वारा-प्रबन्धक कमिटी में इस बात को लेकर फूट पड़ गई। अधिकांश कैदी छोड़ दिये गये, पर कुछ पूरी सजा भुगतने के लिए जेलों में ही रहे।

७

कौंसिल का मोर्चा—१९२६

सहयोग की तरफ

१९२६ का आरम्भ कौंसिलों के कार्यक्रम के लिए कुछ विशेष शुभ न रहा। १९२३ की नवीनता का आकर्षण इस समय तक फीका पड़ चुका था। केवल 'युद्ध' की खातिर लगातार 'युद्ध' किये जाना कुछ थकाने वाली बात साबित हुई और नये वर्ष के आरम्भ में ही थकावट और प्रतिक्रिया के लक्षण दिखाई देने लगे।

वास्तव में १९२५ के अन्त में ही प्रतियोग सहयोग की आवाज निश्चयात्मक रूप से सुनाई देने लगी थी। बड़ी कौंसिल २० जनवरी को खुलने वाली थी, पर उससे पहले ही बम्बई-कौंसिल की स्वराज्य-पार्टी ने प्रतिसहयोगी-दल को उसके प्रचार-कार्य में सहायता देने का पूरा निश्चय कर लिया था।

६ और ७ मार्च को महासमिति की बैठक रायसीना (दिल्ली) में हुई, जिसमें कानपुर के निश्चय की पुष्टि की गई। एक बार फिर दिल्ली ने प्रकट किया कि "स्वराज्य के मार्ग में रोड़े अटकाने वाले किसी भी कार्य का, चाहे वह सरकारी हो या और किसी प्रकार का, पूरे संकल्प के साथ मुकाबला किया जायगा और विशेष रूप से उस समय तक कौंसिलों में गये हुए कांग्रेसी सरकार द्वारा प्रदान किये जाने वाले पदों को स्वीकार न करेंगे जबतक कि सरकार की ओर से सन्तोष-जनक उत्तर न मिलेगा।"

महासमिति की चर्चा करते हुए यहां यह भी कह देना उचित होगा कि ५ मार्च को कार्य-समिति ने २०००) हिन्दुस्तानी-सेवा-दल को और ५०००) विदेशी प्रचार-कार्य के लिए मंजूर किया था। हिन्दुस्तानी सेवा-दल स्वयंसेवकों का वह दल था जिसका संगठन कोकनडा-कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार हुआ था। इसके दो वार्षिक अधिवेशन हो चुके थे—एक मौलाना शौकतअली की अध्यक्षता में बेलगांव में और दूसरा श्री तुलसीचरण गोस्वामी की अध्यक्षता में कानपुर में।

बड़ी कौंसिल में जब बजट की चर्चा आरम्भ हुई तो पण्डित मोती लाल नेहरू ने जहिर किया कि मैं और मेरे समर्थक मत देनेमें कोई भाग न लेंगे। कौंसिल-भवन की गैलरियां खचाखच भरी हुई थीं, क्योंकि स्वराजियों के बड़ी कौंसिल से 'वाक्-आउट' करने की बात पहले से ही लोगों को अच्छी तरह मालूम थी। पण्डित मोती लाल नेहरू ने बताया कि सरकार ने देशबन्धु की सम्पूर्ण समझौते की बात का किस प्रकार तिरस्कार किया और सरकार को चेतावनी दी कि यदि उसने सावधानी से काम न लिया तो देश भर में गुप्त-समितियां कायम हो जायंगी। इतना कह कर नेहरू जी अपनी पार्टी के सदस्यों के साथ कौंसिल-भवन से बाहर चले गये।

इस 'वाक्-आउट' के कारण एक और घटना भी हुई, जिसका संक्षिप्त वर्णन करना उचित

है। अध्यक्ष पटेल ने इस 'वाक्-आउट' का जिक्र करते हुए कहा कि चूंकि कौंसिल की सबसे जबर्दस्त पार्टी कौंसिल-भवन छोड़कर चली गई है, इसलिए अब भारत-सरकार-कानून के अनुसार आवश्यक प्रतिनिधित्व रूप इस कौंसिल का नहीं रह जाता है। अब यह बात भारत-सरकार ही निश्चित करे कि बड़ी कौंसिल की बैठक जारी रहे या नहीं ? उन्होंने सरकार से अनुरोध किया कि वह कोई विवादग्रस्त कानून पेश न करे, नहीं तो मुझे विवश होकर उन विशेष अधिकारों का उपयोग करके जो भारत-सरकार-कानून ने मुझे प्रदान किये हैं, बैठक को अनिश्चित समय तक के लिए स्थगित करना पड़ेगा। दूसरे दिन उन्होंने बड़ी सज्जनता के साथ अपने शब्द वापस लिये और कहा—"मैं यह भी कहना चाहता हूं कि अच्छी तरह विचार करने के बाद मैं उस नतीजे पर पहुंचा हूं कि अध्यक्ष को अपने अधिकारों का जिक्र न करना चाहिए था, और न ऐसी भाषा का ही व्यवहार करना चाहिए था, जिसका अर्थ सरकार को धमकी देने के रूप में किया जा सके, बल्कि कोई कार्रवाई करने से पहले मुझे देखना चाहिए था कि आगे क्या होता है।" इससे सरकार की चिंता मिट गई।

असहयोग का जो पत्थर गया में ऊंचाई से ढलकना शुरू हुआ था वह १९२६ के आरम्भ में साबरमती में करीब-करीब नीचे आ गिरा। हम यह देख चुके हैं कि प्रतिसहयोगी स्वतन्त्र और राष्ट्रीय-दलवालों के कितना निकट पहुंच गये थे। तदनुसार उन्होंने ३ अप्रैल को बम्बई में अन्य दलों के नेताओं के साथ एक बैठक की, जिसके फल-स्वरूप "इंडियन नेशनल पार्टी" का जन्म हुआ। इस पार्टी का कार्यक्रम था, शान्तिपूर्ण और वैध उपायों से (सामूहिक सत्याग्रह और करबन्दी को छोड़कर) औपनिवेशिक स्वराज्य जल्दी स्थापित करने की तैयारी करना और इसमें कौंसिलों के भीतर प्रतियोगी-सहयोगी की नीति बरतने की स्वतन्त्रता दी गई थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने इस पार्टी के संगठन को स्वराज्य-पार्टी के विरुद्ध चुनौती समझा। कुछ समझौते की बात-चीत के बाद यह निश्चय किया गया कि स्वराज्य-पार्टी के दोनों दलों की एक बैठक २१ अप्रैल को यह देखने के लिए कि मेल सम्भव है या नहीं साबरमती में बुलाई जाय। इस बैठक में अन्य नेताओं के अलावा सरोजिनीदेवी, लाला लाजपतराय, श्री केलकर, श्री जयकर, श्री अणे और डा० मुंजे भी थे। यहां महासमिति द्वारा पुष्टि मिलने की शर्त रखते हुए समझौते पर हस्ताक्षर करनेवाले नेताओं के बीच में यह तय हुआ कि १९२४ की फरवरी में स्वराजियों ने जो मांग पेश की थी उसके सरकार द्वारा दिये गये उत्तर को संतोष-जनक समझा जाय, यदि मन्त्रियों को प्रांतों में अपने कर्तव्य का पालन करने के लिए आवश्यक अधिकार, उत्तरदायित्व और स्वेच्छापूर्वक कार्य करने की सुविधा कर दी जाय। भिन्न-भिन्न प्रान्तों की कौंसिलों के कांग्रेसी सदस्यों के ऊपर इस बात का निर्णय छोड़ा गया कि इस प्रकार दिये गये अधिकार पर्याप्त हैं या नहीं, पर साथ ही उनके निर्णय पर एक कमिटी की, जिसमें पण्डित मोतीलाल नेहरू और श्री मुकुन्दराव जयकर हों, पुष्टि मिल जाना आवश्यक रक्खा गया। 'इंडिया १९२५-२६' में कहा गया है—"पर अभी इस समझौते की स्याही मुश्किल से सूखी होगी कि आन्ध्र प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के सभापति श्री प्रकाशम् ने अपनी असहमति प्रकट की और कहा कि "कांग्रेस की स्थिति को साबरमती में कानपुर से भी अधिक कमजोर बना दिया गया।" अन्य अनेक प्रमुख कांग्रेसवादियों ने भी इसी प्रकार का असंतोष प्रकट किया। साधारणतया यह समझा जाने लगा, चाहे कुछ ही दिनों के लिए सही, कि स्वराजी शीघ्र ही फिर कौंसिलों में चले जायंगे और मन्त्रि-मण्डल कायम करेंगे। परन्तु पं० मोतीलाल जी ने यह प्रकट करके कि पद-ग्रहण करने से पहले तीन शर्तों का पूरा होना जरूरी है, वातावरण को स्वच्छ कर दिया। वे तीन शर्तें ये हैं—

(१) मन्त्री कौंसिलों के प्रति पूर्ण-रूप से उत्तरदायी समझे जाएं, और उनपर सरकार का कोई

शासन न रहे। (२) आय का एक उचित भाग "राष्ट्र-निर्माण" विभाग के लिए नियत किया जाय। (३) मंत्रियों को हस्तान्तरित विभागों की नौकरियों पर पूरा अधिकार हो।

परन्तु सारी बातें फिर खटाई में पड़ गईं। श्री जयकर ने उस मसविदे को, जो कमिटी के सामने रक्खा गया समझौते के बिलकुल विरुद्ध बताया और कहा कि समझौते के ठीक-ठीक अर्थों के संबंध में संदेह और मतभेद को दूर करने के बहाने शर्तों का पूरी तरह खण्डन किया गया है। बस, इसके बाद में स्वराजियों और प्रतियोगी-सहयोगियों का मन-मुटाव बढ़ता गया; परन्तु अभी साबरमती के समझौते का महासमिति-द्वारा निपटारा होना था, जो ५ मई को हुई। इस बैठक में पंडित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "चूंकि शर्तों के ठीक-ठीक अर्थ के संबंध में समझौते पर हस्ताक्षर करनेवालों में इतना मतभेद है कि उसका दूर होना असम्भव है, इसलिए मैं पिछले कुछ दिनों से समझौते की जो बातचीत चला रहा था वह भंग हो गई है, और इसलिए पैक्ट को समाप्त और रद समझा जाय।" वे इंग्लैण्ड जाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने दो महीने की छुट्टी ली और श्री श्रीनिवास आयंगर ने उनका स्थान ग्रहण किया।

हिन्दू-मुस्लिम दंगे

१९२६ के मध्य में हमें देश की राजनैतिक स्थिति का सिंहावलोकन करने के लिए ठहर जाना चाहिए। ६ अप्रैल १९२६ को लॉर्ड अर्विन भारत में आये। लगभग उसी समय कलकत्ते में बड़ा ही भयानक साम्प्रदायिक दंगा हो गया। छः सप्ताह तक कलकत्ते की सड़कें हत्या-काण्ड और अव्यवस्था का अखाड़ा बनी रहीं। जगह-जगह सड़कों पर दंगे हुए, ११० जगह आग लगाई गई, मन्दिरों और मस्जिदों पर हमला किया गया। सरकारी बयान के अनुसार पहली मुठभेड़ में ४४ आदमी मरे और ५८४ घायल हुए और दूसरी मुठभेड़ में ६६ आदमी मरे और ३९१ घायल हुए। ६ सप्ताह के विध्वंस और हत्या-काण्ड के बाद दंगा शान्त हुआ। लॉर्ड अर्विन इन दंगों से बड़े बेचैन हुए। उन्होंने इस विषय पर जो भाषण दिये उनमें उन्होंने अपनी सारी आस्था और विह्वलता, सारी धर्म-भावना और सहृदयता रख दी। उन्होंने जनता को समझाया कि भारत के राष्ट्रीय जीवन और धर्म के नाम पर भारत की उस सुकीर्ति को बचाओ जिसे वर्तमान वैमनस्य मिटा रहा है।

अगस्त के महीने में हिल्टन-यंग-कमीशन ने मुद्रा और विनिमय पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की और सरकार ने उसके अनुसार झटपट १८ पेन्स वाला बिल पेश कर दिया। सरकार की इस जल्दबाजी की निन्दा हुई और उसने १९२७ की फरवरी तक ठहर जाना मंजूर कर लिया, जिससे लोगों और जानकारों को यह निर्णय करने का अवसर मिले कि कीमतें १८ पेंस के अनुपात पर आकर ठहर रही हैं या नहीं।

सितम्बर में लाला लाजपतराय और पण्डित मोतीलाल नेहरू में बड़ी कौंसिल के काम के संबंध में फिर मतभेद उठ खड़ा हुआ। लालाजी का खयाल था कि स्वराजियों की 'वाक्-आउट' की नीति हिन्दू-हितों के लिए स्पष्टतया हानिकर है। वे पद-ग्रहण करने के सम्बन्ध में साबरमती के समझौते की पुष्टि के पक्ष में भी थे। इसलिए उन्होंने बड़ी कौंसिल में कांग्रेस-पार्टी से इस्तीफा दे दिया। बड़ी कौंसिल की अवधि भी शीघ्र ही समाप्त होने वाली थी। नये निर्वाचन सिर पर मौजूद थे। अध्यक्ष पटेल की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। प्रशंसा करने वालों में दीवान बहादुर श्री रंगाचारी, सर पी० शिवस्वामी ऐयर, मि० वैपटिस्टा, श्री नियोगी, मौलवी मुहम्मद याकूब, पण्डित मदनमोहन मालवीय और सर एलेक्जेण्डर मुडीमैन थे। प्रशंसा, आदर-प्रदर्शन और मंगल-कामना की झड़ी लग

गई—जो सब उनके दुबारा अध्यक्ष बनने की मानों भविष्यवाणी थी। सब ने यह आन्तरिक अभिलाषा प्रकट की कि अध्यक्ष-पद के लिए कोई प्रतिद्वंद्वी खड़ा न हो।

इसी अवसर पर सर अब्दुलरहीम भारत-सरकार की कार्यकारिणी में एक मुसलमान की नियुक्ति की चेष्टा कर रहे थे। लॉर्ड अर्विन ने उसका करारा उत्तर दिया—"किसकी नियुक्ति सार्वजनिक हितों के लिए सबसे अधिक लाभकारी सिद्ध होगी, इसका निर्णय करने के संबंध में गवर्नर-जनरल स्वतन्त्र रहेगा।" वास्तव में लार्ड अर्विन हरेक को साम्प्रदायिक ऐक्य के लाभ से प्रभावित कर रहे थे। इसी अवसर पर लन्दन में साम्राज्य-परिषद् ने औपनिवेशिक स्वराज्य की वह परिभाषा बताई जो आजकल प्रचलित है। अक्तूबर के तीसरे सप्ताह तक दक्षिण-अफ्रीकन शिष्ट-मण्डल ने मि० बेयर्स के नेतृत्व में मदरास से पेशावर तक का भ्रमण किया। भारत-सरकार ने इस शिष्ट-मण्डल को भारत की सभ्यता और अवस्था का खुद अध्ययन करने के लिए निमंत्रण दिया था।

१९२६ के नवम्बर में निर्वाचन हुआ। मदरास के कांग्रेसी उम्मीदवार—अब वे स्वराजी न कहलाते थे—पूर्ण रूप से विजयी हुए। लॉर्ड बर्कनहेड प्रतीक्षा कर रहे थे कि देखें, गोहाटी में कांग्रेस के सहयोग करने का कोई लक्षण दिखाई देता है या नहीं। श्री एस० श्रीनिवास आयंगर गोहाटी-कांग्रेस के सभापति चुने गये।

गोहाटी-कांग्रेस

गोहाटी कांग्रेस स्वभावतः ही तनातनी के वातावरण में हुई। तनातनी का कारण सहयोग और असहयोग का पारस्परिक संघर्ष था। यह याद रखने की बात है कि आरम्भ में असहयोग का अर्थ लगातार और एक-सी रुकावट डालना था, उसके बाद इस नीति का अनुसरण उस अवस्था में, जब कौंसिलों में स्वराजियों का मताधिक्य हो, करने की बात कही गई। धीरे-धीरे यह सहयोग लगभग असहयोग के निकट आ लगा, क्या कौंसिलों की कमिटियों का निर्वाचन द्वारा प्राप्त होने वाली जगहों के सम्बन्ध में और क्या भारत-सरकार की कमिटियों की नामजद जगहों के सम्बन्ध में। अन्त में यह असहयोग साबरमती में सहयोग के आस-पास घूमने लगा, पर झिझक के साथ। कौंसिल-पार्टी इस सम्बन्ध में बात-चीत चलाने को तो तैयार थी, पर स्वीकार करने से संकोच करती थी। इसके अलावा स्वराज्य-पार्टी में भी असहयोग करने की प्रवृत्ति मौजूद थी। पर वह राष्ट्रीय-दल, स्वतन्त्र-दल या उदार-दल-वालों की स्थिति अपनाने को तो तैयार न थी। सहयोग के विचार को तो वह खिलवाड़ में उड़ाती थी, परन्तु स्वराजी खुद प्रतिसहयोग की, सम्मान-पूर्ण सहयोग की, सम्भव होने पर सहयोग और आवश्यक होने पर अड़ंगा डालने की, और सुधारों के मामले में सहयोग करने की बात करते जरूर थे। इन्हीं सूक्ष्म पर पूर्ण रूप से व्यावहारिक प्रश्नों ने प्राग्ज्योतिषपुर (गोहाटी) में आपस में खिंचाव पैदा कर दिया था। साथ ही सरकार भी खुल्लम-खुल्ला प्रशंसा करके, और अप्रत्यक्ष रूप से उसे आमंत्रित करके, प्रलोभन दे रही थी और उन सारे हथकण्डों से काम ले रही थी, जिनके द्वारा अनिश्चित मस्तिष्क और भीरु-हृदय काबू में आते हैं।

यह खिंचाव ही काफी सताने और तपानेवाला था, पर दुःखान्त न था। किन्तु जब अकस्मात् गोहाटी में यह समाचार पहुंचा कि एक मुसलमान ने स्वामी श्रद्धानन्द को रोगशय्या पर उनसे मुलाकात करने के बहाने, गोली मार दी तो यह और भी बढ़ गया। जिस दिन यह समाचार मिला उस दिन गोहाटी में कांग्रेस के सभापति का हाथी पर जुलूस निकाला जानेवाला था। आसाम हाथियों का देश ठहरा, इसलिए वह कांग्रेस के सभापति का सम्मान अद्भुत और अपूर्व ढंग से

करना चाहता था। पर जुलूस का विचार छोड़ देना पड़ा। हिन्दू-मुसलमान दोनों में इस दुःखदायी संवाद से शोक छा गया।

जब श्री श्रीनिवास ने अपना भाषण समाप्त किया तो उसमें कोई बात दिखाई न पड़ी। उनके सारे विचार पहले से ही जाने-पूछे थे। उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्द की स्मृति का उचित शब्दों में सम्मान करने, और उमर सोभानी की, जो कभी कांग्रेस के कोषाध्यक्ष रह चुके थे, दुःखदायी मृत्यु की उपयुक्त रूप से चर्चा करने के बाद निर्वाचनों का जिक्र किया और कहा कि स्वराज्य-पार्टी ने कौंसिलों में जिस नीति का अवलम्बन किया, परिणामों ने उसको उचित सिद्ध कर दिया है। इसके बाद द्वैध-शासन के ढांचे को बिखेर के बताया कि इसमें निरंकुशता भरी हुई है। फिर देशबन्धु की समझौते की कोशिश, भारत का दर्जा, सेना और जल-सेना के सम्बन्ध में कहकर कौंसिल के कार्यक्रम की चर्चा की। उन्होंने पद स्वीकार करने की नीति को स्पष्ट शब्दों में और अकाट्य-तर्क के साथ धिक्कारा। पर साथ ही उन्होंने स्वराज्य-पार्टी की स्थिति का मूल्य आंकते हुए कहा कि "यह दल ऐसा विरोधी दल है *जिसकी वैसे तो शक्ति अप्रत्यक्ष है, पर है ठोस, और मंत्रियों की शक्ति की उपेक्षा कहीं* अधिक परिणाम उत्पन्न करने वाली है।" इसके बाद उन्होंने तत्कालीन समस्याओं, मुद्रा और साम्प्रदायिक झगड़ों की और साथ ही खद्दर, अस्पृश्यता और मादक द्रव्य-निषेध की चर्चा की और सहिष्णुता और एकता पर जोर दिया।

गोहाटी के प्रस्ताव हस्बमामूल थे। स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द के सम्बन्ध में प्रस्ताव गांधीजी ने पेश किया और अनुमोदन मौलाना मुहम्मदअली ने। गांधीजी ने समझाया कि मजहब की असलियत क्या है, और हत्या के कारणों को बताया—"शायद अब आप लोग समझ जायंगे कि मैंने अब्दुल-रशीद को भाई क्यों कहा। मैं तो उसे स्वामीजी की हत्या का दोषी तक नहीं ठहराता। दोषी तो असल में वे हैं जिन्होंने एक-दूसरे के विरुद्ध घृणा को उत्तेजित किया।" केनिया का नम्बर प्रस्तावों में दूसरा था। केनिया में प्रवासी भारतीयों के विरुद्ध कानून और भी कठोर होता जा रहा था। आरम्भ में कर २० शिलिंग था। फिर वह मुद्रा-व्यवस्था की उलट-फेर के द्वारा बढ़ाकर ३० शिलिंग कर दिया गया और उसके बाद कानून के द्वारा ५० शिलिंग कर दिया गया। इस प्रकार वहां यूरोपियन हितों की रक्षा भारतीय हितों के, उनकी स्वतन्त्रता के और उनकी आकांक्षाओं के विरुद्ध की जा रही थी। कौंसिलों के कार्यक्रम के सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर दिया गया कि—

(अ) जबतक सरकार राष्ट्रीय मांग का ऐसा उत्तर न दे देगी जो कांग्रेस की या महासमिति की राय में सन्तोषजनक हो, तबतक कांग्रेसवादी मन्त्रित्व के पद को या सरकार-द्वारा प्रदान किये जाने-वाले और किसी पद को स्वयं ग्रहण न करेंगे, और अन्य पार्टियों-द्वारा मन्त्रि-मण्डल की रचना का विरोध करेंगे।

(आ) जबतक सरकार उपर्युक्त प्रकार का उत्तर न देगी तबतक कांग्रेसवादी (ई) धारा में वर्णित बातों का ध्यान रखते हुए धन-सम्बन्धी मांगों को अस्वीकार करेंगे और बजटों को रद करेंगे, जब कि महासमिति की आज्ञा कोई और प्रकार की न हो।

(इ) जिन कानूनों के द्वारा नौकरशाही अपनी शक्ति मजबूत करना चाहती हो उनके सम्बन्ध में किये गये सारे प्रस्तावों को कांग्रेसवादी फेंक देंगे।

(ई) कांग्रेसवादी ऐसे प्रस्ताव पेश करेंगे और ऐसे प्रस्तावों और बिलों का समर्थन करेंगे जो राष्ट्रीय जीवन की उचित वृद्धि के लिए आर्थिक, कृषि-सम्बन्धी, उद्योग और व्यापार-सम्बन्धी

हितों की उन्नति के लिए, और व्यक्तिगत तथा भाषण देने, सभा संगठन करने और समाचार पत्रों की आजादी और फलतः नौकरशाही को स्थान-च्युत करने के लिए आवश्यक हों।

(उ) कांग्रेसवादी कृषकों की दशा में उन्नति करने के निमित्त ऐसे प्रस्ताव स्वयं पेश करेंगे या उनका अनुमोदन करेंगे, जिनके द्वारा किसानों को मौरूसी हक प्राप्त हों और जिनके द्वारा किसानों की दशा में शीघ्र ही सुधार हो।

(ऊ) और खेती का काम करनेवाले और मिलों में काम करनेवाले मजदूरों के हितों की रक्षा करेंगे और जमींदार और किसान और मजदूर के पारस्परिक सम्बन्ध में सामंजस्य स्थापित करेंगे।

बङ्गाल के नजरबन्दों के लिए विशेष कानून पास करने की नीति को धिक्कारा गया। देश में और देश के बाहर काम करने के सम्बन्ध में, हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य के सम्बन्ध में, गुरुद्वारा-आन्दोलन के कैदियों के और मुद्रा-नीति के सम्बन्ध में उपर्युक्त प्रस्ताव पास किये गये। अगले अधिवेशन के लिए स्थान नियत करने का काम महासमिति के ऊपर छोड़ दिया गया।

गांधीजी ने कांग्रेस की सारी चर्चा में भाग लिया। यहां तक कि विषय-समिति ने जो दो प्रस्ताव पास कर दिये थे, उन्हें गांधीजी दूसरे दिन बदलवा दिया। उनमें से एक नाभा के सम्बन्ध में था और दूसरा मुद्रा-व्यवस्था के सम्बन्ध में। गांधीजी की नाभा के साथ इतनी सहानुभूति कभी नहीं रही कि वे कांग्रेस को इस सम्बन्ध में किसी खास स्थिति में पटक देते। एक तीसरा स्वतन्त्रता-सम्बन्धी प्रस्ताव तो गांधीजी की ओजस्विता की अग्नि से भस्म ही हो गया।

नरोत्तम मुरारजी और अन्य अर्थशास्त्र-विशारद वहां इसी कारण मौजूद थे कि मुद्रा-व्यवस्था का प्रसंग छिड़ेगा। श्री केलकर और श्री जयकर दोनों में से कोई नहीं आया था। एक कारण यह था कि वे बीमार थे। दूसरा कारण यह था कि उस समय तक प्रति-सहयोग-वादी कांग्रेस से बिलकुल पृथक् हो गये थे। गोहाटी-कांग्रेस ने ग्राम-संगठन के काम पर जोर दिया और उन कांग्रेस-वादियों के लिए, जो प्रतिनिधियों के निर्वाचन के लिए कांग्रेस-संस्था की किसी भी प्रकार की समिति या उपसमिति के निर्वाचन के लिए राय देना चाहते हों, या जो स्वयं निर्वाचित होना चाहते हों, या कांग्रेस की किसी भी संस्था की बैठक या समिति या उपसमिति में भाग लेना चाहते हों, खद्दर पहनना लाजिमी कर दिया।

गोहाटी-कांग्रेस के सभापति ने १९२६ के निर्वाचनों में मिली स्वराजियों की सफलता का थोड़ा-सा जिक्र किया। स्वराजियों का निर्वाचन-संबन्धी कार्यक्रम बड़े ध्यानपूर्वक तैयार किया गया था। मदरास में स्वराजियों ने करारी विजय पाई, जिसे सरकार भी स्वीकार करती है। युक्तप्रांत अच्छा न रहा। पं० मोतीलाल के शब्दों में कहें तो, "उनकी हार इसलिए नहीं हुई कि वे स्वराजी थे, बल्कि इसलिए कि वे राष्ट्र-वादी थे। यह तो राष्ट्रीयता में और निम्नतर साम्प्रदायिकता की सहायता में धन, भ्रष्टाचार, आतंकवाद और मिथ्या-वाद से काम लिया गया था। कांग्रेस के विरोधियों ने—हिन्दू, मुसलमान दोनों ने—'धर्म संकट में है' की आवाज उठा रक्खी थी। मेरे बारे में आम तौर से कहा गया कि मैं गोमांस खाता हूं, गोहत्या का अपराधी हूं, मस्जिदों के आगे बाजा बन्द कराने का समर्थक हूं और इलाहाबाद में रामलीला के जुलूस बन्द कराने का एकमात्र जिम्मेदार हूं।"

इस जमाने में कांग्रेस का काम वार्षिक अधिवेशनों में लम्बे-चौड़े प्रस्ताव पास करना और कौंसिलों में मुठभेड़ करते रहना मात्र रह गया था। पर एक बात ऐसी भी थी जिसने इन दिनों में विशेषतः धारण कर ली थी। जबसे अखिल-भारतीय चर्खा-संघ बना, खद्दर, ग्रामोन्नति और

मितव्ययिता के पवित्र वातावरण में पनपने लगा। जिन स्त्री-पुरुषों ने खद्दर का व्रत ले लिया था वे पृथक् रूप से इसके प्रचार में लगे हुए थे। वार्षिक प्रदर्शिनियों के द्वारा सिद्ध हुआ कि कताई ने कितनी उन्नति कर दिखाई है। विहार ने गोहाटी के अवसर पर खद्दर तैयार करने में अपनी छः-सात साल की जो उन्नति दिखाई वह सारे देश के लिए दृष्टांत-स्वरूप थी। दो-एक वर्षों को छोड़ कर इधर बाकी वर्षों में प्रदर्शिनियां, जो अब कांग्रेस का अनिवार्य अंग हो गई है, सोलह आने खद्दर की प्रदर्शिनियां हो गई हैं। इन प्रदर्शिनियों ने देश की राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति के साथ-ही-साथ आर्थिक उन्नति की ओर भी ध्यान देने में सहायता पहुंचाई है और लोगों को विश्वास दिला दिया है कि स्वराज्य का अर्थ है—'**निर्धनों के लिए भोजन और वस्त्र**।'

८

कांग्रेस का 'कौंसिल-मोर्चा'—१९२७

अब हमें भिन्न-भिन्न कौंसिलों में कांग्रेस-पार्टी-द्वारा किये गये काम का पर्यालोचन करना है। यह याद रहे कि बंगाल और मध्य-प्रान्त में पिछले तीन साल से द्वैध-शासन का अंत हो गया था। १९२७ में इन दोनों प्रान्तों में यह फिर कायम कर दिया गया। बंगाल में मंत्री के वेतन की मांग के पक्ष में ९४ रायें आईं, विपक्ष में ८८। मध्य-प्रान्त में पक्ष में ५५ और विपक्ष में १६। १९२६ के मार्च में स्वराज्य-पार्टी बड़ी कौंसिल से उठकर चली गई। उसका इरादा नये निर्वाचन समाप्त होने तक आने का न था। पर जब सरकार ने चाल चलकर १६ पेंस की बजाय १८ पेंस की दर लगाने का प्रस्ताव पेश किया तो स्वराज्य-पार्टी एक मिनट के लिए कौंसिल-भवन में आई और प्रस्ताव को अक्तूबर तक के लिए, अर्थात् वर्तमान कौंसिल भंग होने तक, स्थगित करा दिया। जब बड़ी कौंसिल की नई बैठक हुई तो हरेक को १८ पेंस की दर वाली बात पर उत्तेजना हो रही थी। प्रारम्भिक बैठक में पण्डित जी ने सरकार की नीति के ऊपर अपना पहला आक्रमण आरम्भ किया। उन्होंने सत्येन्द्रचन्द्र मित्र की—जो जेल में बन्द रहते हुए भी निर्वाचन के लिए चुने गये थे—अनुपस्थिति की चर्चा करने के लिए कौंसिल की बैठक स्थगित करने का प्रस्ताव पेश किया। अभी हाल ही में १९२५ में बड़ी कौंसिल में ठीक इसी प्रकार का प्रस्ताव श्री शरत्‌चन्द्र वसु की अनुपस्थिति के सम्बन्ध में पास हुआ। श्री शरत्‌चन्द्र वसु निर्वाचन के समय जेल में शाही कैदी थे। पण्डितजी का कहना था कि श्री मित्र को जेल में बन्द रखकर सरकार बड़ी कौंसिल के हक पर और उन्हें चुनने वालों के अधिकारों पर आघात कर रही है; इस प्रश्न पर सरकार १८ रायों से हारी; पर तो भी श्री मित्र को बड़ी कौंसिल में भाग लेने के लिए स्वतन्त्र न किया गया। बंगाल के नजरबन्दों का प्रश्न भी उठाया गया। पंडितजी की मांग मूल प्रस्ताव के संशोधन के रूप में थी, जिसमें उन्होंने कहा था कि या तो नजरबन्द छोड़ दिये जायं या उन पर मामला चलाया जाय।

लालाजी ने, जो उस समय राष्ट्रीय-दल के सदस्य थे, कहा कि यदि सरकार कानून का सहारा छोड़ कर यह कहे कि उन्हें बिना मुकदमा चलाये जेल में रखना स्थिति के लिए आवश्यक है, तो भी ठीक है। पण्डितजी का संशोधन १३ रायों की अधिकता से पास हो गया। श्री मित्र वाले प्रस्ताव के बाद बड़ी कौंसिल को स्थगित करने के लिए और भी कई प्रस्ताव पेश किये गये। उनमें से एक चीन को सेनायें भेजने के सम्बन्ध में था। दूसरा फिजी को भेजे गये भारतीय शिष्ट-मण्डल की रिपोर्ट प्रकाशित न करने के सम्बन्ध में था। इन प्रस्तावों को पेश करने की अनुमति नहीं मिली। एक और प्रस्ताव रेलवे-बजट की बहस समाप्त होने और बड़े बजट के पेश होने तक विनिमय की दर-वाले प्रस्ताव को स्थगित करने के सम्बन्ध में था। यह प्रस्ताव ७ अधिक मत से पास हो गया। अन्तिम प्रस्ताव खड्गपुर की ओर बंगाल-नागपुर-रेलवे के अन्य स्थानों की हड़ताल की चर्चा करने के सम्बन्ध में

था। इसके बाद सरकार में और निर्वाचित सदस्यों में कई प्रश्नों पर मुठभेड़ हुई। उनमें से एक प्रश्न फौलाद-संरक्षण-बिल-सम्बन्धी था। इस विषय पर दो-एक शब्द कहना अप्रासंगिक न होगा। १९२३ के आस-पास भारतीय फौलाद और लोहे के उद्योग को संरक्षण प्रदान करने का प्रश्न उठाया गया। टैरिफ-बोर्ड ने सरकार से आर्थिक सहायता देने की सिफारिश की और तीन वर्ष के बाद इस प्रश्न पर फिर विचार करने की भी सिफारिश की। यह समय बीत गया। इसके बाद इस प्रश्न पर दुबारा विचार किया गया तो टैरिफ-बोर्ड इस नतीजे पर पहुंचा कि बाहर से आने वाले लोहे और फौलाद के माल पर अधिक चुङ्गी लगाई जाय, पर अंग्रेजी माल पर एक-सी चुङ्गी लगे, और अन्य देशों के माल पर भिन्न-भिन्न प्रकार की चुङ्गियां लगाई जायं। यह साम्राज्य के माल को तरजीह देने का प्रश्न था और लोकमत इसके विरुद्ध था। पर इस मामले पर खूब बहस करने के बाद सरकारी योजना को बड़ी कौंसिल ने स्वीकार कर लिया। राष्ट्रीय-दल के उपनायक श्री जयकर ने सारे बजट को रद्द करने का प्रस्ताव पेश किया और इस विषय पर चर्चा होने के बाद श्री जयकर का प्रस्ताव ८ या ९ रायों से पास हो गया। अब सबसे बड़ा प्रश्न १८ पेंस का आया। इसका प्रभाव भारत के मिल-मालिकों और व्यापारियों पर ही नहीं, किसानों पर भी पड़ता था। कच्चा माल और अन्न बाहर भेजने वालों पर इसका प्रभाव विशेष-रूप से पड़ता था। युद्ध से पहले और युद्ध के समय पौंड की दर १५) थी। अब यही १३।-)४ के बराबर हो गई। दूसरे शब्दों में बाहर से माल मंगाने वाले को माल मंगाने का उत्तेजन दिया गया, क्योंकि विदेशी माल फी रुपया २ पेंस सस्ता हो गया या फी १६ पेंस २ पेंस कम हो गया; अर्थात् ८ या १२½% सस्ता हो गया। इसी प्रकार बाहर भेजे जाने वाले कच्चे माल के सम्बन्ध में देखा जाय तो एक पौण्ड की कीमत का कपड़ा जो पहले १६ पेंस की दर पर भेजा जाता था, और १५) में पड़ता था, अब १३।-)४ को पड़ने लगा; और जो कच्चा माल पौंड की कीमत का पहले १५) में बिकता था, अब १३।-)४ में बिकने लगा। इस प्रकार १९२५ में बाहर भेजे जाने वाले माल का हिसाब लगाया जाय तो किसान को ३१६ करोड़ के आठवें भाग का अर्थात् लगभग ४० करोड़ का हर साल घाटा होता रहेगा। यदि साल-भर में बाहर से आने वाला माल २४९ करोड़ का था तो यह कहना कि बाहर से माल मंगाने वाले देश को ३१ करोड़ का नफा रहा, उसके लिए कोई सन्तोष प्रदान नहीं कर सकता, क्योंकि अब भी वह ४० करोड़ के घाटे में अर्थात् कुल मिला कर ९ करोड़ के वार्षिक घाटे में रहा। इस प्रकार भारत जैसे देश को, जिसका व्यापारिक जमा-खर्च उसके अनुकूल है, अर्थात् वह बाहर माल जितना भेजता है उससे कम माल मंगाता है, इस प्रकार का घाटा निरन्तर उठाना पड़ेगा। यही कारण था कि इस प्रश्न पर घमासान युद्ध हुआ, पर लोकमत को ३ रायों से हारना पड़ा और सरकार के पक्ष में ६८ रायें आईं। फौलाद-रक्षण, आर्थिक और दर-सम्बन्धी समस्याओं का निपटारा होने के बाद १९२७ में बड़ी कौंसिल की दिल्ली की बैठक में कांग्रेस के लिए और कोई महत्वपूर्ण काम न रहा।

यहां हम कुछ रोचक घटनाओं का जिक्र करना ठीक समझते हैं। अध्यक्ष पटेल एक बार फिर अध्यक्ष चुने गये। उन्होंने गांधीजी को अपने वेतन से १६५६) मासिक देते रहने का वचन दिया और २०००) अपने व्यय और अपने पद के अनुरूप मर्यादा और आराम के लिए रख छोड़े। गांधीजी इस थाती का प्रबन्ध-भार अकेले अपने ऊपर लेने को तैयार न थे। इसलिए और नेताओं से सलाह ली और दूसरे ट्रस्टी उसमें शामिल किये। २१ मई १९२५ को गांधीजी ने गुजरात प्रान्त के रास नामक स्थान पर एक बालिका-विद्यालय का उद्घाटन करते हुए कहा कि इस फण्ड के मद्दे उनके पास ४०,०००) हैं और उनके व्याज में से १०,००) खर्च किया गया है।

गांधीजी ने साल-भर क्षेत्र-संन्यास का जो व्रत कानपुर में धारण किया था उसकी मियाद पूरी हो गई थी। उन्होंने हाल ही में राजनीति से जो विश्राम ग्रहण किया है और उसे जो लोग विचित्र या सनक समझते होंगे, वे इस कानपुर वाले व्रत के द्वारा इसका रहस्य समझ जायंगे। जब कभी कांग्रेस ने उनकी सलाह की अवहेलना की, उन्होंने उसके लिए रास्ता साफ कर दिया कि जिधर चाहे जाय। उन्होंने काम का आरम्भ देशबन्धु-स्मृति-कोष के लिए बिहार में दौरा करके किया। इस प्रकार संग्रह किया हुआ धन खद्दर-प्रचार में लगाया गया। कौंसिल के काम में उनके लिए कोई आकर्षण न था। लाला लाजपतराय तक को यह काम सार-हीन प्रतीत हुआ था। उन्होंने कौंसिल के कार्य को निस्सार और शक्तियों का अपव्यय मात्र बताया था। लालाजी के बाद एस० श्रीनिवास आयंगर की बारी थी, जिन्होंने कहा, "बड़ी कौंसिल ऐसा स्थान नहीं, और प्रांतीय कौंसिलें तो और भी कम, जहां राष्ट्रीय रूप में अड़ंगा-नीति सफल हो सके।"

दक्षिण अफ्रीका

हम सरोजिनीदेवी के दक्षिण अफ्रीका-गमन की चर्चा कर ही चुके हैं। १९२४ में दक्षिण-अफ्रीका में स्थिति बहुत ही बुरी थी और जनरल स्मट्स 'सेग्रेगेशन बिल' पास कराने ही वाले थे कि भारतीय कांग्रेस के अनुरोध से सरोजिनीदेवी पूर्वी अफ्रीका से दक्षिण-अफ्रीका तक गईं और उनका बड़े जोर का स्वागत हुआ। बिल लगभग पास हो चुका था, पर जनरल स्मट्स की सरकारने इस्तीफा दिया, इसलिए वह बिल भी त्याग दिया गया। १९२५ में जनरल हर्टजोग ने अधिकार प्राप्त किया और एक पहले से भी अधिक कठोर बिल तैयार किया गया। इस बिल का नाम था 'क्लास एरिया-बिल'। यदि यह यूनियन पार्लमेण्ट में पेश किया जाता तो सरकार और विरोधी दल दोनों इसके लिए स्वीकृति दे देते। दीनबन्धु एण्डरूज से गांधीजी और कांग्रेस ने वहां जाने का अनुरोध किया और उन्होंने तत्काल ही यह आवाज उठाई कि यदि बिल पास हो जायगा तो गांधी-स्मट्स समझौता भंग हो जायगा। बाद को भारत-सरकार ने पैडीसन-शिष्ट-मण्डल भेजा, जिसकी ओर यूनियन-सरकार ने अधिक ध्यान नहीं दिया। पर धीरे-धीरे यह तय हुआ कि प्रस्ताव को उस समय तक रोक रक्खा जाय जबतक भारत-सरकार का शिष्ट-मण्डल, जिसे यूनियन-सरकार के साथ समझौता करने का अधिकार प्राप्त है, पहुंच कर दक्षिण-अफ्रीका-प्रवासी भारतीयों की स्थिति के सम्बन्ध में अच्छी तरह से चर्चा न कर ले।

१६ अक्तूबर १९२६ को दक्षिण-अफ्रीका के लिए एक भारतीय शिष्ट-मण्डल के नियत किये जाने की घोषणा हुई, जिसके नेता सर मुहम्मदहबीबुल्ला थे। १७ दिसम्बर १९२६ को एक परिषद् हुई, जिसका उद्घाटन दक्षिण-अफ्रीका के प्रधान-मन्त्री जनरल हर्टजोग ने किया। यह अधिवेशन १९२७ की १२ जनवरी तक रहा और एक चालू समझौता दोनों प्रतिनिधि-मण्डलों में हुआ। इस समझौते का सार इस प्रकार है—

देश में पाश्चात्य ढंग का रहन-सहन कायम रखने के उद्देश्य से सारे वैध और न्याय-पूर्ण उपायों के अवलम्बन करने का दक्षिण अफ्रीका का अधिकार दोनों सरकारें स्वीकार करती हैं।

यूनियन-सरकार इस बात को मानती है कि जो भारतीय यूनियन में बस गये हैं वे यदि पाश्चात्य ढंग का रहन-सहन अपना कर रहना चाहें तो रहने दिये जायं। जो भारतवासी भारत को या ऐसे देशों को जाना चाहें जहां पाश्चात्य ढंग का रहन-सहन आवश्यक न हो उनके सुभीते के लिए यूनियन-सरकार एक योजना तैयार करेगी। यूनियन में आकर बसने के सम्बन्ध में जो कानून है उसमें परिवर्तन किया जायगा, जिसके अनुसार जो लोग लगातार तीन साल तक यूनियन से

अनुपस्थित रहेंगे उनके अधिकार नष्ट हो जायंगे। इस कानून का प्रयोग साल-भर किया जायगा। जो प्रवासी यूनियन-सरकार-द्वारा तैयार की गई योजना के अनुसार भारत या अन्य देशों को गये हों और तीन साल के भीतर वापस आना चाहें, वे तभी ऐसा कर सकेंगे जबकि वे यूनियन-सरकार को वे सब रकमें लौटा दें जो उन्हें यूनियन-सरकार से यूनियन से जाते समय मिली हों। भारत-सरकार अपने इस कर्तव्य को स्वीकार करती है कि वह इन प्रवासी भारतीयों की उनके भारत वापस लौटने पर देख-भाल करेगी। यूनियन में स्थायी रूप से बसे हुए भारतीयों की स्त्रियों और नाबालिग बच्चों का यूनियन में प्रवेश १९१८ की शाही-परिषद् के २१ वें प्रस्ताव के तीसरे पैरे के अनुसार होगा। इस पैरे के अनुसार अन्य ब्रिटिश देशों में स्थायी रूप से बसे हुए भारतीय अपनी स्त्रियों व नाबालिग बच्चों को इन शर्तों पर ही यूनियन में ला सकेंगे—(अ) प्रत्येक भारतीय एक स्त्री और उसके बच्चों से अधिक को यूनियन में न ला सकेगा; (ब) यूनियन में इस प्रकार प्रवेश करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए भारत-सरकार यह प्रमाण-पत्र देगी कि वह उस भारतीय की जायज पत्नी है या जायज बालक है। यूनियन-सरकार ने, इस आशा में कि यूनियन के सामने जो दिक्कतें हैं वे इस समझौते से, जोकि दोनों सरकारों के बीच में खुशनसीबी से हो गया है, बहुत-कुछ दूर हो जायंगी और इस हेतु से कि इस समझौते पर अच्छे वातावरण में अमल होना आरम्भ हो, यह निश्चय किया है कि 'एरिया रिजर्वेशन एण्ड इमिग्रेशन एण्ड रजिस्ट्रेशन बिल' को पास कराने की आगे कोई कार्रवाई न की जाय।

दोनों सरकारें इस बात को देखने के लिए राजी हो गई हैं कि समझौते पर किस प्रकार अमल होता है। अनुभव से जिन-जिन बातों में परिवर्तन की आवश्यकता दिखाई देगी उनपर भी दोनों सरकारें विचार-विनिमय करने के लिए तैयार हैं।

दक्षिण-अफ्रीका की यूनियन-सरकार ने भारत-सरकार से प्रार्थना की है कि वह दोनों सरकारों में लगातार व कारगर सहयोग बनाने के लिए एक एजेण्ट नियुक्त करें।

जब प्रथम केपटाउन-परिषद् खतम हुई तो गांधीजी ने, जो दक्षिण-अफ्रीका में एजेण्ट भेजने के पक्ष में थे ही, भारत के समाचारपत्रों में माननीय श्रीनिवास शास्त्री का नाम पेश किया। सरकार व भारतीय जनता फौरन ही इस सलाह से सहमत हो गई। जैसा हम बाद में देखेंगे, श्री शास्त्री की नियुक्ति का परिणाम अच्छा ही रहा।

गोहाटी वाले प्रस्ताव में सविनय-अवज्ञा का कुछ भी जिक्र नहीं किया गया था। इससे सन् १९२७ में एक नया वातावरण पैदा हो गया। यह ठीक है कि सरकार इस बात से अवश्य कुछ निराश हुई कि गोहाटी-कांग्रेस सहयोग के लिए क्यों नहीं तैयार हुई, लेकिन असलियत में सब प्रान्त मंत्रि-मण्डलों के बनाने और द्वैध-शासन को अमल में लाने की धुन में लगे हुए थे। जब गांधीजी ने अपना दौरा शुरू किया तो राजा-महाराजाओं के दिल का डर निकल चुका था और उनमें से कुछ ने तो गांधीजी को बुलाना भी शुरू कर दिया। वे अब खद्दर को इस नजर से न देखकर कि वह कांग्रेस-स्वयंसेवकों के फौजी-दल की राष्ट्रीय-पोशाक है, इस नजर से देखने लगे कि वह देश के आर्थिक उत्थान के लिए जरूरी चीज है। उन्होंने गांधी जी को एक सच्चा और ईमानदार आदमी पाया; हां, राजनैतिक क्षेत्र में काम करने के उनके उपाय उन्हें गुमराह करने वाले और उनके राजनैतिक विचार कुछ सनकियों-जैसे मालूम होते थे। गांधीजी कुछ समय तक ही दौरा कर पाये थे कि बीमार पड़ गये। जब बम्बई में १५ व १६ मई को महासमिति की बैठक हुई, कार्य-समिति ने हिन्दू-मुस्लिम समस्या का एक हल बनाकर उसके सामने पेश किया। महासमिति ने उसे मंजूर भी कर लिया।

लेकिन आज इतने समय बाद जब हम उस हल को पढ़ते हैं और इस बात पर विचार करते हैं कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या में उस समय से अबतक कितने उलट-फेर हो गये हैं, तो यह बात हमारे दिमाग में आये बिना नहीं रह सकती कि बम्बई वाला हल वास्तविकता से कोसों परे था। उसके बारे में इतना ही कहना काफी होगा कि उसने प्रान्तों व केन्द्रीय धारासभाओं में संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली नियत की थी और आबादी के हिसाब से जगहों का बटवारा किया था। साथ में यह शर्त भी जोड़ दी गई कि यदि भिन्न-भिन्न जातियों में आपस में समझौता हो सके तो मय पंजाब के सिक्खों के अल्प-संख्यक जातियों के साथ रिआयत की जाय और उन्हें हिस्से से ज्यादा जगहें दे दी जायं और जिस हिसाब से उन्हें प्रान्तों में अधिक जगहें दी जायं वही हिसाब बड़ी कौंसिल की जगहों के बटवारे में भी लागू हो।

बम्बई में महासमिति की बैठक में साम्राज्यवाद-विरोधी परिषद् के प्रश्न पर भी विचार हुआ। पं० जवाहरलाल इस समय यूरोप में ही थे। आपने परिषद् में भारत का प्रतिनिधित्व किया और ब्रूसेल्स से, जहां परिषद् की बैठक हुई थी, कांग्रेस को उसकी एक रिपोर्ट भी भेजी। महासमिति ने जवाहरलाल जी की सेवाओं की मुक्तकंठ से प्रशंसा की और साम्राज्यवाद-विरोधी संघ के प्रयत्न को भी सराहा। महासमिति ने कांग्रेस से यह सिफारिश करने का भी निश्चय किया कि वह संघ को अपनी एक सहायक-संस्था मानकर उसके उद्देश्य व कार्यों का समर्थन करे।

दूसरे प्रस्ताव-द्वारा चीन की आजादी की लड़ाई के साथ भारतीयों की सहानुभूति प्रकट की गई और चीन को फौजें भेजने की भारत-सरकार की कार्रवाई की निन्दा की गई; साथ-ही-साथ फौजों की वापसी की भी मांग की गई। हिन्दुस्तानी-सेवा-दल ने चीन को एम्बुलेन्स कोर भेजने का जो इरादा किया था उसकी भी महासमिति ने प्रशंसा की। ब्रिटेन का प्रस्तावित ट्रेड-यूनियन-कानून, बंगाल-कांग्रेस का झगड़ा, मजदूरों का संगठन, नागपुर का सत्याग्रह तथा ब्रिटिश माल का बहिष्कार ये अन्य विषय थे जिनपर महासमिति ने उपयुक्त प्रस्ताव पास किये। इनमें आखिरी विषय पर गौर से विचार होना था। मदरास-कौंसिल की कांग्रेस पार्टी की बड़ी कड़ी आलोचना की गई; एक वक्त तो, ऐसा मालूम होने लगा कि उसपर निन्दा का प्रस्ताव पास कर ही दिया जायगा। बात यह थी कि जब मदरास में कांग्रेस-पार्टी की चुनाव में खासी जीत हुई—१०४ निर्वाचित सदस्यों में कांग्रेस के ४५ थे और यदि सरकार की बात मानी जाय तो १०४ में ३८—तो कांग्रेस-पार्टी के नेता को गवर्नर ने बुलाया और उनसे मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिए कहा, लेकिन उन्होंने इन्कार कर दिया। वे खुद तो कौंसिल के अध्यक्ष बन गये, और यह एक प्रकट रहस्य था कि स्वतन्त्र-दल-वालों ने कांग्रेस-पार्टी के इस गुप्त आश्वासन पर ही मन्त्रि-मण्डल बनाया कि वह (अर्थात् कांग्रेस-पार्टी) स्वतंत्र-दल-वालों का साथ देगी। सिद्धान्त के विचार से इसका विरोध स्वाभाविक ही था। यद्यपि महासमिति के सामने उस समय सविनय-अवज्ञा का कोई कार्यक्रम नहीं था तब भी उसमें असहयोग की भावना भरी हुई थी और उसने अपना दृष्टि-कोण भी ऐसा बना रक्खा था। जब श्री गोपाल मैनन ने कांग्रेस-पार्टी के मदरास-कौंसिल के सदस्यों के विरुद्ध निन्दा का प्रस्ताव पेश किया, तो उसके पक्ष में जोरों से कैन्वेसिंग होने लगी। यह उम्मीद की जा रही थी कि श्री केलकर प्रस्ताव का विरोध करेंगे। आपने पहले से लिख रक्खी भाषा में पं० मोतीलाल नेहरू पर गन्दे आक्षेप किये। अन्त में यह तय पाया कि यह प्रश्न, कि कांग्रेस-पार्टी ने मन्त्रियों के वेतन और खर्चे की रकमों के विरुद्ध राय क्यों नहीं दी, कार्य-समिति को जांच करके उसपर रिपोर्ट पेश करने के लिए सौंपा जाय।

इस समय मई के चौथे सप्ताह में एक बड़ा आनन्ददायक समाचार प्राप्त हुआ। चार साल के जेल-जीवन के बाद सुभाष बाबू छोड़ दिये गये। लॉर्ड लिटन इस विषय में जरा घबराते रहते ; वे

अतः बंगाल के नजरबन्दों के साथ नरमी दिखाने का काम सर स्टैनले जैकसन के जिम्मे पड़ा। सुभाष बाबू का स्वास्थ्य पूरी तरह से बिगड़ गया था और इसी वजह से सबको बड़ी फिक्र होने लगी थी।

दंगों की बाढ़

सन् १९२७ की गर्मियों में अन्य सालों की भांति कोई मार्के का कानून पास नहीं हुआ, लेकिन देश में हिन्दू-मुस्लिम दंगों की बाढ़-सी आ गई। सबसे भीषण दंगा लाहौर में हुआ, जो ३ मई से ७ मई तक होता रहा और जिसमें २७ व्यक्ति मारे गये और २७२ घायल हुए। विहार, मुलतान (पंजाब), बरेली (युक्त-प्रान्त) व नागपुर (मध्य-प्रान्त) में भी इसी प्रकार के दंगे हुए। लाहौर के बाद नागपुर का दंगा इन सबमें भीषण था, जिसमें १९ व्यक्ति मारे गये और १२३ घायल हुए। इन दंगों के पहले क्या-क्या घटनायें घटीं, जो इन दंगों में कुछ का कारण बनीं, इसके बारे में कुछ कहना आवश्यक है। तीन साल पहले एक किताब छपी थी, जिसका नाम था 'रंगीला रसूल'। किताब के नाम से पता चलता है कि वह कितनी आपत्तिजनक होगी। सरकार ने उसके लेखक पर मुकदमा चलाया, जो दो साल तक चलता रहा। अदालत ने दो साल की सजा का हुक्म सुनाया जो अपील में भी बहाल रहा, लेकिन हाईकोर्ट ने सजा रद कर दी और लेखक को बरी कर दिया। 'रिसाला वर्तमान केस' नाम का एक केस और भी हुआ, जिसमें अभियुक्त को सजा हो गई। इन दो मुकदमों का यह फल हुआ कि सरकार ने कानून में अनिश्चितता देखकर अगस्त १९२७ को असेम्बली में एक बिल पेश कर दिया, जिसका मुख्य भाग इस प्रकार था—

"जो कोई व्यक्ति सम्राट् की प्रजा के किसी वर्ग की धार्मिक भावनाओं पर जान-बूझकर और बुरे इरादे से चोट पहुंचाने के लिए मौखिक या लिखित शब्दों से या दृश्य संकेतों से उस वर्ग के धर्म या धार्मिक भावनाओं का अपमान करेगा या अपमान करने का प्रयत्न करेगा, उसे दो साल की सजा मिलेगी या जुर्माना होगा या उस पर सजा व जुर्माना दोनों होंगे।"

दो दिन बहस होकर ही बिल पास हो गया। अभीतक २६ दंगे हो चुके थे जिनमें १० युक्त-प्रांत में, ६ बम्बई में और २-२ पंजाब, मध्य-प्रांत, बंगाल, विहार व दिल्ली में भी हुए थे। २९ अगस्त सन् १९२७ को भारतीय धारा-सभा में भाषण देते हुए वाइसराय लार्ड अर्विन ने बताया कि १८ महीने से भी कम समय में दंगों के कारण २५० व्यक्ति मौत के घाट उतर गये और २५०० से अधिक घायल हुए। वायसराय ने एकता की आवश्यकता पर भी जोर दिया। इसके बाद एक एकता-सम्मेलन भी किया गया लेकिन उसे कुछ अधिक कामयाबी न मिली। महासमिति ने भी २७ अक्तूबर १९२७ को इसी प्रकार के एक एकता-सम्मेलन का आयोजन किया। सम्मेलन का उद्घाटन श्री श्रीनिवास आयंगर ने किया, और बहुत लम्बी बहस के बाद सम्मेलन ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया—

"चूंकि भारत की किसी भी जाति को अपने धार्मिक कर्तव्यों अथवा धार्मिक विचारों को दूसरी जाति पर लादने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए और चूंकि हरेक जाति व व्यक्ति को सार्वजनिक व्यवस्था व सदाचार का विचार रखते हुए अपने धर्म में विश्वास रखने का और उसके अनुसार कार्य करने का अधिकार होना चाहिये, हिन्दुओं को धार्मिक व सामाजिक कार्यों के लिए हर मस्जिद के सामने जुलूस निकालने की और बाजा बजाने की स्वतन्त्रता है; लेकिन उन्हें मस्जिद के सामने न तो जुलूस रोकना चाहिए न कोई विशेष प्रदर्शन करना चाहिए और न ही मस्जिदों के सामने ऐसे भजन गाने चाहिए या इसी तरह बाजा बजाना चाहिए कि मस्जिदों के इबादत करनेवाले व नमाज पढ़नेवाले दिक हों या उनके कार्य में बाधा हो। जिस शहर या गांव में मुसलमानों को गो-वध करने

का अधिकार है, उस शहर या गांव में उन्हें अपने इस अधिकार को काम में लाने की स्वतन्त्रता होगी; लेकिन वे गो-वध न तो किसी आम रास्ते पर करेंगे, न किसी मन्दिर के पास और न किसी ऐसी जगह पर कि जहां हिन्दुओं की नजर पड़ती हो। गायों को, उनका वध करने के लिए, जुलूस में भी न निकाला जाय और न कोई विशेष प्रदर्शन किया जाय। चूंकि गो-वध के सम्बन्ध में हिन्दुओं की भावनायें बहुत गहरी जड़ पकड़ चुकी हैं अतः मुसलमानों से आग्रहपूर्वक अपील की जाती है कि वे गो-वध इस प्रकार न करें जिसमें शहर या गांव के हिंदुओं को दुःख पहुंचे।"

सम्मेलन ने उन्हीं दिनों के कुछ कातिलाना हमलों की भी निन्दा की और हिन्दू व मुसलमान नेताओं से अपील की कि वे देश में अहिंसा का वातावरण उत्पन्न करें। सम्मेलन ने कांग्रेस की महासमिति को भी यह अधिकार दिया कि वह हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रचार करने के लिए हर प्रांत में एक-एक कमिटी नियुक्त करे।

एकता-सम्मेलन के खत्म होते होते ही २०, २९ व ३० अक्तूबर १९२७ को कलकत्ता में महासमिति की बैठक हुई। साम्प्रदायिक प्रश्न पर एकता-सम्मेलन के प्रस्ताव ज्यों-के-त्यों पास कर दिये गए। इसके पश्चात् बंगाल के नजरबन्दों का सवाल सामने आया। इन नजरबन्दों में कुछ तो चार-चार साल से जेलों में पड़े हुए थे। इसलिए उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई कराने का प्रयत्न करने के लिए एक कमिटी नियुक्त की गई।

कलकत्ते की बैठक में महासमिति ने जिन-जिन विषयों को उपयुक्त प्रस्तावों-द्वारा निबटाया वे ये थे—अमरीका-स्थित भारतीय, भारत के हित-समर्थन के लिए सिनेटर कोपलैंड के प्रति कृतज्ञता-प्रकाश, श्री सकलातवाला को पासपोर्ट का न दिया जाना, तथा नाभा-नरेश का 'राज्य-च्युत' होना। यह प्रस्ताव गोहाटी में तो छोड़ दिया गया था, लेकिन कलकत्ते में इसपर फिर विचार हुआ। इस विषय को श्री बी० जी० हार्निमैन ने उठाया, जिसके फल-स्वरूप महासमिति ने महाराज के साथ न्याय किये जाने के लिए एक प्रस्ताव कर दिया।

साइमन-कमीशन

नवम्बरके पहले हफ्ते में कुछ सनसनीदार बातें हुईं। वाइसराय अपने दौरे का कार्यक्रम रद करके वापस दिल्ली आ गये। भारत के मुख्य-मुख्य नेताओं को ५ नवम्बर व उसके बाद की तारीखों में सुविधानुसार वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण दिया गया। गांधीजी इस समय दिल्ली से बहुत दूर बंगलौर में थे। उन्हें भी वाइसराय से मिलने का निमन्त्रण मिला। उन्होंने अपना कार्यक्रम रद्द कर दिया और दिल्ली आ पहुंचे। जब वे वाइसराय से जाकर मिले तो कोई ऐसी विशेष बात न निकली। लार्ड अर्विन ने गांधीजी के हाथ में साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में भारत-मन्त्री की घोषणा रख दी। जब गांधीजी ने वाइसराय से पूछा कि क्या बस यही काम है, तो लार्ड अर्विन ने कहा, "बस, यही।" गांधीजी ने सोचा कि यह सन्देश तो एक आने के लिफाफे के जरिये भी उनके पास पहुंच सकता था। पर बात यह थी कि साइमन-कमीशन की घोषणा भारत में ८ नवम्बर सन् १९२७ को की गई। वाइसराय उसके प्रति सद्भावना पूर्ण सहयोग प्राप्त करने के प्रयत्न में थे। कांग्रेस के सिवा भी भारत की सब पार्टियां साइमन-कमीशन की नियुक्ति से इसलिए नाराज हुईं कि उसमें एक भी भारतीय नहीं रक्खा गया और कांग्रेस का यह मत स्वाभाविक ही था कि साइमन-कमीशन तो उसकी अधकचरी मांग के निकट भी कहीं नहीं पहुंचता। डा० बेसेण्ट ने कहा कि यह जले पर नमक छिड़कना नहीं है तो क्या है?

श्री दिनशा वाचा जैसे अखिल-भारतीय नरम नेताओं ने कमीशन के खिलाफ एक घोषणा-

पत्र निकाला। कांग्रेस के सिवा भारत के सब राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों ने घोषणा-पत्र पर हस्ताचर किये। मिल विल्किन्सन ने तो यहां तक कह डाला कि अमृतसर-कांड के पश्चात् ब्रिटिश सरकार के किसी भी कार्य की भारत में इतनी भारी निन्दा नहीं हुई जितनी कि साइमन-कमीशन की नियुक्ति की। कांग्रेस के सभापति ने भी कमीशन की निन्दा की और कर्नल वेजवुड के विचारों का हवाला दिया कि कमीशन के वहिष्कार से भारत के पच को कोई नुकसान नहीं पहुंचेगा।

और आखिरकार यह कमीशन, जिसे हर जगह धिक्कारा जा रहा था, किस काम के लिए नियुक्त किया गया था? सरकारी शब्दों में कमीशन को यह काम सौंपा गया था कि वह "ब्रिटिश-भारत के शासन-कार्य की शिचा-वृद्धि की, प्रातिनिधिक संस्थाओं के विकास की एवं तत्सम्बन्धी विषयों की जांच करे और इस बात की रिपोर्ट पेश करे कि उत्तरदायी शासन का सिद्धान्त लागू करना ठीक है या नहीं? यदि है तो किस दरजे तक? और अभीतक उत्तरदायी शासन जिस मात्रा में स्थापित किया गया है उसे बढ़ाया जाय, या कम किया जाय या उसमें और किसी प्रकार कोई हेर-फेर किया जाय? इन प्रश्नों के साथ इस बात की रिपोर्ट भी पेश की जाय कि प्रान्तों में दो-दो कौंसिलों का स्थापित करना वाच्छनीय है या नहीं?

"जब कमीशन अपनी रिपोर्ट दे देगा और उसपर भारत-सरकार व सम्राट् की सरकार विचार कर लेंगी तो सम्राट्-सरकार का यह फर्ज होगा कि वह पार्लमेण्ट के सामने अपने निर्णय पेश करे। लेकिन सम्राट्-सरकार का पार्लमेण्ट से यह कहने का इरादा नहीं है कि जबतक उक्त निर्णयों पर भारत के भिन्न-भिन्न विचारवालों की रायें जाहिर न हो जायं उससे पहले ही वह उन निर्णयों को स्वीकृत कर ले। इसलिए सम्राट्-सरकार ने निश्चय किया है कि वह पार्लमेण्ट से यह कहे कि ये निर्णय विचारार्थ दोनों हाउसों की एक ज्वाइण्ट (संयुक्त) कमिटी के सुपुर्द किये जायं और इस बात का प्रबन्ध किया जाय कि भारत की केन्द्रीय धारा सभायें उक्त कमिटी के सामने अपने विचार पेश करने के लिए प्रतिनिधि-मण्डल भेजें जो ज्वाइन्ट कमिटी की बैठकों में भाग लें और उनके साथ विचार-विमर्श करें। ज्वाइन्ट-कमिटी जिन-जिन संस्थाओं के विचार जानना चाहे उसके प्रतिनिधियों से विचार-विमर्श करने का भी उसे अधिकार हो।"

मदरास-कांग्रेस

अब हम १९२७ की कांग्रेस की ओर आते हैं, जो मदरास शहर में होने वाली थी। जब गोहाटी की कांग्रेस हुई थी, लोगों ने इस बात को पसन्द नहीं किया था कि कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन किसी कस्बे में हो, और अब तो अर्थात् १९२७ में शाही कमीशन आने वाला था। कमीशन के सम्बन्ध में कांग्रेस को क्या करना होगा, यह ठीक-ठीक किसी को पता नहीं था। गोहाटी में अधिवेशन स्थान का प्रश्न महासमिति पर ही छोड़ दिया गया था। और फिर सवाल यह था कि इस अधिवेशन का सभापति कौन हो? १९२७ में हिन्दू-मुस्लिम दङ्गे हो रहे थे। दो एकता-सम्मेलन हो चुके थे और महासमिति ने एक सम्मेलन के प्रस्ताव भी स्वीकार कर लिये थे। ऐसे साज में कांग्रेस का सभापतित्व एक मुसलमान से बढ़कर और कौन कर सकता था? और मुसलमानों में भी डॉ० अंसारी से बढ़कर? डॉ० अन्सारी १८९६ या १८९९ में मदरास मेडिकल कॉलेज के छात्र रहे थे और १९१२में रेडक्रास-मिशन के साथ बालकन-प्रायद्वीप भी गये थे। डॉक्टरी में तो आप नाम पा ही चुके थे। डॉक्टरी-पेशे के बाहर भी अपनी शायस्तगी व विचारों की उदारता के कारण सुविख्यात थे। इसलिए आप मदरास-कांग्रेस के सभापति चुने गये और, जैसी कि उम्मीद थी, आपने अपने भाषण में साम्प्रदायिक मेल-जोल के प्रश्न को खूब जगह दी। कांग्रेस की नीति का संक्षेप में वर्णन करते हुए आपने

बताया कि कांग्रेस की नीति ३५ साल तक तो सहयोग की रही, फिर डेढ़ साल तक असहयोग की, और फिर चार साल कौंसिलों में अड़ंगेबाजी करने और कौंसिल का काम ही रोक देने की। "असहयोग असफल सिद्ध नहीं हुआ," डॉ० अन्सारी ने कहा, "हम ही असहयोग के लिए असफल सिद्ध हुए।" इसके पश्चात् आपने शाही कमीशन, नजरबन्द, भारत व एशिया तथा राष्ट्र का स्वास्थ्य आदि विषयों पर अपने विचार प्रकट किये। कांग्रेस-अधिवेशन में मि० वेस्प्रैंट, मि० पार्सेल व पार्लमेण्ट के मजदूर-सदस्य मि० मार्डी जोन्स भी मौजूद थे। शाही कमीशन के प्रस्ताव के अलावा इस वर्ष के प्रस्तावों में कोई खास बात न थी। शोक-प्रस्ताव, साम्राज्यवाद-विरोधी-संघ, चीन, पासपोर्टों का न मिलना आदि ऐसे विषय थे जिन पर हर साल ही प्रस्ताव पास होते रहते थे। एक प्रस्ताव द्वारा 'युद्ध के खतरे' की आवाज उठाई गई और कांग्रेस ने यह घोषणा की कि प्रत्येक भारतीय का यह फर्ज है कि वह ऐसे किसी युद्ध में भाग लेने या सरकार से किसी भी प्रकार का सहयोग करने से इन्कार करे। जनरल अवारी की भूख-हड़ताल को ७५ वां दिन हो चुका था; उन्होंने शस्त्र-कानून के विरुद्ध सत्याग्रह, जिसका मुख्य भाग वर्जित हथियारों के साथ जुलूस निकालना था, छेड़ दिया था। जनरल अवारी को उनकी गैर-हाजिरी में ही बधाई दी गई और उनके साथ सहानुभूति प्रकट की गई। स्मरण रहे कि वर्मा को भारत से अलग करने के सरकारी प्रयत्नों की भी निन्दा की गई। १८८५ में जब पहली कांग्रेस हुई थी तब ही उसने वर्मा के ब्रिटिश-राज्य में मिलाये जाने का विरोध किया था और यह कहा था कि यदि दुर्भाग्यवश सरकार उसे मिलाने ही का निश्चय करे तो उसे सम्राट् के अधीन एक उपनिवेश (Crown Colony) बना दिया जाय। कांग्रेस ने शाही कैदियों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया और उनकी शीघ्र-से-शीघ्र रिहाई की मांग की। पूर्व-अफ्रीका व दक्षिण-अफ्रीका के प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में भी दो प्रस्ताव पास हुए। इन प्रवासी भारतीयों की वास्तविक स्थिति के बारे में इस अध्याय में पहले ही उल्लेख हो चुका है। हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी—राजनैतिक अधिकार व धार्मिक एवं अन्य अधिकार दोनों ही विषयों पर—एक प्रस्ताव महासमिति के प्रस्ताव के तर्ज पर पास किया गया। ब्रिटिश माल के बहिष्कार पर भी एक प्रस्ताव पास किया गया। यह एक नया विषय था जो कांग्रेस के सामने कुछ वर्षों से प्रस्ताव के रूप में आरहा था। चूंकि स्वराज्य का मसविदा तैयार करने की मांग की गई थी और कांग्रेस के सामने कई मसविदे पेश थे, अतः कांग्रेस ने कार्य-समिति को अधिकार दिया कि वह अन्य संस्थाओं से मशविरा करके स्वराज्य का मसविदा तैयार करे और उसे एक विशेष कन्वेन्शन (पंचायत) के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे। इस कार्य के लिए कार्य-समिति को और सदस्य बढ़ाने का भी अधिकार दिया गया। कांग्रेस के विधान में कुछ परिवर्तन किया गया। लेकिन इस वर्ष का सबसे मुख्य प्रस्ताव शाही कमीशन के सम्बन्ध में था, जिसे हम ज्यों का-त्यों नीचे देते हैं—

कमीशन का बहिष्कार

"चूंकि ब्रिटिश-सरकार ने भारत के स्वभाग्य-निर्णय के अधिकार की पूर्ण उपेक्षा करके एक शाही कमीशन नियुक्त किया है, यह कांग्रेस निश्चय करती है कि भारत के लिए आत्मसम्मान-पूर्ण एकमात्र मार्ग यही है कि वह कमीशन का हर हालत में और हर तरह से बहिष्कार करे। विशेष करके—

(अ) यह कांग्रेस भारत की जनता और देश की समस्त कांग्रेस-संस्थाओं से अनुरोध करती है कि वे (१) कमीशन के भारत में आने के दिन सामूहिक प्रदर्शनों का आयोजन करें, और (२) भारत के जिस-जिस शहर में कमीशन जाय वहां भी उस दिन इसी प्रकार के प्रदर्शन करें और (३) जोरों के साथ प्रचार-कार्य करके लोकमत को इस प्रकार सङ्गठित करें कि हर तरह के राजनैतिक विचार वाले

भारतीय कमीशन का जोरों से वहिष्कार करने के लिए तैयार हो जायं।

(ब) यह कांग्रेस भारतीय कौंसिलों के गैर-सरकारी सदस्यों व भारत के राजनैतिक दलों व जातियों के नेताओं से तथा दूसरे लोगों से अनुरोध करती है कि वे न तो कमीशन के सामने गवाही दें, न सार्वजनिक अथवा खानगी तौर पर उसके साथ सहयोग करें, और न उसके सम्बन्ध में किये जाने वाले किसी सामाजिक उत्सव में भाग लें।

(स) यह कांग्रेस भारतीय धारा-सभाओं के गैर-सरकारी सदस्यों से अनुरोध करती है कि वे (१) कमीशन के सिलसिले में बिठाई जाने वाली किसी भी 'सिलेक्ट कमिटी' के लिए न तो राय दें और न उनकी सदस्यता स्वीकार करें, और (२) कमीशन के कार्य के सम्बन्ध में अन्य जो कोई भी प्रस्ताव या खर्चे की मांग पेश की जाय, उसे ठुकरा दें।

(द) यह कांग्रेस भारतीय धारा-सभाओं के सदस्यों से यह भी अनुरोध करती है कि वे निम्न सूरतों के सिवाय धारा-सभाओं की बैठकों में भाग न लें, अर्थात् यदि उनका स्थान रिक्त होने से बचाने के लिए या वहिष्कार को सफल व जोरदार बनाने के लिए, या किसी मन्त्रि-मण्डल को गिराने के लिए या किसी ऐसे महत्वपूर्ण कानून का विरोध करने के लिए जो कांग्रेस की कार्य समिति की राय में भारत के हितों के विरुद्ध हो, ऐसा करना आवश्यक हो।

(य) यह कांग्रेस कार्य-समिति को अधिकार देती है कि वहिष्कार को प्रभावकारी व पूर्ण बनाने के लिए जहां तक हो सके वह दूसरी संस्थाओं व पार्टियों से सलाह-मशविरा करे और उनका सहयोग प्राप्त करे।"

काकोरी-केस के अभियुक्तों को बर्बरता पूर्ण सजायें दी जाने पर और उससे जनता में रोष की प्रबल भावना फैलने पर भी सरकार ने उनकी सजायें न घटाईं। उस पर भी एक विशेष प्रस्ताव-द्वारा दुःख प्रकट किया गया और कांग्रेस ने उनके परिवार के साथ अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रकट की।

अन्त में कांग्रेस के ध्येय की भी एक पृथक् प्रस्ताव-द्वारा परिभाषा की गई। इसके अनुसार यह कहा गया, "यह कांग्रेस घोषित करती है कि भारतीय जनता का लक्ष्य पूर्ण राष्ट्रीय स्वतन्त्रता है।" यह प्रस्ताव कुछ साल तक कांग्रेस के हरेक अधिवेशन में पेश होता चला आ रहा था। यूरोप से जवाहरलालजी के लौट आने के कारण इस प्रस्ताव को और भी बल प्राप्त हुआ। स्वयं श्रीमती बेसेण्ट ने भी इस प्रस्ताव पर कोई आपत्ति न देखी। आपने विषय-समिति की बैठक में कहा कि भारत के लक्ष्य का यह बड़ा ही शानदार व स्पष्ट वक्तव्य है। गांधीजी उस समय समिति की बैठक में मौजूद नहीं थे और उन्हें इस प्रस्ताव का पता तभी चला जब कि वह पास हो गया।

१

भावी संग्राम के बीज—१९२८

कमीशन का बहिष्कार

जब १९२८ का साल प्रारम्भ हुआ तो देश के राजनैतिक वातावरण में साइमन-कमीशन की नियुक्ति के कारण सरकार के प्रति रोष-ही-रोष विद्यमान था। देश कमीशन के बहिष्कार में जी-जान से जुटा हुआ था। कमीशन की घोषणा करते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था कि भारतीय सम्मान तथा भारतीय गौरव को जान-बूझ कर अपमानित करने का सम्राट्-सरकार का कोई इरादा नहीं है। पर साथ में उन्होंने इस बात की भी धमकी दे दी कि यदि कमीशन के कार्य में भारतीयों की सहायता न प्राप्त हुई तब भी कमीशन अपना कार्य बदस्तूर चलाता रहेगा और अपनी रिपोर्ट पार्लमेण्ट को पेश कर देगा। रिपोर्ट पेश हो जाने के बाद पार्लमेण्ट उस पर अपनी मर्जी के अनुसार जो निर्णय करना चाहेगी, करेगी।

३ फरवरी को कमीशन बम्बई में आकर उतरा। उस दिन भारत-भर में हड़ताल मनाई गई और कमीशन के बहिष्कार का श्रीगणेश कर दिया गया। अखिल-भारतीय हड़ताल के अलावा ३ फरवरी को और कोई मार्के की घटना नहीं हुई। हां, मदरास में हाईकोर्ट के पास भीड़ में अवश्य कुछ उत्तेजना दिखाई दी। वहां पुलिस ने दुर्भाग्यवश भीड़ पर गोली चला ही दी, हालांकि काम शायद बिना गोली चलाये भी चल सकता था। पुलिस की गोली से कई व्यक्ति घायल हुए, जिनमें से एक तो जहां-का-तहीं मर गया और दो बाद में जाकर मरे। कलकत्ते में भी छात्रों और पुलिस की मुठभेड़ हुई।

कमीशन बम्बई से चलकर सबसे पहले दिल्ली आया। दिल्ली शहर में जैसे ही कमीशन के चरण पड़े कि उसका विरोधी-प्रदर्शनों द्वारा विराट् स्वागत किया गया और "गो बैक, साइमन!" "साइमन वापस लौट जाओ" के झण्डे तथा तख्ते दिखाये गये। दक्षिण भारत लिबरल फेडरेशन (जो आम तौर पर जस्टिस-पार्टी के नाम से प्रसिद्ध है) व कुछ मुस्लिम संस्थाओं को छोड़ कर यह कहा जा सकता है कि भारत ने कमीशन का पूर्ण बहिष्कार किया।

कमीशन के बहिष्कार की इतनी भारी सफलता देखकर सरकार के मन में यह बात आई कि अब आतंक व दबाव से काम लेना चाहिए। लाहौर में कमीशन के विरोध में प्रदर्शन करने के लिए लाला लाजपतराय के नेतृत्व में एक बड़ा भारी जन-समूह एकत्र हुआ। पुलिस वालों ने भीड़ पर हमला किया और कई प्रतिष्ठित नेताओं को डण्डों और लाठियों से ठोंका-पीटा। लालाजी के कई जगह गहरी चोटें आईं। यह एक आम खयाल है कि लालाजी की मृत्यु इस बुजदिलाना हमले के कारण ही हुई थी। यद्यपि लालाजी की मृत्यु के सम्बन्ध में खुले तौर पर पुलिस पर यह अभियोग लगाया गया, तो भी सरकार ने निष्पक्ष जांच करने से साफ इन्कार कर दिया।

लखनऊ में भी कमीशन के आने के दिन निःशस्त्र व शान्त भीड़ पर पुलिस ने कई बार जान-बूझ कर व अकारण डण्डे बरसाये। युक्त-प्रान्त की पुलिस ने तो जवाहरलालजी तक को न छोड़ा। सब दलों के प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्ताओं पर डंडे व लाठियां बरसाने में तो मानों घुड़सवार व पैदल पुलिस ने अपनी सारी चतुराई ही खतम कर दी और बीसियों आदमियों को घायल कर डाला।

लखनऊ तो पैदल व घुड़सवार पुलिस के कारण एक विशाल फौजी पड़ाव-सा ही बन गया। चार दिन तक पुलिस के बर्बरता पूर्ण हमले होते रहे। पुलिस वाले लोगों के घरों तक में घुस गये और "साइमन, वापस चले जाओ!" के नारे लगाने पर ही उन्होंने कई प्रतिष्ठित राष्ट्रीय कार्यकर्ताओं को गिरफ्तार कर लिया और बुरी तरह पीटा। लेकिन लखनऊ के जोशीले नागरिकों को धन्य है कि वे इन बर्बरता-पूर्ण हमलों व कृत्यों से तनिक भी न घबराये और अपने प्रदर्शन और भी अधिक जोशोखरोश के साथ करते रहे। अधिकारी-वर्गको तो उन्होंने एक बार इतना छकाया कि वह देखता का-देखता रह गया और सारा शहर हंसी के मारे लोट-पोट हो गया। मामला इस प्रकार था। कुछ ताल्लुकेदारों ने कैसरबाग में साइमन-कमीशन को एक पार्टी दी। पुलिस ने कैसरबाग को चारों ओर से घेर लिया और ऐसे किसी भी आदमी को बाग की सड़कों के करीब न आने दिया जिस पर पुलिस विरोधी-दल वाला होने का सन्देह करने लगती थी। इतनो एहतियात रखने पर भी जब आसमान से सैकड़ों काली-काली पतंगें व गुब्बारे, जिन पर 'साइमन, चले जाओ' 'भारत भारतवासियों के लिए हैं आदि शब्द लिखे हुए थे, आ-आकर बागमें गिरने लगे तो सारी पार्टी का मजा किरकिरा होगया।

जब कमीशन पटना पहुंचा तो उसके विरोध में प्रदर्शन करने के लिए ५० हजार आदमियों की एक भारी भीड़ इकट्ठी हुई। कमीशन का स्वागत करने के लिए भी कुछ सरकारी चपरासी और मुट्ठी-भर सरकारी कर्मचारी मौजूद थे। सरकार ने आस-पास के गांवों से लारियों में भर-भर कर किसान बुलवाये, लेकिन स्वागत-कैम्पों में घुसने के बजाय वे बहिष्कार-कैम्पों में जा डटे और स्टेशन पर विराट् जन-समूह ने कमीशन के विरोध में जो अहिंसा-पूर्ण प्रदर्शन किया उसे और स्वागत तथा बहिष्कार-पार्टियों के बल को देखकर तो सरकार की आंखें ही खुल गईं।

स्मरण रहे कि कमीशन का बहिष्कार करने की नीति ग्रहण करने के फलस्वरूप मद्रास-कांग्रेस ने निश्चय कर दिया था कि कौंसिलों में कम-से-कम कार्य किया जाय। लेकिन इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में कई कठिनाइयां दिखाई देने लगीं। उस पर अमल होने के बजाय वह भंग ही होता रहा। आखिरकार कार्य-समिति ने महासमिति से इस बात की सिफारिश की कि वह असेम्बली व प्रान्तीय कौंसिलों के सदस्यों को तनिक और स्वतन्त्रता दे और महासमिति ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया।

"भारत के भिन्न-भिन्न भागों की जातियों व सम्प्रदायों से व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने के पश्चात्"—जैसा कि सर जान साइमन ने कहा था—कमीशन बम्बई से ३१ मार्च को रवाना हो गया। वास्तव में यह एक प्रकार की मिथ्योक्ति ही थी, क्योंकि सरकारी रिपोर्ट में स्वयं इस बात को स्वीकार किया गया है कि "असेम्बली के विरोधी दलों के नेता कमीशन का केवल सरकारी तौर पर ही नहीं बल्कि सामाजिक तौर पर भी बहिष्कार करने के लिए बद्ध थे।" इसलिए सर जान साइमन और उनके साथियों का उनका सम्पर्क में आना असम्भव था।

कमीशन के भारत आते ही सर जान साइमन ने वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने कहा कि कमीशन एक संयुक्त स्वतन्त्र सम्मेलन का रूप लेगा जिसमें एक ओर कमीशन के सातों अंग्रेज सदस्य होंगे और दूसरी ओर यही कौंसिल द्वारा चुने गये सातों भारतीय। सम्मेलन में

सब सदस्यों को सब कागजात देखने का अधिकार होगा और भारतीय-सदस्य उसमें बराबरी के दर्जे पर माने जायंगे।

प्रान्तीय कौंसिलों से भी इसी प्रकार की प्रान्तीय सिलेक्ट कमिटियां चुनने की सिफारिश करने को कहा गया था। यह निश्चय हुआ कि जब केन्द्रीय विषयों पर कमीशन के सामने विचार होगा तो उसके साथ बड़ी कौंसिल-द्वारा निर्वाचित संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी और जब प्रान्तीय विषयों पर विचार होगा तो उस प्रान्तीय कौंसिल की सिलेक्ट-कमिटी काम करेगी, जिसका उन विषयों से सम्बन्ध है। कमीशन अपनी रिपोर्ट अलग ब्रिटिश-सरकार को देगा और संयुक्त-सिलेक्ट-कमिटी अपनी रिपोर्ट अलग बड़ी कौंसिल को। इस घोषणा का भारत में कुछ असर न हुआ। घोषणा के निकलने के दो-तीन घन्टे के भीतर ही राजनैतिक नेता गण दिल्ली में इकट्ठे हुए और यह घोषणा की कि कमीशन के खिलाफ उनकी जो आपत्तियां थीं वे ज्यों-की-त्यों बनी हुई हैं और वे किसी भी हालत में कमीशन से सरोकार नहीं रखना चाहते। असेम्बली ने तो केन्द्रीय संयुक्त सिलेक्ट-कमिटी के लिए अपने सदस्य तक चुनने से इन्कार कर दिया। इस सम्बन्ध में लाला लाजपतराय ने १६ फरवरी को असेम्बली में यह प्रस्ताव पेश किया कि चूंकि कमीशन की सदस्यता व उसके कार्य की सारी योजना असेम्बली को अस्वीकार्य है, अतः वह उससे किसी भी हालत में और किसी भी तरह कोई सरोकार नहीं रखना चाहती। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा कि "कमीशन के साथ भारतीय उसी हालत में सहयोग कर सकेंगे जबकि उसमें भारतीय भी इतनी ही संख्या में नियुक्त किये जायं।" प्रस्ताव ६२ के के विरुद्ध ६८ रायों से पास हो गया। सरकार को लाचार होकर स्वयं केन्द्रीय कमिटी के लिए असेम्बली के सदस्य नामजद करने पड़े। यहां इस बात को सुनकर ताज्जुब होगा कि जब कमीशन बम्बई में घूम रहा था तो 'सर' की पदवी धारण करनेवाले २२ नाइटों में से एक ने भी कमीशन से मिलने की तकलीफ गवारा न की। देश में बहिष्कार की जो लहर फैली हुई थी उसका इससे ज्वलन्त प्रमाण और क्या मिल सकता है?

प्रसंगवश यहां यह कह देना भी जरूरी है कि जहां कमीशन तो एक ओर अपने काम में आकर जुट गया, तहां उसके कुछ अधिक चतुर सदस्य, जो राजनीति के मुकाबले तिजारत में अधिक चाव रखते थे, इस बात के अध्ययन में लग गए कि भारत में तिजारत को बढ़ाने की किस तरह गुंजाइश है। लार्ड बर्नहाम ने, जो कमीशन के एक सदस्य थे, देखा कि पंजाब में ब्रिटेन और भारत की तिजारत बढ़ाने की सबसे अधिक गुंजाइश है। इन्होंने इस बात पर भी जोर दिया कि भारत के बाजारों में ब्रिटेन की मोटरों, लारियों व ट्रैक्टरों की खपत बढ़ाने की सबसे अधिक गुंजाइश है।

सन् १९२८ की खास-खास घटनायें साइमन-कमीशन का देश में भ्रमण, सर्वदल-सम्मेलन की बैठकें और बारडोली का आंदोलन हैं। कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार दिल्ली में फरवरी-मार्च १९२८ में सर्वदल-सम्मेलन की बैठक की गई। सम्मेलन में उपस्थित संस्थायें और कांग्रेस इस बात पर एक मत हो गये कि भारत की वैधानिक समस्या पर विचार 'पूर्ण उत्तरदायी शासन' को आधार मानकर ही होना चाहिए। दो महीनों में सम्मेलन की कुल मिलाकर २५ बैठकें हुईं और लगभग ¾ समस्यायें शांतिपूर्वक तय हो गईं। १५ मई को डा० अन्सारी के सभापतित्व में फिर सम्मेलन की बैठक हुई, जिसमें यह निश्चय हुआ कि भारतीय विधान के सिद्धांतों का मसविदा तैयार करने के लिए पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमिटी नियुक्त की जाय, जो १ जुलाई १९२८ तक अपनी रिपोर्ट दे दे और मसविदा देश की भिन्न-भिन्न संस्थाओं के पास भेजा जाय।

२९ राजनैतिक संस्थाओं ने कमिटी नियुक्त करने के प्रस्ताव के पक्ष में राय दी। इस विषय पर आगे विचार फिर किया जायगा।

जून के महीने में तीन घटनायें ऐसी हुईं जिनका हमें अवश्य जिक्र करना चाहिये। कांग्रेस का आगामी अधिवेशन कलकत्ता में होनेवाला था और पं० मोतीलाल नेहरू का नाम उसके सभापतित्व के लिए आमतौर से लिया जा रहा था। यह देखकर पंडितजी ने 'एम्पायर पार्लमेंटरी डेलीगेशन' की सदस्यता से भी, जिसके लिए उनको असेम्बली ने पिछले मार्च में अपने चार प्रतिनिधियों में से एक चुना था, इस्तीफा दे दिया। पंडितजी ने अपने इस्तीफे का कारण राजनैतिक गगन में नई घटनाओं का होना बताया। स्वयं गांधीजी ने कहा—"बंगाल को बड़े नेहरू की जरूरत है। वे सम्मानपूर्ण समझौते के मार्ग को ग्रहण करनेवाले आदमियों में से हैं। देश को इसी की जरूरत है और देश यही चाहता है, इसलिए नेहरूजी को ही इस कार्य के लिए पकड़ा जाय।" दूसरी घटना कलकत्ता-कांग्रेस के समय होनेवाली प्रदर्शिनी के ऊपर उठ खड़ा हुआ वादविवाद था। प्रदर्शिनी-समिति के मन्त्री श्री० नलिनीरंजन सरकार ने कहा था कि प्रदर्शिनी में वे सब चीजें दिखाई जा सकेंगी जो या तो भारत की बनी होंगी, या भारत में पैदा हुई होंगी, लेकिन महत्व खद्दर को दिया जायगा। भारतीय मिलों के बने कपड़ों और भारतीय मिलों के सूत से बने कपड़ों के बारे में कोई फैसला उन्होंने उस समय नहीं किया। ऐसे औजार, मशीनरी व पुर्जों के अलावा जो कि हमारे देश की सम्पत्ति को बढ़ाने में सहायक होते हों, अन्य सब विदेशी माल व चीजों के प्रदर्शिनी में दिखाये जाने की मनाही की गई। प्रांतीय सरकारों के उद्योग-विभागों-द्वारा बनाये हुए स्वदेशी माल को दिखाने की भी अनुमति दे दी गई, यद्यपि सरकार से और कोई आर्थिक सहायता लेना मना था। खादी-प्रतिष्ठान, सोदपुर (कलकत्ता), के बाबू सतीशचन्द्रदास गुप्त और उनके जोशीले भाई क्षितीश बाबू जैसे कट्टर असहयोगियों ने यह देखकर एकदम इसका विरोध किया और खूब हो-हल्ला मचाया। सौभाग्य की बात है कि ठीक समय पर विरोध हो जाने के कारण मामला बिगड़ने से बच गया।

बारडोली-सत्याग्रह

तीसरी घटना ऐसी थी जिसपर कई दिनों तक लोगों का ध्यान आकर्षित होता रहा, वह है बारडोली का सत्याग्रह। बारडोली वह तहसील है जहां गांधीजी 'सामूहिक-सविनय-अवज्ञा' का प्रयोग करना चाहते थे, लेकिन दो तीन बार इरादा बदलकर उन्होंने फरवरी १९२२ में आखिर इरादे को पूरी तरह से छोड़ ही दिया था। बारडोली में बन्दोबस्त, जो अक्सर २० या ३० साल में हर जगह हुआ करता है, होनेवाला था। बन्दोबस्त का और कोई परिणाम होता हो या न होता हो, यह एक परिणाम अवश्य होता है कि मालगुजारी लगभग २५% अवश्य बढ़ जाती है। बारडोली के आदमियों का कहना था कि उनपर मालगुजारी बढ़ने का कोई कारण नहीं होना चाहिए, क्योंकि जमीन से जो कुछ भी उनकी फसल बढ़ी है या अच्छी हुई है उसके लिए उनको बहुत परिश्रम और समय खर्च करना पड़ा था। उनका कहना बिलकुल यह भी नहीं था कि कर बढ़ाया ही न जाय; वे तो केवल यह चाहते थे कि आर्थिक दशा व मजदूरी, सड़कों, कीमतों व करों की जांच करने के लिए एक निष्पक्ष कमिटी नियुक्त की जाय और यह देखा जाय कि मालगुजारी बढ़ाई जा सकती है या नहीं; और यदि हां, तो कितनी? सरकार आमतौर पर क्या करती है कि अपनी मर्जी से, चुपचाप और बिना किसी निश्चित सिद्धान्त के ही सब बातों का फैसला कर लेती है। जब कभी वह ऐसी या और कोई आर्थिक जांच करती है तो जनता की राय तक, सलाह तक, नहीं ली जाती। रेवेन्यूबोर्ड को की

गई बन्दोबस्त-अफसरों की प्रारम्भिक रिपोर्टें और रेवेन्यूबोर्ड-द्वारा सरकार को की गई सिफारिशों को भी वह लोगों पर जाहिर नहीं करती; और यदि वह कोई चीज छापती भी है तो अंग्रेजी में, न कि प्रांतीय भाषा में। बारडोली में सरकार ने २५ प्रतिशत मालगुजारी बढ़ा दी। जांच कराने के सब वैध व प्रचलित उपायों को अमल में लाने की कोशिश की गई, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। अन्त में चुनौती दे दी गई और करबन्दी आन्दोलन शुरू हो गया—आन्दोलन स्वराज्य के लिए नहीं, सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के एक अंग के रूप में भी नहीं, बल्कि किसानी पेशे से सम्बन्ध रखने वाली अपनी एक शिकायत को रफा कराने के लिए। कांग्रेस ने पहले कोई दखल नहीं दिया। किसानों ने कर न देने का निश्चय पहले ही अपनी ताल्लुका-परिषद् में कर लिया था और सरदार वल्लभभाई पटेल को आमन्त्रित किया था कि उनका नेतृत्व करें। इसी हालत में सरदार पटेल ने आन्दोलन को संगठित किया। सरकार ने जानवरों की कुर्की करना शुरू किया। उसने बाहर से पठान बुला-बुला कर अन्धा-धुन्ध कुर्कियां करने की नीति अख्तियार कर ली। पठानों को बुलाना सरासर ज्यादती थी। लोगों ने कुर्कियां होने के मार्ग में कोई रुकावट नहीं डाली थी और सरकार के पास पशु-बल इतनी पर्याप्त मात्रा में मौजूद था कि खूंखार प्रकृति व आदतों के लोगों का बुलाना सरासर अनावश्यक था। कहा जाता है कि सरकार ने लगभग ४० पठान बुला लिये थे। बम्बई के गवर्नर सर लेस्ली विल्सन ने कहा था कि उनकी संख्या केवल २५ ही थी। सवाल संख्या का नहीं था; सवाल यह था कि पठान बुलाये क्यों गये? इसके बाद जल्द ही, बम्बई-कौंसिल के कुछ निर्वाचित सदस्यों ने विरोध में कौंसिल की सदस्यता से त्याग पत्र दे दिया और आन्दोलन में दिलचस्पी लेने लगे। असेम्बली के अध्यक्ष विट्ठलभाई पटेल ने भी वाइसराय को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने इस बात की धमकी दी कि यदि सरकार न झुकेगी तो वे इस्तीफा देकर इस काम में जुट जायंगे। आखिरकार एक मार्ग निकल ही आया, जिसके अनुसार एक तीसरे आदमी ने बढ़ाई गई मालगुजारी जमा कर दी; कैदियों की रिहाई की शर्त मान ली गई, जायदाद का लौटाया जाना तय होगया और आन्दोलन वापस लेने का निश्चय हुआ।

सरकार ने एक अदालत बिठा दी, जिसमें न्याय-विभाग के और शासन-विभाग के प्रतिनिधि थे। अदालत ने मामले की जांच की और यह निश्चय किया कि मालगुजारी केवल ६$\frac{1}{4}$ प्रतिशत बढ़ाई जाय। यह निर्णय अगस्त में हुआ और इसका फायदा चोरासी तहसील को भी हुआ। ज्ञात रहे कि चोरासी तहसील ने इस आन्दोलन में भाग नहीं लिया था और बढ़े हुए कर भी दे दिये थे; यह देखकर सरकार ने बारडोली को सम्बोधित करके कहा भी था—"जब चोरासी तहसील कर दे सकती है, तो बारडोली ही क्यों नहीं दे सकती?"

यहां यह कहना शायद मनोरञ्जक होगा कि बम्बई-कौंसिल में भाषण देते हुए बम्बई के गवर्नर ने कहा कि बारडोली के कर-बन्दी-आन्दोलन को कुचलने के लिए साम्राज्य की सारी शक्तियां लगा दी जायंगी। इसके कुछ दिन बाद ही फैसला हो गया। वास्तव में देखा जाय तो न तो कानून में ही और न मालगुजारी के नियमों में ही ऐसा कोई विधान था कि उक्त प्रकार की ऐसी कोई अदालत जांच के लिए बिठाई जाय। इस बात को भी ध्यान में रखना चाहिए कि यद्यपि अदालत ने यह सिफारिश की थी कि केवल ६$\frac{1}{4}$% मालगुजारी बढ़ाई जाय, लेकिन जब इन सब कारणों पर उपयुक्त विचार किया गया, जिन्हें किसानों ने पेश किया था और जिन पर अदालत को विचार करने का अधिकार नहीं था, तो वास्तव में बारडोली तहसील में मालगुजारी बिलकुल बढ़ी ही नहीं और फैसले के बाद भी अपनी पहली हद तक ही रही। समझौते की वास्तविक सफलता तो इस बात में थी कि

बेची हुई जमीनें मालिकों को फिर वापस मिल गईं और पटेल व तलाटियों को अपनी जगहें फिर मिल गईं।

नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट पर विचार करने के लिए सर्वदल-सम्मेलन की बैठकें लखनऊ में फिर २८, २९ व ३० अगस्त १९२८ को हुईं। नेहरू-कमिटी को उसके परिश्रम के लिए बधाई दी गई; सम्मेलन ने आपको औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में घोषित किया, यद्यपि उन राजनैतिक दलों को अपने विचारों के अनुसार कार्य करने की स्वतन्त्रता दी गई, जिनका ध्येय 'पूर्ण-स्वतन्त्रता' था। उन पूर्ण स्वतन्त्रतावादियों ने, जो औपनिवेशिक स्वराज्य के पक्ष में न थे, सम्मेलन में एक वक्तव्य पढ़कर सुनाया, जिसमें बात स्पष्ट की गई कि भारत का विधान पूर्ण-स्वतन्त्रता के आधार पर ही बनाया जाना चाहिए। उनका उद्देश्य था कि वे उक्त प्रस्ताव से, जिसके द्वारा उन्हें कार्य-स्वतन्त्रता दी गई थी, खूब फायदा उठावें। इसलिए जहां उन्होंने प्रस्ताव का समर्थन न करने का निश्चय किया, वहां उन्होंने सम्मेलन के कार्य में भी कोई बाधा न डाली। उन्होंने कहा कि इस प्रस्ताव से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और इसलिए वे न तो उस पर होनेवाली बहस में भाग लेंगे और न उसमें कोई संशोधन पेश करेंगे। सम्मेलन में जिन अन्य विषयों पर विचार हुआ वे सिन्ध, प्रान्तों का बंटवारा तथा संयुक्त निर्वाचन से सम्बन्ध रखते थे। एक प्रस्ताव पर बोलते हुए जवाहरलाल जी की इस टिप्पणी से कि महमूदाबाद के महाराज व राजा रामपालसिंह जैसे ताल्लुकेदारों की समाज को कुछ आवश्यकता नहीं, कई लोग भड़क उठे। इसका यह परिणाम हुआ कि दूसरे दिन ही यह प्रस्ताव पास किया गया—

"कामनवेल्थ की स्थापना के समय जो व्यक्ति जिस जायदाद का मालिक होगा और जो कानूनन उसे मिली होगी वह उससे नहीं छीनी जा सकेगी।"

लखनऊ में उक्त दोनों लोकप्रिय जमींदारों के अलावा डा० सप्रू, सर अलीइमाम, सर शंकरन् नायर, श्री सच्चिदानन्द सिंह व सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर भी उपस्थित थे। ये सब केन्द्रीय या प्रान्तीय कार्यकारिणी के सदस्य रह चुके थे।

यह बात माननी पड़ेगी कि लखनऊ-योजना के अनुसार फौजी-मामलों में द्वैध-शासन रक्खा गया था। योजना के अनुसार कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल को अधिकार दिया गया कि वह "एक रक्षा-कमिटी नियुक्त करे जिसके इतने सदस्य हों—अर्थात् प्रधान-सचिव, प्रधान सेनापति. हवाई तथा नाविक सेनाओं के सेनापति, जनरल-स्टाफ के मुखिया (चीफ) व दो अन्य विशेषज्ञ। इस कमिटी का यह कर्तव्य होगा कि वह सरकार को व अन्य सरकारी महकमों को रक्षा व पुलिस-सम्बन्धी आम प्रश्नों पर सलाह दे। खर्चे का बजट कमिटी की सिफारिशों के अनुसार ही बना करेगा। भारतीय पार्लमेंट में भारत की फौजी, नाविक व हवाई सेना के अनुशासन अथवा उसके कायम रखने के सम्बन्ध में कोई भी कानून तब तक पेश नहीं किया जायगा जब तक कि रक्षा-समिति इस बात की सिफारिश न करे। कमिटी को इस प्रकार खर्चे व कानून दोनों पर ही नियन्त्रण रखने का अधिकार देना फौजी मामलों में द्वैध-शासन स्थापित करना नहीं तो क्या था, जब कि उसके अधिकांश सदस्य सरकारी रक्खे गये थे?

सम्मेलन की रिपोर्ट पर महासमिति ने दिल्ली में ४ व ५ नवम्बर को विचार किया। महासमिति ने पूर्ण-स्वतन्त्रता के ध्येय को दोहराया, नेहरू-कमिटी के साम्प्रदायिक फैसले को स्वीकार किया और यह राय जाहिर करते हुए कि नेहरू-कमिटी के प्रस्ताव राजनैतिक प्रगति की ओर ले जाने में सहायक हैं उन्हें आमतौर पर स्वीकार किया, यद्यपि उसकी विगत की बातों में अपने हाथ-पांव नहीं बांध लिये।

अब हम फिर कौंसिलों की ओर आते हैं। वास्तव में देखा जाय तो कौंसिलों में अड़ंगे की नीति का, जिसमें विश्वास कम होता जा रहा था, स्थान 'साइमन' का बहिष्कार ले रहा था और वह दिन पर-दिन जोर पकड़ता जा रहा था।

असेम्बली में

असेम्बली के कार्यक्रम में रिजर्व बैंक-बिल व सार्वजनिक-रक्षा-बिल दो ही मुख्य विषय थे। रिजर्व-बैंक-बिल सम्बन्धी लड़ाई कांग्रेस की सरकार के विरुद्ध सम्भवतः सबसे बड़ी लेकिन निरर्थक लड़ाई थी। सरकार का दावा था कि चूंकि यह बिल मुद्रा-सम्बन्धी नीति को भारत-मन्त्री के नियन्त्रण से हटाकर देश के एक बैंक के नियन्त्रण में कर देगा, अतः यह भारत की स्वतन्त्रता-प्राप्ति के मार्ग में एक बड़ा पग होगा। इस विषय को जिस ऊंचे वैधानिक दृष्टि-बिन्दु से देखा गया उसके हेतु की शुद्धता पर विश्वास करना कठिन था। भारत-सरकार जैसी सरकार, जिसने द्वैध-शासन की योजना को अमल में लाते हुए इतनी खराबी मंजूर की, इतनी आसानी से और खुद-ब-खुद मुद्रा व बैंकिंग पर से अपना नियन्त्रण हटाने के लिए कैसे तैयार हो सकती थी? असेम्बली के सदस्यों को फौरन ही इस बात का सन्देह होगया कि जनता के हितों के विरुद्ध सरकार अवश्य ही कुछ कर रही है। जब दोनों पक्ष प्रश्न की तह में उतरे तो कई विवादग्रस्त बातें सामने आईं, जिनमें सबसे मुख्य यह प्रश्न था कि बैंक हिस्सेदारों का हो (जैसा कि सरकार चाहती थी) या सरकारी (जैसा कि जनता कहती थी)? इसके बाद दूसरा प्रश्न यह था कि बैंक के डाइरेक्टर-मण्डल का निर्वाचक कौन होगा और डाइरेक्टरों में कितने सदस्य नामंजद होंगे और कितने चुने जायंगे और कैसे? यदि एकबार यह तय हो जाय कि बैंक का संगठन कैसा होगा तो शेष प्रश्न स्वयं हल हो जायंगे। यदि बैंक हिस्सेदारों का होगा तो हिस्सेदार ही उसके डाइरेक्टरों को चुनेंगे; लेकिन यदि बैंक सरकारी होगा तो डाइरेक्टरों का चुनाव व्यापार-मण्डल, प्रान्तीय सहकारी बैंक व केन्द्रीय व प्रान्तीय कौंसिलें आदि संस्थायें करेंगी। किस संस्था को कितने डाइरेक्टर चुनने का अधिकार होगा, इसके पचड़े में पड़ना आवश्यक नहीं। केवल इतना ही कहना काफी है कि सरकार पहले इसबात पर तैयार थी कि १६ डाइरेक्टरों में से ९ चुने हुए हों। लेकिन अब सन् १९३४ में जो रिजर्व बैंक ऐक्ट बना है उसके अनुसार तो १६ में से केवल ८ ही डाइरेक्टर चुने हुए रक्खे गये हैं और सो भी इनका चुनाव चार साल में जाकर होगा। जब बिल पर विचार प्रारम्भ हुआ तो उसमें कदम-कदम पर रद्दोबदल किया गया। अन्त में श्री श्रीनिवास आयंगर के प्रस्ताव पर सरकार इस बात के लिए तैयार हो गई कि बैंक स्टाक-होल्डरों का हो, अर्थात् बैंक की पूंजी तो सरकार लगाये लेकिन बाद में वह उस पूंजी को इस प्रकार बेंच दे कि किसी भी व्यक्ति को १०,०००) से अधिक की पूंजी अर्थात् स्टाक न मिले। प्रत्येक स्टाक खरीदनेवाले अर्थात् स्टाक-होल्डर को डाइरेक्टरों के चुनाव में केवल एक मत देने का अधिकार हो। ऐसा प्रतीत होने लगा कि अब सब मामला तय हो जायगा। जब सरकार ने देखा कि सब लोग सन्तुष्ट प्रतीत होते हैं तो उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ और उसने उस बिल के बजाय एक दूसरा बिल पेश करने की सूचना दी। लेकिन अध्यक्ष महोदय ने कामन-सभा के प्रमुख-द्वारा निर्धारित एक सिद्धान्त का हवाला देते हुए कहा कि जब किसी ऐसे बिल में जो सभा के सामने पेश हो चुका हो, आवश्यक परिवर्तन करने हों, तो उचित मार्ग यह है कि मूल-बिल को पहले वापस लिया जाय और फिर उसमें परिवर्तन करके उसे परिवर्तित रूप में दुबारा पेश किया जाय। अध्यक्ष के इस निर्णय के कारण सरकार ने पुराने बिल को ही कायम रखने का निश्चय

किया, लेकिन चूंकि एक महत्वपूर्ण अंश के ऊपर मत-विभाग होते समय सरकार की हार हो गई इसलिए सरकार ने बिल पर विचार अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया।

सार्वजनिक-रक्षा (पब्लिक सेफ्टी) बिल दूसरा बिल था, जिसपर खूब वाद-विवाद चला और जिसका कांग्रेस-पार्टी ने खूब विरोध किया। यद्यपि प्रत्यक्ष रूप से यह बिल विदेशियों के विरुद्ध काम में लाया जानेवाला था, किन्तु जनता को इस बात पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि देश-रक्षा-कानून की भांति यह कानून भी भारतीयों के विरुद्ध काम में लाया जायगा। असेम्बली में बिल पर बोलते हुए लाला लाजपतराय ने कहा, "मैं कोई बात नहीं करूंगा, यदि मैं यह कहूँ कि यह कानून केवल विदेशी कम्यूनिस्टों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए ही नहीं है, क्योंकि यह वास्तव में भारतीयों के खिलाफ कार्रवाई करने के लिए ही है। अर्थात् राष्ट्रवादी और मजदूर-वादी दोनों के खिलाफ। विदेशी कम्यूनिस्ट तो यहां से चला जायगा, उसे भारतीय करदाताओं के खर्चे पर यहां से निर्वासित कर दिया जायगा, और एक जहाज में आराम से बिठाकर ब्रिटिश-द्वीप-समूह या किसी और जगह भेज दिया जायगा। लेकिन यह सभा यदि इस बिल के सिद्धांत को और धारा २ को स्वीकार करती है तो इसका परिणाम यह होगा कि यह कानून भारत की आर्थिक व राजनैतिक स्वाधीनता की चाहना करनेवाले राष्ट्रवादियों व दूसरों पर मुकदमा चलाने के काम में लाया जायगा। इस कानून की वास्तविक मन्शा यही है। 'जो कोई भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश-भारत में कानून-द्वारा स्थापित सरकार को हिंसा या बल-प्रयोग से उखाड़ फेंकने का प्रचार करता है।' जवाहरलालजी व श्रीनिवास आयंगर जैसे व्यक्ति भी जो पूर्ण-स्वाधीनता का प्रतिपादन करते हैं, इस कानून के दायरे में आ जाते हैं।" जब बिल पर मत लिये गए तो दोनों ओर बराबर मत आये। अध्यक्ष ने बिल के विरुद्ध मत दिया और बिल गिर गया।

कलकत्ता-कांग्रेस

कलकत्ता-कांग्रेस राष्ट्रीय सम्मेलनों में एक बड़े महत्व का सम्मेलन था, क्योंकि उसे कांग्रेस का भावी मार्ग निर्दिष्ट करना था। इस महत्व के कारण पंडित मोतीलाल नेहरू उसके सभापति चुने गये। इसके साथ सर्वदल-सम्मेलन भी लगा हुआ था, जिसका पूरा इजलास कलकत्ते में हुआ। इस समय भारत में साइमन-कमीशन का दूसरा दौरा शुरू हो चुका था और जिस समय कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हो रहा था उस समय भी कमीशन देश का दौरा कर रहा था। पंडितजी ने सभापति के अपने अभिभाषण में इस बात को बताया कि कमीशन का देश में, खासकर कानपुर, लाहौर व लखनऊ में, कितने जोर के साथ बहिष्कार हुआ और उस बहिष्कार ने एंग्लो-इण्डियनों के दिमाग पर क्या असर किया। कलकत्ते के कुछ गोरे अखबार तो यह सलाह तक देने लगे कि कम-से-कम बीस वर्ष तक भारत में फौलादी शासन किया जाय, और जबतक एक रत्तीभर भी गोला-बारूद रह जाय तबतक भारतीय-स्वतन्त्रता की मांग का मुकाबला किया जाय। पंडितजी ने जोरदार शब्दों में बताया कि हमारा लक्ष्य स्वाधीनता है, जिसका स्वरूप इस बात पर निर्भर है कि वह किस समय और किस परिस्थिति में हमें प्राप्त होती है। आगे पंडितजी ने इस बात पर जोर दिया कि "सर्वदल-सम्मेलन जिस स्थल तक पहुंच गया है वहीं से सरकार को उसका कार्य शुरू कर देना चाहिए और जहांतक हम जा सकें वहांतक उसे हमारा साथ देना चाहिए।"

कलकत्ता-कांग्रेस की एक भारी विशेषता यह थी कि विदेशों से व्यक्तियों तथा संस्थाओं की सहानुभूति के सैकड़ों सन्देश प्राप्त हुए, जिनमें न्यूयार्क से श्रीमती सरोजिनी नायडू के, श्रीमती सनयात सेन, मोशिये रोम्यां रोलां के और फारस के समाजवादी दल व न्यूज़ीलैंड के कम्यूनिस्ट-दल

के सन्देश विशेष उल्लेखनीय हैं। भारत के भविष्य के बारे में सरकार को अन्तिम चेतावनी देने के अलावा प्रस्तावों के विषय हर साल जैसे ही रहे। विदेशों से आये सन्देशों व बधाइयों के उत्तर में विदेशी मित्रों को भी उसी प्रकार के सन्देश व बधाइयां दी गईं और महासमिति को आदेश किया गया कि वह एक वैदेशिक विभाग खोलकर विदेशी मित्रों से सम्पर्क स्थापित करे। अखिल-एशिया-सम्मेलन का आयोजन भारत में करने के लिए भी एक प्रस्ताव पास किया गया। चीन के पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त कर लेने पर उसे बधाई दी गई और मिश्र, सीरिया, फिलस्तीन व ईराक के स्वातन्त्र्य-युद्ध के प्रति सहानुभूति दिखाई गई। साम्राज्य-विरोधी-संघ के द्वितीय विश्व सम्मेलन के आयोजन का, स्वागत किया गया और मदरास-कांग्रेस के 'युद्ध के खतरे' वाले प्रस्ताव को दोहराया गया। ब्रिटिश माल के बहिष्कार के आंदोलन पर भी जोर दिया गया। बारडोली की शानदार विजय पर सरदार वल्लभभाई पटेल को बधाई दी गई। सरकारी उत्सवों व दरबारों तथा सरकारी अधिकारियों-द्वारा आयोजित या उनके सम्मान में किये जानेवाले अन्य सब सरकारी तथा गैर-सरकारी उत्सवों में भाग लेने की कांग्रेसवादियों को मनाही की गई। देशी-राज्यों में उत्तरदायी-शासन स्थापित करने की भी एक प्रस्ताव द्वारा मांग की गई। चूंकि देशी-राज्यों के सम्बन्ध में इस प्रस्ताव को लेकर देश में खूब आंदोलन उठाया गया है, जिसमें इस प्रस्ताव का महत्व अब बढ़ गया है, इसलिए इसे हम यहां ज्यों-का-त्यों देते हैं—

"यह कांग्रेस भारत के देशी-नरेशों से आग्रह-पूर्वक अनुरोध करती है कि वे अपने राज्यों में प्रतिनिधि-संस्थाओं के आधार पर उत्तरदायी-शासन स्थापित करें और फौरन ही ऐसे आदेश जारी करें या कानून बनायें जिनके द्वारा सभा-संगठन के, स्वतंत्रता से भाषण देने के व लेख लिखने के, जान-माल की रक्षा के व नागरिकता के तथा इसी प्रकार के अन्य मौलिक अधिकारों को सुरक्षित कर दिया जाय।"

नाभा के भूतपूर्व नरेश के साथ सहानुभूति दिखाते हुए इस साल भी एक प्रस्ताव पास किया गया। जिन पांच बंगालियों की कारावास में ही मृत्यु हो गई थी उनके परिवार वालों के साथ भी कांग्रेस ने सहानुभूति प्रकट की। लाहौर में पुलिस द्वारा किये गये धावों व खानातलाशियों की निन्दा की गई। लाला लाजपतराय, हकीम अजमलखां, आन्ध्र-रत्न श्री गोपाल कृष्णैया, श्री मगनलाल गांधी, श्री गोपबन्धु दास और लार्ड सिंह की स्मृति में एक प्रस्ताव पास किया गया।

सरकार को अन्तिम चेतावनी देने का जो प्रस्ताव पास हुआ वह इस प्रकार था—

"सर्व-दल-समिति (नेहरू-कमिटी) की रिपोर्ट में शासन विधान की जो तजवीज पेश की गई है उसपर विचार करके कांग्रेस उसका स्वागत करती है और उसे भारत की राजनैतिक व साम्प्रदायिक समस्याओं को हल करने में बहुत अधिक सहायता देनेवाली मानती है और अपनी सब सिफारिशों को प्रायः सर्व-सम्मति से ही करने के लिए कमिटी को बधाई देती है। यद्यपि यह कांग्रेस मदरास-कांग्रेस के पूर्ण-स्वाधीनता के निश्चय पर कायम है, फिर भी यह कमिटी-द्वारा तैयार किये गये विधान को राजनैतिक प्रगति की दिशा में एक बड़ा पग मान कर उसे मंजूर करती है, खासकर इस विचार से कि देश के मुख्य-मुख्य राजनैतिक दलों में जितना अधिक-से-अधिक मतैक्य हो सका है, उसका वह सूचक है।

"अगर ब्रिटिश-पार्लमेण्ट इस विधान को ज्यों-का-त्यों ३१ सितम्बर १९२९ तक या उसके पहले स्वीकार कर ले तो यह कांग्रेस इस विधान को अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक पार्लमेण्ट उसे मंजूर न करे या इसके पहले ही

उसे नामंजूर कर दे तो कांग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करों का देना बन्द करदे और उन अन्य तरीकों-द्वारा, जिनका बाद में निश्चय हो, अहिंसात्मक असहयोग का आन्दोलन संगठित करेगी।

"कांग्रेस के नाम पर पूर्ण स्वाधीनता का प्रचार करने में यह प्रस्ताव कोई बाधा नहीं डालेगा, यदि ऐसा कार्य इस प्रस्ताव के विरुद्ध न हो।"

खुले अधिवेशन में जिस रूप में कलकत्ता-कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पास हुआ वह तो ऊपर दिया जा चुका है; लेकिन गांधीजी के मूल प्रस्ताव में ३१ दिसम्बर १९२९ के बदले ३१ दिसम्बर १९३० तक की मियाद थी तथा नीचे लिखा टुकड़ा था, जो बाद में हटा लिया गया—

"सभापति को अधिकार दिया जाता है कि वे इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि और रिपोर्ट की प्रति वाइसराय महोदय के पास भिजवा दें जिससे कि वे उसपर अपनी मर्जी के माफिक जो कार्रवाई करना चाहें कर सकें।"

इस प्रस्ताव में पण्डित जवाहरलाल नेहरू व श्री सुभाषचन्द्र वसु दोनों ने संशोधन पेश किये, जो लगभग एक-से थे। इन संशोधनों के पेश करने का उद्देश्य था कि प्रस्ताव में कोई विशेष तारीख नियत न की जाय, जैसे कि सर्व-दल-सम्मेलन द्वारा बनाये गये विधान में किया गया था। पण्डित जवाहर लाल नेहरू का संशोधन इस प्रकार था —

"१. यह कांग्रेस मदरास-कांग्रेस के पूर्ण-स्वाधीनता के निश्चय पर अटल है और इसकी यह राय है कि जबतक ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद न होगा तबतक सच्ची स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी।

"२. साम्प्रदायिक प्रश्न के फैसले के लिए नेहरू-कमिटी ने जो सिफारिशें की हैं और उनको जिस रूप में लखनऊ के सर्व-दल-सम्मेलन ने पास किया है, उन्हें यह कांग्रेस स्वीकार करती है।

"३. यह कांग्रेस नेहरू-कमिटी को उसके परिश्रम, देश-भक्ति व दूरदर्शिता के लिए हार्दिक बधाई देती है और इसकी राय है कि पूर्ण-स्वाधीनता के सम्बन्ध में कांग्रेस के प्रस्ताव पर असर डाले बिना, नेहरू-कमिटी की सिफारिशें राजनैतिक प्रगति की ओर ले जाने में बहुत सहायक हैं और यद्यपि कांग्रेस-कमिटी उसकी सिफारिशों को आमतौर पर मंजूर करती है तथापि वह उसकी हर तफसील से बाध्य होने के लिए तैयार नहीं है।"

मूल प्रस्ताव गांधीजी ने ही रक्खा था और वे ही उस प्रस्ताव की गाड़ी चलाने वाले थे। उन्हें यह बात पसन्द न थी कि उनके प्रस्ताव से ये शब्द कि "सभापति को यह अधिकार दिया जाता है कि वे इस प्रस्ताव की प्रतिलिपि और रिपोर्ट की प्रति वाइसराय महोदय के पास भिजवा दें, जिससे कि वे उस पर अपनी मर्जी के माफिक जो कार्रवाई करना चाहें कर सकें" निकाल दिये जायं। गांधीजी का कहना था कि प्रस्ताव की प्रति वाइसराय के पास भेजना शिष्टाचार की दृष्टि से आवश्यक था और यदि हमारे अन्दर उच्चता की व्यर्थ भावना भरी न होती, या यदि हम स्वयं ही अपने ऊपर कम एतबार न करते होते, तो हम इस बात पर जोर न देते कि यह धारा निकाल दी जाय। प्रस्ताव के शेष भाग पर वाद-विवाद के पश्चात् स्वाधीनता संघ के सदस्यों व विषय-समिति के अन्य सदस्यों में समझौता हो गया। लेकिन कांग्रेस के खुले अधिवेशन में इस समझौते को नहीं निबाहा गया और श्री सुभाषचन्द्र वसु ने प्रस्ताव में संशोधन पेश कर ही दिया; जिसका पं० जवाहरलाल ने समर्थन किया, यद्यपि ये दोनों व्यक्ति समझौता करने वालों में से ही थे। इस वादाखिलाफी से गांधीजी की भावना को बहुत ठेस पहुंची। खुले अधिवेशन में समझौते वाले प्रस्ताव को पेश करते हुए गांधीजी ने अपनी भावना को इन शब्दों में व्यक्त किया—

"आप लोग चाहे स्वतन्त्रता का राग अलापा करें, जैसे कि मुसलमान अल्ला का राग अलापते हैं और हिन्दू राम या कृष्ण का, लेकिन यदि इस अलाप के पीछे सचाई नहीं है तो आपका यह अलाप कोई मतलब नहीं रखता। आप यदि अपने शब्दों की ही कद्र नहीं कर सकते तो फिर स्वतन्त्रता कहां की रही? आखिर स्वतन्त्रता तो बड़ी ठोस चीज है। वह शब्दों के प्रपंच से थोड़े ही आ सकती है।"

कलकत्ता-कांग्रेस ने निम्न प्रस्ताव में अपना अगला कार्य-क्रम भी निर्धारित किया—

"इस बीच कांग्रेस का भावी कार्यक्रम यह होगा—

(१) सब नशीली चीजों का व्यवहार बन्द कराने के लिए कौंसिलों के भीतर और बाहर देश में हर तरह से कोशिश की जायगी। जहां कहीं भी उचित और संभव हो वहां शराब, अफीम आदि की दूकानों पर पिकेटिंग करने का प्रबन्ध किया जायगा।

(२) हाथ की कती और बुनी खादी की उत्पत्ति बढ़ाकर और उसके इस्तेमाल का प्रतिपादन करके विदेशी कपड़े का बहिष्कार कराने के लिए कौंसिलों के भीतर और बाहर स्थान व अवस्था के अनुसार तुरन्त उपयुक्त उपाय काम में लाये जायंगे।

(३) जहां कहीं लोगों को कोई खास तकलीफ हो और यदि वे लोग तैयार हों तो उस शिकायत को दूर कराने के लिए अहिंसात्मक अस्त्र का उपयोग किया जाय, जैसा कि हाल ही में बारडोली में किया गया था।

(४) कांग्रेस की ओर से कौंसिलों के लिए जो सदस्य चुने गये हों उन्हें अपना अधिक समय कांग्रेस-कमिटी-द्वारा समय-समय पर नियत किये गये रचनात्मक कार्यक्रम में लगाना होगा।

(५) नये सदस्यों की भरती करके और कड़ा अनुशासन रखके कांग्रेस-संगठन को सुदृढ़ बनाया जाय।

(६) स्त्रियों की अयोग्यताओं को दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा और उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में उचित भाग लेने के लिए प्रोत्साहित और आमन्त्रित किया जायगा।

(७) देश की सामाजिक कुरीतियां दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा।

(८) प्रत्येक कांग्रेसवादी का, जो हिन्दू हो, यह कर्तव्य होगा कि वह अस्पृश्यता को दूर करने के लिए जो कुछ कर सकता है करे और अछूत कहे जानेवालों को उनकी अयोग्यतायें दूर करने और अपनी हालत सुधारने के प्रयत्नों में यथासंभव सहायता दे।

(९) शहर के मजदूरों में काम करने के लिए, और चर्खे और खद्दर के द्वारा जो कार्य हो रहा है, उसके अतिरिक्त ग्राम-संगठन का और कार्य करने के लिए, स्वयंसेवक भरती किये जायंगे।

(१०) राष्ट्र-निर्माण के कार्य को उसके भिन्न-भिन्न पहलुओं में बढ़ाने के लिए और राष्ट्रीय प्रयत्न में कांग्रेस को भिन्न-भिन्न कारोबार में लगे हुए लोगों का सहयोग प्राप्त कराने के लिए वे सब कार्य किये जायंगे जो उचित समझे जायंगे।

"कांग्रेस हरेक कांग्रेसवादी से आशा करती है कि वह उपर्युक्त कामों का खर्च चलाने के लिए यथाशक्ति अपनी आमदनी का कुछ भाग कांग्रेस-कोष को देता रहेगा।"

कलकत्ता-कांग्रेस के अन्य मुख्य प्रस्तावों में एक प्रस्ताव साम्राज्य-विरोधी-संघ के मि० डब्ल्यू० जे० जान्स्टन के सम्बन्ध में था, जिन्हें संघ ने मित्र-प्रतिनिधि के रूप से कांग्रेस में भेजा था। उन्हें गिरफ्तार करने और बिना मुकदमा चलाये देश-निकाला देने पर सरकार की निन्दा की गई और यह

मत प्रकट किया गया "सरकार ने यह कार्रवाई जान-बूझकर कांग्रेस के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को बढ़ने से रोकने के इरादे से की है।"

कलकत्ता-कांग्रेस में लगभग ५०,००० से अधिक मजदूरों-द्वारा किया गया प्रदर्शन सदा स्मरण रहेगा। आस-पास के मिल-क्षेत्रों के रहनेवाले मजदूर सुव्यवस्थित रूप से एक जुलूस बना कर कांग्रेस-नगर में घुस आये और राष्ट्रीय-झण्डे की सलामी करके पंडाल में आ गये और दो घन्टे तक अपनी सभा करते रहे। 'भारत के लिए स्वतन्त्रता' का प्रस्ताव पास करके वे लोग पंडाल छोड़कर चले गये।

देश में युवक-आन्दोलन का प्रादुर्भाव होना इस वर्ष की एक विशेषता थी। देश में जगह-जगह युवक-संघ व छात्रसंघ बन गये। बम्बई व बंगाल में तो उनका बड़ा जोर था। अगस्त मास में हालैण्ड में यूड स्थान पर जो विश्व-युवक-सम्मेलन हुआ था उसमें इन संस्थाओं में से कुछ ने प्रतिनिधि भी भेजे। युवकों ने साइमन-कमीशन के सम्बन्ध में किये गये बहिष्कार-प्रदर्शनों में भी खूब भाग लिया था। लखनऊ में पुलिस की लाठियों और डंडों की मार तो खास तौर पर उन्होंने खाई थी।

वर्ष के प्रारम्भिक भाग में कांग्रेस-की कार्य-समिति ने कांग्रेस की ओर से अनुसंधान कार्य करने के लिए कार्यकर्त्ता नियुक्त करने का निश्चय किया। सार्वजनिक प्रश्नों पर आवश्यक सामग्री एकत्र करने में और साथ-ही-साथ राष्ट्रीय सेवा के लिए योग्य युवकों को ट्रेनिंग देने में यह महत्वपूर्ण निश्चय बहुत सहायक होता, लेकिन अनुसन्धान-कार्य अच्छी तरह तभी हो सकता है जब कि उसके लिए एक स्थायी दफ़्तर हो, एक अच्छा-सा पुस्तकालय उसके साथ लगा हुआ हो और वातावरण राजनैतिक उत्तेजनाओं से खाली हो।

हिन्दुस्तानी-सेवादल ने कर्नाटक-प्रान्त में बागलकोट में एक व्यायाम-शाला स्थापित की। उसने देश के भिन्न-भिन्न भागों में कई ट्रेनिंग-कैम्प खोले और मिहनत का मोटा-झोटा काम करने में नाम पा लिया।

गांधीजी की ओर

अब हमें पाठकों को यह बताना है कि गांधीजी अपने एकान्त-जीवन से कलकत्ता कांग्रेस में कैसे आ फंसे। याद रहे कि उन्हें अहमदाबाद-कांग्रेस के बाद मार्च १९२२ में ही गिरफ्तार कर लिया गया था। वे १९२२ की गया कांग्रेस, सितम्बर १९२३ के दिल्ली के विशेष अधिवेशन और १९२३ के कोकनडा के वार्षिक अधिवेशन में उपस्थित न हो सके। ५ फरवरी १९२४ को वे छूटे और बेलगांव-कांग्रेस के सभापति बने। कानपुर कांग्रेस में स्वराज्य-पार्टी से साझेदारी—या जो कुछ कहिए—के पटना के निर्णयों पर कांग्रेस की छाप लगवाने के लिए ही वे आये थे। इसके बाद उन्होंने राजनीति में चुप्पी साधने की एक साल की शपथ खा ली और गोहाटी में उसे पूरा कर दिया। गोहाटी में उन्होंने कांग्रेस के बहस-मुबाहसों में सक्रिय-भाग लिया, लेकिन मदरास में तो वे बिल्कुल उदासीन रहे और विषय-समिति की बैठकों में भाग नहीं लिया। यह बात सन्देहजनक ही थी कि वे कलकत्ता-कांग्रेस के अधिवेशनों में भाग लेंगे या नहीं। कुछ वर्षों से वे कांग्रेस के सालाना अधिवेशनों के पहले एक मास वर्धा-आश्रम में बिताया करते थे। इस साल भी जब कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ते में दिसम्बर १९२८ में होने ही वाला था, वे वर्धा में थे। पंडित मोतीलाल नेहरू, जिन्हें स्वागतार्थ ३६ घोड़ों की गाड़ी में बिठाकर शहर में जुलूस में निकाला गया था, अपने आपको बड़ी विकट परि-स्थिति में पाने लगे। लखनऊ में सर्वदल-सम्मेलन में जिन विरोधियों ने सभापति के नाम एक पत्र पर हस्ताक्षर करके औपनिवेशिक स्वराज्य के विरोध में और स्वतन्त्रता के पक्ष में घोषणा की थी, वे भी वहां

मौजूद थे और उन्होंने अपना स्वाधीनता-संघ भी बना लिया। इनमें जवाहरलाल भी शामिल थे। बंगाल ने अपना संघ अलग बनाया था और श्री सुभाषचन्द्र वसु उसके मुखिया थे।

सर्वदल-सम्मेलन के बारे में भी एक शब्द इस समय कहना बाकी है। सम्मेलन बुरी तरह असफल हुआ; मुसलमानों के सिवा अन्य अल्प-संख्यक जातियों ने एक-एक करके साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को धिक्कारा। उधर श्री जिन्ना भी, जो अभी इंग्लैण्ड से वापस आये थे और जिन्होंने आते ही नेहरू-रिपोर्ट को कोसना शुरू कर दिया था, उसका विरोध करने लगे। कुछ मुसलमान पहले ही उसकी मुखालफत जाहिर कर चुके थे। कोरम पूरा न होने के कारण श्री जिन्ना ने लीग की बैठक स्थगित कर दी। कलकत्ते में सर्वदल-सम्मेलन रोग-शय्या पर या यों कहें कि मृत्यु-शय्या पर पहुंच चुका था। जितना ही अधिक वह जिन्दा रहा, उतना ही अधिक उसके सम्बन्धियों की, जो वहां इकट्ठे हुए थे, मांगें बढ़ती जाती थीं। उसकी हालत साबरमती के बछड़े की तरह थी। न तो वह जिन्दा रह सकता था और न वह मरता ही था। उसे स्वर्ग में पहुँचाने की आवश्यकता थी। गांधीजी के अलावा उसे स्वर्ग-द्वार तक कौन पहुंचा सकता था? गांधीजी के अलावा इस मरते हुए जीव की आखिरी सेवा करने की हिम्मत और किसमें थी? अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन की कार्रवाई अनिश्चित काल के लिए स्थगित की जाय। प्रस्ताव पास हो गया। अब कांग्रेस निश्चित रूप से गांधी जी की ओर झुक रही थी; लेकिन वह अपने खुद के कई बोझों से लदी हुई थी। गांधीजी देखना चाहते थे कि कांग्रेस की कौंसिल-पार्टी कौंसिलों का मोह छोड़ देने के लिए क्या-क्या करने को तैयार है। दिल्ली में अक्तूबर १९२८ में महासमिति कौंसिलों के सम्बन्ध में निम्न प्रस्ताव पास कर ही चुकी थी—

"यह समिति दुःख के साथ इस बात को देखती है कि कांग्रेस के भिन्न-भिन्न कौंसिल-दलों ने कौंसिल-कार्य के सम्बन्ध में मदरास-कांग्रेस के प्रस्ताव में किये गये आदेशों पर ध्यान नहीं दिया। इसलिए विषम परिस्थिति को देख कर यद्यपि कांग्रेस के कौंसिल-दलों को अधिक स्वतन्त्रता दी गई थी तथापि समिति का विश्वास था कि कांग्रेस-प्रस्ताव की स्पिरिट कायम रक्खी जायगी।"

इस प्रस्ताव में चार परस्पर-विरोधी स्थितियां दिखाई गई हैं। पहले निन्दा, फिर उसकी दर-गुजर, फिर कुछ कार्य स्वतन्त्रता के लिए गुंजाइश, और फिर कांग्रेस-प्रस्ताव की स्पिरिट को न त्यागने की उम्मीद।

गांधीजी कलकत्ता गये, अधिवेशन के कार्य में खूब भाग लिया, प्रस्तावों की रूप-रेखा बनाई और उन्हें सामने लाये। राजनैतिक वातावरण इस समय बहुत अन्धकारमय था। स्वतन्त्रता के हामियों पर मुकदमे चलने की अफवाहें, वाइसराय का कलकत्ता में उत्तेजनापूर्ण भाषण, "फारवर्ड" के सम्पादक को सजा होना, मदरास में मुकदमों का दौर-दौरा—ये ऐसी घटनायें थीं जिन्होंने गांधीजी के ऊपर बहुत भारी प्रभाव डाला। यद्यपि ये घटनायें स्वयं ही बहुत बेचैनी पैदा करने वाली थीं, पर गांधीजी खास कलकत्ते की घटनाओं से और भी अधिक बेचैन हुए; अर्थात् जान-बूझकर एक समझौते का किया जाना और फिर उसका क्रमशः बंगाल, युक्त-प्रान्त और अन्त में मदरास-द्वारा तोड़ा जाना। इन दोनों बातों के अलावा गांधीजी के पास यूरोप आने का भी निमंत्रण था। परिस्थिति अनुकूल हुई तो, गांधीजी का पूरा इरादा था कि वह १९२९ के प्रारम्भ में ही यूरोप का दौरा शुरू करें। आश्चर्य की बात है कि पं० मोतीलाल नेहरू ने भी उन्हें इस बात की अनुमति दे दी थी। लेकिन खूब विचार कर लेने के बाद और मित्रों से खूब परामर्श कर लेने के बाद गांधीजी इस नतीजे पर पहुँचे कि कम-से-कम इस एक वर्ष के लिए तो उन्हें अपना दौरा बन्द रखना चाहिए।

गांधीजी ने लिखा, "मैं अगले वर्ष के बारे में विचार भी नहीं कर सकता। डेनमार्क के मेरे एक मित्र ने लिखा है कि स्वतन्त्र-भारत का प्रतिनिधि होकर ही मेरा यूरोप आना श्रेयस्कर है। मैं इस कथन की सचाई महसूस करता हूँ।" हृदय की आवाज को पहचानकर गांधीजी ठीक निश्चय पर पहुँच गये। उन्होंने लिखा, "अन्तरात्मा की आवाज मुझे यूरोप जाने को नहीं कहती। इसके विपरीत, कांग्रेस के सामने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रस्ताव रखकर और उसका इतना सर्व-व्यापी समर्थन देखकर मुझे यह महसूस होता है कि यदि अब मैं यूरोप चला गया तो मैं कार्य को छोड़ कर भागने का दोषी होऊंगा। अन्तरात्मा की एक आवाज मुझको कह रही है कि जो कुछ कार्य मेरे सामने आवे उसके लिए केवल तैयार ही न रहूँ बल्कि उस कार्यक्रम को, जो मेरी दृष्टि में बहुत बड़ा है, कार्यान्वित करने के लिए उपाय भी बताऊं और सोचूं। इन सबके अलावा सबसे बड़ी बात तो यह है कि मुझे अगले साल की लड़ाई के लिए भी अपने-आपको तैयार करना चाहिए, चाहे उस लड़ाई का स्वरूप कैसा ही हो।"

यह फरवरी १९२९ के प्रथम सप्ताह की बात है। हमें अब देखना है कि फरवरी १९३० के लिए देश के भाग्य में क्या-क्या बदा था।

[भाग चौथा १९२९—१९३०]

१

तैयारी—१९२९

पब्लिक-सेफ्टी-बिल

१९२९ के आरम्भ में भारत की परिस्थिति वस्तुतः बड़ी विकट थी इस समय साइमन-कमीशन के साथ-साथ सेण्ट्रल-कमिटी भी देश में दौरा कर रही थी। इस कमिटी में चार सदस्य तो राज्य-परिषद् के चुने हुए थे और पांच सरकार ने असेम्बली में से मनोनीत कर दिये थे। साइमन कमीशन ने भी १४ अप्रैल १९२९ को अपना भारतीय कार्य समाप्त कर दिया। कमीशनवाले विलायत में पहुंचे ही थे कि मई १९२९ में अनुदार-दल की सरकार साधारण चुनाव में हार गई। मजदूर-दल का मन्त्रिमण्डल बना। मैकडानाल्ड साहब प्रधानमंत्री बने और वेजवुड बने साहब भारत-मंत्री। लार्ड अर्विन चार मास की छुट्टी लेकर जून में इंग्लैण्ड पहुंचे। इस यात्रा का उद्देश्य यह था कि "साइमन-कमीशन के परिणाम स्वरूप भारत के लिए जो सुधार-योजना पार्लमेण्ट के समक्ष रक्खी जाय उससे पहले ऐसा उपाय किया जाय जिससे विधान-सम्बन्धी स्थिति स्पष्ट हो जाय और भारत के भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों का अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सके।"

लॉर्ड अर्विन ने वापस आकर नीति-सम्बन्धी जो वक्तव्य दिया उस पर तो हम उचित स्थान पर विचार करेंगे ही, तबतक कांग्रेस की कौंसिल में होने वाली लड़ाई का अध्ययन करलें। पब्लिक सेफ्टी-बिल जनवरी १९२९ में ही दुबारा पेश हो चुका था, परन्तु उस पर विचार अप्रैल में हुआ। ११ अप्रैल को अध्यक्ष महोदय ने इस बिल पर चर्चा की मनाही कर दी। १२ अप्रैल को उन्होंने निम्न-लिखित वक्तव्य दिया—

"पब्लिक-सेफ्टी-बिल पर सिलेक्ट-कमिटी ने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है। परन्तु उसपर विचार करने के प्रस्ताव पर चर्चा आरम्भ करने की इजाजत देने से पहले मैं दो शब्द कहना चाहता हूं। असेम्बली की पिछली बैठक के समय से ही मैंने दो बातों पर परिश्रम-पूर्वक गौर किया है। इनमें से एक तो है पब्लिक-सेफ्टी-बिल पर समय-समय पर दिये गये सरकारी पक्ष के नेता के भाषण, और दूसरी बात है मेरठ की अदालत में ३१ व्यक्तियों के विरुद्ध सरकार का दावा। इसके अध्ययन से मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि इस बिल का और इस मुकदमे का आधार एक ही है। माननीय सदस्य जानते हैं कि हमारी कार्रवाई के नियमों में एक यह भी है कि साम्राज्य के भीतर किसी अदालत में भी यदि कोई मामला विचाराधीन है तो उसके विषय में न कोई प्रश्न पूछा जा सकता है और न कोई प्रस्ताव रक्खा जा सकता है। अतः यह सवाल उठता है कि मेरठ के मुकदमे का कोई हवाला दिये बिना इस सभा में पब्लिक सेफ्टी-बिल पर वाद-विवाद करना सम्भव है या नहीं? मेरी समझ से इस मामले में दो रायें नहीं हो सकतीं कि इस बिल पर वास्तविक चर्चा होना असम्भव

है। साथ ही बिल को स्वीकार करने का मतलब उस मुकदमे के मूल-आधार को स्वीकार करना होगा और बिल को अस्वीकार करने का अर्थ मुकद्दमे के आधार को अस्वीकार करना होगा। दोनों ही दशाओं में मुकदमे पर बुरा असर पड़ेगा, भले ही वादी घाटे में रहें या प्रतिवादी। ऐसी स्थिति में मैं नहीं समझता कि न्याय-पूर्वक मैं इस समय सरकार को इस बिल के सम्बन्ध में आगे कार्रवाई करने की अनुमति कैसे दे सकता हूं। इसलिए बजाय निर्णय देने के मैंने सरकार को यह सलाह देने का निश्चय किया है कि प्रथम तो मेरी दलीलों पर ध्यान देकर वह स्वयं मेरठ का मुकदमा खतम होने तक इस बिल को स्थगित कर दे और यदि वह इसी समय बिल का पास होना ज्यादा जरूरी समझती है तो पहले मेरठ का मामला उठा ले और बिल का मामला हाथ में ले।"

सरकार ने दोनों में से एक भी बात नहीं मानी और अध्यक्ष महोदय ने अपना अन्तिम निर्णय यह दिया कि "यह इस सभा की कार्य-प्रणाली और शिष्टाचार के विरुद्ध है", इसलिए इस प्रस्ताव पर चर्चा होने की इजाजत नहीं दी जा सकती। दूसरे ही दिन वाइसराय साहब ने दोनों धारा-सभाओं में भाषण दिये और घोषणा की कि सरकार के लिए पब्लिक-सेफ्टी-बिल में प्रस्तावित अधिकारों का अविलम्ब प्राप्त करना अत्यावश्यक है। तदनुसार उन्होंने एक विशेष आज्ञा (आर्डिनेन्स) निकाल कर अधिकारियों को, जैसा वे चाहते थे, अनियंत्रित सत्ता दे दी।

ट्रेड डिस्प्यूट बिल अर्थात् मजदूरों और मालिकों के झगड़ों-सम्बन्धी प्रस्तावित कानून का जिक्र ऊपर आ चुका है। इस बारे में इतना कहना बाकी है कि यह बिल ८ अप्रैल को पास हुआ और इसके पास होने के साथ-साथ एक स्मरणीय घटना भी हो गई। घटना यह हुई कि जब राय लेने के बाद असेम्बली फिर से एकत्र हो रही थी और अध्यक्ष आगे की कार्रवाई की घोषणा कर रहे थे उसी समय दर्शकों के झरोखे में से सरकारी पक्ष के बीच दो बम आकर गिरे और उनके फूटने से कुछ लोग घायल हो गये।

उपसमितियां

कांग्रेस के कलकत्ते के अधिवेशन के बाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने कांग्रेस के निश्चयों को कार्य-रूप देने के लिए अनेक उप-समितियां बनाईं। विदेशी वस्त्र के बहिष्कार, मादक-द्रव्यों के निषेध, अस्पृश्यता के निवारण, महासभा के संगठन, स्वयंसेवकों और स्त्रियों की बाधाओं को दूर करने के लिए कमिटियां नियुक्त की गईं। मालूम होता है कि आखिरी कमिटी ने कोई काम नहीं किया और कोई रिपोर्ट पेश नहीं की।

स्वयंसेवकों-सम्बन्धी उप-समिति ने कई सिफारिशें कीं। उसकी खास सूचना यह थी कि हिन्दुस्तानी-सेवादल को दृढ़ बनाया जाय और राष्ट्रीय कार्य के लिए स्वयंसेवक तैयार करने के लिए उसका पूरा उपयोग किया जाय। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार समिति के अध्यक्ष थे गांधी जी और मंत्री थे श्री जयरामदास दौलतराम। यह समिति वर्ष-भर काम करती रही। बहिष्कार के पक्ष में जबरदस्त हलचल रही। बहिष्कार के काम में अपना सारा समय लगाने के लिए श्री जयरामदास ने बम्बई-कौंसिल का सदस्य-पद छोड़ दिया और अपनी समिति का केन्द्र बम्बई में बनाकर बैठ गये। मादक-द्रव्य-निषेध-समिति का काम चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के हाथ में था। इन्होंने इस कार्य को अपना खास विषय बना लिया और इस आन्दोलन की सफलता के लिए अपनी महान् योग्यता का पूरा उपयोग किया। यह कार्य अधिकतर दक्षिण भारत और गुजरात में हुआ। सफलता भी अच्छी मिली। इस आन्दोलन की ओर विदेशों तक का ध्यान आकर्षित हुआ। नशे के विरुद्ध सरकारी तौर पर प्रचार करने के

लिए मदरास-सरकार चार लाख रुपया खर्च करने को राजी हो गई। युक्तप्रान्त की सरकार से भी इसी प्रकार की कार्रवाई की आशा हुई। श्री राजगोपालाचार्य भारतीय-मद्यपान-निषेध-संघ के मंत्री हुए और उसके अंग्रेजी त्रैमासिक मुख-पत्र 'प्रॉहीविशन' का सम्पादन करते रहे। अस्पृश्यता-निवारण-आंदोलन का काम श्री जमनालाल बजाज के सुपुर्द गिया गया। इन्होंने भी काफी परिश्रम किया। जो लोग दीर्घकाल से दलित रक्खे गये हैं उनकी बाधायें दूर करने के लिए सर्वत्र लोकमत जाग्रत किया गया। जहां दलित जातियों को मनाही थी, ऐसे अनेक प्रसिद्ध मन्दिरों के द्वार उनके लिए खोल दिये गये। समिति को बहुत से कुएं और पाठशालायें भी खुलवाने में सफलता मिली। कई म्युनिसिपैलिटियों ने इस काम में सहयोग दिया। समिति के मंत्री श्री जमनालाल बजाज ने मदरास, मध्यप्रांत, राजस्थान, सिंध, पंजाब और सीमाप्रांत में लम्बे प्रवास किये। कांग्रेस के पुनस्संगठन के लिए जो समिति बनाई गई थी उसने साल के शुरू में ही अपनी रिपोर्ट पेश कर दी।

कौंसिलों की सितम्बर की बैठकों की राम-कहानी फिर से आरम्भ करने के पहले गांधीजी से सम्बन्ध रखनेवाली एक-दो घटनायें वर्णन कर देना आवश्यक है। गांधीजी उस समय भारत का दौरा कर रहे थे और बर्मा जाते हुए कलकत्ते से गुजरे। वहां विदेशी कपड़े की होली हुई और इस सम्बन्ध में मार्च १९२९ के दूसरे सप्ताह में उनपर यह अभियोग लगाया गया कि उन्होंने आज्ञा-भंग की या आज्ञा-भंग में सहायता दी। आज्ञा यह थी कि सार्वजनिक स्थानों पर घास-फूस आदि न जलाया जाय। कलकत्ता के पुलिस-कमिश्नर सर चार्ल्स टैगार्ट ने कलकत्ता-पुलिस के कानून की ६६ वीं धारा की दूसरी कलम को खोद निकाला था। पुलिस का इरादा तो यह था कि इस कार्य को सविनय अवज्ञा सिद्ध किया जाय। परन्तु उसे सफलता नहीं मिली। गांधीजी पर मुकदमा चला और एक रुपया जुर्माना हुआ। उसके बाद उन्होंने आन्ध्रदेश की स्मरणीय यात्रा की और डेढ़ मास में खद्दर के लिए दो लाख सत्तर हजार रुपये इकट्ठे किये। थोड़े दिन बाद मई १९२९ में महासमिति की बम्बई में बैठक हुई।

बम्बई में महासमिति

बम्बई की यह बैठक जरा महत्वपूर्ण थी। सरकार घोषणा कर चुकी थी कि असेम्बली का कार्य-काल बढ़ाया जायगा। इस बात पर भी कांग्रेस को कार्रवाई करने की जरूरत थी। इधर देश-भर में गिरफ्तारियों का तांता बंध गया था, कार्य-समिति के सदस्य श्री साम्बमूर्ति पकड़ लिये गये थे और पंजाब में घोर दमन-चक्र चल रहा था। इससे यह सन्देह होता था कि शायद और बातों के साथ-साथ इसका उद्देश्य लाहौर के कांग्रेस-अधिवेशन की तैयारियों में बाधा डालना भी हो। इन सब कारणों से प्रत्येक प्रांत में कांग्रेस की शाखाओं के लिए जोरदार कार्रवाई करना आवश्यक हो गया था। अतः बम्बई में यह निश्चित हुआ कि प्रांतीय-कांग्रेस-कमिटियों में प्रांत की समस्त जन-संख्या के $\frac{1}{2}$ फी सदी से कम चार आनेवाले सदस्य नहीं होने चाहिए और प्रांतीय-कमिटी में कम-से-कम आधे जिलों के प्रतिनिधि होने चाहिए। जिला और तहसील कमिटी में आबादी से कम-से-कम $\frac{3}{4}$ फी सदी चार आनेवाले सदस्य होने चाहिए और ग्राम-समिति में कम-से-कम एक फी सदी। कार्य-समिति को अधिकार दिया गया कि जो शाखा इन आदेशों का पालन न करे उसका सम्बन्ध-विच्छेद किया जा सकेगा। कार्य-समिति को यह भी सत्ता दी गई कि देश के हित के लिए वह जो उपाय उचित समझे उसका पालन असेम्बली और प्रांतीय कौंसिलों के कांग्रेस-सदस्यों से भी करा सके। पूर्व-अफ्रीका के विषय में यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि वहां भारतीयों की राजनैतिक और आर्थिक समानता की लड़ाई में कांग्रेस पूरी हिमायत करे। समिति ने यह

भी निश्चय किया कि कांग्रेस एक ऐसी पुस्तिका तैयार कराये जिसमें स्वराज्य-आंदोलन के अन्तर्गत जिन राजनैतिक, शासन-सम्बन्धी, आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं का समावेश होता है उन पर अधिकार-पूर्ण परिच्छेद हों। इसके लिए महासमिति को आवश्यक खर्च करने का अधिकार दिया गया।

डा० सनयातसेन के मृत्यु-संस्कार के समय भिक्षु उत्तमा को कांग्रेस की ओर से उपस्थित रहने का जो अधिकार अध्यक्ष ने दिया था उसका कार्य-समिति ने समर्थन किया। श्री शिवप्रसाद गुप्त को साम्राज्य-विरोधक-संघ के अधिवेशन में सम्मिलित होने के लिए भारत का प्रतिनिधि चुना गया। धारा-सभाओं में कांग्रेसी-दल के बारे में कार्य समिति ने यह प्रस्ताव किया कि "बंगाल और आसाम के सिवा बड़ी या अन्य प्रांतीय कौंसिलों के सारे कांग्रेसी सदस्य इन कौंसिलों की भी बैठक में अथवा उनके द्वारा अथवा सरकार द्वारा नियुक्त किसी भी समिति की किसी भी बैठक में तबतक शामिल न होंगे जबतक कि महासमिति या कार्य-समिति दूसरा निर्णय न करे। यह भी निश्चय हुआ कि कांग्रेसी सदस्य अब से अपना सारा उपलब्ध समय कांग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने में ही लगायेंगे। हां, बंगाल और आसाम की कौंसिलों के कांग्रेसी सदस्य निर्वाचित होने के बाद अपने नाम दर्ज कराने मात्र के लिए सिर्फ एक-एक बैठक में उपस्थित रह सकेंगे।" मई की महासमिति की इसी बैठक में यह तय हुआ कि वर्तमान आर्थिक और सामाजिक समाज-व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन करना और भारतीय जन-साधारण की अवस्था सुधारने और उनका दुःख दारिद्र्य दूर करने के लिए प्रचलित घोर असमानताओं को मिटाना आवश्यक है। मेरठ के अभियुक्तों के सहायतार्थ भी १५००) मंजूर हुए।

मेरठ-षड्यन्त्र-केस

२० मार्च १९२९ के दिन बम्बई, पंजाब और संयुक्त-प्रांत में ताजीरात हिन्द की १२१ अ धारा के अनुसार सैकड़ों घरों की तलाशी ली गई। जो लोग गिरफ्तार किये गये, उनमें महासमिति के ८ सदस्य भी थे। गिरफ्तार किये गये लोगों को मेरठ ले जाकर उन पर मुकदमा चलाया गया। अभियुक्तों पर अपराध साम्यवादी प्रचार का लगाया गया। आगे चलकर "न्यू-स्पार्क" के सम्पादक मिस्टर एच० एल० हचिंसन भी अभियुक्तों में शामिल कर दिये गये। अभियुक्तों की सहायता के लिए, एक सेंट्रल डिफेन्स कमिटी भी बनाई गई। इसमें मुख्यतः बड़े-बड़े कांग्रेसी ही थे। पहले कहा जा चुका है कि कार्य-समिति ने अभियुक्तों की सफाई के लिए अपनी साधारण परिपाटी छोड़कर भी १५००) की रकम मंजूर की। इस मुकदमे में प्रारम्भिक तफतीश में ही कई महीने लग गये और वर्ष का अन्त आ पहुँचा। भारत और इंग्लैण्ड में इस मुकदमे ने बड़ा नाम पाया। मुकदमे के समय सरकारी प्रकाशन विभाग के सञ्चालक स्वयं उपस्थित रहते थे और मुकदमे-सम्बन्धी प्रचार और प्रकाशन के काम की खुद देख भाल रखते थे।

१५ जुलाई को दिल्ली में कार्य-समिति की बैठक फिर हुई। समिति ने राय दी कि भिन्न-भिन्न कौंसिलों के सदस्यों को इस्तीफा देने की सलाह देने में ही स्वराज्य-आंदोलन का लाभ है। परन्तु इस प्रश्न के महत्त्व को देखते हुए कार्य समिति ने सोचा कि अन्तिम निर्णय महासमिति को ही करना चाहिए। इसलिए यह निश्चय किया गया कि शुक्रवार २६ जुलाई १९२९ को प्रयाग में महासमिति की बैठक बुलाई जाय। स्मरण रहे कि कलकत्ते के मुख्य प्रस्ताव की अन्तिम धारा में लोगों से यह अनुरोध किया गया था कि वे अपनी आय का एक विशेष भाग कांग्रेस को दें। पहले पहल ५ फीसदी रक्खा गया और बाद में २½ फीसदी, परन्तु फिर समिति ने यह मामला लोगों की इच्छा पर ही

छोड़ दिया। जुलाई के बुलेटिन में इस चन्दे की सूची प्रकाशित की गई थी, जिससे मालूम हुआ कि सब मिलकर बहुत थोड़ा रुपया प्राप्त हुआ था।

देश में यह बड़ा दमन-काल था। इस समय सरकार ने डॉ० सण्डरलैण्ड की "इण्डिया इन बॉण्डेज" नामक पुस्तक को निषिद्ध ठहरा दिया और इसके प्रकाशित करने के अपराध में 'मॉडर्न-रिव्यू' के सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जी को गिरफ्तार कर लिया। असेम्बली-बम-केस के अभियुक्त श्री भगतसिंह और दत्त को आजन्म काले पानी की सजा दी गई। उन्होंने प्रकट किया था कि बम तो प्रदर्शन के लिए फेंका गया था। लाहौर-षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों की भूख-हड़ताल का वर्णन विस्तार से किया ही जा चुका है। कलकत्ते में भी एक सामूहिक अभियोग चल रहा था। इसमें कार्य-समिति के सदस्य श्री सुभाषचन्द्र वसु और अन्य कई प्रमुख कांग्रेसी अभियुक्त थे। शंघाई से और मलाया राज्यों से भी राजनैतिक कारणों से भारतीयों की गिरफ्तारी के समाचार मिले थे।

ये बहुसंख्यक मुकदमे तो चल ही रहे थे और राजनैतिक और मजदूर-कार्यकर्त्ताओं को सजायें दी जा रही थीं। इनके सिवा पुलिस दमन के ऐसे तरीके भी इस्तेमाल कर रही थी, जिन्हें महा-समिति ने जंगली बताया। एक अवसर पर लाहौर के अभियुक्तों की सफाई के लिए धन एकत्र करने वाले सात युवकों को पुलिस ने जिला-मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में इतना मारा कि उनमें से कुछ बे-सुध तक होगये। चोटें तो सभी को गहरी लगीं। उनका अपराध था 'साम्राज्यवाद का नाश हो' और 'क्रांति अमर हो' के नारे लगाना। लाहौर-षड्यन्त्र केस के अभियुक्तों के साथ इससे भी अधिक पाशविक व्यवहार किया गया। वे न्यायाधीश के सामने खुली अदालत में पीटे गये—और, कहा जाता है कि, अदालत के बाहर भी उनके साथ कई तरह का दुर्व्यवहार किया गया। यह भी भूलने की बात नहीं है कि भारत की भिन्न-भिन्न जेलों में और अण्डमान-द्वीप में बहुत से लम्बी सजाओं वाले राजनैतिक कैदी भी थे। इनमें १८१८ के तीसरे रेग्यूलेशन के शिकार नजरबन्द और फौजी-कानून के शिकार दूसरे कैदी भी थे। इन कैदियों को १९१९ में पंजाब के फौजी-शासन-द्वारा स्थापित विशेष अदालतों ने सजायें दी थीं। इनके सिवा जेलों में २७ राजनैतिक कैदी वे भी थे जिन्हें युद्धकाल में, अर्थात् सन् १९१४–१५ में, कालेपानी की सजायें दी गई थीं। इनके मुकदमे भी विशेष कमीशनों के सामने हुए थे, मामूली अदालतों में नहीं। इस समय तक ये लोग १५-१५ वर्ष की जेल काट चुके थे।

वर्ष के अधिकांश समय में कार्य-समिति के दो सदस्य विदेशों में रहे। श्रीमती सरोजिनी नायडू अमरीका की अत्यन्त सफल यात्रा करके अगस्त मास में लौट आईं। नवम्बर में वे पूर्व-अफ्रीका की भारतीय कांग्रेस में सभानेत्री बनकर गईं। महासभा के एक कोषाध्यक्ष श्री शिवप्रसाद गुप्त कई मास यूरोप में रहे। गुप्त जी कांग्रेस की ओर से साम्राज्य-विरोधी-संघ के दूसरे विश्व-सम्मेलन में भी शरीक हुए। यह सम्मेलन जुलाई मास में फ्रैंकफर्ट नगर में हुआ था। इस सम्मेलन की जो रिपोर्ट गुप्तजी ने दी वह कार्य-समिति में पेश हुई थी।

कलकत्ता-कांग्रेस के बाद तुरन्त ही कार्य-समिति ने १० पौण्ड मासिक की रकम इसलिए मंजूर की कि बर्लिन में भारतीय छात्रों को सलाह और सहायता देने वाली एक समिति स्थापित की जाय। थोड़े समय पश्चात् यह समिति श्री ए० सी० एन० नम्बियर की देख-रेख में कायम हुई। इससे बहुसंख्यक भारतीय छात्रों एवं यात्रियों को जो मदद मिली उससे इसकी उपयोगिता पूर्णतः सिद्ध हो गई। श्री शिवप्रसाद गुप्त ने अपनी यूरोप-यात्रा में इस समिति का निरीक्षण किया और इसके कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा की। इनकी सिफारिश पर कार्य-समिति ने एक वाचनालय के निमित्त सहायता में

दो पौण्ड मासिक की वृद्धि कर दी। यह संस्था अच्छे ढंग से चली। इसकी रिपोर्टें और हिसाब पूरे और प्रतिमास आते रहे।

कलकत्ता-कांग्रेस ने महा-समिति को वैदेशिक विभाग खोलने का आदेश दिया था। कार्य-समिति ने इस मामले में आवश्यक कारवाई करने का अधिकार प्रधान-मन्त्री को दे दिया। वे स्वयं इस विभाग की देख-भाल रखने लगे। उन्होंने अन्य देशों के व्यक्तियों और संस्थाओं से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। यह काम आसान नहीं था, क्योंकि सरकार की कड़ी नजर के कारण विदेशों से पत्र व्यवहार रखने में अनेक बाधायें आती थीं।

महा-समिति के निर्णयानुसार समिति के कार्यालय की शाखा के रूप में ही मजदूरों-सम्बधी प्रश्न के लिए एक अनुसंधान-विभाग भी खोला गया।

हिन्दुस्तानी सेवा-दल ने स्वयंसेवक तैयार करने का कार्य देश के भिन्न-भिन्न भागों में किया। अधिकतर कार्य तो कर्नाटक में ही हुआ। वहीं दल का दफ्तर और व्यायाम मन्दिर भी था। परन्तु दल की छावनियां देश के अन्य भागों में भी बहुत थीं और शिक्षकों की मांग इतनी रही कि पूरी न की जा सकी। कांग्रेस के सदस्य बनाने और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के काम में दल ने बड़ी मदद दी। लाहौर-कांग्रेस के लिए चुस्त स्वयंसेवक-सैन्य संगठन करने में दल ने पूरा सहयोग दिया। मासिक झण्डाभिवादन के कार्यक्रम का संगठन करने में हिन्दुस्तानी-सेवा दल को आशातीत सफलता मिली। दल ने कलकत्ते में निश्चय किया कि हर महीने के आखिरी रविवार को सुबह ८ बजे देश-भर में राष्ट्र-ध्वजा फहरायी जाय। मासिक झण्डाभिवादन का कार्यक्रम खूब लोक-प्रिय हुआ। बहुत-सी म्युनिसिपैलिटियों ने भी अपनी इमारतों पर विधि-पूर्वक राष्ट्रीय झण्डे लगाये। हिन्दुस्तानी-सेवा दल की पुनर्रचना की गई।

यतीन्द्र का अनशन

पिछले महीनों से अगस्त कुछ अच्छा नहीं निकला। नेताओं की गिरफ्तारियां सर्वत्र जारी रहीं। पंजाब में सरदार मंगलसिंह, मौलाना जफरअलीखां, मास्टर मोतासिंह और डा० सत्यपाल तथा आंध्र देश में श्री अन्नपूर्णय्या पकड़े गये। मास्टर जी तो बेचारे ७ वर्ष की सजा काट कर निकले ही थे। डा० सत्यपाल को दो वर्ष की कड़ी कैद मिली। पंजाब में दमन का जोर खास तौर पर रहा। बाहर तो लोग यों पकड़े ही जा रहे थे, जेलों के भीतर भी अत्यन्त कठोरता का व्यवहार किया जा रहा था। श्री भगतसिंह, दत्त और अन्य कई कैदियों की भूख-हड़ताल को इस समय तक १॥ महीना हो चुका था। श्री भगतसिंह और दत्त को हाल ही में असेम्बली-बम-केस में तो आजीवन काले पानी की सजा हुई थी; ये दोनों लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमे में भी अभियुक्त थे। हां, पीछे से श्री दत्त को इस मुकदमे में छोड़ दिया गया था। यह मुकदमा लाहौर-पुलिस के मिस्टर सांडर्स नामक अफसर की हत्या के कारण हुआ था। यह हत्या १७ सितम्बर १९२८ को दिन के ४ बजे हुई थी। भूख हड़ताल का उद्देश्य कुछ कष्टों का निवारण और खास तौर पर कैदियों के लिए मनुष्योचित व्यवहार की प्राप्ति करना था। अनशन करने वालों में विख्यात श्री यतीन्द्रनाथ दास मुख्य थे। श्री यतीन्द्र की शिकायत यह थी कि गोरे और हिन्दुस्तानी कैदियों के साथ भेद-भाव-पूर्ण व्यवहार किया जाता है। इन भूख-हड़तालियों को जो खास रिआयतें दी गई थीं उनकी यतीन्द्र ने कुछ परवा नहीं की और मैक्स्विनी की भांति अकेले ही भूख-हड़ताल पर अन्त तक डटे रहे और चौंसठवें दिन चल बसे।

इस वर्ष इंग्लैण्ड और यूरोप की भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के साथ सम्पर्क स्थापित किया गया। बम्बई में कांग्रेस-मुस्लिम-दल बना और प्रयाग में महा-समिति की बैठक

के अवसर पर अखिल-भारतीय राष्ट्रीय-मुस्लिम-दल की स्थापना हुई। इस बैठक में महासमिति ने कार्य-समिति के इस मत का समर्थन किया कि कौंसिलों के कांग्रेसवादी सदस्यों को इस्तीफे दे देने चाहिए, परन्तु इस विषय पर जो पत्र प्राप्त हुए उनको ध्यान में रखकर इस विषय को लाहौर-कांग्रेस के बाद के लिए स्थगित रखना ही उचित समझा। इसका यह अर्थ नहीं था कि जो पहले त्याग-पत्र देना चाहें उन्हें मनाही की गई हो।

पंजाब की भूख-हड़ताल का उल्लेख संक्षेप में ऊपर किया गया है। इन हड़तालों से सरकार हैरान हुई। उसने सोचा कि ये हड़तालें लाहौर-षड्यन्त्र-केस में पुलिस को तंग करने के अभिप्राय से की गई हैं। अतः १२ सितम्बर १९२९ को सरकार ने असेम्बली में एक बिल पेश किया। इस बिल में न्यायाधीशों को अधिकार दिया गया था कि यदि अभियुक्त लोग अपने ही कृत्यों से अपने-को अदालत में उपस्थित होने में असमर्थ बना लें तो उनकी अनुपस्थिति में भी मुकदमे की कार्रवाई जारी रह सकती है। किन्तु १४ सितम्बर को सरकार ने यह देख कर कि इस बिल पर बड़ा मत-भेद है, यह मंजूर कर लिया कि इस पर और अधिक राय ली जाय, परन्तु साथ ही सरकार ने अपना यह हक सुरक्षित रख लिया कि भविष्य में आवश्यकता हुई तो सरकार अपने प्राप्त अधिकारों का प्रयोग करेगी। और आखिर हुआ भी ऐसा ही। गवर्नर-जनरल ने लाहौर-षड्यन्त्र-केस के बारे में एक आर्डिनेन्स निकाल दिया।

लाहौर-कांग्रेस का सभापति

भविष्य के गर्भ में बड़ी-बड़ी घटनायें छिपी थीं। अन्य अधिवेशनों की भांति लाहौर-कांग्रेस के लिए भी सभापति की जरूरत थी। दस प्रान्तों ने गांधी जी के लिए, पांच ने श्री वल्लभ भाई पटेल के लिए और तीन ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू के लिए राय दी। गांधी जी का चुनाव विधि-पूर्वक घोषित हो गया; परन्तु उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। विधान के अनुसार उनके स्थान पर दूसरे का निर्वाचन अवश्य हुआ। अतः २८ सितम्बर १९२९ को लखनऊ में महा-समिति की बैठक हुई। सबकी दृष्टि गांधीजी पर लगी हुई थी। वे ही ऐसे व्यक्ति दीखते थे जो कांग्रेस की रक्षा और उसे विजय-पथ पर अग्रसर कर सकते थे। कौंसिलों और उनके कुछ सदस्यों से पण्डित मोतीलाल जैसों का भी उकता उठना छिपा नहीं रह गया था। यह संकेत स्पष्टतः आ चुका था कि कौंसिलों की मेम्बरी छोड़ दी जाय। पर आगे क्या किया जाय? सविनय-अवज्ञा के सिवाय चारा ही क्या था? परन्तु इस नवीन मार्ग पर गांधीजी के अतिरिक्त राष्ट्र का सफल पथ-प्रदर्शन और कौन करे? उन्हें पहले भी दबाया गया था। लखनऊ में उन पर फिर जोर डाला गया कि वे अपनी अस्वीकृति वापस ले लें। परन्तु उनकी दूरदर्शिता ने कांग्रेस की गद्दी पर ऐसे किसी युवक को ही बिठाने की सलाह दी जिस पर देश के युवक-हृदयों की श्रद्धा हो। गांधी जी ने इसके लिए युवक-जवाहरलाल को सभापति बनाना उचित समझा। नवयुवकों को कांग्रेस की नीति-रीति धीमी और सुस्त मालूम होती थी। ऐसी दशा में यदि कांग्रेस की विजय-यात्रा को आगे लेजाना हो तो उसका सूत्र किसी नौजवान के हाथ में देना ही उचित है। श्री वल्लभभाई ने गांधी जी और जवाहरलाल जी के बीच में आना पसन्द नहीं किया। लखनऊ में उपस्थिति अधिक नहीं थी। उपस्थित मित्रों ने बहुमत से पं० जवाहरलाल को चुन लिया।

लखनऊ-महासमिति

लखनऊ में महा-समिति के सामने दूसरा विचारार्थ विषय था श्री यतीन्द्रनाथदास और फुङ्गी विजय के देहावसान का। इनमें से पहले देशभक्त पंजाब की जेल में ६४ दिन के अनशन से और दूसरे ब्रह्म देश में १६४ दिन के उपवास से शहीद हुए। भिक्षु विजय एक बौद्ध साधु थे। वे

राजद्रोह के अपराध में २१ मास का कठोर कारावास भुगत कर २८ फरवरी १९२९ को ही छूटे थे। इसके सवा मास बाद ही, अर्थात् ४ अप्रैल को, वे राजद्रोहात्मक भाषण देने के अभियोग में फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उन्हें ६ वर्ष के कालेपानी की सजा हुई। बाद में घटा कर यह सजा ३ वर्ष कर दी गई। गिरफ्तारी के थोड़े समय बाद उन्होंने अच्छा व्यवहार किये जाने और विशेष अवसरों पर भिक्षुओं के भगवा वस्त्र पहनने के अधिकार के मामले में अनशन आरम्भ किया। यह तप १६४ दिन के बाद १९ सितम्बर १९२९ को उनके जीवन के साथ समाप्त हुआ। श्री यतीन्द्र-नाथ दास का देहावसान इससे छः दिन पूर्व, अर्थात् १३ सितम्बर १९२९ को, हो चुका था। इस प्रकार दो सप्ताह के भीतर इन दो देशभक्तों ने स्वेच्छा-पूर्वक राष्ट्र के स्वाभिमान के रक्षार्थ अपने प्राणों की बलि चढ़ा दी। श्री दास की मृत्यु पर देश-भर में मातम छा गया और देशवासियों के हृदय उनकी प्रशंसा से गद्-गद् हो गये। स्थान-स्थान पर विशाल प्रदर्शन हुए। कलकत्ते का जुलूस तो अनोखा ही था। इतना ही नहीं, कई विदेशों से भी सहानुभूति-सूचक सन्देश आये। आयर्लैण्ड के मैक्स्विनी-परिवार का पैगाम विशेष-रूप से उल्लेखनीय था।

यहां उस प्रस्ताव का जिक्र करना आवश्यक है जो २८ सितम्बर को लखनऊ में महासमिति ने जेल में होनेवाले अनशनों के विषय में पास किया। समिति ने इन बन्दियों के उद्देश्य की हार्दिक प्रशंसा करते हुए यह राय दी कि गंभीरतम परिस्थिति उत्पन्न हुए बिना भूख-हड़ताल नहीं करनी चाहिए। समिति ने यह भी सलाह दी कि चूंकि श्री दास और श्री विजय के आत्म-बलिदान हो चुके हैं, सरकार ने भी अन्तिम वक्त पर हड़तालियों की अधिकांश मांगें स्वीकार करली हैं और पूर्ण कष्ट-निवारण के लिए प्रयत्न जारी है, अतः अन्य भूख-हड़तालियों को अपनी तपस्या खत्म कर देनी चाहिए।

एक प्रस्ताव पूर्व-अफ्रीका की परिस्थिति पर भी हुआ। इस विषय में भारत-सरकार ने स्वीकार किया कि वह केवल वकील है, समझौता करने वाले पक्षों में से नहीं है। उधर दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने अली बन्धुओं की वहां की प्रस्तावित-यात्रा पर अन्याय-पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिये। इसपर भी समिति ने उपयुक्त प्रस्ताव पास किया।

लॉर्ड अर्विन की घोषणा

अक्तूबर का महीना घटनापूर्ण था। लॉर्ड अर्विन विलायत जाकर २५ अक्तूबर को लौट आये थे और उन्होंने एक घोषणा भी की थी। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने पहली नवम्बर को दिल्ली में कार्य-समिति की जरूरी बैठक बुलाई। समिति के सदस्यों के अतिरिक्त राजधानी में अन्य दलों के नेता भी उक्त घोषणा को सुनने और उस पर सम्मिलित कार्रवाई करने के लिए मौजूद थे। जून १९२९ के अन्त में इंग्लैण्ड को रवाना होते समय लॉर्ड अर्विन ने कहा था, "विलायत पहुंचकर मैं ब्रिटिश-सरकार से इन गम्भीर मामलों पर चर्चा करने के अवसर ढूंढूंगा। जैसा मैं अन्यत्र कहचुका हूं, जो लोग भारतीय राजनैतिक लोकमत के प्रतिनिधि हैं उनकी भिन्न-भिन्न दृष्टियों को ब्रिटिश-सरकार के सम्मुख रखना मेरा कर्तव्य होगा।" इसके बाद उन्होंने अगस्त १९१७ की घोषणा और सम्राट्-द्वारा दिये गये उनके नाम के आदेश-पत्र का हवाला दिया। इस आदेश-पत्र में सम्राट् ने कहा था—"हमारी सर्वोपरि इच्छा और प्रसन्नता इसी में है कि हमारे साम्राज्य का अंगभूत रहते हुए ब्रिटिश-भारत को क्रमशः उत्तरदायी शासन-प्राप्ति के लिए पार्लमेण्ट ने जो योजना बनाई है वह इस प्रकार सफल हो कि हमारे उपनिवेशों में ब्रिटिश-भारत को भी अपने योग्य स्थान मिले।"

लॉर्ड अर्विन ने अपनी ३१ अक्तूबर की घोषणा में कहा—"साइमन कमीशन के अध्यक्ष ने प्रधान-मंत्री के साथ अपने पत्र-व्यवहार में कुछ महत्वपूर्ण सूचनायें दी हैं। पहली बात तो यह कि

आगे चलकर ब्रिटिश-भारत और देशी राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध कैसे होंगे? अध्यक्ष महोदय की सम्मति में इस बात की पूरी जांच होना आवश्यक है। दूसरी सूचना यह दी है कि यदि कमीशन की रिपोर्ट और उसपर सरकार द्वारा बननेवाली योजना में यह वृहत् समस्या शामिल करनी हो तो फिर अभी कार्य-पद्धति में परिवर्तन कर लेना जरूरी मालूम होता है। उनका प्रस्ताव है कि साइमन-कमीशन और सेण्ट्रल कमिटी की रिपोर्टों पर विचार होकर जब वे प्रकाशित कर दी जायं और पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं में सम्मिलित समिति नियुक्त हो उससे पहले ब्रिटिश सरकार को ब्रिटिश-भारत और देशी-राज्य दोनों के प्रतिनिधियों से विचार-विनिमय करना चाहिए; जिससे सरकार की ओर से पार्लमेण्ट के सम्मुख पेश होने वाली अन्तिम सुधार-योजना के पक्ष में अधिक-से-अधिक सहमति प्राप्त हो सके। भारतीय धारा-सभाओं एवं अन्य संस्थाओं की सलाह लेना तो ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी के लिए फिर भी लाभदायक होगा ही। परन्तु इसका अवसर तब आवेगा जब यह योजना आगे चलकर बिल के रूप में पार्लमेण्ट के सामने आवेगी। किन्तु कमीशन की राय में इससे पहले पूर्वोक्त ढंग की परिषद् बुलानी पड़ेगी। मैं समझता हूं कि ब्रिटिश-सरकार इन विचारों से पूर्णतः सहमत है······अगस्त १९१७ की घोषणा में ब्रिटिश-नीति का ध्येय यह बताया गया था कि स्वशासन-संस्थाओं का क्रमशः विकास किया जाय जिससे ब्रिटिश-साम्राज्य का अंग रहकर भारत धीरे-धीरे दायित्वपूर्ण शासन प्राप्त कर सके। परन्तु १९१९ के सुधार-कानून का अर्थ लगाने में विलायत और भारत दोनों ही देशों में ब्रिटिश सरकार की इच्छाओं पर सन्देह किया गया है। इसलिए ब्रिटिश-सरकार ने मुझे यह स्पष्ट घोषित कर देने का अधिकार दिया है कि १९१७ की घोषणा में यह अभिप्राय असंदिग्ध रूप से है कि भारत को अन्त में उपनिवेश का दर्जा मिले।"

यह घोषणा तो हुई ३१ अक्तूबर को और २४ घण्टे के भीतर पण्डित मालवीय, सर तेज-बहादुर सप्रू और डॉ० बेसेण्ट आदि बड़े-बड़े लोग दिल्ली आ पहुंचे। कांग्रेस की कार्य-समिति तो वहां थी ही, गम्भीर विचार के पश्चात् इस सम्मिलित सभा ने कुछ निर्णय किये। इन्हीं निर्णयों के प्रकाश में एक वक्तव्य तैयार किया गया, जिसमें ब्रिटिश सरकार की घोषणा की सचाई की और भारतीय लोक-मत को सन्तुष्ट करने की सरकार की इच्छा की प्रशंसा की गई।

इस वक्तव्य में कहा गया कि "हमें आशा है, भारतीय आवश्यकताओं के अनुकूल औपनि-वेशिक विधान तैयार करने के सरकार के प्रयत्न में हम सहयोग दे सकेंगे, परन्तु हमारी राय में देश की मुख्य-मुख्य राजनैतिक संस्थाओं में विश्वास उत्पन्न करने और उनका सहयोग प्राप्त करने के हेतु कुछ कार्यों का किया जाना और कुछ बातों का साफ होना जरूरी है।

प्रस्तावित परिषद् की सफलता के लिए हम अत्यन्त जरूरी समझते हैं कि—

(क) वातावरण को अधिक शान्त करने के लिए समझौते की नीति अख्तियार की जाय।

(ख) राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायं।

(ग) प्रगतिशील राजनैतिक संस्थाओं को काफी प्रतिनिधित्व दिया जाय और सबसे बड़ी संस्था होने के कारण कांग्रेस के प्रतिनिधि सबसे अधिक लिये जायं।

(घ) औपनिवेशिक दर्जे के सम्बन्ध में वाइसराय की घोषणा में सरकार की ओर से जो कुछ कहा गया है उसके अर्थ क्या हैं, इस विषय में लोगों ने सन्देह प्रकट किया है। किन्तु हम समझते हैं कि प्रस्तावित परिषद् औपनिवेशिक स्वराज्य की स्थापना का समय निश्चित करने को नहीं बुलाई जा रही है, बल्कि ऐसे स्वराज्य का विधान तैयार करने को आमंत्रित की जायगी। हमें

आशा है कि वाइसराय के महत्वपूर्ण वक्तव्य का यह भावार्थ और फलितार्थ लगाने में हम भूल नहीं कर रहे हैं। जब तक नये विधान पर अमल शुरू न हो तब तक हमारे खयाल से यह आवश्यक है कि देश के वर्तमान शासन में उदार भावनाओं का संचार होना चाहिए, प्रबन्ध-विभाग एवं कौंसिलों का प्रस्तावित परिषद् के उद्देश्यों के साथ मेल बिठाना चाहिए और वैध उपायों और प्रणालियों का अधिक आदर होना चाहिए। हमारी सम्मति में जनता को यह अनुभव कराना आवश्यक है कि आज ही से नवीन युग आरम्भ हो गया है और नया विधान केवल इस भावना पर मुहर लगावेगा।

"अन्त में परिषद् की सफलता के लिए हम इसे एक आवश्यक बात समझते हैं कि परिषद् जल्दी-से-जल्दी बुलाई जाय।"

निस्सन्देह इस नये रवैये का कारण मजदूर-सरकार का अधिक उदार दृष्टि-कोण था। इस बीच में अंग्रेज मित्र तार-पर-तार भेजकर गांधीजी पर जोर डाल रहे थे कि वे भारत की सहायता करने के प्रयत्न में मजदूर-सरकार का साथ दें।

गांधीजी का उत्तर

उत्तर में गांधीजी ने कहा, "मैं तो सहयोग देने को मर रहा हूँ। इसी हेतु से पहला मौका आते ही मैंने हाथ आगे बढ़ा दिया है। परन्तु जैसे मैं कलकत्ता-कांग्रेस के प्रस्ताव के प्रत्येक शब्द पर कायम हूं, वैसे नेताओं के इस सम्मिलित वक्तव्य के हरुफ-हरुफ पर भी अटल हूं। इन दोनों में कोई विरोध नहीं है। किसी भी दस्तावेज के शब्दों में क्या धरा है, यदि व्यवहार में उसकी भावना की रक्षा हो जाय। यदि मुझे व्यवहार में सच्चा औपनिवेशिक स्वराज्य मिल जाय तो उसके विधान के लिए मैं ठहरा भी रह सकता हूं। अर्थात् आवश्यकता इस बात की है कि हृदय-परिवर्तन सच्चा हो, अंग्रेज लोग भारतवर्ष को एक स्वतंत्र और स्वाभिमानी राष्ट्र के रूप में वस्तुतः देखना चाहें और भारत में अधिकारी मण्डल की भावना सेवापूर्ण हो जाय। इसका अर्थ है संगीनों के बजाय जनता के सद्भाव की स्थापना। क्या अंग्रेज स्त्री-पुरुष अपने जान-माल की रक्षा के लिए अपने किलों और तोप-बन्दूकों के स्थान पर प्रजा के सद्भाव पर विश्वास रखने को तैयार हैं? यदि उनकी यह तैयारी अभी नहीं है, तो मुझे कोई औपनिवेशिक स्वराज्य संतुष्ट नहीं कर सकता। औपनिवेशिक स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि यदि मैं चाहूं तो आज ही ब्रिटिश-सम्बन्ध विच्छेद कर सकूं। ब्रिटेन और भारत के पारस्परिक सम्बन्धों का निर्णय करने में जबरदस्ती-जैसी कोई बात नहीं चल सकती।

"यदि मैं साम्राज्य के भीतर रहना पसन्द करता हूं तो इसलिए नहीं कि शोषण या जिसे ब्रिटिश साम्राज्यवादी ध्येय कहते हैं उसकी वृद्धि हो, बल्कि इसलिए कि संसार में शान्ति और सद्भावना फैलाने की शक्ति में हिस्सा मिले।

"संभव है, मैंने जो फलितार्थ बताये हैं वे मजदूर सरकार के ध्यान में न हों। मैंने अपनी समझ से तो इन फलितार्थों को प्रकट करने में नेताओं के वक्तव्य का खींचतान करके अर्थ नहीं लगाया है, परन्तु इस वक्तव्य से ये फलितार्थ निकलते हों, या न निकलते हों, मुझे तो अपने अंग्रेज और भारतीय मित्रों को अपनी स्थिति निश्चित रूप से साफ-साफ समझा देनी है।

"मुझे खूब मालूम है कि जिस स्थिति का मैंने यहां वर्णन किया है उसपर डटे रहने की शक्ति अभी भारतवर्ष में पैदा नहीं हुई है। इसलिए यदि हमें अभी वह स्थिति प्राप्त हो जाय तो यह अधिकतर ब्रिटिश-राष्ट्र की कृपा का ही फल होगा। यदि इस समय वे लोग ऐसी कृपा करें तो कोई आश्चर्य की बात नहीं होगी। इससे भारत के प्रति किये गये पिछले अन्यायों की थोड़ी क्षति-पूर्ति तो हो ही जायगी।"

वाइसराय की घोषणा में भारतवासियों को बहुत छोटी-सी चीज देने का वचन दिया गया था। फिर भी पार्लमेण्ट में इसीपर तूफान खड़ा हो गया। कामन-सभा को सफाई पेश करनी पड़ी। बाल्डविन साहब को वेन साहब और लॉर्ड अर्विन की सूचनायें स्वीकार करने की जिम्मेदारी अपने सिर लेनी पड़ी। सर जॉन साइमन को अपनी और अपने कमीशन की जान बचाना मुश्किल हो गया। लायड जार्ज साहब ने कैप्टिन वेन साहब से पूछा, भारतीय नेताओं के सम्मिलित वक्तव्य में हमारी नीति का जो अर्थ लगाया गया है, "क्या आपको वह स्वीकार है?" लान्सबरी साहब ने लोगों से वाइसराय की घोषणा का साधारण अर्थ लगाने का अनुरोध किया। अलबत्ता भारतवासी इसे बाजार-भाव से ही आंकना चाहते थे और वस्तुतः तो इसका मूल्य उन्हें और भी कम मालूम हुआ। हां, नरमदल वाले भारतीय इस परिषद् के लिए बहुत उत्सुक दिखाई दिये। उन्होंने इसका नाम भी गोलमेज-परिषद् रक्खा, हालांकि लॉर्ड अर्विन इसे लन्दन की परिषद् के नाम से ही पुकारते रहे। कैप्टिन वेन साहब हिन्दुस्तानियों से तो यह कहते थे कि हमने अपनी नीति बदल दी है और पार्लमेण्ट के सदस्यों को यह दिलासा देते थे कि नीति नहीं बदली। उनका कहना था कि नीति तो १९१७ के घोषणा-पत्र की भूमिका में दी हुई है, भूमिका १९१९ के सुधार-कानून में दर्ज है और सुधार-कानून इंग्लैण्ड के कानूनों में शामिल कर लिया गया है। इस प्रकार के उद्‌गारों से युवक-कांग्रेसियों में निराशा फैली।

सर्वदल-सम्मेलन

१६ नवम्बर को प्रयाग में सर्वदल-सम्मेलन का अधिवेशन फिर बुलाया गया और साथ ही कार्य-समिति की बैठक हुई। ऐक्य भाव बनाये रखने के सब प्रयत्न किये गये। कार्य-समिति ने अपना कोई निश्चित निर्णय दिया भी नहीं था कि पंडित जवाहरलाल और सुभाष बाबू ने समिति की सदस्यता को पहले ही छोड़ दिया। पंडित मोतीलाल नेहरू अपने नौजवान साथियों से भी बढ़कर थे। उन्हें कामन-सभा की छल-कपट-पूर्ण कार्रवाई और कैप्टिन वेन के दुमुंहेपन पर बड़ा क्रोध आ रहा था। उन्हें ऐसा लगा कि ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल जो चित्र खींच रहा था वह ऐसा था कि भारतवासियों को उसमें स्वराज्य दीखे और विलायतवालों को ब्रिटिश-राज्य।

नेताओं से भेंट

इधर 'पायोनियर' के भूतपूर्व सम्पादक विलसन साहब समाचार-पत्रों में चिट्ठी-पर-चिट्ठियां छपवा रहे थे और लॉर्ड अर्विन पर जोर डाल रहे थे कि लाहौर-कांग्रेस से पहले सरकार की ओर से कोई ऐसी बात होनी चाहिए जिससे भारत के राजनैतिक नेताओं को खाली हाथ लाहौर न पहुंचना पड़े। लॉर्ड अर्विन, डॉ० सप्रू के मार्फत, १५ तारीख को मिलने का निमन्त्रण पण्डित मोतीलाल नेहरू को भेज चुके थे। परन्तु १५ ता० तक पण्डितजी लखनऊ में अपने वकालत के काम से मुक्त न हो सके। विलसन साहब ने अखबारों में लिखा कि वाइसराय गांधीजी, पण्डित मोतीलालजी और मालवीयजी से शीघ्र ही मुलाकात करनेवाले हैं। इधर वाइसराय साहब १५ ता० को दक्षिण-भारत के लिए रवाना हो रहे थे, इसलिए उन्होंने डॉ० सप्रू को लिखा कि अगर पहले हैदराबाद (दक्षिण) में न मिल सका तो २३ दिसम्बर को दिल्ली में गांधीजी और नेहरूजी से मुलाकात होगी। कुछ भी हो, बड़े दिन से पहले जरूर मिल लूँगा। लॉर्ड अर्विन समय पर, अर्थात् २३ दिसम्बर को, दिल्ली लौट आये। उसी दिन नई दिल्ली से १ मील दूर पुराने किले के स्थान पर उनकी गाड़ी के नीचे बम फटा। लार्ड अर्विन तो बाल-बाल बच गये, परन्तु उनके खाने की गाड़ी को नुकसान पहुंचा और उनका एक नौकर घायल हुआ। उसी दिन गांधीजी और मोतीलालजी,

कांग्रेस की ओर से वाइसराय से नये भवन में मिलनेवाले थे। दूसरे विचारवालों की बात कहनेवालों में श्री जिन्ना, सप्रू और विट्ठलभाई पटेल थे। आशा तो यह थी कि बात-चीत मित्रों की भांति दिल खोलकर होगी। पर हुआ यह कि एक बाजाब्ता शिष्ट-मण्डल का रूप बन गया। फिर भी लॉर्ड अर्विन ने हंसते-हंसते बात-चीत की। उनके दिल पर प्रातःकालीन दुर्घटना का कोई असर न था। जितने वे शांत थे उतने ही मेहमानों के प्रति सच्ची खातिरदारी से पेश आये। पौन घण्टे तक तो बम की घटना और उसके परिणामों पर ही चर्चा होती रही। फिर लार्ड अर्विन ने प्रस्तुत विषय को हाथ में लिया। उन्हें राजनैतिक कैदियों से अच्छी शुरुआत करनी थी और राजनीतिक कैदियों का मामला था भी ऐसा जिसमें सद्भावना का परिचय आसानी से दिया जा सकता था। परन्तु गांधीजी तो वाइसराय से औपनिवेशिक स्वराज्य के मामले पर निपट लेना चाहते थे। वे यह आश्वासन चाहते थे कि गोलमेज-परिषद् की कार्रवाई पूर्ण औपनिवेशिक स्वराज्य को आधार मानकर होगी। वाइसराय साहब ने उत्तर दिया, "सरकार ने अपने विचार अपने वक्तव्य में स्पष्ट कर दिये हैं। इससे आगे मैं कोई वचन नहीं दे सकता। मेरी ऐसी स्थिति नहीं है कि औपनिवेशिक-स्वराज्य देने का वादा करके गोलमेज-परिषद् में आप लोगों को बुला सकूं।"

लाहौर में

हम लोगों को लाहौर जाते हुए रास्ते में ये समाचार मिले कि वाइसराय साहब की गाड़ी के नीचे बम फूटा और वाइसराय-भवन में भारत की आशायें चूर्ण हुईं। हमने सोचा, अब तो सबके लिए प्राणों की बाजी लगाकर अपने-अपने कर्तव्य पर आरूढ़ होने का समय आ पहुंचा है। इस प्रकार निकट-भविष्य में ही जी तोड़कर लड़ने का संकल्प आरम्भ हुआ। उत्तर-भारत के निर्दय हेमन्त में लाहौर का कांग्रेस अधिवेशन अन्तिम था। तम्बुओं में रहना प्रतिनिधियों के लिए बड़ा कष्टप्रद सिद्ध हुआ। कार्य-समिति में बैठे-बैठे हमें बार-बार पैर गरम करने पड़ते; किन्तु यदि बाहर इतनी असह्य सर्दी थी तो भीतर भावना और जोश की गर्मी भी कम न थी। सरकार से समझौता न होने पर रोष था और युद्ध के बाजे सुन-सुनकर लोगों की बाहें फड़क रही थीं। पंडित जवाहरलाल नेहरू जितने कम उम्र थे उतने ही बड़े राजनीतिज्ञ और लोकप्रिय नेता थे। उनका अभिभाषण क्या था, मानों उन्होंने अपने हृदय को उंडेलकर देशवासियों के सामने रख दिया था। उसमें भारत के अपमान पर क्रोध भरा था। उसमें उन्होंने भारत को स्वतन्त्र करने की अपनी योजना, अपने स्पष्ट साम्यवादी आदर्शों और सफल होने के अपने दृढ़-निश्चय को व्यक्त किया था।

औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए वेन साहब संसार को विश्वास दिला रहे थे कि व्यवहार में तो वह एक युग से मौजूद है। वर्सेलीज के संधिपत्र पर भारतवर्ष के हस्ताक्षर हैं, हिन्दुस्तानी हाई-कमिश्नर नियुक्त हो चुका है, राष्ट्रसंघ के भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल का नेता हिन्दुस्तानी रहता है, अन्तर्राष्ट्रीय नेवीगेशन कमीशन में भारत को अलग मताधिकार प्राप्त है, औपनिवेशक कानून-निर्माताओं की परिषद् में और पंचराष्ट्रीय जलसेना-परिषद् में भारत शामिल होता है, अंतर्राष्ट्रीय मजदूर परिषद् की शासन-समिति में भारत को स्थान मिला हुआ है। ये सब बातें व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रमाणस्वरूप बताई गईं। परन्तु लोग ऐसे खिलौने से धोखे में आनेवाले नहीं थे। उनके सामने जो वस्तुस्थिति थी उसीके अनुसार उन्हें वर्त्तमान समस्याओं को हल करना था।

पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने अभिभाषण में बताया कि वाइसराय साहब की घोषणा दीखने में समझौते का प्रस्ताव है। वाइसराय साहब का इरादा नेक और उनकी भाषा मेल मिलाप

की भाषा है। परन्तु हमारे सामने जो कठोर वस्तुस्थिति है उसमें इन मीठी-मीठी बातों से कोई अंतर नहीं पड़ता। हम अपनी ओर से कोई घोर राष्ट्रीय संग्राम आरम्भ करने की जल्दी नहीं कर रहे हैं। समझौते का द्वार अभी खुला है। परन्तु कैप्टिन वेजवुड बेन का व्यावहारिक औपनिवेशिक स्वराज्य हमारे लिए जाल-मात्र है। हम तो कलकत्ते के प्रस्ताव पर कायम हैं। हमारे सामने एक ही ध्येय है और वह है पूर्ण स्वाधीनता का। अध्यक्ष-पद से जवाहरलालजी ने ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का वर्णन किया और साफ कहा, "मैं तो साम्यवादी और प्रजातन्त्रवादी हूं। मैं बादशाहों और राजाओं को नहीं मानता।" इसके पश्चात् उन्होंने अल्प-संख्यक जातियों, देशी-राज्यों और किसानों तथा मजदूरों के तीन बड़े प्रश्नों को लिया। इसके बाद उन्होंने अहिंसा के प्रश्न का विवेचन किया—"हिंसा के परिणाम बहुधा विपरीत और भ्रष्ट करनेवाले होते हैं। खासकर हमारे देश में तो इससे सत्यानाश हो सकता है। यह बिलकुल सच है कि आज जगत में संगठित हिंसा का ही बोलबाला है। सम्भव है हमें भी इससे लाभ हो, परन्तु हमारे पास तो संगठित हिंसा के लिए न सामग्री है न तैयारी; और व्यक्तिगत अथवा स्फुट हिंसा तो निराशा को कबूल करना है। मैं समझता हूं हममें से अधिक लोग नैतिक दृष्टि से नहीं, प्रत्युत व्यावहारिक दृष्टि से विचार करते हैं, और यदि हमने हिंसा के मार्ग का परित्याग किया है तो इसलिए किया है कि हमें इससे कोई सार निकलता नहीं दिखाई देता। स्वतंत्रता के किसी भी आंदोलन में जनता का शामिल होना जरूरी है और जनता के आंदोलन तो शांत ही हो सकते हैं। हां, संगठित विद्रोह की बात अलग है।" व्यावहारिक अहिंसा को इस उम्दा तरीके पर समझाने के बाद सभापति महोदय कौंसिलों के बहिष्कार, राष्ट्र-ऋण और कांग्रेस के संगठन को ठीक-ठीक और कारगर बताकर उसे मजबूत और सुव्यवस्थित संस्था में परिवर्तित करने की आवश्यकता पर बोले। अन्त में उन्होंने इन शब्दों में एक महान् प्रयत्न कर देखने की अपील की—"यह कोई नहीं कह सकता कि सफलता कब और कितनी मिलेगी। सफलता हमारे काबू की चीज नहीं। परन्तु विजय का सेहरा प्रायः उन्हीं के सिर बंधता है जो साहस करके कार्य-क्षेत्र में बढ़ते हैं। जो सदा परिणाम से भयभीत रहते हैं, ऐसे कायरों के भाग्य में सफलता क्वचित् ही होती है।"

लाहौर-कांग्रेस के सम्मुख प्रश्न यह था कि स्वाधीनता-सम्बन्धी १९२७ का मदरास-कांग्रेस का प्रस्ताव विधान में ध्येय के रूप में शामिल किया जाय अथवा केवल स्पष्टीकरण के रूप में। इस विषय पर सभापति के भाषण में कुछ बातें मजेदार थीं—"हमारे लिए स्वाधीनता का अर्थ है ब्रिटिश-प्रभुत्व और ब्रिटिश-साम्राज्य से पूर्णतः मुक्त होना। मुझे जरा भी सन्देह नहीं कि इस प्रकार मुक्त होने के बाद भारतवर्ष विश्व-संघ बनाने के प्रयत्न का स्वागत करेगा और यदि उसे बराबरी का दर्जा मिलेगा तो वह किसी बड़े समूह में शामिल होने के लिए अपनी स्वाधीनता का कुछ हिस्सा छोड़ देने को भी राजी हो जायगा।" आगे चल कर उन्होंने कहा—"जब तक साम्राज्यवाद और उसके साथ लगी हुई सारी खुराफात का अन्त नहीं हो जाता तब तक ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह में भारतवर्ष को बराबरी का दर्जा मिल ही नहीं सकता"। उनके भाषण के कुछ अंश यहां और दिये जाते हैं, जिनसे वस्तुस्थिति समझने में सहायता मिलेगी—

"नाम कुछ भी रखिए, असली चीज तो है सत्ता का हाथ आना। मैं नहीं समझता कि भारतवर्ष को मिलने वाला किसी भी तरह का औपनिवेशिक स्वराज्य हमें ऐसी सत्ता देगा। इस सत्ता की कसौटी यह है कि विदेशी सेना और आर्थिक नियन्त्रण बिलकुल हटा लिये जायं। इसलिए हमें इन्हीं दोनों पर जोर देना चाहिए, फिर सब कुछ अपने-आप हो जायगा।"

इन विचारों से भारत के नेता गांधीजी और राष्ट्रपति जवाहरलाल नेहरू दोनों सहमत थे। इस कारण लाहौर-कांग्रेस का कार्य-सञ्चालन करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। श्री यतीन्द्रदास और श्री फुङ्गी विजय के महान् आत्मोत्सर्ग की प्रशंसा की गई और पंडित गोकर्णनाथ मिश्र, प्रोफेसर पराञ्जपे, श्री भक्तवत्सल नायडू, श्री रोहिणीकान्त हाथीवरुआ, श्री लाहिड़ी और श्री व्योमकेश चक्रवर्ती के देहावसान पर शोक प्रदर्शित किया गया। इसके बाद हाल की बम-दुर्घटना पर यह प्रस्ताव पास हुआ—

"यह कांग्रेस वाइसराय साहब की गाड़ी पर किये गये बम-प्रहार पर खेद प्रकट करती है और अपने इस विश्वास को दोहराती है कि इस प्रकार का कार्य न केवल कांग्रेस के उद्देश्य के विरुद्ध है बल्कि राष्ट्रीय-हित को भी हानि पहुंचाता है। कांग्रेस वाइसराय, लेडी अर्विन, उनके गरीब नौकरों और साथ के अन्य लोगों को सौभाग्यवश बाल-बाल बच जाने पर बधाई देती है।"

पूर्ण-स्वाधीनता

इस कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव पूर्ण-स्वाधीनता के सम्बन्ध में था—

'औपनिवेशिक स्वराज्य के सम्बन्ध में ३१ अक्तूबर को वाइसराय साहब ने जो घोषणा की थी और जिसपर कांग्रेस एवं अन्य दलों के नेताओं ने सम्मिलित वक्तव्य प्रकाशित किया था उस सम्बन्ध में की गई कार्य-समिति की कार्रवाई का यह कांग्रेस समर्थन करती है और स्वराज्यके राष्ट्रीय आंदोलन को निपटाने के लिए वाइसराय महोदय की कोशिशों की कद्र करती है किन्तु उसके बाद जो घटनायें हुई हैं और वाइसराय साहब के साथ महात्मा गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू और दूसरे नेताओं की मुलाकात का जो नतीजा निकला है उसपर विचार करने पर कांग्रेस की यह राय है कि सम्प्रति प्रस्तावित गोलमेज परिषद् में कांग्रेस के शामिल होने से कोई लाभ नहीं। इसलिए गतवर्ष कलकत्ते के अधिवेशन में किये हुए अपने निश्चय के अनुसार यह कांग्रेस घोषणा करती है कि कांग्रेस-विधान की पहली कलम में 'स्वराज्य' शब्द का अर्थ पूर्ण-स्वाधीनता होगा। कांग्रेस यह भी घोषणा करती है कि नेहरू-कमिटी की रिपोर्ट में वर्णित सारी योजना को खत्म समझा जाय। कांग्रेस आशा करती है कि अब समस्त कांग्रेसवादी अपना सारा ध्यान भारतवर्ष की पूर्ण स्वाधीनता को प्राप्त करने में ही लगायेंगे। चूंकि स्वाधीनता का आन्दोलन संगठित करना और कांग्रेस की नीति को उसके नये ध्येय के अधिक-से अधिक अनुकूल बनाना आवश्यक है, इसलिए यह कांग्रेस निश्चय करती है कि कांग्रेसवादी और राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेनेवाले दूसरे लोग भावी निर्वाचनों में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष कोई भाग न लें और कौंसिलों और कमिटियों के मौजूदा कांग्रेसी मेम्बरों को इस्तीफा देने की आज्ञा देती है। यह कांग्रेस अपने रचनात्मक कार्यक्रम को उत्साह-पूर्वक पूरा करने के लिए राष्ट्र से अनुरोध करती है और महा समिति को अधिकार देती है कि वह जब और जहां चाहे, आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ सविनय-अवज्ञा और करबंदी तक का कार्य-क्रम आरम्भ कर दे।"

दूसरी बात इस कांग्रेस ने यह की कि वार्षिक अधिवेशन का समय बदल दिया : "चूंकि कांग्रेस को गरीब जनता की प्रतिनिधि बनना है और दिसम्बर के अन्त में अधिवेशन होने से गरीबों को कपड़े के लिए खर्च करना और दूसरा भी कष्ट उठाना पड़ता है, इसलिए यह निश्चय किया जाता है कि अधिवेशन की तारीखें बदलकर फरवरी या मार्च में ऐसे समय रक्खी जायं जो कार्य-समिति सम्बन्धित प्रान्तीय समिति की सलाह से मुकर्रर करे।

कांग्रेस ने इन प्रस्तावों के परिणाम-स्वरूप विधान में आवश्यक परिवर्तन करने का अधिकार कार्य-समिति को दे दिया।

सदा की भांति पूर्व-अफ्रीका पर भी प्रस्ताव हुआ। श्रीमती सरोजिनी नायडू बड़ा कष्ट उठाकर वहां गई थीं और वहां के भारतीयों ने अपनी समस्याओं पर राष्ट्रीय भावना को कायम रक्खा था। कांग्रेस ने दोनों को वधाई दी और कहा कि राष्ट्र किसी ऐसी योजना से सन्तुष्ट नहीं हो सकता जिसमें साम्प्रदायिक निर्वाचन स्वीकार किया गया हो, मताधिकार में भेद-भाव रक्खा गया हो और सम्पत्ति प्राप्त करने में भारतीयों पर वन्धन लगाये गये हों।

देशी-राज्यों का विषय महत्वपूर्ण था ही। कांग्रेस ने सोचा अब समय आगया है कि भारतीय-नरेश अपनी प्रजा को दायित्वपूर्ण शासन प्रदान करें और उनके आवागमन, भाषण, सम्मेलन आदि अधिकारों और व्यक्ति एवं सम्पत्तिकी रक्षा के नागरिक हकों के वारे में घोषणायें करें और कानून बनावें।

नेहरू-रिपोर्ट के रद हो जाने से साम्प्रदायिक समस्या पर फिर से विचार करना पड़ा। इस सम्बन्ध में अपनी नीति घोषित करना जरूरी मालूम हुआ। कांग्रेस ने अपना यह विश्वास व्यक्त किया कि स्वाधीन-भारत में तो साम्प्रदायिक प्रश्नों का निपटारा सर्वथा राष्ट्रीय ढंग से ही होगा। परन्तु चूंकि सिक्खों ने विशेषतः और मुसलमानों और दूसरी अल्प-संख्यक जातियों ने साधारणतः नेहरू-रिपोर्ट के प्रस्तावों पर असन्तोष प्रकट किया है, इसलिए कांग्रेस इन जातियों को विश्वास दिलाती है कि किसी भी भावी-विधान में कांग्रेस ऐसा कोई साम्प्रदायिक निर्णय स्वीकार नहीं करेगी जिससे सब पक्षों को पूर्ण सन्तोष न हो।" पार्लमेण्ट के भूतपूर्व सदस्य श्री शापुरजी सकलातवाला और इंग्लैण्ड एवं अन्य विदेशों में रहनेवाले भारतीयों ने स्वदेश को लौटने के लिए सरकार से परवाने मांगे थे, वे नहीं दिये गये। इसपर भी कांग्रेस ने निन्दा का प्रस्ताव पास किया।

१९२२ की गया-कांग्रेस के इतने अर्से बाद भारत पर लादे गये आर्थिक भार और उसे अस्वीकार करने के प्रश्न पर भी विचार किया गया—"इस कांग्रेस की राय में विदेशी शासन ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से भारतवर्ष पर जो आर्थिक भार लाद दिया है वह ऐसा नहीं है जिसे स्वतंत्र-भारत बरदाश्त कर सके या उससे बरदाश्त करने की आशा की जाय, अतः यह कांग्रेस १९२२ वाले गया-कांग्रेस के प्रस्ताव का समर्थन करती है और सब सम्बन्धित लोगों को सूचना देती है कि स्वाधीन-भारत किसी भी आर्थिक जिम्मेदारी या रिआयत को, फिर भले ही वह किसी भी प्रकार दी गई हो, उसी हालत में स्वीकार करेगा जब कि स्वतंत्र न्यायालय द्वारा उसका औचित्य सिद्ध हो जायगा, अन्यथा वह रद कर दी जायगी। बम-दुर्घटना पर जो प्रस्ताव पास हुआ वह आसानी से नहीं हुआ। प्रतिनिधियों के एक खास समूह ने उसका प्रबल विरोध किया और बहुत ही थोड़े बहुमत से प्रस्ताव पास हो सका। मुख्य प्रस्ताव के सम्बन्ध में भी इस बात पर आपत्ति की गई कि स्वराज्य का मसला हल करने में वाइसराय की कोशिश की तारीफ की जाय। जब कांग्रेस में यह कहा गया कि सम्प्रति गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के शामिल होने से कोई लाभ नहीं है, तो 'सम्प्रति' शब्द पर भी घोर आपत्ति की गई। लोगों को भय था कि कहीं रावण के सिर की तरह यह परिषद् बदली हुई हालत के बहाने बार-बार जिन्दा न हो जाय। परन्तु गांधीजी तो बार-बार स्पष्ट कर चुके थे कि हमारा सारा असहयोग और सारी लड़ाई सहयोग की खातिर है। गांधीजी विदेशी वस्त्र-बहिष्कार-समिति, मदिरा-निषेध-समिति, और अस्पृश्यता-निवारण-समिति को कुछ-कुछ स्वतंत्र बनाकर कांग्रेस का काम हलका करने की बात भी न मनवा सके। यही हाल उनके प्रतिनिधियों की संख्या कम करवाने और कांग्रेस-संगठन को अधिक शासन करवाने के प्रस्तावों का भी हुआ।

कार्य-विभाग

यह कह देना जरूरी है कि ये भिन्न-भिन्न समितियां कलकत्ता-कांग्रेस के बाद फरवरी १९२९ से बनी थीं। इनका काम विशेषज्ञों को सौंपा गया। स्वयंसेवकों का संगठन जवाहरलालजी और सुभाष बाबू के हवाले किया गया। कांग्रेस का कार्य पहली ही बार विभागों में बांटा और कार्य-समिति के अलग-अलग सदस्यों के सुपुर्द किया गया। किन्तु गांधीजी तो यह चाहते थे चर्खा-संघ की तरह ये कमिटियां भी स्वतंत्र रूप से काम करने लगें। परन्तु लोगों ने उनके प्रस्तावों को सन्देह की दृष्टि से देखा। कारण, नेता अपने अनुयायियों से सदा आगे चलता है और कल उसने जो बात कही वह आज मानी जाती है। हुआ भी यही। आज अर्थात् सन् १९३५ में अस्पृश्यता-निवारण का काम एक ऐसी स्वतंत्र संस्था चला रही है जो राजनीति के झंझावात से बरी है और राष्ट्र के राजनैतिक उतार-चढ़ाव का उसपर कोई असर नहीं पड़ता। कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या भी इस समय बम्बई से एक-तिहाई हो गई है। जो बात गांधी जी लाहौर में नहीं करवा सके थे वही कुछ तो उनके कारावास के समय हो गई और कुछ उनके छूटने के बाद हो गई।

कलकत्ते में राष्ट्रीय मांग को स्वीकार करने के लिए सरकार को बारह मास का समय दिया गया था। तदनुसार ३१ दिसम्बर को ठीक आधी रात के समय प्रस्ताव के इस मतभेद-पूर्ण अंश पर रायों की गिनती खतम हुई। उस समय सारी कांग्रेस ने मिलकर पूर्ण स्वाधीनता का झंडा फहराया।

सब बातों को देखते हुए लाहौर के अधिवेशन में परिश्रम भी बहुत करना पड़ा और स्थिति भी नाजुक थी। गांधीजी के मुकाबले में जो प्रस्ताव रक्खे गये वे या तो काल्पनिक थे या ध्वंसात्मक। हर बार जो संकुचितता, उग्रता अथवा असहिष्णुता दिखाई दी वह परेशान करनेवाली थी। बंगाल के गृह-युद्ध के कारण चुनाव-सम्बन्धी झगड़े मुद्दत से चले आ रहे थे। लाहौर के कांग्रेस-सप्ताह में वे और भी उग्र-रूप में प्रकट हुए और सुभाष बाबू और पण्डित मोतीलाल जी में कहा-सुनी भी हो गई। श्री सेनगुप्त और सुभाष बाबू में प्रान्तीय नेतृत्व के लिए स्पर्धा थी ही। कौंसिल-प्रवेश के मतभेद-पूर्ण मसले पर उनका आपसी वैमनस्य और भी तीव्र रूप में सामने आया। गांधीजी ने कांग्रेस के ध्येय में 'शान्त एवं उचित उपायों' के स्थान पर 'सत्य एवं अहिंसा-पूर्ण उपायों' को रखवाने की खूब कोशिश की, पर उनकी बात न चली।

यह सवाल अभी दरपेश ही है। बम्बई-कांग्रेस ने अक्तूबर १९३४ में इसे स्थगित रख दिया था। कुछ भी हो, लाहौर में गांधीजी और जवाहरलालजी को सफलता मिली, यह निर्विवाद है। हां, अधिवेशन के बाद तुरन्त ही श्री श्रीनिवास आयंगर और सुभाष बाबू ने कांग्रेस डेमाक्रेटिक पार्टी के नाम से एक नये दल की स्थापना घोषित कर दी। इससे सरकार ने उस समय यह धारणा बनाई कि कांग्रेस के गरम दल को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न सफल नहीं हुआ है और कांग्रेस में फूट पड़ने ही वाली है। इन मित्रों की इच्छा थी कि कार्य-समिति का संगठन चुनाव-द्वारा हो। जब इनकी नहीं चली तो ये कुछ दक्षिण-भारतीय मित्रों के साथ उठकर कांग्रेस के बाहर चल दिये। गांधीजी अपनी परिपाटी के अनुसार कार्य-समिति के गत वर्ष के सदस्यों से पूछ लिया करते थे कि कौन-कौन स्वेच्छा से अलग होना चाहते हैं? लाहौर में कार्य-समिति दो स्वतन्त्र सूचियों के आधार पर बनाई गई थी। एक सूची गांधीजी की सलाह से मोतीलालजी ने तैयार की थी और दूसरी सेठ जमनालाल बजाज ने। दोनों सूचियों में केवल एक नाम का अन्तर था। यह अन्तर ठीक कर लिया गया और कार्य-समिति बन गई। परन्तु इन मित्रों को तो निर्वाचन चाहिए था। जब इनकी इच्छा पूरी

न हुई तो उठकर चले गये। दस मिनट के भीतर यह खबर सर्वत्र फैल गई और एक नया दल खड़ा हो गया। श्री सुभाषचन्द्र वसु ने श्रीमती वासन्तीदेवी को यह तार भेजा—"परिस्थिति एवं बहुमत के अत्याचार से तंग आकर हमने गया की भांति कांग्रेस डैमोक्रेटिक पार्टी के नाम से एक अलग दल बना लिया है। आशीर्वाद दीजिए कि देशबन्धु की आत्मा हमारा पथ-प्रदर्शन करे।"

इधर दल के मन्त्रियों ने अपनी जाब्ते की घोषणा में यह कहा, "नया दल भारत की पूर्ण स्वाधीनता के अपने ध्येय को हानि पहुंचाये बिना ध्येय की पूर्ति के लिए देश के अन्य दलों से भी सहयोग करने का भरसक प्रयत्न करेगा।"

हमारी यात्रा कठिन, नाव कमजोर, समुद्र तूफानी, आकाश मेघाच्छादित, चारों ओर कुहरा और केवट नौसिखिये थे। केवल एक बात हमारे बचाव की थी, और वह यह कि हमारा पथ-प्रदर्शक अपना मार्ग जानता था। वह मंजा हुआ कप्तान था। वह अपने नक्शे और कम्पास से सुसज्जित था। यदि यात्री उसकी आज्ञा पालते तो सफलता हाथ में रक्खी थी। अन्यथा राष्ट्र की फौजी अदालत में हम पर अभियोग लगने ही वाला था।

२

प्राणों की बाज़ी—१९३०

प्रतीक्षा का वर्ष समाप्त होकर कार्य का वर्ष आरम्भ हुआ। परन्तु तीन सप्ताह भी नहीं बीतने पाये थे कि महाराष्ट्र में विद्रोह खड़ा हो गया। हम देख चुके हैं कि असहयोग के आरम्भ-काल में भी महाराष्ट्र और बंगाल ने मिलकर उस नवीन आन्दोलन का विरोध किया था। अब महाराष्ट्र-प्रान्तीय-कमिटी ने कार्य-समिति से कौंसिल-बहिष्कार का आग्रह छोड़ देने का अनुरोध किया और कहा कि देश को दिल्ली की शर्तों और स्वाधीनता के आधार पर गोलमेज-परिषद् में शामिल होना चाहिए। वैसे तो ये प्रश्न सदा के लिए तय हो चुके थे। जब कैदियों को छोड़ कर सरकार ने हृदय-परिवर्तन का परिचय नहीं दिया और औपनिवेशिक स्वराज्य की भावना का तुरन्त अमल में लाना शुरू नहीं किया तो दिल्ली की शर्तों में धरा ही क्या था?

नई कार्य-समिति की बैठक २ जनवरी १९३० को हुई। पहला काम उसने किया कौंसिल-बहिष्कार के निश्चय पर अमल करवाने का। इसके लिए उसने मत-दाताओं से अनुरोध किया कि जो सदस्य कांग्रेस की अपील पर ध्यान न दें उन्हें मत-दाता मजबूर करें कि वे इस्तीफा दें और नये चुनाव में शामिल न हों। इसके परिणाम-स्वरूप असेम्बली के २७ सदस्यों ने इस्तीफे दे दिये। दूसरा निश्चय कार्य-समिति ने देश-भर में पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाने का किया और इसके लिए २६ जनवरी १९३० का दिन नियत हुआ। देश-भर नगर-नगर और गांव-गांव में एक घोषणा-पत्र तैयार करके जनता के सम्मुख पढ़कर सुनाना और उस पर हाथ उठा कर श्रोताओं की सम्मति लेना तय हुआ। उस दिन सुनाया जाने वाला घोषणा-पत्र यह था—

स्वाधीनता का घोषणा-पत्र

"हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतन्त्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल हम स्वयं भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त हों जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले। हम यह भी मानते हैं कि यदि कोई सरकार ये अधिकार छीन लेती है और प्रजा को सताती है तो प्रजा को उस सरकार के बदल देने या मिटा देने का भी अधिकार है। अंग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की स्वतन्त्रता का ही अपहरण नहीं किया है बल्कि उसका आधार भी गरीबों के रक्तशोषण पर है और उसने आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक दृष्टि से भारतवर्ष का नाश कर दिया है। अतः हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष को अंग्रेजों से सम्बन्ध-विच्छेद करके पूर्ण स्वराज्य या स्वाधीनता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

"भारत की आर्थिक बरबादी हो चुकी है। जनता की आमदनी को देखते हुए उससे बेहिसाब कर वसूल किया जाता है। हमारी औसत दैनिक आय सात पैसे है और हमसे जो भारी कर लिये

जाते हैं उनका २० फी सदी किसानों से लगान के रूप में और ३ फी सदी गरीबों से नमक-कर के रूप में वसूल किया जाता है।

"हाथ-कताई आदि ग्राम-उद्योग नष्ट कर दिये गये हैं। इससे साल में कम-से-कम चार महीने किसान लोग बेकार रहते हैं। हाथ की कारीगरी जाती रहने से उनकी बुद्धि भी मन्द हो गई। और जो उद्योग इस प्रकार नष्ट कर दिये गये हैं उनके स्थान पर दूसरे देशों की भांति कोई नये उद्योग जारी भी नहीं किये गये हैं।

"चुङ्गी और सिक्के की व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि उससे किसानों का भार और भी बढ़ गया। हमारे देश में बाहर का माल अधिकतर अंग्रेजी कारखानों से आता है चुंगी के महसूल में अंग्रेजी माल के साथ साफ तौर पर पक्षपात होता है। इसकी आय का उपयोग गरीबों का बोझा हलका करने में नहीं किया जाता बल्कि एक अत्यन्त अपव्ययी शासन को कायम रखने में किया जाता है। विनिमय की दर भी ऐसे स्वेच्छाचारी ढंग से निश्चित की गई है कि जिससे देश का करोड़ों रुपया बाहर चला जाता है।

"राजनैतिक दृष्टि से भारत का दर्जा जितना अंग्रेजों के जमाने में घटा है उतना पहले कभी नहीं घटा था। किसी भी सुधार-योजना से जनता के हाथ में वास्तविक राजनैतिक सत्ता नहीं आई है। हमारे बड़े-से-बड़े आदमी को विदेशी सत्ता के सामने सिर झुकाना पड़ता है। अपनी राय आजादी से जाहिर करने और आजादी से मिलने-जुलने के हमारे हक छीन लिये गये हैं और हमारे बहुत-से देशवासी निर्वासित कर दिये गये हैं। हमारी शासन की सारी प्रतिभा मारी गई है और सर्व-साधारण को गांवों के छोटे-छोटे ओहदों और मुंशीगिरी से सन्तोष करना पड़ता है।

"संस्कृति के लिहाज से, शिक्षा-प्रणाली ने हमारी जड़ ही काट दी और हमें जो तालीम दी जाती है उससे हम अपनी गुलामी की जंजीरों को ही प्यार करने लगे हैं।

"आध्यात्मिक दृष्टि से, हमारे हथियार जबरदस्ती छीनकर हमें नामर्द बना दिया गया। विदेशी सेना हमारी छाती पर सदा मौजूद रहती है। उसने हमारी मुकाबले की भावना को बड़ी बुरी तरह से कुचल दिया है। उसने हमारे दिलों में यह बात बिठा दी है कि हम न अपना घर सम्हाल सकते हैं और न विदेशी आक्रमण से देश की रक्षा कर सकते हैं। इतना ही नहीं, चोर, डाकू और बदमाशों के हमलों से भी हम अपने बाल-बच्चों और जान-माल को नहीं बचा सकते। जिस शासन ने हमारे देश का इस प्रकार सर्वनाश किया है उसके अधीन रहना हमारी राय में मनुष्य और भगवान् दोनों के प्रति अपराध है। किन्तु हम यह भी मानते हैं कि हमें हिंसा के द्वारा स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी। इसलिए हम ब्रिटिश-सरकार से यथा-सम्भव स्वेच्छा-पूर्वक किसी भी प्रकार का सहयोग न करने की तैयारी करेंगे और सविनय-अवज्ञा एवं करबन्दी तक के साज सजावेंगे। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि हम राजी-राजी सहायता देना और उत्तेजना मिलने पर भी हिंसा किये बगैर कर देना बन्द कर सके तो इस अमानुषी-राज्य का नाश निश्चित है। अतः हम शपथ-पूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञायें देगी उनका हम पालन करते रहेंगे।"

गांधी जी की ११ शर्तें

स्वाधीनता-दिवस जिस ढंग से मनाया गया उससे प्रकट हुआ कि ऊपर-ऊपर दीखने वाली शिथिलता और निराशा की तह में असीम भावना, उत्साह और स्वार्थ-त्याग की तैयारी दबी पड़ी थी। स्वदेश-भक्ति और आत्म-बलिदान के अंगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की गुलामी की राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एवं उत्साह के लाल अंगारों पर

जमी हुई राख को फूंक मार कर हटा दिया जाय। स्वाधीनता-दिवस का समारोह खत्म ही हुआ था कि २५ जनवरी को असेम्बली में दिया गया वाइसराय का भाषण भी प्रकाशित हो गया। इसने भारत के आशावादी और विश्वास-शील राजनीतिज्ञों की रही-सही आशाओं पर पानी फेर दिया। लॉर्ड अर्विन ने कहा—

"यह सही है कि साम्राज्य के अन्य लोगों के साथ व्यवहार करने में भारत को स्वराज्य-भोगी उपनिवेशों के समान कई अधिकार मिल चुके हैं। परन्तु यह भी सही है कि भारतीय लोकमत इन अधिकारों को सम्प्रति बहुत महत्व देने के लिए तैयार नहीं है। इसका कारण यह है कि इन अधि-कारों का प्रयोग ब्रिटिश-सरकार के नियन्त्रण तथा स्वीकृति में है। ब्रिटिश-सरकार जो परिषद् बुलायेगी वह वस्तुतः वही चीज नहीं है जो भारतवासी चाहते हैं। उनकी मांग तो यह है कि उसके निर्णय बहु-मत से हों और वह जो विधान बना दे उसे पार्लमेण्ट ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर ले।......

"........परिषद् भिन्न-भिन्न मतों को स्पष्ट और एक करने और सरकार को रास्ता दिखाने के हेतु की जायगी, योजना बनाकर पार्लमेण्ट के सम्मुख रखने की जिम्मेदारी तो सरकार पर ही रहेगी।" इस भाषण के जवाब में गांधी जी ने 'यंग इण्डिया' में यों लिखा—

"वाइसराय ने वातावरण साफ कर दिया और हमें ठीक-ठीक बता दिया कि वे कहां और हम कहां हैं। इसके लिए प्रत्येक कांग्रेसवादी को उनका आभारी होना चाहिए।

"वाइसराय साहब को क्या परवाह कि जब तक भारत का प्रत्येक करोड़पति ७ पैसे रोज की मजदूरी पाने वाला भिखारी न बन जाय तब तक वे औपनिवेशिक स्वराज्य के मिलने की प्रतीक्षा ही करनी पड़ेगी। यदि कांग्रेस का बस चले तो आज वह प्रत्येक भूखे किसान को पेट-भर खाना ही नहीं दे बल्कि करोड़पति की हालत तक में पहुंचा दे। वैसे भी जब उसे अपनी दुर्दशा का पूरा ज्ञान हो जायगा और जब वह समझ जायगा कि उसकी यह निस्सहाय अवस्था किस्मत के कारण नहीं हुई बल्कि वर्तमान शासन के द्वारा हुई है तो वह संगठित होकर उठ बैठेगा और अधीर होकर एक ही सपाटे में वैध-अवैध का ही नहीं, हिंसा-अहिंसा का भेद भी भूल जायगा। कांग्रेस को आशा है कि ऐसी दशा में वह किसानों को सच्चा मार्ग बतायेगी।"

आगे चलकर गांधी जी ने लॉर्ड अर्विन के सामने नीचे लिखी शर्तें रक्खीं—

(१) सम्पूर्ण मदिरा-निषेध।

(२) विनिमय की दर घटा कर एक शिलिंग चार पेंस रख दी जाय।

(३) जमीन का लगान आधा कर दिया जाय और उस पर कौंसिलों का नियन्त्रण रहे।

(४) नमक-कर उठा दिया जाय।

(५) सैनिक-व्यय में आरम्भ में ही कम-से-कम ५० फी सदी कमी कर दी जाय।

(६) लगान की कमी को देखते हुए बड़ी-बड़ी नौकरियों के वेतन कम-से-कम आधे कर दिये जायं।

(७) विदेशी कपड़े के आयात पर निषेध-कर लगा दिया जाय।

(८) भारतीय समुद्र-तट केवल भारतीय जहाजों के लिए सुरक्षित रखने का प्रस्तावित कानून पास कर दिया जाय।

(९) हत्या या हत्या के प्रयत्न में साधारण ट्रिब्यूनलों-द्वारा सजा पाये हुओं के सिवा, समस्त राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायं, सारे राजनैतिक मुकदमे वापस ले लिये जायं, १२४ अ धारा और

१८१८ का तीसरा रेग्यूलेशन उठा दिया और सारे निर्वासित भारतीयों को देश में वापस आजाने दिया जाय।

(१०) खुफिया पुलिस उठा दी जाय, अथवा उस पर जनता का नियंत्रण कर दिया जाय।

(११) आत्म-रक्षार्थ हथियार रखने के परवाने दिये जायं, और उन पर जनता का नियन्त्रण रहे।

सुना है कि जब जनवरी १९३० में ही श्री बोमनजी ने प्रधानमंत्री रेम्जे मैकडानल्ड साहब से समझौते की बात-चीत करने का बीड़ा उठाया था तब भी गांधीजी ने उन्हें यही शर्तें बताई थीं।

गांधीजी ने आगे लिखा—"हमारी बड़ी-से-बड़ी आवश्यकताओं की यह कोई सम्पूर्ण सूची नहीं है, पर वाइसराय साहब इन सीधी-सादी किन्तु अत्यावश्यक भारतीय आवश्यकताओं की पूर्ति तो करके दिखावें। ऐसा होने पर सविनय-अवज्ञा की बात भी उनके कान पर नहीं पड़ेगी और जहां अपनी बात कहने और काम करने की पूरी आजादी होगी, ऐसी किसी भी परिषद् में कांग्रेस हृदय से भाग लेगी।" इसका यह अर्थ हुआ कि यदि ये मामूली और जरूरी मांगें पूरी न की गईं तो सविनय-अवज्ञा होगी।

गांधीजी ने यह भी कहा, "अन्य देशों के लिए स्वतंत्रता-प्राप्ति के दूसरे उपाय भले ही हों, परन्तु भारतवर्ष के लिए अहिंसात्मक असहयोग के सिवा दूसरा मार्ग नहीं है। परमात्मा करें, आप लोग स्वराज्य के इस मंत्र को सिद्ध और प्रकट करें और स्वाधीनता की जो लड़ाई निकट आ रही है उसके लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने का वह आपको बल और साहस प्रदान करे।"

असेम्बली से इस्तीफे

जब असेम्बली में वाइसराय साहब ने अपना भाषण दिया, तब वसन्तऋतु थी। उस समय वातावरण सरकार के अनुकूल नहीं था, क्योंकि वस्त्र-उद्योग-रक्षण कानून उसी समय बना था। इसके बहुत-से विरोधी समझते थे कि इसके द्वारा सरकार ने आर्थिक-परिषद् की भावना के विपरीत हिन्दुस्तान के माथे पर साम्राज्य के साथ रिआयत करने की नीति लाद दी है। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय और उनके राष्ट्रीय दल के कुछ सदस्यों ने इस्तीफा दे दिया। वस्तुतः कांग्रेस-आन्दोलन को इस सहायता की आशा न थी और इसलिए उसे दैविक समझना चाहिए।

यहां यह बयान कर देना जरूरी है कि यह कानून क्या था। साथ ही सूती कपड़े पर लगाये गये उत्पत्ति-कर और आयात-कर का इतिहास भी बता देना आवश्यक है। महासमर की समाप्ति के समय स्थिति यह थी कि भारतीय कारखानों में बने हुए ११ नम्बर से ऊपर के सूत और कपड़े पर ३½ फी सदी उत्पत्ति-कर लगता था। यह कर सरकार बिक्री या मुनाफे पर नहीं लेती थी, बल्कि तैयार माल पर लेती थी। विदेशी कपड़े पर जो आयात-कर लगता था वह सिर्फ आमदनी के लिए था और माल की कीमत ७) फी सदी के हिसाब से लिया जाता था। भारतीय कारखानेदारों, व्यापारियों और नरम-दल-वालों ने अपनी युद्ध-कालीन सेवाओं का हवाला दे-देकर सरकार को बताया कि युद्ध के बाद विदेशी कपड़े के आने से हिन्दुस्तानी कारखानों को बड़ा धक्का पहुँच रहा है। १९२५ में सरकार ने आयात-कर ७ फी सदी से बढ़ाकर ११ फी सदी कर देना मंजूर किया। इससे स्वदेशी कपड़ा ४ फी सदी महंगा हो गया। स्वदेशी कपड़े का उत्पत्ति-कर भी उठा दिया गया, उससे स्वदेशी कपड़ा ३॥ फी सदी सस्ता हो गया। परन्तु इधर जनता स्वदेशी कपड़े के लाभ पर खुशियां मना रही थी, उधर १९२७ के शुरू में ही सरकार ने विनिमय कानून पास कर दिया। इससे रुपये की कीमत १६ पेंस से बढ़कर १८ पेंस हो गई। अर्थात् जो एक पौण्ड का विदेशी कपड़ा पहले लंकाशायर से १५) में पड़ता

था उसके अब १३।-)४ पाई ही लगने लगे। इस तरह विदेशी कपड़ा १२॥ फी सदी सस्ता हो गया। अर्थात् १६२५ में हिन्दुस्तानी मिलमालिकों को जो ७॥ फी सदी का लाभ हुआ था उनके मुकाबले में विदेशी कारखानेदारों को दो वर्ष बाद ही १२॥ फी सदी का फायदा मिलने लगा। इस मामले पर भारत में बड़ी हलचल मची और आयात-कर में परिवर्तन की मांग की गई। सरकार ने वस्त्र-उद्योग-रक्षण-कानून पास करके इंग्लैण्ड के कपड़े पर १५ फीसदी और अन्य विदेशी कपड़े पर २० फीसदी और कर लगा दिया। पण्डित मालवीयजी ने इस भेद-भाव को आर्थिक-परिषद् (फिस्कल कन्वेशन) के खिलाफ बताकर उसका विरोध किया। जापान इस समय बड़ा दूर-दर्शी निकला। यह कानून तो लंका-शायर के साथ जापान की स्पर्धा रोकने के लिए बना था, परन्तु जापान ने अपने भारत को भेजे जाने वाले कपड़े पर जहाजों का भाड़ा ५ फीसदी कम कर दिया और जहाजी कम्पनियों को जापानी सरकार ने पांच फीसदी सहायता दे दी। इस तरह भारतीय आयात-कर की चाल धरी ही रह गई। आगे चल कर भारत-सरकार ने आयात-कर ५ फी सदी और बढ़ा दिया। इससे लंकाशायर को ५ फीसदी की हानि हो गई। इसकी क्षति-पूर्ति सरकार ने दूसरी तरह कर दी। उसने भारत में आने वाली रूई पर एक आना सेर महसूल लगा दिया। यह रूई मिश्र और अमरीका से आती है और इससे लंका-शायर के मुकाबले का बारीक कपड़ा तैयार किया जाता है। इस एक आने सेर के महसूल से लंका-शायर की स्पर्धा करने में भारतीय मिलोंको उतनी ही बाधा होगई। ये सब बातें तो प्रसंगवश कही गई हैं। जब वस्त्र-उद्योग-रक्षण-बिल असेम्बलीमें पेश हुआ तो उस पर दो संशोधन उपस्थित किये गये। मालवीयजी का संशोधन यह था कि इंग्लैण्ड के साथ कोई रिआयत न करके सब विदेशों के कपड़े पर कर की एक ही दर मुकर्रर कर देनी चाहिए। ३१ मार्च को असेम्बली की इस बैठक का अन्तिम दिन था। अध्यक्ष पटेल ने कहा कि,यदि सरकार का प्रस्ताव असेम्बली में ज्यों-का-त्यों स्वीकार न हो तो सरकार फिर विचार करके बतादे कि वह अपना बिल वापस ले लेगी क्या? परन्तु सरकार ने कहा कि ऐसा करना अपनी जिम्मेदारी से हाथ धो बैठना है। अन्त में बहस हुई और मालवीय जी का संशोधन तो गिर गया और श्री चेट्टी का संशोधन स्वीकार हुआ। परन्तु संशोधित अवस्था में बिल पर राय ली गई, उससे पहले ही पण्डित मालवीय जी और उनके साथी, दीवान चमनलाल और नई स्वराज्य-पार्टी के अन्य सदस्य उठकर चले गये। उस दिन की सभा बर्खास्त करने से पहले अध्यक्ष ने कहा—"आप सब मुझसे हाथ मिलाते जाइए। कौन जाने हम में से कौन-कौन यहां रहेंगे।" यों देखा जाय तो फरवरी १६३० के बाद की इन घटनाओं का लड़ाई से कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु इनका वर्णन हमने तत्कालीन परिस्थिति का पूरा चित्र खींचने और यह बताने के लिए कर दिया है कि कांग्रेस-दल के पीछे-पीछे मालवीयजी और उनके दल ने भी किस प्रकार मेम्बरी छोड़ दी।

अब हमें १६३० के महान् आन्दोलन का अध्ययन करना है। यह कहा जा चुका है कि स्वाधीनता-दिवस देशभर में बड़ी धूम-धाम से मनाया गया। एक-न-एक कारण से भारत में गिरफ्ता-रियां प्रबल वेग से होरही थीं। मेरठ के ३२ अभियुक्तों में से एक के सिवा सब दौरा सुपुर्द कर दिये गये। कलकत्ते में सुभाष बाबू और उनके ११ साथियों को एक एक वर्ष की कड़ी सजा दी गई। कांग्रेस के आदेश पर कौंसिलों के १७२ सदस्यों ने फरवरी १६३० तक इस्तीफे दे दिये। इनमें से २१ असेम्बली के और ६ राज्य-परिषद् के सदस्य थे। प्रान्तीय कौंसिलों में बंगाल से ३४, बिहार-उड़ीसा से ३१, मध्यप्रान्त से २०, मदरास से २०, युक्तप्रान्त से १६, आसाम से १२, बम्बई से ६, पंजाब से २ और बर्मा से १ ने इस्तीफा दिया।

सविनय अवज्ञा का श्रीगणेश

१४, १५ और १६ फरवरी को कार्य-समिति की साबरमती में बैठक हुई। कौंसिलों के जिन मेम्बरों ने इस्तीफे नहीं दिये थे या देकर चुनाव में फिर खड़े हो गए थे उन्हें कहा गया कि या तो वे कांग्रेस की निर्वाचित-समितियों की मेम्बरी छोड़ दें, अन्यथा उनपर जाब्ते की कारँवाई की जायगी। सरकार ने राजनैतिक कैदियों के साथ सद्व्यवहार करने का आश्वासन दिया था, परन्तु सरकार ने इस वचन का पालन नहीं किया। इस पर साबरमती में कार्य-समिति ने खेद प्रकट किया, किन्तु इस बैठक का मुख्य प्रस्ताव तो सविनय-अवज्ञा के सम्बन्ध में था। वह इस प्रकार था —

"कार्य-समिति की राय में सविनय-अवज्ञा का आंदोलन उन्हीं लोगों के द्वारा आरम्भ और संचालित होना चाहिये जिनका पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा में धार्मिक विश्वास हो, और चूंकि कांग्रेस के संगठन में सब ऐसे ही स्त्री-पुरुष नहीं हैं बल्कि ऐसे भी लोग शामिल हैं जो अहिंसा को देश की वर्तमान स्थिति में सिर्फ नीति के तौर पर मानते हैं, इसलिए कार्य-समिति महात्मा गांधी के प्रस्ताव का स्वागत करती है और उन्हें तथा अहिंसा में विश्वास रखनेवाले उनके साथियों को अधिकार देती है कि वे जब, जिस तरह और जहांतक उचित समझें सविनय-अवज्ञा जारी कर दें। कार्य-समिति को विश्वास है कि जब आंदोलन वस्तुतः चल रहा होगा उस समय सारे कांग्रेसवादी और दूसरे लोग सब तरह से सत्याग्रहियों को पूर्ण सहयोग देंगे और बड़ी-से-बड़ी उत्तेजना के समय भी सम्पूर्ण अहिंसा का पालन और रक्षण करेंगे। कार्य-समिति को यह भी आशा है कि आंदोलन के सर्व-साधारण में फैल जाने पर वकील आदि लोग जो सरकार के साथ स्वेच्छा-पूर्वक सहयोग कर रहे हैं, और विद्यार्थीगण जो सरकार से कथित लाभ उठा रहे हैं, वे सब यह सहयोग और यह लाभ छोड़ देंगे और स्वतन्त्रता के अंतिम संग्राम में कूद पड़ेंगे।

'कार्य-समिति को विश्वास है कि नेताओं के गिरफ्तार और कैद हो जाने पर जो लोग पीछे रह जायंगे और जिनमें त्याग और सेवा की भावना है वे अपनी योग्यता के अनुसार कांग्रेस के काम और आंदोलन को जारी रक्खेंगे।"

इस प्रस्ताव ने गांधीजी और उनके विश्वस्त साथियों को सविनय-अवज्ञा करने का अधिकार दिया। कुछ समय बाद अहमदाबाद में महा-समिति की बैठक हुई, उसने इस अधिकार का और भी विस्तार करके सविनय-अवज्ञा आंदोलन चलाने की सत्ता भी उन्हें दे दी। यह बात हमने खासकर यह दिखाने के लिए कही है कि मई १९३४ में जब यह आंदोलन स्थगित किया गया तब भी गांधीजी के लिए अपवाद रक्खा गया, अर्थात् आंदोलन के आदि और अंत दोनों में गांधीजी को स्वतन्त्र रक्खा गया। जाब्ते के इस प्रस्ताव से पहले गांधीजी ने कुछ चुने हुए आमन्त्रित मित्रों के साथ जो खानगी बातचीत की थी वह ज्यादा महत्वपूर्ण थी। उसमें एकमात्र विषय नमक था; अर्थात् नमक का कानून कैसे तोड़ा जाय, नमक कैसे बनाया जाय, पड़ा हुआ नमक कैसे इकट्ठा किया जाय और नमक के ढेरों पर धावा कैसे बोला जाय?

इस सम्मेलन में कुछ लोगों ने यह आशंका प्रकट की कि देश अभी सामूहिक-सविनय-अवज्ञा के लिए तैयार नहीं है। तैयारी का अर्थ यहां था कि लोग आज्ञा-भंग करने में विनय रख सकेंगे या नहीं, दूसरों को कष्ट न पहुंचाकर स्वयं कष्टों का आह्वान कर सकेंगे या नहीं, और शोक और क्लेश को शांत और प्रसन्न होकर सहन कर सकेंगे या नहीं, ये आशंकायें प्रकट करनेवाले ऐसे स्पष्टवादी

मित्र भी थे जिन्हें सामूहिक-सविनय-अवज्ञा की सूचना दस वर्ष पहले मिल चुकी थी। लेकिन जो केवल दोषदर्शी थे। उन्हें उत्तर देने की जरूरत न थी। यदि आज सामूहिक सत्याग्रह स्थगित कर दिया जाय तो क्या किसी निश्चित दिन पर उसे शुरू करने के लिए वे अपने-आपको तैयार कर लेंगे? असल बात तो यह है कि तैरने की सबसे अच्छी तैयारी तैरना ही होती है। इस प्रकार लार्ड रिपन के कथनानुसार किसी देश की स्वशासन-सम्बन्धी योग्यता की अच्छी-से-अच्छी परीक्षा उसे स्वशासन देने ही से हो सकती है। जैसे इन्द्रियों को काम में लेने से ही वे सधती हैं वैसे ही नैतिक-शिक्षण भी अमल से ही मिलता है।

नमक-कानून भंग

परन्तु सविनय-अवज्ञा शुरू करें तो कैसे? गांधीजी के इरादे पहले ही जाहिर हो गए थे। बम्बई में ये समाचार पहुंच चुके थे और कार्य-समिति की साबरमती की बैठक से पहले ही पहुंच चुके थे कि नमक के ढेरों पर धावा बोला जायगा। १४ फरवरी से पहले ही बम्बई में प्रचार-कार्य भी शुरू हो गया। नमक-कर का इतिहास खोद निकाला गया। मालूम हुआ कि १८३६ में एक नमक-कमीशन बैठा था और उसने भारत में अंग्रेजी नमक की बिक्री के खातिर भारतीय नमक पर कर लगाने की सिफारिश की थी। लिवरपूल बन्दर में माल के बिना जहाज खाली पड़े थे और अशांत समुद्र पर वे तबतक चल नहीं सकते थे जबतक कि आवश्यक भार को पूरा करने के लिए भी कोई माल उनपर लदा न हो। इसलिए कुछ माल, कुछ भार, कुछ वजन तो उन्हें लाना ही पड़ता था। कुछ समय तक तो उनमें लंदन के समुद्र तट की रेत भरकर आती रही। इसीसे कलकत्ते की चौरंगी सड़क तैयार हुई। यहां पहले हुगली से कालीघाट मन्दिर तक नहर थी। असल बात यह है कि भारत में सदा से माल आता कम और यहां से जाता अधिक रहा है। १९२५ में निर्यात ३१६ करोड़ का और आयात २४९ करोड़ रुपये का रहा। इतना ही नहीं, निर्यात-माल में अधिकतर खाद्य-पदार्थ और कच्चा माल होने के कारण वह जगह अधिक घेरता है। सब बातों को ध्यान में रखकर देखा जाय तो निर्यात-माल को ले जाने के लिए आयात-माल लाने की अपेक्षा कम-से-कम चार-पांच गुने जहाजों की जरूरत तो अवश्य होती है। अर्थात् भारत में आनेवाले जहाजों को खाली आना पड़ता था। भारतीय व्यापार के लिए आवश्यक जहाजों में ७५ फी सदी या ¾ अंग्रेजी जहाज होते हैं। इसलिए भारत में आनेवाले जहाजों को अपना भार पूरा करने के लिए भी कुछ-न-कुछ अंग्रेजी माल लाना जरूरी होता है। इसके लिए चेशायर के नमक से अच्छी चीज और क्या होती? हां, अखबारों की रद्दी और चीनी के टुकड़े आदि चीजें भी लाई जाती हैं। इटली के जहाज अपना भार पूरा करने को इटली का संगमरमर और आलू लाते हैं। यही कारण है कि ये वस्तुएं भारतीय पैदावार से सस्ती पड़ जाती हैं।

साबरमती की बैठक के बाद थोड़े दिनों में वातावरण नमक-ही-नमक से व्याप्त हो गया। लोग पूछने लगे, क्या बनाया हुआ नमक पड़ता खायगा? सरकारी कर्मचारी और भी आगे बढ़े। उन्होंने समुद्र के पानी से नमक बनाने में ईंधन और मजदूरी का हिसाब लगाकर बताया कि नमक-कर से तिगुना खर्च नमक बनाने में लगता है। ये बेचारे यह न समझ सके कि यह संग्राम भौतिक नहीं, नैतिक था।

साबरमती में एकत्र मित्रों ने गांधीजीसे उनकी योजना जाननी चाही। उन्होंने ठीक ही किया। वैसे महासमर के आरम्भ में लॉर्ड किचनर, मार्शल फोश या वॉन हिण्डनबर्ग से ऐसा प्रश्न किसी ने

नहीं पूछा होगा। योजनायें तो उनके पास थीं, पर वे बताते थोड़ा ही। सत्याग्रह की बात ऐसी नहीं है। यहां कोई गुप्त योजना नहीं होती। परन्तु कोई घड़ी-घड़ाई योजना भी नहीं थी। ये योजनायें तो अपने आप प्रकट होती हैं। जैसे सत्याग्रही के ललाट में प्रकाश-दीप रहता है। उससे आगे का कदम अपने-आप दीखता जाता है।

प्रस्तुत नमक-सत्याग्रह का इस प्रकार विकास होने वाला था। गांधीजी किसी नमक के क्षेत्र में जाकर नमक उठावेंगे। दूसरे नहीं उठावेंगे। अगर कोई पूछता, 'क्या हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहें?' तो यही उत्तर मिलता—'अवश्य। परन्तु मैदान में उतरने के लिए तैयार रहो।' उन्हें तो आशा थी कि परिणाम तत्काल होगा। वल्लभभाई तक को कूच में साथ न ले गये। केवल साबरमती-आश्रम के निवासियों को ही उन्होंने साथ में लिया। वर्धा आश्रमवालों को भी तैयारी करने और गांधीजी की गिरफ्तारी तक ठहरे रहने का आदेश मिला। फिर तो एकसाथ भारत-भर में लड़ाई शुरू होनेवाली ही थी। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद लोग जो चाहते वह करने को स्वतंत्र थे। उन्हें दीख गया था कि उनके बाद भारत में सर्वत्र यह आन्दोलन फैल जायगा और खूब जोर पकड़ लेगा। या तो जीत ही होगी या मर मिटेंगे। परन्तु जिस राष्ट्र ने अंग्रेजों का कभी बुरा नहीं चाहा उसे वे नेस्तनाबूद नहीं कर सकते थे। ऐसा होने पर तो साम्राज्य तक की जड़ें हिल जातीं। अहिंसा पर अटल रहने का और कोई परिणाम हो ही नहीं सकता। लोग यदि पूछते कि सरकार बम बरसायेगी तो क्या होगा? तो उसका उत्तर यही था कि यदि निर्दोष स्त्री-पुरुष और बच्चों को जमींदोज कर दिया जाय तो उन्हीं की खाक में से साम्राज्य को भस्म करनेवाली अग्नि प्रज्वलित होगी।

सविनय-अवज्ञा शुरू हुई। जैसे-जैसे लोग पकड़े जाने लगे; चारों ओर से मदद आने लगी। खाद्य-पदार्थों एवं अन्य चीजों की वर्षा होने लगी। दक्षिण-भारत में आम हड़ताल हो गई, मजदूरों ने काम बन्द कर दिया, बाजारों में ताले पड़ गये।

गांधीजी की समझ में हिंसा का चारों ओर सम्मिश्रण हो रहा था। इसकी वृद्धि का कारण प्रतिकार का अभाव था। अतः हमारा धर्म हो गया था कि अहिंसा पर अमल करके हिंसा का मुकाबला करें। १९३० की कांग्रेस इसी तरह के कुछ विचारों से प्रेरित थी।

इतिहास वीर-गाथाओं से परिपूर्ण है। थियोडोर पार्कर अमरीका के एक महान् आस्तिक थे। वहां की दास-प्रथा के मिटाने में वे विश्व-विभूति बन गये थे। उस समय के धर्म-शास्त्रियों ने पार्कर को शास्त्रार्थ के लिए चुनौती दी। मित्रों ने उन्हें बचने की सलाह दी और उन्हें अपने मकान में बन्द कर दिया। उनके शत्रुओं ने सामने आने पर मार डालने की धमकी दी और इस प्रकार छिपने पर कायरता का लान्छन लगाया। पर पार्कर तो अचानक सभा में आ उपस्थित हुए और व्याख्यान-मंच पर जा पहुंचे। बोले, "मार सकते हो तो मारो। मेरे खून की एक-एक बूंद से हजारों पार्कर जन्म लेंगे और दासों को मुक्त कराकर छोड़ेंगे।" विरोधियों के हाथ-पैर ठण्डे पड़ गये। सभा भंग हो गई।

अन्तिम चेतावनी

गांधीजी की योजना सदा उनकी अन्तःप्रेरणा से बनी है। मस्तिष्क के भावना-हीन, हानि-लाभ-दर्शक तर्क से नहीं बनी है। उनका गुरु और मित्र उनका अन्तःकरण ही रहा है। इसीको लायड जार्ज साहब ने 'सदियों की प्रगति का निचोड़ एक युग में निकालना' बताया है। इसीको भारतीय शब्दों में कहा जाय तो, उन्होंने हजारों वर्ष का काम बारह महीने में कर दिखाया। गांधीजी की दिव्य-दृष्टि और शुद्ध विचार का लोहा सभी ने माना। नरम-दल-वालों तक ने नमक-सत्याग्रह को भले ही बेहूदा और खतरनाक बताया हो, गांधीजी के हेतु की पवित्रता से वे भी इन्कार नहीं कर सके।

गांधीजी ने वाइसराय को बहुत देर तक अंधेरे में नहीं रक्खा। सदा की भांति इस बार भी (२ मार्च १९३० को) उन्होंने लार्ड अर्विन को चिट्ठी भेजी।

सत्याग्रहाश्रम साबरमती से भेजी गई वह चिट्ठी यह थी—

"सविनय-अवज्ञा शुरू करने से और जिस जोखिम को उठाने के लिए मैं इतने सालों से सदा हिचकिचाता रहा हूं उसे उठाने से पहले, मुझे आपतक पहुंचकर कोई मार्ग निकालने का प्रयत्न करने में प्रसन्नता है।

"अहिंसा पर मेरा व्यक्तिगत विश्वास सर्वथा स्पष्ट है। जान-बूझकर मैं किसी भी प्राणी को दुःख नहीं पहुंचा सकता, मनुष्यों को दुःख पहुंचाने की तो बात ही नहीं—भले ही वे मेरा या मेरे स्वजनों का कितना ही अहित कर दें। अतः जहां मैं ब्रिटिश राज्य को अभिशाप समझता हूं, वहां मैं एक भी अंग्रेज या भारत में उसके किसी भी उचित स्वार्थ को नुकसान नहीं पहुंचाना चाहता।

"परन्तु मेरी बात का अर्थ गलत न समझिये। मैं ब्रिटिश-शासन को भारतवर्ष के लिए जरूर नाशकारी मानता हूं। परन्तु केवल इसी कारण अंग्रेज-मात्र को संसार की अन्य जातियों से बुरा भी नहीं समझता। सौभाग्य से बहुत-से अंग्रेज मेरे प्रियतम मित्र हैं। असल बात तो यह है कि अंग्रेजी राज्य की अधिकांश बुराइयों का ज्ञान मुझे स्पष्टवादी और साहसी अंग्रेजों की कलम से ही हुआ है, जिन्होंने सत्य को उसके सच्चे रूप में निडरता-पूर्वक प्रकट किया है।

"तो मेरा अंग्रेजी-राज्य के बारे में इतना बुरा खयाल क्यों है?

"इसलिए कि इस राज्य ने करोड़ों मूक-मनुष्यों का दिन-दिन अधिकाधिक रक्त-शोषण करके उन्हें कंगाल बना दिया है। उनपर शासन और सैनिक व्यय का असहनीय भार लादकर उन्हें बर्बाद कर दिया है।

"राजनैतिक दृष्टि से हमारी स्थिति गुलामों से अच्छी नहीं है। हमारी संस्कृति की जड़ ही खोखली कर दी गई है। हमारे हथियार छीनकर हमारा सारा पौरुष अपहरण कर लिया गया है। हमारा आत्मबल तो लुप्त हो ही गया था; हम सबको निःशस्त्र करके कायरों की भांति निःसहाय और निर्बल बना दिया गया।

"अनेक देश-बन्धुओं की भांति मुझे भी यह सुख-स्वप्न दीखने लगा था कि प्रस्तावित गोल-मेज-परिषद् शायद समस्या हल कर सके। परन्तु जब आपने स्पष्ट कह दिया कि आप या ब्रिटिश मंत्रि-मण्डल पूर्ण-औपनिवेशिक स्वराज्य की योजना का समर्थन करने का आश्वासन नहीं दे सकते, तब गोलमेज-परिषद् वह चीज नहीं दे सकती जिसके लिए शिक्षित भारत ज्ञानपूर्वक और अशिक्षित जनता दिल-ही-दिल में छटपटा रही है। पार्लमेण्ट का निर्णय क्या होगा, ऐसी आशंका उठनी ही न चाहिए। ऐसे उदाहरण मौजूद हैं कि पार्लमेण्ट की मंजूरी की आशा में मन्त्रि-मण्डल ने किसी खास नीति को पहले से ही अपना लिया हो।

"दिल्ली की मुलाकात निष्फल सिद्ध होने पर मेरे और पंडित मोतीलाल नेहरू के लिए १९२८ की कलकत्ता-कांग्रेस के गम्भीर निश्चय पर अमल करने के सिवा दूसरा चारा ही नहीं था।

"परन्तु यदि आपने अपनी घोषणा में औपनिवेशिक-स्वराज्य शब्द का प्रयोग उसके माने हुए अर्थ में किया हो तो पूर्ण-स्वराज्य के प्रस्ताव से घबराने की जरूरत नहीं। कारण जिम्मेदार ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने क्या यह स्वीकार नहीं किया है कि औपनिवेशिक-स्वराज्य व्यवहार में पूर्ण स्वराज्य ही है? लेकिन मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि ब्रिटिश राजनितिज्ञों की यह नीयत ही कभी नहीं थी कि भारतवर्ष को शीघ्र ही औपनिवेशिक-स्वराज्य दे दिया जाय।

"परन्तु ये तो गई गुजरी बातें हुईं। घोषणा के बाद अनेक घटनायें ऐसी हुई हैं जिनसे ब्रिटिश नीति की दिशा स्पष्ट सूचित होती है।

"दिवाकर की भांति अब साफ-साफ जाहिर हो गया है कि जिम्मेदार ब्रिटिश-राजनीतिज्ञ अपनी नीति में ऐसा कोई परिवर्तन करने का विचार तक नहीं रखते जिससे ब्रिटेन के भारतीय-व्यापार को धक्का पहुंचने की सम्भावना हो, अथवा भारत के साथ ब्रिटेन के लेन-देन की निष्पक्ष और पूरी जांच करनी पड़े। यदि इस शोषण की क्रिया का अन्त नहीं किया गया तो भारत दिन-दिन अधिकाधिक निस्सत्व होता ही जायगा। विनिमय की दर बात-की-बात में १८ पेंस करदी गई और देश को कई करोड़ की हानि सदा के लिए हो गई। अर्थ-सदस्य इस निश्चय को अटल समझते हैं और जब और-और बुराइयों के साथ इस अचल निर्णय को मेटने के लिए सविनय किन्तु सीधा हमला किया जाता है तो आप चुप नहीं रह सकते। आपने भी भारतवर्ष को पीस डालने वाली प्रणाली की ही दुहाई देकर उस उपाय को विफल करने के लिए धनी और जमींदार-वर्ग की मदद मांग ही ली।

"राष्ट्र के नाम पर काम करने वालों को खुद भी समझ लेना चाहिए और दूसरों को समझाते रहना चाहिए कि स्वाधीनता की इस तड़प के पीछे हेतु क्या है। इस हेतु को न समझने से स्वाधीनता इतने विकृत रूप में आ सकती है और यह खतरा हमेशा रहेगा कि जिन करोड़ों मूक-किसानों और मज़दूरों के लिए स्वाधीनता की प्राप्ति का प्रयत्न किया जा रहा है और किया जाना चाहिए उनके लिए यह स्वाधीनता कदाचित् निकम्मी सिद्ध हो। इसी कारण मैं कुछ अरसे से जनता को वांछित स्वाधीनता का सच्चा अर्थ समझा रहा हूं।

"उसकी मुख्य-मुख्य बातें आपके सामने रख दूं।

"सरकारी आय का मुख्य भाग ज़मीन का लगान है। इसका बोझा इतना भारी है कि स्वाधीन-भारत को इसमें काफी कमी करनी पड़ेगी। स्थायी बन्दोबस्त अच्छी चीज है, परन्तु इसमें भी मुट्ठी-भर अमीर जमींदारों को लाभ है, गरीब किसानों को कोई लाभ नहीं। वे तो सदा से बेबसी में रहे हैं। उन्हें जब चाहे बेदखल किया जा सकता है।

"भूमि-कर को घटा देने से काम नहीं चलेगा, सारी कर-व्यवस्था ही फिर से इस प्रकार बदलनी पड़ेगी कि रैयत की भलाई ही उसका मुख्य हेतु रहे। परन्तु मालूम होता है कि सरकार ने जो तरीका जारी किया है वह रैयत की जान निकाल लेने को ही किया है। नमक तो उसके जीवन के लिए भी आवश्यक है। परन्तु उस पर भी कर इस तरह लगाया गया है कि यों दीखने में तो वह सब पर बराबर पड़ता है, परन्तु इस हृदय-हीन निष्पक्षता का भार सबसे अधिक गरीबों पर ही पड़ता है। याद रहे कि नमक ही ऐसा पदार्थ है जो अलग-अलग भी और मिलकर भी अमीरों से गरीब लोग अधिक मात्रा में खाते हैं। इस कारण नमक-कर का बोझा गरीबों पर और भी ज्यादा पड़ता है। नशे की चीज़ों का महसूल भी गरीबों से ही अधिक वसूल होता है, इससे गरीबोंके स्वास्थ्य और सदाचार दोनों पर कुठाराघात होता है। इस कर के पक्ष में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की झूठी दलील दी जाती है, परन्तु दर असल यह लगाया जाता है आमदनी के लिए। १९१९ की सुधार-योजना के जन्मदाताओं ने बड़ी होशियारी से इस आय को द्वैध-शासन के जिम्मेदार कहलाने वाले विभाग के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार मदिरा-निषेध का भार मन्त्री पर आ गया और वह बेचारा भलाई करने के लिए शुरू से ही निकम्मा हो गया। यदि अभागा मंत्री इस आमदनी को बन्द कर देता है तो उसे शिक्षा-विभाग का खर्च बिलकुल कम कर देना पड़ता है, क्योंकि वर्तमान स्थितिमें आबकारी के बजाय उसके पास और कोई आमदनी का साधन नहीं है। इधर ऊपर से कर का भार लाद-लाद कर गरीबों

की कमर तोड़ दी गई है, उधर हाथ-कताई के मुख्य सहायक-धन्धे को नष्ट करके उनकी उत्पादक-शक्ति बर्बाद कर दी गई है।

"भारतवर्ष के विनाश की दुःखद कहानी उसके नाम पर लिये गये कर्ज का उल्लेख किये बिना पूरी नहीं हो सकती। हाल में इस पर समाचार पत्रों में काफी लिखा जा चुका है। इस ऋण की स्वतन्त्र-न्यायालय-द्वारा पूरी जांच कराना और जो रकम अन्याय पूर्ण सिद्ध हो उसे चुकाने से इन्कार करना स्वाधीन-भारत का कर्तव्य होगा।

"उपर्युक्त अन्याय संसार के सबसे महंगे विदेशी शासन को कायम रखने के लिए किये जाते हैं। आपके वेतन को ही देखिये। दूसरे अनेक लवाजमात के अलावा आपको २१ हजार रुपये मासिक मिलते हैं। आज के विनिमय के भाव से ब्रिटिश प्रधान-मन्त्री को ५००० पौण्ड वार्षिक अर्थात् ५४०० रुपये माहवार ही दिये जाते हैं। भारतवासियों की औसत दैनिक आय दो आने से कम है और आप ७००) रोज से ज्यादा पाते हैं। एक अंग्रेज की रोजाना आमदनी लगभग दो रुपये है और वहां के प्रधान मंत्री की १८०) रुपये। इस प्रकार आपको प्रत्येक हिन्दुस्तानी से पांच हजार गुना से भी ज्यादा मिलता है और ब्रिटिश प्रधान मंत्री को प्रत्येक अंग्रेज से सिर्फ ९० गुना ही अधिक दिया जाता है। मैं आपसे हाथ जोड़ कर विनती करता हूं कि इस करिश्मे पर गौर कीजिये। यह व्यक्तिगत उदाहरण मैंने इसलिए दिया है कि एक हृदय-विदारक सत्य आप भली-भांति समझ जायं। आपके लिए व्यक्तिशः मेरे मन में इतना आदर है कि मैं आपके दिल को चोट पहुँचाने की इच्छा भी नहीं कर सकता। मैं जानता हूं आपको इतने भारी वेतन की जरूरत भी नहीं है। शायद आप सारी तनख्वाह खैरात ही कर देते होंगे। परन्तु जिस शासन-प्रणाली में ऐसी व्यवस्था हो वह तो जड़-मूल से उखाड़ फेंकने के लायक है। जो बात वाइसराय के वेतन के बारे में सच है, सामान्यतः वही सारे शासन पर भी लागू होती है।

"अतः कर का भार बहुत अधिक उसी हालत में कम किया जा सकता है जब शासन-व्यय भी उतना ही घटा दिया जाय। इसका अर्थ है शासन-योजना की काया-पलट कर देना। मेरी राय में २६ जनवरी के स्वाभाविक प्रदर्शन में लाखों ग्रामीणों ने स्वेच्छा से जो भाग लिया उसका भी यही अर्थ है। उन्हें लगता है कि इस नाशकारी भार से स्वाधीनता ही छुटकारा दिलायेगी।

"फिर भी यदि भारतीय राष्ट्र को जीवित रहना है और यदि भारतवासियों को भूख से तड़प-तड़प कर शनैः शनैः मिट नहीं जाना है तो कष्ट-निवारण का कोई-न-कोई उपाय तुरन्त ढूंढना पड़ेगा। प्रस्तावित परिषद् से तो यह उपाय हो ही नहीं सकता यह बात तर्क से मनवाने की नहीं है। यहां तो बराबर की शक्ति खड़ी करनी होगी; तर्क वर्क कुछ नहीं। ब्रिटेन अपनी सारी शक्ति लगाकर अपने व्यापार एवं हितों की रक्षा करेगा। इसलिए भारतवर्ष को मृत्यु के बाहुपाश से मुक्त होने के लिए उतनी ही शक्ति सम्पादन कर लेनी होगी।

"यह सभी को मालूम है कि भले ही हिंसक-दल कितना ही असंगठित या सम्प्रति महत्वहीन हो, फिर भी उसका जोर बढ़ता जारहा है। उसका और मेरा ध्येय एक ही है। परन्तु मेरा दृढ़ विश्वास है कि वह मूक-जनता का कष्ट-निवारण नहीं कर सकता। मेरा यह विश्वास भी दिन-दिन दृढ़तर होता जा रहा है कि ब्रिटिश-सरकार की सङ्गठित हिंसा को शुद्ध अहिंसा ही रोक सकती है। मेरा अनुभव अवश्य ही सीमित है, परन्तु वह बताता है कि अहिंसा बड़ी जबरदस्त क्रियात्मक शक्ति हो सकती है। मेरा इरादा इस शक्ति-द्वारा सरकार की संगठित हिंसा और हिंसक-दल की बढ़ती हुई असंगठित हिंसा दोनों का मुकाबला करने का है। हाथ-पर-हाथ धर बैठने से तो ये दोनों शक्तियां स्वच्छन्द होकर विश-

रेंगी। मेरा अहिंसा की सफलता में निःशंक और अटल विश्वास है। ऐसी दशा में और प्रतीक्षा करना मेरे लिए पाप होगा।

"यह अहिंसा सविनय-अवज्ञा के रूप में प्रकट होगी। आरम्भ में आश्रम-निवासी ही इसमें भाग लेंगे, परन्तु बाद में इसकी मर्यादाओं को समझकर जो चाहेंगे वे सभी इसमें शामिल हो जायंगे।

"मैं जानता हूं कि अहिंसात्मक संग्राम का प्रारम्भ करने में जोखिम है। लोग इस तरह से ठीक ही कहेंगे कि यह पागलपन है। परन्तु सत्य की विजय बहुधा बड़ी-से-बड़ी जोखिमों के उठाये बिना नहीं हुई है। जिस राष्ट्र ने जान या अनजान में अपने से अधिक जन-संख्यावाले, अधिक प्राचीन और अपने-समान सभ्य दूसरे राष्ट्र को शिकार बनाया उसको ठीक रास्ते पर लाने के लिए कोई भी जोखिम बड़ी नहीं है।

"मैंने 'ठीक रास्ते पर लाने' के शब्द जान-बूझकर प्रयोग किये हैं। कारण, मेरी यह महत्वाकांक्षा है कि मैं अहिंसा-द्वारा ब्रिटिश जाति का हृदय पलट दूं और उसे भारत के प्रति किये गये अपने अन्याय का अनुभव करा दूं। मैं आपकी जाति को हानि पहुंचाना नहीं चाहता। मैं उसकी भी वैसी ही सेवा करना चाहता हूं, जैसी अपनी जाति की। मेरा विश्वास है कि मैंने सदा ही ऐसी सेवा की है। १९१९ तक आंखें बन्द करके उनकी सेवा की। पर जब मेरी आंखें खुलीं और मैंने असहयोग की आवाज बुलन्द की तब भी मेरा उद्देश्य उनकी सेवा ही था। जिस हथियार का उपयोग मैंने अपने प्रिय-से-प्रिय रिश्तेदार पर कामयाबी के साथ किया है, वही मैंने सरकार के खिलाफ भी उठाया है। अगर यह बात सच है कि मैं भारतीयों के समान ही अंग्रेजों को भी चाहता हूं, तो यह ज्यादा देर तक छिपी न रहेगी। बरसों तक मेरे प्रेम की परीक्षा लेने के बाद मेरे कुनबे वालों ने मेरे प्रेम के दावे को कबूल किया है; वैसे ही अंग्रेज भी किसी दिन करेंगे। यदि मेरी आशाओं के अनुकूल जनता ने मेरा साथ दिया तो या तो पहले ही ब्रिटिश-जाति अपना कदम पीछे हटा लेगी, अन्यथा जनता ऐसे-ऐसे कष्ट-सहन करेगी जिन्हें देखकर पत्थर का दिल भी पिघले बिना नहीं रह सकता।

"सविनय-अवज्ञा की योजना उपर्युक्त बुराइयों के मुकाबले के लिए है। ब्रिटिश-सम्बन्ध-विच्छेद तो हम इन्हीं बुराइयों के कारण करना चाहते हैं। इनके दूर हो जाने पर हमारा मार्ग सुगम हो जायगा। उस समय मित्रतापूर्ण समझौते का द्वार खुल जायगा। यदि ब्रिटेन के भारतीय व्यापार में से लोभ का मैल निकल जाय, तो आपको हमारी स्वाधीनता स्वीकार कर लेने में कुछ भी मुश्किल नहीं होगी। मैं आपसे आदरपूर्वक अनुरोध करता हूं कि इन बुराइयों को तुरन्त दूर करने का मार्ग सुगम बनाइये और इस प्रकार वास्तविक परिषद् के लिए अनुकूलता पैदा कीजिए। यह परिषद् बराबरी के लोगों की होगी, जिनका हेतु एक ही होगा। वह यह कि स्वेच्छापूर्वक मित्रता का सम्बन्ध रखकर मानव जाति की भलाई का उद्योग किया जाय और उभय-पक्ष के लाभ को ध्यान में रखकर पारस्परिक सहायता एवं व्यापार की शर्तें तय की जायं। दुर्भाग्यवश इस देश में साम्प्रदायिक झगड़े अवश्य हैं, किन्तु आपने उन पर जरूरत से ज्यादा जोर दिया है। यद्यपि किसी भी शासन-सम्बन्धी योजना में इस समस्या पर विचार करना महत्वपूर्ण बात है, परन्तु इससे भी बड़ी-बड़ी अन्य समस्यायें हैं जो कौमी झगड़ों से परे हैं और जिनके कारण सब जातियों को समान-रूप से हानि उठानी पड़ती है। अस्तु, यदि इन बुराइयों को दूर करने का उपाय आप नहीं कर सकेंगे और मेरे पत्र का आपके हृदय पर असर नहीं होगा, तो इस मास की ११ तारीख को मैं आश्रम से उपलब्ध साथी लेकर नमक-कानून तोड़ने के लिए चल पड़ूंगा। गरीबों की दृष्टि से मैं इस कानून को सबसे अधिक अन्यायपूर्ण समझता हूं। स्वाधीनता का आन्दोलन मूलतः गरीब-से-गरीब की भलाई के लिए है। इसलिए इस लड़ाई की शुरुआत भी इसी

अन्याय के विरोध से होगी। आश्चर्य तो इस बात पर है कि हम इतने दीर्घकाल तक नमक के इस निर्दय एकाधिकार को सहन करते रहे। मैं जानता हूं कि आप मुझे गिरफ्तार करके मेरे प्रयत्न को विफल कर सकते हैं। उस दशा में, मुझे आशा है कि, मेरे पीछे हजारों आदमी नियमित रूप में यह काम सम्हालने को तैयार होंगे और नमक-कानून जैसे घृणित कानून को, जो कभी बनना ही नहीं चाहिए था, तोड़ने के कारण जो सजायें दी जायंगी उन्हें वे खुशी-खुशी बर्दाश्त करेंगे।

"मेरा बस चले तो मैं आपको अनावश्यक ही क्या जरा-सी कठिनाई में भी नहीं डालना चाहूं। यदि आपको मेरे पत्र में कुछ सार दिखाई दे और मेरे साथ बातचीत करना चाहें और इस हेतु से आप इस पत्र को छपने से रोकना पसन्द करें तो इसके पहुंचते ही आप मुझे तार कर दीजिए, मैं खुशी से रुक जाऊंगा। परन्तु इतनी कृपा अवश्य कीजिए कि यदि आप इस पत्र के सार को भी अङ्गीकार करने को तैयार न हों तो मुझे अपने इरादे से रोकने का प्रयत्न न करें।

"इस पत्र का हेतु धमकी देना नहीं है। यह तो सत्याग्रही का साधारण और पवित्र कर्तव्य-मात्र है। इसीलिए मैं इसे भेज भी खास तौर पर एक ऐसे युवक अंग्रेज मित्र के हाथ रहा हूं जो भारतीय पक्ष का हिमायती है, जिसका अहिंसा पर पूर्ण विश्वास है और जिसे शायद विधाता ने इसी काम के लिए मेरे पास भेजा है।"

इस चिट्ठी को रेजिनाल्ड रेनाल्ड नामक अंग्रेज युवक दिल्ली ले गये। ये भाई कुछ समय तक आश्रम में रह चुके थे। गांधीजी के इस पत्र को जनता और अखबारों ने अन्तिम चेतावनी का नाम दिया था। लॉर्ड अर्विन का उत्तर भी तुरन्त और साफ-साफ मिला। वाइसराय साहब ने खेद प्रकट किया कि गांधीजी ऐसा काम करने वाले हैं जिससे निश्चित रूप से कानून और सार्वजनिक शान्ति-भंग होगी। गांधीजी का प्रत्युत्तर भी उनके योग्य ही था। वह सच्चे सत्याग्रही के एकमात्र कवच, विनय और साहस की भावना से कूट-कूट कर भरा था। उन्होंने लिखा, "मैंने दस्त-बस्ता रोटी का सवाल किया था और मिला पत्थर[1]। अंग्रेज जाति सिर्फ शक्ति का ही लोहा मानती है। इसलिए मुझे वाइसराय साहब के उत्तर पर कोई आश्चर्य नहीं है। हमारे राष्ट्र के भाग्य में तो जेल-खाने की शान्ति ही एकमात्र शान्ति है। सारा भारत ही एक विशाल कारागृह है। मैं इस अंग्रेजी कानून को मानने से इन्कार करता हूं और इस जबर्दस्ती की शान्ति की मनहूस एक-रसता को भंग करना अपना पवित्र कर्तव्य समझता हूं। इस शान्ति से राष्ट्र का गला रुंधा हुआ था। अब उसके हृदय का चीत्कार प्रकट होना चाहिए।"

इस प्रकार गांधीजी का कूच अनिवार्य हो गया था। सब तैयारी पहले से ही हो चुकी थी। लम्बी-चौड़ी तैयारी की तो जरूरत भी न थी। उनके ७९ साथी आश्रमवासियों और विद्यापीठ के छात्रों में से चुने हुए लोग थे। ये सैनिक दो सौ मील लम्बी पैदल यात्रा के कष्टों को सहन करने के लिए फौलादी अनुशासन से सधे हुए थे। दण्डी समुद्र-तट पर एक गाँव है। गांधीजी को वहीं पहुँचना था। उन्होंने मार्ग के ग्रामवासियों को मना कर दिया था कि यात्रियों को बढ़िया भोजन न दें। इधर गांधीजी शुद्ध नैतिक ढंग की ये तैयारियां कर रहे थे, उधर वल्लभभाई अपने 'गुरु' के पहले ही आनेवाली तपस्या और संकटों के लिए तैयार होने की प्रेरणा करने के लिए गांवों में पहुंच चुके थे। सरकार ने प्रथम प्रहार करने में विलम्ब नहीं किया। जब वल्लभभाई इस प्रकार गांधी जी के आगे-आगे चल रहे थे, सरकार ने समझा, 'यह तो १९०० वर्ष पहले ईसामसीह का दूत जॉन बैपटिस्ट है।'

१—रहम की तुझसे तवक्को थी, सितमगर निकला।
मोम समझे थे तेरे दिल को, सो पत्थर निकला॥

उसने तुरन्त-मार्च के प्रथम सप्ताह में वल्लभभाई को रास गांव में गिरफ्तार कर लिया और उन्हें चार मास की सादी सजा दे दी। इस घटना के साथ-साथ गुजरात का बच्चा-बच्चा सरकार के खिलाफ खड़ा हो गया। साबरमती के रेतीले तट पर ७५ हजार स्त्री-पुरुषों ने एकत्र होकर यह निश्चय किया—

"हम अहमदाबाद के नागरिक संकल्प करते हैं कि जिस रास्ते वल्लभभाई गये हैं उसी रास्ते हम जायंगे और ऐसा करते हुए स्वाधीनता को प्राप्त करके छोड़ेंगे। देश को आजाद किये बिना न हम चैन लेंगे, न सरकार को लेने देंगे। हम शपथपूर्वक घोषणा करते हैं कि भारतवर्ष का उद्धार सत्य और अहिंसा से ही होगा।"

गांधीजी ने कहा, 'जो यह प्रतिज्ञा लेना चाहे, अपने हाथ ऊंचे कर दें।' सारे जन-समूह ने हाथ उठा दिये। वल्लभभाई ने गुजरात में अपने भाषणों से जीवन फूंक दिया। उन्होंने कहा, "तुम्हारी आंखों के सामने तुम्हारे प्यारे पशु कुर्क होंगे। अरे! क्या विवाह-उत्सव मना रहे हो? इतनी बलवती सरकार से जूझनेवाले को ये रंग-रेलियां शोभा दे सकती हैं? कल ही से ऐसी नौबत आ सकती है कि अपने-अपने घरों के ताले लगाकर तुम्हें दिन-भर खेतों में रहना और सांझ पड़े लौटना पड़े। तुमने यश कमाया है, परन्तु उसकी पात्रता सिद्ध करने के लिए अभी बहुत-कुछ करना बाकी है। पासा पड़ चुका है। अब पीछे हटने की गुंजायश नहीं रही। गांधीजी ने सामूहिक सविनय अवज्ञा के प्रथम प्रयोग में तुम्हारे ताल्लुके को ही चुना है। देखना, उनकी लाज रखना।.........मैं जानता हूं, तुम में से कुछ लोगों को जमीनें जब्त होने का डर है। पर जब्ती से क्या होगा? क्या अंगरेज तुम्हारी जमीनें सिर पर उठाकर विलायत ले जायंगे? विश्वास रक्खो, जब तुम्हारी जमीनें जब्त हो जायंगी उस दिन सारा गुजरात तुम्हारी पीठ पर आकर खड़ा हो जायगा।

"अपने गांव का ऐसा संगठन करो कि दूसरे तुम्हारा अनुकरण करें। अब गांव-गांव छावनियां बन जानी चाहिए। अनुशासन और संगठन से आधी लड़ाई तो जीती ही समझो। सरकार तो हर गांव में एक-एक तलाटी रखती है। गांव के प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को हमारा स्वयंसेवक बन जाना चाहिए।

"मुझे दीख रहा है कि इन पंद्रह दिनों में तुम अपना भय भगाना सीख गये हो। अभी रुपये में दो आने डर बाकी है। इसे भी भगा दो न! डरना तो सरकार को चाहिए। मैं तुम्हारे अन्दर निर्भयता भर देना चाहता हूं। मैं तुममें जीवन-संचार कर देना चाहता हूं। मुझे तुम्हारी आंखों में अन्याय के प्रति रोष झलकता नहीं दीखता, हालांकि अहिंसा में (व्यक्ति के प्रति) रोष को स्थान नहीं होता। दो अभागे भाइयों के फूट जाने से तुम्हारा संकल्प और भी दृढ़ होना चाहिए और भविष्य में तुम्हें सावधान रहना चाहिए। जो दो भाई सरकारी कर्मचारियों के जाल में फंस गये, उनपर क्रोध न करो। जो लोग प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करके भी जान-बूझकर उसका भंग करते हैं उन्हें रोक भी कौन सकता है? महालकरी को अपने क्षणिक लाभ पर खुशियां मना लेने दो। थोड़े दिन में देख लेना, उनके लिए काम ही नहीं रहेगा।"

दाण्डी-कूच

गांधीजी अपने ७९ साथियों को लेकर १२ मार्च १९३० को दाण्डी की कूच पर निकल पड़े। यह एक ऐतिहासिक भव्य-दृश्य था और प्राचीनकाल की राम एवं पाण्डवों के वन गमन की घटनाओं की स्मृति ताजा करता था। यह विद्रोहियों की कूच थी। इधर कूच जारी थी, उधर ग्राम-कर्मचारियों के धड़ाधड़ त्याग-पत्र आ रहे थे। ३०० ने नौकरी छोड़ दी। अहमदाबाद की खानगी बातचीत में गांधी जी ने कहा था, "मैं शुरुआत करूं तबतक ठहरना। जब मैं कूच पर निकलूंगा तो विचार

अपने-आप फैल जायंगे। फिर आप लोगों को भी मालूम हो जायगा कि क्या करना चाहिए।" यह वात एक तरह से दिमागी-अटकल लगाने के विरुद्ध चेतावनी के रूप में कही गई थी। यह विरोध की योजना थी ऐसी कि उस समय इसके पूरे-पूरे स्वरूप की कल्पना इसके योग्य-से-योग्य अनुगामी भी नहीं कर सकते थे। शायद गांधीजी को भी भावी योजना की पूरी कल्पना नहीं थी। ऐसा लगता है मानों उनपर आन्तरिक ज्योति की एक किरण पड़ती थी और उसी के प्रकाश में वह अपना व्यवहार निश्चित करते थे। सन्त पुरुषों के जीवन में बुद्धि या तर्क के बजाय ये ही दो चीजें मार्गदर्शक होती हैं। कूच आरम्भ होते ही जनता ने उनके उपदेशों की भावना और आन्दोलन की योजना को समझ लिया। वह उनके झण्डे के नीचे आ खड़ी हुई। विचार फैल गया और अलग-अलग रूप में प्रकट होने लगा। लोगों ने शीघ्र अनुभव कर लिया कि असहयोग और अहिंसा अभावात्मक नहीं बल्कि प्रतिकार की योजना है। इनकी युद्धनीति अलग है और वह है सत्य। अहिंसा प्रतिकार है। ज्योंही विचारों और भावनाओं को छुट्टी मिली, लोगों की क्रिया-शक्ति के बन्द भी खुल गये। कूच का आरम्भ में तो उपहास किया गया, बाद में उसे ध्यान से देखा जाने लगा, और अन्त में उसी की प्रशंसा की गई। नगर तो डरते रहे, पर गांव पीछे हो लिये। सीधे-सादे लोगों का गांधीजी के अचूक निर्णय पर विश्वास था। उसका नमक-सत्याग्रह किसी सुरक्षित भण्डार या अनन्त महासागर की लूट का धावा नहीं था। यह अंग्रेजों की सत्ता के खिलाफ ३३ करोड़ भारतीयों के विद्रोह का परिचायक-मात्र था। अंग्रेजों के बनाये हुए कानून-कायदों का आधार न तो प्रजा की सम्मति पर है और न नीति अथवा मनुष्यता के विशुद्ध सिद्धान्तों पर। लोगों को आशा थी कि सत्याग्रहियों का पहला ही वार इतने जोर का होगा कि शत्रु देखते रह जायं। जब राइनलैंड से मार्ने नदी तक जर्मन लोग जल्दी कूच करके पहुंच गये और पेरिस तोपों की मार के भीतर आ गया उस समय लोग चकित हो गये थे। परन्तु सत्याग्रह की क्रियायें दिखाई नहीं पड़तीं। फिर भी कई बातें आशातीत और चमत्कार-पूर्ण हुईं।

भावी आदेश

यह सही है कि पहला वार गोला-बारूद या अन्य विस्फोटक पदार्थों के शोर-गुल के साथ नहीं किया गया। यहां तो नमक जैसी सादी चीज से काम लिया गया था। फिर भी जीवन की प्रारम्भिक आवश्यकता के इस पदार्थ से जो वेग उत्पन्न हुआ वह आश्चर्यजनक था। सरकार पर भी इस सीधे-सादे और हास्यापद-से आन्दोलन का असर अद्भुत-सा हुआ। सभ्य-संसार पर तो इसका जितना गहरा और जल्दी असर हुआ वह वर्णन नहीं किया जा सकता। गांधीजी की कूच ने यह विचार प्रसारित कर दिया कि ब्रिटिश-सरकार के विरोध में भारत ने रक्त-रहित विद्रोह का झण्डा फहरा दिया है और यदि विधाता की यही इच्छा है कि असत्य पर सत्य की, अंधकार पर प्रकाश की और मृत्यु पर अमरता की विजय होनी चाहिए तो भारतवर्ष की भी जीत होकर रहेगी।

जब भारतीय स्वतन्त्रता के नाटक का यह महान् अभिनय हो रहा था उस समय नये-नये शब्द भी प्रचलित हो गये। देश को बारडोली बना देने का अर्थ तो लोग पहलेही समझ चुके थे। अब 'बोरसद की भावना' का प्रयोग भी साथ-साथ होने लगा। कूच के बीच में ही २१ मार्च १९३० को अहमदाबाद में महासमिति की बैठक हुई। इसमें कार्य-समिति के पूर्व-कथित प्रस्ताव का समर्थन और नमक-कानून पर ही शक्ति केन्द्रित रखने का अनुरोध किया गया। साथ ही यह चेतावनी दी गई कि गांधीजी के दांडी पहुंचकर नमक-कानून तोड़ने से पहले देश में और कहीं सविनय-अवज्ञा शुरू न की जाय। सरदार वल्लभभाई और श्री सेनगुप्त की गिरफ्तारियों पर और सरकारी

नौकरियां छोड़नेवाले ग्राम- कर्मचारियों को बधाई दी गई। सत्याग्रहियों के लिए एक ही तरह की प्रतिज्ञा निश्चित करना वाञ्छनीय समझा गया और गांधीजी की अनुमति से यह प्रतिज्ञा-पत्र बनाया गयाः—

"१. राष्ट्रीय महासभा ने भारतीय स्वाधीनता के लिए सविनय-अवज्ञा का जो आन्दोलन खड़ा किया है उसमें मैं शरीक होना चाहता हूं।

"२. मैं कांग्रेस के शान्त एवं उचित उपायों से भारत के लिए पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के ध्येय को स्वीकार करता हूं।

"३. मैं जेल जाने को तैयार और राजी हूं और इस आन्दोलन में और भी जो कष्ट और सजायें मुझे दी जायंगी उन्हें मैं सहर्ष सहन करूंगा।

"४. जेल जाने की हालत में मैं कांग्रेस-कोष से अपने परिवार के निर्वाह के लिए कोई आर्थिक सहायता नहीं मांगूंगा।

"५. मैं आन्दोलन के संचालकों की आज्ञाओं का निर्विवाद रूप से पालन करूंगा।"

गांधीजी के गिरफ्तार होने पर जनता क्या करे और कैसा व्यवहार रक्खे, इस विषय में गांधीजी अपनी सूचनायें सदा से देते आये हैं। कूच के आरम्भ से पहले २७ फरवरी को गांधीजी ने 'मेरे गिरफ्तार होने पर' यह लेख लिखा। उसमें कहा—

"यह तो समझ ही लेना चाहिए कि सविनय-अवज्ञा आरम्भ होने पर मेरी गिरफ्तारी निश्चित है। अतः ऐसा होने पर क्या किया जाय, यह सोच लेना जरूरी है।

"१९२२ में गिरफ़्तार होने से पहले मैंने साथियों को सचेत कर दिया था कि मूक और पूर्ण अहिंसा के सिवाय और किसी प्रकार का प्रदर्शन न किया जाय। मेरा आग्रह था कि रचनात्मक-कार्यक्रम पूर्ण उत्साह के साथ पूरा किया जाय, क्योंकि उसी से देश सविनय-अवज्ञा के लिए तैयार हो सकता है। ईश्वर-कृपा से पहली सूचना पर अक्षरशः और पूरी तरह अमल किया गया, यहां तक कि एक अंग्रेज सामन्त को तिरस्कार के साथ यह कहने का अवसर भी मिल गया कि 'एक कुत्ता भी न भौंका'। मुझे भी जब जेल में यह पता चला कि देश पूर्ण अहिंसात्मक रहा तो ऐसा लगा कि अहिंसा के उपदेश का परिणाम हुआ है और बारडोली का निश्चय अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण था। यह तो कौन कह सकता है कि कुत्ते भौंकते और हिंसा फैल जाती तो क्या होता। परन्तु एक बात अवश्य होती और वह यह कि न तो लाहौर में स्वाधीनता का निश्चय होता और न बड़ी-से-बड़ी जोखिम उठाकर अहिंसा की शक्ति में विश्वास प्रकट करनेवाला गांधी रहता।

"ख़ैर, अब तो 'बीती बातों को बिसार कर आगे की सुधि लेना' चाहिए। इस बार मेरी गिरफ़्तारी पर मूक और निष्क्रिय अहिंसा की आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है अत्यन्त सक्रिय-अहिंसा को कार्य-रूप देने की। पूर्ण-स्वराज्य की प्राप्ति के लिए अहिंसा में धार्मिक विश्वास करने वाला एक-एक स्त्री-पुरुष इस गुलामी में अब नहीं रहेगा। या तो मर मिटेगा या कारावास में बन्द रहेगा। इसलिए मेरे उत्तराधिकारी अथवा कांग्रेस के आदेशानुसार सविनय-अवज्ञा करना सबका कर्तव्य होगा। मैं स्वीकार करता हूं कि अभी तो मुझे सारे भारत के लिए अपना कोई उत्तराधिकारी नजर नहीं आता। परन्तु मुझे अपने साथियों और अपने ध्येय में भी इतना विश्वास अवश्य है कि उन्हें मेरा उत्तराधिकारी परिस्थिति स्वयं दे देगी। हां, यह अनिवार्य शर्त सभी के ध्यान में रहनी चाहिए कि उस व्यक्ति को निर्धारित ध्येय की प्राप्ति के लिए अहिंसा की शक्ति में अचल विश्वास होना चाहिए। ऐसा न होगा तो ऐन मौके पर उसे अहिंसात्मक उपाय नहीं सूझ सकेगा।

"जहां तक मेरा सम्बन्ध है मेरा विचार इस आन्दोलन को आश्रमवासियों और अन्य ऐसे लोगों को साथ लेकर शुरू करने का है जो अहिंसात्मक उपायों की भावना और नियमों में सधे हुए हैं। अतः सर्वप्रथम युद्ध में जूझनेवाले विख्यात व्यक्ति नहीं होंगे। अबतक आश्रम को इसी खातिर बचा रक्खा था कि दीर्घकालीन अनुशासन के अभ्यास से उत्तम दृढ़ता आ जावे। मुझे लगता है कि लोगों ने आश्रम पर जो विश्वास रक्खा है और मित्रों ने उसपर जो प्रेम-वर्षा की है उसका यदि वह पात्र हैं तो आश्रम के लिए अब सत्याग्रह शब्द में निहित गुणों का परिचय देने का समय आ पहुंचा है। मैं अनुभव करता हूं कि हमारे आत्म-संयम में सूक्ष्म असंयम घुस गया है और हमें जो प्रतिष्ठा मिली है उसके साथ विशेषतायें और सुविधायें भी इतनी मिली रहती हैं कि जिनके लिए हम शायद सर्वथा अयोग्य हों। ये सुख-सुविधायें, यह मान-प्रतिष्ठा हमने कृतज्ञता-पूर्वक किन्तु इस आशा से स्वीकार की है कि किसी दिन सत्याग्रह के रूप में हम अपना जौहर दिखा सकेंगे। यदि जीवन के १५ वर्ष बाद भी आश्रम यह जौहर नहीं दिखा सका तो आश्रम के और मेरे मिट जाने से ही राष्ट्र की, मेरी और आश्रम की भलाई होगी।

"जब शुरुआत भलीभांति और वस्तुतः हो चुकेगी तब मुझे आशा है कि देश के कोने-कोने से सहयोग मिलेगा। आंदोलन की सफलता के प्रत्येक इच्छुक का धर्म होगा कि वह इसे अहिंसात्मक और नियन्त्रित बनाये रक्खे। हरेक से आशा है कि वह अपने सरदार की आज्ञा बिना अपने स्थान से न हटेगा। यदि मेरी आशा और अनुभव सही निकला तो जनता इससें अपने-आप और सामूहिक रूप में शरीक होगी और काम भी अधिकतर अपने-आप चलेगा। परन्तु सहायता तो सभी को देनी पड़ेगी, फिर भले ही वे अहिंसा को धर्म के रूप में मानें या नीति के रूप में। संसार-भर के सामूहिक आंदोलनों में नेता अकल्पित-रूप में निकल पड़े हैं। फिर हमारा आंदोलन भी इस नियम का अपवाद क्यों होगा? अतः जहां हमें हिंसा को हर तरह से दबाने का प्रयत्न करना पड़ेगा, वहां इस बार जब सविनय-अवज्ञा आरम्भ कर दी गई तो फिर बन्द नहीं हो सकती और जबतक भी सत्याग्रही आजाद या जिन्दा रहे तबतक बन्द होना भी न चाहिए। सत्याग्रही इन तीनों में से किसी एक अवस्था में ही रहेगा—

(१) कारावास या ऐसी अन्य स्थिति में।

(२) सविनय-अवज्ञा में लगा हुआ।

(३) सरदार की आज्ञा से स्वराज्य को निकट लाने वाले कताई आदि किसी रचनात्मक काम में।"

इसी समय के आस-पास पंडित मोतीलाल नेहरू ने आनन्द-भवन का शाही दान दिया। उस वर्ष कांग्रेस के अध्यक्ष पं० जवाहर लाल नेहरू थे। उन्होंने देश के प्रतिनिधि के रूप में इस भेंट को स्वीकार किया।

जिस समय गांधी जी की कूच जारी थी, भारत बड़ा अधीर होकर उसको देख रहा था। प्रमाद को दूर करना प्रायः जितना कठिन है उतना ही व्याकुलता पर अंकुश रखना कठिन होता है। परन्तु अनुशासन संगठन का प्राण होता है। इस विकट अवसर पर भारतवर्ष ने अनुशासन का परिचय दिया। गांधीजी-द्वारा आरम्भ किये गये इस आन्दोलन को संख्या, धन और प्रभाव का बल मिलता ही गया। गांधीजी ने सूत्र रूप से विचार दिया था। उनके शिष्यों ने भाष्यकार बनकर उसे जनता को समझाया। अनेक कार्यकर्ता राष्ट्र-दूत बनकर उसका प्रचार करने दूर-दूर निकल पड़े। गुरु एक, चेले अनेक और प्रचारक असंख्य होते हैं। इस प्रकार यह नवीन धर्म देश के कोने-कोने और

घर-घर में फैल गया। गांधीजी की कूच के समय जो सरकार अविचलित दिखाई देती थी, एक ही सप्ताह में उसके होश-हवास गुम हो गए। गांधीजी के महा-प्रस्थान से पहले ही मार्च के प्रथम सप्ताह में वह वल्लभभाई को गिरफ्तार करने और उन्हें चार मास की सजा देने की दो गैर-कानूनी कार्रवाइयां कर चुकी थीं। कूच के बाद उसने यह आज्ञा दी कि लंगोटी और दण्डधारी गांधी की पैदल-यात्रा का सिनेमा-चित्र न दिखाया जाय। बम्बई, युक्त-प्रान्त, पंजाब और मदरास आदि सभी प्रांतों ने ऐसी ही आज्ञायें निकाल दीं। पुलिस को मामूली काम से एक तरह छुट्टी-सी दे दी गई। सारा ध्यान असहयोगियों पर लगा दिया गया। जिस सरकार का आचार, सत्य और अहिंसा पर भरोसा न हो वह यदि इन दो नित्य-सिद्धांतों के माननेवालों की सचाई और ईमानदारी पर आसानी से विश्वास न करे, तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।

इस सारी प्रसव-पीड़ा में पूर्ण-स्वराज्य का जन्म हो रहा था। यह क्या कम सन्तोष की बात थी? इसमें किसी बाहरी मदद की जरूरत भी न पड़ी। कष्ट तो हुआ ही, परन्तु इससे भारत-माता पहले से अधिक शुद्ध, बलवती और गौरवान्वित होकर प्रकट हो रही थी। कोई यह न समझे कि हम सरकार को तंग करनें पर ही तुले हुए थे। हां, इतना कष्ट तो उसे हुए बिना नहीं रह सकता था कि नैतिक-दृष्टि से उसकी प्रतिष्ठा जाती रही और राजनैतिक लिहाज से उसकी निरंकुश सत्ता नाश होनेवाली थी। राज्य और प्रजा के बीच यह शुद्ध युद्ध है। सरकार ही इसमें गंदगी पैदा कर रही है। अन्यथा जमीदारों, मकान-मालिकों, साहूकारों, व्यापारियों आदि को बुलाकर यह धमकी क्यों दी जाती कि सत्याग्रहियों की सहायता करोगे तो सरकार तुमसे नाराज हो जायगी? इन धमकियों से लोग जितना दबेंगे उतना ही पथ-भ्रष्ट होंगे। जहांतक उनका मुकाबला करेंगे वहांतक स्वराज्यको नजदीक लावेंगे। हम जानते हैं कि शहरी और अंग्रेजी शिक्षा पाये हुए लोग आसानी से दब जाते हैं। परन्तु सीधे-सादे देश-भक्त लोग इस तरह नहीं दबते। यह देखकर सचमुच खुशी होती है कि गांवों में देश-भक्ति और देश-भक्तों की ही नहीं, नेताओं की भी विपुलता है। एक दफा गांवों में ऐसे नेता मिले कि हमारे आंदोलन की सफलता निश्चित हुई।

प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में चमत्कार होते आये हैं। भारत को भी अपना चमत्कार दिखाना ही था। इसी को देखने, और अपने ही युग और अपनी ही मातृभूमि में देखने के लिए, १२ मार्च १९३० से पहले ही से साबरमती-आश्रम में हजारों नर-नारी गांधीजी के चारों ओर एकत्र हुए थे। जहांतक चलने का सामर्थ्य था वहांतक ये लोग गांधीजी के साथ साथ गये। स्वाधीनता-पथ के इन यात्रियों के साथ कई विदेशी संवाददाता, चित्रकार और आस-पास के सैकड़ों लोग तथा भिन्न-भिन्न प्रांतों से आये हुए प्रमुख व्यक्ति भी गये। गांधीजी बराबर कहते आ रहे थे कि इस बार स्वातन्त्र्य-संग्राम का भार गुजरात अकेला उठायेगा और यदि गुजरात यह भार उठा ले और उसे उठाने दिया जाय तो युद्ध की अनिवार्य पीड़ायें शेष भारत को सहन करने की जरूरत न पड़ेगी। गांधीजी को जाननेवालों को मालूम है कि वे कितना तेज चलते हैं। एक संवाददाता ने इस यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है—

"१२ मार्च को सुबह होते ही गांधीजी सविनय-अवज्ञा की मुहिम पर चल पड़े। उनके साथ चुने हुए ७९ स्वयंसेवक थे। इन लोगों को दो सौ मील की दूरी पर, समुद्र-तट पर बसे, डांडी नामक गांव जाना था और वहां पहुंचकर नमक बनाना था।"

'बाम्बे क्रानिकल' के शब्दों में "इस महान् राष्ट्रीय घटना से पहले, उसके साथ-साथ और बाद में जो दृश्य देखने में आये, वे इतने उत्साहपूर्ण, शानदार और जीवन फूंकनेवाले थे कि वर्णन नहीं

किया जा सकता है। इस महान् अवसर पर मनुष्यों के हृदयों में देश-प्रेम की जितनी प्रबल धारा बह रही थी उतनी पहले कभी नहीं बही थी। यह एक महान् आंदोलन का महान् प्रारम्भ था, और निश्चय ही भारत की राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के इतिहास में इसका महत्वपूर्ण स्थान रहेगा।"

यात्रा में

गांधीजी सहारे के लिए हाथ में लम्बी लकड़ी लिये हुए चलते थे। उनकी सारी सेना बिलकुल करीने से पीछे-पीछे चलती थी। सेना-नायक का कदम फुर्ती से उठता था और सभी को प्रेरणा देता था। असलाली गांव १० मील दूर था, सारे रास्ते इस सेना को दोनों ओर खड़ी हुई भारी भीड़ के बीच में होकर गुजरना पड़ा। लोग घण्टों पहले से भारत के महान् सेनापति के दर्शनों की उत्सुकता में खड़े थे। इस अवसर पर अहमदाबाद में जितना बड़ा जुलूस निकला, उतना पहले कभी निकला हुआ याद नहीं पड़ता। शायद बच्चों और अपंगों के सिवा नगर का प्रत्येक निवासी इस जुलूस में शामिल था। इसकी लम्बाई दो मील से कम न थी जिन्हें बाजार में खड़े होने की जगह न मिली, वे छतों और झरोखों और दरख्तों पर, जहां-कहीं जगह मिली, पहुंच गये थे। सारे नगरमें उत्सव-सा दिखाई देता था। रास्ते-भर 'गांधीजी की जय' के गगनभेदी घोष होते रहे।

कूच को देखने और अपने अलौकिक उद्धारक के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए भीड़ सर्वत्र मिलती थी। मोर्च की एक नई झांकी दिखाई दे रही थी किन्तु उपदेश पुराना ही दिया गया। खद्दर, मदिरा-निषेध और अस्पृश्यता-निवारण की पुरानी किन्तु प्रिय बातें दोहराई जातीं। सिर्फ एक मांग यह थी कि सबको सत्याग्रह में शामिल होना चाहिए। कूच में ही गांधीजी ने घोषित कर दिया था "कि स्वराज्य नहीं मिला तो या तो रास्ते में मर जाऊंगा या आश्रम के बाहर रहूँगा। नमक-कर न उठा सका तो आश्रम लौटने का भी इरादा नहीं है।" कताई और ग्राम सफाई पर उन्होंने बराबर जोर दिया। स्वयंसेवक सैकड़ों की संख्या में शरीक हुए। गांधीजी की गिरफ्तारी होने ही वाली थी। श्री अब्बास तय्यबजी उनके उत्तराधिकारी मुकर्रर हुए। आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने कहा, "महात्मा गांधी की ऐतिहासिक कूच की उपमा हजरत मूसा और उनके यहूदी साथियों के देश-त्याग से ही दी जा सकती है। जबतक यह महापुरुष मंजिले-मकसूद पर नहीं पहुंच जायगा, पीछे फिरकर नहीं देखेगा"

गांधीजी ने कहा, "अंग्रेजी राज्य ने भारत का नैतिक, भौतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी तरह नाश कर दिया है। मैं इस राज्य को अभिशाप समझता हूं और इसे नष्ट करने का प्रण कर चुका हूं।

"मैंने स्वयं 'गौड सेव दि किंग' के गीत गाये हैं। दूसरों से गवाये हैं। मुझे 'भिक्षांदेहि' की राजनीति में विश्वास था। पर वह सब व्यर्थ हुआ। मैं जान गया कि इस सरकार को सीधा करने का यह उपाय नहीं है। अब तो राजद्रोह ही मेरा धर्म हो गया है। पर हमारी लड़ाई अहिंसा की लड़ाई है। हम किसी को मारना नहीं चाहते, किन्तु इस सत्यानाशी शासन को खत्म कर देना हमारा परम-कर्तव्य है।"

जम्बूसर नामक स्थान पर भाषण देते हुए गांधीजी ने पुलिस के थानेदारों के सामाजिक बहिष्कार की निन्दा की और कहा, "सरकारी कर्मचारियों को भूखों मारना धर्म नहीं है। शत्रु को सांप काट ले तो उसकी जान बचाने के लिए तो उसका जहर चूस लेने में भी मैं संकोच नहीं करूंगा।"

१४ फरवरी १९३० को कार्य-समिति ने नमक-सत्याग्रह के विषय में जो प्रस्ताव पास किया था २१ मार्च को महा-समिति ने अहमदाबाद की बैठक में उसका इस प्रकार समर्थन किया—

"यह समिति कार्य-समिति के १४ फरवरी वाले उस प्रस्ताव का समर्थन करती है, जिसमें सवि-

नय-अवज्ञा का प्रारम्भ और संचालन करने का महात्मा गांधी को अधिकार दिया गया था। साथ ही यह समिति गांधीजी, उनके साथियों एवं देश को १२ मार्च को शुरू किये गये कूच पर बधाई देती है। समिति को आशा है कि देशभर गांधीजी का इस काम में इस तरह साथ देगा जिससे पूर्ण-स्वराज का आन्दोलन शीघ्र सफल हो जाय।

"महासमिति प्रान्तीय समितियों को अधिकार देती है कि वे जिस प्रकार उचित समझें, उस प्रकार सविनय-अवज्ञा जारी कर दें; अलबत्ता समय-समय पर कार्य-समिति की आज्ञाओं का पालन करना प्रान्तीय समितियों के लिए आवश्यक होगा। किन्तु समिति को आशा है कि प्रान्त यथा-संभव नमक-कानून तोड़ने पर ही जोर लगावेंगे। समिति को विश्वास है कि सरकारी हस्तक्षेप की परवा न करके भी पूरी तैयारी तो जारी रक्खी जायगी, परन्तु जबतक गांधीजी दाण्डी पहुंचकर नमक-कानून का भंग न कर दें और दूसरों को भी अनुमति न दे दें तबतक अन्यत्र सविनय-अवज्ञा आरम्भ न की जायगी। हां, यदि गांधीजी पहले ही पकड़ लिये जायं तो प्रांतों को सविनय-अवज्ञा आरम्भ करने की पूरी आजादी होगी।"

तीर्थ-यात्रा

गांधीजी को कूच में २४ दिन लगे। रास्ते भर वे इस बात पर जोर देते रहे कि यह तीर्थ-यात्रा है। इसमें शरीर को कायम रखने मात्र के लिए खाने में ही पुण्य है, स्वादिष्ट भोजन करने में नहीं है। वे बराबर आत्म-निरीक्षण कराते रहे। सूरत में गांधीजी ने कहा—

"आज ही प्रातः कालीन प्रार्थना के समय मैं साथियों से कह रहा था कि जिस जिले में हमें सविनय-अवज्ञा करनी है उसमें हम पहुंच गये हैं। अतः हमें आत्म-शुद्धि और समर्पण-बुद्धि का और भी प्रयत्न करना चाहिए। यह जिला अधिक संगठित है और यहां कार्यकर्ताओं में घनिष्ठ मित्र भी अधिक हैं, इसलिए हमारी खातिर-तवाजो भी अधिक होने की संभावना है। देखना उनके आग्रह को न मानना। हम देवता नहीं हैं, निर्बल प्राणी हैं, आसानी से प्रलोभनों के शिकार हो जाते हैं। हमसे अनेक भूलें हुई हैं। कई तो आज ही प्रकट हुईं। जिस समय मैं यात्रियों की भूलों पर चिन्ता-मग्न था, उसी समय एक दोषी ने स्वयं आकर अपराध कबूल किया। मैंने समझ लिया कि मैंने चेतावनी देने में उतावली नहीं की है। स्थानीय कार्य-कर्ताओं ने हमारे लिए मोटर भरकर सूरत से दूध मंगवाया था और अन्य अनुचित खर्च किया था। अतः मैंने तीव्र शब्दों में उनकी भर्त्सना की। परन्तु इससे मेरा दुःख शान्त नहीं हुआ। उलटा ज्यों-ज्यों मैं उस भूल पर विचार करता हूं त्यों-त्यों दुःख बढ़ता ही है।

"इन बातों के मालूम होने पर मुझे लगता है कि मुझे वाइसराय साहब को वह पत्र लिखने का क्या हक था, जिसमें हमारी औसत आय से पांच हजार गुना वेतन लेने की कड़ी आलोचना की गई थी? वे तो उस वेतन का औचित्य सिद्ध कर ही कैसे सकते थे, हम खुद भी अपनी आमदनी से बेहिसाब ज्यादा तनख्वाह उन्हें देना बर्दाश्त नहीं कर सकते। परन्तु इसमें उनका व्यक्तिशः क्या दोष? उन्हें तो इसकी जरूरत नहीं। परमात्मा ने उन्हें धन दिया है। मैंने अपने पत्र में संकेत किया था कि शायद वे अपना सारा वेतन दान कर देते होंगे। मुझे बाद में मालूम हुआ कि मेरा अनुमान बहुत-कुछ सही है। फिर भी इतने भारी वेतन का तो मैं विरोध ही करूंगा। मैं तो ११०००) रु० मासिक क्या, २०००) रु० के पक्ष में भी राय नहीं दे सकता। परन्तु मुझे विरोध का हक किस हालत में है? अवश्य ही उस हालत में नहीं, जबकि मैं स्वयं जनता पर अनुचित भार डाल रहा हूं।

"मैं विरोध तभी कर सकता हूं जब मेरा रहन-सहन जनता की औसत-आय से कुछ तो साम्य

रखता हो। हम यह कूच परमेश्वर के नाम पर कर रहे हैं। हम अपने कार्य में नङ्गे, भूखे और बेकार लोगों की भलाई की दुहाई देते हैं। यदि हम देशवासियों की औसत-आय अर्थात् ७ पैसे रोज से पचास गुना खर्च अपने पर करा रहे हैं तो हमें वाइसराय के वेतन की टीका करने का कोई अधिकार नहीं है। मैंने कार्यकर्ताओं से खर्च का हिसाब और अन्य विगत मांगी है। कोई आश्चर्य नहीं, यदि इसमें प्रत्येक ७ पैसे का पचास गुना खर्च अपने ऊपर कर रहा हो। और होगा भी क्या, जब वे कहीं-न-कहीं से मेरे लिए बढ़िया-से-बढ़िया सन्तरे और अंगूर लायंगे, १ दर्जन सन्तरोंके स्थान पर १० दर्जन पहुंचायंगे और आधा सेर दूध की जरूरत होगी तो डेढ़ सेर ला धरेंगे? आपका जी दुखाने के भय का बहाना लेकर आपके परोसे हुए व्यंजन यदि हम खा लेंगे, तो भी वही परिणाम होगा। आप अमरूद और अंगूर लाकर देते हैं और हम उन्हें उड़ा जाते हैं। क्यों? इसलिए कि धनाढ्य किसान ने भेजे हैं! और फिर यह तो सोचिए कि किसी कृपालु मित्र ने मुझे फाउण्टेन-पेन दे दिया और मैंने बिना आत्म-पीड़ा अनुभव किये बढ़िया चिकने कागज पर उसीसे वाइसराय साहब को खत लिख डाला। क्या यह मुझे और आपको शोभा दे सकता है? क्या इस प्रकार लिखे हुए पत्र का कुछ भी असर हो सकता है?

"इस प्रकार के जीवन से तो अखा भगत की यह कहावत चरितार्थ होती है कि चोरी का माल खाना कच्चा पारा निगलना है। गरीब देश में बढ़िया भोजन करना चोरी करके खाना नहीं तो क्या है? चोरी का माल खाकर यह लड़ाई कभी नहीं जीती जा सकती। मैंने यह कूच हैसियत से ज्यादा खर्च करने के लिए शुरू भी नहीं की थी। हमें तो आशा है कि हमारी पुकार पर हजारों स्वयं सेवक हमारा साथ देंगे। उन पर बेशुमार खर्च करके रखना हमारे लिए असंभव होगा। मुझे इतना अधिक काम रहता है कि मैं अपने ८० साथियों तक के घनिष्ठ सम्पर्क में नहीं आ सकता। सबको अलग-अलग तो पहचान भी शायद न सकूं। इस कारण सार्वजनिक रूप में अपने दिल की बात कह डालने के सिवा मेरे पास दूसरा चारा ही न था। मुझे आशा है, आप मेरे सन्देश की मुख्य बात को समझते हैं। यदि वह न समझी, तो प्रस्तुत प्रयत्न से स्वराज्य पाने की आशा छोड़ देनी चाहिए। हमें करोड़ों मूक मनुष्यों के सच्चे अमानतदार बनना चाहिए।"

कहना न होगा कि इस भाषण का उपस्थित जनता पर जबरदस्त असर हुआ। नवसारी में पारसियों को सम्बोधन करके गांधीजी ने उनसे शराब का व्यापार छोड़ने का अनुरोध किया—'यदि हम नमक-कर और शराब की बिक्री को उठा देने में भी सफल हो गये, तो अहिंसा की जीत है। फिर पृथ्वी पर कौन शक्ति भारतवासियों को स्वराज्य लेने से रोक सकती है? यदि ऐसी शक्ति होगी, तो मैं उसे देख लूंगा। या तो जो चाहिए वह लेकर लौटूंगा, या मेरी लाश समुद्र पर तैरती मिलेगी।"

नमक-कानून टूटा

५ अप्रैल को प्रातःकाल गांधी जी दाण्डी पहुँचे। श्रीमती सरोजिनीदेवी भी उनसे मिलने आई थीं। प्रातःकाल की प्रार्थना के थोड़ी देर बाद गांधीजी और उनके साथी समुद्र-तट से नमक बीनकर नमक-कानून तोड़ने निकले। नमक-कानून तोड़ते ही गांधीजी ने यह वक्तव्य प्रकाशित किया—

"नमक-कानून विधिवत् भंग हो गया है। अब जो कोई सजा भुगतने को तैयार हो वह जहां चाहे और जब सुविधा देखे, नमक बना सकता है। मेरी सलाह यह है कि सर्वत्र कार्यकर्ता नमक बनावें; जहां उन्हें शुद्ध नमक तैयार करना आता हो वहां उसे काम में भी लावें और ग्राम-वासियों को भी सिखा दें, परन्तु उन्हें यह अवश्य जता दें कि नमक बनाने में सजा होने की जोखिम है। या यों

कहो कि गांव वालों को पूरी तरह समझा दिया जाय जिससे कि नमक-कर का भार किन-किन पर कितना पड़ता है, और इसके कानून को किस प्रकार तोड़ा जाय जिससे नमक-कर उठ जाय।

"गांव वालों को यह भी साफ-साफ समझा देना चाहिए कि कानून छिपकर नहीं, खोदे-धाड़े भंग करना है। समुद्र के पास दरारों और खड्डों में प्रकृति का बनाया हुआ नमक मिलता है। गांव वाले इसे अपने और अपने पशुओं के काम में ला सकते हैं और जिन्हें चाहिए उनके हाथों बेच भी सकते हैं। हां, यह भली-भांति समझ रखना चाहिए कि ऐसा करने वाले सब लोगों को नमक-कानून भंग करने के अपराध में सरकार सजा भी दे सकती है और नमक-विभाग के कर्मचारी दूसरी तरह भी तंग कर सकते हैं।

"नमक-कर के खिलाफ यह लड़ाई राष्ट्रीय सप्ताह भर, अर्थात् १३ अप्रैल तक, जारी रहनी चाहिए। जो इस पवित्र कार्य में शरीक न हो सकें उन्हें विदेशी वस्त्र-बहिष्कार और खद्दर-प्रचार के लिए व्यक्तिशः काम करना चाहिए। उन्हें अधिक-से-अधिक खादी बनवाने का भी प्रयत्न करना चाहिए। इस काम के और मदिरा-निषेध के बारे में मैं भारतीय महिलाओं के लिए अलग सन्देश तैयार कर रहा हूं। मेरा विश्वास दिन-दिन दृढ़ होता जा रहा है कि स्वाधीनता की प्राप्ति में स्त्रियां पुरुषों से अधिक सहायक हो सकती हैं। मुझे लगता है कि अहिंसा का अर्थ वे पुरुषों से अच्छा समझ सकती हैं। यह इसलिए नहीं कि वे अबला हैं—पुरुष अहंकार-वश उन्हें ऐसा ही समझते हैं—बल्कि सच्चे साहस और आत्म-त्याग की भावना उनमें पुरुषों से कहीं अधिक है।"

दूसरे वक्तव्य में गांधीजी ने कहा—

"मुझे अब तक जो सूचनायें मिली हैं उनसे मालूम होता है कि गुजरात ने सामूहिक अवज्ञा का जो ज्वलन्त प्रमाण दिया है उसका सरकार पर असर हो गया है। उसने प्रधान व्यक्तियों को गिरफ्तार करने में विलम्ब नहीं किया। मैं यह भी जानता हूं कि ऐसी ही कृपा सरकार ने अन्य प्रान्तों के कार्यकर्त्ताओं पर भी अवश्य की होगी। इस पर उन्हें बधाई!

"यदि सत्याग्रहियों को सरकार जो चाहे सो करने देती तो आश्चर्य की ही बात होती। साथ ही यदि वह बिना अदालती कार्रवाई के उनके जान-माल पर हाथ डालती तो वह भी पाशविकता होती।

"व्यवस्थित रूप से मुकदमे चलाकर सजायें देने पर कौन आपत्ति कर सकता है? आखिर कानून-भंग का यह नतीजा तो सीधा ही है।

"कारावास और ऐसी ही अन्य कसौटियों पर तो सत्याग्रही को उतरना ही पड़ता है। उसका उद्देश्य तभी पूरा होता है जब वह स्वयं भी विचलित न हो और उसके चले जाने पर वे लोग भी न घबरायें जिनका वह प्रतिनिधि है। यही अवसर है कि सबको अपना ही नेता और अपना अनुयायी बन जाना चाहिए।

"सरकारी या सरकार द्वारा नियन्त्रित शिक्षण-संस्थाओं के छात्र यदि इन सजाओं के बाद भी ये संस्थायें न छोड़ेंगे तो मुझे दुःख होगा।"

स्त्रियों के विषय में गांधीजी ने नवसारी में कहा—

"स्त्रियों को पुरुषों के साथ नमक की कड़ाइयों की रक्षा नहीं करनी चाहिए। मैं सरकार पर इतना विश्वास अब भी रख सकता हूं कि वह हमारी बहनों से लड़ाई मोल नहीं लेगी। इसकी उत्तेजना देना हमारे लिए भी अनुचित होगा। जबतक सरकार की कृपा पुरुषों तक ही सीमित रहती है तबतक पुरुषों को ही लड़ना चाहिए; जब सरकार सीमोल्लंघन करे तब भले ही स्त्रियां भी खोलकर

लड़ें। कोई यह न कहे कि 'चूंकि हम जानते थे कि स्त्रियां कितनी भी आगे बढ़कर कानून भंग करें उनपर कोई हाथ न डालेगा, इसीलिए पुरुषों ने स्त्रियों की आड़ ली।' मैंने स्त्रियों के सामने जो कार्यक्रम रक्खा है उनमें उनके बहुत काम हैं। वे जितना सामर्थ्य हो, साहस दिखावें और जोखिम उठावें।"

६ अप्रैल से नमक-सत्याग्रह की छुट्टी क्या मिली, देश में इस छोर से उस छोर तक आग-सी लग गई। सारे बड़े-बड़े शहरों में लाखों की उपस्थित में विराट सभायें हुईं। करांची, पूना, पेशावर, कलकत्ता, मदरास और शोलापुर की घटनाओं ने नया अनुभव कराया और दिखा दिया कि इस सभ्य सरकार का एकमात्र आधार हिंसा है। पेशावर में सेना की गोलियों से कई आदमी मारे गये। मदरास में भी गोली चली।

करांची दुर्घटना का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने लिखा—

"बहादुर युवक दत्तात्रेय, कहते हैं सत्याग्रह को जानता भी न था। पहलवान था, इसलिये सिर्फ शान्ति कायम रखने के लिए गया था। गोली लगकर मारा गया। १८ साल का नौजवान मेघराज रेवाचन्द्र गोली का शिकार हुआ। इस प्रकार जयरामदास सहित ७ मनुष्य गोली से घायल हुए।"

२३ अप्रैल को बंगाल-आर्डिनेन्स फिर जारी कर दिया गया। २७ अप्रैल को वाइसराय साहब ने भी कुछ संशोधन करके १९१० के प्रेस-ऐक्ट को आर्डिनेन्स-रूप में फिर से जीवित कर दिया। गांधीजी का 'यंग इण्डिया' अब साइक्लोस्टाइल पर निकलने लगा था। एक वक्तव्य में उन्होंने कहा—

"हमें अनुभव होता हो या न होता हो, कुछ दिन से हमपर एक प्रकार से फौजी शासन हो रहा है। फौजी शासन आखिर है क्या? यही कि सैनिक अफसर की मर्जी ही कानून बन जाती है। फिलहाल वाइसराय वैसा अफसर है और वह जहां चाहे साधारण कानून को बालाय-ताक रखकर विशेष आज्ञायें लाद देता है और जनता बेचारी में उनके विरोध करने का दम नहीं होता। पर मैं आशा करता हूं, वे दिन जाते रहे कि अंग्रेज शासकों के फरमानों के आगे हम चुपचाप सिर झुका दें।

"मुझे उम्मीद है कि जनता इस आर्डिनेन्स से भयभीत न होगी और अगर लोकमत के सच्चे प्रतिनिधि होंगे तो अखबारवाले भी इससे नहीं डरेंगे। थोरो का यह उपदेश हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए कि अत्याचारी शासन में ईमानदार आदमी का धनवान रहना कठिन होता है। अतः जब हम चीं-चपड़ किये बिना अपने शरीर ही अधिकारियों के हवाले कर देते हैं तो हमें उसी भांति अपनी अपनी सम्पत्ति भी उनके सुपुर्द कर देने में क्यों हिचकिचाहट होनी चाहिए? इससे हमारी आत्मा की तो रक्षा होगी।

"इस कारण मैं सम्पादकों और प्रकाशकों से अनुरोध करना चाहता हूं कि वे जमानत देने से इन्कार कर दें और सरकार न माने तो या तो वे प्रकाशन बन्द कर दें, या सरकार जो-कुछ जब्त करना चाहे कर लेने दें। जब स्वतन्त्रता-देवी हमारा द्वार खटखटा रही है और उसे रिझाने को हजारों ने घोर यातनायें सहन की हैं, तो देखना, अखबार वालों को कोई यह न कह सके कि मौका पड़ने पर वे पूरे नहीं उतरे। सरकार टाइप और मशीनरी जब्त कर सकती है; परन्तु कलम और जबान को कौन छीन सकता है? और असल चीज तो राष्ट्र की विचार-शक्ति है; वह तो किसी के दबाये नहीं दब सकती।"

थोड़े दिन बाद गांधीजी ने अपने 'नवजीवन प्रेस' के व्यवस्थापक को कह दिया कि सरकार

जमानत मांगे तो न दी जाय और प्रेस को जब्त होने दिया जाय। 'नवजीवन' गया और उसके साथ-साथ नवजीवन-प्रेस द्वारा प्रकाशित अन्य पत्र भी जाते रहे। देश के अधिकांश पत्रकारों ने जमानतें दाखिल कर दीं।

अब गांधीजी ने जनता को गांवों में ताड़ी के सारे पेड़ काट डालने का आदेश दिया। शुरुआत तो उन्होंने अपने ही हाथों से की। ४ मई को सूरत में स्त्रियों की सभा में वह बोले—"भविष्य में तुम्हें तकली के बिना सभाओं में न आना चाहिए। तकली पर तुम बारीक-से-बारीक सूत कात सकती हो। विदेशी कपड़ा पहले-पहल सूरत के बन्दर पर उतरा था। सूरत की बहनों को ही इसका प्रायश्चित्त करना है।" यहीं पर उन्होंने जातीय पंचायतों से अपनी मदिरा-त्याग की प्रतिज्ञा पालन करने का अनुरोध किया। किन्तु नवसारी में सरकारी कर्मचारियों के सामाजिक बहिष्कार के विरुद्ध उन्हें जनता को चेतावनी देनी पड़ी। खेड़ा जिला गुजरात का रणांगण बन गया था। गांधीजी ने 'नवजीवन' में लिखा:—

"जनता ने शान्ति तो रक्खी है; किन्तु जोरदार सामाजिक बहिष्कार करके उसने क्रोध, द्वेष और इसलिए हिंसा का परिचय दिया है। छोटी-छोटी बातों पर सरकारी कर्मचारियों को फटकारा और तंग किया जाता है। इस तरीके से हमारी जीत नहीं होने वाली है। हमें मामलतदार और फौजदार के काम की बुराई का भण्डा-फोड़ तो करना चाहिए, किन्तु उनका कठोर बहिष्कार करते समय हमें माधुर्य और आदर-भाव नहीं छोड़ना चाहिए। अन्यथा किसी दिन दंगे होंगे। मामलतदार और फौजदार वगैरा मर्यादा छोड़ देंगे। फौजदार ने तो छोड़ भी दी बताते हैं। फिर जनता भी मर्यादा छोड़ दे तो क्या आश्चर्य! इसी प्रकार किसी की जबान चल जाय और उत्तर में दूसरे का हाथ चले तो उसे दोष भी कौन दे?

"खेड़ा जिला-निवासियों को सावधान होकर बहिष्कार को मर्यादा के भीतर रखना चाहिए। उदाहरणार्थ मैंने संकेत कर दिया है कि ग्राम कर्मचारियों का बहिष्कार उनके काम तक ही सीमित रहना चाहिये। उनकी आज्ञा न मानी जाय, परन्तु उनका खाना-पीना बन्द न होना चाहिए। उन्हें घरों से नहीं निकालना चाहिए। यदि हमसे इतना न हो सके तो बहिष्कार छोड़ देना चाहिए।"

धारासना पर धावा

इस समय गांधीजी ने वाइसराय साहब के लिए अपना दूसरा पत्र तैयार किया और सूरत जिले के धारासना और छरसाड़ा के नमक के कारखानों पर धावा करने का इरादा जाहिर किया। उन्होंने वाइसराय को लिखा:—

"ईश्वर ने चाहा तो धारासना पहुंच कर नमक के कारखाने पर अधिकार करने का मेरा इरादा है। मेरे साथी भी मेरे साथ रवाना होंगे। जनता को यह बताया गया है कि धारासना व्यक्तिगत सम्पत्ति है। यह महज धोखाधड़ी है। धारासना पर सरकार का उतना ही वास्तविक नियंत्रण है जितना वाइसराय साहब की कोठी पर है। अधिकारियों की स्वीकृति के बिना चुटकी-भर नमक भी कोई वहां से नहीं ले जा सकता।

"इस धावे को—रोकने के तीन उपाय हैं—

(१) नमक-कर उठा देना।

(२) मुझे और मेरे साथियों को गिरफ्तार कर लेना। परन्तु जैसी मुझे आशा है, यदि एक के बाद दूसरे गिरफ्तार होने के लिए आते रहेंगे तो यह उपाय कारगर न होगा।

(३) खालिस गुण्डापन। परन्तु एक का सिर फूटने पर दूसरा सिर फुड़वाने को तैयार रहेगा तो यह वार भी खाली जायगा।

"यह निश्चय विना हिचक के नहीं कर लिया गया। मुझे आशा थी कि सत्याग्रहियों के साथ सरकार सभ्य तरीके से लड़ेगी। यदि उनपर साधारण कानून का प्रयोग करके सरकार सन्तोष कर लेती तो मैं कही क्या सकता था? इसके बजाय जहां प्रसिद्ध नेताओं के साथ सरकार ने थोड़ा-बहुत भद्रता बरता भी है, वहां साधारण सैनिकों पर पाशविक ही नहीं निर्लज्ज प्रहार भी किये गये हैं। ये घटनायें इक्की-दुक्की होतीं तो उपेक्षा भी कर ली जाती। परन्तु मेरे पास बंगाल, बिहार, उत्कल, संयुक्तप्रान्त, दिल्ली और बम्बई से जो संवाद पहुंचे हैं उनसे गुजरात के अनुभव का समर्थन होता है। गुजरात-सम्बन्धी सामग्री तो मेरे पास ढेरों है। करांची, पेशावर और मदरास के गोली-काण्ड भी अकारण एवं अनावश्यक प्रतीत होते हैं। हड्डियां चूर-चूर करके और अण्डकोष दबा-दबा कर स्वयंसेवकों से वह नमक छीनने का प्रयत्न किया गया है जो सरकार के लिए निकम्मा था। हां, स्वयंसेवकों के लिए अलबत्ता वह बेशकीमती था। कहा जाता है कि मथुरा में नायब मजिस्ट्रेट ने १० वर्ष के बालक के हाथ में से राष्ट्रीय झण्डा छीन लिया। यह कार्य कानून के विरुद्ध था। परन्तु जब जनता ने झण्डा वापस मांगा तो उसे निर्दय प्रहार करके खदेड़ दिया गया। अधिकारी स्वयं अपना अपराध समझते थे तभी तो अन्त में झण्डा वापस दे दिया गया। बंगाल में नमक के सम्बन्ध में मुकदमे और प्रहार तो कम ही हुए दीखते हैं, परन्तु स्वयंसेवकों से झण्डा छीनने के काम में अकल्पनीय निर्दयता का परिचय दिया गया बताते हैं। समाचार है कि चावल के खेत जला दिये गये और खाद्य-पदार्थ जबरदस्ती लूट लिये गये। कर्मचारियों के हाथ शाक-भाजी न बेचने के अपराध पर गुजरात में एक सब्जी की मण्डी ही नष्ट कर दी गई। ये कृत्य जन-समूहों की आंखों के सामने हुए हैं। कांग्रेस की आज्ञा न होती तो क्या ये लोग बदला लिये विना छोड़ते? कृपया इन वृत्तान्तों पर विश्वास कीजिए। ये मुझे उन लोगों से मिले हैं जिन्होंने सत्य का व्रत ले रक्खा है। बारडोली की भांति बड़े-बड़े कर्मचारियों द्वारा किया गया प्रतिवाद भी झूठा सिद्ध हुआ है। मुझे खेद है, इन दिनों भी कर्मचारी झूठी बातें प्रकाशित करने से बाज नहीं रहे। गुजरात के कलक्टरों के दफ्तर से जो सरकारी विज्ञप्तियां निकली हैं, उनके कुछ नमूने ये हैं—

१. 'वयस्क लोग प्रतिवर्ष २॥ सेर नमक खाते हैं इसलिए प्रति व्यक्ति तीन आना कर देते हैं। सरकार एकाधिकार हटा ले तो लोगों को अधिक मूल्य देना पड़ेगा और एकाधिकार के हटने से सरकार को जो हानि होगी वह भी पूरी करनी पड़ेगी। समुद्र-तट से बटोरा हुआ नमक खाने के काम का नहीं होता, इसलिए सरकार उसे नष्ट कर देती है।'

२. 'गांधीजी कहते हैं कि इस देश में हाथ-कताई का उद्योग सरकार ने नष्ट कर दिया। परन्तु सब लोग जानते हैं कि यह बात सच नहीं है। देश भर में कोई गांव ऐसा नहीं है जहां आज भी रूई हाथ से न काती जाती हो। इतना ही नहीं, प्रत्येक प्रान्त में सरकार कातने वालों को बढ़िया तरीके बताती है और कम कीमत पर अच्छे औजार देकर उनकी सहायता करती है।'

३. 'सरकार ने जितना ऋण लिया है उसके पांच में से चार रुपये प्रजा की भलाई के कामों में लगाये हैं।'

"मैंने ये तीन तरह के बयान तीन अलग-अलग हस्त-पत्रकों में से लिये हैं। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि इनमें से एक-एक बयान झूठे साबित किये जा सकते हैं। प्रत्येक वयस्क उपर्युक्त मात्रा से कम-से-कम तिगुना नमक काम में लेता है और इसलिए निश्चय ही ९ आने प्रति वर्ष तो

कर के देता ही है। और यह कर लिया भी जाता है स्त्री, पुरुष, बच्चे, पालतू पशु, छोटे-बड़े और अच्छे-बीमार सब से।

यह कहना एक दुष्टतापूर्ण असत्य है कि हर गांव में एक-एक चर्खा चलता है और सरकार चर्खा-आन्दोलन को किसी भी रूप में प्रोत्साहन देती है। सरकारी ऋण के पांच में से चार हिस्से सार्वजनिक हित के लिए खर्च होने की झूठी बात का उत्तर तो अर्थशास्त्री लोग अधिक अच्छा दे सकते हैं। परन्तु ये नमूने तो उन बातों के हैं जो सरकार के सम्बन्ध में जनताके सामने रोज आती हैं। उस दिन एक बार गुजराती कवि को झूठी सरकारी शहादत पर सजा दे दी गई। कवि बेचारा कहता ही रहा कि मैं तो उस समय दूसरे स्थान पर सुख की नींद ले रहा था।

"अब सरकार की निष्क्रियता की बानगी देखिये। शराब के व्यापारियों ने धरना देने वालों को पीटा और नियम-विरुद्ध शराब बेची। सरकारी आदमियों तक ने कबूल किया कि स्वयं-सेवक शांत थे। फिर भी कर्मचारियों ने न तो मारपीट पर ध्यान दिया और न शराब की अनियमित बिक्री पर। मार-पीट के बारे में तो सबको मालूम होते हुए भी कर्मचारी यह बहाना कर सकते हैं कि किसी ने शिकायत नहीं की।

"और अब देश की छाती पर एक नया आर्डिनेन्स और लाद दिया है। इसकी कोई मिसाल नहीं मिलती। भगतसिंह वगैरा के मुकदमे में कानून के द्वारा देर होती, उससे बचने के लिए साधारण जाब्ते को ताक में रखने का आपको अच्छा अवसर मिल गया। इन कृत्यों को फौजी-शासन कहा जाय तो आश्चर्य क्यों होना चाहिए! और अभी तो आन्दोलन का पांचवा सप्ताह ही है।

"ऐसी दशा में, कुछ समय से भय-प्रदर्शन का बोलबाला शुरू हुआ है। उसका आतङ्क देश पर छा जाय उससे पहले ही अधिक साहस का काम, अधिक कठोर कार्रवाई कर डालना चाहता हूं, जिससे आप का क्रोध जल्दी ही भड़क उठे और वह अधिक साफ रास्ते पर चल निकले। मैंने जो बातें बयान की हैं उनका सम्भव है आपको इल्म न हो। शायद आपको उनपर अब भी भरोसा न हो। मेरा धर्म तो आपका ध्यान दिलाना मात्र है।

"कुछ भी हो, मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मैं आपसे सत्ता के लाल पंजे को पूरी तरह आजमा लेने का अनुरोध करूं। ऐसा न करना मेरे लिए कायरता की बात होगी। जो लोग आज कष्ट-सहन कर कर रहे हैं, जिनकी मिल्कियत बरबाद हो रही है, उन्हें यह कदापि न अनुभव होना चाहिए कि मैंने उनकी सहायता से इस लड़ाई को छेड़ तो दिया पर कार्यक्रम को उस हद तक पूरा नहीं किया जिस हद तक वह किया जा सकता था। क्योंकि एक तो इस लड़ाई के बदौलत सरकार का असली रूप प्रकट हुआ और दूसरे इसके छेड़ने में मेरा ही मुख्य हाथ रहा है।

"सत्याग्रह-शास्त्र के अनुसार सत्ताधारी जितना अधिक दमन और कानून-भंग करेंगे, सत्याग्रही उतने ही अधिक कष्टों को आमन्त्रण देंगे। स्वेच्छा-पूर्वक सहन किया जाय तो जितना अधिक कष्ट-सहन उतनी ही निश्चित सफलता।

"मैं जानता हूं कि मेरे प्रतिपादित उपायों में कितनी विपत्तियां निहित हैं। परन्तु अब देश मुझे समझने में भूल करनेवाला नहीं दीखता। मैं जो सोचता और मानता हूं वही करता हूं। मैं भारत में गत १५ वर्ष से और भारत से बाहर और भी २० वर्ष पहले से कहता आया हूं कि हिंसा पर शुद्ध अहिंसा की ही विजय हो सकती है। मैंने यह भी कहा है कि हिंसा के एक-एक कार्य, शब्द और विचार से भी अहिंसात्मक कार्य की प्रगति में बाधा पड़ती है। बार-बार ऐसी चेतावनियां देने पर भी लोग हिंसा कर बैठें तो मैं क्या करूं? मेरे सिर पर उस दशा में उतना ही दायित्व होगा जितना प्रत्येक

मनुष्य का दूसरे के कार्यों के लिए अनिवार्य रूप से हुआ करता है। इसके अलावा और मेरी जिम्मेदारी नहीं हो सकती। दायित्व की बात छोड़ दी जाय तो भी मैं अपना काम किसी भी कारणवश मुल्तवी नहीं रख सकता। अन्यथा अहिंसा में वह शक्ति ही कहां रहे, जो संसार के सन्तों ने वर्णन की है और जो मेरे दीर्घकालीन अनुभव ने सिद्ध की है ?

"हां, मैं आगे की कार्रवाई सहर्ष स्थगित रख सकता हूं। आप नमक-कर उठा दीजिए। इसकी निन्दा आपके कई विख्यात देश-वासियों ने बुरी तरह की है; और अब तो आपने देख लिया होगा कि सविनय-अवज्ञा के रूप में इस देश ने भी सर्वत्र इसपर रोष प्रकट कर दिया है। आप सविनय-अवज्ञा को भर-पेट कोसिये। परन्तु क्या आप कानून भंग से हिंसामय विद्रोह को अच्छा समझते हैं ? आपने कहा है कि सविनय-अवज्ञा का परिणाम हिंसा हुए बिना नहीं रहेगा। ऐसा हुआ तो इतिहास यही निर्णय देगा कि ब्रिटिश-सरकार अहिंसा को नहीं समझी और इसीलिए उसकी सुनवाई भी नहीं की; फल यह हुआ कि मनुष्य-स्वभाव सरकार की प्रिय और परिचित वस्तु, हिंसा पर उतर आने को विवश हुआ। परन्तु मुझे आशा है कि सरकारी उत्तेजना के बावजूद परमात्मा भारत-वासियों को हिंसा के प्रलोभन से दूर रहने की बुद्धिमत्ता और शक्ति प्रदान करेगा।

"अतः आप नमक-कर उठा न सकें और नमक बनाने की मनाही दूर न करा सकें तो मुझे अनिच्छा होते हुए भी इस पत्र के आरम्भ में वर्णित कार्रवाई करनी पड़ेगी।"

गांधीजी की गिरफ्तारी

५ तारीख की रात को १ बजकर १० मिनट पर गांधीजी को चुपके से गिरफ्तार करके मोटर लारी में बिठा दिया गया। साथ में पुलिसवाले थे। बम्बई के पास बोरीविली तक रेलगाड़ी में और वहां से यरवड़ा-जेल तक मोटर में पहुंचा दिया गया। 'लन्दन टैलीग्राफ' नामक अखबार के संवाददाता अशमीद बार्टलेट ने इस प्रसंग पर लिखा था—

"जब हम गाड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे उस समय हमें वातावरण में नाटक का-सा चमत्कार प्रतीत होता था। हमें लगा, इस दृश्य के प्रत्यक्षद्रष्टा हमी हैं। कौन जाने यह घटना आगे चलकर ऐतिहासिक बन जाय ? एक ईश्वर-दूत की गिरफ्तारी कोई छोटी बात है ? सच्चे झूठे की भगवान जाने, परन्तु इसमें कोई शक नहीं कि गांधी आज करोड़ों भारतीयों की दृष्टि में महात्मा और दिव्य-पुरुष हैं। कौन कह सकता है कि सौ वर्ष बाद तीस करोड़ भारतीय उसे अवतार मानकर नहीं पूजेंगे ? इन विचारों को हम रोक न सके और इस ईश्वर-दूत को हिरासत में लेने के लिए उषा के प्रकाश में रेल की पटरी पर खड़ा रहना हमें अच्छा नहीं लगा।"

हां, गिरफ्तार होने से पहले गांधीजी ने दाण्डी में अपना अन्तिम सन्देश लिखवा दिया था। वह यह था —

"यदि इस शुभारम्भ को अन्त तक निभा लिया तो पूर्ण-स्वराज्य मिले बिना नहीं रह सकता। फिर भारतवर्ष समस्त संसार के सम्मुख जो उदाहरण उपस्थित करेगा वह उसके योग्य ही होगा। त्याग के बिना मिला हुआ स्वराज्य टिक नहीं सकता। अतः सम्भव है जनता को असीम बलिदान करना पड़े। सच्चे बलिदान में एक ही पक्ष को कष्ट झेलने पड़ते हैं, अर्थात् बिना मारे मरना पड़ता है। परमात्मा करे भारत इस आदर्श को पूरा कर दिखावे। सम्प्रति भारत का स्वाभिमान और सर्वस्व एक मुट्ठी नमक में निहित है। मुट्ठी टूट भले ही जाय, पर खुलनी हरगिज न चाहिए।

"मेरी गिरफ्तारी के बाद जनता या मेरे साथियों को घबराना न चाहिए। इस आन्दोलन का संचालक में नहीं हूँ, परमात्मा है। वह इसके हृदय में निवास करता है। हममें श्रद्धा होगी तो वह अवश्य रास्ता दिखावेगा। हमारा मार्ग निश्चित है। गांव-गांव को नमक बीनने या बनाने को निकल पड़ना चाहिए। स्त्रियों को शराब, अफीम और विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देना चाहिए। घर-घर में आबाल-वृद्ध सबको तकली पर कातना शुरू कर देना चाहिये और रोज सूत के ढेर लग जाने चाहिए। विदेशी वस्त्रों की होलियां की जायं। हिन्दू किसी को अछूत न माने। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई सब हृदय से गले मिलें। बड़ी जातियां छोटी जातियों को देने के बाद बचे हुए भाग से सन्तोष करें। विद्यार्थी सरकारी मदरसे छोड़ दें और सरकारी नौकर उन पटेलों और तलाटियों की भांति नौकरियां छोड़कर जनता की सेवा में जुट जायं। इस प्रकार आसानी से हमें पूर्ण स्वराज्य मिल जायगा।"

गांधीजी की गिरफ्तारी पर देश के इस छोर से उस छोर तक सहानुभूति की लहर अपने-आप फैल गई। गिरफ्तारी का समाचार पहुंचना था कि बम्बई, कलकत्ता और अनेक स्थानों पर सम्पूर्ण और स्वेच्छा-पूर्वक हड़ताल होगई। गिरफ्तारी के दूसरे दिन की हड़ताल और भी व्यापक थी। बम्बई में विराट् जुलूस निकला। शाम को इतनी विशाल सभा हुई कि कई मंचों पर से भाषण देने पड़े। ८० में से ४० के लगभग मिलें बन्द रहीं; कारण ५० हजार मजदूर विरोध-स्वरूप निकल आये थे। जी० आई० पी० और बी० बी० सी० आई० के कारखानों के मजदूर भी काम छोड़कर हड़ताल में शरीक होगये थे। गिरफ्तारी पर अपनी नाराजी जाहिर करने के लिए कपड़े के व्यापारियोंने ६ दिन की हड़ताल का निश्चय किया। गांधीजी पूना में नजरबन्द किये गये थे। वहां भी पूरी हड़ताल हुई। समय-समय पर सरकारी पदों और पदवियों के छोड़ने की घोषणा होने लगी। इस देश ने प्रायः सर्वत्र महात्माजी के उपदेशों का आश्चर्यजनक रूप में पालन किया। एक-दो स्थानों पर झगड़ा भी होगया। शोलापुर में ६ पुलिस-चौकियां जला दी गईं, जिनके फल-स्वरूप पुलिस ने गोली चलाई, जिसमें २५ व्यक्ति मरे और लगभग १००० घायल हुए। कलकत्ते में शहर की हड़तालें तो शान्तिपूर्ण रहीं, परन्तु हवड़ा और पंचतल्ला में भीड़ को तितर-बितर करने के लिए पुलिस ने गोली चला दी। १४४ वीं धारा के अनुसार ५ से अधिक मनुष्यों के एकत्र होने की मनाही कर दी गई।

परन्तु गांधीजी की गिरफ्तारी का असर तो विश्व-व्यापी हुआ। पनामा के भारतीय व्यापारियों ने २४ घण्टे की हड़ताल मनाई। सुमात्रा के पूर्वीय समुद्र-तटवासी हिन्दुस्तानियों ने भी ऐसा ही किया और वाइसराय साहब एवं कांग्रेस को तार भेज कर गांधीजी की गिरफ्तारी पर खेद प्रकट किया। फ्रांस के पत्र गांधीजी और उनकी बातों से भरे थे। बहिष्कार-आन्दोलन का परिणाम जर्मनी पर भी हुआ। वहां के कपड़े के व्यापारियों को उनके भारतीय आढ़तियों ने माल भेजने की मनाही करदी। रूटर ने यह समाचार भेजा कि सैक्सनी की सस्ती छींट के कारखानों को खास तौर पर हानि हो रही है। नैरोबी के भारतीयोंने भी हड़ताल रक्खी।

इसी बीच में अमरीका के भिन्न-भिन्न दलों के १०२ प्रभावशाली पादरियों ने तार-द्वारा रैम्जे मैकडानल्ड साहब की सेवा में आवेदन-पत्र भेजा और उनसे अनुरोध किया कि गांधीजी और भारत-वासियों के साथ शान्तिपूर्ण समझौता किया जाय। इसपर हस्ताक्षर न्यूयॉर्क के रेक्टर जॉन हेनीज होम्स ने करवाये थे। सन्देश में प्रधानमन्त्री से अपील की गई थी कि भारत, ब्रिटेन और जगत् का हित इसी में है कि इस संघर्ष को बचाया जाय और समस्त मानव-जाति को भयंकर विपत्ति से रक्षा की जाय।

भारत-सरकार को स्थिति की गंभीरता का अवश्य पूरा खयाल था। वाइसराय साहब ने सर तेज बहादुर सप्रू और सर चिम्मनलाल सीतलवाड जैसे नरम नेताओं से लम्बी-लम्बी मुलाकातें कीं। नरम-दल-संघ की कौंसिल की बम्बई में बैठक हुई। उसने राजनैतिक परिस्थिति पर विचार किया और नरम नेताओं ने इस बात की आवश्यकता बताई कि वाइसराय साहब शीघ्र ही दूसरी घोषणा करें और गोलमेज-परिषद् की तारीखें मुकर्रर करें। किन्तु सर्वदल-सम्मेलन और नरम-दल की कौंसिल की बैठक के एक दिन पहले ही वाइसराय साहब ने दूसरी महत्वपूर्ण घोषणा कर दी और प्रधानमन्त्री के साथ का अपना पत्र-व्यवहार भी प्रकाशित कर दिया। नरम-दल की कौंसिल ने भी मौजूदा परिस्थिति पर एक वक्तव्य निकाला। इसमें कानून-भंग के आन्दोलन की भरपेट निन्दा की गई और औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा के लिए गोलमेज-परिषद् की जल्दी तैयारी करने का वाइसराय साहब से भी अनुरोध किया गया। इस बात पर भी जोर दिया गया कि सरकार परिषद् की शर्तें और मर्यादायें प्रकट कर दे, ताकि उस समय भी जो लोग परिषद् से अलग थे वे नरम दल वालों के साथ उसमें शामिल हो सकें। इस बात पर भी आग्रह किया गया कि कानून-भंग का आन्दोलन और सरकार का दमन-चक्र साथ-साथ बन्द हो, राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायं और सब राजनैतिक दलों पर सरकार पूर्ण विश्वास करे।

कार्य-समिति के प्रस्ताव

महात्माजी के स्थान पर श्री अब्बास तैयबजी नमक-सत्याग्रह के नायक हुए थे। वे भी १२ अप्रैल को गिरफ्तार कर लिये गये। गिरफ्तारियों, लाठी-प्रहारों और दमन का दौर-दौरा जारी रहा। एक के बाद दूसरा स्वयंसेवक-दल नमक के गोदामों पर धावा करता रहा। पुलिस उन्हें लाठियों से मारती रही। बहुतों को सख्त चोटें आईं।

गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद कार्य-समिति की बैठक प्रयाग में हुई और उसने कानून-भंग का क्षेत्र और भी विस्तृत कर दिया। नीचे लिखे प्रस्ताव स्वीकृत हुए—

"१. कराडी तक महात्मा गांधी के साथ जाने वाले स्वयंसेवकों को कार्य-समिति बधाई देती है और आशा करती है कि नये-नये दल धावे करते रहेंगे। समिति निश्चिय करती है कि अब से नमक के धावों के लिए धरसाना अखिल-भारतीय केन्द्र माना जाय।

"२. गांधीजी ने इस महान् आन्दोलन का संचालन करके देश को जो मार्ग दिखाया है उसकी कार्य-समिति प्रशंसा करती है, सविनय कानून-भंग में अपना शाश्वत विश्वास प्रकट करती है और महात्माजी के कारावास-काल में लड़ाई को दुगुने उत्साह से चलाने का निश्चय करती है।

"३. समिति की राय में अब समय आ गया है कि समस्त राष्ट्र ध्येय की प्राप्ति के लिए प्राणों की बाजी लगाकर कोशिश करे। अतः समिति विद्यार्थियों, वकीलों, व्यवसायियों, मजदूरों, किसानों, सरकारी नौकरों और समस्त भारतीयों को आदेश देती है कि वे इस स्वातंत्र्य-संग्राम की सफलता के लिए अधिक-से-अधिक कष्ट उठाकर भी सहायता दें।

"४. समिति की राय में देश का हित इसीमें है कि विदेशी वस्त्र-बहिष्कार समस्त देश में अविलम्ब पूरा हो जाय और इसके लिए मौजूदा माल की बिक्री रोकने, पहले के दिये हुए आर्डर रद कराने और नये आर्डर न भिजवानेके लिए कारगर उपाय किये जायं। समिति समस्त कांग्रेस-कमिटियों को आदेश देती है कि वे विदेशी वस्त्र-बहिष्कार का तीव्र प्रचार करें और विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग बिठा दें।

"५. समिति पण्डित मदनमोहन मालवीय द्वारा किये गये बहिष्कार-आन्दोलन की सहायता

के प्रयत्नों की प्रशंसा करती है, किन्तु उसे खेद है कि वह ऐसा कोई समझौता मंजूर नहीं कर सकती जिससे मौजूदा माल बेचने दिया जा सके और समय-विशेष के लिए विदेशी कपड़ा न मंगाने के व्यापारियों के वचन से सन्तोष किया जा सके। समिति सभी कांग्रेस-समितियों को ऐसे किसी समझौते में शामिल होने से मना करती है।

"६. समिति निश्चय करती है कि बढ़ती हुई मांग पूरी करने के लिए हाथ-कते हाथ-बुने कपड़े की पैदावार बढ़ाई जाय, रुपये से बेचने के साथ-साथ सूत लेकर खद्दर देने वाली संस्थायें खड़ी की जायं और सामान्यतः हाथ कताई को प्रोत्साहन दिया जाय। समिति प्रत्येक देशवासी से अपील करती है कि वह रोज थोड़ी-बहुत देर अवश्य काते।

"७. समिति की राय में समय आ पहुंचा है कि कुछ प्रान्तों में खास-खास महसूल देना बन्द करके करबन्दी का आन्दोलन भी शुरू किया जाय और गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक, आन्ध्र, तामिल-नाड और पंजाब जैसे रैयतवारी प्रान्तों में जमीन का लगान रोका जाय और बंगाल, बिहार और उड़ीसा आदि में चौकीदारी-कर न दिया जाय। समिति इन प्रान्तों को आज्ञा देती है कि वे प्रान्तीय समितियों-द्वारा चुने हुए क्षेत्रों में जमीन का लगान और चौकीदारी-कर न देने का आन्दोलन संगठित करें।

"८. प्रान्तीय समितियों को आदेश दिया जाता है कि वे गैर-कानूनी नमक-बनाने का काम जारी रक्खें और उसका विस्तार करें और जहां सरकार गिरफ्तारियों से या अन्य प्रकार से बाधा दे वहां नमक-कानून तोड़ने का काम और भी जोश के साथ किया जाय। समिति निश्चय करती है कि नमक-कानून के प्रति देश की नापसन्दगी प्रदर्शित करने के लिए कांग्रेस-संस्थायें हर रविवार को इस कानून के सामूहिक उल्लंघन की आयोजना करें।

"९. स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय ने मध्य-प्रान्त में जंगलात कानून तोड़ने की जो अनुमति दी है, समिति उसका समर्थन करती है और निश्चय करती है कि अन्य प्रान्तों में भी जहां ऐसा कानून हो वहां प्रान्तीय समितियों की स्वीकृति से उसका भंग किया जा सकता है।

"१०. समिति स्थानापन्न अध्यक्ष महोदय को अधिकार देती है कि स्वदेशी मिलों के कपड़े की कीमत में अनुचित वृद्धि और नकली खद्दर की बनवाई को रोकने एवं विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की पूर्ति के लिए वे भारतीय मिल-मालिकों से समझौते की बातचीत करें।

"११. समिति जनता से अनुरोध करती है कि अंग्रेजी माल का बहिष्कार जल्दी-से-जल्दी पूरा होने के लिए वह प्रबल प्रयत्न करे।

"१२. समिति जनता से प्रबल अनुरोध करती है कि वह अंग्रेजी बैंकों, बीमा-कम्पनियों, जहाजों और ऐसी अन्य संस्थाओं का भी बहिष्कार करे।

"१३. समिति एक बार पुनः सम्पूर्ण मदिरा-निषेध के लिए घोर प्रचार-कार्य की आवश्यकता पर जोर देती है और शराब ताड़ी की दुकानों पर पिकेटिंग करने का प्रान्तीय समितियों से अनुरोध करती है।

"१४. समिति को कहीं-कहीं भीड़-द्वारा हिंसा हो जाने पर दुःख है और वह इस हिंसा की अत्यंत कठोर निन्दा करती है। समिति अहिंसा के पूर्ण पालन की आवश्यकता पर आग्रह रखने की इच्छा प्रकट करती है।

"१५. समिति प्रेस-आर्डिनेन्स की तीव्र निंदा करती है और जिन अखबारों ने उसके आगे सिर नहीं झुकाया उनकी प्रशंसा करती है। जिन भारतीय-पत्रों ने अभी तक प्रकाशन बन्द नहीं किया

है या बन्द करके फिर निकलने लगे हैं, उनके अब बन्द किये जाने का अनुरोध करती है। जो भारतीय अथवा गोरे पत्र अब भी प्रकाशन बन्द न करें उनका बहिष्कार करने के लिए यह समिति जनता से अपील करती है।"

श्रीमती सरोजिनीदेवी कार्य-समिति की बैठक में प्रयाग गई हुई थीं। श्री तैयबजी की गिरफ्तारी के समाचार सुनकर वे जल्दी-से धरसाना लौट आईं और धावे का संचालन करने का गांधीजी को दिया हुआ अपना वचन पूरा किया। वे और उनका स्वयंसेवक-दल जाब्ते से गिरफ्तार तो १६ तारीख को कर लिये गये, किन्तु बाद में पुलिस के घेरे से निकाल कर उन्हें रिहा कर दिया गया। उसके बाद स्वयंसेवकों के दल नमक के गोदामों पर टूट पड़े। उन्हें मार-मार कर हटा दिया गया। उसी दिन शाम को पुलिस ने २२० स्वयंसेवकों को गैर-कानूनी संस्था के सदस्य करार देकर गिरफ्तार कर लिया और धरसाना की अस्थायी जेल में नजरबन्द कर दिया।

१९ ता० को प्रातःकाल ही वडाला के नमक के कारखाने पर स्वयंसेवक बड़ी संख्या में एकत्र हो गये। पुलिस की तत्परता के कारण धावा न हो सका। उस दिन पुलिस तमंचे लेकर आई थी। उसने ४०० सत्याग्रहियों को पकड़ लिया।

× × × × ×

बहिष्कार-आन्दोलन का क्या असर हो रहा था, इस पर 'फ्री-प्रेस' के सम्वाददाता ने यह लिखा था—

"आक्रमण का जोर कपड़े पर ही विशेष होने के कारण इस आन्दोलन की सफलता भी इसी दिशा में सबसे अधिक नजर आती है। परन्तु यह भय इतना नहीं है कि अन्त में भारतीय बाजार हाथ से जाता रहेगा। बल्कि भय इस बात का अधिक है कि मौजूदा सौदे पूरे नहीं होंगे या रद कर दिये जायंगे। मौजूदा सौदे रद करने की वृत्ति बढ़ती जाती है। 'डेली मेल' का मैंचेस्टर-स्थित सम्वाददाता लिखता है, 'भारतवर्ष के ताजा समाचारों से ऐसा लगता है कि लंकाशायर का भारतीय व्यापार बिलकुल बन्द हो जायगा। पहले ही कताई-बुनाई के कारखाने अनिश्चित-काल के लिए बन्द होते जा रहे हैं और हजारों मजदूर बेकारों की संख्या बढ़ा रहे हैं।"

नमक के धावे और भी होते रहे। उनका वर्णन 'गांधी : दी मैन एण्ड हिज मिशन' (अर्थात् 'गांधी : उसका व्यक्तित्व और जीवन-ध्येय') नामक पुस्तक में १३३ वें पृष्ठ से आगे यों किया गया है—

"इस बीच में कार्य-समिति की लगातार कई बैठकों ने कार्यक्रम को जारी रखने का निश्चय किया। धावे भी जारी रहेंगे। २१ मई को धरसाना पर सामूहिक धावा हुआ। इसमें सारे गुजरात से आये हुए २५०० स्वयंसेवकों ने भाग लिया। इमाम साहब उनके नायक बने। ये ६२ वर्ष के वृद्ध पुरुष गांधीजी के दक्षिण अफ्रीका से साथी थे। धावा तड़के ही शुरू हो गया। जिधर से स्वयंसेवक नमक के ढेरों पर हमला करते उधर ही से पुलिस उन्हें लाठियां मार-मार कर खदेड़ देती।

"हजारों मनुष्यों ने यह दृश्य देखा। दो घण्टे तक द्वन्द्व-युद्ध चलता रहा। फिर श्री इमाम साहब, प्यारेलाल और मणिलाल गांधी आदि नेता पकड़ लिये गये और बाद में श्रीमती सरोजिनी देवी भी गिरफ्तार हो गईं। उस दिन कुल मिला कर २९० स्वयंसेवक घायल हुए। इन चोटों से श्री भाईलाल भाई डायाभाई नामक स्वयंसेवक तो चल ही बसा। इसके बाद पुलिस ने सेना की सहायता से धरसाना और उंटड़ी के सब रास्ते बन्द करके इनका सम्बन्ध बाहर से काट दिया। उंटड़ी से सब स्वयंसेवकों को पुलिस न जाने कहां ले गई और फिर उन्हें छोड़ दिया।"

३ जून को उंटड़ी की छावनी से २०० स्वयंसेवकों के दो दल धरसाना के नमक-भण्डार

पर आक्रमण करने निकले। दोनों को पुलिस ने रास्ते में ही रोक लिया और जब भीड़ वर्जित सीमा में घुसी तो उस पर लाठियां चला दीं। घायलों को छावनी के अस्पताल में पहुंचा दिया गया।

वड़ाला के धावे

वड़ाला के नमक के कारखाने पर कई धावे हुए। २२ ता० को १८८ स्वयं सेवक पकड़े गये और वर्ली भेज दिये गये। २५ ता० को १०० स्वयंसेवकों के साथ २००० दर्शकों की भीड़ भी गई। पुलिस ने लाठी-प्रहार करके १७ को घायल किया और ११५ को गिरफ्तार। धावा दो घण्टे तक रहा। तीसरे पहर फिर हुआ। इसमें १८ घायल हुए। प्रसिद्ध उड़ाके श्री० कब्राड़ी भी इनमें शामिल थे। २६ ता० को ६५ स्वयंसेवक मैदान में गये और ४३ गिरफ्तार हुए। बाकी भीड़ के साथ नमक लेकर भाग गये। उस समय एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि अबतक जो गड़बड़ें हुई हैं वे अधिकतर दर्शकों ने की है और इनमें सैनिकों का-सा अनुशासन नहीं है, अतः जनता को धावों के समय वड़ाला से दूर रहना चाहिए। किन्तु सबसे चमत्कारी धावा तो १ जून को हुआ। युद्ध-समिति उसके लिए बड़े परिश्रम से तैयारियां कर रही थी। उस दिन सुबह १५००० सैनिकों और असैनिकों ने वड़ाला के विशाल सामूहिक धावे में भाग लिया।

पोर्ट-ट्रस्ट के रेलवे चौराहे पर एक के बाद दूसरा दल पहुंचता और वहीं पुलिस उन्हें और भीड़ को रोक लेती। थोड़ी देर में धावा करने वाले स्त्री और बच्चे तक पुलिस का घेरा तोड़कर कीचड़ पार करके कढ़ाइयों पर पहुंच जाते। लगभग १५० कांग्रेसी सैनिकों के मामूली चोटें आईं। पुलिस ने धावा करने वालों को खदेड़ दिया। यह सब खुद होम-मेम्बर साहब की देख-रेख में हुआ।

३ जून को वर्ली की अस्थायी जेल में बड़ा उपद्रव होगया। स्थिति को सम्हालने के लिए पुलिस को दो बार प्रहार करने पड़े और सेना बुलानी पड़ी। उस दिन वड़ाला के ४ हजार अभियुक्तों से पुलिस की भिड़न्त होगई। लगभग ९० घायल हुए। २५ को सख्त चोटें आईं। किन्तु जिस प्रकार धावा करने वालों के साथ पुलिस ने बरताव किया उस पर जनता में बड़ा रोष फैला। दर्शक लोग उस निर्दय दृश्य को देखकर चकित रह गये। बम्बई की अदालत खफीफा के भूतपूर्व न्यायाधीश श्री हुसेन, श्री के० नटराजन और भारत-सेवक-समिति के अध्यक्ष श्री देवधर धरसाना का धावा देखने खुद गये थे। उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा—

"हमने अपनी आंखों देखा कि सत्याग्रहियों को नमक की सीमा के बाहर भगा देने के बाद भी यूरोपियन सवार हाथों में लाठियां लिये हुए अपने घोड़े सरपट दौड़ाते और जहां सत्याग्रही धावे के लिए पहुंच गये थे वहां से गांव तक लोगों को मारते रहे। गांव के रास्तों पर भी खूब तेजी से घोड़े दौड़ाकर स्त्री-पुरुष और बच्चों को तितर-बितर किया। ग्रामवासी दौड़ दौड़ कर गलियों और घरों में छिप गये। संयोगवश कोई भाग न सका तो उस पर लाठियां पड़ीं।"

'न्यू फ्रीमेन' के संवाददाता वेब मिलर साहब ने धरसाना के इस घृणित दृश्य पर इस प्रकार प्रकाश डाला—

"मैं २२ देशों में १८ वर्ष से संवाददाता का काम कर रहा हूं। इस अर्से में मैंने असंख्य उपद्रव, मारपीट और विद्रोह देखे हैं; किन्तु धरसाना-के-से पीड़ा-जनक दृश्य मेरे देखने में कभी नहीं आये। कभी-कभी तो ये इतने दुःखद होजाते थे कि क्षणभर के लिए आंख फेर लेनी पड़ती थी। स्वयंसेवकों का अनुशासन अद्भुत चीज थी। मालूम होता था, इन लोगों ने गांधीजी के अहिंसा-धर्म को घोलकर पी लिया है।"

स्लोकोम्ब साहब की गवाही

लन्दन के 'डेली हेरेल्ड' पत्र के प्रतिनिधि जार्ज स्लोकोम्ब साहब भी नमक के कुछ धावों के प्रत्यक्षदर्शी थे। उन्होंने लिखा, "मैंने वड़ाला की मालाकार पहाड़ियों के एक स्थान पर खड़े होकर ये घटनायें देखीं। एक अंग्रेज के लिए यह बड़ी लज्जा की बात प्रतीत होती थी कि वह उत्साही, मित्र-भाव रखने वाले और भावनापूर्ण स्वयंसेवकों और उनके साथ सहानुभूति रखने वाले जन-समूहों के बीच में खड़ा हुआ अपने देश के प्रतिनिधि शासकों को यह गन्दा काम करते हुए देखा करे।"

वे २० मई को गांधीजी से यरवडा-जेल में मिले। उन्होंने अपने पत्र में जो खरीता भेजा वह इतना असाधारण था कि कामन-सभा की नींद हराम होगई और अनुदार-दल के पत्रों की चिढ़ और क्रोध का पारा न रहा। इस खरीते में स्कोलोम्ब साहब ने बतलाया कि इतना हो चुकने पर भी समझौते की सम्भावना है और यदि नीचे लिखी शर्तें मान ली जायं तो गांधीजी कानून-भंग स्थगित करने और गोलमेज-परिषद् के साथ सहयोग करने की कांग्रेस से सिफारिश करने को तैयार हैं—

(१) गोलमेज-परिषद् को ऐसा विधान बनाने का अधिकार भी दिया जाय जिससे भारतवर्ष को स्वाधीनता का सार मिल जाय।

(२) नमक कर उठा देने और शराब और विदेशी वस्त्र की मनाही करने के सम्बन्ध में गांधीजी को सन्तोष दिलाया जाय।

(३) कानून-भंग बन्द होने के साथ-साथ राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायं।

(४) वाइसराय-साहब के नाम गांधीजी ने अपने पत्र में जो सात बातें और लिखी थीं उनकी चर्चा बाद पर छोड़ दी जाय।

स्लोकोम्ब साहब ने सरकार से पूछा कि वह गांधीजी से सम्मानपूर्वक संधि करने को तैयार है या नहीं? उन्होंने कहा, "समझौते की बातचीत अब भी हो सकती है। गांधीजी से दो बार मिलने के बाद मुझे यकीन होगया है कि मेल करने से ही मेल होगा और एक पक्ष की हिंसा दूसरे को झुकने पर मजबूर नहीं कर सकती। गांधीजी जेल में क्या बन्द हैं भारत की आत्मा बन्द है, यह स्पष्ट स्वीकार कर लेने से अब भी असीम हानि टाली जा सकती है।"

दमन का दौर-दौरा

परन्तु एक-एक बात को कहां तक गिनावें! घटनाओं का क्या पार था? लॉर्ड अर्विन ने अपनी सत्ता का पेच कसना शुरू कर दिया। आरम्भ में तो उन्होंने गांधीजी को गिरफ्तार नहीं करने दिया। परन्तु गांधीजी की कूच का रोग तो सारे राष्ट्र को लग गया। सर्वत्र कूच के नक्कारे बजने लगे। उनकी पुकार पर हजारों महिलायें मैदान में निकल आईं। उनके कारण सरकार बड़े चक्कर में पड़ गई। उन्होंने आते ही शराब और विदेशी कपड़े की दूकानों पर धरना देने का काम अपने हाथ में ले लिया और जबतक शौर्य पर स्वेच्छाचार ने विजय प्राप्त न की तबतक पुलिस भी उनके आगे कुछ न कर सकी। ऐसी स्थिति में गांधीजी को खुला छोड़ा जाय! न जाने वे कहां से देश की छिपी हुई शक्ति को ढूंढ़ कर निकाल लाते। उनके हाथ में जादू की लकड़ी थी। उसे जरा घुमाया कि धन-जन का ढेर लग जाता था। अतः उन्हें गिरफ्तार तो करना था, पर समय पाकर। कारण, गांधी पर हाथ डालना सारे राष्ट्र-रूपी भिड़ के छत्ते को छेड़ना था। १४ अप्रैल को जवाहरलाल जी को पकड़ कर सजा दे दी गई। जवाहर क्या बन्दी हुआ, कांग्रेस बन्दी होगई। सारा देश एक विशाल जेलखाना बन गया। धरना, करबन्दी और सामाजिक बहिष्कार सबकी रोक के लिए आर्डिनेन्स निकल गये। राष्ट्रीय झंडे पर अनेक मुठभेड़ें हुईं। सजायें दिन-दिन कठोर होने लगीं। कैद के साथ-साथ

जुर्माने किये जाने लगे। लाठी-प्रहार भी आ पहुंचे। लोगों को विश्वास ही नहीं होता था कि लाठियों और सब शस्त्रास्त्र से सुसज्जित करके पुलिस को जो कवायद-परेड सिखाई जारही है वह सत्याग्रहियों के सिर पर आजमाई जायगी। यह कोरी धमकी या आशङ्का नहीं निकली। लाठी-प्रहार तो भयंकर सत्य के रूप में प्रकट हुआ। सभा-भंग की आज्ञा तो होती थी देश के साधारण कानून के अनुसार, और उस पर अमल होता था लाठी के निर्दय प्रहारों से। नमक-कानून के साथ-साथ ताजीरात-हिन्द की धारायें मिलाकर लम्बी-से-लम्बी सजायें दी जाने लगीं। फरवरी १९३० के मध्य में एक सरकारी आज्ञा निकली। उसमें राजनैतिक कैदियों का वर्गीकरण किया गया। हां, उसमें 'राजनैतिक' शब्द सावधानी के साथ नहीं आने दिया गया। दिल्लगी तो यह है कि दस वर्ष पहले से सरकार अपनी 'इण्डिया' नामक सालाना पुस्तक में—अलबत्ते अवतरण-चिह्न देकर—यह शब्द बराबर प्रयोग करती आरही थी। यह सरकारी आज्ञा परिशिष्ट ४ में दी गई है।

'ए' वर्ग तो नाममात्र को ही था। 'बी' क्लास भी बड़ी कंजूसी से दिया जाता था। विपुल सम्पत्ति के स्वामी और ऊंचे रहन-सहन के अभ्यासी सरकार की शर्तों के अनुसार भी उच्च-वर्ग के हकदार थे। पर उन्हें भी 'सी' क्लास में डाल दिया जाता था और काम भी उन्हें जेलों में पत्थर तोड़ने, घानी पेलने और पानी निकालने का दिया जाता था। सत्याग्रहियों के साथ किये गए व्यवहार ने इस सरकारी आज्ञा की शीघ्र कलई खोल दी। वह तो जनता की आंखों में धूल झोंकने मात्र का प्रयत्न था। परन्तु स्वयंसेवक इस व्यवहार की शिकायत करनेवाले थोड़े ही थे। वे तो पतिंगों की भांति आंदोलन में पड़ते ही रहे। बहुतों को सरकार पकड़ती न थी; उन पर सिर्फ लाठी-प्रहार उनको तैयार मिलता था। आंदोलन के आरम्भ-काल की बात है। एक बार कलकत्ते के सार्वजनिक उद्यान में उपस्थित लोग तो ताले में बन्द करके बुरी तरह पीटे गये। फाटकों पर आड़ लगाकर पहरे बिठा दिये गए थे। पाशविक व्यवहार की शुरुआत तो संयुक्त-प्रांत और बंगाल से हुई। किन्तु थोड़े ही दिन में दक्षिण-भारत में भी यही हाल होने लगा, आंदोलन के उत्तरार्द्ध-काल में वहां दमन की अमानुषता का पार नहीं रहा।

वहां भी आरम्भ में तो गिरफ्तारियों और भारी जुर्मानों की नीति आजमाई गई, परन्तु थोड़े ही दिन बाद मारपीट आ पहुंची। बाजार में सौदा खरीदते हुए खद्दर या गांधी-टोपी-धारी मनुष्य पीट दिये जाते थे। मलाबार की फौजी पुलिस को आन्ध्र के ब्रह्मपुर से एलोर तक कोकनडा और राजमहेन्द्री होकर सिर्फ इसलिए घुमाया गया कि रास्ते चलते खद्दर-धारियों की मरम्मत करने का आनन्द लूटा जाय। ये करतूतें आखिर एलोर के विरोध से बन्द हुईं। वहां पुलिस ने गोली चलाई, दो-तीन आदमी मरे और पांच-छः घायल हुए।

दमन के भिन्न-भिन्न रूपों का दिग्दर्शन करा सकना वस्तुतः कठिन है। वह जन्मा तो था कानून-भंग की नाक में नाथ डालने, किन्तु वह हो गया 'अनेक रूप-रूपाय'। इसलिए हमें १९३० और १९३१ के इतिहास की थोड़ी-सी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करके ही सन्तोष करना पड़ेगा। बीच-बीच में समझौते के जो प्रयत्न हुए उनका जिक्र तो पीछे ही किया जायगा। बम्बई शीघ्र ही लड़ाई का मुख्य केन्द्र बन गया। विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार पर सारा जोर आ पड़ा। इसमें मिल मालिकों का स्वार्थ साथ था। सौभाग्य से पंडित मोतीलाल नेहरू उस समय जेल के बाहर थे। वे बम्बई गये तथा अहमदाबाद के मिलवालों से उन्होंने समझौते की बात-चीत की। अहमदाबाद वालों से निपटना आसान था, पर बम्बई के मिलों में यूरोपियनों का हिस्सा भी था। उनसे कांग्रेस की मुहर लगवाने की शर्तें (परिशिष्ट ५ देखिये) कबूल कराना बड़ा मुश्किल काम था। परन्तु मोतीलालजी ने असम्भव

को सम्भव कर दिखाया। बात यह थी कि वायुमण्डल ही उस समय बहिष्कार की भावना से परिपूर्ण था। जनता के हृदय में वह व्याप्त हो चुकी थी। विदेशी कपड़े की सैकड़ों गांठें बन्दर पर पड़ी थीं। व्यापारी उन्हें उठवाते न थे। उन्होंने एकत्र होकर निश्चय कर लिया था कि वे माल नहीं लेंगे। इस कारण देश में कपड़े की तंगी होने लगी थी।

कार्य-समिति-द्वारा प्रोत्साहन

२७ जून आ पहुंची। उस दिन प्रयाग में कार्य-समिति की बैठक हुई और उसने यह निश्चय किये—

"१. बहुत-से शहरों और गांवों में विदेशी वस्त्र-बहिष्कार की जो प्रगति हुई है उसे देखकर समिति को संतोष है। समिति व्यापारियों की देशभक्ति की भावना की भी प्रशंसा करती है, जिससे प्रेरित होकर उन्होंने न केवल विदेशी कपड़ा बेचना बन्द कर दिया है प्रत्युत पहले के आर्डर रद कर दिये और नये आर्डर भेजना भी छोड़ दिया है और इस प्रकार तमाम विदेशी कपड़े के आयात में भारी कमी कर दी है। जिन स्थानों के व्यापारियों ने अभीतक विदेशी कपड़ा बेचना बन्द नहीं किया है उनसे यह समिति तुरन्त बन्द कर देने का अनुरोध करती है। इतने पर भी यदि वे बिक्री बन्द न करें तो समिति सम्बन्धित कांग्रेस-संस्थाओं को आदेश देती है कि उनकी दूकानों पर सख्त पिकेटिंग लगा दिया जाय। समिति को आशा है कि १५ जुलाई १९३० तक देशभर में विदेशी कपड़े की बिक्री बिलकुल बन्द हो जायगी। समिति प्रान्तीय-समितियों से उस दिन पूरा विवरण भेजने का अनुरोध करती है।

"२. समिति समस्त कांग्रेस-संस्थाओं और देशभर से अनुरोध करती है कि ब्रिटिश माल के सम्पूर्ण बहिष्कार का पहले से भी अधिक जोरदार प्रयत्न करें और उसके लिए हिन्दुस्तान में न बनने वाली चीजों को ब्रिटेन के सिवा अन्य विदेशों से खरीदा जाय।

"३. समिति जनता से अनुरोध करती है कि जिन सरकारी नौकरों और दूसरे लोगों ने राष्ट्रीय-आंदोलन का गला घोटने के लिए जनता पर अमानुष अत्याचार करने में सीधा भाग लिया है उन सबका संगठित और कठोर-रूप में सामाजिक बहिष्कार किया जाय।

"४. कार्य-समिति देश का ध्यान कांग्रेस के १९२२ वाले गया के और १९२९ वाले लाहौर के उस निश्चय की ओर आकर्षित करती है जिसमें विदेशी शासन-द्वारा भारत पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में लादे गए ऋण-भार को अस्वीकार कर दिया गया था और केवल उतना ऋण स्वीकार करना तय किया गया था जितना स्वतन्त्र (ट्रिब्यूनल द्वारा) जांच होकर उचित ठहरा दिया जाय। अतः समिति जनता को सलाह देती है कि नई पूंजी लगाने या पुरानी का रूपान्तर करने के लिए भी भारत-सरकार के नये पुर्जे (बांड) न खरीदे जायं और न लिये जायं।

"५. चूंकि ब्रिटिश-सरकार ने प्रबल लोकमत की पर्वाह न करके मनमाने तौर पर रुपये का कानूनी भाव उसकी असली कीमत से तिगुना मुकर्रर कर दिया है और चूंकि रुपये का भाव और भी गिर जाने की शीघ्र सम्भावना है, अतः कार्य-समिति भारतवासियों को सलाह देती है कि सरकार से जो-कुछ लेना हो उसके बदले में यथासम्भव सोना लिया जाय, रुपये या नोट न लिये जायं। समिति की यह भी सलाह है कि लोग जल्दी-से-जल्दी अपने रुपयों और नोटों के बदले में सोना ले लें और निर्यात-माल की कीमत सुवर्ण के रूप में लेने का आग्रह करें।

"६. इस समिति की राय में अब समय आ पहुंचा है कि भारत के कालेजों के विद्यार्थी राष्ट्रीय-स्वतन्त्रता के संग्राम में पूर्ण भाग लें। समिति सब प्रांतीय समितियों को आदेश देती है

कि वे अपने-अपने अधिकार-क्षेत्रों में इन विद्यार्थियों से कांग्रेस की सेवा में लग जाने का अनुरोध करें और आवश्यकता हो तो उनकी पढ़ाई बिलकुल छुड़वा दें। समिति को विश्वास है कि समस्त विद्यार्थी इस अनुरोध का अनुकूल उत्तर तत्परता से देंगे।

"७. चूंकि सरकार ने अपनी दमन-नीति के अनुसार अनेक प्रान्तीय और जिला-समितियों तथा सम्बद्ध संस्थाओं को गैर-कानूनी करार दे दिया है और सम्भव है शेष समितियों और संस्थाओं के लिए भी भविष्य में ऐसी ही कार्रवाई करे, अतः यह समिति इन समस्त समितियों और संस्थाओं को आदेश देती है कि सरकार की घोषणा की पर्वाह न करके वे पहले की भांति काम करती रहें और कांग्रेस-कार्यक्रम को जारी रक्खें।

"८. इस समिति ने अपनी ७ जून की बैठक में पांचवां प्रस्ताव सेना और पुलिस के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में पास किया था। युक्त-प्रान्त की सरकार ने एक घोषणा-द्वारा इस प्रस्ताव की प्रतियां जब्त कर ली हैं। इस घोषणा पर समिति को आश्चर्य है। उसकी राय में जनता पर दिल दहलाने वाले अत्याचार करने के लिए फौज और पुलिस को अस्त्र बनाना ऐसी कार्रवाई है कि समिति न्याय-पूर्वक इससे भी कड़ा निश्चय कर सकती थी; परन्तु फिलहाल समिति ने जिस रूप में निश्चय किया उसीको काफी समझती है क्योंकि उसमें उस विषय पर वर्तमान कानून का ठीक-ठीक उल्लेख-मात्र किया गया है। यह समिति समस्त कांग्रेस-संस्थाओं से अनुरोध करती है कि सरकारी घोषणा की पर्वाह न करके उक्त निश्चय को अधिक-से-अधिक प्रकाशन दिया जाय।

"९. चूंकि समिति की पिछली बैठक के बाद भी सरकार ने अपने नृशंस दमन-चक्र को आंख बन्द करके जारी रक्खा है और सत्याग्रह-आन्दोलन का गला घोंटने की गरज से अपने नौकरों और गुर्गों को अधिकाधिक निर्दयता और पशुता के कृत्य करने दिये हैं, अतः समिति सरकार के जुल्मों का इस बहादुरी के साथ मुकाबला करने पर जनता को बधाई देती है और सरकार को फिर सचेत करती है कि चाहे सरकार की ओर से कितनी भी यातनायें बरसाई जायं, भारत-वासियों ने स्वतन्त्रता की लड़ाई को आखिरी दम तक जारी रखने का निश्चय कर लिया है।

"१०. समिति भारतीय महिलाओं को इस बात पर बधाई देती है और उनकी प्रशंसा करती है कि वे राष्ट्रीय आन्दोलन में दिन-दूने रात चौगुने उत्साह से भाग ले रही हैं और प्रहारों, दुर्व्यवहारों और सजाओं को वीरतापूर्वक सहन कर रही हैं।"

विलायती कपड़े का बहिष्कार दिन दिन जोरदार और कारगर होता जा रहा था। खद्दर से किसी भांति कपड़े की मांग पूरी होती दीखती न थी। इसके बाद मिल के सूत का हाथ से बुना हुआ कपड़ा ही देश-भक्त नागरिकों के लिए ग्राह्य हो सकता था। इसी कारण राष्ट्रीय कार्य में सहायक और बाधक होनेवाले कारखानों में भेद करना पड़ा। तदनुसार उन्हें सनद देने की प्रथा द्वारा कांग्रेस के नियन्त्रण में लाया गया। मिलों से जो शर्तें करवाई गईं उनमें से मुख्य ये थीं कि वे अपनी मशीनरी ब्रिटिश कम्पनियों से नहीं खरीदेंगी, अपने आदमियों को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने से न रोकेंगी और कांग्रेस की दी हुई रिआयत का बेजा फायदा उठाकर अपने माल की कीमत न बढ़ायेंगी और ग्राहकों को हानि न पहुंचायेंगी। मिलों ने धड़ाधड़ इस प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर कर दिये। इनी-गिनी मिलों ने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये। उन्हें भी थोड़े दिन बाद पता लग गया कि उस समय कांग्रेस कितनी बलवती संस्था थी।

ब्रेल्सफोर्ड साहब का बयान

यहां पहुंचकर महासमिति गैरकानूनी ठहरा दी गई। पण्डित मोतीलाल नेहरू को ३० जून

१९३० के दिन गिरफ्तार करके ६ महीने की सजा दे दी गई। दमन-पुराण में इतनी वृद्धि और हुई कि वहिष्कार-आन्दोलन की तीव्रता के साथ-साथ दमन-चक्र की कठोरता भी बढ़ती गई। बम्बई के स्वयंसेवक-संगठन में कोई कसर बाकी न थी। स्त्रियां आती गईं और जब ये कोमलांगियां केसरिया साड़ी पहन-पहन कर अत्यन्त विनम्रता के साथ धरना देती थीं, तो लोगों के हृदय बात-की-बात में पिघल जाते थे। कोई दूकानदार अपने माल पर मुहर न लगवाता तो उसकी पत्नी धरना देने आ बैठती। अन्यत्र की तरह बम्बई में भी सार्वजनिक सभायें वर्जित करार दे दी गईं। पर इन आज्ञाओं को मानता कौन था ? ब्रेल्सफोर्ड साहब ने आन्दोलन के समय इस देश की यात्रा की थी और जनता के साथ जो पाशविक व्यवहार किया जाता था, उसे अपनी आंखों देखा था। १२ जनवरी १९३१ के 'मैंचेस्टर गार्जियन' में उन्होंने अपना अनुभव इन शब्दों में प्रकट किया—

"पुलिस के खिलाफ जिम्मेदार भारतीय नेताओं को जगह-जगह इतनी शिकायतें हैं कि उन की जांच करना बड़ी टेढ़ी खीर है। इस तरह की बहुत-सी बातें मुझे प्रत्यक्षदर्शी अंग्रेजों और घायलों की मरहमपट्टी करनेवाले हिन्दुस्तानी डाक्टरों ने सुनाईं। मैंने भी दो सभायें देखीं। उन्हें नहीं रोका गया था। भाषण राजद्रोहात्मक थे, पर किये गये थे शान्तिपूर्वक। हिंसा की बराबर निन्दा की गई। भीड़ खूब थी। लोग जमीन पर बैठे तकलियां चलाते हुए भाषण सुन रहे थे। स्त्रियों की संख्या भी खूब थी। सभीका व्यवहार विनम्र और शान्त था। अगर इन सभाओं को रोका न जाता तो कोई उपद्रव न होता और जनता सुनते-सुनते थोड़े दिन में ऊबकर अपने-आप घर बैठ जाती। पर हुआ यह कि खासकर बम्बई में मारपीट कर तितर-बितर करने की नीति से सारे शहर का जोश उमड़ आया, लाठी-प्रहार सहन करना सम्मान का प्रश्न बन गया और शहादत के जोश में सैकड़ों स्वयंसेवक मार खाने को निकल आये। उन्होंने नियमबद्धता और शान्त साहस का परिचय दिया। यूरोपियन लोगों ने भी मुझे बार-बार बयान किया कि हट्टे-कट्टे पुलिस के सिपाही दुबले-पतले शान्त युवकों को जिस बुरी तरह मारते थे उसे देखकर बड़ी ग्लानि होती थी।

"इस बात में तो मुझे कोई शंका रही नहीं कि अंग्रेज अफसरों की अधीनता में भी पुलिस राजद्रोह की सजा अकसर शारीरिक रूप में देना चाहती थी। कलकत्ता विश्वविद्यालय के कुछ छात्र झरोखों पर खड़े थे। शान्त जुलूस पर होने वाले लाठी-प्रहार देखकर वे जोर से पुकार उठे—"बुज-दिलो !" दो घण्टे बाद एक अंग्रेज अफसर पुलिस लेकर पहुंच गया, और पढ़ाई के कमरों में घुस-घुसकर पढ़ते-लिखते हुए विद्यार्थियों की आंख मींचकर पिटाई हुई। यहां तक कि दीवारें खून से रंग गईं। विश्वविद्यालय की ओर से जाब्ते में शिकायत की गई, पर कौन सुनता था ! इस घटना का हाल मुझे ऐसे अध्यापकों ने सुनाया जिनकी यूरोप के विज्ञान-जगत में खूब ख्याति है। हाई-कोर्ट के एक भारतीय न्यायाधीश का लड़का भी इस पिटाई का शिकार हुआ था। मुझसे न्याया-धीश ने इस घटना का उल्लेख इतने आवेश में किया कि सरकार के उच्चाधिकारी सुनते तो उनकी आंखें खुलतीं। लाहौर में भी ऐसी ही घटना हुई। वहां भी एक अंग्रेज अफसर ने पुलिस सहित एक कालेज पर धावा किया और पढ़ते हुए छात्रों के साथ-साथ उनके अध्यापक को भी पीटा। बहाना यहां भी यह लिया गया कि कुछ छात्रों ने बाजार में शान्तिपूर्ण धरना दिया था। दिल्लगी यह थी कि ये छात्र भी उस कालेज के नहीं, दूसरे के थे। बंगाल के कण्टाई गांव में निर्दोष भीड़ को तितर-बितर करते हुए पांच आदमी तालाब में ढकेल दिये गये। पांचों डूबकर मर गये। मेरठ में एक बड़े वकील से मिला। वहां भी एक सभा भंग की गई थी। वकील महाशय

मुख्य वक्ता थे। उन्हें गिरफ्तार करके पीटा गया, और उसी हालत में पास खड़े पुलिस के किसी सिपाही ने उन पर गोली चला दी। बेचारों को अपनी बांह कटवानी पड़ी। ऐसे अनेकों और उदाहरण दिये जा सकते हैं।

"गुजरात के गांवों में पुलिस की पशुता का तो मुझे खूब परिचय मिला। मैंने वहां पांच दिन दौरा किया। प्रथम तो कानूनी दमन ही कम सख्त न था। बारडोली और खेड़ा जिले के किसानों का बच्चा-बच्चा लगान देने से इन्कार कर रहा था। कारण अनेक थे। गांधी जी पर श्रद्धा थी, स्वराज्य की आकांक्षा थी और पैदावार का भाव गिर जाने से भयंकर आर्थिक सङ्कट छाया हुआ था। सरकार ने इसका जवाब दिया उनके खेत, पशु और सींचने के सामान आदि जब्त और नीलाम करके। और नीलाम भी इस तरह किया कि लगान के ४०) रुपये के बदले में किसान का सर्वस्व बिक जाता था। इनकी दक्षिणा-स्वरूप मारपीट द्वारा भय-प्रदर्शन भी किया जाता था। पुलिस का यह दस्तूर था कि बन्दूक और लाठियों से सुसज्जित होकर विद्रोही गांव को घेर लेना और जो ग्रामीण सामने आ गया बिना देखे-भाले उसे लाठी या बन्दूकों के ठोसे से मारना। इन आक्रमणों के शिकार हुए ४५ व्यक्तियों ने मेरे रूबरू बयान दिये हैं। दो के सिवाय सबके घाव और चोटें मैंने देखी हैं। एक लड़की ने तो शर्म के मारे अपनी चोटें नहीं दिखाईं। कइयों के घाव गम्भीर भी थे। कई आदमियों के मेरे पास बयान हैं। वे लगान देने वालों में से थे। लेकिन उनसे तो पड़ोसियों के बदले में मारपीट कर लगान वसूल किया गया था।......एक गांव में कांग्रेस के विज्ञापन और राष्ट्रीय झण्डे फाड़-फाड़ कर वृक्षों और घरों पर से उतार दिये गये। साथ ही ८ किसानों को भी पीट दिया गया। इसलिए कि उनके घर इन राष्ट्र-चिह्नों के नजदीक थे। दो आदमियों को गांधी-टोपी पहने रहने पर पीट दिया गया। एक जगह एक आदमी पर लाठी-वर्षा होती रही। उसके १२ लाठियां लगीं। जब उससे सात बार पुलिस की सलामी करा ली गई तब पिण्ड छोड़ा। बहुधा पुलिस यह विनोद किया करती, 'स्वराज्य चाहिए? तो यह लो!' और कह कर लाठी बरसा देती।

"आप कह सकते हैं, यह तो एक पक्ष की शहादत है। किन्तु मैंने अपनी ओर से भरसक सावधानी से काम लिया है। अपने सारे प्रमाण मैंने उच्च-कर्मचारियों को दिखाये। एक 'नमूने के' गांव में कमिश्नर मेरे साथ गये, उन्होंने किसानों की चोटें देखीं और उनसे पूछ-ताछ की। गम्भीर विचार के बाद उनकी क्या सम्मति होगी, इसका अन्दाज लगाने का मुझे हक नहीं है; परन्तु मौके पर तो ९ में से केवल १ ही घटना पर सन्देह प्रकट किया। यह अपवाद उस लज्जा-शील लड़की का था। मैं दो स्थानीय हिन्दुस्तानी अफसरों से भी मिला और उनके रङ्ग-ढङ्ग देखे। इनमें से एक ने मेरे सामने ही जान-बूझ कर पशुता-पूर्ण व्यवहार किया। उसने बोरसद में जेरतजवीज कैदियों को रखने के लिए जो पिंजड़ा बनाया था वह भी मैंने देखा। अजायबघर के जानवरों के लिए जैसे खुले बाड़े बनाये जाते हैं यह भी वैसा ही था। इसमें लोहे के सींखचे लगे हुए थे। इसकी लम्बाई-चौड़ाई ३० वर्ग फीट के करीब थी। इसमें १८ राजनैतिक कैदी दिन-रात बन्द रहते थे। एक कैदी को तो इसमें डेढ़ महीना बीत चुका था। उसे न पुस्तकें दी गई थीं, न कोई काम ही दिया गया था। यह खचाखच भरा रहता था। कैदियों को दिन में एक बार बाहर निकाला जाता था, और वह भी केवल पौन घन्टे के लिए शौच स्नानादि के निमित्त। उनमें से एक ने मुझसे कहा, 'हमें जेल में पीटा गया था।' क्या मैं उनकी बात न मानता? इस जेल में और मार-पीट में क्या अन्तर था? दोनों ही मध्य-कालीन बर्बरता के परिचायक थे।"

गोली-काण्ड का विवरण

देश में जो गोली-काण्ड हुए उनके विषय में असेम्बली में श्री एस० सी० मित्र के प्रश्न का उत्तर देते हुए होम मेम्बर हेग साहब ने गोली-काण्डों-सम्बन्धी अंकों की नीचे लिखी तालिका पेश की (देखिए लेजिस्लेटिव असेम्बली की बहस पृष्ठ २२७, सोमवार १४ जुलाई १९३०, जिल्द ४, अंक ६)–

जनता के हताहत

नगर	तारीख	मरे	घायल	विविध
मदरास शहर	२७ अप्रैल	२	६	१ पीछे से मर गया
करांची	१६ ,,	१	६	,, ,, ,,
कलकत्ता	१ ,,	७	५९	,, ,, ,,
,,	१५ ,,	—	३	
२४ परगना	२४ ,,	१	३	
चटगांव	१८,१९,२० अप्रैल	१०	२	दोनों पीछे से मर गये
पेशावर	२३ ,,	३०	३३	
चटगांव	२४ ,,	१	—	
मदरास	३० मई	—	२	
शोलापुर	८ ,,	१२	२८	
वडाला	२४ ,,	—	१	
भिण्डी बाजार बम्बई	२६,२७ ,,	५	६७	
हवड़ा	६ ,,	—	५	
चटगांव	७ ,,	४	६	३ पीछे मर गये
मैमनसिंह	१४ ,,	१	३० से ४० के बीच	
प्रतापदिगी (मेदिनीपुर)	३१ ,,	२	२	
लखनऊ	२६ ,,	१	४२	२ पीछेसे मर गये
कलू (झेलम-पंजाब)	१८ ,,	—	१	
रंगून	अन्तिम सप्ताह	५	३७	
सीमा-प्रान्त	,,	१७	३७	
दिल्ली	६ मई	४	४०	

१२ मई को ८॥ बजे सायंकाल शोलापुर के जिला मजिस्ट्रेट ने परिस्थिति सैनिक अधिकारियों के सुपुर्द कर दी। इसके कारण बम्बई-सरकार ने अपनी १९ मई की विज्ञप्ति में बता दिये हैं। मजिस्ट्रेट ने अपना इरादा बम्बई सरकार को उसी दिन तीसरे पहर सूचित कर दिया और बम्बई-सरकार ने उसी दिन शाम को अपनी अनुमति भेज दी। भारत-सरकार को यह सूचना दूसरे दिन मिली और १५ मई को शोलापुर का फौजी-शासन-सम्बन्धी आर्डिनेन्स निकाल दिया गया। ८ मई को शोलापुर में १२ मारे गये और २८ घायल हुए। ६ अलग-अलग मौकों पर गोली चली।

गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद शोलापुर में एक खेद-जनक घटना हो गई। स्वयंसेवक रास्तों पर व्यवस्था रख और आवागमन का नियमन कर रहे थे। ऐसा कई दिन तक होता रहा। पुलिस वस्तुतः बेकार हो गई। अधिकारियों को यह कब पसन्द आता? इस प्रकार की परिस्थिति में पुलिस एवं स्वयंसेवकों में संघर्ष के अवसर आने सम्भव थे ही। आखिर भिड़न्त हो ही गई और चार-पांच

पुलिसवाले मार दिये गये। १९१९ में पंजाब में जैसा फौजी कानून जारी किया गया था शोलापुर में भी वैसा ही हुआ। इसके साथ-साथ जो भय-सामग्री आती है वह भी आई। एक बड़े सेठ और तीन अन्य व्यक्तियों को फांसी पर लटका दिया। कई आदमियों को फौजी कानून के अनुसार लम्बी-लम्बी सजायें दे दी गईं। जुलाई-अगस्त की समझौते की बातचीत में, जोकि अन्त में असफल रही, इन्हीं कैदियों के छुटकारे का प्रश्न झगड़े का विषय बन गया था। पर इसका जिक्र तो आगे किया जायगा।

पेशावर-प्रकरण

२३ अप्रैल १९३० को पेशावर में जो घटनायें हुईं उनका भी सार यहां दे देना ठीक होगा। भारत के अन्य भागों की भांति सीमा प्रान्त में भी कानून-भंग का आन्दोलन चल रहा था। पेशावर-शहर में कांग्रेस की ओर से घोषणा की गई कि २३ अप्रैल से शराब की दुकानों पर पहरा लगेगा। परन्तु शकुन अच्छे नहीं हुए। २२ अप्रैल को महासमिति का प्रतिनिधि-मण्डल पेशावर पहुंचनेवाला था। इसका उद्देश्य सीमा-प्रान्त के विशेष कानूनों के अमल की जांच करना था। मण्डल अटक में ही रोक दिया गया और प्रान्त में उसे घुसने नहीं दिया गया। इस समाचार पर पेशावर में जुलूस निकला और शाही बाग में विराट् सभा हुई। दूसरे दिन तड़के ९ नेताओं को गिरफ्तार कर लिया गया। ९ बजे दो नेता और पकड़ लिये गये। परन्तु जिस मोटर-लारी में पुलिस उन्हें थाने पर ले जा रही थी वह बिगड़ गई। नेताओं ने थाने पर आ जाने का आश्वासन दिया और वे छोड़ दिये गये। तदनुसार जनता उक्त नेताओं का जुलूस बनाकर काबुली दरवाजे के थाने पर ले गई। पर थाना बन्द था। इतने में एक पुलिस-अफसर घोड़े पर आ पहुंचा। उसके आते ही जनता नारे लगाने और राष्ट्रीय गीत गाने लगी। अफसर चला गया और अकस्मात् दो-तीन सशस्त्र मोटरें आ पहुंचीं और भीड़ के भीतर घुस गईं। इसी समय एक अंग्रेज मोटर-साइकिल से तेजी से आ रहा था, उसकी मोटर-साइकिल सशस्त्र मोटर से टकरा गई और चूर-चूर हो गई। मोटर में से किसी ने गोली चलाई और संयोग से मोटर में आग भी लग गई। डिप्टी कमिश्नर अपनी सशस्त्र मोटर में से उतरा और थाने में जाते हुए जीने पर गिर पड़ा। वह बेहोश हो गया, किन्तु जल्दी ही होश में आ गया। उसके बाद सशस्त्र मोटरों से गोलियां चलने लगीं। लोगों ने मृत शरीरों को वहां से हटाने का प्रयत्न किया। फौजी दस्ते और मोटरें भी हटा ली गईं। दूसरी बार फिर गोलियां चलाई गईं और वे करीब ३ घण्टे तक चलती रहीं। दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में सरकार-द्वारा प्रकाशित वक्तव्य में मृतकों की संख्या ३० और घायलों की संख्या ३३ दी गई है; किन्तु लोग इन संख्याओं को करीब-करीब ७ से १० गुना तक बतलाते थे। सायंकाल फौज कांग्रेस के बिल्लों और राष्ट्रीय झण्डे को उठा ले गई। २५ तारीख को फौज और सामान्यतः वहां रहनेवाली पुलिस दोनों हटा ली गईं। २८ तारीख को पुलिस ने फिर आकर कांग्रेस और खिलाफत के स्वयंसेवकों से, जो शहर के दरवाजों पर पहरा दे रहे थे, सब शहर का चार्ज ले लिया। ४ मई को शहर पर फौज ने कब्जा कर लिया। ६ मई को सरकार ने घटनाओं के सम्बन्ध में जो वक्तव्य निकाला था उसे यहां दे देना उचित होगा। जिन दो नेताओं ने लोगों के प्रतिनिधि बनकर थाने में हाजिरी देना मंजूर किया था, वक्तव्य में कहा गया है कि उन्हें भीड़ ने पुलिस की हिरासत से छुड़ा लिया। कहा जाता है कि जिस पुलिस अफसर ने नारे और राष्ट्रीय-गायन सुने, उसने पुलिस-थाने से लौटकर डिप्टी-कमिश्नर को सूचित किया कि 'पुलिस-स्टेशन के पास भारी भीड़ खड़ी है; पुलिस उसे रोकने में असमर्थ है। मैं एक रोड़े से घायल भी हुआ हूं।' जब डिप्टी-कमिश्नर वहां होकर निकला तो उसकी मोटर पर भी रोड़े और पत्थर फेंके गये। उसने पीछे मुड़कर देखा तो उसे एक दूसरी सशस्त्र मोटर के पहियों के नीचे मोटर-साइकिलवाला

डाकिया दिखाई दिया। सशस्त्र मोटर उसपे रुकी खड़ी थी। कहा गया था कि डाकिये को भीड़ में से किसी ने सिर में घूंसा मारकर मोटर-साइकिल से नीचे गिरा दिया था। उसके बाद उसके ऊपर से सशस्त्र मोटर निकल गई। डिप्टी-कमिश्नर जब भीड़ से बातचीत करने की कोशिश कर रहा था तो उस पर रोड़े और पत्थर फेंके गये। सशस्त्र मोटर के फौजी अफसर पर हमला किया गया था और उसके तमंचे को छीन लेने की कोशिश की गई थी। डिप्टी-कमिश्नर को धक्का मारा गया था, जिससे वह बेहोश हो गया। उसे पुलिस स्टेशन में ले जाना पड़ा। सशस्त्र मोटर में भी भीड़ ने आग लगा दी थी। उसके बाद डिप्टी-कमिश्नर ने गोली चला कर भीड़ को तितर-बितर करने का हुक्म दिया था।

३१ मई १९३० को सविनय-अवज्ञा आंदोलन के जमाने में गंगासिंह केम्बोज नाम के एक सज्जन, जो कि एक फौजी डेरी में सरकारी नौकर हैं, अपने बाल-बच्चों के साथ पेशावर में एक तांगे में काबुली-दर्वाजे से गुजर रहे थे। उनपर के० ओ० वाई० एल० आई० के अंग्रेजी लैन्स जमादार ने गोली चलाई, जिससे बीबी हरपालकौर नाम की एक ९½ साल की उनकी लड़की और काका बचीतरसिंह नाम का १६ माल का उनका लड़का ये दो बच्चे मारे गये और तांगे से ऐसे गिर गये, जैसे चिड़िया के बच्चे उसके घोंसले से गिर जाते हैं। उन उच्चों की मां श्रीमती तेजकौर बांह और छाती में सख्त घायल हुईं। उनका स्तन तो बिलकुल उड़ ही गया था। उन बच्चों के मृत-शरीरों का जुलूस डिप्टी-कमिश्नर की आज्ञा से निकाला गया और उसमें हजारों लोगों ने भाग लिया। किन्तु डिप्टी-कमिश्नर की आज्ञा लेने पर भी फौज ने अर्थियां उठानेवालों और जुलूसवालों पर तितर-बितर होने की कोई सूचना दिये बिना ही केवल दो गज के फासले से गोलियां चलाईं। अर्थियों के पहले उठानेवाले मारे जाते तो अर्थियां जमीन पर गिर जातीं और उन्हें फिर नये लोग आकर उठा लेते। ऐसा बार-बार हुआ। इस प्रकार असेम्बली में दिये सरकारी उत्तर के अनुसार भी १७ बार गोलियां चलाने पर जुलूस के ९ आदमी मारे गये और १८ घायल हुए थे।

जुलाई १९३० में सरकार ने एक और वक्तव्य निकाला था, जिसमें दिखलाया गया था कि ११ नं० प्रेस-आर्डिनेन्स के अनुसार २ लाख ४० हजार रुपये की जमानतें १३१ अखबारों से उस समय तक मांगी जा चुकी थीं। इनमें से ९ पत्रों ने जमानतें नहीं दीं, अतः उनका प्रकाशन बंद हो गया।

बम्बई में लाठी-चार्ज

१ अगस्त १९३० को बम्बई में लोकमान्य तिलक की बरसी मनाई गई थी और श्रीमती हंसा मेहता के नेतृत्व में, जो उस समय नगर-कांग्रेस की डिक्टेटर थीं, एक जुलूस निकाला गया था। कांग्रेस-कार्य-समिति की बैठक नगर में लगातार तीन दिन से हो रही थी। वह उस समय वहां गैर-कानूनी घोषित नहीं हुई थी, क्योंकि सरका: उस हुक्म को एक प्रान्त से दूसरे में धीरे-धीरे जारी कर रही थी। कार्य-समिति के कुछ सदस्य सायंकाल के जुलूस में शामिल हो गये थे और जिस समय वे आगे बढ़े चले जा रहे थे उस समय उन्हें जुलूस निकालने की निषेधाज्ञा का दफा १४४ का नोटिस मिला। उस समय तक जुलूस में हजारों आदमी हो गये थे। जिस समय वह हुक्म मिला उस समय सड़क पर एक विशाल जन-समुदाय बैठा था और सारी रात पानी बरसते रहने के बाद भी एक इंच हटना नहीं चाहता था। लोग सचमुच पानी के पोखरों में ही बैठे थे। यह आशा की जा रही थी कि जुलूस को आधी रात के बाद आगे बढ़ने दिया जायगा, जैसा कि एक बार पहले हुआ था। किन्तु वह न हुआ। चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट ने इस स्थिति की सूचना पूना-स्थित होम-मेम्बर को दी। मि० हॉटसन ने उत्तर दिया कि जब तक मैं न आऊंगा तब तक कुछ भी नहीं करना चाहिए। वे सुबह

होते-होते वहां पहुंचे और भीड़ को विक्टोरिया-टर्मिनस की इमारत की गैलरी की एक छत से देखने लगे। कुछ चुने हुए आदमी सुबह गिरफ्तार कर लिये गये और उनके साथ कोई सौ महिलायें भी; और तब भीड़ को तितर-बितर करने के लिए लाठी-प्रहार का हुक्म हुआ। कार्य-समिति के जो मेम्बर उस समय थे और गिरफ्तार हुए वे पं० मदनमोहन मालवीय, श्री वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम और श्रीमती कमला नेहरू थे। श्रीमती मणिबहन (वल्लभभाई की सुपुत्री) जुलूस में थीं, इसलिए वे भी गिरफ्तार करली गईं। कोई सौ अन्य महिलायें भी गिरफ्तार की गई थीं। उनमें डिक्टेटर श्रीमती हंसा मेहता भी थीं।

पुलिस ने गैर कानूनी जमायत बनाने वालों को सजा देने का एक नया ढंग शुरू किया था। वह धरना देने वालों को भिन्न-भिन्न स्थानों से इकट्ठा करके लारी में रख कर शहर से बहुत दूर ले जाती और उन्हें वहां छोड़ आती। वे लोग बिना पैसे तकलीफ पाते हुए, जैसे होता वैसे, अपने स्थानों पर आते। बम्बई में व्यापारियों की दूकानों में विदेशी कपड़े का धरना और मुहरबन्दी दोनों कार्य इतनी तीव्रता से हुए कि एक बार छिपे छिपे विदेशी कपड़ा ले जाने वाली लारी को रोकने के लिए उसके सामने बाबू गणू नामक लड़का खड़ा हो गया। घटना कालबादेवी-रोड की है। हुआ यह कि मोटर लड़के के ऊपर होकर निकल गई और लड़का मर गया। इसके बाद बम्बई में हर मास इस वीर बालक की यादगार में बाबू गणू-दिवस मनाया जाता था। कांग्रेस वहां जिन पवित्र दिवसों को मानती थी उनमें से एक यह दिवस भी था।

विभिन्न प्रान्तों में दमन

जब वल्लभभाई पटेल अपनी ४ मास की पहली सजा काट कर बाहर आये तो पण्डित मोतीलाल नेहरू ने उन्हें कांग्रेस का स्थानापन्न अध्यक्ष नियुक्त किया। उन्होंने बम्बई और गुजरात में कार्य को संगठित करना शुरू किया और आन्दोलन को और भी तीव्र कर दिया। उनके व्याख्यानों में कार्यकर्त्ताओं के लिए एक नई ध्वनि और एक नया उत्साह मिला। १३ जुलाई को वे उस आर्डिनेन्स पर भाषण दे रहे थे जिसके अनुसार देश के सारे कांग्रेस-संगठन गैर-कानूनी घोषित कर दिये गये थे और कांग्रेस का दफ्तर जब्त कर लिया गया था। वल्लभभाई ने अपने भाषण में कहा था कि आज से भारतवर्ष का हरेक घर कांग्रेस का दफ्तर और हरेक व्यक्ति कांग्रेस-संस्था होना चाहिए। लॉर्ड अर्विन ने असेम्बली में जो प्रतिगामी भाषण दिया था, और जिसमें सविनय-अवज्ञा पर उन्होंने अपना महादण्ड उठाया था, उसका वल्लभभाई ने मुंह-तोड़ जवाब दिया था।

गुजरात में, बारडोली और बोरसद ताल्लुकों में जिस तरह करबन्दी-आन्दोलन सफलता-पूर्वक चलाया गया था, वह सारे आन्दोलन की मानो नाक थी। उसे दबाने के लिये अधिकारियों ने ऐसे-ऐसे जुल्म किये थे कि उनसे तंग आकर ८० हजार आदमी अंग्रेजी सीमा से निकल-निकल कर अपने पड़ोस के बड़ौदा राज्यस्थ गांवों में चले गये थे।

खुद श्री वल्लभभाई पटेल की मां, जिनकी उम्र ८० वर्ष से ऊपर है, जब अपना खाना पका रही थीं, उनके पकाने के बर्तन को पुलिस ने नीचे गिरा दिया था। चावल में पत्थर, बालू और मिट्टी का तेल मिला दिये गये थे। बेचारे देहातियों को, जो और शारीरिक कष्ट दिये गये वे इन सब से अलग थे। किन्तु फिर भी उनका संगठन आश्चर्य जनक था। पर उससे भी आश्चर्य-जनक थी अहिंसा में उनकी दृढ़ता—आचार में भी और भावना में भी।

इस लम्बी कहानी को संक्षिप्त करने के लिए केवल यह कह देना काफी है कि राष्ट्रीय-आन्दोलन में भारतवर्ष के हरेक प्रान्त और भाग ने अपने-अपने हिस्से का कष्ट-सहन किया।

भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न तरह से आन्दोलन और दमन चल रहा था जिसका कारण था भिन्न-भिन्न परिस्थिति, सम्बन्धित अफसरों का स्वभाव, पट्टे की शर्तें आदि। एक अर्थ में दक्षिण-भारत पर बहुत ही बुरी बीती। वहां लाठी-प्रहार, भारी-भारी जुर्मानों और लम्बी-लम्बी सजाओं की शुरुआत आन्दोलन के बढ़ने पर नहीं, बल्कि पहले ही से हो गई थी। बंगाल-प्रान्त ने देश भर में सब प्रान्तों से अधिक कैदी दिये। अंग्रेजी कपड़े का बहिष्कार बंगाल और बिहार-उड़ीसा में सबसे अधिक हुआ। वहां नवम्बर १९२९ के मुकाबले में नवम्बर १९३० में अंग्रेजी कपड़े का आयात ९५% गिर गया था। स्वतन्त्रता के युद्ध में गुजरात की कारगुजारियां अनुपम थीं, यह हम पहले कही चुके हैं। आम कर-बन्दी का आन्दोलन तो केवल संयुक्त-प्रान्त में ही शुरू किया गया था। वहां अक्तूबर १९३० में जमींदारों और काश्तकारों दोनों को ही लगान और मालगुजारी रोक लेने के लिए कहा गया था। पंजाब भी किसी से पीछे न रहा। अहिंसा-धर्म को हृदय से स्वीकार करके सीमाप्रान्त की जितनी राजनैतिक जीत हुई उतनी ही नैतिक विजय भी हुई। बिहार में चौकीदारी-टैक्स देना काफी हिस्से में बन्द कर दिया गया था। उसके लिए उस प्रान्त ने पूरे-पूरे कष्ट सहे। वहां के लोगों को सजा देने के लिए वहां अतिरिक्त-पुलिस रख दी गई और छोटी-छोटी रकमों के लिए उनकी बड़ी-बड़ी जायदादें जब्त कर ली गईं। मध्य-प्रान्त में जंगल-सत्याग्रह शुरू किया गया। उसमें सफलता मिली। लोगों ने भारी-भारी जुर्मानों और पुलिस की ज्यादतियों के होने पर भी उसे जारी रक्खा। तीन लाख ताड़ और खजूर के पेड़ काट डाले गये थे। सिर्सी ताल्लुके के १३० पटेलों में से ९६ ने, सिद्दापुर ताल्लुके के २५ ने और अंकोला ताल्लुके के ६३ पटेलों में से ४३ ने त्याग-पत्र दे दिये थे। ये सब ताल्लुके उत्तर कन्नाड में हैं।

अंकोला में करबन्दी-आन्दोलन का हेतु शुरू से ही राजनैतिक था, किन्तु सिर्सी और सिद्दापुर में वह आर्थिक कारणों से शुरू हुआ था। किसानों की तबाही भी कारण थी। केरल में, जो कि प्रान्तों में सबसे छोटी है, सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का झण्डा अन्त तक फहराता रहा। दूसरे सिरे पर आसाम प्रान्त ने, जिसमें कछार और सिलहट भी शामिल हैं, राष्ट्रीय महासभा की आवाज का शानदार जवाब दिया।

अन्य कुछ प्रान्तों में जो मुख्य-मुख्य घटनायें हुईं उनमें से कुछ की ओर भी ध्यान दें। कुछ बातें तो सभी प्रान्तों में समान ही थीं; जैसे, कांग्रेस-दफ्तरों का बन्द कर दिया जाना, कांग्रेस के कागजों, किताबों, हिसाबों और झंडों का ले जाया जाना, लाठी-प्रहार और सार्वजनिक सभाओं का बलपूर्वक भंग कर देना, सभी जगहों पर दफा १४४ का लगा दिया जाना, १०८ दफा में व्यक्तियों को नोटिस देना, घरों पर पुलिस का छापे मारना, तलाशियां लेना, प्रेसों पर कब्जा कर लेना और प्रेसों तथा पत्रों से जमानतें मांग लेना; किन्तु जो चीज घटनाओं को देखनेवाले पर सबसे अधिक प्रभाव डालती थी वह यह थी कि देश का शासन विदेशी वस्त्र और शराब की दुकानों के हित को दृष्टि में रखकर हो रहा था। बंगाल में मिदनापुर ही खासकर एक ऐसा स्थान था जहां दमन जोरों का हुआ। बंगाल और आन्ध्र दोनों में कांग्रेस-स्वयंसेवकों को और उनको जो पीटे गये थे और असहाय पड़े हुए थे, स्थान, खाना या पानी देने के कारण मकान-मालिकों को सजायें हुईं थीं। बंगाल में, उदाहरण के लिए खेरवाई में, जरा-सा मौका मिलते ही गोली चला देने की आज्ञायें दे दी गई थीं। उस गांव में एक घर के पास बहुत भीड़ इकट्ठी होगई थी, क्योंकि वहां कुछ जायदाद कुर्क की जा रही थी। उस समय भीड़ पर गोली चलाने की आज्ञा दे दी गई, जिसके परिणाम-स्वरुप एक आदमी मरा और कई घायल हुए। चेचना में लौटती हुई भीड़ पर गोली चला दी गई, जिससे ६ मनुष्य मर गये और

१८ घायल होगये। जून १९३० में कण्टाई में नमक बनाया जा रहा था। उसे देखने के लिए इकट्ठी हुई भीड़ पर गोली चला दी गई, जिससे २५ मनुष्य घायल हो गये। खेरसाई में एक मनुष्य की गिरफ्तारी के समय इकट्ठी हुई भीड़ जब चेतावनी देने पर हटी तो वहां गोली चलाई गई, जिससे ११ आदमी मारे गये। २२ जून को कलकत्ते में पुलिस ने देशबन्धुदास का मृत्यु-दिवस मनाने का निषेध कर दिया था, फिर भी लोगों ने जुलूस निकाला। पुलिस ने जुलूस पर निर्दयता-पूर्वक लाठी-प्रहार किया। उस समय घायलों को घोड़ों के खुरों-द्वारा कुचले जाने से बचाने के लिए स्त्रियां घरों में से निकल-निकल कर सामने आ खड़ी हुई थीं।

पुलिस ने कालेज की इमारतों में घुसकर दरजों में बैठे हुए विद्यार्थियों को पीटा। बरीसाल में एक दिन के लाठी-प्रहार में ५०० मनुष्य घायल हुए थे। तामलुक में, कहा जाता है कि, पुलिस ने सत्याग्रहियों और उनसे सहानुभूति रखने वाले लोगों की जायदाद में आग लगा दी थी। इसी प्रकार कई जगहों से भद्दे हमलों की खबर आई थीं। गोपीनाथपुर में कांग्रेस-स्वयंसेवक निर्दयता-पूर्वक पीटे गये थे। उनमें से एक मुसलमान लड़का था। इस घटना से गांव वाले अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्होंने पुलिवालों को पकड़ लिया और उन्हें कुछ समय तक स्थानीय स्कूल में बन्द रखने के बाद स्कूल में आग लगा दी। दो कांग्रेस स्वयंसेवकों ने स्कूल के किवाड़ तोड़ डाले और अपने जीवन को खतरे में डालकर आग की लपटों से उन्हें बचाया। ३१ दिसम्बर को लाहौर में स्वाधीनता का प्रस्ताव पास हुआ था। ३१ दिसम्बर १९३० को उसके वार्षिकोत्सव के जुलूस में जाते हुए सुभाष बाबू को बुरी तरह पीटा गया। वे उससे कुछ दिन पूर्व ही राजद्रोह के अपराध में एक वर्ष की सजा भुगतकर जेल से छूटे थे। लाहौर में अधिकारी इतने उत्तेजित हो गये थे कि उन्होंने असहयोग-वृक्ष के चित्र को भी जब्त कर लिया था। लुधियाना में एक परदे वाली मुसलमान महिला पिकेटिंग करती हुई गिरफ्तार हुई थी। जो विदेशी वस्त्र बेचते थे उनके घरों पर स्यापा (पंजाबी रोदन) किया जाता था। रावलपिंडी में खराब खाने से इन्कार करने के लिए कैदियों पर अभियोग चलाये गये थे। मांटगुमरी में एक भूख-हड़ताली ला० लाखीराम कई दिनों के उपवास के बाद मर गये। टमटम में एक महिला के साथ बड़ा बुरा सलूक किया गया था। सीनेट हाल में पंजाब-गवर्नर पर जो गोली चली उससे पुलिस को चाहे जिसकी तलाशी लेने का अवसर मिल गया। बिहार में आन्दोलन ने शान्तिपूर्वक प्रगति की थी। समस्तीपुर सब-डिवीजन में शाहपुर पटोरिया नाम का एक छोटा-सा बाजार है। जवाहर-सप्ताह मनाने के चार दिन बाद एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट की अधीनता में पुलिसवालों ने उसे घेर लिया। वे ४६ व्यक्तियों को गिरफ्तार करके लेगये और गांव से बाहर गये कुछ आदमियों की सम्पत्ति १२ बैलगाड़ियों में भरकर साथ लेते गये। दूसरे जिलों से भी ऐसी ही खबरें मिली थीं। मुंगेर और भागलपुर में आन्दोलन जोरों पर था। शराब की दुकानों पर धरना देने से सरकार को ४० लाख का नुकसान हुआ था। मोतीहारी में फूलवारिया के धान के खेतों में होकर फौजी पुलिस और गोरखे फसल को कुचलते हुए ले जाये गये थे और अनेक देहातियों को गिरफ्तार करके लोगों में भय का संचार किया गया था। चम्पारन, सारन, मुजफ्फरपुर, मुंगेर, पटना और शाहाबाद जिलों में चौकीदारी-कर बन्द कराया गया था। मध्यप्रान्त में शराब के नीलाम की बोली ६०% कम बोली गई थी। अमरावती में गढ़वाल-दिवस-मनाने के समय लाठी-प्रहार हुआ। आन्ध्र में पुलिस की सबसे बुरी करतूत यह थी कि उसने ८० व्यक्तियों की एक मित्र-मण्डली को, जो २१ दिसम्बर १९३० को पेड्डापुर में मनोरञ्जन के लिए इकट्ठी हुई थी, खूब पीटा। उनमें से कितने ही लोगों को सख्त चोटें आईं। दो तीन बहनें भी घायल हुई थीं। उसके परिणाम-स्वरूप पुलिस पर दीवानी

अभियोग चलाया गया, जिसका फैसला अभी तक नहीं हुआ। केरल में ताड़ी की बिक्री ७०% कम होगई थी। तामिलनाड में ताड़ी की बिक्री बन्द होजाने से कितनी ही जगहों पर गोलियां चलाई गईं और लाठी-प्रहार हुए। दिल्ली में एक रायसाहब शराब के व्यापारी थे। उन्होंने ७० महिलाओं और १०० पुरुष-स्वयंसेवकों की गिरफ्तारी के लिए जिम्मेदार होने का सौभाग्य प्राप्त किया था। अजमेर में एक दिन में लगभग १५० गिरफ्तारियां हुईं। जेल में 'ए' क्लास के कैदियों तक को पीटा गया।

किसानों की हिजरत

गुजरात में किसानों की हिजरत एक ऐतिहासिक घटना है, जिसका वर्णन मि० ब्रेल्सफोर्ड ने इस प्रकार किया है—

"...और तब उनकी वह हिजरत आरम्भ हुई जो इतिहास की विचित्रतम हिजरतों में से है। इन देहातियों ने आश्चर्यजनक एकता के साथ एक-एक करके पहले अपना सारा सामान अपनी-अपनी गाड़ियों में जमाया और फिर वे उन्हें बड़ौदा की सीमा में हांक ले गये। दृढ़ जाति-संगठन के कारण ऐसी एकता हिन्दुस्तानियों में ही हो सकती है। उनमें से कुछ ने अपनी कीमती फसलों को ले जाना असम्भव देख जला दिया। मैंने उनके एक पड़ाव को देखा है। उन्होंने चटाइयों की दीवारें और टाट पर ताड़ के पत्ते बिछाकर छतें बना लीं और काम चलाऊ घर बना लिये हैं। वर्षा समाप्त होगई है। इसलिए अब उन्हें मई मास तक अधिक कष्ट न उठाना पड़ेगा। किन्तु वे अपने प्यारे पशुओं सहित एक जगह इकट्ठे पड़े हुए हैं और उनका सामान, जिसमें चावल रखने के उनके बड़े-बड़े मिट्टी के बर्तन, बिछौने और दूध बिलौने, सन्दूक, पीतल के चमकते हुए बर्तन थे, चुना हुआ था। उनका हल भी एक ओर रक्खा हुआ था, दूसरी ओर उनके देवताओं का चित्र था, और सर्वत्र इधर-उधर इस पड़ाव के मानों अध्यक्ष-देवता महात्मा गांधी के भी चित्र थे। मैंने उनमें से एक बड़े दल से पूछा कि आप लोगों ने अपने-अपने घर क्यों छोड़ दिये हैं? स्त्रियों ने बहुत जल्दी सीधे सादे उत्तर दिये, 'क्योंकि महात्माजी जेल में हैं।' पुरुषों को अपने आर्थिक कष्ट का ज्ञान था। उन्होंने कहा, 'खेती में इतना पैदा नहीं होता और लगान बेजा है।' एक-दो ने कहा, 'स्वराज्य लेने के लिए।'

"मैंने सूरत की कांग्रेस के सभापति के साथ उन परित्यक्त गावों में भ्रमण करते हुए दो दिन व्यतीत किये, जो मुझे सदा याद रहेंगे। घरों की कतार-की-कतार खाली पड़ी थीं। उनपर कपड़ा सिले हुए ताले लगे थे। खिड़कियां खुली पड़ी थी, जिनमें से देखा जा सकता था कि ये घर बिलकुल खाली हैं। गलियां प्रकाश की नीरव झीलें थीं। कहीं भी कोई हलचल दिखाई नहीं दी।

"इनमें से कुछ खेतों में काम करने के लिए बाहर भी आगये थे, पर उनके परिवार और सामान बड़ौदा में ही रहे। उनमें से कुछ ने पुलिस के डराने-धमकाने और भय-प्रदर्शन की शिकायत की।

"चूंकि मैंने खुद उनके कुछ तौर-तरीक देखे थे, इसलिए इस बात पर विश्वास करना कठिन न था। इन परित्यक्त गांवों में से एक से जब हमारी मोटर रवाना होने लगी तो संगीन चढ़ी हुई रायफल वाले पुलिसमैन ने हमें ठहर जाने का हुक्म दिया। उसने कहा कि 'आप पुलिस की लिखित आज्ञा लेकर ही गांव से जा सकते हैं,' किन्तु जब उसने मेरी यूरोपियन पोशाक देखी तो वह तुरन्त डर गया। टूटी-फूटी अंग्रेजी में सिटपिटाते हुए बोला, 'हुजूर!' किन्तु मजे की बात तो यह थी कि उसकी वर्दी पर नम्बर का कहीं पता भी न था। जब मैंने उससे उसका नम्बर पूछा तो उसने मुझे विश्वास दिलाया कि हम सब लोग गुप्त नम्बर रखते हैं। वह सिपाही उस दल का आदमी था

जो उस विशेष कार्य के लिए तैयार किया गया था, और जो आयर्लैण्ड के 'ब्लेक एन्ड टान्स' दल से मिलता-जुलता है। इस दल के संगठन-कर्त्ता यह बात न जानते होंगे कि उनकी वर्दियों पर उनके नम्बर नहीं रहते हैं।

"कोई भी व्यक्ति उस सरकार को दोष नहीं दे सकता जो खुले विद्रोह को, फिर चाहे वह शान्तिपूर्ण ही क्यों न हो, कानून के भीतर रहकर दबाती है। सरकार ने कांग्रेस को गैर-कानूनी संस्था करार दे दिया था। उसने बारडोली जिले के सुन्दर आश्रम को जब्त कर लिया था। उसने मेरे मेज-बान सूरत-कांग्रेस के अध्यक्ष को हमारे एक-दूसरे से अलग होने के दूसरे दिन ही गिरफ्तार कर लिया था। उसने बारडोली से चले गये किसानों की जायदाद जब्त कर ली थी। यदि उसे खरीदार मिल जायँगे तो वह उनके खेतों को लगान वसूल करने के लिए बेच देगी और वे बेचारे इस हानि को चुप रहकर सह लेने को मजबूर होंगे।

"यह सब इस खेल के कायदों के भीतर है। भय-प्रदर्शन उनके बाहर है, किन्तु फिर भी वह जारी है। मेरी नोटबुक उन किसानों की शिकायतों से भरी पड़ी है जिनसे मैंने इस बारे में बातचीत की। मैं उनकी तसदीक तो शायद ही कर सकूं, किन्तु मैंने उन्हें कसकर जांचा था, इसलिए मैं उनके कथन की सत्यता पर सन्देह नहीं करता। ये नोट नामों और तारीखों-सहित उच्च-अधिकारियों के पास भेजूँगा।"

इस दुःखभरी कहानी को समाप्त करते हुए हमें पेशावर और वहाँ के पठानों के विषय में कुछ अन्तिम शब्द और कहने हैं। ये मनुष्य, जिनका नाम निर्दयता और हिंसा के लिए प्रसिद्ध है, मेमनों के समान सीधे-सादे और अहिंसा की प्रतिमूर्ति बन गये। खान अब्दुलगफ्फारखाँ ने अपने 'खुदाई खिदमतगारों' का ऐसे सुनियन्त्रित और सच्चे ढंग से संगठन किया था कि भारतवर्ष का जो हिस्सा इस दिशा में अत्यन्त भयजनक था वह अहिंसात्मक असहयोग-आन्दोलन के प्रयोग के लिए बहुत ही सुरक्षित केन्द्र बन गया था। सीमांतप्रान्त में की गई निर्दयताओं को बिलकुल अन्धकार में रक्खा गया था और श्री विट्ठलभाई पटेल की रिपोर्ट सरकार ने जब्त कर ली थी; किन्तु कुछ मिसालें तो इतनी मशहूर हैं कि उनसे इन्कार नहीं किया जा सकता। उनमें से कुछ का वर्णन हो ही चुका है।

एक महत्वपूर्ण घटना जो सीमाप्रान्त में हुई थी, वह यहां उल्लेखनीय है। उस प्रान्त में जो दमन हुआ उस सिलसिले में गढ़वाली सिपाहियों को, एक सभा में बैठे हुए लोगों पर, गोली चलाने की आज्ञा दी गई। उन्होंने शान्त और निशस्त्र भीड़ पर गोली चलाने के लिए ले जानेवाली मोटर पर चढ़ने से इन्कार कर दिया। इसी कारण इन सिपाहियों पर फौजी अदालत में मुकदमा चलाया गया और इन्हें १० से लगाकर १४ साल तक की लम्बी-लम्बी सजायें दी गईं। मार्च १९३१ की कांग्रेस और सरकार के बीच की अन्तिम बातचीत में इन सिपाहियों के छुटकारे का प्रश्न मुख्य विवादास्पद विषय था।

यहाँ हमें यह याद रखना चाहिए कि ये सिपाही गांधी-अर्विन-समझौते में नहीं छोड़े गये थे; किन्तु कुछ साल बाद इनकी सजायें घटा दी गईं। कुछ लोग कुछ जत्थों में छूट गये और कुछ अभी तक जेल में हैं।

इस रोमाञ्चकारी दुःख-कथा को हम २१ जनवरी १९३१ के दिन एक उत्सव मनाने के समय बोरसद में दिखाई हुई महिलाओं की वीरता के एक वर्णन के साथ समाप्त करेंगे। पुलिस प्रदर्शन को रोकने का निश्चय कर चुकी थी। स्त्रियों ने जुलूसवालों को पानी पिलाने के लिए भिन्न-भिन्न स्थानों पर पानी के बड़े-बड़े बर्तन रख छोड़े थे। पुलिस ने पहले इन बर्तनों को ही तोड़ा। फिर स्त्रियों को

बलपूर्वक तितर-बितर कर दिया। यह भी कहा जाता है कि जब स्त्रियाँ गिर गईं तो पुलिसवाले उनके सीनों को बूटों से कुचलते हुए चले गये। पुलिस के गुण्डेपन का कदाचित् वह अन्तिम कार्य था। क्योंकि २६ जनवरी को समझौते की बातचीत चलाने योग्य वातावरण उत्पन्न करने के लिए गांधी जी और उनके २६ साथियों को बिना शर्त छोड़ देने की विज्ञप्ति प्रकाशित हुई थी।

सुलह के असफल प्रयत्न

हम अपने पाठकों को जून, जुलाई और अगस्त महीनों की ओर फिर वापस ले जाना चाहते हैं। २० जून १९३० को पंडित मोतीलालजी से, जबकि वे बाहर ही थे, 'डेली हेरल्ड' के संवाददाता मि० स्लोकोम्ब ने मुलाकात की। मि० स्लोकोम्ब ने बम्बई में पण्डितजी से 'कांग्रेस किन शर्तों पर गोलमेज-परिषद् में शामिल हो सकती है?' इस विषय पर बातचीत की थी। उसके थोड़े दिन बाद मि० स्लोकोम्ब की सोची हुई शर्तों पर एक सभा में, जिसमें पण्डितजी, श्री जयकर और मि० स्लोकोम्ब खुद मौजूद थे, विचार हुआ और वे स्वीकार हुईं। मि० स्लोकोम्ब ने सर सप्रू को भी एक पत्र लिखा था, उसके परिणाम-स्वरूप सर सप्रू और श्री जयकर उन शर्तों के आधार पर वाइसराय से बातचीत करने के लिए मध्यस्थ हुए। पंडित मोतीलालजी समझौते की तजवीजें लेकर कांग्रेस के सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू और गांधीजी के पास जाने को राजी हो गये। शर्त यह थी कि ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार दोनों निजी तौर पर यह आश्वासन देने को राजी हो जायँ कि, चाहे गोलमेज-परिषद् की कुछ भी सिफारिशें हों और चाहे पार्लमेण्ट हमारे प्रति कुछ भी रुख रक्खे वे स्वयं भारतवर्ष की पूर्ण उत्तरदायी-शासन की मांग का समर्थन करेंगे। शासन-परिवर्तन की खास-खास तर्मीमों और शर्तों की, जिन्हें गोलमेज-परिषद् रक्खे, उसमें गुंजाइश रहे। इस आधार पर मध्यस्थों ने वाइसराय से लिखा-पढ़ी की और गांधीजी, मोतीलालजी और जवाहरलालजी से जेल में मिलने की इजाजत मांगी। यह १२ जुलाई की बात है। तब तक मोतीलालजी को जेल हो चुकी थी। वाइसराय ने अपने उत्तर में भारतवासियों को दिये जानेवाले स्वराज्य के प्रकार को और भी नरम कर दिया। उन्होंने वादा किया कि 'हम भारतवासियों को उनके गृह-प्रबन्ध का उतना अंश दिलाने में सहायता देंगे जितना कि उन विषयों के प्रबन्ध से मेल खाता हुआ दिखाया जायगा, जिनमें जिम्मेदारी लेने की स्थिति में वे नहीं हैं।' इन दो कागजों को लेकर श्री सप्रू और जयकर ने यरवडा-जेल में २३ और २४ जुलाई को गांधीजी से मुलाकात की, जिसमें गांधीजी ने उन्हें नैनी-जेल (इलाहाबाद) में पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को देने के लिए एक नोट और पत्र दिया। गांधीजी चाहते थे कि गोलमेज परिषद् के वाद-विवाद को संरक्षणों-सम्बन्धी विचार तक ही सीमित रक्खा जाय। संक्रमण-काल के सिलसिले में स्वाधीनता का प्रश्न विचार-क्षेत्र से निकाल न देना चाहिये। गोलमेज-परिषद् की रचना संतोषजनक होनी चाहिये। सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के रोक लेने की दशा में भी तबतक विदेशी वस्त्र और शराब का धरना जारी रहना चाहिये जबतक कि सरकार स्वयं शराब और विदेशी वस्त्र का निषेध कानूनन न करदे और नमक का बनाया जाना बिना किसी भी तरह की सजा के जारी रखना चाहिये।

इसके बाद उन्होंने राजनैतिक बन्दियों के छुटकारे का, जायदादों, जुर्मानों और जमानतों के वापस करने का, जिन अफसरों ने अपने पदों से त्यागपत्र दे दिये थे उनकी पुनर्नियुक्ति का और आर्डिनेन्सों को वापस लेने का ज़िक्र किया था। उन्होंने सन्देशवाहकों को सावधान किया था कि मैं एक कैदी हूँ इसलिए मुझे राजनैतिक गति-विधियों पर राय देने का कोई हक नहीं है। ये मशविरे मेरे अपने हैं। मैं स्वराज्य की हरेक योजना को अपनी ११ शर्तों से कसने का हक अपने लिए सुरक्षित

रखता हूँ। पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू को गांधीजी ने जो पत्र लिखा था उसमें उन्होंने समझौते का ठीक समय आ पहुँचा है या नहीं, इसपर सन्देह प्रकट किया था। इन कागजों के साथ सन्देश-वाहकों ने २७ और २८ जुलाई को पं० मोतीलाल और जवाहरलाल नेहरू से मुलाकात की। खूब बहस भी हुई। मोतीलालजी और जवाहरलालजी ने २८ जुलाई १९३० के पत्र में अपनी यह राय प्रकट की कि जबतक मुख्य-मुख्य विषयों पर एक समझौता न हो जाय तबतक किसी भी परिषद् में हमें कोई भी चीज न मिल सकेगी।

जवाहरलालजी ने एक पृथक् नोट में लिखा था कि मुझे या मेरे पिताको वैधानिक विषय-सम्बन्धी गांधीजी के विचार जँचते नहीं हैं, क्योंकि वे कांग्रेस की प्रतिज्ञाओं और स्थिति के योग्य नहीं हैं, और न उनसे वर्तमान समय की मांग की ही पूर्ति होती है। ३१ जुलाई तथा १ और २ अगस्त को श्री जयकर गांधीजी से मिले, तब गांधीजी ने उनसे साफ-साफ कहा कि मुझे ऐसी कोई भी शासन-विधान-सम्बन्धी योजना स्वीकार न होगी जिसमें चाहे जब साम्राज्य से पृथक् होने की इजाजत न हो और जिससे भारतवर्ष को मेरी ग्यारह बातों के अनुसार कार्य करने का अधिकार और शक्ति न मिले। मैं अंग्रेजों के जो दावे हैं और भूतकाल में उन्हें जो रियायतें दी गई हैं उनकी जांच के लिए एक स्वतंत्र कमिटी चाहूंगा। गांधीजी चाहते थे कि वाइसराय को मेरी इस स्थिति से आगाह कर दिया जाय, ताकि वे पीछे यह न कह सकें कि मेरे इन विचारों को वे पहले न जानते थे। उसके थोड़े दिन बाद ही दोनों नेहरू और डा० सैयद महमूद यरवडा-जेल में, ले जाये गये, ताकि उन्हें गांधीजी से तथा उनके दूसरे मित्रों से जो यरवडा-जेल में थे, मिलने का अवसर मिल सके।

इस प्रकार वहां १४ अगस्त को एक सम्मेलन हुआ, जिसमें एक तरफ मध्यस्थ थे जयकर-सप्रू और दूसरी तरफ गांधीजी, दोनों नेहरू, वल्लभभाई पटेल, डा० सैयद महमूद, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू। इस सम्मेलन का परिणाम १५ अगस्त के एक पत्र में लिखा गया था जिसमें हस्ताक्षर-कर्ताओं ने, जिनमें सब उपस्थित कांग्रेसी थे, समझौते की शर्तों को, जिनका अभी जिक्र किया जा चुका है, दोहराया था। उसमें उन्होंने भारतवर्ष के पृथक् होने के हक को और अंग्रेजों के दावों और उनको रियायतों की जांच के लिए एक कमिटी की नियुक्ति की मांग को भी शामिल कर दिया था। बात-चीत को समाप्त करते समय गांधीजी, श्रीमती सरोजिनी, वल्लभभाई पटेल और श्री जयरामदास दौलतराम ने सन्देश-वाहकों को शान्ति-स्थापना के लिए उठाई हुई तकलीफों के लिए धन्यवाद दिया। उन्होंने उन्हें सुझाया कि "अब जिनके हाथ में कांग्रेस-संस्थायें हैं वे हम किसी से मिलने-जुलने की सुविधा स्वभावतः पा सकेंगे। जब सरकार भी शान्ति-स्थापना के लिए उतनी ही इच्छुक है तो उस हालत में उन्हें हम तक पहुंचाने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।"

वाइसराय ने २८ अगस्त को एक पत्र लिखा था, जिसमें उन्होंने बताया था कि मैं तो प्रान्तीय सरकारों से राजनैतिक बन्दियों को बड़ी संख्या में छोड़ने की प्रेरणा कर सकता हूँ, किन्तु मामलों पर उनके प्रकारों और योग्यता के अनुसार विचार वही करेंगी। दोनों नेहरुओं ने, जो नैनी-जेल में वापस ले आये गये थे, ३१ तारीख को गांधीजी को लिखा कि वाइसराय मुख्य प्रारम्भिक बातों पर विचार करना भी गैर-मुमकिन ख़याल करते हैं। कुछ समय तक और भी पत्र-व्यवहार हुआ, किन्तु अन्त में हुआ यह कि शान्ति की बात-चीत असफल हो गई।

इन बात-चीतों के और इनकी असफलता के पूरे विवरण परिशिष्ट ६ में छपे हैं। सप्रू-जयकर की समझौते की बात-चीत के असफल हो जाने से भारतवर्ष के हितैषियों को निराशा नहीं हुई। उसके बाद मि० होरेस जी० अलक्जेंडर के, जो सेली ओक कॉलेज में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों के

अध्यापक थे; उत्साह-पूर्ण प्रयत्न शुरू हुए। वे वाइसराय से और जेल में गांधीजी से मिले। गांधीजी की साफ मांगों से वे प्रभावित हुए। उनमें कोई शब्दाडम्बर न था, केवल हिन्दुस्तान की गरीबी की सीधी-सादी समस्याओं का मुकाबला भर करने का प्रयत्न किया गया था। इस समय तक लॉर्ड अर्विन ने एक दर्जन के करीब आर्डिनेन्स निकाल दिये थे, जिनमें गैर-कानूनी उत्तेजन (unlawful instigation) आर्डिनेन्स, प्रेसआर्डिनेन्स और गैर-कानूनी संस्था (unlawful association) आर्डिनेन्स भी शामिल थे। लार्ड अर्विन ईमानदारी के साथ एकदम 'दुहरी नीति' का अनुसरण कर रहे थे। वे आर्डिनेन्सों की बहुत आवश्यकता भी बताते जा रहे थे और भारतीय राष्ट्रीयता की थोड़ी कद्र भी कर रहे थे। उन्होंने कलकत्ते के यूरोपियन असोसियेशन से कहा था—"यद्यपि हम जोरदार शब्दों में सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन की निन्दा कर सकते हैं; किन्तु यदि हम भारतवासियोंके मस्तिष्क में आज जो राष्ट्रीयता की आग धधक रही है उसके सच्चे और शक्तिपूर्ण अर्थ को ठीक-ठीक न समझेंगे तो हम बड़ी भारी गलती करेंगे।"

गोलमेज-परिषद् शुरू

१२ नवम्बर १९३० को गोलमेज परिषद् शुरू हुई। अपर-हाउस की शाही गैलरी में बड़ी शान के साथ उसका उद्घाटन हुआ था। कुल ८६ प्रतिनिधि थे, जिनमें १६ रियासतों से गये थे, ५७ ब्रिटिश भारत से और बाकी १३ इंग्लैण्ड के भिन्न-भिन्न दलों के मुखिया थे। गोलमेज-परिषद् बीच-बीच में सैण्ट जेम्स महल में भी हुई। शुरू के भाषणों में प्रायः सभी ने औपनिवेशिक स्वराज्य की चर्चा की। पटियाला, बीकानेर, अलवर और भूपाल के नरेश-प्रतिनिधि संघ-राज्य के पक्ष में थे। शास्त्रीजी, जो भारतवर्ष की स्वाधीनता के पक्ष में बहुत अच्छा बोले, पहले तो संघ-शासन के पक्ष में कुछ झिझकते हुए बोले, किन्तु पीछे उसीके पक्षमें दृढ़ हो गये। प्रधान-मन्त्री ने शासन-विधान की सफलता के लिए जरूरी दो मुख्य शर्तें रक्खीं। पहली यह कि शासन-विधान पर अमल किया जाय और दूसरी यह कि उसका विकास होता रहे। उन्होंने इस पिछली बात की खूबियां दिखलाईं। उन्होंने कहा कि जो शासन-व्यवस्था विकासशील होगी उसे अगली पीढ़ी पवित्र विरासत समझेगी। उसके बाद भिन्न-भिन्न उपसमितियां बनाई गईं जिन्होंने रक्षा के अधिकार, सीमा, अल्प-संख्यकों, ब्रह्मा, सरकारी नौकरियां और प्रान्तीय तथा संघ-शासन के ढांचों के बाबत बाकायदा रिपोर्टें दीं। परिषद् अधिवेशन को जल्दी समाप्त करना चाहती थी, इसलिए १९ जनवरी को खुला अधिवेशन हुआ और उसमें निश्चय हुआ कि रिपोर्टों और नोटों में भारतवर्ष का विधान बनाने के लिए अत्यन्त मूल्यवान सामग्री मिलती है। यह भी निश्चय हुआ कि आगे कार्य जारी रक्खा जाय।

प्रधानमंत्री ने यह भी साफ कर दिया था कि संघ-शासन के आधार पर जो व्यवस्थापक-सभा बने, जिसमें रियासतें और प्रान्तों दोनों का प्रतिनिधित्व हो, उसमें सरकार व्यवस्थापक-सभा के प्रति कार्यकारिणी की जवाबदेही के सिद्धान्त को स्वीकार करने को तैयार होगी। केवल बाह्य-रक्षा और वैदेशिक मामलों के विषय सुरक्षित रक्खे जायंगे। राज्यकी शांति और आर्थिक स्थिति की मजबूती के लिए गवर्नर-जनरल की जो खास जिम्मेदारियां हैं उन्हें पूरा करने के लिए गवर्नर-जनरल को विशेष अधिकार दे दिये जायंगे। दूसरे भिन्न-भिन्न विषयों की विगतें भी बतलाई गई थीं। उसके बाद प्रधानमन्त्री ने भारतवर्ष के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार की नीति और उसके इरादों की घोषणा की थी—

"ब्रिटिश-सरकार का विचार यह है कि भारतवर्ष के शासन की जिम्मेदारी प्रान्तीय और

केन्द्रीय व्यवस्थापक-सभाओं पर रक्खी जाय। संक्रमण-काल में खास-खास जिम्मेदारियों का ध्यान रखने की गारंटी देने के लिए और दूसरी खास-खास स्थितियों का मुकाबला करने के लिए उसमें आवश्यक गुंजाइश रखली जाय। अपनी राजनैतिक स्वाधीनता की और अधिकारों की रक्षा के लिए अल्पसंख्यकों को जितनी गारंटी आवश्यक है, वह भी उसमें हो।

"संक्रमण-काल की आवश्यकतायें पूरी करने के लिए जो कानूनी संरक्षण रक्खे जायंगे उनमें यह ध्यान रखना ब्रिटिश-सरकार का प्रथम कर्तव्य होगा कि सुरक्षित अधिकार इस प्रकार के हों और उन्हें इस प्रकार से काम में लाया जाय कि उनसे नये शासन-विधान-द्वारा भारतवर्ष को अपने निजी शासन की पूरी जिम्मेदारी तक बढ़ने में कोई बाधा न आवे।"

प्रधानमंत्री ने यह भी कहा था कि "यदि इस इस बीच में वाइसराय की अपील का जवाब उन लोगों की ओर से भी मिलेगा, जो इस समय सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में लगे हुए हैं, तो उनकी सेवायें स्वीकार करने की कार्रवाई भी की जायगी।"

पहली गोलमेज-परिषद् की; जिसका कि कांग्रेस से कोई सम्बन्ध न था, कार्रवाई जल्दी से संक्षेप में देने का कारण प्रधानमन्त्री की घोषणा से उद्धृत उक्त वाक्य से मालूम हो जाता है। उस परिषद् को समाप्त हुए अभी एक सप्ताह भी न हुआ था कि भारतवर्ष की स्थिति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गया, जिसके परिणामस्वरूप गांधीजी और उनके १९ साथियों को जेल से बिना शर्त रिहा कर दिया गया। पीछे ७ आदमियों की रिहाई से यह संख्या और भी बढ़ गई। उस समय वाइसराय ने जो वक्तव्य प्रकाशित कराया था वह भाषा और भाव दोनों में ही सुन्दर था। हम उसे ज्यों का-त्यों नीचे देते हैं। किन्तु उसे देने से पूर्व हम कांग्रेस-कार्य-समिति-द्वारा पास किये हुए एक विशेष प्रस्ताव को यहां देना आवश्यक समझते हैं, जिसपर 'रिआयती' (Privileged) लिखा हुआ था।

'रिआयती' प्रस्ताव

यह 'रिआयती' प्रस्ताव कांग्रेस कार्यकारिणी ने २१ जनवरी १९३१ को शाम के ४ बजे स्वराज्य-भवन इलाहाबाद में स्वीकार किया था—

"अ० भा० राष्ट्रीय महासभा की यह कार्य-समिति उस 'गोलमेज परिषद्' की कार्रवाइयों को स्वीकार करने को तैयार नहीं है जो ब्रिटिश-पार्लमेण्ट के खास-खास सदस्यों, भारतीय नरेशों और ब्रिटिश-सरकार द्वारा अपने समर्थकों में से चुने हुए इन व्यक्तियों ने मिलकर की थी, जो भारतवासियों के किसी भी वर्ग के चुने हुए प्रतिनिधि नहीं थे। इस कार्य-समिति की राय में ब्रिटिश-सरकार ने भारतीय प्रतिनिधियों से सलाह लेने का प्रदर्शन करने के लिए जिन तरीकों का इस्तेमाल किया है, उनसे उसने स्वयं अपने-आपको निन्दनीय ठहराया है। वास्तव में बात तो यह है कि वह, भारतवासियों के महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरू जैसे वास्तविक नेताओं को जेलों में बन्द करके, आर्डिनेन्सों और सजाओं-द्वारा और सविनय-अवज्ञा-द्वारा (जिसे यह कार्य-समिति सभी कुचली हुई जातियों के हाथों में कानूनी हथियार मानती है) अपने देश की स्वाधीनता प्राप्त करने के देशभक्तिपूर्ण प्रयत्न में लगे हुए हजारों शांत, शस्त्र-हीन और मुकाबला न करने वाले लोगों पर लाठी-प्रहार करके और गोलियां चलाकर, इस देश की सच्ची आवाज को रोकती रही है।

"इस कार्य-समिति ने १९ जनवरी १९३१ को मन्त्रि-मंडल की ओर से इंग्लैंड के प्रधानमन्त्री मि० रेम्जे मैकडानल्ड-द्वारा घोषित सरकार की नीति पर खूब विचार कर लिया है। इस समिति की राय में वह इतनी अस्पष्ट और सामान्य है कि उससे कांग्रेस की नीति में परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

"यह समिति लाहौर-कांग्रेस में स्वीकृत पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव पर दृढ़ है और यरवडा-जेल से १५ अगस्त १९३० को लिखे हुए पत्र में म० गांधी; पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहर लाल नेहरू तथा अन्य लोगों ने जो विचार प्रकट किया है उसका समर्थन करती है। उक्त पत्र पर हस्ताक्षर करनेवालों की जो स्थिति है, प्रधान मंत्री-द्वारा की हुई नीति की घोषणा में उसके लायक उत्तर इस समिति को दिखाई नहीं देता। समिति का विचार है कि ऐसे उत्तर के अभाव में और हजारों स्त्री-पुरुषों के जेल में होते हुए, जिसमें कि कांग्रेस-कार्य-समिति के असली सदस्य और महा-समिति के अधिकांश सदस्य भी हैं, तथा जब कि सरकारी दमन का पूरा जोर है, नीति की कोई भी सामान्य घोषणा राष्ट्रीय संघर्ष का कोई सन्तोषप्रद अन्त करने में असमर्थ है। उससे सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन का अंत हर्गिज नहीं हो सकता। इसलिए समिति आन्दोलन को पहले दी हुई हिदायतों के अनुसार पूर्ण शक्ति से चलाये जाने की सलाह देश को देती है और विश्वास करती है कि उसने अब तक जिस उच्च तेज का परिचय दिया है वह उसे कायम रक्खेगा।

"समिति देश के पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की उस हिम्मत और मजबूती की इस अवसर पर कद्र करती है जिसके साथ उन्होंने सरकार के जुल्मों का मुकाबला किया है, और वह भी उस सरकार के जुल्मों का जो कि ७५ हजार के करीब निर्दोष स्त्री-पुरुषों को जेलों में ठूंसने की, कितने ही आम और पाशविक लाठी-प्रहारों की, भिन्न-भिन्न प्रकार की यातनाओं की जो जेलों में तथा बाहर लोगों को दी गई, गोली चलाने की जिससे कि सैकड़ों ही मनुष्य अपंग हो गये और मर गये, सम्पत्ति लूटने की, घरों को जलाने की, कितने ही देहाती हिस्सों में सशस्त्र पुलिस वाले सवारों और गोरे सिपाहियों की लाइनों को घुमाने की, लोगों के सार्वजनिक व्याख्यान देने, जुलूस निकालने और सभा करने के हकों को छीनने की और कांग्रेस तथा उससे सम्बन्धित अन्य संस्थाओं को गैर-कानूनी घोषित करने की, उनकी चल-सम्पत्ति को जब्त करने की और उनके घरों तथा दफ्तरों पर जब्त करने की जिम्मेदार है।

"समिति देश से अपील करती है कि वह, २६ जनवरी को स्वाधीनता-दिवस, प्रकाशित किये हुए कार्यक्रम के अनुसार मनावे और यह सिद्ध कर दे कि वह निर्भर और आशा-पूर्ण होकर स्वाधीनता की लड़ाई जारी रखने का दृढ़-निश्चय कर चुका है।"

जब कांग्रेस-कार्य-समिति में यह प्रस्ताव आया तब राजेन्द्र बाबू कांग्रेस के काम-चलाऊ अध्यक्ष थे। वल्लभभाई तो ११ मास में तीसरी बार जेल गये हुए थे, इसलिए वेही उनके स्थानापन्न थे। पं० मोतीलाल नेहरू भी जेल में सख्त बीमार हो जाने के कारण सजा की मियाद खत्म होने से पहले ही छोड़ दिए गए थे। उसके थोड़े दिन बाद ही उनकी मृत्यु हुई थी। कार्य-समिति की बैठक का और उसके उद्देश्य का प्रेस द्वारा खुला ऐलान कर दिया गया था। उस अवसर पर कार्य-समिति के सदस्य इलाहाबाद में इकट्ठे हुए। कुछ वाद-विवाद के बाद यह प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। पं० मदनमोहन मालवीय यद्यपि रोगी थे किन्तु फिर भी समिति की इस बैठक में उपस्थित हुए थे। सवाल यह था कि आया यह प्रस्ताव प्रकाशित किया जाय या नहीं ? इस पर मत-भेद था। अन्त में यह तय हुआ कि इसे अगले दिन तक प्रकाशित न किया जाय। किन्तु दूसरे दिन अचानक एक ऐसी घटना हो गई जिससे उसे प्रकाशित न करने का निश्चय ही ठीक सिद्ध हुआ। लन्दन से डा० सप्रू और शास्त्री जी का एक तार मिला, जिसमें उन्होंने कार्य-समिति से उनके आने से पहले उनकी बातें बिना सुने प्रधान-मन्त्री के भाषण पर कोई निर्णय न करने की प्रार्थना की थी। वह तभी गोलमेज-परिषद् के बाद भारतवर्ष को लौटने वाले थे। उस तार के अनुसार प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया गया; किन्तु जैसा

कि ऐसे प्रायः सभी मामलों में हुआ करता है, इसकी सूचना इसके पास होने के कुछ देर बाद ही सीधी सरकार के पास पहुंच गई थी।

गवर्नर-जनरल का वक्तव्य

२५ जनवरी १९३१ को गवर्नर-जनरल ने यह वक्तव्य निकाला—

"१९ जनवरी को प्रधानमन्त्री ने जो वक्तव्य दिया था उस पर विचार करने का अवसर देने की गरज से मेरी सरकार ने प्रान्तीय सरकारों की राय से यह ठीक समझा है कि कांग्रेस की कार्य-समिति के सदस्यों को आपस में और उन लोगों के साथ जो १ जनवरी १९३० से समिति के सदस्य के तौर पर काम करते रहे हैं, बातचीत करने की पूरी-पूरी छूट दी जाय।

"इस निर्णय के अनुसार इस उद्देश्य से और इस गरज से कि वे जो सभायें करें उनके लिए कानूनन कोई रुकावट न हो, समिति को गैर-कानूनी घोषित करने वाला ऐलान प्रान्तीय सरकारों-द्वारा वापस ले लिया जायगा और गांधी जी तथा अन्य लोगों को, जो इस समय समिति के सदस्य हैं या जो १ जनवरी १९३० से सदस्य के तौर पर काम करते रहे हैं, छोड़ने की कार्रवाई की जायगी।

"मेरी सरकार इन रिहाइयों पर कोई शर्त नहीं लगायेगी, क्योंकि हम अनुभव करते हैं कि शान्तिपूर्ण स्थिति वापस लाने की अधिक-से-अधिक आशा इसी में है कि सम्बन्धित लोग बिना शर्त आजाद होकर बातचीत करें। हमने यह कार्रवाई ऐसी शान्ति-पूर्ण स्थिति उत्पन्न करने की हार्दिक इच्छा से की है कि जिसमें प्रधान मन्त्री ने जो जिम्मेदारी ली है, कि यदि शान्त रहने की घोषणा कर दी जाय और उसका विश्वास दिलाया जाय तो सरकार भी अनुकूल उत्तर देने में पीछे न रहेगी, वह सरकार द्वारा पूरी की जा सके।

"हमारे इस निर्णय का असर जिन-जिन लोगों पर होगा उन पर यह विश्वास करने में मुझे सन्तोष है कि वे उसी भावना से काम करेंगे जिस भावना से प्रेरित होकर यह किया गया है। मुझे विश्वास है कि वे उन गम्भीर परिणामों की शान्ति-पूर्ण और निष्पक्ष भाव से जांच करने के महत्व को स्वीकार करेंगे।"

[भाग पांचवां — १९३१]

७

गांधी-अर्विन-समझौता—१९३१

गांधी जी का सन्देश

कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्यों की रिहाई २६ जनवरी की आधीरात से पहले होने वाली थी और इस बात की हिदायत निकाल दी गई थी कि उनकी पत्नियां यदि जेल में हों तो उन्हें भी रिहा कर दिया जाय। चूंकि जो लोग बीच-बीच में किसी के बजाय (कार्य-समिति के) सदस्य बने थे उनकी रिहाई की भी हिदायत थी, इसलिए इस प्रकार रिहा होनेवालों की कुल संख्या २६ पर पहुंच गई। गांधी जी जैसे ही जेल से छूटे, उन्होंने भारतीय जनता के नाम एक सन्देश निकाला, जो उनके स्वभाव के ही अनुरूप था। क्योंकि जैसे पराजय से वे दुखी नहीं होते उसी प्रकार सफलता में वे फूल भी नहीं उठते। उन्होंने कहा—

"जेल से मैं अपनी कोई राय बनाकर नहीं निकला हूं। न तो किसी के प्रति मुझे कोई शत्रुता है और न किसी बात का तास्सुब। मैं तो हरेक दृष्टि-कोण से सारी परिस्थिति का अध्ययन करने और सर तेजबहादुर सप्रू तथा दूसरे मित्रों से, जब वे लौटकर आयेंगे, प्रधानमंत्री के वक्तव्य पर विचार करने के लिए तैयार हूं। लन्दन से कुछ प्रतिनिधियों ने तार भेजकर मुझसे ऐसा करने का आग्रह किया है, इसलिए मैं यह बात कह रहा हूं।"

समझौते के लिए उनकी क्या शर्तें होंगी, यह पत्र-प्रतिनिधियों की मुलाकात में उन्होंने इंगित किया, लेकिन इस बात की घोषणा अविलम्ब की, कि "पिकेटिंग का अधिकार नहीं छोड़ा जा सकता, न लाखों भूखों-मरते लोगों द्वारा नमक बनाने के अधिकार को ही हम छोड़ सकते हैं।" उन्होंने कहा, "यह ठीक है कि ज्यादातर आर्डिनेन्स नमक बनाने और विदेशी कपड़े व शराब के बहिष्कार को रोकने के लिए ही बनते हैं, लेकिन ये बातें तो ऐसी हैं जो वर्तमान कुशासन के प्रतिरोधस्वरूप नहीं बल्कि परिणाम प्राप्त करने के लिए जारी की गई हैं।" उन्होंने कहा कि मैं शान्ति के लिए तरस रहा हूँ, बशर्ते कि इज्जत के साथ ऐसा हो सके, लेकिन चाहे और सब मेरा साथ छोड़ दें और मैं बिलकुल अकेला रह जाऊं तो भी ऐसी किसी सुलह में मैं साझीदार न होऊंगा जिसमें पूर्वोक्त तीन बातों का सन्तोषजनक हल न हो। "इसलिए गोलमेज-परिषद्-रूपी पेड़ का निर्णय मुझे उसके फल से ही करना चाहिए।"

गांधीजी, छूटते ही, पं० मोतीलाल नेहरू से मिलने के लिए इलाहाबाद चल दिये, जहांकि वे बीमार पड़े हुए थे। कार्य-समिति के सब सदस्यों को भी बुलाया गया। वहीं स्वराज्य-भवन में, ३१ जनवरी और १ फरवरी १९३१ को, कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमें निम्न प्रस्ताव पास हुआ—

"कार्य-समिति ने श्री शास्त्री, सप्रू और जयकर के इच्छानुसार २१-१-३१ को पास किया हुआ अपना प्रस्ताव प्रकाशित नहीं किया था, इससे सर्व-साधारण में यह खयाल फैल गया है कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन स्थगित कर दिया गया है। इसलिये समिति के इस निश्चय की ताईद करना आवश्यक है कि जबतक स्पष्ट रूप से आन्दोलन को बन्द करने की हिदायत न निकाली जाय तबतक आन्दोलन बराबर जारी रहेगा। यह सभी लोगों को इस बात का स्मरण कराती है कि विदेशी कपड़े और शराब तथा अन्य नशीली चीजों की दूकानों पर धरना देना अपने-आप में सविनय अवज्ञा-आन्दोलन का कोई अंग नहीं है, बल्कि जबतक वह बिलकुल शान्ति-पूर्ण रहे और जबतक सर्वसाधारण के कार्य में उससे कोई रुकावट न पड़ती हो तबतक वह नागरिकों के साधारण अधिकार के अन्तर्गत ही है।

"यह समिति विदेशी कपड़े के, जिसमें विदेशी सूत से बना हुआ कपड़ा भी शामिल है, व्यापारियों और कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को स्मरण कराती है कि चूंकि सर्व-साधारण की भलाई के लिए विदेशी कपड़े का बहिष्कार बहुत जरूरी है, इसलिए यह राष्ट्रीय हलचल का एक आवश्यक अंग है और उस वक्त तक ऐसा ही बना रहेगा जबतक कि राष्ट्र को तमाम विदेशी कपड़ा और विदेशी सूत हिन्दुस्तान से बहिष्कार कर देने की शक्ति प्राप्त न हो जाय, फिर ऐसा चाहे विदेशी कपड़े पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगाकर किया जाय या प्रतिबन्धक तटकर लगाकर।

"विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने की कांग्रेस की अपील पर ध्यान देकर, विदेशी कपड़े और सूत के व्यापारियों ने इस दिशा में जो कार्य किया है, उसकी यह समिति प्रशंसा करती है; लेकिन इसके साथ ही वह उन्हें यह स्मरण करा देना चाहती है कि कोई भी कांग्रेस-संस्था उन्हें इस बात का आश्वासन नहीं दे सकती कि हिन्दुस्तान में जो ऐसा-माल बचा हुआ है उसको वह कहीं और खपा देगी।"

पं० मोतीलाल नेहरू का स्वर्गवास

"कार्य-समिति के असली और ऐवजी सदस्य ३ फरवरी तक इलाहाबाद ही रहे। पण्डित मोतीलाल की हालत दिन-ब-दिन खराब होती जाती थी और यह आवश्यक समझा गया कि उन्हें 'एक्सरे-परीक्षा' के लिए लखनऊ ले जाया जाय। तबतक करीब-करीब सभी लोग थोड़े दिनों के लिए वहां से चले गये, पर गांधी जी-सहित कुछ लोग वहीं रहे। गांधीजी तो मोतीलाल जी के साथ लखनऊ भी गये; जहां मौत से बड़ी कश-मकश के बाद इन अन्तिम शब्दों के साथ मोतीलाल जी सदा के लिए हमसे विदा हो गये—"हिन्दुस्तान की किस्मत का फैसला स्वराज्य-भवन में ही कीजिये। मेरी मौजूदगी में ही फैसला कर लो। मेरी मातृ-भूमि के भाग्य-निर्णय के आखिरी सम्मान-पूर्ण समझौते में मुझे भी साझीदार होने दो। अगर मुझे मरना ही है, तो स्वतंत्र भारत की गोद में ही मुझे मरने दो। मुझे अपनी आखिरी नींद गुलाम देश में नहीं बल्कि आजाद देश में ही लेने दो।" इस प्रकार पंडित जी की महान् आत्मा हमसे जुदा हो गई। निस्सन्देह वे एक शाही तबियत के आदमी थे—न केवल बौद्धिक दृष्टि से बल्कि धन, संस्कृति और स्वभाव सभी दृष्टियों से। जब कि उनकी दूरन्देशी और तत्काल-बुद्धि से राष्ट्र को अपने सामने उपस्थित पेचीदा समस्याओं को स्पष्ट रूप से सुलझाने में बड़ी मदद मिलती उस समय उनका हमारे बीच से उठ जाना राष्ट्र की ऐसी भारी क्षति थी कि वस्तुतः जिसकी पूर्ति नहीं हो सकती; क्योंकि वह न केवल बड़े दूरन्देशी ही थे, बल्कि हमारे सामने छाई हुई राजनैतिक समस्याओं की तफसीलों में उतरकर जल्द और सही निर्णय पर पहुंचने में भी एक ही थे।

हालांकि उनका रहन-सहन बहुत अमीरी था, मगर गांधीजी से प्रभावित होकर उन्होंने भी जीवन को शुद्ध और पवित्र बनाने की आवश्यकता महसूस की; और इसके लिए स्वेच्छा-पूर्वक गरीबी

और कष्ट-सहन को अपनाया। यह भी नहीं कि उन्होंने अपने धन का अकेले ही उपभोग किया हो। वे धनिकवर्ग के उन थोड़े-से व्यक्तियों में से हैं जिन्होंने राष्ट्र को भी अपने धन का भागीदार बनाया है। कांग्रेस को उन्होंने आनन्द-भवन की जो भेंट दी वह उनकी देशभक्ति और उदारता के अनुकूल ही थी। लेकिन दरअसल इसे ही हम राष्ट्र के प्रति उनकी सबसे बड़ी भेंट नहीं कह सकते; उनकी सबसे बड़ी भेंट तो उनकी वह विरासत है जो अपने पुत्र के रूप में उन्होंने राष्ट्र को प्रदान की है। ऐसे पिता बहुत कम मिलेंगे जो अपने पुत्रों को जज, मिनिस्टर, राजदूत या एजेण्ट-जनरल के बड़े-बड़े ओहदों पर न देखना चाहें; लेकिन मोतीलाल जी ने दूसरा ही रास्ता पकड़ा। मोतीलाल जी अब नहीं रहे, लेकिन उनकी स्पिरिट, अब भी कांग्रेस के ऊपर मंडरा रही है और विचार-विनिमय एवं निर्णय के समय मार्ग-प्रदर्शन करती रहती है।

मोतीलाल जी की मृत्यु पर, ७ फरवरी को, गांधीजी ने इलाहाबाद से यह सन्देश भेजा— "मोतीलालजी की मृत्यु हरेक देशभक्त के लिए ईर्ष्यास्पद होनी चाहिए। क्योंकि अपना सब-कुछ न्योछावर करके वे मरे हैं और अन्त समय तक देश का ही ध्यान करते रहे हैं। इस वीर की मृत्यु से हमारे अन्दर भी बलिदान की भावना आनी चाहिए; हम में से हरेक को चाहिए कि जिस स्वतन्त्रता-के लिए वे उत्सुक थे और जो अब हमारे बहुत नजदीक आ पहुंची है, उसको प्राप्त करने के लिए अपना सर्वस्व नहीं तो कम-से-कम इतना बलिदान तो करें ही कि जिससे वह हमें प्राप्त हो जाय।"

राजनैतिक परिस्थिति में इस समय जो बात वस्तुतः शोकजनक थी, और जिसके लिए गांधीजी खास तौर पर चिन्तित थे, वह तो यह थी कि इंग्लैण्ड में खूब चिल्ला-चिल्ला कर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता देने की जो बात कही जारही थी उसके कारण हिन्दुस्तान के अधिकारियों के रुख में कोई परिवर्तन नजर नहीं आ रहा था। 'चारों ओर दमन-चक्र अपने भयंकर रूप में जारी है-''न्यूज क्रानिकल'-को दिये हुए अपने तार में गांधीजी ने लिखा, "निर्दोष व्यक्तियों पर अकारण मार-पीट अभी तक जारी है। इज्जतदार आदमियों की चल और अचल सम्पत्ति, बिना किसी प्रत्यक्ष कारण के, सरसरी तौर पर बरायनाम कानूनी कार्रवाई करके जब्त कर ली जाती है। स्त्रियों के एक जुलूस को भंग करने में बल-प्रयोग किया गया। उन्हें जूतों की ठोकरें मारी गईं और बाल पकड़ कर घसीटा गया। ऐसा दमन जारी रहा तो कांग्रेस के लिए सरकार से सहयोग करना सम्भव न होगा, चाहे दूसरी कठिनाइयां हल ही क्यों न हो जायं।"

वाइसराय से मुलाकात

खानगी तौर पर इस बात की हिदायतें जारी की गईं कि आन्दोलन तो जरूर जारी रहे, पर कोई नया आन्दोलन या ऐसी बात शुरू न की जाय जिससे परिस्थिति कोई नया रूप धारण कर ले। ठीक इसी समय गोलमेज-परिषद् में गये हुए प्रतिनिधि लौटकर हिन्दुस्तान आये और आते ही, ६ फरवरी १९३१ को, उन्होंने कांग्रेस से निम्न प्रकार अपील की—

"(गोलमेज-परिषद् की) योजना अभी तो खाली एक खाका है, तफसील की बातें तो, जिनमें से कुछ बहुत सार की और महत्वपूर्ण हैं, अभी तय होनी हैं। हमारी यह दिली ख्वाहिश है कि अब कांग्रेस तथा अन्य दलों के नेता आगे बढ़कर इस योजना की पूर्ति के लिए अपना रचनात्मक सहयोग प्रदान करें। हमें आशा है कि वातावरण को ऐसा शांत कर दिया जायगा जिसमें आवश्यक विषयों पर भलीभांति विचार किया जा सके और राजनैतिक कैदियों की रिहाई हो सके।"

लेकिन इसके बाद भी सजायें दी जाती रहीं और फरवरी १९३१ में कानपुर शहर में पिकेटिंग के अपराध में १२६ गिरफ्तारियां हुईं। साथ ही जेलों में भी—क्या खाना-कपड़ा और क्या दवा-

दारू—कैदियों के साथ वैसा ही खराब व्यवहार होता रहा जैसा पहले होता था, और उन्हें पहले की ही तरह सजा भी दी जाती रही। १२ फरवरी को इलाहाबाद में कार्य-समिति की बाजाब्ता बैठक हुई। इस समय तक डा० सप्रू और शास्त्रीजी हिन्दुस्तान आ गये थे। गांधीजी व कार्य-समिति से मिलने के लिए वे दौड़े हुए इलाहाबाद गये। कार्य-समिति के साथ उनकी लम्बी बहस हुई, जिसमें कार्य-समिति के सदस्यों ने उनसे कड़ी-से-कड़ी जिरह की। यहां तक कि कभी-कभी तो कार्य-समिति के सदस्य उनके प्रति मृदुता तक न रख पाते थे; क्योंकि शास्त्रीजी इंग्लैण्ड में कुछ ऐसी बातें कह गये थे कि जिससे सर्वसाधारण में उत्तेजना ही नहीं फैल रही थी, बल्कि उनके प्रति रोष भी छा रहा था। खैर, जो हो। गांधीजी ने लार्ड अर्विन को एक पत्र लिखा, जिसमें देश में पुलिस-द्वारा की जा रही ज्यादतियों, खास-कर २१ जनवरी को बोरसद में स्त्रियों पर किये जानेवाले हमले की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हुए उनसे पुलिस के कारनामों की जांच कराने के लिए कहा। लेकिन इस मांग को ठुकरा दिया गया और ऐसा मालूम होने लगा मानों सुलह-शांति की सारी बात-चीत का खात्मा हो गया। मगर यह महसूस किया गया कि अगर कांग्रेस और सरकार को मिलना है तो इसके लिए दो में से किसी एक को ही पहले आगे बढ़ना पड़ेगा। सरकार अपनी तरफ से कार्य-समिति के सदस्यों को बिना किसी शर्त के रिहा कर चुकी थी। तब कार्य-समिति या गांधीजी अपनी ओर से वाइसराय को मुलाकात के लिए क्यों न लिखें, बजाय इसके कि बाजाब्ता पत्र-व्यवहार की बाट देखते रहें? सत्याग्रही को शांति के लिए ऐसे उपाय ग्रहण करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती। अतएव गांधीजी ने लार्ड अर्विन को मुलाकात के लिए एक संक्षिप्त पत्र लिखा, जिसमें उनसे बहैसियत एक मनुष्य बात-चीत करने की इच्छा प्रकट की। यह पत्र १४ तारीख को भेजा गया और १६ तारीख के बड़े सवेरे तार-द्वारा इसका जवाब आ गया। १६ तारीख को ही गांधीजी दिल्ली के लिए रवाना हो गये, और पुरानी कार्य-समिति के अन्य सदस्य भी शीघ्र ही दिल्ली पहुंच गये। कार्य-समिति ने एक प्रस्ताव द्वारा गांधीजी को कांग्रेस की ओर से सुलह-सम्बन्धी सब अधिकार दे दिये थे। गांधीजी ने १७ फरवरी को वाइसराय से पहली बार मुलाकात की और कोई चार घण्टे तक वाइसराय से उनकी बातें होती रहीं। तीन दिन तक लगातार यह बात-चीत चलती रही।

इस बात-चीत के दौरान में गांधीजी ने पुलिस-द्वारा की गई ज्यादतियों की जांच और पिकेटिंग के अधिकार पर जोर दिया। इन के अलावा वे शर्तें थीं जोकि सुलह के समय आमतौर पर हुआ करती हैं; जैसे कैदियों की आम रिहाई, विशेष कानूनों (आर्डिनेन्सों) को रद्द करना, जब्त की हुई सम्पत्ति को लौटाना और उन सब कर्मचारियों को जिन्हें इस्तीफा देना पड़ा है या नौकरी से हटा दिया गया है फिर से बहाल करना। ये सब बातें, खास कर पिकेटिंग का अधिकार और पुलिस की जांच के विषय, ऐसी विवादास्पद थीं कि जिनपर तुरन्त कोई समझौता होने की सम्भावना नहीं थी। १९ फरवरी को वाइसराय-भवन से जो सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई उसमें कहा गया कि बात-चीत के दौरान में कई ऐसी बातें सामने उठी हैं जिनके बारे में विचार किया जा रहा है। यह बहुत सम्भव है कि उसके आगे बात-चीत होने में कई दिन लग जायं।

पहले दिन बड़े उत्साह के साथ गांधीजी डा० अन्सारी के मकान पर लौटे जहां कि वे स-दलबल ठहरे हुए थे। पहले दिन बात-चीत से एक प्रकार की निश्चित आशा बंधती थी। दूसरे दिन यह स्पष्ट हो गया कि गांधीजी की स्थिति को वाइसराय समझते तो हैं, लेकिन उनके अनुसार करने को तैयार न थे। चूंकि इंग्लैण्ड के निर्णय की प्रतीक्षा थी, इसलिए बात-चीत कुछ समय के लिए रुकने की सम्भावना पैदा हो गई; और स्वयं वाइसराय ने गांधीजी को दुबारा शनिवार २१ तारीख को बुलवाने

के लिए कहा। लेकिन गुरुवार १९ तारीख को एकाएक बुलावा आ पहुंचा। इधर सरकार और कांग्रेस के बीच चलने वाली बातचीत के दौरान में उठने वाले विविध-विषयों के विचारार्थ १२ व्यक्तियों का एक छोटा सम्मेलन करने का विचार किया गया, जिसकी संख्या बाद में बढ़कर बीस हो गई। वाइसराय लन्दन से इस विषय में तार आने की प्रतीक्षा कर रहे थे, इसलिए इस सम्मेलन को २४ ता० तक ठहरना पड़ा।

बहुत प्रतीक्षा के बाद आखिर २६ ता० को वाइसराय का बुलावा आ ही पहुंचा। २६ ता० को गांधीजी वाइसरायके पास गये और साढ़े-तीन घण्टे तक बहुत खुलकर, साफ-साफ और मित्रता-पूर्वक बातचीत हुई। बातचीत में कठोर शब्द एक भी नहीं कहा गया, और वाइसराय इस बात के लिए उत्सुक थे कि गांधीजी बात-चीत तोड़ न दें।

२८ ता० को, वाइसराय के इच्छानुसार, गांधीजी ने पिकेटिंग के बारे में उन्हें अपना मन्तव्य भेजा और वाइसराय ने प्रस्तावित समझौते के बारे में अपने कुछ विचार गांधीजी को लिख भेजे। समझौते के सिलसिले में उठी हरेक बात पर वाइसराय ने गांधीजी के निश्चित विचार जानने चाहे और इसके लिए, जैसा कि पहले तय हो चुका था, १ मार्च के दिन दोपहर के २॥ बजे उन्हें वाइसराय भवन में मिलने के लिए बुलाया। १ मार्च के रोज हालत एकदम निराशाजनक मालूम पड़ने लगी। ऐसा प्रतीत होने लगा कि फिर से लड़ाई छेड़े बिना कोई चारा नहीं है। कार्य-समिति के हरेक सदस्य के मुंह से यही एक आवाज सुनाई पड़ती थी कि "समझौते की बातचीत बन्द कर दो।" कोई एक भी सदस्य इसका अपवाद न था। तुरन्त ही चारों तरफ यह बात फैल गई। चारों तरफ हलचल मच गई और हर जगह परेशानी नजर आने लगी।

निश्चित समय पर गांधीजी वाइसराय से मिले और सायंकाल ६ बजे वाइसराय-भवन से वापस आ गये। इतने थोड़े समय में उन के लौट आने से एक दम निराशा छागई, लेकिन शीघ्र ही समझौते की फिर से आशा बंधने लगी। १ मार्च के तीसरे पहर जब गांधीजी वाइसराय से मिले तो वाइसराय का रुख बिलकुल दोस्ताना था। होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन भी बड़ी अच्छी तरह पेश आये। वाइसराय ने गांधीजी से कहा कि मि० इमर्सन के सलाह-मशविरे से वे पिकेटिंग के बारे में कोई हल सोचें।

आशाजनक परिस्थिति

इसके बाद वातावरण बिलकुल बदल गया। आपस में मित्रता के आसार नजर आने लगे। इतने समय के बाद अब सम्भवतः हम यह कह सकते हैं कि अधिकारों की भावना के ऊपर कर्तव्य-भाव ने विजय न पाई होती तो शायद समझौता बिलकुल ही न हुआ होता। पिकेटिंग के बारे में बहस-तलब एक बात यह थी कि वह सारे "विदेशी माल के खिलाफ की जाय या ब्रिटिश माल के?" दूसरी बात उसके लिए ग्रहण किये जानेवाले साधनों के बारे में थी। यह स्पष्ट है कि ब्रिटिशमाल का बहिष्कार प्रारम्भ से कांग्रेस-कार्यक्रम का अंग नहीं था बल्कि बाद के सालों में, खासकर लड़ाई के दिनों में, उसमें शामिल किया गया, इसलिए यह निश्चित है कि उसी लड़ाई के लिए और राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दबाव डालने को राजनैतिक शस्त्र मानकर ही ग्रहण किया गया था। अतएव विदेशीमाल की पिकेटिंग का ही विचार किया गया। इस प्रकार, जैसा कि आगे हम देखेंगे, समझौते की एतद्विषयक भाषा बिलकुल स्पष्ट कर दी गई। वाइसराय ने बहिष्कार शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की। उनके ख्याल में पिकेटिंग और बहिष्कार ऐसी चीजें हैं जो एक दूसरे के रूप में परिवर्तित हो सकती हैं और अस्थायी सन्धि के समय विदेशी माल और ब्रिटिश-माल में फर्क तो किया ही जाना

चाहिए। इस सम्बन्धी सामान्य वाद-विवाद के बाद लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी और मि० इमर्सन से आपस में मिलकर कोई हल निकालने के लिए कहा और वह निकाल भी लिया गया।

इसके बाद ताजीरी पुलिस के बारे में बातचीत हुई और वह सन्तोषजनक रही। यह तय रहा कि इसके बाद जुर्माने वसूल नहीं किये जायंगे लेकिन अभीतक जो रकम वसूल हो चुकी है वह नहीं लौटाई जायगी। कैदियों की रिहाई के बारे में वाइसराय ने उदारता और सहानुभूति के साथ विचार करने का वादा किया। पहली मार्च की रात को जेल-सम्बन्धी और दंगा, शरारत व चोरी के जुर्मों पर विचार हुआ। प्रसंगवश यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि शाम को भोजन के बाद गांधीजी फिर से वाइसराय-भवन गये थे और बातचीत पुनः जारी हुई थी। गांधीजी ने नजरबंदों का भी प्रश्न उठाया और वाइसराय ने निश्चित रूप से यह आश्वासन दिया कि सामूहिक रूप में नहीं पर वैयक्तिक रूप में वे उनके मामलों की तहकीकात अवश्य करेंगे। जब्त सम्पत्ति के बारे में तय हुआ कि उसमें से जो बिक चुकी है वह नहीं लौटाई जा सकती। गांधीजी से कहा गया कि इसके लिए वे प्रान्तीय सरकारों से मिलें, क्योंकि भारत-सरकार प्रान्तीय सरकारों से सीधी बातचीत चलाने के लिए तैयार नहीं है। मगर जब्त जमीनों के बारे में बम्बई-सरकार के नाम एक सिफारिशी चिट्ठी गांधीजी को देने का वाइसराय ने वादा किया।

गांधीजी ने इस बात-चीत का जो बयान किया उसे सुनकर श्री वल्लभभाई पटेल ने गुजरात के उन दो डिप्टी-कलक्टरों का मामला भी इसमें शामिल करने के लिए कहा जिन्होंने लड़ाई के समय पद-त्याग किया था। नमक के बारे में तो स्थिति अच्छी ही रही। जिन जगहों पर नमक अपने-आप तैयार होता है वहां से आजादी से नमक लेने-देने का वाइसराय ने आश्वासन दिया। यह एक ऐसी सुविधा थी जो गांधी जी के लिए बड़ी सन्तोष-जनक हुई। पुलिस की ज्यादतियों के प्रश्न पर दोनों ही अड़ गये। गांधीजी ने इस सम्बन्ध में अपने को कार्य-समिति पर ही छोड़ दिया। उन्होंने कहा, "जो कुछ वह मुझे आदेश देगी मैं तो बाखुशी उसी का पालन करूंगा। "अगर आप बात-चीत तोड़ना चाहें", उन्होंने कहा, "तो मैं बातचीत तोड़ने के लिए ही वाइसराय के पास जाऊंगा।" वाइसराय से बातचीत करके वे १ बजे वापस आये और रात के २। बजे तक कार्य-समिति के सदस्यों व अन्य मित्रों के सामने भाषण दिया। वाइसराय और मि० इमर्सन दोनों ही अच्छी तरह पेश आये थे। पिकेटिंग के बारे में उसी रात एक हल निकल आया, लेकिन उसपर और विचार करने के लिए ३ मार्च का दिन तय रहा, क्योंकि २ मार्च को सोमवार पड़ता था, जो गांधीजी का मौन-दिवस था।

समझौते की जो आशा थी, ३ मार्च को उसमें एक और बड़ी कठिनाई उत्पन्न हो गई। बारडोली के किसानों की जमीन लौटाने के मामले पर पहले भी विचार हुआ था, अब फिर उस मामले को उठाया गया। इस बारे में जो भी हल सोचा जाय, वह ऐसा होना लाजिमी था जिसे वल्लभभाई मान लें। अतएव दिन की बातचीत में गांधीजी ने वाइसराय से कहा कि मैं कोई ऐसा हल सोच कर कि जो वल्लभभाई को मान्य हो, रात को फिर आऊंगा, इसलिए फिलहाल इस विषय की चर्चा बन्द कर देना चाहिए। उधर, वस्तुस्थिति यह थी कि, वाइसराय की भी अपनी कठिनाइयां थीं। यह समझा जाता है कि जब बारडोली में करबन्दी-आन्दोलन अपने पूरे जोर पर था तब उन्होंने बम्बई सरकार को एक पत्र लिखा था, जिसमें लिखा था, कि चाहे कुछ हो, मैं किसानों को जब्त जमीनें लौटाने के लिए कभी नहीं कहूंगा। इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अब उससे बिलकुल उलटी बात लिखने के लिए वे तैयार नहीं थे। उन्होंने चाहा कि गांधीजी सर पुरुषोत्तमदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला से इसके लिए बीच में पड़ने को कहें, और आशा प्रकट की कि सब ठीक हो जायगा। गांधीजी ने

चाहा कि वाइसराय स्वयं ऐसा करें। आखिरकार वाइसराय बम्बई सरकार के नाम ऐसा पत्र लिखने को तैयार हुए कि जमीनें प्राप्त कराने के मामले में पूर्वोक्त दोनों महानुभावों की मदद की जाय। और असलियत तो यह है कि इस बातचीत के दौरान में बम्बई सरकार के रेवेन्यू-मेम्बर भी दिल्ली पहुंचे थे, जो, यह स्पष्ट है, इस सम्बन्धी बातचीत के लिए ही बुलाये गये थे। श्रीसप्रू, श्री जयकर और साथ ही शास्त्री जी ने, जब कोई कठिनाई उत्पन्न हुई तो उसे सुलझाने के लिए, बड़ा काम किया।

गांधी-अर्विन समझौते की १७ (स) धारा, भारत सरकार और गांधीजी के बीच, बहुत तीव्र वाद-विवाद का विषय बन गई थी। यह धारा इस प्रकार है—

"जो अचल सम्पत्ति बेची जा चुकी है उसका सौदा, जहांतक सरकार से सम्बन्ध है, अन्तिम ही समझा जायगा।"

नोट—"गांधीजी ने सरकार को बताया है कि, जैसा कि उन्हें खबर मिली है और जैसा कि उनका विश्वास है, इस तरह होनेवाली बिक्री में कुछ अवश्य ऐसी हैं जो गैरकानूनी तरीके से और अन्यायपूर्वक हुई हैं। लेकिन सरकार के पास इस सम्बन्धी जो जानकारी है उसको देखते हुए वह इस धारणा को मंजूर नहीं कर सकती।"

आरज़ी सुलह

इसपर लम्बी बहस हुई और ३ तारीख के सायंकाल एक बार फिर ऐसा मालूम पड़ने लगा कि बस अब समझौते की बातचीत भंग हुई लेकिन फिर उपर्युक्त नोट में उल्लिखित हल निकाला गया और उसके साथ धारा (स) में यह वाक्य भी जोड़ा गया कि 'जहांतक सरकार से सम्बन्ध है'—जो कि सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और सर इब्राहीम रहीमतुल्ला जैसे लोगों के बीच में पड़कर सम्भव हो तो किसानों को जमीनें वापस दिलाने की गुंजाइश रखने की गर्ज से किया गया।

३ तारीख की रात के २॥ बजे (अर्थात् ४ मार्च १९३१ के बड़े सवेरे) गांधीजी वाइसराय-भवन से वापस लौटे। सब लोग उनकी प्रतीक्षा में जाग रहे थे। गांधीजी बड़े उत्साह में थे। मामूली के मुताबिक गांधीजी ने उस रात की सब घटनायें कार्य-समिति के सदस्यों को सुनाईं। कार्य-समिति के सदस्यों में शाम तक भी पिकेटिंग के सम्बन्ध में सोचे गये हल पर खूब गरमागरम वादविवाद हुआ था क्योंकि पहले-पहल उसका जो मसविदा बनाया गया उसमें मुसलमान दुकानदारों के यहां पिकेटिंग न करने की धारा रक्खी गई थी। सरकार उसे रखना चाहती थी, लेकिन अन्त में उसे छोड़ ही दिया गया। समझौते की हरेक मद में थोड़ी-बहुत खामी थी। कैदियों की रिहाई में सिर्फ सत्याग्रही कैदियों का उल्लेख था। नजरबन्दों के मामलों पर सिर्फ यह कहा गया कि तफ़सील में उनपर विचार किया जायगा। शोलापुर के और गढ़वाली कैदियों का तो उसमें जिक्र ही न था। पिकेटिंग सम्बन्धी धारा के कारण विशेषतः ब्रिटिश माल पर ही धरना नहीं दिया जा सकता था। जब्तशुदा या बेच दी जानेवाली जमीनों की वापसी स्वयं ही एक समस्या बन गई थी, क्योंकि १७ (स) धारा उसमें मौजूद थी, जो कांग्रेस के लिए एक विकट समस्या थी।

आखिरी बैठक में आखिरकार गांधीजी ने स्वयं ही विधान-सम्बन्धी एक अत्यन्त आवश्यक विषय को तय कर लिया, अलबत्ता यह शर्त रक्खी गई कि यदि कार्य-समिति उसे मंजूर कर ले। गांधीजी उस योजना पर आगे विचार चलाने के लिए तैयार हो गये, जिसपर "भारत में वैध-शासन स्थापित करने की दृष्टि से गोलमेज-परिषद् में विचार हुआ था और जिस योजना का संघ-शासन तो अनिवार्य अंग था ही, पर साथ ही भारतीय उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और जिम्मेदारियों की अदा-

यगी जैसे विषयों पर प्रतिबन्ध या संरक्षण भी जिसके मुख्य भाग थे।" इस प्रकार गांधीजी और वाइसराय-द्वारा बनाया हुआ यह आरजी समझौता फिर कार्य-समिति के सामने आया। अब यह उसके ऊपर था कि वह चाहे तो उसे मंजूर करे और चाहे तो रद कर दे। उसने 'भारत के हित की दृष्टि से', इन शब्दों में कांग्रेस की बचत की गुंजाइश देखी, जिससे कि सरकारी प्रतिबन्धों का दोष कम होजाता था। वैसे कार्य-समिति के सदस्यों को यह संदेह तो था ही कि कहीं ऐसा न हो कि इसकी बिलकुल उलटी व्याख्या की जाय और निश्चित रूप से भारतीय हितों के विरुद्ध ही इसको बना लिया जाय। लेकिन गांधीजी का तो स्वभाव ही ऐसा है कि हरेक बात को बाजारू दृष्टि से नहीं लेते, वे तो जैसे अपने शब्दों और वक्तव्यों के लिए यह चाहते हैं कि लोग उनके जाहिरा रूप को ही ग्रहण करें उसी प्रकार दूसरों के शब्दों और वक्तव्यों के भी ज़ाहिरा रूप को ही लेते हैं। लेकिन यह तो अपनी तरफ से हथियार रख देना हुआ। वल्लभभाई समझौते के जमीनों सम्बन्धी अंश से सहमत नहीं थे। जवाहरलाल जी को विधान-सम्बन्धी अंश नापसन्द था। कैदियों वाली बात पर तो किसी को भी सन्तोष न था। लेकिन अगर हरेक मुद्दा ऐसा होता कि उसपर हरेक को सन्तोष हो जाता तो फिर वह समझौता ही कहां रहता, वह तो कांग्रेस की जीत ही न होती! जब कांग्रेस समझौता या राजीनामा कर रही थी तब ऐसा नहीं हो सकता कि उसी-उसकी बात रहे। अलबत्ता कार्य-समिति चाहे तो प्रस्तावित समझौते के किसी मुद्दे को या सारे समझौते को ही रद्द कर सकती थी। गांधीजी ने अलग-अलग कार्य-समिति के हरेक सदस्य से पूछा कि क्या कैदियों के प्रश्न पर, पिकेटिंग के मामले पर, जमीनों के सवाल पर, अन्य किसी बात पर या हरेक बात पर, या आप कहें तो समूचे समझौते पर मैं सुलह की बातचीत तोड़ दूं? समझौते की आखिरी धारा पर, जिसमें सरकारने अपने लिए यह अधिकार रक्खा था कि "यदि कांग्रेस इस समझौते की बातों पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो उसे (सरकार को) ऐसा कार्य करने का हक रहेगा जो, उसके परिणाम स्वरूप, सर्वसाधारण तथा व्यक्तियों की रक्षा और कानून-व्यवस्था के उपयुक्त अमल के लिए आवश्यक हो," यह ऐतराज उठा कि यह हक दोनों पक्षों के बजाय एक ही के लिए क्यों रक्खा गया? दूसरे शब्दों में, ऐतराज करनेवालों का कहना था कि एक धारा इसमें और जोड़ी जाय, कि यदि सरकार इस समझौते की बातों पर पूरी तरह अमल न कर सके तो कांग्रेस सविनय-अवज्ञा की घोषणा कर सकेगी। लेकिन यह समझना कोई बहुत मुश्किल बात नहीं थी कि कांग्रेस ने सरकार से स्वीकृति लेकर सविनय-अवज्ञा की शुरुआत नहीं की थी, इसी तरह उसकी फिर से शुरुआत करने के लिए भी उसे स्वीकृति लेने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

इस प्रकार १५ दिन तक सरकार और कांग्रेस के बीच खूब गहरा वाद-विवाद होने के बाद यह समझौता बनकर तैयार हुआ। गांधीजी और लार्ड अरविन में जो श्रेष्ठतम गुण थे उनमें से कुछ का इस बातचीत के दौरान में पूरा प्रयोग हुआ। उसीके परिणाम-स्वरूप (५ मार्च १६३१ को) यह समझौता हुआ, जो ज्यों-का त्यों नीचे दिया जाता है—

सरकारी विज्ञप्ति

"सर्व-साधारण की जानकारी के लिए कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल का निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया जाता है—

(१) वाइसराय और गांधीजी के बीच जो बात-चीत हुई उसके परिणाम-स्वरूप, यह व्यवस्था की गई है कि सविनय-अवज्ञा-आंदोलन बन्द हो, और सम्राट्-सरकार की सहमति से भारत-सरकार तथा प्रांतीय सरकारें भी अपनी तरफ से कुछ कार्रवाई करें।

(२) विधान सम्बन्धी प्रश्न पर सम्राट्-सरकार की अनुमति से, यह तय हुआ है कि हिन्दुस्तान के वैध-शासन की उसी योजना पर आगे विचार किया जायगा, जिसपर गोलमेज-परिषद् में पहले विचार

हो चुका है। वहां जो योजना बनी थी, संघ-शासन उसका एक अनिवार्य अंग है; इसी प्रकार भारतीय-उत्तरदायित्व और भारत के हित की दृष्टि से रक्षा (सेना), वैदेशिक मामले, अल्पसंख्यक जातियों की स्थिति, भारत की आर्थिक साख और जिम्मेदारियों की अदायगी जैसे विषयों के प्रतिबन्ध या संरक्षण भी उसके आवश्यक भाग हैं।

(३) १९ जनवरी १९३१ के अपने वक्तव्य में प्रधान-मन्त्री ने जो घोषणा की है उसके अनुसार, ऐसी कार्रवाई की जायगी जिससे शासन-सुधारों की योजना पर आगे जो विचार हो उसमें कांग्रेस के प्रतिनिधि भी भाग ले सकें।

(४) यह समझौता उन्हीं बातों के सम्बन्ध में है, जिनका सविनय-अवज्ञा-आंदोलन से सीधा सम्बन्ध है।

(५) सविनय-अवज्ञा अमली रूप में बन्द कर दी जायगी और (उसके बदले में) सरकार अपनी तरफ से कुछ कार्रवाई करेगी। सविनय अवज्ञा-आंदोलन को अमली तौर पर बन्द करने का मतलब है उन सब हलचलों को बन्द कर देना, जो कि किसी भी तरह उसको बल पहुंचानेवाली हों—खासकर नीचे लिखी हुई बातें—

१. किसी भी कानून की धाराओं का संगठित भंग।

२. लगान और अन्य करों की बन्दी का आंदोलन।

३. सविनय-अवज्ञा-आंदोलन का समर्थन करनेवाली खबरों के परचे प्रकाशित करना।

४. मुल्की और फौजी (सरकारी) नौकरियों को या गांव के अधिकारियों को सरकार के खिलाफ अथवा नौकरी छोड़ने के लिए आमादा करना।

(६) जहां तक विदेशी कपड़ों के बहिष्कार का सम्बन्ध है, दो प्रश्न उठते हैं—एक तो बहिष्कार का रूप और दूसरा बहिष्कार करने के तरीके। इस विषय में सरकार की नीति यह है—भारत की माली हालत को तरक्की देने के लिए आर्थिक और व्यावसायिक उन्नति के हितार्थ जारी किये गये आंदोलन के अंग-रूप भारतीय कला-कौशल को प्रोत्साहन देने में सरकार की सहमति है और इसके लिए किये जानेवाले प्रचार, शांति से समझाने-बुझाने व विज्ञापनबाजी के उन उपायों में रुकावट डालने का उसका कोई इरादा नहीं है जो किसीकी वैयक्तिक-स्वतन्त्रता में बाधा उपस्थित न करें और जो कानून व शांति की रक्षा के प्रतिकूल न हों। लेकिन विदेशी माल का बहिष्कार (सिवा कपड़े के, जिसमें सब विदेशी कपड़े शामिल हैं) सविनय अवज्ञा-आंदोलन के दिनों में—सम्पूर्णतः नहीं तो भी प्रधानतः—ब्रिटिश माल के विरुद्ध ही लागू किया गया है और वह भी निश्चित-रूप से राजनैतिक उद्देश्य की सिद्धि के लिए दबाव डालने की गरज से।

यह मानी हुई बात है कि इस तरह का और इस उद्देश्य से किया जानेवाला बहिष्कार ब्रिटिश-भारत, देशी राज्य, सम्राट् की सरकार और इंग्लैंड के विभिन्न राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों के बीच होनेवाली स्पष्ट और मित्रता-पूर्ण बातचीत में कांग्रेस के प्रतिनिधियों की शिरकत के, जो कि इस समझौते का प्रयोजन है, अनुकूल न होगा। इस लिए यह बात तय पाई है कि सविनय-अवज्ञा-आंदोलन बन्द करने में ब्रिटिश माल के बहिष्कार को राजनैतिक शस्त्र के तौर पर काम में लाना निश्चित रूप से बन्द कर देना भी शामिल है; और इसलिए आंदोलन के समय में जिन्होंने ब्रिटिश माल की खरीद-फरोख्त बन्द कर दी थी वे यदि अपना निश्चय बदलना चाहें तो अबाध-रूप से उन्हें ऐसा करने दिया जायगा।

(७) विदेशी माल के स्थान पर भारतीय माल का व्यवहार करने और शराब आदि नशीली

चीजों के व्यवहार को रोकने के लिए काम में लाये जानेवाले उपायों के सम्बन्ध में तय हुआ है कि ऐसे उपाय काम में नहीं लाये जायँगे जिनसे कानून की मर्यादा का भंग होता हो। पिकेटिंग उग्र न होगा और उसमें जबरदस्ती, धमकी, रुकावट डालने, विरोधी प्रदर्शन करने, सर्वसाधारण के कार्य में खलल डालने या ऐसे किसी उपाय को ग्रहण नहीं किया जायगा जो साधारण कानून के अनुसार जुर्म हो। यदि कहीं इन उपायों से काम लिया गया तो वहाँ की पिकेटिंग तुरन्त मौकूफ कर दी जायगी।

(८) गांधी जी ने पुलिस के आचरण की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया है और इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्ट अभियोग भी पेश किये हैं, जिनकी सार्वजनिक जांच कराई जाने की उन्होंने इच्छा प्रकट की है। लेकिन मौजूदा परिस्थिति में सरकार को ऐसा करने में बड़ी कठिनाई दिखाई पड़ती है और उसको ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा किया गया तो उसका लाजिमी नतीजा यह होगा कि एक-दूसरे पर अभियोग प्रति-अभियोग लगाये जाने लगेंगे, जिससे पुनः शान्ति स्थापित होने में बाधा पड़ेगी। इन बातों का खयाल करके, गान्धीजी इस बात पर आग्रह न करने के लिये राजी हो गये हैं।

(९) सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के बन्द किये जाने पर सरकार जो कुछ करेगी वह इस प्रकार है—

(१०) सविनय-अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में जो कानून (आर्डिनेन्स) जारी किये गये हैं वे वापस ले लिये जायंगे।

आर्डिनेन्स नं० १ (१९३१), जो कि आतंकवादी-आन्दोलन के सम्बन्ध में है, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आता है।

(११) १९०८ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट के मातहत संस्थाओं को गैर-कानूनी करार देने के हुक्म वापस ले लिये जायंगे, बशर्ते कि वे सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जारी किये गये हों।

बर्मा की सरकार ने हाल में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-ऐक्ट के मातहत जो हुक्म जारी किया है वह इस धारा के कार्यक्षेत्र में नहीं आता।

(१२) १. जो मुकदमे चल रहे हैं उन्हें वापस ले लिया जायगा, यदि वे सविनय अवज्ञा आन्दोलन के सिलसिले में चलाये गये होंगे और ऐसे अपराधों से सम्बन्धित होंगे जिनमें हिंसा सिर्फ नाम के लिए होगी या ऐसी हिंसा को प्रोत्साहन देने की बात हो।

२. यही सिद्धान्त जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओं के मातहत चलने वाले मुकदमों पर लागू होगा।

३. किसी प्रान्तीय सरकार ने वकालत करने वालों के खिलाफ सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में 'लीगल-प्रैक्टिशनर्स-ऐक्ट' के अनुसार मुकदमा चलाया होगा या इसके लिए हाईकोर्ट से दरख्वास्त की होगी तो वह सम्बन्धित अदालत में मुकदमा लौटाने की इजाजत देने के लिए दरखास्त देगी, बशर्ते कि सम्बन्धित व्यक्ति का कथित आचरण हिंसात्मक या हिंसा को उत्तेजन देने वाला न हो।

४. सैनिकों या पुलिस वालों पर चलाने वाले हुक्म-उदूली के मुकदमे, अगर कोई हों, इस धारा के कार्य-क्षेत्र में नहीं आयेंगे।

(१३) १. वे कैदी छोड़े जायंगे, जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में ऐसे अपराधों

के लिए कैद भोग रहे होंगे जिनमें नाम-मात्र की हिंसा को छोड़ कर और किसी प्रकार की हिंसा या हिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो।

२. पूर्वोक्त १ क्षेत्र में आने वाले किसी कैदी को यदि साथ में जेल का कोई ऐसा अपराध करने के लिए भी सजा हुई होगी कि जिसमें नाम मात्र की हिंसा को छोड़ कर और किसी प्रकार हिंसा या अहिंसा के लिए उत्तेजना का समावेश न हो तो वह सजा भी रद कर दी जायगी, या यदि इस अपराध-सम्बन्धी कोई मुकदमा चल रहा होगा तो वह वापस ले लिया जायगा।

३. सेना या पुलिस के जिन आदमियों को हुक्म-उदूली के अपराध में सजा हुई है—जैसा कि बहुत कम हुआ है—वे इस माफी के क्षेत्र में नहीं आयेंगे।

(१४) जुर्माने जो वसूल नहीं हुए हैं, माफ कर दिये जायंगे। इसी प्रकार जाब्ता-फौजदारी की जमानती धाराओं के मातहत निकले हुए जमानत-जब्ती के हुक्म के बावजूद जो जमानत वसूल नहीं हुई होंगी उन्हें भी माफ कर दिया जायगा।

जुर्माने या जमानतों की जो रकमें वसूल हो चुकी हैं, चाहे वे किसी भी कानून के मुताबिक हों, उन्हें वापस नहीं किया जायगा।

(१५) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में किसी खास स्थान के बाशिन्दों के खर्चे पर जो अतिरिक्त-पुलिस तैनात की गई होगी उसे प्रान्तिक सरकारों के निश्चय पर उठा लिया जायगा। इसके लिए वसूल की गई रकम, असली खर्चे से जायद हो तो भी लौटायी नहीं जायगी, लेकिन जो रकम वसूल नहीं हुई है वह माफ कर दी जायगी।

(१६) (अ) वह चल-सम्पत्ति जो गैर-कानूनी नहीं है और जो सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में आर्डिनेन्सों या फौजदारी-कानून की धाराओं के मातहत अधिकृत की गई है, यदि अभी तक सरकार के कब्जे में होगी तो लौटा दी जायगी।

(ब) लगान या अन्य करों की वसूली के सिलसिले में जो चल-सम्पत्ति जब्त की गई है वह लौटा दी जायगी, जब तक कि जिले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि बकैयादार अपने जिम्मे निकलती हुई रकम की उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जान-बूझ कर हीला-हवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है, उन मामलों का खास खयाल रक्खा जायगा जिनमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिए राजी होंगे पर सचमुच उन्हें उसके लिए समय की आवश्यकता होगी, और जरूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) नुकसान की भरपाई नहीं की जायगी।

(द) जो चल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी या सरकार-द्वारा अंतिम रूप से जिसका भुगतान कर दिया गया होगा, उसके लिए हरजाना नहीं दिया जायगा और न उसकी बिक्री से प्राप्त रकम ही लौटाई जायगी, सिवा उस सूरत के कि जब बिक्री से प्राप्त होनेवाली रकम उस रकम से ज्यादा हो जिसकी वसूली के लिए सम्पत्ति बेची गई हो।

(इ) सम्पत्ति की जब्ती या उस पर सरकारी कब्जा कानून के अनुसार नहीं हुआ है, इस बिना पर कानूनी कार्रवाई करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१७) (अ) जिस अचल सम्पत्ति पर १९३० के नवें आर्डिनेन्स के मातहत कब्जा किया गया है उसे आर्डिनेन्स के अनुसार लौटा दिया जायगा।

(ब) जो जमीन तथा अन्य अचल-सम्पत्ति लगान या अन्य करों की वसूली के सिलसिले में

जब्त या अधिकृत की गई है और सरकार के कब्जे में है वह लौटा दी जायगी, बशर्ते कि जिले के कलक्टर के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि देनदार अपने जिम्मे निकलती रकम को उचित अवधि के भीतर-भीतर चुका देने से जान बूझकर हीलाहवाला करेगा। यह निर्णय करने में कि उचित अवधि क्या है उन मामलों का खयाल रक्खा जायगा जिसमें देनदार लोग रकम अदा करने के लिए रजामन्द होंगे पर सचमुच उन्हें उसके लिए समय की आवश्यकता होगी, और जरूरत हो तो उनका लगान भी लगान-व्यवस्था के सामान्य-सिद्धान्तों के अनुसार मुल्तवी कर दिया जायगा।

(स) जहां अचल-सम्पत्ति बेच दी गई होगी, जहांतक सरकार से सम्बन्ध है, वह सौदा अन्तिम समझा जायगा।

नोट—गांधी जी ने सरकार को बताया है कि जैसी कि उन्हें खबर मिली है और जैसा कि उनका विश्वास है, इस तरह होनेवाली बिक्री में कुछ अवश्य ऐसी हैं जो गैर-कानूनी तरीके से और अन्यायपूर्ण हुई हैं। लेकिन सरकार के पास इस सम्बन्धी जो जानकारी है उसे देखते हुए वह इस धारणा को मंजूर नहीं कर सकती।

(द) सम्पत्ति की जब्ती या उसपर सरकारी कब्जा कानून के अनुसार नहीं हुआ है, इस बिना पर कानूनी कार्रवाई करने की हरेक व्यक्ति को छूट रहेगी।

(१८) सरकार का विश्वास है कि ऐसे मामले बहुत कम हुए हैं जिनमें वसूली कानून की धाराओं के अनुसार नहीं की गई है। ऐसे मामलों के लिए, अगर कुछ हों, प्रान्तिक सरकारें जिला-अफसरों के नाम हिदायतें जारी करेंगी कि स्पष्ट रूप से इस तरह की जो शिकायत सामने आये उसकी वे तुरन्त जांच करें और अगर यह साबित हो जाय कि गैर-कानूनीपन हुआ है तो अविलम्ब उनको रफा-दफा करें।

(१९) जिन लोगों ने सरकारी नौकरियों से इस्तीफा दिया है उनके रिक्त-स्थानों की जहां स्थायी-रूप से पूर्ति हो चुकी होगी वहां सरकार पुराने (इस्तीफा देनेवाले) व्यक्ति को पुनः नियुक्त नहीं कर सकेगी। इस्तीफा देनेवाले अन्य लोगों के मामलों पर उनके गुण-दोष की दृष्टि से प्रान्तिक सरकारें विचार करेंगी, जो फिर से नियुक्ति की दरख्वास्त करनेवाले सरकारी कर्मचारियों व ग्रामीण अधिकारियों की पुनर्नियुक्ति के बारे में उदार-नीति से काम लेंगी।

(२०) नमक-व्यवस्था-सम्बन्धी मौजूदा कानून के भंग को गवारा करने के लिए सरकार तैयार नहीं है, न देश की वर्तमान आर्थिक परिस्थिति को देखते हुए नमक-कानून में ही कोई खास तब्दीली की जा सकती है।

परन्तु जो लोग ज्यादा गरीब हैं उनके सहायतार्थ, इस सम्बन्ध में लागू होने वाली धाराओं को वह (सरकार) इस तरह विस्तृत कर देने को तैयार है, जैसा कि अभी भी कई जगह हो रहा है, जिससे जिन स्थानों में नमक बनाया या इकट्ठा किया जा सकता है उसके आसपास के इलाकों के गांवों के बाशिन्दे वहां से नमक ले सकेंगे; लेकिन यह सिर्फ उनके अपने उपयोग के ही लिए होगा, बेचने या बाहर के लोगों के साथ व्यापार करने के लिए नहीं।

(२१) यदि कांग्रेस इस समझौते की बातों पर पूरी तरह अमल न कर सकी तो, उस हालत में, सरकार वह सब कार्रवाई करेगी जो, उसके परिणाम-स्वरूप, सर्व-साधारण तथा व्यक्तियों के संरक्षण एवं कानून और व्यवस्था के उपयुक्त परिपालन के लिए आवश्यक होगी।"

भगतसिंह आदि की फांसी

समझौते की बातचीत के दौरान में, सरदार भगतसिंह और उनके साथी राजगुरु व सुखदेव

की फांसी की सजा को, जो कि मि० सौण्डर्स की हत्या के कारण लाहौर-षड्यन्त्र केस में उन्हें दी गई थी, और किसी सजा के रूप में तबदील कर देने के बारे में गांधी जी व वाइसराय के बीच बार-बार लम्बी बातें हुईं। क्योंकि, उन्हें जो फांसी की सजा दी जानेवाली थी, उससे देश में बहुत हलचल मच रही थी। स्वयं कांग्रेसवाले भी इस बात के लिए बहुत उत्सुक थे कि इस समय जो सद्भाव चारों ओर दिखाई पड़ रहा है उसका लाभ उठाकर उनकी फांसी की सजा बदलवा ली जाय। लेकिन वाइसराय ने इस बारे में स्पष्ट रूप से कुछ नहीं कहा; हमेशा एक मर्यादा रखकर इस बारे में उन्होंने बात की। उन्होंने गांधी जी से सिर्फ यही कहा कि मैं पंजाब-सरकार को इस बारे में लिखूंगा। इसके अलावा और कोई वादा उन्होंने नहीं किया। यह ठीक है कि स्वयं उन्हीं को सजा रद्द करने का अधिकार था—लेकिन वह अधिकार राजनैतिक कारणों के लिए अमल में लाने के लिए नहीं था, हालांकि दूसरी ओर राजनैतिक कारण ही पंजाब-सरकार के इस बात को मानने के मार्ग में बाधक हो रहे थे।

दरअसल वे बाधक थे भी। चाहे जो हो, लार्ड अर्विन इस बारे में कुछ करने में असमर्थ थे, अलबत्ता करांची में कांग्रेस अधिवेशन हो लेने तक फांसी रुकवा देने का उन्होंने जिम्मा लिया। मार्च के अन्तिम-सप्ताह में करांची में कांग्रेस होनेवाली थी। लेकिन स्वयं गांधीजी ने ही निश्चित रूप से वाइसराय से कहा—अगर इन नौजवानों को फांसी पर लटकाना ही है, तो कांग्रेस अधिवेशन के बाद ऐसा करने की बजाय उससे पहले ही फांसी पर लटकाना ठीक होगा। इससे देश को यह साफ पता चल जायगा कि वस्तुतः उसकी क्या स्थिति है और लोगों के दिलों में झूठी आशायें नहीं बंधेंगी। कांग्रेस में गांधी-अर्विन समझौता अपने गुणों के ही कारण पास या रद होगा—यह जानते-बूझते हुए कि तीन नौजवानों को फांसी दे दी गई है। अस्तु, ५ मार्च १९३१ को समझौते पर हस्ताक्षर हुए और उसके बाद ही मि० इमर्सन ने गांधीजी को एक सुन्दर पत्र लिखा, जिसमें पिछले दस महीनों की सरकारी कार्रवाइयों के लिए अपने को जिम्मेदार बताते हुए यह भी लिखा कि स्वराज्य-प्राप्त भारत में नौकरी करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। लार्ड अर्विन ने गांधीजी को एक सुन्दर पत्र लिखकर आशा प्रकट की कि शीघ्र ही इंग्लैण्ड में वे उन्हें देखेंगे।

युगान्तरकारी वक्तव्य

समझौते से निबटते ही गांधीजी ने, ५ मार्च की शाम को अमरीकन, अंग्रेज व भारतीय पत्रकारों और प्रेसमैनों के एक समूह के सामने एक युगान्तरकारी वक्तव्य दिया। पूरा वक्तव्य लिखाने में गांधीजी को पूरा डेढ़ घण्टा लगा। वक्तव्य गांधीजी ने मुंह-जबानी ही लिखाया था और उसमें कहीं भी एक-बार भी रद्दो-बदल नहीं किया। इस वक्तव्य में उन्होंने लॉर्ड अर्विन की उचित प्रशंसा की और पुलिस, सिविल-सर्विस व क्रांतिकारियों से उपयुक्त अपील की। हम इस वक्तव्य को पूरा-का-पूरा यहां उद्धृत करते हैं, क्योंकि भारतीय-स्वराज्य के इतिहास में इसे सदा स्थायी-साहित्य का स्थान मिलेगा—

"सबसे पहले मैं यह बात कह देना चाहता हूं कि वाइसराय के अपार धीरज व उतने ही अपार परिश्रम व अचूक शिष्टाचार के बिना यह समझौता, जैसा भी वह है, होना असम्भव था। मुझे इस बात का पता है कि मैंने उनके सामने कई बार झुंझला पड़ने के कारण, चाहे अनजान में ही, उपस्थित किये होंगे, मैंने उनके धीरज को भी छुड़ाया होगा; लेकिन ऐसे किसी समय की मुझे याद नहीं आती जब कि वह झुंझलाते दिखाई दिये हों या उन्होंने धीरज छोड़ दिया हो। यह भी कह दूं कि इस बहुत ही नाजुक बातचीत के दौरान में उन्होंने शुरू से आखिर तक सुलकर बातें

चीत की। मेरा विश्वास है कि यदि समझौता सम्भव हो सके तो उसे करने पर वे तुले हुए थे। मुझे यह बात स्वीकार करनी पड़ेगी कि मैंने इस बातचीत में डरते हुए और कांपते हुए भाग लिया। मेरे अन्दर अविश्वास भी था, लेकिन उन्होंने फौरन ही मेरे सन्देहों का निराकरण करके मुझे निश्चिन्त कर दिया। मैं अपने लिए यह बात बिना प्रतिवाद के भय के कह सकता हूं कि जब मैंने उनसे मिलने के लिए पत्र लिखा, तो मैं इस बात पर तुला हुआ था कि यदि सम्मानपूर्ण समझौता हो सके तो उस तक पहुंचने की दौड़ में कहीं मैं पीछे न रह जाऊं। इसलिए मैं परमपिता को धन्यवाद देता हूं कि समझौता हो गया और देश कम-से-कम अभी तो उस मुसीबत का सामना करने से बच गया जो बातचीत असफल होने की हालत में सैकड़ों गुना बढ़ जाती।

"इस प्रकार के समझौते के बारे में यह कहना कि विजयी-दल कौन-सा है, न तो सम्भव ही है और न बुद्धिमत्तापूर्ण ही।

"यदि किसी की विजय है तो, मुझे कहना चाहिये, दोनों की है। कांग्रेस ने विजय की होड़ कभी नहीं लगाई थी।

"बात यह है कि कांग्रेस को एक निश्चित उद्देश्य तक पहुंचना है और उस उद्देश्य तक पहुंचे बिना विजय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मैं अपने सब देशवासियों से और अपनी सब बहनों से आग्रह करूंगा कि वे फूलकर कुप्पा होने के बजाय—यद्यपि समझौते में फूलकर कुप्पा होजाने की कोई ऐसी बात नहीं है—परमात्मा के आगे सिर झुकावें और उससे प्रार्थना करें कि उन्हें वह इस समय उनका ध्येय उनसे जिस मार्ग का अनुसरण करने का तकाजा करता है उस पर चलने की शक्ति व बुद्धि प्रदान करे, चाहे वह मार्ग कष्ट-सहन का हो और चाहे वह धैर्य-पूर्वक संधि-वार्ता या विचार-विनिमय करने का हो।

"इसलिए मैं विश्वास करता हूं कि कष्ट-सहन से पूर्ण इस संग्राम में गत बारह महीनों में जिन लाखों लोगों ने भाग लिया है वे विचार-विनिमय और निर्माण के इस काल में भी वही खुशनुदी, वही एकता, वही कोशिश और वही समझदारी दिखलायंगे जो उन्होंने इतनी अधिक मात्रा में इस युग में, जिसे मैं भारत के आधुनिक इतिहास का वीरतापूर्ण युग कहूंगा, दिखलाई है।

"लेकिन, मुझे मालूम है, जहां ऐसे स्त्री-पुरुष होंगे जो इस समझौते के कारण फूलकर कुप्पा हो जायंगे, वहां ऐसे लोग भी हैं जो बहुत निराश होंगे और जो बहुत निराश हैं।

"वीरता से कष्ट सहना तो उनके लिए इतना स्वाभाविक है जैसे मानों सांस लेना। वे तो मानों उसी में सबसे ज्यादा खुश हैं, असह्य कष्टों को भी सह लेंगे। लेकिन जब उनके कष्टों का अन्त होता है तो उन्हें ऐसा मालूम पड़ता है कि हमारा काम बन्द होगया है और हमारा लक्ष्य आंखों से ओझल होगया। उनसे मैं केवल यही कहूंगा कि धैर्य रक्खो, देखो, प्रार्थना करो, और आशा रक्खो।

"कष्ट-सहन की भी एक हद होती है। कष्ट-सहन में बुद्धिमानी और मूर्खता दोनों सम्भव हैं, और जब कष्ट-सहन की हद आ जाती है तो उसे और बढ़ाना बुद्धिमानी नहीं बल्कि परले सिरे की बेवकूफी है।

"जब आपका विरोधी आपके इच्छानुसार ही आपसे बातचीत करनेकी आपके लिए आसानी पैदा कर दे, तो कष्ट सहते रहना बेवकूफी है। यदि रास्ता वास्तव में खुल जाय तो हरेक का यह कर्त्तव्य है कि वह उससे फायदा उठाये। मेरी यह नम्र सम्मति है कि इस समझौते ने वास्तव में रास्ता खोल दिया है। इस प्रकार के समझौते का स्थायी होना स्वाभाविक ही है। यह जो सन्धि हुई है वह कई बातों के पूरा होने पर निर्भर है। इस लिखित समझौते का बड़ा भारी अङ्ग तो 'समझौते की शर्तों,

से घिर गया है। यह स्वाभाविक ही था। कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में भाग ले सके इसके पहले कई बातों का पूरा होजाना आवश्यक है। इनका उल्लेख होना अत्यन्त आवश्यक है। लेकिन कांग्रेस का ध्येय पुरानी भूलों का सुधार करना नहीं है, यद्यपि यह भी है महत्वपूर्ण; उसका ध्येय तो पूर्ण-स्वराज्य है, जिसको अंग्रेजी में अनुवाद करके 'पूर्ण स्वाधीनता' कहा जाता है। अन्य राष्ट्रों की भांति भारत का यह जन्मसिद्ध अधिकार है और भारत इससे कम पर सन्तुष्ट नहीं हो सकता। समझौते भर में हमें मनमोहक शब्द कहीं नहीं दिखाई देता। जिस धारा में यह शब्द छिपा हुआ है, वह द्विअर्थक है।

"सङ्घ-शासन (फेडरेशन) मृगतृष्णा भी हो सकता है, या एक ऐसे सजीव राष्ट्र का रूप धारण कर सकता है जिसके दोनों हाथ इस प्रकार कार्य करते हों कि उससे उसका शरीर मजबूत बन जाय।

"इसी प्रकार 'उत्तरदायित्व' जो दूसरा पाया है, वह या तो बिल्कुल छाया के समान निःसार हो या बड़ा ऊंचा, विशाल व न झुकने वाले बरगद के पेड़ के सदृश हो सकता है। भारत के हित में संरक्षण भी बिलकुल धोखे से भरे और इसलिए ऐसे रस्सों के समान हो सकते हैं जिनसे देश चारों ओर से जकड़ा जा सके, या वे ऐसी चहारदीवारी के समान हो सकते हैं जो एक छोटे व मुलायम पौधे की रक्षा करने के लिए उसके चारों ओर लगा दी जाती है।

"एक दल इन तीन पायों का एक मतलब निकाल सकता है और दूसरा दल दूसरा। इस धारा के अनुसार दोनों दल अपनी-अपनी दिशा में काम कर सकते हैं। कांग्रेस ने परिषद् की कार्रवाई में भाग लेने की जो रजामन्दी दिखाई है वह इसी कारण कि वह संघ-शासन, उत्तर-दायित्व, संरक्षण, प्रतिबन्ध अथवा उन्हें जिन नामों से भी पुकारा जाता हो उनको ऐसा रूप देना चाहती है कि उससे देश की वास्तविक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं नैतिक उन्नति हो।

"यदि परिषद् ने कांग्रेस की स्थिति को ठीक-ठीक समझकर मान लिया तो, मेरा दावा है, इसका परिणाम पूर्ण-स्वाधीनता' होगा। लेकिन मैं जानता हूं कि यह मार्ग बहुत कठिन और थका देने वाला है। मार्ग में बहुत-सी चट्टानें हैं और बहुत से गड्ढे हैं। लेकिन यदि कांग्रेस-वादी इस नये काम को विश्वास व उत्साह के साथ करेंगे तो मुझे इसके परिणाम के बारे में कोई भी सन्देह नहीं रह सकता। अतः यह उन्हीं के हाथ में है कि वे इस नये अवसर का, जो उन्हें मिला है, अच्छे-से-अच्छा उपयोग करें या वे आत्म-विश्वास व उत्साह के न होने के कारण अवसर ही खो दें।

"मैं जानता हूं कि इस कार्य में कांग्रेस को दूसरे दलों की सहायता लेनी होगी—भारत के नरेशों की और स्वयं अंग्रेजों की भी। इस अवसर पर मुझे भिन्न-भिन्न दलों से अपील करने की जरूरत नहीं। मुझे इस बात में सन्देह नहीं कि अपने देश की वास्तविक स्वतन्त्रता की उन्हें भी उतनी ही आकांक्षा है जितनी कि कांग्रेसवालों को।

'लेकिन नरेशों का सवाल दूसरा है। उनका संघ-शासन के विचार को मान लेना मेरे लिए निश्चित रूप से आश्चर्यजनक था। यदि वे संघ-शासित भारत में बराबरी के साझीदार बनना चाहते हैं, तो मैं इस बात को कह देना चाहता हूं कि उन्हें उसी ओर बढ़ना होगा जिस ओर बढ़ने की ब्रिटिश-भारत इतने वर्षों से कोशिश कर रहा है।

"पूर्ण एकतन्त्री शासन, चाहे वह कितना ही अच्छा क्यों न हो, व विशुद्ध लोकसत्ता ये दो ऐसी चीजें हैं जिनका मिश्रण अवश्य ही फट पड़ेगा। इसलिए, मेरी राय में, उनके लिए आवश्यक है कि वे तने न रहें, अड़े न रहें, और अपने भावी साझीदार-द्वारा या उसकी ओर से की गई अपील को बेसब्री में न सुनें। यदि वे इस प्रकार की अपील को न सुनेंगे तो वे कांग्रेस की स्थिति को बहुत असह्य, खराब और वास्तव में बहुत विषम बना देंगे। कांग्रेस भारत की सारी जनता की प्रतिनिधि है या

उसका प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है। ब्रिटिश-भारत या देशी रियासतों में बसनेवालों में वह कोई भेद-भाव नहीं करती।

"कांग्रेस ने बड़ी बुद्धिमानी से और बड़ी रोक-थाम के साथ रियासतों के मामलों व उसके कारोबार में दखल देने से अपने-आपको रोका है। ऐसा उसने इस खातिर किया है कि रियासतों की भावनाओं को अनावश्यक चोट न पहुंचे, और इस वजह से भी कि जब कोई उपयुक्त अवसर आवे तो यह कैद, जो उसने अपने-आप लगा रक्खी है, रियासतों पर अपना असर डालने में काम आवे। मेरा विचार है कि वह अवसर अब आ गया है। क्या मैं इस बात की आशा करूं कि हमारे बड़े नरेश रियासती प्रजा की ओर से की गई कांग्रेस की अपील पर कान बन्द न कर लेंगे ?

"अंग्रेजों से भी मैं एक ऐसी अपील करना चाहता हूं। यदि भारत को परिषदों व विचार-विमर्श के जरियों से ही अपने निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करना है तो अंग्रेजों की सद्भावना व सक्रिय-सहायता की बड़ी आवश्यकता होगी। मुझे यह बात कहनी पड़ेगी कि लंदन में पहली परिषद् में जिन-जिन बातों को उन्होंने मान लिया है वह तो उसका आधा भी नहीं है जिस ध्येय तक भारत पहुंचना चाहता है। यदि वे वास्तव में सच्ची मदद करना चाहते हैं तो उन्हें भारत को भी उसी स्वतन्त्रता की मस्ती का अनुभव करा देना पड़ेगा, जिसको वे स्वयं मरते दम तक नहीं छोड़ सकते। उन्हें इस बात के लिए तैयार होना पड़ेगा कि वे भारत को गलतियां करने के लिए छोड़ दें। यदि गलती करने की, यहां तक कि पाप तक करने की, स्वतन्त्रता न हुई तो ऐसी स्वतन्त्रता किस काम की ? यदि परम-पिता परमात्मा ने अपने छोटे-से-छोटे जीव को गलती करने की स्वतन्त्रता दी है, तो मेरी समझ में नहीं आता कि वे कैसे मनुष्य-जीव होंगे जो, चाहे वे कितने ही अनुभवी और योग्य क्यों न हों, दूसरी जाति के मनुष्यों के इस अमूल्य अधिकार को छीनने में खुशी मना सकते हैं ?

"खैर, कुछ भी हो; कांग्रेस को परिषद् में आमंत्रित करने से यह तात्पर्य खूब अच्छी तरह निकल आता है कि अयोग्यता के अलावा किसी और कारण-वश उसे पूर्ण-से-पूर्ण स्वाधीनता पर जोर देने से नहीं रोका जा सकता। कांग्रेस भारत को उस बीमार बालक की भांति नहीं मानती जिसे देख-भाल, सेवा-शुश्रूषा व अन्य सहारों की जरूरत हो।

"अमरीकन-राजतन्त्र व संसार के अन्य राष्ट्रों की जनता से भी मैं एक अपील करना चाहता हूं। मुझे मालूम है कि इस युद्ध ने, जिसका आधार सत्य व अहिंसा है—लेकिन जिनसे हम उसके उपासक कभी-कभी कुछ भटक जाते हैं—उनके मन पर बड़ा असर डाला है और उनमें उत्सुकता पैदा की है। उत्सुकता ही नहीं; वे इससे भी आगे बढ़े हैं। उन्होंने, और खासकर अमरीका ने, सहानुभूति के द्वारा हमारी प्रत्यक्ष मदद भी की है। कांग्रेस की ओर से और अपनी ओर से मैं कहता हूं कि इस सहानुभूति के लिए हम उनके बहुत आभारी हैं। मुझे आशा है कि कांग्रेस अब जिस मुश्किल काम में पड़नेवाली है उसमें हमें न केवल उनकी यह वर्तमान सहानुभूति ही प्राप्त रहेगी बल्कि वह दिन-प्रति-दिन बढ़ती भी जायगी। मैं बड़ी नम्रता से यह कहने की हिम्मत करता हूं कि यदि सत्य व अहिंसा के द्वारा भारत अपने ध्येय तक पहुंच गया तो जिस विश्व-शांति के लिए संसार के सब राष्ट्र तड़प रहे हैं, उसके हित में बड़ा भारी काम कर दिखायेगा और इन राष्ट्रों ने उसे जी खोलकर जो सहायता दी है, उसका कुछ थोड़ा-सा बदला भी चुक जायगा।

"मेरी आखिरी अपील पुलिस व सिविल-सर्विस अर्थात् सरकारी अधिकारियों से है। समझौते में एक वाक्य है, जिसमें जाहिर किया गया है कि मैंने पुलिस की कुछ ज्यादतियों की जांच की मांग की थी। इस जांच की मांग को छोड़ देने का कारण भी समझौते में दिया गया है। महकमा

पुलिस द्वारा शासन की जो मशीन चलती रहती है उसका सिविल सर्विस एक अभिन्न अंग है। यदि वे वास्तव में यह महसूस करते हैं कि भारत शीघ्र ही अपने घर का मालिक बननेवाला है और उन्हें वफादारी व ईमानदारी से भारत सेवकों की तरह काम करना है, तो उन्हें यह शोभा देता है कि वे अभी से लोगों को अनुभव करा दें कि सिविल-सर्विस व पुलिस उनके सेवक हैं—अवश्य ही सम्मान योग्य व बुद्धिमान् सेवक, लेकिन हर हालत में सेवक ही, न कि मालिक।

"मुझे अपने उन हजारों तो नहीं लेकिन सैकड़ों साथी बन्दियों के बारे में भी एक शब्द कहना है, जिनके लिए मेरे पास तार-पर-तार चले आ रहे हैं; लेकिन जो गत १२ महीनों में जेल भेजे गये सत्याग्रही कैदियों के छूट जाने पर भी जेलों में पड़े रहेंगे। व्यक्तिगत रूप से तो उन लोगों के भी, जो हिंसा करने के दोषी हैं, जेल भेजे जाने की प्रणाली पर मेरा विश्वास नहीं है। मैं जानता हूं कि वे लोग जिन्होंने राजनैतिक उद्देश्यों से प्रेरित होकर हिंसा की है, यदि बुद्धिमानी का नहीं तो कम-से-कम देश के लिए प्रेम व आत्म-त्याग करनेका उतना दावा तो कर ही सकते हैं जितना कि मैं। इसलिए अपनी या अपने साथी-सत्याग्रहियों की रिहाई के बजाय यदि मैं न्यायपूर्वक उनकी रिहाई करा सकता तो सचमुच ही कराता।

"मेरा विश्वास है कि वे लोग महसूस करेंगे कि मैं न्याय-पूर्वक उनकी रिहाई के लिए नहीं कह सकता था। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि मुझे या कार्य-समिति के सदस्योंको उनका खयाल ही नहीं है।

"कांग्रेस ने जान-बूझकर, चाहे अस्थायी तौर पर ही सही, सहयोग का मार्ग ग्रहण किया है। यदि कांग्रेसवादी ईमानदारी से समझौते की उन शर्तों का जो उनपर लागू होती हैं, पूरी-पूरी तरह से पालन करें तो कांग्रेस का गौरव बहुत बढ़ जायगा और सरकार पर इस बात का सिक्का बैठ जायगा कि जहां कांग्रेस ने, मेरी राय में, अवज्ञा-आन्दोलन चलाने की योग्यता सिद्ध कर दी है वहां उसमें शान्ति बनाये रखने की भी क्षमता है।

"और यदि जनता कांग्रेस को यह शक्ति और गौरव प्रदान कर दे, तो मैं विश्वास दिलाता हूं कि वह समय दूर नहीं है जब कि इन कैदियों में से, मय-नजरबन्दों व मेरठ-षड्यन्त्र के कैदियों व सब अन्यों के, एक-एक छूट जायगा।

"इस बात में सन्देह नहीं कि भारत में एक ऐसा छोटा किन्तु कर्मण्य-दल विद्यमान है जो भारत की स्वतन्त्रता हिंसात्मक कार्यों-द्वारा प्राप्त करना चाहता है। मैं इस दल से अपील करता हूं, जैसा कि मैं पहले भी कर चुका हूं, कि वह अपनी प्रवृत्तियों को बन्द करे। यदि उसे अभी इसमें विश्वास नहीं तो कम-से-कम उपयोगिता की दृष्टि से ही उसे ऐसा करना चाहिए। अनुमान है कि वे इस बात को तो महसूस कर ही चुके होंगे कि अहिंसा में कितनी जबरदस्त शक्ति है। वे इस बात से नहीं मुकरेंगे कि यह चमत्कारिक सामूहिक-जागृति अहिंसा के अगम्य लेकिन अचूक असर के कारण ही हुई है। मैं चाहता हूं कि वे धीरज धरें और कांग्रेस को, या वे चाहें तो मुझे, सत्य व अहिंसा की योजना का प्रयोग करने का अवसर दें। दाण्डी-यात्रा को तो अभी पूरा एक साल भी नहीं हुआ। तीस करोड़ व्यक्तियों के जीवन में एक वर्ष का समय तो काल-चक्र के एक क्षण के समान है। क्यों न वे अपने अमूल्य-जीवन को मातृभूमि की सेवा के लिए, जिसका बुलावा शीघ्र ही सबों को दिया जायगा, सुरक्षित रक्खें और कांग्रेस को इस बात का अवसर दें कि वह अन्य सब राजनैतिक कैदियों की भी रिहाई करा सके और सम्भवतः उन लोगों को भी फांसी के तख्ते से बचा सके जिन्हें हत्या के अभियोग में फांसी की सजा मिली है?

"लेकिन मैं किसी को झूठा दिलासा नहीं देना चाहता। खुद मेरी और कांग्रेस की जो आकांक्षायें हैं उनका मैं सार्वजनिक तौर पर केवल उल्लेख ही कर सकता हूं। प्रयत्न करना हमारे हाथ में है, परिणाम सदा परमात्मा के हाथ में है।

"एक व्यक्तिगत बात और। मेरा खयाल है कि सम्मानप्रद समझौता करने के प्रयत्न में मैंने अपनी सारी शक्ति लगा दी है। मैंने लार्ड अर्विन को अपना वचन दे दिया है कि मैं समझौते की शर्तों का, जहांतक उनका कांग्रेस से सम्बन्ध है, पालन कराने में जी-जान से जुट जाऊंगा। मैंने समझौते का प्रयत्न इसलिए नहीं किया कि पहला अवसर मिलते ही मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूं बल्कि इसलिए कि अभी जो अस्थायी है उससे बिलकुल पक्का करने में कोई भी कसर न छोड़ूं और इसे उस ध्येय तक पहुंचाने वाला पेशवा समझूं जिसे प्राप्त करने के लिए कांग्रेस कायम है।

"सबसे अन्त में मैं उन सब लोगों को धन्यवाद देता हूं जो समझौते को सम्भव बनाने में निरन्तर प्रयत्न करते रहे हैं।"

दूसरी मुलाकात

गांधीजी की दूसरी युगान्तरकारी भेंट दूसरे दिन (६ मार्च १९३१) दिल्ली में ११½ बजे हुई, जिसमें भारत के व विदेशों के कई पत्रकार उपस्थित थे और जिसमें गांधीजी ने उनके प्रश्नों का उत्तर दिया। इस अवसर पर अमरीका के 'असोशिएटेड-प्रेस' के श्री जेम्स मिल्स, 'लन्दन-टाइम्स' के श्री पीटरसन, 'शिकागो ट्रिब्यून' के श्री शिरार, 'बोस्टन ईवनिंग ट्रांसक्रिप्ट' के श्री हाल्टन जेम्स, 'क्रिश्चियन साइन्स मॉनीटर' (अमरीका) के श्री० इंगलस, 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' के श्री जे० एन० साहनी, और 'पायोनियर' व 'सिविल एण्ड मिलिटरी गजट' के श्री नोडहम आदि पत्रकार उपस्थित थे। प्रश्नोत्तर यहां दिये जाते हैं—

प्र०—आपने अपने कल वाले वक्तव्य में 'पूर्ण स्वराज्य' शब्द का प्रयोग किया और कहा कि जिसका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में मामूली तौर से 'पूर्ण-स्वाधीनता' होता है। सो 'पूर्ण-स्वराज्य' की आपकी सही व्याख्या क्या है?

उ०—मैं आपको इसका ठीक उत्तर नहीं दे सकता, क्योंकि अंग्रेजी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं जो, 'पूर्ण-स्वराज्य' के भाव को व्यक्त कर सके। स्वराज्य का मूल अर्थ तो स्व-राज्य अर्थात् स्व-शासन है। 'स्वाधीनता' से इस प्रकार का कोई मतलब नहीं निकलता। स्वराज्य का मतलब है आत्म-नियंत्रित-शासन और पूर्ण का मतलब है पूरा। कोई बराबरी का शब्द न मिलने के कारण हमने अंग्रेजी में complete independence (पूर्ण-स्वाधीनता शब्दों को चुन लिया है जिन्हें हर कोई समझता है। 'पूर्ण-स्वराज्य' का यह मतलब नहीं कि किसी भी राष्ट्र से, या इंग्लैण्ड से ही कहिए, सम्बन्ध नहीं रक्खा जा सकता। लेकिन यह सम्बन्ध स्वेच्छा से और दोनों के फायदे के लिए ही हो सकता है।

प्र०—समझौते की दूसरी धारा को देखते हुए क्या कांग्रेस के लिए युक्तिसंगत होगा कि वह पूर्ण-स्वाधीनता के प्रस्ताव को, जो उसने मदरास, कलकत्ता व लाहौर के अधिवेशनों में पास किया था, फिर से दोहराये?

उ०—अवश्य ही, क्योंकि करांची-कांग्रेस को फिर इसी प्रकार का प्रस्ताव पास करने से रोकने की और आगामी गोलमेज-परिषद् तक में उसपर जोर देने से रोकने की कोई शर्त नहीं है। मैं आपको यह बात बताकर कोई भेद नहीं खोल रहा हूं कि मैंने इस स्थिति को अच्छी तरह खोल दिया था और समझौते को स्वीकृत करने से पहले अपनी स्थिति भी साफ करली थी।

प्र०—द्वितीय गोलमेज-परिषद् का भारत में होना आप पसन्द करते हैं या इंग्लैण्ड में ?

उ० –परिस्थिति पर इसका दारोमदार है—मेरा अभी कोई खास विचार नहीं है। मोटे तौर पर मैं यह चाहूंगा कि गोलमेज-परिषद् का पूर्वार्द्ध भारत में हो और फिर उसकी समाप्ति लन्दन में हो।

प्र०—क्या आप नियमित रूप से परिषद् में भाग लेंगे ?

उ०—मैं आशा तो करता हूं और शायद हो भी यही।

प्र०—क्या आप परिषद् में 'पूर्ण-स्वराज्य' के लिए जोर देंगे ?

उ०—यदि हम उसके लिए जोर न दें तब तो हमें अपने अस्तित्व से ही इन्कार कर देना चाहिए।

प्र०—क्या आप प्रस्तुत संरक्षणों व प्रतिबन्धों को मान लेंगे ?

उ०—नहीं, इस सम्बन्ध में तो कांग्रेस अपनी स्थिति संसार के सामने स्पष्ट कर चुकी है। कांग्रेस को किसी राजनैतिक परिषद् में भाग लेने का निमन्त्रण देनेवाले को कम-से-कम यह तो मालूम होने की आशा रखनी ही चाहिए कि कांग्रेस क्या चाहती है। कांग्रेस की स्थिति को स्पष्ट करने में, जहांतक मुझसे सम्बन्ध था, मैंने बहुत सावधानी की है। सम्राट्-सरकार के लिए यह मार्ग अब भी खुला हुआ है कि यदि चाहे तो कांग्रेस को परिषद् में भाग लेने का निमन्त्रण न दे। समझौते में ऐसी कोई बात नहीं है, जहांतक मैंने समझा है, जिसके अनुसार परिषद् में भाग लेना लाजिमी हो।

प्र०—करांची-कांग्रेस के सामने क्या-क्या विषय आवेंगे ?

उ०—यह मैं नहीं कह सकता। करांची-कांग्रेस के पहले कार्य-समिति की जो बैठक होगी यह उस पर निर्भर रहेगा।

प्र०—क्या यह पूछना उचित होगा कि भगतसिंह व उनके साथियों की फांसी की सजा आजन्म देश-निकाले में परिणत कर दी जायगी।

उ०—मुझसे यह प्रश्न न करना ही ठीक होगा। इस सम्बन्ध में अखबारों में पर्याप्त सामग्री निकल चुकी है; जिससे पत्रकार अपने लिए जैसा ठीक समझें मतलब निकाल सकते हैं। इससे अधिक मैं नहीं कह सकता।

प्र०—क्या आप 'यंग इण्डिया' निकालने का इरादा कर रहे हैं ?

उ०—हां, भरसक जल्दी-से-जल्दी। यह सब समझौते के अमल में आने पर निर्भर है, क्योंकि उसके अनुसार मशीनें आदि, जो प्रेस-आर्डिनेन्स में जब्त की गई थीं, वापस आनी हैं। 'यंग-इण्डिया' निकालने के लिए मैं अवश्य उत्सुक हूं। 'यंग इण्डिया' अभीतक साइक्लोस्टाइल पर छपता था, लेकिन समझौते की शर्तों का पालन करने के लिए हमने इस सप्ताह से 'यंग इण्डिया' का प्रकाशन बन्द कर दिया है; क्योंकि समझौते में यह बात शामिल है कि गैर-कानूनी समाचार-पत्रों का प्रकाशन बन्द हो।

प्र०—शनिवार को जब सब मामला बिगड़ गया था, तो ऐसी कौनसी बात हुई जिसने बात-चीत का सारा रुख बदल दिया ?

उ० (मुस्कराते हुए)—लार्ड अर्विन की भलमंसाहत और सम्भवतः (कुछ और मुस्कराते हुए) मेरी भी भलमंसाहत (हंसी)।

प्र०—क्या आप इस समझौते को अपने अबतक के जीवन की सबसे बड़ी सफलता समझते हैं ?

उ० (हंसकर)—मुझे यही मालूम नहीं कि मैंने जीवन में अबतक कौन-कौनसी सफलतायें पाईं और यह उनमें से एक है या नहीं ?

प्र०—यदि आप 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त कर लें तो आप उसे अपने जीवन की ऐसी सफलता मान सकेंगे ?

उ०—मैं समझता हूं कि यदि ऐसा हो सके तो मैं उसे अवश्य ऐसा मानूंगा।

प्र०—क्या आप अपने जीवन-काल में 'पूर्ण-स्वराज्य' प्राप्त करने की उम्मीद करते हैं ?

उ०—यकीनन जरूर। (मुस्कुराते हुए) पाश्चात्य विचारों के अनुसार तो मैं अपने को ६२ साल का युवक ही मानता हूं।

प्र०—क्या आप भावी शासन-विधान में संरक्षण स्वीकार करने के लिए तैयार हो जायंगे ?

उ०—हां, यदि वे युक्तिसंगत और विवेकपूर्ण हों। अल्प-संख्यकों का ही प्रश्न लीजिए। मेरा खयाल है कि हम तबतक बड़े राष्ट्रों में नहीं गिने जा सकते जबतक कि हम अल्पसंख्यकों के अधिकारों को एक पवित्र धरोहर की तरह न मानें। मैं इसे एक न्यायपूर्ण संरक्षण मानूंगा।

प्र०—सेना व आर्थिक प्रतिबन्धों के बारे में आपकी क्या राय है ?

उ०—आर्थिक ? हां, यदि हमारे ऊपर 'सार्वजनिक ऋण' है तो जितना हमारे जिम्मे पड़ेगा उसका हमें प्रबन्ध करना होगा। इस हदतक मैं देश की साख और उसकी वृद्धि के लिए एक संरक्षण को मानने के लिए बंधा हुआ हूं। सेना के सम्बन्ध में मेरी बुद्धि जहांतक मुझे ले जाती है, मैं इसके अलावा और कोई संरक्षण नहीं सोच सकता कि हमें सैनिकों के वेतनों की तथा उन शर्तों की पूर्ति की गारंटी करनी पड़ेगी जिन्हें हम, उन ब्रिटिश-सिपाहियों के सम्बन्ध में जिनकी भारत को जरूरत हो, स्वीकार करें ?

प्र०—क्या आप सरकारी कर्जों के लिए मुकर जायंगे ?

उ०—हमारी तरफ न्यायपूर्वक जो हिसाब निकलेगा उसकी मैं एक-एक कौड़ी स्वीकार करूंगा। लेकिन दुःख की बात है कि इस 'मुकरने' की बातचीत ने बहुत कुछ गड़बड़ फैला दी है। कांग्रेस की यह कभी मन्शा नहीं रही कि सरकारी कर्ज के एक रुपये से भी इन्कार करे। कांग्रेस ने तो केवल यही मांग की है, और वह इसी बात पर जोर देगी, कि देश की भावी सरकार पर जो कर्ज लादा जाय वह न्यायपूर्ण हो। यह एक ऐसी मांग है जो कोई भी खरीदार कोई नई चीज खरीदते समय करेगा। कांग्रेस ने इस बात का प्रस्ताव किया है कि यदि आपस में फैसला न हो सके तो एक स्वतन्त्र-ट्रिब्यूनल बिठा दिया जाय।

प्र०—क्या आपकी राय में राष्ट्र-संघ उपयुक्त पंच होगा ?

उ०—अभी तो मैं इतना ही कह सकता हूं कि हां, राष्ट्र-संघ उपयुक्त पंच होगा। लेकिन सम्भव है राष्ट्र-संघ इस जिम्मेदारी को लेने के लिए तैयार न हो और फिर इंग्लैण्ड भी ऐसे पंच को पसन्द न करे; इसलिए इंग्लैण्ड व भारत दोनों को जो पंच मान्य होगा वह मुझे भी मान्य होगा।

प्र०—क्या आप इस प्रश्न पर गोलमेज-परिषद् में जोर देंगे ?

उ०—जब राष्ट्रीय जिम्मेदारियों के प्रश्न पर गौर करने और उन्हें मानने का सवाल आयेगा तो इसपर जोर देना आवश्यक होगा। दूसरे शब्दों में, आप कह सकते हैं कि, इन जिम्मेदारियों को इसी शर्त पर स्वीकार किया जायगा कि उनकी राष्ट्र-द्वारा जांच-पड़ताल कर ली जाय।

"क्या यह अस्थायी-समझौता 'पर्वतीय-प्रवचन' का असली उदाहरण कहा जा सकता है, जैसा कि आज सुबह के 'हिन्दुस्तान-टाइम्स' की राय है ?" एक विदेशी पत्रकार ने पूछा।

उ०—इस प्रश्न का फैसला मैं नहीं कर सकता। यह आलोचकों का कार्य है।

प्र०—क्या आपकी राय में समझौते के फलस्वरूप विदेशी-कपड़े का वहिष्कार ढीला कर देना चाहिए ?

उ०—नहीं, कदापि नहीं। विदेशी कपड़े का वहिष्कार राजनैतिक अस्त्र नहीं है। यह तो भारत के एकमात्र सहायक धन्धे चर्खे की उन्नति के लिए है। उसका कार्य सिर्फ विदेशी कपड़े के भारत-आगमन से सम्बन्ध रखता है। यदि सरकार की बागडोर मेरे हाथ में होती तो मैं अवश्य भारी करों की ऊंची-ऊंची दीवारें खड़ी करता। इस प्रकार के संरक्षक-कर इस सरकार-द्वारा लगाया जाना भी मैं सम्भव समझता हूं। आजकल जो कर लगे हुए हैं वे विदेशी कपड़े की सर्वथा रोक करने के लिए नहीं बल्कि केवल सरकारी आय के लिए हैं।

प्र०—पूर्ण-स्वराज्य का आपका क्या खाका है ?

उ०—मैं तो आकाश में उड़नेवाला आदमी हूं। इसलिए मैं तो ऐसे कई 'मनोराज्य' किया करता हूं। 'पूर्ण-स्वराज्य' पूर्ण समानता का विरोधी नहीं बल्कि आधार है। सर्व-साधारण का दिमाग इस समानता को सहसा नहीं समझ सकता। समानता से मेरा तात्पर्य है कि सरकारी कार्य का केन्द्र डाउनिंग-स्ट्रीट होने के बजाय दिल्ली हो। मित्रों का कहना है कि सम्भव है इंग्लैण्ड इस स्थिति के लिए राजी न हो।

ब्रिटिश लोग व्यावहारिक आदमी हैं; जिस प्रकार वे अपनी स्वतन्त्रता से प्रेम करते हैं उसी प्रकार दूसरों को स्वतन्त्रता देना एक कदम और आगे चलना है। मैं जानता हूं कि भारत के लिए मैं जो समानता चाहता हूं उसके देने का जब समय आवेगा, तो वे यही कहेंगे कि यह तो हम हमेशा से ही चाहते थे। ब्रिटिश लोगों में अपने आपको भ्रम में रखने की जैसी खूबी है वैसी और किसी राष्ट्र में नहीं। मेरे विचार से निश्चय ही समानता का तात्पर्य है सम्बन्ध-विच्छेद करने के अधिकार का भी होना।

प्र०—क्या आप अंग्रेजों को और जातियों के मुकाबले में शासक-रूप में अधिक पसन्द करते हैं ?

उ०—मुझे किसी को भी पसन्द नहीं करना है। अपने अलावा मैं और किसी से शासित होना नहीं चाहता।

प्र०—क्या आप ब्रिटिश झण्डे के नीचे 'पूर्ण-स्वराज्य' का होना पसन्द करेंगे ?

उ०—नहीं, इस झंडे के नीचे नहीं। हां, यदि सम्भव हो तो दोनों के एक आम झंडे के नीचे और आवश्यक हो तो एक पृथक् राष्ट्रीय झंडे के नीचे।

प्र०—परिषद् में जाने से पूर्व क्या आप हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को सुलझा लेने की आशा करते हैं ?

उ०—यह मेरी आकांक्षा तो है, लेकिन मैं यह नहीं कह सकता कि यह कहां तक पूरी हो सकेगी। फिलहाल तो मेरा यह विचार है कि इस प्रश्न को हल किये बिना हमारा परिषद् में जाना व्यर्थ है। परिषद् में जाकर एकता होना, मेरी राय में मुश्किल है।

प्र०—क्या हिंदू-मुस्लिम-एकता स्थापित करने में बरसों लगेंगे ?

उ०—नहीं, मेरा ख्याल ऐसा नहीं है। हिन्दू व मुसलमान जनता में कोई नाइत्तिफाकी नहीं है। नाइत्तिफाकी केवल सतह पर है और इसका अधिक महत्व इसलिए है कि सतह पर जो आदमी हैं, वे वही हैं जो भारत के राजनैतिक दिमाग के प्रतिनिधि हैं।

प्र०—क्या आप इस बात की सम्भावना देखते हैं कि जब 'पूर्ण-स्वराज्य' मिल जायगा तो राष्ट्रीय-सेना हटा दी जायगी ?

उ०—गगन-विहारी आदमी का उत्तर है तो अवश्य, लेकिन मेरा विचार है कि मैं अपने जीवन-काल में तो ऐसा न देख सकूंगा । बिलकुल सेना न रखने की स्थिति तक पहुंचने के लिए भारतीय-राष्ट्र को कई युगों तक ठहरना होगा । सम्भव है कि श्रद्धा की कमी के कारण ही मेरी यह शंकाशीलता हो । लेकिन ऐसी सम्भावना असम्भव नहीं । वर्तमान सामूहिक जागृति की तथा अहिंसा पर लोगों के डटकर कायम रहने की—अपवादों को छोड़ दीजिये—किसे आशा थी ? इसी बात से मुझे कुछ आशा होती है कि निकट-भविष्य में भारतीय नेता हिम्मत के साथ कह सकेंगे कि अब हमें किसी सेना की जरूरत नहीं । मुल्की कामों के लिए पुलिस पर्याप्त समझी जानी चाहिए ।

प्र०—क्या निकट-भविष्य में बोलशेविक आक्रमण होने की आशंका आप नहीं करते ?

उ०—नहीं, मुझे ऐसा कोई डर नहीं है ।

प्र०—क्या बोलशेविक-प्रचार के भारत में फैलने का आपको भय नहीं है ?

उ०—मैं नहीं समझता कि भारतीय इस प्रकार बहकावे में आ सकते हैं ।

प्र०—आपको बोलशेविज्म में क्या अच्छाई दीखती है ?

उ०—(हंसकर) वास्तव में मैंने बोलशेविज्म का इतना अध्ययन ही नहीं किया । यदि उसमें कुछ अच्छाई है तो भारत को उसे लेने में और अपनाने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए ।

प्र०—क्या आप भावी सरकार के प्रधान मंत्री बनना स्वीकार करेंगे ?

उ०—नहीं । यह पद तो नौजवानों और मजबूत आदमियों के लिए है ।

प्र०—लेकिन यदि जनता आप को चाहे और अड़ जाय, तो ?

उ०—तो मैं आप जैसे पत्रकारों की शरण ढूंढूंगा । (हंसी)

"यदि पूर्ण-स्वराज्य स्थापित हो गया तो क्या आप सब मशीनरी उड़ा देंगे ?" एक अमरीकन पत्रकार ने पूछा ।

उ०—नहीं, बिलकुल नहीं । उड़ा देने के बजाय मैं तो अमरीका को शायद और भी अधिक मशीनरी का आर्डर दूंगा (हंसी) और कौन कह सकता है कि मैं ब्रिटिश मशीनरी को ही तरजीह दूं ? (और अधिक हंसी)

प्र०—स्वराज्य मिलने के पूर्व क्या आप आश्रम लौटेंगे ?

उ०—मेरा विचार केवल आश्रम देखने का है । जबतक पूर्ण-स्वराज्य का मेरा व्रत पूरा न हो जायगा तबतक मैं आश्रम में नहीं रहूंगा ।

प्र०—सेना-सम्बन्धी प्रश्न के आपके उत्तर से क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आप इस बात की सम्भावना नहीं देखते कि अन्तर्राष्ट्रीय पेचीदगियों को सुलझाने में अहिंसा उपयोगी अस्त्र हो सकता है ?

उ०—अगर संसार के अन्य राष्ट्रों की भांति भारत में भी सेना हो तो, मेरा ख्याल है, कि अहिंसा ऐसा अस्त्र बन जायगा । सबसे पहले विचारों में परिवर्तन होगा । कार्य तो सदा धीरे-धीरे होता है । ज्यों-ज्यों समय जायगा, राष्ट्र विचार विमर्श तथा पंचायती फैसलों पर अधिकाधिक विश्वास करेंगे और शनैः शनैः सेनाओं पर कम । सम्भव है कि सेनायें केवल दर्शन-मात्र की ही चीज रह जायं, जिस प्रकार खिलौने पुरानी किसी चीज के अवशेष होते हैं, न कि राष्ट्र की रक्षा के साधन ।

कांग्रेस की हिदायतें

लॉर्ड अर्विन ने भी गांधी जी की उसी प्रकार प्रशंसा की, जिस प्रकार कि स्वयं गांधीजी ने लॉर्ड अर्विन की की थी। अपने को दिए गए एक प्रीति-भोज में आपने महात्माजी की ईमानदारी, नेकनीयती व उच्चतम देशभक्ति की मुक्तकंठ से प्रशंसा करते हुए कहा कि 'उनके साथ कार्य करना बड़ी खुशी और खुश-किस्मती की बात है। महात्मा गांधी अपनी ओर से इस बात की भरसक कोशिश कर रहे हैं कि वे अपने देशवासियों को तसल्ली करा सकें और शांति के योग्य वातावरण स्थापित कर सकें। इधर मैं इस बात की पूरी कोशिश करूंगा कि भारत और इंग्लैण्ड के बीच में शान्तिपूर्ण समझौता हो सके।'

चूंकि अब लड़ाई खतम हो गई थी, कांग्रेस-कमिटियों व संस्थाओं पर से रोक उठा ली गई और वे फिर से जीवित हो गईं। कांग्रेस-संस्था उस जानवर की भांति है जो एक मौसम में तो मुर्दे की भांति पड़ा रहता है और मौसम के बदलते ही उसमें विशाल शक्ति आ जाती है। जैसे ही समझौते पर हस्ताक्षर हुए कि महासमिति के प्रधानमंत्री ने कांग्रेस के आगामी अधिवेशन में भाग लेनेवाले प्रतिनिधियों के चुनाव के बारे में अपनी सूचनायें कांग्रेसवादियों के पास भेजीं। कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि प्रत्येक जिले से दो प्रकार प्रतिनिधि चुने जायं। आधे प्रतिनिधियों का चुनाव तो वे व्यक्ति करें जिन्हें आन्दोलन में सजा मिल चुकी हो, और शेष आधों का चुनाव साधारण नियमों के अनुसार हो। इस सम्बन्ध में विस्तार-सहित कई हिदायतें जारी की गईं। जेल हो आने वालों का चुनाव एक सभा बुलाकर करना था। बंगाल के प्रतिनिधियों के चुनाव के निर्णायक श्री अणे नियत किये गये थे। उसी दिन कांग्रेसवादियों को यह भी हिदायत दी गई कि वे सविनय-अवज्ञा व करबन्दी-आंदोलनों को और ब्रिटिश-माल के बहिष्कार को बन्द करदें। लेकिन नशीली चीजों, सब विदेशी कपड़ों व शराब की दुकानों के बहिष्कार की इजाजत दे दी गई और उन्हें जारी रखने की भी हिदायत कर दी गई। साथ ही यह भी कहा गया कि पिकेटिंग शान्तिमय होना चाहिए, लेकिन उसमें दबाव न रहना चाहिए, विरोधी प्रदर्शन न होना चाहिए, जनता के मार्ग में रुकावट नहीं डाली जानी चाहिए, और देश के साधारण कानून के अन्तर्गत कोई अपराध नहीं किया जाना चाहिए। गैर-कानूनी समाचार-पत्रों के प्रकाशन बन्द करने का आदेश भी हुआ। वास्तव में समझौते की हरेक मद के सम्बन्धमें हिदायतें जारी की गईं और स्वयं गांधीजी ने उन आदेशों के साथ वे शर्तें जोड़ दीं जो शराब व विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग करते समय स्वयंसेवकों को माननी चाहिए। वे इस प्रकार थीं—

(१) दुकानदार या खरीदार के साथ अशिष्ट व्यवहार नहीं किया जा सकता।

(२) स्वयंसेवक दुकानों अथवा गाड़ी, मोटर आदि के सामने लेट नहीं सकते।

(३) 'हाय-हाय' जैसी आवाजें नहीं लगानी चाहिए।

(४) किसी का पुतला बनाकर गाड़ना या जलाना नहीं चाहिए।

(५) यदि बहिष्कार किया भी जाय, तो किसी दुकानदार या खरीदार की खाने-पीने की तथा अन्य सामग्री नहीं रोकी जा सकती। लेकिन उनके घर भोजन के लिए न जाना चाहिए और न उनकी कोई सेवा ग्रहण करनी चाहिए।

(६) उपवास तथा भूख-हड़ताल किसी हालत में भी न होने चाहिए। प्रतिज्ञा तोड़ने पर ही उपवास किया जा सकता है; और सो भी तब, जबकि दोनों ओर के आदमी एक-दूसरे का आदर व प्रेम करते हों।

आगे गांधी जी लिखते हैं—

"यदि किसी का दावा है कि इस तरह की मर्यादित पिकेटिंग से विदेशी कपड़े व शराब का बहिष्कार सफल नहीं हो सकता, तो मैं यही कहूंगा कि बहिष्कार असफल ही रहने दो। कहना होगा कि इस प्रकार के अविश्वासी लोगों को वास्तव में अहिंसा की उपयोगिता में विश्वास नहीं है। स्त्रियों को इस कार्य के लिए रखने का मेरा उद्देश्य यह था कि इन शर्तों का पूरा पालन हो और अहिंसा का वातावरण बने।

"यदि अहिंसा का वातावरण हर सूरत में लाया जा सके तो, मेरा विश्वास है, दोनों बहिष्कार चल सकते हैं। लेकिन यदि हम मर्यादा को पार कर जायं तो तात्कालिक परिणाम चाहे कितना ही अच्छा क्यों न हो, हमारे अन्दर कटुता का जहर घुस जायगा और फिर लड़ाई-झगड़ा शुरू हो सकता है और यदि हम गृह-युद्ध के शिकार हो जायं तो बहिष्कार हो ही नहीं सकता और स्वराज्य केवल स्वप्न-मात्र-ही रहेगा। यदि मेरी इन शर्तों को पूरा करके बहिष्कार सफल नहीं होता तो बहिष्कार के असफल होने की जिम्मेदारी मेरे ऊपर है और मैं उस जिम्मेदारी को लेने के लिए तैयार हूं।"

करांची-कांग्रेस

कार्य-समिति ने सरदार वल्लभभाई पटेल को करांची-कांग्रेस के सभापति-पद के लिए चुन लिया, क्योंकि करीब एक साल तक कांग्रेस की जो असाधारण परिस्थिति रही थी उसके कारण साधारण प्रणाली-द्वारा सभापति का चुनाव होना सम्भव न था।

करांची-कांग्रेस के लिए आवश्यक प्रबन्ध करना कोई आसान काम न था; क्योंकि यद्यपि १ मार्च के आसपास कार्य-समिति के सदस्यों के छूटने पर ही अधिवेशन का होना निश्चित-सा दिखाई देने लगा था, लेकिन अस्थायी-सन्धि के भाग्य ने करांची-कांग्रेस के प्रबन्धकों की स्थिति बड़ी असमंजस में डाल दी। एक सुभीता अवश्य था—और वह यह कि अब केवल गुलाबी जाड़े रह गये थे। लाहौर में कांग्रेस ने यह निश्चय किया था कि उसका अधिवेशन दिसम्बर में न होकर फरवरी या मार्च में हुआ करे। यह एक इत्तफाक की बात है कि कांग्रेस इस वर्ष अपना वार्षिक अधिवेशन मार्च के महीने में कर सकी, क्योंकि अस्थायी-संधि अभी हाल ही हो चुकी थी। अधिवेशन के मार्च में करने से पंडाल की भी कोई जरूरत नहीं रही, क्योंकि कांग्रेस अब खुले मैदान में हो सकती थी। केवल एक सभा-मञ्च और व्यासपीठ की जरूरत थी और जमीन के चारों ओर एक घेरा डालने की।

करांची-अधिवेशन के प्रबन्ध की सफलता का बहुत अधिक श्रेय करांची की म्युनिसिपैलिटी को था जिसने श्री जमशेद मेहता की अध्यक्षता व संचालकत्व में कार्य किया। कांग्रेस के खुले अधिवेशन के प्रारम्भ होने के पहले ही २५ मार्च को खुले मैदान में एक मीटिंग की गई; जिसमें चार आने की प्रवेश-फीस देने वाले गांधीजी को देख और उनका भाषण सुन सकते थे। इस प्रकार १०,०००) इकट्ठा हुआ। यह वही मीटिंग थी जिसमें गांधीजी ने यह वाक्य कहा था, जो अब प्रसिद्धि पा गया है, "गांधी भले ही मर जाय लेकिन गांधीवाद सदा जीवित रहेगा।"

सरदार वल्लभभाई पटेल ने अधिवेशन का सभापतित्व किया। आपने अपने छोटे-से अभिभाषण में सभापति चुने जाने पर कहा कि यह गौरव एक किसान को नहीं किन्तु गुजरात को, जिसने स्वतन्त्रता के युद्ध में एक बड़ा भाग लिया था, प्रदान किया गया है। आपने कहा कि यदि कांग्रेस ने गांधी-अर्विन-समझौता नहीं किया होता तो उसने अपने-आपको गलती में रख दिया होता। आपने समझौते का वास्तविक महत्व समझाते हुए यह बताया कि समझौते के रहते हुए कांग्रेसवादियों का क्या कर्तव्य है।

काले फूल

करांची-कांग्रेस जो एक सर्व-व्यापी आनन्दमयी छटा के साथ होने जारही थी, वास्तव में विषाद और सन्ताप की घनघोर घटा से घिरकर हुई। कांग्रेस के अधिवेशन के प्रारम्भ होने से पूर्व ही भारत के तीन नौजवान भगतसिंह, राजगुरु व सुखदेव फांसी के तख्ते पर चढ़ाये जा चुके थे। इन तीनों युवकों की आत्मायें उस समय कांग्रेस-नगर पर मंडराती हुई लोगों को शोक-सन्ताप में डुबो रही थीं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि यह वह समय था कि जब भगतसिंह का नाम भी भारत-भर में उतना ही जाना जाता था और उतना ही लोकप्रिय था जितना कि गांधीजी का। अधिकाधिक प्रयत्न करने पर भी गांधी जी इन तीन युवकों की फांसी की सजा रद नहीं करा सके थे। लेकिन जो लोग इन तीनों युवकों की जान बचाने के गांधीजी के प्रयत्नों की अभीतक प्रशंसा कर रहे थे, अब इस बात पर बेतहाशा नाराज होने लगे कि इन तीनों शहीदों के सम्बन्ध में पास किये जाने वाले प्रस्ताव की भाषा क्या हो। पंडित मोतीलाल नेहरू, मौलाना मुहम्मदअली, मौलवी मजहरुलहक, श्री रेवाशंकर झवेरी, शाह मुहम्मद जुबैर व गुरुनन्था मुदालियर की मृत्यु पर शोक प्रकाशित करने के पश्चात् सबसे पहले जिस प्रस्ताव पर विचार हुआ वह भगतसिंह के सम्बन्ध में ही था। इस प्रस्ताव में बहस व मतभेद की केवल यही बात थी कि भगतसिंह व उनके साथियों की वीरता और आत्म-त्याग की प्रशंसा करते हुए ये शब्द कि 'प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए' भी प्रस्ताव में जोड़े जायं या नहीं? हम वह प्रस्ताव नीचे देते हैं—

"प्रत्येक प्रकार की राजनैतिक हिंसा से अपने-आपको अलिप्त रखते हुए और उसका विरोध करते हुए यह कांग्रेस स्वर्गवासी सरदार भगतसिंह तथा उनके साथी श्री सुखदेव और श्री राजगुरु की वीरता और आत्म-त्याग की प्रशंसा करती है तथा उनके जीवन-नाश पर उनके दुःखित परिवारों के साथ स्वयं भी शोक का अनुभव करती है। कांग्रेस की राय में ये तीनों फांसियां अनियन्त्रित प्रति-हिंसा के कार्य हैं तथा प्राण-दण्ड रद करने के लिए की हुई सारे राष्ट्र की मांग का पद-दलन हैं। कांग्रेस की यह भी राय है कि सरकार ने दो राष्ट्रों में प्रेम स्थापित करने का, जिसकी इस समय निश्चय ही बहुत जरूरत थी, और उस दल को, जिसने हताश होकर राजनैतिक हिंसा के मार्ग का अवलम्बन किया है, शान्ति के उपाय से जीतने का अत्युत्तम अवसर खो दिया है।"

कांग्रेस ने अहिंसा के अपने सिद्धान्त को दृष्टि में रखते हुए बचत का जो यह वाक्य रक्खा था उसके सिवाय कांग्रेस और कुछ नहीं कर सकती थी; लेकिन इस वाक्य से युवकों का वह दल जो गांधीवाद में विश्वास नहीं करता था, अप्रसन्न था और उसकी ओर से उक्त वाक्यांश को निकाल देने के संशोधन पेश किये गये। स्वयंसेवकों के सम्मेलन ने तो उक्त प्रस्ताव को उसमें से वह वाक्य निकाल कर पास कर दिया। यह वाक्य बाद में प्रान्तीय-सम्मेलनों में खूब विवाद का कारण बन गया था। जब करांची में इस प्रस्ताव पर विचार हो रहा था तो हाते के बाहर उन कुछ युवक-मित्रों-द्वारा दंगा व हो-हुल्लड़ किया गया जिन्होंने एक दिन पूर्व प्रातःकाल स्टेशन पर, जब कि गांधीजी सरदार वल्लभ भाई पटेल के साथ करांची से १२ मील दूर ट्रेन से उतरे थे, काले झण्डों का प्रदर्शन किया था। गांधीजी ने अपने सहज-स्वभाव से उन युवकों के दल का स्वागत किया और बड़े अदब से उनके हाथों से काले फूल ले लिये। यह दल आया तो था उन पर हमला करने के लिए, लेकिन रह गया उनकी 'रक्षा' के लिए। वह गांधीजी व उनके दल के साथ स्टेशन से कुछ दूर तक गया।

दूसरा प्रस्ताव जिस पर कांग्रेस ने विचार किया, वह बन्दियों की रिहाई के बारे में था। उस

समय तक यह स्पष्ट हो चुका था कि बन्दियों की रिहाई के सम्बन्ध में सरकार केवल कंजूसों-जैसी नीति ही नहीं बरत रही है बल्कि उन वादों से भी मुकर रही है और उन शर्तों को भी तोड़ रही है जो उसने समझौते के सिलसिले में की थीं। इसलिए कांग्रेस ने अपना यह दृढ़ मत प्रकट किया कि 'यदि सरकार और कांग्रेस के समझौते का उद्देश्य ग्रेट ब्रिटेन और भारत में सद्भाव बढ़ाना है और यदि यह समझौता ग्रेट ब्रिटेन की शासनाधिकार छोड़ने की इच्छा को वास्तविकता में प्रकट करता है तो सरकार को चाहिए कि वह सब राजनैतिक बन्दियों, नजरबन्दों, तथा विचाराधीन बन्दियों को, जो समझौते की शर्तों में नहीं भी आते हैं, रिहा कर दे और उन सब राजनैतिक प्रतिबन्धों को हटा ले जो सरकार ने भारतीयों पर, चाहे वे भारत में हों या विदेशों में, उनके राजनैतिक विचारों या कार्यों के कारण, लगा रक्खी हैं।"

कांग्रेस ने सरकार को यह भी याद दिलाया कि 'यदि वह इस प्रस्ताव के अनुकूल कार्य करेगी तो जनता का वह रोष जो हाल की फांसियों के कारण उत्पन्न हो गया, कुछ कम हो जायगा।'

गणेशजी का बलिदान

भगतसिंह आदि की फांसियों के अलावा एक और कारण भी था जिसने करांची-कांग्रेस में उदासी के बादल छा दिये। जब इधर कांग्रेस का अधिवेशन हो रहा था, कानपुर में जोरों का हिन्दू-मुस्लिम-दंगा शुरू हो गया और श्री गणेशशंकर विद्यार्थी शान्ति व सद्भाव स्थापित करते और मुसलमानों को हिन्दुओं के रोष से बचाने के प्रयत्न में मारे गये। इस घटना ने कांग्रेस व देशको उसी प्रकार अपार शोकसागर में डुबो दिया जिस प्रकार कि सन् १९२६ में गोहाटी-कांग्रेस के अवसर पर स्वामी श्रद्धानन्द की हत्या ने किया था। कानपुर के दंगों के बारे में एक शब्द कहना अनुयुक्त न होगा। कानपुर कोई ऐसी जगह नहीं है जो साम्प्रदायिक कलहों के लिए बदनाम रही हो। १९०७ में एक इक्की-दुक्की मार-पीट हुई थी और फिर १९२८ व २९ में। कानपुर में अधिकतर हिन्दू ही रहते हैं जो कुल आबादी के ⅘ हैं। मुसलमान व अन्य जातियां मिलाकर कुल ⅕ होते हैं। भगतसिंह व उनके साथियों को लाहौर में २३ मार्च को फांसी दी गई थी। देश-भर में हड़तालें की गईं जिनमें बम्बई, करांची, लाहौर, कलकत्ता, मदरास व दिल्ली की हड़तालें शान्ति पूर्वक समाप्त हो गईं। कानपुर में हड़ताल पूरी नहीं हुई; तीनों शहीदों के चित्रों व काले झण्डों सहित एक बड़ा भारी मातमी जुलूस निकाला गया। हिन्दुओं ने तो अपनी दुकानें बन्द कर दीं, लेकिन मुसलमानों ने नहीं कीं। कुछ काल पहले जब मौ० मुहम्मदअली मरे थे उस समय हिन्दुओं ने भी मुसलमानों की हड़ताल में भाग नहीं लिया था। बस, अधिक कहने की जरूरत नहीं—चिंगारी भी मौजूद थी और बारूद का ढेर भी मौजूद था। २४ मार्च को हिन्दुओं की दुकानों का लूटना प्रारम्भ हो गया। २३ मार्च की रात को ही लगभग ५० व्यक्ति घायल कर दिये गये थे। २५ मार्च को अग्निकाण्ड प्रारम्भ हो गये। दुकानों और मन्दिरों में आग लगा दी गई और वे जल-जल कर खाक हो गये। पुलिस ने कोई सहायता नहीं दी। लूट-मार, मार-काट, अग्निकाण्ड व हुल्लड़बाजी का बाजार गरम हो गया। लग-भग ५०० परिवार अपने घर छोड़-छोड़ कर आस-पास के गांवों में जा बसे। डाक्टर रामचन्द्र का बड़ा बुरा हाल हुआ। उनके परिवार के सब व्यक्ति, मय उनकी स्त्री व बूढ़े माता-पिता के, दंगे में मारे गये और उनकी लाशें नालियों में ठूंस दी गईं। सरकारी अनुमान के अनुसार १६६ व्यक्ति मरे और ४८० घायल हुए। कांग्रेस ने बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन व अन्य कुछ मित्रों को शीघ्र ही कानपुर घटना-स्थल पर भेजा; लेकिन शान्ति के वातावरण को वापस लाना सहज न था। श्री गणेशशंकर विद्यार्थी २५ ता० से लापता थे। उनकी लाश का पता २९ ता० को जाकर लगा। उन्होंने उस

दिन कई मुसलमान परिवारों को बचाया था। पता चलता है कि उन्हें फसा कर किसी स्थान पर ले जाया गया था जहां वे बिना किसी संकोच के चले गये और फिर एक सच्चे सत्याग्रही की भांति क्रुद्ध भीड़ के सामने उन्होंने अपना सिर झुका दिया। यदि उनका लहू एकता स्थापित कर सकता और उन लोगों की प्यास बुझ सकती तो बखूबी उनके कत्ल का स्वागत किया जा सकता था। कांग्रेस ने इस शोकभरी घटना पर निम्न प्रस्ताव पास किया—

"इस उपद्रव में युक्तप्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के अध्यक्ष श्री गणेशशंकर विद्यार्थी की मृत्यु हो जाने से कांग्रेस को अत्यन्त दुःख हुआ है। विद्यार्थीजी अत्यन्त स्वार्थत्यागी देश-सेवकों में से थे और साम्प्रदायिक राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त होने के कारण सभी दलों और सम्प्रदायों के प्रेम-भाजन हो गये थे। उनके कुटम्बियों के साथ समवेदना प्रकट करते हुए कांग्रेस इस बात पर अभिमान प्रकट करती है कि प्रथम श्रेणी के एक राष्ट्रीय कार्यकर्ता ने खतरे में पड़े हुए लोगों के उद्धार तथा घोर उपद्रव और उन्मत्त उत्तेजना के समय शान्ति-स्थापना के प्रयत्न में अपने को बलिदान कर दिया।

"कांग्रेस सब लोगों से अनुरोध करती है कि इस बलिदान का उपयोग शान्ति की स्थापना तथा पुष्टि के लिए करें, प्रतिहिंसा का भाव जगाने के लिए नहीं। इस उद्देश्य से कांग्रेस एक कमिटी बना रही है जो वैमनस्य के कारणों की जांच करेगी और मेल कराने तथा आस-पास के स्थानों व जिलों में इस जहर को न फैलने देने के लिए जो-कुछ आवश्यक होगा करेगी।"

कांग्रेस ने डा० भगवानदास की अध्यक्षता में ६ सदस्यों की एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी ने किस प्रकार गवाहियां लीं, कानपुर का दौरा किया; आदि बातों में विस्तार से जाने की आवश्यकता नहीं। यहां इतना ही कहना काफी है कि कमिटी ने एक मोटी रिपोर्ट तैयार करके कार्य-समिति के सामने पेश की, जो बहुत दिनों बाद छापी गई, लेकिन सरकार ने उसका विवरण रोक दिया।

अन्य प्रस्ताव

इसके पश्चात् अस्थायी सन्धिवाला प्रस्ताव आता है जो एक मुकम्मिल चीज है। इसमें कांग्रेस का दृष्टि-कोण दर्शाने के साथ-साथ कांग्रेस की ओर से वह बात भी स्पष्ट कर दी गई जो गांधी-अर्विन-समझौते में अस्पष्ट, या कहिए सन्देहास्पद, समझी गई थी। समझौते में प्रयोग किये गये 'संरक्षण' (Reservations) शब्द की जगह 'घटा-बढ़ी' (Adjustments) शब्द रक्खा गया और 'भारतके हितमें 'संरक्षण' शब्दोंकी जगह घटा-बढ़ी, जो प्रत्यक्ष रूपसे भारतके हितमें हो' शब्दोंको रक्खा गया। गांधी-अर्विन-समझौते के कारण जो बात कम कर दी गई मानी जाने लगी थी, वह करांचीके प्रस्ताव के इन शब्दों से फिर जुड़ गई—अर्थात् अपने देशको सेना, परराष्ट्र, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक नीतिके सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त हो जायं। इस एक वाक्य में कांग्रेस का ध्येय दिया हुआ है। इसके बाद कांग्रेस ने उन सब व्यक्तियों को, खासकर महिलाओं को, बधाई दी जिन्होंने गत सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन में महान् कष्ट उठाये थे। कांग्रेस ने निश्चय किया कि वह ऐसा कोई शासन-विधान स्वीकार न करेगी जिसमें मताधिकार के सम्बन्धमें स्त्रियों व पुरुषों में भेद किया गया हो। अन्य प्रस्ताव तो इतने साफ हैं कि उनपर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। उनका सम्बन्ध रचनात्मक-कार्यक्रम से है और वे नीचे दिये जाते हैं—

"भारत-सरकार और कांग्रेस-कार्य-समिति के बीच जो अस्थायी-सन्धि हुई है उसपर विचार करके कांग्रेस उसका समर्थन करती है और यह स्पष्ट कह देना चाहती है कि कांग्रेस का पूर्ण-स्वराज्य प्राप्त करने का उद्देश्य ज्यों-का-त्यों बना हुआ है। यदि ब्रिटिश-भारत के प्रतिनिधियों के किसी सम्मेलन में कांग्रेस के प्रतिनिधियों के जाने के मार्ग में दूसरे प्रकार की रुकावटें न रह जांय (और कांग्रेस के प्रतिनिधि उस सम्मेलन में शरीक हों), तो कांग्रेस के प्रतिनिधि अपने उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए

प्रयत्न करेंगे—खासकर इसलिए कि अपने देश को सेना, परराष्ट्र, राष्ट्रीय आय-व्यय तथा आर्थिक-नीति के सम्बन्ध में अधिकार प्राप्त हो जायँ, भारतवर्ष की ब्रिटिश-सरकार ने जो लेन-देन किये हैं उनकी जाँच होकर इस बात का निपटारा हो जाय कि भारत और इंग्लैण्ड इन दोनों में से कोई भी जब चाहे तब एक-दूसरे से अलग हो जाय। कांग्रेस के प्रतिनिधियों को इस बात की स्वतन्त्रता रहेगी कि इसमें ऐसी घटा-बढ़ी करें जो भारतवर्ष के हित के लिए प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक सिद्ध हो।

"महात्मा गांधी को कांग्रेस गोलमेज-परिषद् के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त करती है और उनके अतिरिक्त जिन्हें कांग्रेस-कार्य-समिति नियुक्त करेगी वे भी महात्माजी के नेतृत्व में सम्मेलन में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे।"

पीड़ित सत्याग्रहियों को बधाई—"गत सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में जिन लोगों ने कैद, गोली, संगीन, लाठी, निर्वासन आदि के द्वारा महान् कष्ट उठाये हैं अथवा जब्ती, लूट, जलाने या दमन के अन्य प्रकारों से सम्पत्ति की हानि उठाई है, उन्हें यह कांग्रेस बधाई देती है। कांग्रेस विशेष कर भारत की स्त्रियों को धन्यवाद देती है जिन्होंने हजारों की संख्या में निकलकर राष्ट्र को स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उद्योग में सहायता दी, तथा उन्हें विश्वास दिलाती है कि कांग्रेस कोई ऐसा शासन-विधान स्वीकार न करेगी जिसमें स्त्रियों और पुरुषों में भेद किया गया हो।"

साम्प्रदायिक उपद्रव—"बनारस, मिर्जापुर, आगरा, कानपुर तथा अन्य स्थानों के साम्प्रदायिक दंगों को यह कांग्रेस भारतीय-स्वतन्त्रता के उद्योग में परम-घातक समझती है तथा उन लोगों की निन्दा करती है जो ऐसे दंगे करते या कराते हैं, अथवा झूठी अफवाहें उड़ाते हैं। शान्ति-भंग करानेवाली उनकी कार्रवाइयों को कांग्रेस अति निन्दनीय समझती है। आग से या अन्य प्रकार से सम्पत्ति के नाश से तथा नागरिकों की ओर विशेषकर स्त्रियों-बच्चों की हत्या से कांग्रेस को बहुत ही दुःख हुआ है, तथा इस बर्बरता के शिकार बनकर भी जो अभी जीवित हैं उनसे और मृत-व्यक्तियों के परिवारों के साथ वह हार्दिक समवेदना प्रकट करती है।"

पूर्ण मद्य-निषेध—"शराब की बिक्री बिलकुल बन्द करने के लक्ष्य की ओर गत बारह महीनों में राष्ट्र के अग्रसर होने के स्पष्ट चिन्ह देखकर इस कांग्रेस को परम-सन्तोष हुआ है और वह समस्त कांग्रेस-संस्थाओं को आज्ञा देती है कि शराब के विरोध में नवीन उत्साह के साथ फिर से आन्दोलन करें तथा आशा करती है कि देश की स्त्रियाँ शराबियों और नशाखोरों को अपने शरीर, आत्मा और गृह-सुख का सर्वनाश करने से रोकने में दूने उत्साह से काम करेंगी।"

खद्दर और बहिष्कार—"पिछले दस वर्षों के भीतर सैकड़ों गाँवों में काम करने से जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे यह बात अत्यन्त स्पष्ट हो गई है कि साधारण जनता की गरीबी दिन-दिन बढ़ती जाने का एक कारण यह भी है कि फुरसत के समय के लिए लोगों के पास कोई सहायक-धन्धा न होने से उनको लाचार होकर बेकार रहना पड़ता है, और केवल चर्खा ही ऐसी चीज है जो इस अभाव को व्यापक-रूप में पूरा कर सकती है। यह भी देखने में आया है कि चरखा और फलतः खद्दर को भी छोड़ देने के बाद लोग विदेशी या देशी मिल का कपड़ा खरीदते हैं जिससे गाँवों का पैसा दो तरह से छीना जाता है—उनकी कमाई भी कम हो जाती है और कपड़े के लिए पास से पैसा भी देना पड़ता है। इस दुहेरे धन-शोषण को रोकने का एकमात्र उपाय यही है कि विदेशी कपड़े और सूत का बहिष्कार किया जाय और उनकी जगह खद्दर का उपयोग किया जाय। देशी मिलें केवल आवश्यकतानुसार खद्दर की कमी की पूर्ति करें। अतः यह कांग्रेस सर्व-साधारण से अनुरोध करती है कि विलायती कपड़ा खरीदने से परहेज करें और विलायती कपड़े तथा सूत

का रोजगार करने के उस व्यवसाय को छोड़ दें जिससे करोड़ों ग्रामवासी जनता की भारी हानि हो रही है।

"और यह कांग्रेस सम्पूर्ण कांग्रेस-कमिटियों और उनसे सम्बन्ध रखनेवाली दूसरी संस्थाओं को आदेश करती है कि खादी के लिए जोर-शोर से प्रचार शुरू करके विदेशी-बहिष्कार को और जोरदार बनावें।

"कांग्रेस रियासतों से अनुरोध करती है कि वे इस रचनात्मक-उद्योग में शामिल हों और विलायती कपड़े तथा सूत को अपनी सीमा के अन्दर न घुसने दें।

"कांग्रेस देशी मिलों के मालिकों से अनुरोध करती है कि वे नीचे लिखे कार्य करके इस महान् रचनात्मक तथा आर्थिक-उद्योग को सहायता पहुँचावें—

(१) खुद हाथ कते सूत का व्यवहार करके ग्रामवासियों के सहायक-धन्धे चरखे को अपनी नैतिक पुष्टि दें।

(२) ऐसा कपड़ा बनाना बन्द कर दें जो किसी प्रकार खद्दर से प्रतियोगिता कर सकता हो और इस विषय में चरखा-संघ की कोशिशों में उसका साथ दें।

(३) अपने माल का दाम जहाँ तक हो सके कम-से-कम रक्खें।

(४) अपने माल में विलायती सूत, रेशम या नकली रेशम का व्यवहार न करें।

(५) दुकानदारों के पास जो विलायती माल पड़ा हुआ है उसको ले लें और उसके बदले में स्वदेशी माल देकर उन्हें अपने व्यवसाय को स्वदेशी बना लेने में सहायता दें और उनसे लिये हुए विलायती कपड़े को फिर विदेश भेजने का प्रबन्ध करें।

(६) मिल-मजदूरों का दरजा ऊपर उठावें और उन्हें यह समझने का मौका दें, कि वे नफे और नुकसान दोनों में उनके हिस्सेदार हैं।

"बड़े-बड़े विदेशी कोठीवालों को कांग्रेस की यह सूचना है कि यदि वे इस बात को मान लें कि विदेशी वस्त्र का बहिष्कार भारत के आर्थिक कल्याण के लिए आवश्यक है, और ऐसा विदेशी व्यापार छोड़ दें जिसके सम्बन्ध में सबकी यह राय है कि उससे भारतीय-जनता की आर्थिक हानि होती है, तथा ऐसे व्यापार की ओर ध्यान दें जो उनके अपने हित के सिवा इस राष्ट्र के लिए भी हितकर हो, तो वे अन्तर्राष्ट्रीय-बन्धुत्व को प्रोत्साहन देंगे और व्यापारिक नीति-शास्त्र को भी बहुत अधिक उन्नत करेंगे।"

शान्तिमय-धरना—"विदेशी वस्त्र और मादक-द्रव्यों की बिक्री के बहिष्कार में जो सफलता प्राप्त हुई है उसे यह कांग्रेस हर्ष की दृष्टि से देखती है तथा कांग्रेस-संस्थाओं को आज्ञा देती है कि शान्तिमय धरने के सम्बन्ध में ढिलाई न करें, बशर्ते कि यह धरना पूरी तौर से समझौते की उन शर्तों के अनुसार हो जो इस सम्बन्ध में सरकार और कांग्रेस में हुआ है।"

सीमा-सम्बन्धी नीति की निन्दा—"यह कांग्रेस घोषणा करती है कि भारत के लोगों का अन्य देशों और भारत की सीमा के उस पार रहनेवाले लोगों से कोई झगड़ा नहीं है और वे सबसे मित्रता करना और बनाये रखना चाहते हैं। उत्तर-पश्चिमी सीमा पर ब्रिटिश सरकार जिस नीति से चल रही है और जो आगे बढ़ने की नीति ('फारवर्ड पालिसी') कहलाती है उसे और सीमा पर के लोगों की स्वतन्त्रता-हरण करने के साम्राज्यवादियों के उद्योग को कांग्रेस पसन्द नहीं करती। कांग्रेस का यह हार्दिक मत है कि भारत की सेना और सम्पत्ति इस नीति को सफल करने में न लगाई जाय और सीमान्त-वासियों के मुल्क पर जो फौजी-कब्जा किया गया है वह उठा लिया जाय।"

सीमा-प्रांत का स्वत्व—"चूंकि कहा जाता है कि सीमा-प्रान्त से इस आशय का प्रचार किया जा रहा है कि उस प्रान्त के सम्बन्ध में कांग्रेस के विचार अच्छे नहीं हैं तथा यह वाञ्छनीय है कि इस सन्देह को कांग्रेस दूर कर दे, अतः यह कांग्रेस अपनी यह राय दर्ज करती है कि शासन-विषयक भावी-योजना में उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त को भारत के अन्य प्रान्तों के समान ही शासनाधिकार मिलना चाहिए।"

वर्मा का पृथक्करण—"कांग्रेस यह स्वीकार करती है कि वर्मा-वासियों को इस बात का अधिकार है कि वे यदि चाहें तो भारतवर्ष से अलग होकर एक स्वतन्त्र वर्मन-राज कायम करें या स्वतन्त्र-भारत का एक पूर्णाधिकार-प्राप्त अंग बनकर रहें और जब चाहें तब उन्हें भारतवर्ष से अलग हो जाने का अधिकार रहे, तथापि वर्मा-वासियों को अपना मत प्रकट करने का पूर्ण अवसर दिये बिना और उनके निर्वाचित-प्रतिनिधियों की इच्छा के विरुद्ध बर्मा को जबरन् भारत से अलग करने की ब्रिटिश-सरकार की चेष्टा की यह कांग्रेस निन्दा करती है। मालूम होता है कि यह प्रयत्न जान-बूझ कर इस उद्देश्य से किया जा रहा है कि वहां ब्रिटिश-प्रभुत्व बना रहे, जिसमें वर्मा और सिंगापुर, जहां मिट्टी का तेल बहुत निकलता है और जो सैनिक-दृष्टि से बड़े महत्व का स्थान है, मिलकर पूर्वी-एशिया में ब्रिटिश-साम्राज्यवादियों का मजबूत अड्डा बन जाय। यह कांग्रेस इस नीति का घोर विरोध करती है जिसका नतीजा यह हो कि वर्मा एक ब्रिटिश-शासित देश बना रहे और उसकी प्राकृतिक सम्पत्ति से ब्रिटिश-साम्राज्य-वादियों का उद्देश्य सिद्ध होता रहे और इस प्रकार वह स्वतन्त्र-भारत तथा पूर्व के अन्य राष्ट्रों के लिए एक खतरा बना रहे। कांग्रेस चाहती है कि वर्मा की सरकार को जो विशेष अधिकार दिये गये हैं वे वापस ले लिये जायं और उसकी यह घोषणा भी रद कर दी जाय, कि वर्मा की प्रतिनिधि-मूलक और महत्वपूर्ण राष्ट्रीय-संस्थाएं गैर-कानूनी हैं, ताकि वहां की अवस्था पुनः स्वाभाविक हो जाय और वर्मा के भविष्य पर उसके अधिवासी शान्त वातावरण में बिना रोक-टोक के विचार कर सकें और अन्त में वर्मा के अधिवासियों की इच्छा की विजय हो।"

दक्षिण तथा पूर्व-अफ्रीका के भारतीय—"दक्षिण अफ्रीका और पूर्व-अफ्रीका की घटनाओं के रुख देखकर उस देश में बसे हुए भारत-सन्तानों की अवस्था के सम्बन्ध में यह कांग्रेस सशंक हो रही है। दक्षिण-अफ्रीका में जो कानून बनाने का विचार हो रहा है वह दिये हुए वचनों के विरुद्ध है और कुछ अंशों में भारतीयों के कानूनी ~~हकों पर~~ भी हमला करता है। यह कांग्रेस उन देशों की सरकारों से अपील करती है कि वे वहां भारतीयों के साथ वैसा ही व्यवहार करें जैसा वे अपने देश-वासियों के साथ स्वतन्त्र भारत में चाहते हैं। दीन-बन्धु एण्डरूज और पण्डित हृदयनाथ कुंजरू प्रवासी भारतीयों की निःस्वार्थ रूप से जो सहायता कर रहे हैं उसके लिए कांग्रेस उन्हें धन्यवाद देती है।"

मौलिक अधिकार का प्रस्ताव

यहां यह कह देना बाकी है कि 'मौलिक अधिकारों व आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव कार्य-समिति के सामने कुछ यकायक तौर पर पेश हुआ था। यह एक अनुभव से जानी गई बात है कि देश में जैसा वातावरण रहता है उसी के अनुसार कांग्रेस में प्रस्ताव पेश होते हैं। मौलिक अधिकारों का प्रश्न सबसे पहले श्री चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य ने पंजाब के ठिरठिराते हुए जाड़े में आधी रात को अमृतसर-कांग्रेस में उठाया था। जब दूसरे साल नागपुर में कांग्रेस-अधिवेशन के वे स्वयं सभापति बने तो इस प्रश्न को और महत्व मिल गया। करांची में युवक-वर्ग तथा प्रौढ़-वर्ग में इस प्रश्न पर कुछ मतभेद-सा था। ऐसे आदमी मौजूद थे जो इस बात पर सन्देह करते हुए नहीं चूकते थे कि क्या अब कांग्रेस 'औपनिवेशिक स्वराज्य', ब्रिटिश-साम्राज्यवाद व काली-नौकरशाही की लहर में फिर नहीं

वही जा रही है और मजदूरों व किसानों की समस्या व समाजवादी विचार हवा में उड़ रहे हैं ? इस विषय पर देश को आश्वासन दिलाने की जरूरत थी। गांधीजी हर विषय पर विचार करने के लिए तैयार थे, यदि वह सत्य व अहिंसा पर अवलम्बित हो, और फिर यह तो गांववालों और गरीब लोगों का विषय था। ऐसी हालत में समाजवादी आदर्श, आर्थिक-परिवर्तन व मौलिक अधिकारों के प्रश्न से हिचकने की उन्हें क्या जरूरत थी ?

यह भी सोचा गया कि इतने महत्वपूर्ण प्रश्न पर फुरसत के साथ विचार होना चाहिए था और कार्य-समिति व महासमिति के सदस्यों-द्वारा उसका अध्ययन-मनन होना चाहिए। यह सलाह मान ली गई और इसलिए महासमिति को अधिकार दिया गया कि प्रस्ताव के सिद्धान्तों व उसकी नीति को आघात पहुँचाये बिना उसमें रद्दो-बदल करे। बम्बई में, अगस्त १९३१ में, महा-समिति ने मूल प्रस्ताव में कुछ परिवर्तन किये। उसके बाद उसे जो रूप प्राप्त हुआ उसीमें उस प्रस्ताव को हम नीचे देते हैं—

"इस कांग्रेस की राय है कि कांग्रेस जिस प्रकार के 'स्वराज्य' की कल्पना करती है उसका जनता के लिए क्या अर्थ होगा—इसे वह ठीक-ठीक जान जाय, इसलिए यह आवश्यक है कि कांग्रेस अपनी स्थिति इस प्रकार प्रकट करदे जिसे वह आसानी से समझ सके। साधारण जनता की तबाही का अन्त करने के उद्देश्य से यह आवश्यक है कि राजनैतिक स्वतन्त्रता में लाखों भूखों मरनेवालों की वास्तविक आर्थिक स्वतन्त्रता भी निहित हो इसलिए यह कांग्रेस घोषित करती है कि उसकी ओर से स्वीकृत होनेवाले किसी भी शासन-विधान में नीचे लिखी बातोंकी व्यवस्था रहनी चाहिए, या स्वराज्य-सरकार को इस बात का अधिकार होना चाहिए कि वह उनकी व्यवस्था कर सके—

मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य—१. (१) भारत के प्रत्येक नागरिक को प्रत्येक विषय में, जो कि कानून और सदाचार के विरुद्ध न हो, अपनी स्वतन्त्र राय प्रकट करने, स्वतन्त्र संस्थायें और संघ बनाने और बिना हथियार के और शान्तिपूर्वक एकत्र होने का अधिकार है।

(२) भारत के प्रत्येक नागरिक को, अन्तरात्मा का अनुसरण करने और सार्वजनिक शान्ति और सदाचार में बाधक न होनेवाले, धार्मिक विश्वास और आचरण की स्वतन्त्रता है।

(३) अल्पसंख्यक जातियों और भिन्न-भाषा-भाषी वर्ग की संस्कृति, भाषा और लिपि की रक्षा की जायगी।

(४) भारत के सब नागरिक, कानून की दृष्टि में बिना किसी धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के भेद-भाव के समान हैं।

(५) सरकारी नौकरियों, अधिकार और सम्मान के ओहदों और किसी भी व्यापार या धन्धे के करने में किसी भी नागरिक स्त्री-पुरुष को धर्म, जाति, विश्वास अथवा लिंग के कारण अयोग्य नहीं ठहराया जायगा।

(६) सरकारी अथवा सार्वजनिक खर्च से बने अथवा नागरिकों-द्वारा सार्वजनिक उपयोग के लिए समर्पित कुओं, सड़कों, पाठशालाओं और सार्वजनिक आवागमन के स्थानों के सम्बन्ध में सब नागरिकों के समान अधिकार और कर्त्तव्य हैं।

(७) हथियार रखने के सम्बन्ध में बनाये गये नियम और मर्यादा के अनुसार प्रत्येक नागरिक को हथियार रखने और धारण करने का अधिकार है।

(८) कानूनी आधार के बिना किसी तरह किसी भी मनुष्य की स्वतन्त्रता न छीनी जायगी, और न किसी के घर और जायदाद में प्रवेश और कुर्की या जब्ती की जायगी।

(९) सरकार सब धर्मों के प्रति तटस्थ होगी।

(१०) बालिग उमर के तमाम मनुष्यों को मताधिकार होगा।

(११) राज्य मुफ्त और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।

(१२) सरकार किसी को खिताब न देगी।

(१३) मौत की सजा उठा दी जायगी।

(१४) भारत का प्रत्येक नागरिक भारत-भर में भ्रमण करने, उसके किसी भाग में ठहरने या बसने, जायदाद खरीदने और कोई भी व्यापार या धंधा करने में स्वतन्त्र होगा और कानूनी कार्रवाई और रक्षा के विषय में, भारत के सब भागों में, उसके साथ समानता का व्यवहार होगा।

श्रमिक—२. (अ) आर्थिक जीवन के संगठन में न्याय के सिद्धान्त अवश्य सन्निहित होने चाहिए कि जिससे जीवन-निर्वाह का एक उपयुक्त स्टैण्डर्ड प्राप्त हो जाय।

(ब) सरकार कारखानों के मजदूरों के स्वार्थों की रक्षा करेगी और उपयुक्त कानून-द्वारा एवं अन्य उपायों से उनके जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी, काम के लिए आरोग्यप्रद परिस्थिति, मजदूरी के घण्टों की मर्यादा, मालिकों और मजदूरों के बीच झगड़ों के निपटारे के लिए उपयुक्त साधन और बुढ़ापा, बीमारी तथा बेकारीके आर्थिक परिणामों के विरुद्ध रक्षा का उपाय करेगी।

३. दासत्व या लगभग दासत्व-जैसी दशा से मजदूर मुक्त होंगे।

४. मजदूर-स्त्रियों की रक्षा और प्रसूति-काल के लिए पर्याप्त-छुट्टी का विशेष प्रबंध होगा।

५. स्कूल में जा सकने योग्य आयु के लड़के खानों और कारखानों में नौकर न रक्खे जायंगे।

६. किसान और मजदूरों को अपने हितों की रक्षा के लिए संघ बनाने के अधिकार होंगे।

कर और व्यय—७. जमीन की मालगुजारी और लगान का तरीका बदला जायगा और छोटे किसानों को वर्तमान कृषि-कर और मालगुजारी में तुरन्त और यदि आराजी से लाभ न होता हो तो आवश्यक समय तक के लिए छूट देकर या उससे मुक्त करके कृषकों के बोझ का न्याययुक्त निपटारा किया जायगा, और इसी उद्देश्य से लगान-अदायगी की उक्त मुक्ति और भूमि-कर की कमी से छोटी जमीनों के मालिकों को होनेवाली हानि की पूर्ति एक निश्चित तादाद से अधिक की भूमि की मूल आय पर क्रमशः बढ़नेवाला कर लगाकर की जायगी।

८. एक न्यूनतम निश्चित रकम के अलावा की जायदाद पर क्रमागत विरासत-कर लिया जायगा।

९. फौजी खर्च में बहुत अधिक कमी की जायगी, जिससे कि वर्तमान व्यय से वह कम-से-कम आधा रह जायगा।

१०. मुल्की-विभाग के व्यय और वेतन में बहुत कमी की जायगी। खास तौर पर नियुक्त किये गए विशेषज्ञ अथवा ऐसे ही व्यक्ति के सिवा राज्य के किसी भी नौकर को, एक निश्चित रकम के सिवा, जोकि आम तौर पर ५००) मासिक से अधिक न होनी चाहिये, अधिक वेतन न दिया जायगा।

११. हिन्दुस्तान में बने हुए नमक पर कोई कर नहीं लिया जायगा।

आर्थिक और सामाजिक कार्यक्रम—१२. राज्य देशी कपड़े की रक्षा करेगा; और इसके लिए ब्रिटिश वस्त्र और सूत को देश में न आने देने की नीति और आवश्यक अन्य उपायों का अवलम्बन करेगा। राज्य अन्य देशी धन्धों की भी, जब कभी आवश्यक होगा, विदेशी प्रतियोगिता से रक्षा करेगा।

१३. औषधियों के काम के सिवा, नशीले पेय और पदार्थ सर्वथा बन्द कर दिये जायंगे।

१४. हुण्डावन और विनिमय का नियंत्रण राष्ट्र-हित के लिए होगा।

१५. मुख्य उद्योगों और विभागों, खनिज साधनों, रेलवे, जल-मार्ग, जहाजरानी और सार्वजनिक आवागमन के अन्य साधनों पर राज्य अपना अधिकार और नियन्त्रण रक्खेगा।

१६. कृषकों के ऋण से उद्धार के उपाय और प्रत्यक्ष रूप से लिये जाने वाले ऊंचे दर के व्याज पर सरकार का नियन्त्रण होगा।

१७. नियमित सेना के सिवा, राष्ट्र-रक्षा का साधन संगठित करने के लिए राज्य नागरिकों की सैनिक शिक्षा की व्यवस्था करेगा।"

गांधीजी—एकमात्र प्रतिनिधि

गांधी-अर्विन समझौते की सफलता व इससे भी अधिक करांची के प्रस्तावों की सफलता गांधीजी व कांग्रेस के भारी बोझों को और भी अधिक बोझीला बनाती गई। करांची-कांग्रेस में एक-दो महत्वपूर्ण प्रश्न ऐसे रह गए थे जिन्हें वह नहीं निवटा सकी थी और जिन्हें उसने कार्य-समिति व महा-समिति के लिए छोड़ दिया था। सिक्खों ने राष्ट्रीय झण्डे व उसमें उनके लिए समाविष्ट किये जानेवाले रंग के प्रश्न को उठाया। यह प्रश्न पहले लाहौर में भी उठाया जा चुका था; करांची में इसे और भी अधिक महत्व मिला। चूंकि कांग्रेस का अधिवेशन ऐसी तफसील पर विस्तार-सहित विचार नहीं कर सकता था, उसे कांग्रेस की कार्य-समिति के सुपुर्द किया गया। नई कार्य-समिति ने, जिसकी बैठकें १ व २ अप्रैल को हरचन्द्रराय-नगर में हुई, इस आपत्ति की जांच कराने के लिए कि राष्ट्रीय-झण्डे के रंग साम्प्रदायिक आधार पर निर्धारित किये गये हैं अथवा नहीं, और यह सिफारिश करने के लिए कि कांग्रेस कौन सा झण्डा स्वीकृत करे, एक कमिटी नियुक्त करने का निश्चय किया। कमिटी को गवाहियां लेने का अधिकार दिया गया और जुलाई १९३१ से पहले उसकी रिपोर्ट मांगी गई। दूसरा विषय जिसपर करांची में कांग्रेसी क्षुब्ध हो रहे थे, वह जोरों से फैली व उड़ती हुई यह खबर थी कि स्वर्गीय सरदार भगतसिंह और श्री राजगुरु व सुखदेव की लाशों को चीर-फाड़ डाला गया था, उन्हें ठीक तरह नहीं जलाया गया और उसके साथ अन्य अपमानजनक व्यवहार किया गया। इन अभियोगों की फौरन जांच करने के लिए और ३० अप्रैल से पहले-पहले अपनी रिपोर्ट कार्य-समिति को पेश करने के लिए कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की। यहां हम यह कह देना चाहते हैं कि यह कमिटी खास-तौर पर भगतसिंह के पिता के आग्रह पर नियुक्त की गई थी, लेकिन न तो उन्होंने इस सम्बन्ध में कोई शहादत पेश की और न खुद कमिटी के सामने पेश हुए और न कमिटी को और किसी प्रकार की सहायता कर सके। इसलिए कमिटी कुछ भी न कर सकी। हम यह बता चुके हैं कि कांग्रेस ने किस प्रकार जल्दी में 'मौलिक अधिकार व आर्थिक व्यवस्था' वाला प्रस्ताव पास किया था। इस लिए प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों तथा अन्य संस्थाओं व व्यक्तियों से उक्त प्रस्ताव पर सम्मतियां प्राप्त करने और ३१ मई तक अपनी रिपोर्ट पेश करने के लिए कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की, जिससे कि प्रस्ताव को अधिक पूर्ण और विस्तृत बनाया जा सके और उसमें आवश्यक परिवर्तन व संशोधन किये जासकें। हम देख चुके हैं कि कांग्रेस वर्षों से इस बात पर जोर देती आई है कि ब्रिटेन ने भारत में जो खर्चे किये हैं व उसके लिए जो कर्जे लिये हैं उनकी एक निष्पक्ष पंच-द्वारा जांच हो। इस विषय पर जो वाद-विवाद व द्वन्द्व होना लाजिमी था उसके लिए अपने तीर-तरकस तैयार रखना जरूरी ही था। इसलिए ईस्ट-इण्डिया कम्पनी व ब्रिटिश-सरकार-द्वारा भारत में किये गये आर्थिक खर्चों व भारत के राष्ट्रीय कर्जे की छान-बीन करने के लिए और इस बात की

रिपोर्ट पेश करने के लिए कि भविष्य में भारत कितना आर्थिक बोझा सहे, कार्य-समिति ने एक कमिटी नियुक्त की। कमिटी से प्रार्थना की गई कि मई के अन्त तक वह अपनी रिपोर्ट पेश करे। एक कमिटी और भी नियुक्त की गई—वास्तव में यह केवल कमिटी नहीं थी बल्कि एक शिष्ट-मण्डल था—जिसके गांधीजी, वल्लभभाई व सेठ जमनालाल बजाज सदस्य थे। यह शिष्ट-मण्डल इसलिए नियुक्त किया गया था कि वह साम्प्रदायिक समस्या को निबटाने के लिए मुसलमान नेताओं से मिले। कांग्रेस के तीसरे प्रस्ताव के अनुसार जिन राजबन्दियों की रिहाई चाही गई थी उनके बारे में सब प्रांतों से सामग्री एकत्र करने के लिए श्री नरीमैन को नियुक्त किया गया। अपनी बैठक समाप्त करने से पूर्व सबसे अन्त में कार्य-समिति ने जिस प्रश्न को निबटाया वह था गोल-मेज-परिषद् को भेजे जानेवाले कांग्रेसी शिष्ट-मण्डल का। कार्य-समिति के कई सदस्यों की राय थी कि शिष्ट-मण्डल केवल एक व्यक्ति का न हो किन्तु लगभग १५ सदस्यों का हो। सरकार तो २० सदस्यों तक के लिए खुशी से राजी थी। उसकी दृष्टि से तो एक सदस्य के बजाय १५ या २० सदस्यों का होना ही अधिक लाभदायक था। जब कार्य-समिति में विवाद चला तो यह बात साफ़ कर दी गई कि गांधीजी लन्दन शासन-विधान की तफसीलें तय करने के लिए नहीं बल्कि सन्धि की मूल बातें तय करने के लिए जा रहे हैं। जब यह बात साफ करदी गई तो मतभेद दूर हो गया और सदस्यों की यह सर्वसम्मत राय बन गई कि भारत का प्रतिनिधित्व केवल गांधीजी को करना चाहिए। यह निर्णय केवल सर्वसम्मत ही नहीं था बल्कि इसमें किसीको कोई उज्र भी न था; क्योंकि भारत का प्रतिनिधित्व कई व्यक्तियों के बजाय एक व्यक्ति करे, यह ज्यादा अच्छा था। यह कांग्रेस के लिए एक महान नैतिक लाभ भी था, क्योंकि जैसे युद्ध-संचालन में उसने एकता का परिचय दिया वैसे ही सन्धि की शर्तें तय करने में यह उनके नेतृत्व की एकता का परिचायक था। कांग्रेस का नेतृत्व एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होना ही, जिसका निज का कोई स्वार्थ न हो और जिसे मनुष्य-जाति की प्रसन्नता, उसके सद्भाव व उसकी शांति के अलावा और कोई भौतिक इच्छा न हो, नैतिक-क्षेत्र में स्वयं एक ऐसा लाभ था जिसका ठीक मूल्य आंकना कठिन है। इस तरह भारत का एक अर्ध-नग्न फ़क़ीर न केवल वाइसराय-भवन (दिल्ली) की सीढ़ियां चढ़ता-उतरता था बल्कि ठेठ सेंट जेम्स पैलेस-भवन में भी बराबरी के नाते सन्धि-चर्चा करने बैठा था। ब्रिटेन की प्रतिष्ठा को इससे क्या कम धक्का पहुंचा होगा ?

२

समझौते का भंग

समझौता और उसके बाद

संघर्ष व संग्राम खतम हो गया था। जिन कांग्रेस-कमिटियों की कल तक कोई हस्ती न थी, वे उन वृक्षों की तरह सब स्थानों पर फिर अपनी बहार पर आगई, जो पहले मुरझाये और सूखे हुए दीखते हैं लेकिन वसन्त में फिर हरे-भरे हो जाते हैं। एक बार फिर कांग्रेसी-झण्डा कांग्रेस के दफ्तरों व कांग्रेसियों के घरों पर लहराने लगा। कांग्रेस के अधिकारी एक बार फिर पुलिस से एक-एक कागज और कपड़े को वापस लेने का दावा करने लगे, जो पहले जब्त कर लिये थे और उनसे ले लिये गये थे। एक बार फिर स्वयंसेवक-गण बिल्ले, तमगे और पेटी लगाये अपनी अर्ध-सैनिक या राष्ट्रीय पोशाक में झण्डे हाथ में लिये माला पहने राष्ट्रीय गीत गाते हुए जुलूस निकालने लगे, एक क्षण पूर्व जिनका निकलना निषिद्ध था।

सबसे बढ़कर कांग्रेस के लोग, छोटी-छोटी बालिकायें और बालक, वयस्क स्त्री-पुरुष शराब और विदेशी कपड़े की दुकानों पर पिकेटिंग लगाकर लोगों को शराब न पीने और विदेशी कपड़े से तन-न ढकने की शिक्षा देने लगे और ये सब बातें उसी सिपाही की आंख के सामने होने लगीं जो कल इन लोगों पर भेड़िये की तरह टूटता था, लेकिन आज वह कुछ कर न सकता था। पुलिस के निम्न कर्मचारी इतने आत्म-समर्पण से सन्तुष्ट नहीं थे। मजिस्ट्रेटों की भी कृपा-दृष्टि इसपर न थी। सिविलियन भी यह अनुभव कर रहे थे कि उनकी पगड़ी गिर गई है और नौकरशाही सरकार यह समझ रही थी कि उसने तो सब कुछ खो दिया है। कानून और अमन के ठेकेदार बननेवाले निराशा और पराजय का अनुभव कर रहे थे। कैदी रोज छोड़े जा रहे थे। उन्हें मालायें पहनाई जातीं थीं, उनके जुलूस निकाले जाते थे। वे भाषण देते थे। उनके भाषणों में सदा ही विवेक नहीं वर्ता जाता था, और न शायद नम्रता ही रहती थी। अब उनके व्याख्यानों में विजय की ध्वनि और ललकार की भावना होती थी। कांग्रेस का लोहा मानने की नौबत आ गई थी। कांग्रेस के पदाधिकारी एक स्थान पर एक कैदी की रिहाई की मांग करते थे तो दूसरी जगह जायदाद वापसी की मांग करते थे और तीसरी जगह किसी सरकारी नौकर को फिर बहाल करने पर जोर देते थे। १८ अप्रैल को लार्ड अर्विन ने भारत से प्रस्थान किया और गांधीजी ने बम्बई में उन्हें विदाई दी। वाइसराय-भवन के व्यक्ति बदल गये। नये वाइसराय पुरानी दोस्तियों और वादों से नावाकिफ थे। लार्ड अर्विन ने यदि शोलापुर के कैदियों को छोड़ने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तो क्या? यदि उन्होंने नजरबन्दों के मामले पर एक-एक करके गौर करने का वादा कर लिया था, तो क्या? यदि वाइसराय ने गुजरात के उन दो डिप्टी-कलक्टरों की पेंशनें व प्राविडेन्ट-फण्ड, जिन्होंने गुजरात में इस्तीफा दे दिया था, वापस जारी करने की प्रतिज्ञा कर ली थी, तो उससे क्या? यदि लार्ड अर्विन ने बारडोली की बेची गई जायदाद को वापिस करने के लिए प्रान्तीय सरकार को लिखने का वचन दे दिया था, तो उससे नई सरकार को क्या?

यदि लार्ड अर्विन ने वायदा कर लिया था कि मेरठ-षड्यन्त्र के अभियुक्तों की सजा में वह समय भी शामिल कर लिया जायगा, जो मुकदमे के दौरान में वे भुगत रहे हैं, तो उससे क्या ?

अधिकारियों की कुचेष्टायें

लार्ड अर्विन भारत से १८ अप्रैल को विदा हुए। इससे पहले दिन १७ अप्रैल को लार्ड विलिंगडन ने चार्ज लिया था। वाइसराय आते हैं और चले जाते हैं लेकिन सेक्रेटेरियट वही रहता है। जिलों पर शासन करने वाले सिविलियन ही दरअसल वाइसराय होते हैं। २ नवम्बर १९२९ के दिल्ली वाले वक्तव्य पर हस्ताक्षर करनेवालों ने जब यह लिखा था कि शासन-प्रबन्ध की स्पिरिट उसी दिन से बदल जानी चाहिए, तब उनके दिल में भारत-सरकार के प्रजातंत्रीकरण का और सिविलियन कलक्टरों के निरंकुश-शासन से मुक्त हो जाने का भाव था। परन्तु यह स्पिरिट एक वर्ष के संग्राम के बाद भी न बदली और गांधी-अर्विन समझौते पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद ही बदली। देश के हाकिमों ने समझौते को अपनी हत्तक-इज्जत समझा। सभी जगह वस्तुतः एक विद्रोह उठ खड़ा हुआ। रोजमर्रा कांग्रेस के दफ्तरों में यह शिकायतें आने लगीं कि समझौते की शर्तों का ठीक पालन नहीं होता। अपनी ओर से कांग्रेस अपने पर लगाई शर्तों के पालनके लिए चिन्तित थी। वे शर्तें मुख्यतः पिकेटिंग और बहिष्कार-प्रचार में ब्रिटिश माल को शामिल न करने की थीं। यदि कहीं इन शर्तों के पालन में शिथिलता आती थी, तो सरकार के कर्मचारी कांग्रेसियों की चौकी पर थे। कांग्रेसी लोग इधर-उधर और किसी अन्य स्थान पर होनेवाले लाठी प्रहार की, जो अब भी जारी था, उपेक्षा करते जाते थे। गुन्तूर में समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद भी पुलिस इससे बाज न आई। पूर्वी गोदावरी में बादपल्ली में बहुत दुखद गोली-काण्ड हुआ था, जिसमें चार आदमी मर गये और कई घायल हो गये। यह गोली-कांड महज इसलिए हुआ था कि लोगों ने एक मोटर पर गांधी जी का चित्र रक्खा था और पुलिस इसपर ऐतराज करती थी। स्थिति शीघ्र ही खेदजनक और असमर्थनीय गोली-कांड में बदल गई। लाठियां और गोलियां चला देना पुलिस का स्वभाव ही हो गया था। वे इसके बिना रही नहीं सकते थे। पर ऐसी ज्यादतियां आम बात हो गई हों सो नहीं, लेकिन जो थोड़ी-बहुत ऐसी घटनायें हुईं, वे भी ऐसी स्थितियों में हुईं जिनका पुलिस के पास कोई जवाब नहीं हो सकता।

जब कांग्रेस ने अस्थायी संधि की, तब वह इस उम्मीद में थी कि भारत के विभिन्न सम्प्रदायों में भी एक समझौता हो जायगा और सरकार भी इस दशा में हमारी मददगार होगी। लेकिन ये सब उम्मीदें नाकामयाब हुईं। गांधीजी यह अच्छी तरह जानते थे कि यहां हिन्दू-मुस्लिम-समझौता हुए बिना लन्दन जाने को बनिस्बत भारत में ही रहना अधिक उपयुक्त है। फिर भी, कार्य-समिति ९,१० और ११ जून १९३१ को बैठी और, गांधीजी की इच्छा न होते हुए भी मुसलमान मित्रों के आग्रह से उसने ऐसा प्रस्ताव पास कर दिया—

"समिति की यह सम्मति है कि दुर्भाग्य से यदि इन प्रयत्नों में सफलता न मिले तो भी कांग्रेस के रुख के सम्बन्ध में किसी तरह की गलतफहमी फैलने की सम्भावना से बचने के लिए महात्मा गांधी गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस की ओर से प्रतिनिधित्व करें, यदि वहां कांग्रेस के प्रतिनिधित्व की आवश्यकता हो।"

कार्य-समिति को यह उम्मीद थी कि यदि भारत में नहीं तो इंग्लैण्ड में अवश्य समझौता हो जायगा।

अस्थायी सन्धि की शर्तों के पालन के विषय की ओर लौटने से पहले कार्य-समिति की जून मास की बैठक की कार्रवाई का आशय दे देना ठीक होगा। मौलिक-अधिकार उप-समिति और सार्व-

जनिक ऋण-समिति की रिपोर्ट आने की मियाद बढ़ा दी गई। मिल के सूत से बने कपड़े के व्यापारियों तथा ऐसे करघों को प्रमाण-पत्र देने की प्रथा को, जो पिछले दिनों बहुत बढ़ गई थी, बन्द कर दिया गया। कुछ कांग्रेस-संस्थायें विदेशी कपड़े के वर्तमान स्टाक को बेचने की इजाजत दे रहीं थीं। इनको बुरा बताया गया। श्री नरीमैन से कहा गया कि एक सूची उन कैदियों की तैयार करें जो कि अस्थायी सन्धि की शर्तों के अन्दर नहीं आते हैं, और उसे गांधीजी को पेश करें। कपड़ों के सिवा अन्य वस्तुओं को प्रमाणपत्र देने के लिए एक स्वदेशी बोर्ड बनाया जाने को था। चुनाव के कुछ झगड़ों (बंगाल और दिल्ली) पर भी ध्यान दिया गया। १८८५ से अबतक के कांग्रेस के प्रस्तावों का हिन्दी-अनुवाद करने के लिए २५०) रु० स्वीकृत किये गये।

गांधीजी की चेतावनी

अब हम अस्थायी-सन्धि और उसकी शर्तों के पालन की कहानी पर आते हैं। कांग्रेस की नीति बिलकुल रचणात्मक थी। गांधीजी ने सारे देश के कांग्रेसियों को आप होकर झगड़ा न शुरू करने की, पर साथ ही राष्ट्रीय आत्म-सम्मान पर चोट भी न सहने की सख्त चेतावनी दी थी। गांधीजी पस्त-हिम्मती के भारी शैतान को दूर रखना चाहते थे। वे भय और असहायता पर हावी होने का सदा आग्रह करते रहे। उनकी नसीहतों का आशय इस प्रकार है—

"यदि वे समझौते का सम्मान-पूर्वक पालन असम्भव कर देते हैं, यदि वे चीजें जो स्वीकृत कर ली गई हैं देने से इन्कार कर दिया जाता है, तो यह इस बात की स्पष्टतम चेतावनी है कि हम भी रचणात्मक उपाय करने के अधिकारी हैं। जैसे वे मदरास में कहते हैं—तुम ५ पिकेटरों से अधिक नहीं खड़ा कर सकते। मैं पहले कह चुका हूं—इस समय मान लो; लेकिन इसके बाद हम नहीं मानेंगे, हम प्रत्येक प्रवेश-द्वार पर पांच पिकेटर नियुक्त करेंगे। लेकिन तुम्हें यह निश्चित रूप से समझ लेना चाहिए कि यह नौ दिन का तमाशा होगा, या तो वे लौट जायंगे या फिर आगे बढ़ेंगे। हम कोई नई स्थिति अपने-आप पैदा नहीं करते, लेकिन हमें अपनी रत्ता करनी ही चाहिए। उदाहरण के तौर पर झण्डाभिवादन रोक दिया जाता है; तो हम इसे सहन नहीं कर सकते और हमें इस पर जरूर अड़े रहना चाहिए। यदि एक जुलूस रोक दिया जाता है तो हमें उसके लिए लाइन्सेस की प्रार्थना करनी चाहिए; और यदि वह नहीं दिया जाता, तो हमें जुलूस न निकालने की आज्ञा का उल्लंघन करना चाहिए। लेकिन जहां मासिक झण्डाभिवादन और सार्वजनिक सभा का मामला हो, हमें प्रतिज्ञा – इजाजत की प्रतीक्षा न करनी चाहिए और न इसके लिए दरख्वास्त ही देनी चाहिए। हमें असहायता और उससे उत्पन्न होनेवाली पस्त-हिम्मती को दूर करना चाहिए।

"करबन्दी-आन्दोलन के बारे में, तुम इसकी इजाजत दे सकते हो, लेकिन इसे अपने कार्यक्रम में शामिल नहीं कर सकते। वे इसे खुद अपने हाथ में लेंगे और अपने मित्रों को भी इस आन्दोलन में ले आवेंगे। जब ऐसा होगा, तब आर्थिक प्रश्न बन जायगा; और जब यह आर्थिक प्रश्न बन जाय, जनता इस आन्दोलन की ओर खिंच जायगी।"

जगह-जगह सन्धि-भंग

सरकार की ओर से बहुत सहानुभूति दिखाई गई और लॉर्ड विलिंगडन ने मीठे शब्दों की भी कमी न रक्खी। ऐसा कोई कारण न था कि उनके वचनों की सचाई पर सन्देह किया जाता। लेकिन यह जानने में अधिक समय न लगा कि वाइसराय की हवाई बातों से जो ऊंची आशायें की गई थीं, वे सब झूठी हैं। जुलाई के पहले सप्ताह में गांधीजी के दिल में यह सन्देह उत्पन्न हो गया था कि क्या यह सब टूट और गिर तो नहीं रहा है?

युक्तप्रांत—सुलतानपुर में ९० आदमियों पर दफा १०७ ताजीरात हिन्द में मुकदमा चलाया गया था। भवन शाहपुर में ताल्लुकेदार ने किसानों को राष्ट्रीय झण्डा हटा लेने का हुक्म दिया और उनके इन्कार करने पर उन्हें हवालात में बिठा दिया। एक जिला-कांग्रेस-कमिटी के सब प्रमुख सदस्यों पर १४४ दफा की रू से नोटिस दे दिये गये। मथुरा में एक थानेदार ने सार्वजनिक सभा को जबरदस्ती भंग कर दिया। लखनऊ की एक खबर थी कि उन दिनों ७०० मुकदमे चल रहे थे। देश-भर में जिन अध्यापकों व अन्य सरकारी नौकरों को अलग कर दिया गया था, या जिन्होंने स्वयं इस्तीफा दे दिया था, उन्होंने चाहा कि वे फिर नियुक्त हों, लेकिन कई मामलों में कोई सुनवाई न हुई। कॉलेजों में दाखिले की इजाजत मांगनेवाले विद्यार्थियों से यह वचन लिया गया कि वे भविष्य में किसी आन्दोलन में भाग न लेंगे। बिचारी में लारी-भरे पुलिस-सिपाहियों ने कांग्रेसी कार्यकर्ताओं के घरों पर छापा मारा, स्त्रियों का अपमान किया और राष्ट्रीय झण्डों को जला दिया। बारावंकी में जिला-मजिस्ट्रेट ने पुलिस-इंस्पेक्टरों को १४४ धारावाले कोरे आर्डर अपने दस्तखत करके दे दिये। डिप्टी कमिश्नर ने गांधी-टोपियों को उतरवा दिया और लोगों को गांधी-टोपी न पहनने व कांग्रेस में न जाने की चेतावनी दी गई। युक्तप्रांत के विविध जिलों में यही कहानी दोहराई गई। कुछ ताल्लुकेदारों ने अपने क्रूरतापूर्ण उपायों के द्वारा सरकार को सहयोग का आश्वासन दिया। सशस्त्र पुलिस गांववालों को भयभीत करने लगी। एक जागीर के प्रबन्धकर्ता जिलेदार व उसके आदमी ने एक शख्स को पीट-पीट कर मार दिया। किसानों को 'मुर्गा' बनाने (मुर्गा बनाकर खड़ा करने) की प्रथा आम बात हो गई। हिसार (पंजाब) के चौताला में और नौशेरा से ताजीरी पुलिस नहीं हटाई गई। एक पेंशन-याफ्ता फौजी सिपाही की पेंशन जब्त कर ली गई। तरुतन में शान्त जुलूस पर लाठी बरसाई गई। छावनियों में राजनैतिक सभायें बन्द कर दी गईं।

बम्बई—अहमदाबाद, अंकलेश्वर और रत्नागिरी जिलों में गैर-लाइसैन्स-शुदा शराब की दुकानों पर और गैर-लाइसेन्स शुदा घण्टों में शान्तिमय पिकेटिंग की आज्ञा नहीं दी गई। कैदी भी नहीं छोड़े गये। बलसाड़ में पांच आदमियों से इसलिए जुरमाना मांगा गया कि सत्याग्रह-संग्राम के दिनों में उन्होंने स्वयंसेवक-कैम्प के लिए अपनी जमीन दे दी थी। जबतक जुरमाना वसूल न हुआ जमीनें नहीं दी गईं। अस्थायी सन्धि के बहुत दिनों बाद भूल से एक साल्ट-कलक्टर ने एक नाव बेच दी थी, वह भी वापस नहीं की गई और न मालिक को कोई मुआवजा दिया गया। नवजीवन प्रेस नहीं दिया गया। कर्नाटक में पश्चिमी जमीनें तबतक वापस नहीं की गईं, जबतक यह वचन नहीं ले लिया कि आगे वे आंदोलन में भाग न लेंगे। कई पटेल और तलाटी फिर बहाल नहीं किये गये। दो डिप्टी-कमिश्नरों को, जिन्होंने इस्तीफा दे दिया था, पेन्शन नहीं दी गई, यद्यपि लॉर्ड अर्विन वचन दे चुके थे। दो डॉक्टरों व एक सुपरवाइजर को बहाल नहीं किया गया। आठ लड़कियों तथा ११ बालकों को सदा के लिए सरकारी स्कूलों से 'रस्टिकेट' कर दिया। इसी तरह अंकोला में चार विद्यार्थी निकाल दिये गये। सिरसी व दिसापुर ताल्लुकों में किसानों पर सख्तियां और ज्यादतियां शुरू की थीं—उनकी केवल कृषि-सम्बन्धी कुछ शिकायतें दूर की गईं।

बंगाल में वकीलों व बैरिस्टरों से 'आयन्दा ऐसा न करने का' वचन लेने से एक नई परिस्थिति उत्पन्न हो गई। नवें आर्डिनेन्सके मातहत एक जब्त आश्रम वापस नहीं लौटाया गया। गोहाटी में विद्यार्थियों से ५०)-५०) की जमानतें मांगी गईं। जोरहट में सुपरिन्टेण्डेण्ट बार्टली की आज्ञा से १९ जून को प्रभात-फेरी करनेवाले लड़कों को पीटा गया।

दिल्ली—विद्यार्थियों से आगे के लिए वादे लिये गये।

अजमेर-मेरवाड़ा—कई अध्यापकों को सहायता-प्राप्त स्कूलों में जगह न देने का हुक्म निकाला गया।

मद्रास—१२ जुलाई को एक सरकारी विज्ञप्ति प्रकाशित हुई और अफसरों को भेजी गई कि अस्थायी सन्धि के शान्तिमय पिकेटिंग में 'रिलकारी साल' पर पिकेटिंग शामिल नहीं है। तंजोर के वकीलों पर शराब की दुकानों की पिकेटिंग न करने के लिए १४४ दफा की रू से नोटिस तामील किये गये। पिकेटिंग करते हुए स्वयंसेवकों को ताड़ी की दुकान से १०० गज के अन्दर खड़ा रहने की आज्ञा न थी। उनपर बनावटी अभियोग लगाये गये। अनेक स्थानों पर उन्हें पीटा गया और झण्डा व छाता रखने से भी रोका गया। लोगों को यह चेतावनी दी गई कि उन्हें (स्वयंसेवकों को) पानी न दिया जाय। एलोर में कपड़े की दुकानों पर पिकेटरों की संख्या एक या दो तक सीमित कर दी गई। कोमलपट्टी में जहां पिकेटरों की संख्या ५ तक सीमित की गई थी, उनपर मई में मुकदमा चलाया गया। कोयम्बटूर में उनकी संख्या ६ तक बांध दी। गुन्टूर में आंख के एक आनरेरी असिस्टेण्ट सर्जन को कहा गया कि तुम तबतक बहाल नहीं किये जाओगे, जबतक सरकार-विरोधी आंदोलन के लिए क्षमा न मांग लो। आंन्दोलन में भाग लेने के कारण जो बन्दूकें और उनके लाइसेंस जब्त कर लिये गए थे, उनमें से बहुत-से नहीं लौटाये गये। बहुत से कैदी नहीं छोड़े गए, हालांकि वे एक ही गवाही के कारण अन्य ऐसे कैदियों के साथ गिरफ्तार किए थे जो छोड़ दिये गए। शोलापुर के मार्शल-लॉ कैदियों की रिहाई की निश्चित प्रतिज्ञा लार्ड अर्विन कर गये थे, लेकिन फिर भी वे न छोड़े गये।

परन्तु बारडोली में सरकार ने अस्थायी-संधि का जो स्पष्ट भंग किया उसके सामने ये सब बातें भी फीकी पड़ जाती हैं। पाठकों को यह याद होगा कि इस ताल्लुके में लगानबन्दी का आंदोलन था। नई मालगुजारी २२ लाख रुपये देनी थी, जिसमें से २१ लाख रुपये दे दिये गए। हम नीचे गान्धीजी की शिकायत और सरकार के जवाब में से कुछ उद्धरण देते हैं—

शिकायत और जवाब

शिकायत—"बारडोली में नये साल की मालगुजारी २२ लाख रुपये में से २१ लाख रुपये दे दिये गए हैं। यह दावा किया जाता है कि इस अदायगी के जिम्मेदार कांग्रेसी-कार्यकर्त्ता हैं। यह सब जानते हैं कि जब उन्होंने मालगुजारी इकट्ठी करनी शुरू की, तब उन्होंने किसानों को कहा कि उन्हें पूरी मालगुजारी—इस साल की और पिछली—चुकानी है। अधिकांश किसानोंने यह जाहिर किया है कि वे नई मालगुजारी भी मुश्किल से चुका सकते हैं। अधिकारियों ने पहले तो संकोच किया और कुछ समय तक तो अधूरा लगान लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया, पर उसके बाद हिचकिचाते हुए अदायगी मंजूर कर ली और नये लगान के हिसाब में रसीदें दे दी। अब जो लगान देने में असमर्थता प्रकट करते हैं, उनसे नया या पिछला लगान मांगना कार्यकर्ताओं और लोगों के साथ विश्वास-घात है, जहांतक बकाया का ताल्लुक है, हमें यह कहना है कि यदि मुल्तवी बकाया पदार्थों के दाम कम हो जाने के कारण मुल्तवी कर दिया गया है, तो फिर गैर-मुल्तवी बकाया को स्थगित कर देने के तो और भी जबरदस्त कारण हैं, क्योंकि सत्याग्रही किसानों को पदार्थों के मूल्य में कमी के सिवा प्रवास (खेत छोड़कर दूसरे इलाकों में जाने) की वजह से भी सख्त नुकसान पहुंचा है। इस नुकसान का अन्दाजा लगाकर अधिकारियों के पास भेज दिया गया है। फिर कांग्रेसी-कार्यकर्त्ताओं ने तो यहां तक कह दिया है कि जिस मामले में सन्देह हो, उसकी अधिकारी फिर जांच कर

सकते हैं। परन्तु इस बात को वे जरूर बुरा समझते हैं कि किसानों को दबाया जाय, जुरमाना किया जाय और पुलिस जाकर लोगों के घरों को घेर ले।"

प्रांतीय सरकार का उत्तर—"(बम्बई) हम यह नहीं मानते कि देने में असमर्थता प्रकट करनेवालों से नया या पिछला लगान मांगना कार्यकर्त्ताओं और जनता के साथ विश्वास-घात है। असमर्थता सिद्ध होनी चाहिये, केवल कहने से काम नहीं चलता। गैर-मुल्तवी बकाया के साथ भी मुल्तवी बकाया का सा व्यवहार होना चाहिये, इस दलील में भी कोई जोर नहीं है। सरकार तभी बकाया मंजूर करती है, जबकि फसल, जिसपर लगान देना हो, पूरी या अधूरी खराब हो गई हो और किसान हमेशा की तरह अपना देना न दे सकते हों। बारडोली में बकाया इसलिए नहीं रहा कि फसल खराब हो गई, बल्कि इसलिए कि किसानों ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में अपना लगान देने से इन्कार कर दिया। किसी किस्म के नुक्सान के कारण कोई खास व्यक्ति लगान चुका सकता है या नहीं, इसकी जांच प्रत्येक मामले में पृथक्-पृथक् होनी चाहिये। बारडोली में लगान-वसूली के सिलसिले में केवल एक जायदाद जब्त की गई है। कलक्टर ने उनका पूरा ख्याल रक्खा है, जो रिआयत के अधिकारी थे। यह इसीसे स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने १८,०००) रुपये के लगभग वसूली स्थगित कर दी है और १९००) रु० तक की छूट भी स्वीकृत कर ली है। लगान-वसूली के लिए पुलिस का भी प्रत्यक्ष इस्तेमाल नहीं किया गया। केवल ऐसे कुछ गांवों में वे पुलिस को ले गये, जहां उसकी सहायता के बिना वसूली के उद्देश्य से जाने में वे उपद्रव की आशंका से डरते थे। मामलतदार या गांव के मुख्य लगान अफसर की रक्षा करना, जब्ती के सिलसिले में घर पर पहरा बिठाना, और कुछ मामलों में अपराधी को बुलाने के लिए गांव के निम्न कर्मचारियों के साथ जाना—यही काम सिपाहियों के जिम्मे थे।"

जब गांधीजी जुलाई के मध्य में शिमला गये, उन्होंने ये सब शिकायतें भारत-सरकार तक पहुंचाईं। अगले दस दिनों में स्थिति में जो परिवर्तन हुआ, उसकी कोई उम्मीद न थी। गांधीजी ने बारडोली से इस विषय पर अपने विचार सीधे सूरत के कलक्टर को लिखे और उसकी एक प्रति बम्बई-सरकार को भी भेज दी। बम्बई-गवर्नर का जवाब भी असन्तोष-जनक था। शिमला के अधिकारियों ने भी बम्बई-सरकार का समर्थन किया।

जांच का प्रस्ताव

तब गांधीजी ने पंच नियुक्त करने का प्रश्न उठाया। इस सिलसिले में जो पत्र-व्यवहार हुआ, वह नीचे दिया जाता है—

१. भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब को बोरसद से लिखे गये गांधीजी के १४ जून, १९३१ के पत्र का उद्धरण—

"प्रांतीय सरकारों के समझौते के पालन करने या न करने में आप शायद हस्तक्षेप करने में समर्थ न होंगे। यह भी सम्भव है कि आप जितना मैं चाहता हूं उतना हस्तक्षेप न करें। इसलिए शायद इसका समय आ गया है कि समझौते के स्पष्टीकरण से सम्बन्ध रखनेवाले प्रश्नों को तथा उन सब प्रश्नों को, कि आया समझौते की शर्तों का पालन हो रहा है या नहीं, तय करने के लिए स्थायी पंच नियुक्त किये जायं।"

२. भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी इमर्सन साहब को बोरसद से लिखे गये गांधीजी के २० जून, १९३१ के पत्र की नकल—

"आपका १६ जून का पत्र मिला और साथ ही पिकेटिंग के सम्बन्ध में मदरास-सरकार से प्राप्त विवरण का एक उद्धरण भी। यदि रिपोर्ट सच है, तो बहुत बुरी बात है। लेकिन पूर्ण विश्वसनीय प्रत्यक्षदर्शी कार्यकर्त्ताओं से मदरास के जो दैनिक समाचार मुझे मिलते हैं, वे मुझे आपको प्राप्त होनेवाली रिपोर्ट पर विश्वास नहीं करने देते। लेकिन मैं जानता हूं कि इससे कोई लाभ नहीं होगा। जहांतक कांग्रेस का सम्बन्ध है, मैं समझौते का पूर्ण पालन चाहता हूं। इसलिए मैं एक बात पेश करता हूं। क्या आप प्रान्तीय सरकारों को किसी भी पक्ष के आरोपों की सरसरी जांच करने के लिए एक जांच-समिति—एक प्रतिनिधि सरकार की ओर से और एक कांग्रेस की ओर से—नियुक्त करने की सलाह देंगे? और यदि कहीं यह पाया जाय कि शान्तिमय पिकेटिंग का नियम तोड़ा गया है, तो वहां पिकेटिंग बिलकुल मौकूफ कर दिया जाय; और दूसरी तरफ सरकार यह वचन दे कि यदि कभी यह मालूम हो कि शान्तिमय पिकेटिंग करते हुए ही स्वयंसेवक पकड़ लिये गये हैं, तो मुकदमा उसी समय वापस ले लिया जायगा। यदि आपको मेरी यह सलाह पसन्द न हो तो आप कोई और अधिक अच्छा और स्वीकार करने योग्य परामर्श देंगे। तब-तक मैं आपके पत्र में लगाये गये विशेष आरोपों की जांच करता हूँ।"

३. गांधीजी को लिखे गए भारत-सरकार के होम सेक्रेटरी इमर्सन साहब के ता० ४ जुलाई १९३१ के पत्र की नकल—

"१४ जून के पत्र में आपने यह सलाह दी है कि समझौते के अर्थ-सम्बन्धी प्रश्नों को तय करने के लिए शायद स्थायी पंच नियुक्त करने का समय आ गया है। फिर २० जून के पत्रमें आपने यह सलाह दी है कि भारत-सरकार प्रान्तीय-सरकारों को किसी भी पक्ष के आरोपों की जांच करने के लिए एक जांच-समिति—जिसमें प्रान्तीय सरकार का एक प्रतिनिधि और एक कांग्रेस का प्रतिनिधि हो—नियुक्त करने की सलाह दे और यदि कहीं यह पाया जाय कि शान्तिमय पिकेटिंग का नियम तोड़ा गया है, तो वहां पिकेटिंग बिलकुल मौकूफ कर दिया जाय तथा दूसरी तरफ सरकार यह वचन दे कि यदि कभी यह मालूम हो कि शान्तिमय पिकेटिंग करते हुए ही स्वयंसेवक पकड़ लिये गए हैं, तो मुकदमा उसी समय वापस ले लिया जायगा। समझौते के बारे में उठाने वाले प्रश्नों के सम्बन्ध में यह प्रस्ताव स्वीकार करके झगड़े के सम्भावित कारणों को ही दूर करने के आपके इस परामर्श की मैं कद्र करता हूं। पहले छोटे सवाल को ही लीजिये, क्योंकि मेरा खयाल है कि यह मुख्यतः उन्हीं मामलों तक सीमित है, जहां तक पिकेटिंग के तरीकों का सम्बन्ध है, जो साधारण कानून का उल्लंघन करते हुए बताये गए हैं, और इसलिए पुलिस ने पिकेटरों पर मुकदमा चलाया है या वह चलाने का खयाल कर रही है। आपके परामर्श का एक परिणाम यह होगा कि कानून की शरण लेने से पूर्व सरकार का एक मनोनीत प्रतिनिधि और कांग्रेस का एक मनोनीत प्रतिनिधि इस मामले की जांच करेंगे और अमली कार्रवाई उसके निर्णय पर निर्भर होगी। दूसरे शब्दों में इस खास विषय पर कानून-रक्षण का कर्तव्य पुलिस से हटकर, जिसका यह प्रधान कर्तव्य है, एक जांच-मण्डल के पास चला जायगा। इस मण्डल के सदस्य किसी भिन्न परिणाम पर पहुंच सकते हैं, जब कि पुलिस को तो स्वभावतः कानून के अनुसार ही कार्रवाई करनी पड़ती है; अतः न तो यह व्यावहारिक है और न समझौते का यह मंशा ही था कि इस विषय पर पुलिस के कर्तव्यों को किसी तरह रद कर दिया जाय।

"ऐसे मामलों में, कानून तोड़ा गया है या नहीं, इसका फैसला तो अदालत ही कर सकती है। और जबतक अपील में अदालत का यह फैसला कि पिकेटिंग से साधारण कानून और इसलिए समझौते की शर्तों का भंग हुआ, बदल नहीं जाता, तबतक अदालत का ही फैसला मानना होगा

और इसलिए समझौते के फलस्वरूप पिकेटिंग को बन्द कर देना पड़ेगा। जांच-समिति से उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयों में से एक कठिनाई इस उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। समझौते से कांग्रेस पर जो कर्तव्य-भार आ पड़ा है, उसका सम्बन्ध अधिकांशतः अमन व कानून-सम्बन्धी मामलों, व्यक्तिगत कार्य-स्वतन्त्रता और शासन-प्रबन्ध से है। अर्थात् समझौते का भारी उल्लंघन इन में किसी-न-किसी पर अवश्य बड़ा असर डालेगा। जहां तक कोई व्यक्ति साधारण कानून का उल्लंघन करता है, वहां तक पिकेटिंग की-सी ही स्थिति होती है। यदि कानून-भंग आम होने लगता है और उससे अमन व कानून-सम्बन्धी नीति का प्रश्न खड़ा हो जाता है या उसका असर शासन-सम्बन्ध पर पड़ने लगता है, तो सरकार के लिये यह असम्भव होगा कि वह मामला जांच-समिति के पास भेज कर अपने कार्य-स्वातन्त्र्य पर रुकावट डाल दे। जब समझौते की अन्तिम धारा बनाई गई थी, तब इसका खयाल भी नहीं किया गया था और न सरकार की आधार-भूत जिम्मेदारियों के निभाने से इसकी संगति ही बैठाई जा सकती है। मुझे तो यह प्रतीत होता है कि इस समझौते का पालन मुख्यतः दोनों पक्षों के उसके प्रति सच्चे रहने पर ही निर्भर रहना चाहिए। जहां तक सरकार का ताल्लुक है वहांतक वह इसकी शर्तों का कठोरता से पालन करने की इच्छुक है, और हमारी जानकारी से मालूम होता है कि प्रान्तीय सरकारों ने अपने पर डाले गये इस कर्तव्य-भार को चिन्ता के साथ निभाया है। कुछ संदेहास्पद मामलों का होना तो स्वभावतः अनिवार्य है, लेकिन प्रान्तीय सरकारें उनपर बहुत ध्यान पूर्वक विचार करने को भी उद्यत हैं और भारत-सरकार उन मामलों को प्रान्तीय सरकारों के ध्यान में लाना जारी रखेगी, जो उसके पास पहुंचाये जावेंगे और यदि जरूरी हुआ तो वस्तुस्थिति के सम्बन्ध में अपनी दिलजमाई भी कर लेगी।'

४. इमर्सन सा० को शिमला से लिखे गये गांधीजी के २१ जुलाई १९३१ के पत्र की नकल—

"वाइसराय-भवन में आज शाम को किये गये वायदे के अनुसार मैं अपनी यह प्रार्थना लेख-बद्ध कर रहा हूँ कि सरकार व कांग्रेस में हुए समझौते-सम्बन्धी उन प्रश्नों का निर्णय करने के लिए निष्पक्ष पंच बैठाये जायं, जो समय-समय पर सरकार या कांग्रेस की ओर से इसके सामने पेश किये जायं। निम्न-लिखित कुछ ऐसे मामले हैं, जिन पर शीघ्र विचार होना अत्यन्त आवश्यक है, यदि उनके आशय के सम्बन्ध में सरकार व कांग्रेस में मतभेद रहे—

(१) क्या पिकेटिंग में शराब की दुकानों या नीलामों का पिकेटिंग शामिल है?

(२) क्या प्रान्तीय-सरकारों को पिकेटिंग के लिए दुकान से ऐसी दूरी निर्धारित करने का अधिकार है कि जिससे पिकेटरों का उस दूकान की नजर में रहना ही असम्भव हो जाय?

(३) क्या सरकार को पिकेटरों की ऐसी संख्या सीमित करने का अधिकार है, जिससे उस दुकान के सभी रास्तों पर पिकेटिंग करना असम्भव हो जाय?

(४) क्या शान्तिमय पिकेटिंग का उद्देश्य नष्ट करने के लिए सरकार को दुकानदार को लाइसेन्स-प्राप्त स्थान और समय से अतिरिक्त स्थान व समय पर शराब बेचने देने की आज्ञा देने का अधिकार है?

(५) कुछ उदाहरणों में, १३ और १४ कलमों के अमल के सिलसिले में उनकी मंशा को साफ करना, जिनमें प्रान्तीय सरकारों ने एक अर्थ किया है और कांग्रेस ने दूसरा।

(६) कलम १६ (अ) में **'लौटाना'** शब्द की व्याख्या करना।

(७) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने के कारण जिनकी बन्दूकें लाइसेंस रद करने के बाद जब्त की गई हैं, क्या उन्हें लौटाना समझौते के अन्तर्गत है?

(८) नवें आर्डिनेन्स के अनुसार जब्त हुई कुछ जायदाद और कर्नाटक की पानीवाली जमीनें, (Water Lands) की वापसी क्या इस समझौते के अन्तर्गत है और क्या सरकार को ऐसी वापसी पर कुछ शर्तें लगाने का अधिकार है ?

(९) धारा १९ में 'स्थायी' का अर्थ ?

(१०) जिन विद्यार्थियों ने सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लिया है, उन्हें दाखिल करने से पूर्व क्या शिक्षा-विभाग को उनपर शर्तें लगाने या सविनय अवज्ञा संग्राम में लगाई गई पाबन्दियों के अनुसार उन्हें दाखिल न करने का अधिकार है ?

(११) सविनय अवज्ञा-आन्दोलन में भाग लेने के कारण क्या सरकार को किसी व्यक्ति या संस्था को दण्ड देना—पेंशन, और म्युनिसिपैलिटियों को मदद इत्यादि बन्द करने का अधिकार है ?

"यह न्हीं समझना चाहिए कि पंच के सामने केवल येही मामले पेश होंगे। यह भी संभव है कि भविष्य में ऐसे अकल्पित मामले भी खड़े हो जावें, जिनके सम्बन्ध में समझौते की सीमा के अन्दर होने का दावा किया जा सके। हम यह तरीका रक्खें कि सरकार या कांग्रेस दोनों की ओर से लिखित वक्तव्य पेश हों। दोनों पक्ष के वकील उन विषयों पर अपनी-अपनी दलीलें पेश करें और बाद को पंच जो निर्णय करें वह दोनों पक्षों को मान्य हो। बातचीत के सिलसिले में जैसा मैंने कहा था कि सरकार और कांग्रेस के मतभेदों की अवस्था में प्रश्नों के निपटारे के लिए पंच नियुक्त करने के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहता, तब उसका यह मतलब न लिया जाय कि मैंने अपनी मांग वापस ले ली है। ऐसा समय आ सकता है, जब कि मतभेद इतने तीव्र हो जावें कि मुझे ऐसे प्रश्नों की भी छान-बीन करने के लिए पंच पर जोर देना आवश्यक हो जाय। फिर उम्मीद रखता हूं कि हम पंच के पास बिना भेजे ही सब मतभेदों का निर्णय कर सकेंगे।"

५. गांधीजी के नाम इमर्सन साहब के शिमला से ३० जुलाई १९३१ के लिखे पत्र की नकल—

"आपके २१ जुलाई के पत्र के लिए धन्यवाद, जिसमें आपने (१) ५ मार्च के समझौते की व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नों के निर्णय के लिए एक निष्पक्ष पंच का अनुरोध किया है और (२) कुछ ऐसी बातें भी लिखी हैं जो आप पंच के सामने यदि उसकी नियुक्ति हो तो उस हालत में पेश करना चाहते हैं, जबकि उनके आशयों पर कांग्रेस व सरकार में एकमत न हो सके। इससे पहले १४ जून के पत्र में आपने समझौते के ब्योरे-सम्बन्धी प्रश्नों का व दोनों दलों द्वारा उन शर्तों का पूर्णरूप से पालन होने सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय करने के लिए एक स्थायी पंच की नियुक्ति का परामर्श दिया था। ४ जुलाई १९३१ के अर्ध-सरकारी पत्र में वे कारण दिये गये थे, जिनसे सरकार आपकी सलाह को स्वीकृत नहीं कर सकती। वाइसराय साहब से २१ जुलाई की मुलाकात में आपने यह खयाल जाहिर किया था कि १४ जून के आपके पत्र के व्यापक प्रस्ताव को स्वीकृत करना सरकार के लिए यदि संभव नहीं हो सकता तो समझौते के व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नों के फैसले के लिए पंच बना लेने के संकुचित प्रस्ताव से भी इन्कार कर देना सरकार के लिए युक्तिसंगत न होगा। कुछ बहस के बाद उन्होंने आपको यह सलाह दी थी कि आप जिन खास प्रश्नों को पंच के सामने पेश करने लायक समझते हैं उन्हें लिखकर भेज दीजिए और उन्होंने यह वादा किया था कि उनके मिलने पर सरकार आपके प्रस्ताव पर विचार करेगी।

"भारत-सरकार ने उस मामले पर खूब गौर किया है। उसका खयाल है कि आप सरकार और कांग्रेस में परस्पर मतभेद की अवस्था में इन हकीकतों के निर्णय के लिए यदि अब पंच की नियुक्ति पर जोर नहीं देते तो इसका यह अर्थ नहीं कि आप अपनी मांग के लिए कम उत्सुक हैं तथा आपका

यह भी खयाल है कि ऐसे भी मौके आ सकते हैं, जब कि इस मांग पर जोर देना आवश्यक होजाय। निस्संदेह आप यह स्वीकार करेंगे कि आपके इस निवेदन और १४ जून के पत्र के परामर्श में केवल यह अन्तर है कि आप व्यापक प्रश्न को स्थगित कर व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नों पर पंच की नियुक्ति सरकार से जल्दी मंजूर करा लेना चाहते हैं। ४ जुलाई के पत्र में लिखे कारणों से भारत-सरकार को दुःख है कि वह पहले प्रश्नों पर प्रकट किये गये अपने विचार को बदल नहीं सकती।

"भारत-सरकार ने और भी संकुचित प्रस्ताव अर्थात् व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्नों के लिए निर्णायक मण्डल-सम्बन्धी प्रस्ताव पर खूब गौर किया है। आपके पत्र में वर्णित उन ११ प्रश्नों पर भी सरकार ने खास ध्यान दिया है, जिन्हें आप इस श्रेणी के अन्तर्गत समझते हैं। इसके साथ सरकार ने यह भी ध्यान में रक्खा है कि इन प्रश्नों पर निर्णायक-मण्डल मंजूर करने का आवश्यक परिणाम होगा सरकार की खास जिम्मेदारियों और फर्जों का उलझन में पड़ जाना। आप भी निस्संदेह यह स्वीकार करेंगे कि सरकार के लिए किसी ऐसी व्यवस्था को मान लेना संभव नहीं है, जिससे हुकूमत की नियमित मशीनरी अथवा साधारण कानून मौकूफ हो जाय, या जिसमें किसी ऐसी बाहरी शक्ति को सम्मिलित किया जाय जिसे सरकार शासन-प्रबन्ध पर सीधा असर डालनेवाले मामलों के निर्णय तक पहुंचने की जिम्मेदारी दे दे, या जिस व्यवस्था का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष परिणाम एक खास तरीके का अख्तियार किया जाना हो, जिससे कांग्रेस के सदस्य तो लाभ उठा सकें लेकिन जनता के दूसरे (गैर-कांग्रेसी) लोग पृथक् रहें और जो अदालत की अधिकार-सीमा में प्रवेश करे। ५ मार्च के समझौते में इस तरह की किसी बात की कोई गुंजाइश नहीं है।

"ऊपर बताये उसूलों के सिलसिले में अब मैं आपके पत्र में वर्णित कुछ प्रश्नों की छानबीन करता हूं। पहले तीन प्रश्न पिकेटिंग से सम्बन्ध रखते हैं और सामान्य स्वरूप के हैं। पिकेटिंग के कुछ खास मामलों में क्या कार्रवाई की जाय, यह उसके स्वरूप पर अवलम्बित रहेगा, लेकिन सरकार किसी ऐसे व्यापक-निर्णय को बिलकुल स्वीकार नहीं कर सकती जिसका असर शासन तथा न्याय के अधिकारियों को कानून व अमन की रक्षा की अपनी जिम्मेदारियों को निभाने पर पड़े या जो लोगों की व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में हस्तक्षेप करे। आपने जो सामान्य स्वरूप की बातें रक्खी हैं वे सब इन विचारों के कारण इस दायरे में नहीं आतीं और सरकार खास-खास मामलों को भी निर्णायक-मण्डल के पास भेजने के लिए रजामन्द नहीं हो सकती, क्योंकि ऐसा करने से उन सम्बन्धित व्यक्तियों को यह रुतबा मिल जायगा जिससे कि सर्व-साधारण वंचित हैं। आपने चौथी बात यह लिखी है कि प्रांतीय सरकारें आबकारी-कानून का उल्लंघन करनेवालों को दरगुजर करती हैं, सो भारत-सरकार को इस संबंध में ऐसी कोई इत्तिला नहीं मिली है। जहांतक कानून के अनुसार आबकारी-मामलों के शासन से ताल्लुक है, आप भी निस्संदेह यह अनुभव करेंगे कि प्रान्तीय सरकारें आबकारी का कैसा प्रबन्ध करें वह निश्चित करने का अधिकार देकर पंच नियुक्त करना व्यावहारिक नहीं है। फिर यह भी याद रखना चाहिए कि महकमा आबकारी प्रान्तीय हस्तान्तरित विषय है। १० वें और १२ वें मुद्दे एक जुदा परन्तु बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा करते हैं। समझौते की बातचीत करते समय उनमें वर्णित प्रश्नों पर बहस ही नहीं हुई थी। इसलिए इन मामलों को पंच के पास भेजने का अर्थ यह बेहद व्यापक उसूल मान लेना होगा कि समझौते के वास्तविक क्षेत्र व उद्देश्य से बाहर भी सरकार की सहमति के बिना पंच को समझौते की पाबन्दी कराने का अधिकार है।

"पंच कायम करने के रास्ते में, चाहे उसके पास केवल व्याख्या-सम्बन्धी प्रश्न ही भेजे जायं, बहुत-सी दुर्गम बाधायें हैं। इसी बात पर लगातार झगड़े होंगे कि अमुक मामला व्याख्या-सम्बन्धी

है या नहीं ? यह व्यवस्था पुरानी दिक्कतों को हटाने के बदले नई दिक्कतें पैदा करेगी।

"संधि-भंग होने की जब कोई शिकायत होगी तो सरकार अपनी दिलजमई कर लेने को तैयार रहेगी। क्योंकि समझौते के पालन को सरकार अपनी इज्जत का सवाल समझती है और उसे कोई सन्देह नहीं कि आप भी उसे ऐसा ही मानते हैं। और यदि ऐसी स्थिति से काम लिया गया—न कि पंच बनाने के झंझट में पड़ने के—तो सरकार को विश्वास है कि ये कठिनाइयां अच्छी तरह हल हो सकती हैं।"

परिषद् से गांधीजी का इन्कार

संयुक्त-प्रान्त में किसानों पर दमन और अत्याचार जारी था। अपने खेतों व घरों से निर्वासित किसानों की दुर्दशा से युक्तप्रान्त के नेताओं को—पं० मदनमोहन मालवीय को भी—चिन्ता उत्पन्न हो गई थी। गांधीजी ने युक्त-प्रान्त के गवर्नर सर माल्कम हेली को एक तार भेजा। लेकिन उसका जवाब बहुत निराशाजनक मिला। सभी ओर से ऐसी शिकायतें आ रही थीं और परिस्थितियां इतनी दिल तोड़ने वाली थीं कि ११ अगस्त १९३१ को गांधीजी वाइसराय को निम्नलिखित तार भेजने पर विवश हो गये—

"बहुत दुःख के साथ आपको सूचित कर रहा हूँ कि अभी हाल में बम्बई-सरकार का जो पत्र मिला है, उसने मेरा लन्दन जाना असम्भव कर दिया है। पत्र से कई कानूनी समस्यायें उपस्थित हो गई हैं। पत्र में हकीकत और कानून दोनों दृष्टियों से एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न उठाया गया है और लिखा है कि सरकार ही हर प्रकार से दोनों बातों में अन्तिम निर्णय करेगी। इसका साफ अभिप्राय यह है कि जिन मामलों में सरकार और शिकायत करने वाले दो दल हों, उनमें भी सरकार ही अभियोग लगाये और वही फैसला करे। कांग्रेस के लिए यह स्वीकार करना असम्भव है। बम्बई-सरकार के पत्र, सर माल्कम हेली के तार और युक्त-प्रान्त, सीमा-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में होने वाले अत्याचारों की रिपोर्ट पर जब मैं ध्यान देता हूं तो मुझे यही प्रतीत होता है कि मैं लन्दन को रवाना न होऊं। जैसा मैंने वादा किया था कि कोई भी अन्तिम निर्णय करने से पहले मैं आपको लिखूंगा, मैं ऊपर लिखी हुई सब बातें आपके सामने रख रहा हूँ। अन्तिम घोषणा करने से पहले मैं आपके उत्तर की प्रतीक्षा करूंगा।"

वाइसराय का उत्तर—१३ अगस्त १९३१.

"आपने जो कारण बताये हैं, यदि उन्हींके आधार पर कांग्रेस उस अवस्था को स्वीकार नहीं करती, जो गोलमेज-परिषद् में उसका प्रतिनिधित्व रखने के लिए की गई थी, तो मुझे खेद है। मैं इन कारणों को उचित नहीं मान सकता। मैं ऐसा सोचे बिना नहीं रह सकता कि सरकार की नीति तथा उसके आधार-भूत बातों को गलत समझने के कारण ही यह अन्देशा पैदा हुआ है। मेरा खयाल था कि युक्त-प्रान्त के सम्बन्ध में आपका सन्देह सर माल्कम हेली के ३ अगस्त के तार से और गुजरात के सम्बन्ध में सर अर्नेस्ट हॉटसन के प्राइवेट-सेक्रेटरी के १० अगस्त के पत्र पैरा ४ से दूर हो गया होगा। मैं आपका ध्यान अपने २१ जुलाई के पत्र की ओर आकर्षित करता हूं, जिसमें मैंने आपको यह पूर्ण विश्वास दिलाया है कि समझौते-सम्बन्धी हरेक मामले में मैं खुद दिलचस्पी रखता हूं और मैंने आशा की थी कि आप इन विस्तार की बातों से उत्पन्न विवादों के कारण अपने को भारत की उस सेवा से वंचित नहीं करेंगे, जो आप उस महत्वपूर्ण वाद-विवाद में भाग लेकर कर सकते हैं, जो आपके और मेरे समय के भी आगे के लिए देश के भाग्य का निपटारा कर देने वाला

है। यदि आपका निश्चय अन्तिम है तो मैं फौरन ही प्रधान-मंत्री को आपके लन्दन न जाने की सूचना दे दूंगा।"

गांधीजी का अन्तिम इन्कार—१३ अगस्त १९३१

"आप के आश्वासन के तार के लिए धन्यवाद! आपके आश्वासन को मुझे वर्तमान घटनाओं को दृष्टि में रखते हुए देखना चाहिए। यदि आप उन घटनाओं पर विचार करने पर समझौते की शर्तों के बाहर कोई बात नहीं पाते, तो इससे प्रतीत होता है कि हमारे और आपके समझौते-सम्बन्धी दृष्टिकोण में सैद्धान्तिक मतभेद है। वर्तमान परिस्थिति में मुझे खेद के साथ सूचित करना पड़ता है कि मेरे लिए अपने पूर्व-निश्चय पर मुहर देने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं है। मैं केवल यही कह सकता हूं कि मैंने लन्दन जाने का हर प्रकार से प्रयत्न किया पर असफल रहा! कृपया आप प्रधान-मंत्री को इसकी सूचना दे दें। मैं समझता हूं कि यह पत्रव्यवहार और तार प्रकाशित करने में आप को आपत्ति न होगी।"

वाइसराय का उत्तर—१४अगस्त १९३१

"आपके निश्चय की सूचना मैंने प्रधान मंत्री को दे दी है। मैं आज संध्या-समय ४ बजे सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर रहा हूं। आप भी ऐसा कर सकते हैं।"

यद्यपि जून के महीने से यह अन्देशा किया जा रहा था कि कांग्रेस के गोलमेज-परिषद् में भाग लेने के रास्ते में दिक्कतें आवेगी, लेकिन फिर भी हरेक शख्स अन्तिम क्षण तक यह उम्मीद कर रहा था कि किसी तरह परिस्थिति अपने-आप सुलझ जायगी। यह कहना गलत न होगा कि लोग जहां आशा न थी वहां भी आशा लगा रहे थे। लेकिन कांग्रेस संधि-चर्चा के बीच में टूटते जाने पर चुपचाप नहीं बैठ सकती थी। खुद समझौते पर पूरा अमल करते हुए भी कांग्रेस को प्रत्येक किस्म की सम्भावना के लिए पूरी तैयारी करनी थी। इस तरह जबकि गांधीजी वाइसराय और बम्बई व युक्त-प्रान्त की सरकारों से पत्र-व्यवहार करने में लगे हुए थे, कांग्रेस की कार्य-समिति बदस्तूर अपना कार्य करने में संलग्न थी। हम भी पाठकों को उसी ओर ले जाते हैं।

कार्य-समिति की बैठक

कार्य-समिति की एक बैठक २० जुलाई को हुई। उसने 'ब्रिटेन व भारत के लेन-देन' पर तैयार की हुई रिपोर्ट को छापने की स्वीकृति दे दी। मौलिक-अधिकार-समिति ने अपनी बैठकें मछलीपट्टम में करके रिपोर्ट तैयार की थी। कार्य-समिति ने इस रिपोर्ट को महा-समिति के सामने पेश करने का निश्चय किया। हिन्दुस्तानी-सेवादल का कांग्रेस से सम्बन्ध के बारे में कई गलतफहमियां फैली हुई थीं, इसलिए दल को कांग्रेस का केन्द्रीय स्वयंसेवक-संगठन मान लिया गया और यह निश्चय किया गया कि इसका नियन्त्रण कार्य-समिति प्रत्यक्षरूप से स्वयं करेगी या वह करेगा, जिसे वह अपनी ओर से नियुक्त करे। इसके काम भी बता दिये गये। प्रांतीय कांग्रेस-कमिटियों को यह अधिकार और आदेश दिया गया कि वे भी बाकायदा स्वयं-सेवक-दल बनावें। इस दल के सदस्यों के लिए कांग्रेस का सदस्य होना और केन्द्रीय स्वयंसेवक-दल के नियन्त्रण को मानना जरूरी रक्खा गया। सेवादल जिसकी अ० भा० परिषद् कोकनडा में हुई थी और जो शुरू से ही डाक्टर हार्डीकर के नेतृत्व और संचालन में शानदार काम कर रहा था, कांग्रेस से सम्बद्ध कर लिया गया और सेवादल ने भी स्वराज्य-प्राप्ति के लिए शांतिमय और उचित उपायों से कांग्रेस के ध्येय की प्रतिज्ञा स्वीकार की। इसके बाद कांग्रेस का एक बहुत बड़ा काम आता है; यह था साम्प्रदायिक प्रश्न पर

समझौते की एक योजना, जिसे हम विस्तार से नीचे देते हैं। इस सिलसिले में कार्य-समिति ने निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—

"चाहे इसमें कांग्रेसको कितनी भी असफलता क्यों न हुई हो, उसने शुरू से ही विशुद्ध राष्ट्रीयता को अपना आदर्श माना है और वह साम्प्रदायिक भेदभावों को हटाने में सदा प्रयत्नशील रही है। कांग्रेस के लाहौर-अधिवेशन में पास किया हुआ निम्नलिखित प्रस्ताव उसकी राष्ट्रीयता की चरमसीमा है—

'चूंकि नेहरू-रिपोर्ट खतम हो चुकी है, साम्प्रदायिक प्रश्नों के बारे में कांग्रेस की नीति की घोषणा करना आवश्यक है। कांग्रेस का विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत में सांप्रदायिक प्रश्नों का हल सिर्फ विशुद्ध राष्ट्रीय ढंग से ही किया जा सकता है। लेकिन चूंकि खासकर सिक्खों ने और साधारणतया मुसलमानों तथा दूसरी अल्प-संख्यक जातियों ने नेहरू रिपोर्ट में प्रस्तावित साम्प्रदायिक प्रश्नों के हल के प्रति असंतोष जाहिर किया है, यह कांग्रेस सिक्खों, मुसलमानों और दूसरी अल्पसंख्यक जातियों को विश्वास दिलाती है कि भावी शासन-विधान में साम्प्रदायिक समस्या का ऐसा कोई हल कांग्रेस को मंजूर न होगा, जिससे सम्बन्धित दलों को पूरा संतोष न होता हो।'

"इसी कारण सांप्रदायिक प्रश्न का साम्प्रदायिक हल पेश करने की जिम्मेदारी से कांग्रेस मुक्त हो गई है। लेकिन राष्ट्र के इतिहास के इस नाजुक मौके पर यह महसूस करती है कि कार्यसमिति को देश की स्वीकृति के लिए एक ऐसा हल सुझाना चाहिए, जो देखने में साम्प्रदायिक होते हुए भी राष्ट्रीयता के अधिक से अधिक निकट हो और आम तौर पर सब सम्बन्धित जातियों को मंजूर हो। इसलिए पूरी-पूरी और आजादी के साथ बहस के बाद कार्य-समिति ने सर्वसम्मति से नीचे लिखी योजना पास की है—

"१. (क) शासन-विधान की मौलिक अधिकार से सम्बन्धित धारा में जातियों को यह आश्वासन भी दिया जाय कि उनकी संस्कृति, भाषा, धर्मग्रन्थ, शिक्षा, पेशा और धार्मिक व्यवहार तथा मर्यादा की रक्षा की जायगी।

(ख) विधान में खास धारायें रख कर जातियों के निजी कानूनों की रक्षा की जायगी।

(ग) विभिन्न प्रान्तों में अल्पसंख्यक जातियों के राजनैतिक तथा अन्य अधिकारों की रक्षा करना संघ-सरकार के जिम्मे होगा और ये काम उसके अधिकार-क्षेत्र की सीमा में होंगे।

२. तमाम बालिग स्त्री-पुरुष मताधिकार के अधिकारी होंगे।

नोट—करांची-कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा कार्य-समिति बालिग-मताधिकार के लिए बंध चुकी है, अतः वह किसी दूसरे प्रकार के मताधिकार को मंजूर नहीं कर सकती। लेकिन कुछ स्थानों में जो गलतफहमी फैली हुई है, उसे ध्यान में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि किसी भी हालत में मताधिकार एक-समान होगा और इतना व्यापक होगा कि चुनाव की सूची में प्रत्येक जाति की आबादी का अनुपात उसमें स्पष्ट दिखाई पड़े।

३. (क) भारत के भावी शासन-विधानमें प्रतिनिधित्व का आधार सम्मिलित निर्वाचन होगा।

(ख) सिन्ध के हिन्दुओं, आसाम के मुसलमानों और पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त तथा पंजाब के सिक्खों और किसी भी ऐसे प्रान्त के हिन्दू और मुसलमानों के लिए, जहां उनकी संख्या आबादी के २५ फी सदी से भी कम हो, संघीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं में आबादी के आधार पर स्थान सुरक्षित रक्खे जायंगे और उनके अलावा अधिक स्थानों के लिए भी उम्मीदवार के रूप में खड़े होने का अधिकार होगा।

४. पदों पर नियुक्तियां निष्पक्ष सर्विस-कमीशनों के द्वारा होंगी। नौकरियों के लिए आवश्यक न्यूनतम योग्यता का भी निर्णय ये कमीशन करेंगे और कार्य के सुचारु-रूप से चलने का तथा नौकरियों के लिए तमाम जातियों को समान अवसर मिले इस सिद्धान्त का और वे बहुत-कुछ योग उसमें दे सकें इस बात का वे पूरा खयाल रक्खेंगे।

५. संघीय और प्रान्तीय मंत्रि-मंडल के निर्माण में अल्पसंख्यक जातियों के हित एक निश्चित प्रथा के अनुसार मान्य होंगे।

६. पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और बलूचिस्तान में उसी प्रकार की शासन-व्यवस्था होगी, जैसी अन्य प्रान्तों में है।

७. सिन्ध को अलग प्रान्त बना दिया जायगा, बशर्ते कि सिन्ध के लोग पृथक् प्रान्त का आर्थिक भार सहन करने को तैयार हों।

८. देश का भावी शासन विधान संघीय होगा। अवशिष्ट अधिकार संघ की इकाइयों के पास रहेंगे, बशर्ते कि और छानबीन करने पर यह भारत के आत्यन्तिक-हित के विरुद्ध साबित न हो।

"कार्य-समिति ने उक्त योजना को विशुद्ध साम्प्रदायिकता और विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर किये गये प्रस्तावों के बीच समझौते के रूप में स्वीकार किया है। इसलिए जहां एक ओर कार्य-समिति यह आशा रखती है कि सारा राष्ट्र इस योजना का समर्थन करेगा, वह दूसरी ओर उग्र विचार के लोगों को, जो इसे स्वीकार नहीं करते, यह विश्वास दिलाती है कि समिति दूसरी किसी ऐसी योजना को बिना हिचक के स्वीकार करेगी, जो सब सम्बन्धित दलों को मंजूर हो जैसे कि वह लाहौर के प्रस्ताव से बंधी हुई है।"

विदेशी कपड़े और सूत के बहिष्कार की नीचे लिखी प्रतिज्ञा की रूपरेखा भी कार्य-समिति में तैयार की गई और यह निश्चय किया गया कि विदेशी कपड़े व सूत के बहिष्कार के सिलसिले में की गई कोई भी ऐसी प्रतिज्ञा, जो इससे मेल न खाती हो, रद मानी जायगी—

"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि तबतक हम निम्न-लिखित शर्तों का पालन करते रहेंगे, जबतक कि कांग्रेस की कार्य-समिति किसी प्रस्ताव-द्वारा और कुछ करने को नहीं कहती—

१. हम रुई, ऊन या रेशम से कता हुआ कोई विदेशी सूत या उससे बुना हुआ कपड़ा न खरीदने और न बेचने का वादा करते हैं।

२. हम किसी ऐसी मिल का सूत या कपड़ा भी न खरीदने और न बेचने का वादा करते हैं, जिसने कांग्रेस की शर्तों को न माना हो।

३. हम अपने पास मौजूद कपास, ऊन या रेशम से बने हुए विदेशी सूत या उससे बने कपड़े को भारत में बेचने का वचन देते हैं।"

इसके बाद यह फैसला किया गया कि अस्पृश्यता-निवारणी समिति को, जो गत वर्ष सविनय अवज्ञा के संग्राम में लुप्त हो गई थी, पुनर्जीवित किया जाय। श्री जमनालाल बजाज को इस उद्देश्य-पूर्ति के लिए यथायोग्य काम करने को कहा गया। इस समिति को अन्य सदस्य शामिल करने का तथा अन्य आवश्यक अधिकार भी दिये गये।

मिल-समिति (Textile Mills Exemption Committee) की तथा मजदूरों की हालत के सवाल पर कार्य-समिति ने यह निर्णय किया कि जहां सम्भव और आवश्यक प्रतीत हो, उक्त समिति आपसी तजवीजों के द्वारा ऐसी मिलों में जिन्होंने कांग्रेस की घोषणा पर हस्ताक्षर कर दिये हों, मजदूरों

को दण्ड दिये जाने या निकाले जाने को रोकने और मजदूरों की स्थिति को अधिक अच्छी करने की कोशिश करे।

पाठकों ने यह देखा होगा कि साम्प्रदायिक समझौते के सिलसिले में अवशिष्ट-अधिकार संघ की इकाइयों के हाथ में छोड़ दिये गये थे। इन अधिकारों की चर्चा करना भी एक फैशन हो गया है। उनका पूर्णता पर पहुंचना तो वाद-विवाद में ही सम्भव है, और अमल में तो उनका कोई लक्षण करना कठिन ही है। यह सवाल तो उन्हीं प्रान्तों में उठ सकता है, जो एक-दूसरे से बिलकुल नावाकिफ हों और अब एक दूसरे से मिल कर संघ बना रहे हों। लेकिन भारत जैसे देश में जहां कि बहुत समय से केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों का विभाजन हो चुका है, इस किस्म की बहस तो विशुद्ध सैद्धान्तिक मनोरंजन मात्र है। जो कुछ भी हो, इसका अन्तिम हल तो गांधीजी का बताया हुआ ही था। उन्होंने अपनी हमेशा की समय-सूचकता के साथ पीछे एक यह धारा जोड़ दी कि "बशर्ते कि आगे परीक्षण करने पर यह भारत के आत्यन्तिक हितों के विरुद्ध न पाया गया।" हकीकत यह है कि मुसलमान अपने हाथों में—प्रान्तों के हाथों में एक सुरक्षित अधिकार चाहते थे, ताकि वे उन प्रान्तों को जवाब दे सकें, जिसमें हिन्दू बहुसंख्यक हैं और जो मुसलमानों के साथ बुरा व्यवहार करते हैं। जहां एक साझीदार सन्देहशील हो, वहां उसे संरक्षण दे देना सबसे अच्छा तरीका है। लेकिन भविष्य के लिए योजना में पुनः परीक्षण की गुञ्जाइश भी रख ली गई। इससे सभी दल सन्तुष्ट हो गये।

महासमिति की बैठक ६, ७ और ८ अगस्त १९३१ को फिर हुई और उसने बहुत महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास किये। पहला प्रस्ताव बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर की हत्या के प्रयत्न और बंगाल में जज गार्लिक की हत्या के सम्बन्ध में था। इन आक्रमणों पर खेद और निन्दा प्रकट करते हुए गवर्नर के जीवन पर आक्रमण के प्रयत्न को उस स्थिति में तो बहुत बुरा बताया, जब कि फर्ग्यूसन-कालेज ने सन्मानित अतिथि के तौर पर उन्हें निमन्त्रित किया था।

राष्ट्रीय-झंडा-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और यह निश्चय किया गया कि "राष्ट्रीय झण्डा तीन रंग का और पहले की तरह लम्बाई-चौड़ाई में समानान्तर होगा। लेकिन उसके रङ्ग क्रमशः ऊपर से नीचे केसरिया, सफेद और हरा होंगे। सफेद पट्ट के केन्द्र में गहरे नीले रङ्ग का चरखा होगा। रंग गुणों के न कि जातियों के सूचक हैं। केसरिया रङ्ग साहस और बलिदान का, सफेद रङ्ग शान्ति और सत्य का, हरा रङ्ग श्रद्धा तथा वीरता का एवं चर्खा जनता की आशा का प्रतिनिधि होगा। झण्डे की लम्बाई-चौड़ाई का अनुपात ३ : २ होगा।" ३० अगस्त रविवार को नया राष्ट्रीय झण्डा फहराने का निश्चय किया गया। इसी के अनुसार फिर आगे प्रति मास हर रविवार को झण्डा फहराया जाने लगा। मौलिक-अधिकार-समिति की रिपोर्ट पर विचार हुआ और ऊपर लिखे अधिकार व कर्त्तव्य स्वीकृत हुए। मौलिक अधिकार वाला प्रस्ताव, जैसा अन्तिम रूप में था इस बैठक में पास कर दिया गया।

अफगान जिरगा

उन्हीं दिनों बम्बई में कार्य समिति ने सरदार भगतसिंह के दाह संस्कार के प्रश्न पर विचार किया और इस परिणाम पर पहुंची, जैसा कि हम पहिले ही जिक्र कर चुके हैं, कि जो भीषण अभियोग लगाये गये हैं उनका कोई आधार नहीं है। सीमा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी, अफगान जिरगा व खुदाई खिदमतगारों के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव के रूप में एक महत्वपूर्ण निश्चय किया गया—

"सीमाप्रान्त की कांग्रेस कमिटी के प्रतिनिधियों से परामर्श करने के बाद समिति ने सीमा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के पुनः संगठन तथा उसमें अफगान जिरगे को सम्मिलित करने का निश्चय

किया। यह भी निश्चय किया गया कि खुदाई खिदमतगार भी कांग्रेस-स्वयंसेवक-संगठन के एक अंग हो जाने चाहिए। समिति अपने निश्चयों पर निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित करती है—

"सीमाप्रांत में कांग्रेस के कार्य तथा प्रांतीय कांग्रेस-कमिटी, अफगान जिरगा और खुदाई खिदमतगारों के पारस्परिक सम्बन्धों के बारे में कुछ गलतफहमियां उठ खड़ी हुई हैं, इसलिये कार्य-समिति ने खान अब्दुलगफ्फारखां, खान अलीगुलखां, हकीम अब्दुलजलील, पीरबख्श साहब, खान अमीर-मुहम्मद और श्रीमती निक्कोदेवी से मिलकर उस प्रान्त में भावी कार्य के विषय में विचार किया। इस विचार-विनिमय के परिणाम-स्वरूप सब गलतफहमियां दूर हो गईं और सीमा-प्रान्तीय नेता कुछ सम्मत-निर्णयों के अनुसार एक साथ काम करने को तैयार हो गये हैं। यह बताया गया था कि अफगान जिरगा कांग्रेस के कार्य-क्रम पर अमल कर रहा था और खुदाई खिदमतगार इसे प्रभावशाली बनाने के लिए स्वयंसेवक के तौर पर काम कर रहे थे, लेकिन अफगान जिरगे का विधान कांग्रेस से पृथक् था, इसलिए यह कांग्रेस का कोई भाग भी न था और जिरगे के विविध प्रकार के झण्डों के इस्तेमाल से भी गड़बड़ पैदा हो रही थी।

सीमा-प्रान्तीय नेता इस पर सहमत हो गये हैं कि वर्तमान प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी और अफगान-जिरगा परस्पर मिल जावें और कांग्रेस-विधान के अनुसार एक नई प्रान्तीय संस्था स्थापित की जाय जो प्रान्त में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करे। यह नई चुनी हुई कमिटी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी होगी। उस प्रान्त की भाषा में यह सीमा-प्रान्तीय जिरगा कहलायेगी। इसी तरह जिला व स्थानीय कांग्रेस-कमिटियां स्थानीय जिरगे कहे जा सकेंगे। वे कांग्रेस-कमिटियां हैं, इसका भी स्पष्ट निर्देश रहेगा। यह भी फैसला हुआ है कि खुदाई खिदमतगार कार्य-समिति के हाल के प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस-स्वयंसेवक-संगठन बन जायं। 'खुदाई खिदमतगार' नाम रक्खा जा सकेगा। कांग्रेस के विधान, नियम और कार्यक्रम के अनुसार ही सम्पूर्ण संगठन चलाया जायगा। इसलिए झंडे के तौर पर वस्तुतः राष्ट्रीय झंडा ही काम में लाया जायगा।

कार्य-समिति की प्रार्थना पर सीमा-प्रान्तीय नेता खान अब्दुलगफ्फारखां ने उस प्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन के संचालन का भार अपने कंधों पर ले लिया है।"

कार्य-समिति की निराशा

कार्य-समिति ने इस आशय का प्रस्ताव भी पास किया कि वह अनिच्छा-पूर्वक इस परिणाम पर पहुंची है कि समझौते की शर्तों और राष्ट्रीय हितों को देखते हुए कांग्रेस गोलमेज परिषद् में न भाग ले सकती है और न उसे लेना ही चाहिए। लेकिन समिति ने यह भी घोषणा की कि दिल्ली-समझौता अब भी कायम है, जैसा कि निम्नलिखित प्रस्ताव से मालूम होगा—

"कार्य-समिति ने १३ अगस्त को गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के भाग न लेने के बारे में प्रस्ताव पास किया था। उसे मद्दे-नजर रखते हुए यह समिति स्पष्ट कर देना चाहती है कि उस प्रस्ताव को दिल्ली-समझौते का समाप्ति-कारक न समझा जाय। इसलिए समिति सब कांग्रेस-संस्थाओं व कांग्रेसियों को तबतक समझौते की कांग्रेस पर लागू होनेवाली शर्तों पर अमल करने की सलाह देती है, जब-तक कि कोई दूसरी हिदायत न दी जाय।"

असाधारण परिस्थिति उत्पन्न होने की अवस्थाओं के लिए, जब कार्य-समिति न बुलाई जा सके, राष्ट्रपति को विशेष अधिकार भी दे दिये गये, कि "इस प्रस्ताव-द्वारा कार्य-समिति की ओर से उसके नाम पर राष्ट्रपति को काम करने को अधिकार दिया जाता है।"

मणि-भवन (बम्बई) में सारे दिन आशाओं व उम्मीदों से भरी ये अफवाहें गरम हो रही थीं

कि सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के आखिरी समय किये गये शान्ति के प्रयत्नों के कारण गांधीजी का लन्दन जाना सम्भव हो जायगा। लेकिन सूर्यास्त के वक्त बड़े-बड़े नेता मणि-भवन से बाहर निकले और अत्यन्त उत्सुक व प्रतीक्षा में खड़े हुए प्रेस-प्रतिनिधियों को बताने लगे कि आखिरी समय की गई सन्धि-चर्चाओं के सफल होने और गांधीजी के अपने निश्चय को बदलने की कोई सम्भावना नहीं है। फिर भी कुछ आशावादी अबतक यह आशा लगाये बैठे थे कि अन्त में कोई-न-कोई सूरत निकल ही जायगी। लेकिन जब गांधीजी रात के ८॥ बजे मणि-भवन छोड़कर बम्बई-सेन्ट्रल स्टेशन पर गुजरात-मेल के एक तीसरे दर्जे के डिब्बे में सवार हो गये तब सब सन्देह बिलकुल खतम हो गये।

सर प्रभाशंकर पट्टनी ने दोपहर को आध घन्टे तक गांधीजी से मुलाकात की। असोशियेटेड प्रेस के भेंट करने पर सर प्रभाशंकर पट्टनी ने (जिन्होंने 'एस० एस० मुलतान' जहाज से अपनी यात्रा स्थगित कर दी थी) इससे अधिक कुछ भी बताने में अनिच्छा प्रकट की कि अनेक कारणों से उन्होंने अपनी यात्रा स्थगित कर दी है।

इस तरह गोलमेज-परिषद् के अभिनय में पहला दृश्य समाप्त हुआ। १५ अगस्त को डॉ० सप्रू, श्री जयकर और श्री रंगास्वामी आयंगर गांधीजी से दो-एक बार मिलकर बम्बई से रवाना होगये। इस विषय पर प्रकाशित हुए पत्र-व्यवहार के अध्ययन से सरकारी अधिकारियों की मनोवृत्ति का अच्छा परिचय मिल जाता है। सेक्रेटेरियट ने समझौते को समुद्र में फेंक दिया था। पूना की दुर्घटना ने संभवतः सेक्रेटेरियट की शांति भंग कर दी थी। प्रायः प्रत्येक बार किसी-न-किसी हिंसात्मक कार्य से कांग्रेस-आन्दोलन को नाजुक समय में बाधा पहुंची है। पूना के फर्ग्यूसन-कालेज में बम्बई के स्थानापन्न गवर्नर सर ई० हॉटसन पर एक युवक विद्यार्थी द्वारा गोली का चलाया जाना इस समय वस्तुतः दुर्भाग्यपूर्ण था। लेकिन ई० हॉटसन ने स्वयं वही स्थिरता और शान्ति रक्खी, जैसी लॉर्ड अर्विन ने २१ दिसम्बर १९२९ को रक्खी थी। गांधीजी ने पूना-दुर्घटना पर दुःख-प्रकाश किया और स्थानापन्न गवर्नर को बचने पर बधाई दी। कार्य-समिति और महासमिति ने भी इस आक्रमण की निन्दा के प्रस्ताव पास किये। लेकिन यह तो केवल एक क्षेपक है। गांधी-अर्विन-समझौते के टूटने के वस्तुतः इससे भी गहरे कारण थे। प्रत्यक्ष उल्लंघन का तो नाम-निर्देश भी कर दिया गया है। गांधीजी के आरोपों में से प्रत्येक का उत्तर सरकार ने २४ अगस्त को प्रकाशित किया और कांग्रेस ने उनका विस्तृत प्रत्युत्तर अक्तूबर में प्रकाशित किया।

न जाने के कारण

इसमें सन्देह नहीं कि समझौते के ये उल्लंघन, गांधीजी के गोलमेज-परिषद् में उपस्थित होने से इन्कार करने और ११ अगस्त को वाइसराय को तार-द्वारा अपने निश्चय से (जिसका समर्थन कार्य-समिति ने भी किया) सूचित करने का, एक कारण थे। वस्तुतः यह इमर्सन सा० का ३० जुलाई का पत्र था, जो पहले आ चुका है, जिसने स्थिति को निर्णीत-रूप दे दिया था। बम्बई के गवर्नर का १० अगस्त का पत्र भी कम निर्णायक न था। सर माल्कम हेली का तार भी, यद्यपि उसमें सौम्य, शिष्ट और संयतभाषा का प्रयोग था, यह निश्चय करने में कम कारण न था। लेकिन इनमें सबसे बड़ा कारण था बारडोली में लगान-वसूली के लिए दमनकारी उपायों का अवलम्बन। २२ लाख रुपये में से २१ लाख दिया जा चुका था। कांग्रेस का मन्तव्य था कि अब लगान न चुकानेवाले आपत्ति में ग्रस्त हैं और समय चाहते हैं। पिछले सालों का बकाया करीब दो लाख रुपया लेना था, जिसका अधिकांश भाग गुजरात के दुर्भिक्ष के कारण सरकार ने मुल्तवी भी कर दिया था। सरकार ने पुलिस-द्वारा धमकियां देना व पुलिस के 'जुल्म' के जोर पर इस साल का तथा पिछले

सालों का बकाया वसूल करना शुरू किया। सरकार का बहाना था कि कांग्रेस कौन होती है जिसके कहने पर सरकारी मालगुजारी दी जाय या रोकी जाय? सरकार ने अपने पत्र-व्यवहार में यह स्पष्ट लिख दिया था कि समझौते का न तो ऐसा आशय ही है और न सरकार इसे सहन ही कर सकती है। कांग्रेस यह साबित करने को तैयार थी कि लोगों को भयभीत करने और कुछ मामलों में तो अतिरिक्त मालगुजारी वसूल करने के लिए अनुचित प्रभाव डालने के लिए पुलिस का इस्तेमाल किया गया है और फिर इस प्रकार एकत्र की हुई अतिरिक्त-मालगुजारी एक लाख रुपया भी नहीं होती थी। सरकार का कहना था कि लगान की वसूली में अन्तिम निर्णय कांग्रेस का नहीं बल्कि सरकार और उसके कर्मचारियों का होना चाहिए। ब्रिटिश-शान्ति और ब्रिटिश-शासन अभी वहां कायम है। सरकार इसे जताना और साबित करना चाहती थी। सरकार को मालगुजारी की इतनी परवाह न थी, जितनी अपने रौब की—उसी रौब की जिसकी इतनी तारीफ माण्टेगु साहब ने की थी—चिन्ता थी!

एक दूसरा और महत्वपूर्ण कारण भी था, जिससे गांधीजी इंग्लैण्ड नहीं जाना चाहते थे। भारत-सरकार ने डॉक्टर अंसारी को गोलमेज-परिषद् का प्रतिनिधि मनोनीत नहीं किया था। स्वभावत: कांग्रेस उन्हें ले जाना चाहती थी। कांग्रेसी होने के अलावा वे भारत की एक बड़ी पार्टी—राष्ट्रीय मुस्लिम दल—का प्रतिनिधित्व करते थे। सभी मुसलमान उन्नति-विरोधी नहीं हैं। उनमें भी एक ऐसा साफ गिरोह था, जो दिल से राष्ट्रीय था और पूर्ण स्वराज्य—मुकम्मिल आजादी—के लिए उत्सुक था। लेकिन इस रहस्य को सभी जानते हैं कि लॉर्ड अर्विन ने गांधीजी के कहने से पण्डित मदनमोहन मालवीय, श्रीमती सरोजिनी नायडू और डाक्टर अंसारी को मनोनीत करने का वचन दिया था, जबकि पहले दो व्यक्ति मनोनीत कर लिये गये और डॉक्टर अंसारी छोड़ दिये गये। यह बात नहीं थी कि लॉर्ड विलिंगडन जानते ही न थे कि लॉर्ड अर्विन ने क्या वचन दिया था। लेकिन गोलमेज-परिषद् में यह प्रदर्शन भी ब्रिटिश-हितों के लिए अच्छा था कि मुस्लिम-भारत स्वराज्य के विरुद्ध है। लॉर्ड अर्विन के वचन का पालन करने की मांग के उत्तर में लॉर्ड विलिंगडन ने यह दलील दी कि मुसलमान प्रतिनिधि डॉक्टर अंसारी के प्रतिनिधित्व के विरुद्ध हैं। वे तो उसके विरुद्ध होते ही। यदि वे विरोध न करते, तो वे मुसलमान प्रतिनिधि न होते; बल्कि भारत के प्रतिनिधि होते। देश में डॉक्टर अन्सारी की स्थिति असाधारण थी, उनके अनुयायी भी बहुत थे, उनके विचार भी राष्ट्रीय थे। वे साम्प्रदायिकता के प्रबल और निर्भीक विरोधी थे। ऐसे डॉक्टर अन्सारी के चुनाव को वे मुसलमान प्रतिनिधि कैसे सहन करते? कांग्रेस ने साम्प्रदायिक प्रश्न पर एक हल तैयार कर लिया था, जिसका समर्थन गोलमेज-परिषद् में एक हिन्दू और एक मुसलमान प्रतिनिधि करते। सरकार यह जानती थी और साफ तौर पर मुसलमान अंग को काटकर कांग्रेस को बेकार बना देना चाहती थी। इन परिस्थितियों में कांग्रेस के लिए राष्ट्रीय सम्मान की रक्षा करते हुए केवल एक ही मार्ग खुला था। गांधीजी ने उसे ही पकड़ा और गोलमेज-परिषद् के लिए लन्दन जाने से इन्कार कर दिया।

आशा के पहले

एक बार फिर लड़ाई की तैयारियां होने लगीं। सत्याग्रही को तो कोई तैयारी करनी नहीं होती, उसे केवल सूचना देनी होती है। सरकार को जैसे लाठी या मनुष्य-बल की तैयारी करनी पड़ती है, वैसी कोई भौतिक तैयारी सत्याग्रही को नहीं करनी पड़ती। जैसे-जैसे आवश्यकता होती जाती है, जनता की ओर से स्वयंसेवक आते जाते हैं। फिर भी यह तो मानना ही चाहिए कि मनुष्य की सहन-शक्ति की भी आखिर एक सीमा होती है और सत्याग्रह-संग्राम में तो अन्तिम मनुष्य और अन्तिम धन ही है जो काम दे सकता है। परन्तु इस विषय पर तो अधिक बात हम आगे करेंगे। १५ अगस्त

को लड़ाई की हवा की ही सब जगह चर्चा थी। इसमें सन्देह नहीं कि लॉर्ड विलिंगडन का रुख पूर्ण शिष्टता का था। उन्होंने गांधीजी से कहा कि आप मामले को तोड़ें नहीं। जब कभी कोई दिक्कत हो, मुझसे मिल लें। लेकिन गांधीजी जब कोई बात पेश करते थे तो उसका कोई असर न होता था। सारा देश एक निराशा में डूबा हुआ था। पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्रीमती सरोजिनी नायडू ने 'मुलतान' जहाज से अपनी यात्रा स्थगित कर दी थी, जिससे श्री सप्रू, जयकर और आयंगर रवाना हुए थे। गांधीजी ने अपनी स्थिति निम्नलिखित सरल शब्दों में रख दी—

"यदि सरकार और कांग्रेस में कोई समझौता हुआ था और यदि उसके आशय के बारे में कोई विवाद उठ खड़ा हुआ या किसी पक्ष की ओर से उसका उल्लंघन किया गया; तो मेरी सम्मति में सब समझौतों के साथ लागू होनेवाले नियम इस समझौते पर भी लागू होने चाहिए। इस समझौते पर तो वे और भी ज्यादा इसलिए लागू होने चाहिये, क्योंकि यह समझौता एक महान सरकार और सारे देश के प्रतिनिधित्व का दावा करनेवाली महान संस्था के बीच हुआ है। यह बात सही है कि इस समझौते पर कानून से अमल नहीं कराया जा सकता, पर इसलिए सरकार पर यह दोहरी जिम्मेदारी आ जाती है कि समझौता करनेवाले दो समुदाय जिन प्रश्नों पर एक नहीं हो सकते उन्हें एक निष्पक्ष न्यायालय के सामने पेश करे। कांग्रेस की एक बहुत सरल और स्वाभाविक इस सलाह को सरकार ने ठुकरा देने लायक समझा है कि झगड़े के ऐसे मामले निष्पक्ष न्यायालय को सौंप देने चाहिए।"

गांधीजी ने शान्ति के लिए कभी दरवाजा बन्द नहीं किया। वे तो कहते थे कि ज्यों ही रास्ता साफ हुआ, यदि प्रान्तीय सरकारें समझौते की शर्तों की पूर्ति करती रहें, मैं लन्दन की ओर दौड़ पड़ूंगा। जो बात प्रत्येक राजनैतिक विचारक के दिमाग में घूम रही थी, उसे उन्होंने खुले तौर पर कह दिया—"यहां के बड़े सिविलियन नहीं चाहते कि मैं परिषद् में जा सकूं और यदि वे चाहते भी हैं, तो ऐसी परिस्थितियों में, जिन्हें कांग्रेस-जैसी कोई राष्ट्रीय-संस्था बरदाश्त नहीं कर सकती" देश के सिविलियन बड़े जोरों से यह बात फैला रहे थे कि कांग्रेस के रूप में गांधीजी एक मुकाबले की सरकार कायम करना चाहते हैं और ऐसी विध्वंसक संस्था कभी गवारा नहीं की जा सकती। गांधीजी ने बम्बई से अहमदाबाद के लिए रवाना होते समय लार्ड विलिंगडन को एक निजी पत्र लिखा कि अपने नेतृत्व में मुकाबले की सरकार खड़ी करने का मेरा इरादा कभी नहीं रहा और न मैंने कभी पंच नियत करने पर जिद की; हां उसके इस अधिकार का दावा मैंने अवश्य किया है। मैं तो केवल न्याय चाहता हूं। पूरा पत्र इस तरह है—

"इतनी शीघ्रता से घटनायें घटित होती रही हैं कि मैं आपके २१ जुलाई के कृपा-पत्र का उत्तर भी न दे सका। इस पत्र-व्यवहार में जो सचाई की भावना भरी हुई है उसका मैं कायल हूं। पर पिछली घटनाओं ने उसे भूतकाल का इतिहास बना दिया है और जैसा कि मैंने १३ अगस्त के तार में कहा है कि ये समस्त परिस्थितियां बतलाती हैं कि आपके और हमारे दृष्टिकोण में ही मौलिक अन्तर है।

"मैं तो आपको यह विश्वास दिला सकता हूं कि मैंने बहुत गौर के साथ विचार करने के बाद ही यह निश्चय किया है कि मेरा जो यहां पर उत्तरदायित्व है उसे तथा आपके निश्चय को देखते हुए मुझे गोलमेज-परिषद् में उपस्थित नहीं होना चाहिए। मुझे यह सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ कि आपको यह सुझाया गया है कि मैंने पंच की स्थापना पर अधिक जोर दिया और मैं अपने को प्रतिद्वंद्वी सरकार का मुखिया बनाना चाहता हूं; और आपका निर्णय तो इन्हीं सुझाई बातों के

आधार पर बना है। हां, यह तो सच है कि पंच के सम्बन्ध में मैंने अधिकार के रूप में इसकी मांग की थी; पर यदि आपको मेरी बातचीत याद होगी, तो आप जान लेंगे कि मैंने कभी इसपर जोर नहीं दिया। इसके विपरीत मैंने आपसे यह भी कह दिया था कि यदि मुझे न्याय मिल जायगा—जिसका मैं अधिकारी भी हूं—तो मुझे संतोष हो जायगा। आप इससे सहमत होंगे कि पंच की स्थापना पर जोर बिलकुल दूसरी बात है।

"प्रतिद्वंद्वी सरकार के सम्बन्ध में मुझे खयाल है कि मैंने आपका भ्रम उसी समय दूर कर दिया था जब आपके विनोदपूर्ण उद्गार के उत्तर में मैंने कहा था कि मैं अपने को जिला-अफसर नहीं समझता और मैंने तथा मेरे साथियों ने स्वेच्छा से बने पटेल या गांव के मुखिया का जो कार्य किया है, वह भी जिला-अधिकारियों की जानकारी में और अनुमति से। इसलिए यदि उपर्युक्त दो गलत बातों ने आपके विचारों पर असर डाला हो तो मुझे खेद होगा।

"इस पत्र के लिखने का मेरा अभिप्राय यह दरयाफ्त करना है कि क्या आप अब दिल्ली-समझौते को खतम समझते हैं या गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस के भाग न लेने पर उसे कायम मानते हैं? कांग्रेस-कार्य-समिति ने आज प्रातःकाल निम्नलिखित निश्चय किया है—'१३ अगस्त वाले कार्य-समिति के गोलमेज-परिषद् में भाग न लेने के प्रस्ताव को दृष्टि में रखते हुए समिति यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उस प्रस्ताव से दिल्ली-समझौते का अन्त नहीं समझना चाहिए। अतः सभी कांग्रेसियों और कांग्रेस-संस्थाओं को सलाह देती है कि जब तक और कोई आदेश न दिया जाय, दिल्ली-समझौते की कांग्रेस पर लागू होने वाली शर्तों का पालन किया जाय।'

"इससे आप देखेंगे कि कार्य-समिति इस समय सरकार को परेशान नहीं करना चाहती और वह सच्चाई से दिल्ली-समझौते का पालन करना चाहती है। लेकिन यह सब प्रान्तीय सरकारों की परस्पर सम्बन्ध रखने की मनोवृत्ति पर निर्भर है।

"जैसा कि पत्रों में तथा बातचीत में भी पहले मैं आपको बतला चुका हूं, प्रान्तीय-सरकार की यह पारस्परिकता की वृत्ति दिन-दिन कम-ही-कम दिखाई पड़ी है। कार्य-समिति के दफ्तर में बराबर सरकार के ऐसे कार्यों की इत्तिलायें आ रही हैं जिनका एक ही अर्थ हो सकता है कि सरकार कार्यकर्ताओं और कांग्रेस-आन्दोलन को कुचलना चाहती है।"

गांधी जी ने अपना पत्र इस प्रार्थना के साथ समाप्त किया कि इसका उत्तर जल्दी मिले और यदि दिल्ली-समझौते का पालन मंजूर है, तो मैं कहूंगा कि जो शिकायतें आपके सामने पेश की गई हैं उन पर शीघ्र ही विचार किया जाय; क्योंकि मेरे साथी कार्यकर्त्ता इस पर जोर दे रहे हैं कि यदि शिकायतें दूर नहीं होतीं, तो कम-से-कम आत्म-रक्षा के लिए हमें भी रक्षात्मक उपाय हाथ में लेने की आज्ञा दी जाय। गांधी जी को इसकी कोई चिन्ता न थी कि सरकार कांग्रेस को अपने और जनता के बीच मध्यस्थ स्वीकार नहीं करती। वह सरकार को परेशानी में डालने या उसे अपमानित करना नहीं चाहते थे। लेकिन दरअसल स्थिति यह थी कि सरकार सिविल-सर्विस-वालों के निश्चित विरोध के कारण अस्थायी-सन्धि को तोड़ रही थी, न कि कांग्रेस। गांधी जी आवश्यक और अनावश्यक का भेद जानते थे। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि सिविल-सर्विस के कर्मचारी भारत के पूर्ण स्वतन्त्रता के अधिकार को स्वीकार करने को उद्यत नहीं थे। "इसलिए", गांधीजी कहते थे, "जब तक इस सर्विस के सब कर्मचारियों के खयालात न बदल जायं, पूर्ण स्वाधीनता के लिए कांग्रेस के सन्धि-चर्चा करने की कोई सूरत नहीं है। कांग्रेस को अभी और कष्ट-सहन व बलिदान में से गुजरना होगा, चाहे इस तरीके का कितना ही अधिक मूल्य क्यों न चुकाना पड़े। इसलिए मैं तो अपने लिए बार-

डोली को ही खरी कसौटी मानता हूँ। सिविलियनों की नव्ज देखने के लिए ही इसकी योजना की गई थी। इस दृष्टि से देखने पर यह कोई छोटी बात न थी।"

आशा हुई

गांधी जी ने शिमला से प्राप्त १४ अगस्त के तार से अधिकार पाकर सरकार के विरुद्ध आरोप-सूची को प्रकाशित कर दिया था। कुछ लोगों ने समझा कि गांधी जी ने इसे प्रकाशित कर सरकार को चुनौती दी है। डॉ० सप्रू और श्री जयकर ने 'मुलतान' जहाज से इसी आशय का बेतार का तार दिया और उसमें बताया कि आरोप-सूची के प्रकाशन ने वाइसराय व भारत-मन्त्री के साथ संधि-चर्चा में उन्हें परेशानी में डाल दिया है। गांधी जी तो यहां तक तैयार थे कि कांग्रेस के विरुद्ध लगाये गये आरोपों की इकतरफा जांच किसी निष्पक्ष पंच-द्वारा करा ली जाय। गांधी जी के पत्र का वाइसराय ने जो जवाब दिया, वह भी सन्तोष-जनक न था। वाइसराय ने गत पांच मास की कांग्रेस की कार्रवाइयों का निर्देश करते हुए लिखा था कि वे दिल्ली-समझौते के भाव और अर्थों के प्रतिकूल थीं और शांति-स्थापन के लिए, विशेषतः युक्त-प्रान्त व सीमा-प्रान्त में, बाधक थीं। वाइसराय ने उसमें यह भी लिखा था कि गोलमेज-परिषद् में कांग्रेस का सम्मिलित न होना समझौते के प्रधान उद्देश्य को असफल करना है, लेकिन सरकार विशेष उपायों को तबतक काम में न लायगी जब तक कि वह ऐसा करने को बाध्य न हो जाय। गांधी जी ने समझौता-पालन की वाइसराय की इच्छा का हृदय से स्वागत किया और सब कांग्रेसियों को हिदायत दी कि वे सावधानी से समझौते का पालन करें। उन्होंने इस विषय पर वाइसराय से बातचीत करने के लिए तार-द्वारा मुलाक़ात की अनुमति भी मांगी। मुलाकात की अनुमति मिल गई। इस पर गांधी जी, श्री वल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल जी और गांधी जी के एकाकी मित्र सर प्रभाशंकर पट्टनी वाइसराय से मिले। वाइसराय ने कार्य-कारिणी की बैठक की। आखिर बहुत-सी बाधाओं के बाद मामले किसी तरह सुलझाये गये और गांधीजी शिमला से स्पेशल ट्रेन-द्वारा उस गाड़ी को पकड़ने के लिए रवाना हुए, जो उन्हें २९ अगस्त को रवाना होने वाले जहाज पर सवार करा सके।

इस तरह गांधी जी और भारत-सरकार के प्रतिनिधियों की बातचीतके परिणाम-स्वरूप यह फैसला हुआ कि कांग्रेस की ओर से गांधी जी गोलमेज परिषद् में भाग लें और इसके अनुसार वे बम्बई से २९ अगस्त को जहाज पर रवाना हो गये।

भारत-सरकार ने एक सरकारी विज्ञप्ति में यह समझौता प्रकाशित कर दिया। इसके साथ ही गांधी जी का भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह भी प्रकाशित कर दिया; क्योंकि पत्र भी समझौते के मूलभूत अंग थे। सरकार की विज्ञप्ति और वे पत्र नीचे दिये जाते हैं—

सरकारी विज्ञप्ति

"१. वाइसराय महोदय और गांधी जी की बातचीत के परिणाम-स्वरूप गोलमेज-परिषद् में गांधीजी कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करेंगे।

२. ५ मार्च १९३१ का समझौता चालू है। यदि यह साबित हो गया कि कुछ मामलों में उसका उल्लंघन किया गया है, तो भारत-सरकार व प्रान्तीय-सरकारें उन मामलों में समझौते की खास धाराओं का पालन करावेंगी और यदि उस सम्बन्ध में उनके सामने कोई बात रक्खी जायगी तो उस पर भी अच्छी तरह विचार करेंगी। समझौते के अनुसार कांग्रेस भी अपनी जिम्मेदारी को पूरा करेगी।

३. सूरत जिले में लगान-वसूली के बारे में विचारणीय बात यह है कि क्या बारडोली-ताल्लुका और वालोड़ महाल के जिन गांवों में पुलिस-पार्टी के साथ माल-अफसर जुलाई १९३१ में गये थे, उनमें लगान देने वालों की आर्थिक स्थिति को देखते हुए उनसे पुलिस-द्वारा जबरदस्ती करके बारडोली-ताल्लुके के अन्य गांवों की अपेक्षा अधिक लगान मांगा गया था या उनकी अपेक्षा उनसे अधिक वसूल किया गया ? बम्बई-सरकार से परामर्श करने के बाद और उससे पूर्ण सहमत होते हुए, भारत-सरकार ने यह निश्चय किया है कि इस प्रश्न की जांच की जायगी। जांचका क्षेत्र यह होगा कि—

विचाराधीन गांवों में पुलिस-द्वारा जबरदस्ती और दमन करके खातेदारों को उन गांवों की अपेक्षा जहां ५ मार्च १९३१ के बाद पुलिस की सहायता के बिना वसूली हुई है, बारडोली के दूसरे गांवों में जो अंदाज रक्खा गया था उससे अधिक लगान देने के लिए बाधित किया गया, इस आरोप की जांच करना; और यदि कहीं ऐसा हुआ है, तो ठीक रकम का निर्धारण करना। इन बातोंके अंतर्गत उठनेवाले किसी भी विवाद पर गवाहियां दी जा सकती हैं।

बम्बई-सरकार ने जांच करने के लिए नासिक के कलक्टर मि० आर० सी० गॉर्डन को नियुक्त किया है।

४. कांग्रेस-द्वारा उठाये गये अन्य प्रश्नों के बारे में भारत-सरकार व प्रान्तीय-सरकारें जांच की आज्ञा देने को तैयार नहीं हैं।

५. यदि समझौते के क्षेत्र से बाहर कांग्रेस किसी मामले में नई शिकायतें करे, तो उन शिकायतों पर साधारण शासन-प्रबन्ध के कार्यक्रम और रिवाज के अनुसार सरकार विचार करेगी और यदि जांच का कोई सवाल उठे तो, जांच करनी है या नहीं, और यदि जांच करनी है तो किस तरह से, इन सब बातों का फैसला प्रान्तीय-सरकारें प्रचलित कार्यक्रम और रिवाज के अनुसार करेंगी।"

पत्र-व्यवहार

इमर्सन सा० के नाम गांधीजी का पत्र—शिमला २४ अगस्त १९३१

"आपके इसी तारीख के पत्र और एक नया मसविदा भेजने के लिए धन्यवाद। सर कावसजी ने भी आपके बताये संशोधन भेजने की कृपा की है। मेरे सहकारियों ने व मैंने संशोधित मसविदे पर खूब गौर किया है। नीचे लिखे स्पष्टीकरण के साथ हम आपके संशोधित मसविदे को स्वीकृत करने के लिए तैयार हैं—

चौथे पैराग्राफ में सरकार ने जो स्थिति अख्तियार की है, उसे कांग्रेस की ओर से स्वीकार करना मेरे लिए असम्भव है। क्योंकि हम यह अनुभव करते हैं कि जहां कांग्रेस की सम्मति में समझौते के व्यवहार में पैदा हुई शिकायत दूर नहीं की जाती वहां जांच करना जरूरी हो जाता है। क्योंकि सविनय अवज्ञा-आन्दोलन उसी समय के लिए स्थगित किया गया है, जबतक दिल्ली का समझौता जारी है। लेकिन यदि भारत-सरकार व अन्य प्रान्तीय सरकारें जांच कराने के लिए उद्यत नहीं हैं, तो मेरे सहकारी व मैं इस धारा के रहने देने पर कोई एतराज नहीं करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि कांग्रेस अब से उठाये गये अन्य मामलों के बारे में जांच के लिए जोर नहीं देगी, लेकिन यदि कोई शिकायत इतनी तीव्रता से अनुभव की जा रही हो कि जांच के अभाव में उसे दूर करने के लिए सत्याग्रह के रूप में किसी उपाय को ग्रहण करना आवश्यक हो जाय, तो कांग्रेस सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के स्थगित रहते हुए भी उसे करने के लिए स्वतन्त्र होगी।

मैं सरकार को यह आश्वासन दिलाने की जरूरत नहीं समझता कि कांग्रेस का निरन्तर प्रयत्न यह रहेगा कि सीधे बार से बचें और विचार-विनिमय, समझाना-बुझाना आदि उपायों से शिकायत

दूर करायें। कांग्रेस की स्थिति का उल्लेख यहां इसलिए आवश्यक हो गया है कि भविष्य में कोई संभावित गलतफहमी या कांग्रेस पर समझौता-उल्लंघन का आरोप न हो सके। वर्तमान बातचीत के सफल होने की हालत में मेरा खयाल है कि यह विज्ञप्ति, यह पत्र और आपका उत्तर एकसाथ प्रकाशित कर दिये जायंगे।"

इमर्सन सा० का उत्तर—२७ अगस्त १९३१

"आज की तारीख के पत्र के लिए धन्यवाद, जिसमें आपने अपने पत्र में लिखे स्पष्टीकरण के साथ विज्ञप्ति के मसविदे को स्वीकार कर लिया है। कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल ने इस बात को ध्यान में ले लिया है कि अब आगे से उठाये गये मामलों में जांच पर जोर देने का इरादा कांग्रेस का नहीं है। लेकिन जहां आप यह आश्वासन देते हैं कि कांग्रेस हमेशा सीधे वार से बचने और आपसी बातचीत, समझाना-बुझाना आदि तरीकों से ही अपनी शिकायत दूर कराने का सतत प्रयत्न करेगी, वहां आप भविष्य में यदि कांग्रेस कोई कार्रवाई करने का निश्चय करे तो उसकी स्थिति भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं। मुझे यह कहना है कि कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल आपके साथ इस आशा में सम्मिलित होते हैं कि सीधे वार के लिए कोई मौका नहीं आयगा। जहांतक सरकार के सामान्य रुख की बात है, मैं वाइसराय के ९ अगस्त को लिखे हुए पत्र का निर्देश करता हूं। सरकारी विज्ञप्ति, आपका आज की तारीख का पत्र और यह उत्तर सरकार एकसाथ प्रकाशित कर देगी।"

इससे पाठक जान गये होंगे कि बारडोली की जांच का निश्चय हो गया तथा अन्य ऐसी विद्यमान शिकायतों के बारे में, जिनकी सरकार कोई सुनाई न करे, दिल्ली-समझौते के जारी रहते हुए भी कांग्रेस ने रक्षणात्मक-प्रहार करने के अपने अधिकार को बहाल रक्खा। आगे पैदा होनेवाली दिक्कतों का कोई निश्चित हल नहीं सोचा गया, उनकी जांच हो भी सकती थी और नहीं भी। जहां जांच न हो और दिक्कत भी दूर न की जाय, वहां यदि कांग्रेस चाहे तो जनता के अधिकारों की रक्षा के लिए कोई सीधा वार भी कर सकती थी। साथ ही कांग्रेस-संस्थाओं और कांग्रेसियों को यह ध्यान में रखना था कि दिल्ली-समझौता जारी है और राष्ट्रपति को सूचित किये बिना वे अपनी ओर से समझौते का कोई भी उल्लंघन न करेंगे। जहां सरकार या उसके अधिकारियों के प्रति कोई शिकायत हो, शान्ति के साथ समझा-बुझाकर उसे दूर करने की हर तरह कोशिश की जाय। जहां इस प्रकार की कोशिशों में सफलता न मिले,वहां राष्ट्रपति को उसकी सूचना दी जाय और उनसे सलाह मांगी जाय।

गांधीजी ने जिस आरोप-सूची में सरकार के विरुद्ध कुछ मौजूदा शिकायतों का उल्लेख किया था और सरकार ने जिसका जवाब दिया था, उन मामलों से सम्बन्ध रखनेवाली सब कांग्रेस-कमिटियों से कहा गया कि वे सरकार के उत्तर पर अच्छी तरह विचार करें और अपना उत्तर महासमिति के पास अहमदाबाद भेजें। समझौते के और जो उल्लंघन हों या और कोई नई शिकायत पेश हो, तो वह भी जल्दी ही राष्ट्रपति के पास भेजी जाय।

लन्दन को रवाना

गांधीजी लन्दन को चल पड़े, लेकिन असाधारण आशावादी होते हुए भी उन्हें सफलता की उम्मीद न थी। फिर भी उन्होंने उम्मीद की थी कि प्रान्तीय-सरकारें, सिविल-सर्विसवाले और अंग्रेज व्यापारिक कम्पनियां कांग्रेस की उद्देश्य-पूर्ति में सहायक होंगी। कार्य-समिति ने ११ सितम्बर १९३१ को अहमदाबाद में गांधीजी व राष्ट्रपति के शिमला में सरकार के साथ किये गये नये समझौते में पड़ने की कार्रवाई का समर्थन किया। कार्य-समिति ने इस बैठक में एक और महत्वपूर्ण निर्णय किया। सभी उद्योग-धन्धों से और विशेषकर कपड़े के कारखाने से कोयले की उन भारतीय खानों का कोयला बरतने

की सिफारिश की गई, जो इस आशय की प्रतिज्ञा करें कि वे जनता की भावनाओं से सहानुभूति रक्खेंगी; पूंजी व डाइरेक्टरों में ७५ फी सदी भारतीयता होगी; मैनेजिंग एजेण्ट के कारोबार में विदेशी स्वार्थ न होंगे; अपने दाम और माल की जात का ठीक इन्तजाम रखकर स्वदेशी के प्रचार में सहायता देंगी, उनके अधिकारी राष्ट्रीय-आन्दोलन के विरोधी प्रचार में न लगेंगे, विशेष कारणों के बिना केवल भारतीय ही नियुक्त किये जायंगे, बीमा, बैंकिंग और जहाजी काम-काज भारतीय कंपनियों में ही करेंगी, और इसी तरह आय-व्यय-परीक्षक, सॉलिसिटर, जहाजी एजेण्ट तथा ठेकेदार सब भारतीय ही रक्खे जायंगे, यथासम्भव भारत में बनी चीजें ही व्यापार के लिए खरीदी जायंगी, प्रबन्ध-कर्त्ता लोग स्वदेशी कपड़ा ही पहनेंगे, खानों के मजदूरों को सन्तोष-जनक मजदूरी दी जायगी, और उनके काम व रहन-सहन की दशा भी ठीक की जायगी तथा स्थानों के परीक्षित बैलेन्स-शीट प्रतिवर्ष कांग्रेस को भेजे जायंगे।

अक्तूबर व नवम्बर में भारत और इंग्लैंड में होनेवाली सनसनीखेज घटनाओं की ओर बढ़ने से पहले हमें गांधीजी और उनकी यात्रा का हाल भी जान लेना चाहिए। गांधीजी के साथ श्रीमहादेव देसाई, देवदास गांधी, प्यारेलाल और श्रीमती मीराबहन थे। श्रीमती सरोजिनी नायडू भी उनके साथ थीं। जो सामान अपने साथ ले जाने की उन्हें अनुमति मिली थी, उसका वर्णन करने की कोई आवश्यकता न थी। सूचना का समय थोड़ा होने और यात्रा के अनिश्चित होने के कारण वह काफी थोड़ा था, लेकिन गांधीजी की सतर्क व कठोर दृष्टि ने उसे और भी थोड़ा कर दिया। अदन में उनका हार्दिक स्वागत हुआ, जहां अरबों व भारतीयों ने कुछ दिक्कत के बाद उन्हें एक साथ अभिनन्दन-पत्र दिया। रेजिडेन्ट सभा में राष्ट्रीय झण्डा-फहराने नहीं देना चाहता था, और उन बेचारों को ही क्या हिम्मत थी कि वे इस पर आग्रह करते। तब गांधीजी ने स्वयं ही यह गुत्थी सुलझाई और उन्होंने स्वागत समिति के अध्यक्ष श्री फरामरोज कावसजी को यह सुझाया कि वह रेजिडेण्ट को फोन पर यह कहें कि इन परिस्थितियों में गांधीजी अभिनन्दन-पत्र लेना स्वीकृत नहीं करेंगे, कांग्रेस और भारत-सरकार में अस्थायी सन्धि हो चुकी है, सरकार को केवल इसी कारण झण्डे पर आपत्ति न करना चाहिए। यह दलील काम कर गई और रेजिडेण्ट ने जहां गांधीजी को मानपत्र देना था उस स्थान पर भारत का राष्ट्रीय झण्डा फहराने की अनुमति देकर विषम स्थिति को सम्हाल लिया।

"मानपत्र का उत्तर देते हुए और ३२८ गिनी की थैली के लिए, जो उन्हें भेंट दी गई थी, उन्हें धन्यवाद देते हुए गांधीजी ने कहा—

"आपने जो मेरी इज्जत की है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। मैं जानता हूं कि यह सम्मान व्यक्तिशः मेरा या मेरे साथियों का नहीं है, वरन् कांग्रेस का है जिसका प्रतिनिधित्व आशा है कि मैं गोलमेज-परिषद् में कर सकूंगा। मुझे मालूम हुआ है कि अभिनन्दन-पत्र के इस कार्य-क्रम में आपके सामने राष्ट्रीय-झण्डे के कारण कुछ रुकावट थी। अब मेरे लिए तो भारतीयों की ऐसी सभा की, खासकर जब कि राष्ट्रीय नेता निमंत्रित किये गये हों, कल्पना करना ही असंभव है, जहांपर राष्ट्रीय झण्डा न फहराता हो। आप जानते हैं कि राष्ट्रीय झण्डे के सम्मान की रक्षा में बहुतों ने लाठियां खाई हैं और कइयों ने अपने प्राण तक दे दिये हैं, इसलिए आप राष्ट्रीय-झण्डे का सम्मान किये बिना किसी भारतीय नेता की इज्जत नहीं कर सकते। फिर सरकार और कांग्रेस के बीच समझौता हो चुका है और कांग्रेस इस समय उसका विरोधी-दल नहीं बल्कि मित्र के समान एक दल है। इसलिए राष्ट्रीय झण्डे का केवल फहराना सहन कर लेना या उसकी इजाजत दे देना ही काफी नहीं है, वरन् जहां कांग्रेस के प्रतिनिधि निमंत्रित किये जायं वहां उसे सम्मान का स्थान देना चाहिये।"

जहाज पर भी गांधीजी उसी तरह अपनी प्रार्थना, अपना चरखा और बालकों के साथ अपना मनोरंजन आदि साधारण जीवन व्यतीत करते रहे, जैसे आश्रम में करते थे। गांधीजी को श्रीमती जगलुलपाशा और वफ्दपार्टी के अध्यक्ष नहसपाशा ने बधाई भेजी। पहले का संदेश तो स्वभावतः हृदयस्पर्शी था, और दूसरे का हार्दिक उत्साह इस उद्धरण से ज्ञात हो जायगा—

"अपनी स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के लिए लड़ते हुए मिश्र के नाम पर मैं उसी स्वाधीनता के लिए लड़नेवाले भारत के सर्व-प्रधान नेता का स्वागत करता हूं। मेरी हार्दिक कामना है कि आप की यह यात्रा सकुशल समाप्त हो और आप प्रसन्नता पूर्वक लौटें। मैं ईश्वर से भी प्रार्थना करता हूं कि आप जब वहां से लौटकर स्वदेश जाने लगेंगे, तब मुझे आपसे मिलने की खुशी हासिल होगी। ईश्वर आपको चिरायु करे और आपके प्रयत्नों में आपको व्यापक तथा स्थायी विजय दे।"

मिश्री शिष्ट-मण्डल को पोर्टसईद पर गांधीजी से मिलने की आज्ञा नहीं दी गई, लेकिन कैरो पर भारतीयों के शिष्ट-मण्डल को उनसे मिलने दिया गया। बहुत दिक्कत के बाद नहसपाशा का एक प्रतिनिधि गांधीजी से मिल सका।

जब गांधीजी मार्सेलीज पहुंचे, श्री रोम्यां रोलां की बहन मैडलीन रोलां उनका उत्साह-पूर्वक स्वागत करने के लिए प्रतीक्षा कर रही थीं। रोम्यां रोलां अस्वस्थ होने के कारण स्वयं उपस्थित न हो सके थे। मैडलीन रोलां के साथ मोशियर प्रिवे व उनकी सुपत्नी भी थीं। मो० प्रिवे स्विजरलैण्ड के एक अध्यापक हैं, जिन्हें भारत-सरकार ने पीछे १९२२-२३ के आन्दोलन में मामूली तथा संदिग्ध अध्यापक कहकर प्रसिद्ध कर दिया था। कितने ही फ्रांसीसी विद्यार्थियों ने भी गांधीजी का अभिनंदन किया। गांधीजी लन्दन के ईस्ट-एन्डवाले सार्वजनिक गृहों तथा गरीबों के मैले घरों के बीच मिस म्यूरियल लिस्टर के यहां किंग्सले-हाल में ठहरे। लन्दन में उन्हें ठहरने के लिए बहुत-से निमंत्रण मिले और इससे भी ज्यादा निमंत्रण गांवों में उन्हें सप्ताह का अन्तिम भाग शान्ति से बिताने के लिए मिले। एक मित्र ने एक दिन यूस्टन-रोड पर स्थित मित्र-सभा-भवन (Friend's Meeting House) में दिये गांधीजी के भाषण व किंग्सले-हाल से न्यूयार्क को ब्रॉडकास्ट-द्वारा भेजे गये संदेश की रिपोर्ट 'टाइम्स' में पढ़कर ५० पौंड का चेक ही भेज दिया था।

परिषद् में

गांधीजीने लन्दन में वेस्ट-एन्ड की अपेक्षा ईस्ट-एन्ड को, ब्रिटिश-सरकार के आतिथ्य की अपेक्षा मिस म्यूरियल लिस्टर के आतिथ्य को, और धनी लोगों की संगति की अपेक्षा दरिद्रों की संगति को, अधिक पसन्द किया था। 'चचा गांधी'—हिन्दुस्तानी चप्पल के सिवा नंगे पैर, कमीज नदारद, सिर्फ चादर ओढ़े हुए—ईस्ट-एन्ड के बालकों में इतने प्रिय हो गये थे कि वे प्रति दिन प्रातःकाल आकर उनको घेर लेते थे। गांधीजी और उनकी शाम की प्रार्थनायें, लंकाशायर के मजदूरों के एकसमान अतिथि के रूप में गांधीजी, गांधीजी और उनकी ब्रिटिश-सम्राट् से अपनी मामूली पोशाक में भेंट—ये सब ऐसी बातें हैं जिनका कांग्रेस के इतिहास से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है, लेकिन जो भारतीयों के लिए बहुत दिलचस्पी की हैं, जो जीवन को अविभाज्य मानते हैं कि जीवन विभिन्न विभागों में—जैसा कि आजकल समझने की प्रथा चल पड़ी है—नहीं बांटा जा सकता है।

गोलमेज परिषद् में गांधीजी एक ऐसे व्यक्ति थे जिनकी ओर हमारा ध्यान गये बिना नहीं रह सकता। फेडरल स्ट्रक्चर कमिटी में दिये गये उनके भाषण को लन्दन में दिये गये उनके अन्य भाषणों की उत्तम भूमिका कह सकते हैं। उन्होंने कांग्रेस, उसका इतिहास, उसकी रचना, उसके साधन, उसके उद्देश्य आदि सबका संक्षिप्त परिचय नपे-तुले शब्दों में दिया। कोई बात छूटने न

पाई। उनके इसी परिचय को हमने वस्तुतः इस पुस्तक की भूमिका बनाया है। उन्होंने कांग्रेस के जन्मकालीन सहायक और पालन-पोषणकर्ता मि० ए० ओ० ह्यूम के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने कांग्रेस व सरकार तथा कांग्रेस तथा अन्य दलों के आधार-भूत भेदों का निर्देश किया। उन्होंने करांची का प्रस्ताव पढ़कर उसकी व्याख्या की। उन्होंने यह भी बताया कि प्रधान मन्त्री का वक्तव्य, केन्द्रीय उत्तरदायित्व,संघ तथा भारतीय हितों की दृष्टि से संरक्षण, इन तीन किरणों से चित्रित भारतीय ध्येय से बहुत कम है। उन्होंने वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता पर भी—जो केवल राजनैतिक विधान नहीं है, परन्तु दो समान राष्ट्रों की भागीदारी की योजना है—विचार प्रकट किये। उन्होंने 'ब्रिटिश प्रजाजन' की अपनी पहली स्थिति और 'बागी' की आधुनिक स्थिति में, साम्राज्य के और राष्ट्र-समूह (कामनवेल्थ) के आदर्शों में कितना भेद है, यह बताया। उन्होंने किसी दुकान की व्यवस्था बदलने के समय का उदाहरण दिया और उस समय दुकान के लेन-देन आदि का हिसाब समझने-समझाने के तरीके का जिक्र किया और अन्त में उन्होंने यह आश्वासन दिया कि हम इंग्लैण्ड के घरेलू संकट में दस्तन्दाजी करनेवाले नहीं हैं। लेकिन यह तभी सम्भव है जब कि इंग्लैण्ड भारत को शक्ति-बल से नहीं, बल्कि प्रेम-रूपी डोरी से बांधा हुआ रक्खे। ऐसा भारत इंग्लैंड के एक साल के बजट को ही नहीं, कई सालों के बजट को ठीक करने में सहायक सिद्ध होगा।

अल्प संख्यक-समिति में भाषण देते हुए गांधीजी ने कई खरी बातें पेश कीं। उन्होंने असंदिग्ध भाषा में यह कहते हुए स्थिति को बिलकुल साफ कर दिया कि विभिन्न जातियों को अपने पूरे बल के साथ अपनी-अपनी मांग पर जोर देने के लिए उत्साहित किया गया है। उन्होंने यह भी कहा कि यही प्रश्न आधार-रूप नहीं है, हमारे सामने मुख्य प्रश्न तो शासन-विधान का निर्माण है। उन्होंने पूछा कि क्या प्रतिनिधियों को अपने घरों से ६००० मील केवल साम्प्रदायिक प्रश्न हल करने के लिए ही बुलाया गया है? हमें लन्दन में इसलिए निमंत्रित किया गया है कि हमें जाने से पहले यह संतोष हो जाय कि भारत की स्वतन्त्रता के लिए हम सम्मान-युक्त व असली ढांचा तैयार कर चुके हैं और अब उसपर केवल पार्लमेण्ट की स्वीकृति लेनी रह गई है। उन्होंने सर ह्यूबर्ट कार की अल्पसंख्यक जातियों की योजना की चुटकी लेते हुए कहा कि सर ह्यूबर्ट कार तथा उनके साथियों को इससे जो संतोष हुआ है वह मैं उनसे न छीनूंगा, लेकिन मेरे विचार में उन्होंने जो-कुछ किया है वह मुर्दे की चीर-फाड़ जैसा ही है। सरकार की यह योजना उत्तरदायित्व पूर्ण शासन अर्थात् स्वराज्य-प्राप्ति के लिए नहीं किन्तु नौकरशाही की सत्ता में भाग लेने के लिए ही बनाई गई है। "मैं उनकी सफलता चाहता हूं", उन्होंने कहा—"लेकिन कांग्रेस इससे बिलकुल अलग रहेगी। किसी ऐसे प्रस्ताव या योजना पर, जिससे कि खुली हवा में पैदा होनेवाला आजादी और उत्तरदायी शासन का वृक्ष कभी पनप न सकेगा, अपनी सहमति प्रकट करने की अपेक्षा कांग्रेस चाहे कितने वर्ष जंगल में भटकना स्वीकार कर लेगी।" अन्त में उन्होंने उस कठिन प्रतिज्ञा के साथ अपना भाषण समाप्त किया, जिस पर कुछ समय बाद उन्होंने अपने जीवन की बाजी लगा दी थी। उन्होंने कहा—"अस्पृश्य कहे जानेवालों के प्रति एक शब्द और। अन्य अल्पसंख्यक जातियों के भावों को मैं समझ सकता हूं, लेकिन अछूतों की ओर से पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक निरंतर रहेगा।......हम नहीं चाहते कि अस्पृश्यों का एक पृथक् जाति के रूप में वर्गीकरण किया जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और ईसाई हमेशा के लिए ईसाई रह सकते हैं। लेकिन क्या अछूत भी सदा के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू-

धर्म ही डूब जाय। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं वे भारत को नहीं जानते, और हिंदू-समाज का निर्माण किस प्रकार हुआ है, यह भी नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहता हूं कि इस बात का विरोध करनेवाला यदि सिर्फ मैं ही अकेला होऊं तो भी, अपने प्राणों को बाजी लगा कर भी, मैं इसका विरोध करूंगा।''

गांधीजी प्रधानमन्त्री को पंच बनाने के विरोधी नहीं थे, बशर्ते कि उनका निर्णय मुसलमानों और सिक्खों तक सीमित हो। अन्य जातियों के पृथक् प्रतिनिधित्व से वे सहमत न थे। प्रधानमन्त्री ने इस विषय पर एक सीधा-सादा सवाल किया—"क्या आप, आपमें से प्रत्येक — कमिटी का प्रत्येक सदस्य—साम्प्रदायिक समस्या का हल निकालने और उससे अपने को बाधित मानने के लिए मेरे पास प्रार्थना-पत्र भेजेंगे? मेरा ख्याल है कि यह बहुत अच्छा प्रस्ताव है।" पाठक यह न भूले होंगे कि प्रधान-मन्त्री का यह निर्णय जब जून १९३२ में प्रकाशित हुआ था, तब यह सवाल भी हुआ था कि ह्वाइट-पेपर के अन्य प्रस्तावों के साथ यह भी सरकार का प्रस्ताव है, या यह प्रधान-मन्त्री का निर्णय (Award) है? गोलमेज-परिषद् के सब सदस्यों ने इस किस्म के प्रार्थना-पत्र पर हस्ताक्षर नहीं किये थे, इसलिए पंच की हैसियत से निर्णय दिया ही नहीं जा सकता था और इसलिए यह निश्चय भी एक प्रस्ताव-मात्र था और इसे ब्रह्मवाक्य नहीं माना जा सकता।

गांधीजी का रुख

१८ नवम्बर १९३१ तक मंत्रि-मण्डल गोलमेज-परिषद् से ऊब चुका था। इस दिन लॉर्ड सैंकी ने प्रधान-मंत्री का यह इरादा सुनाकर सबको चकित कर दिया कि भाषणों के बाद कमिटी को विसर्जन कर दिया जाय और आगामी सप्ताह खुली बैठक की जाय। विरोधी-दल की ओर से बोलते हुए मि० बेन ने इसका यह कहकर विरोध किया कि सरकार परिषद् की हत्या कर रही है। सर सेम्युअल होर ने कहा कि हमें वस्तुस्थिति का ध्यान रखना चाहिये और यह अनुभव करना चाहिये कि इन परिस्थितियों में यह मामला यहीं बन्द कर भावी कार्य-विधि के सिलसिले में प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य की प्रतीक्षा करना अधिक श्रेयस्कर है। सेना के सवाल पर बहस हुई और गांधीजी ने इस विषय पर भी कुछ और स्पष्ट बातें कहीं। लेकिन उससे पहले उन्होंने यह भी कहा कि जरूरत हुई तो मैं इंग्लैंड में अधिक समय तक ठहरने का विचार रखता हूं, क्योंकि मैं तो लन्दन आया ही इसलिए हूं कि सम्मान-युक्त समझौते का प्रत्येक सम्भव उपाय खोजने का प्रयत्न करूं। उन्होंने जोर के साथ यह कहा कि कांग्रेस उत्तरदायी-शासन से आनेवाली सब प्रकार की जिम्मेदारियों को—रक्षा का पूर्ण अधिकार और वैदेशिक मामले तक—आवश्यक हेर-फेर और व्यवस्था के साथ अपने कन्धों पर उठाने के योग्य है। उन्होंने इसका भी निर्देश किया कि भारत की सेना वस्तुतः देश पर अधिकार जमाये रखने के लिए है। उसके सैनिक चाहे किसी जाति के हों, मेरे लिए सब विदेशी हैं; क्योंकि मैं उनसे बोल नहीं सकता, वे खुले तौर पर मेरे पास आ नहीं सकते, और उन्हें यह सिखाया जाता है कि वे कांग्रेसियों को अपना देश-भाई न समझें। "इन सैनिकों और हमारे बीच एक पूरी दीवार खड़ी कर दी गई है।" अंग्रेजी सेना यहां पर अंग्रेजों के "—स्वार्थों की रक्षा के लिए, विदेशियों के हमलों को रोकने के व आन्तरिक विद्रोह के दमन के लिए रक्खी गई है।" वस्तुतः केवल अंग्रेजी फौज के ही नहीं, सम्पूर्ण सेना (भारतीय सेना) रखने के भी यही हेतु हैं। लेकिन अंग्रेजी फौज के हिन्दुस्तान में रखने का उद्देश्य इन विभिन्न भारतीय सैनिकों में सन्तुलन रखना है। सम्पूर्ण सेना पर पूरा-पूरा भारतीय अधिकार होना चाहिए। लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि वह सेना मेरा आदेश नहीं मानेगी, न प्रधान सेनापति और न सिक्ख या राजपूत ही मेरी आज्ञा मानेंगे,

"किन्तु फिर भी मैं आशा करता हूं कि ब्रिटिश-जनता की सद्भावना से मैं अपने आदेश और आज्ञा का पालन उनसे करा सकूंगा। अंग्रेजी फौजी को भी यह कहा जा सकेगा कि अब तुम यहां अंग्रेजों के स्वार्थों की रक्षा के लिए नहीं, लेकिन भारत को विदेशी आक्रमण से बचाने के लिए हो।" यह सब मेरा स्वप्न है। मैं जानता हूं कि मैं ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों या जनता से इस स्वप्न को पूर्ण न करा सकूंगा; लेकिन जबतक मेरा यह स्वप्न पूरा न होगा, फौज पर अधिकार न पा सका तो जिन्दगी-भर इसके पूर्ण होने की प्रतीक्षा करूंगा। भारत अपनी रक्षा करना जानता है। मुसलमान, गुरखे, सिक्ख और राजपूत हिन्दुस्तान की हिफाजत कर सकते हैं। राजपूत तो ग्रीस की एक छोटी-सी थर्मापोली नहीं, हजारों थर्मापोलियों के जन्मदाता कहे जाते हैं।

सच बात तो यह है कि किसी दिन गांधी जी अंग्रेजों और उनकी कर्तव्य-बुद्धि पर विश्वास करते थे। उन्होंने कहा—"हमें अंग्रेजों के हृदय में भारत के प्रति उस प्रेम-भाव का संचार कर देना चाहिए, जिससे भारत अपने पैरों पर खड़ा हो सके। यदि अंग्रेज लोगों का यह खयाल है कि ऐसा होने के लिए अभी एक सदी दरकार है, तो इस सदी-भर कांग्रेस बयाबान में भटकती रहेगी, उसे भयंकर अग्नि-परीक्षा में होकर गुजरना होगा, आपदाओं के तूफान और गलतफहमियों के बवण्डर का मुकाबला करना होगा, और यदि परमात्मा की इच्छा हुई तो गोलियों की बौछार भी सहनी पड़ेगी।" संरक्षणों पर बोलते हुए उन्होंने कहा कि "यद्यपि उनके भारत के हित में होने की बात लिखी गई है, फिर भी मैं लॉर्ड अर्विन के इस कथन की पुष्टि करना चाहता हूं कि 'गांधी ने भी यह मान लिया है कि संरक्षण भारत और इंग्लैण्ड दोनों के हितों की रक्षा के लिए हों।' मैं फिर कहता हूं कि मैं एक भी ऐसे संरक्षण की कल्पना नहीं करता, जो केवल भारत के हित में होगा। कोई भी ऐसा संरक्षण नहीं है, जो साथ-साथ ब्रिटिश-स्वार्थों की भी रक्षा न करे, बशर्ते कि हम साझेदारी—इच्छित और सर्वथा बराबरी के दर्जे की साझेदारी—की कल्पना करें।" गोलमेज-परिषद् के खुले अधिवेशन में बोलते हुए उन्होंने उपस्थित लोगों के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि मैं इस भ्रम में नहीं हूं कि आजादी बहस-मुबाहसे एवं सन्धि-चर्चा से मिल सकती है। लेकिन मैं यह जरूर कहूंगा कि जब यह घोषणा हो चुकी है कि परिषदों या कमिटियों में फैसले की कसौटी बहुमत नहीं रक्खी जायगी, तब परिषद् के संयोजक ऐसी कमिटियों की एक के बाद दूसरी रिपोर्ट पर 'बहुमत की सम्मति' कैसे लिखते हैं और मतभेद रखनेवाले 'एक' के नाम तक का उल्लेख नहीं करते ? वह 'एक' कौन है ? क्या यहां उपस्थित दलों में से कांग्रेस भी एक दल है ? मैं पहले भी यह दावा कर चुका हूं कि कांग्रेस ८५ फी सदी जनता की प्रतिनिधि है। अब मैं यह दावा करता हूं कि अपनी सेवा के अधिकार से कांग्रेस राजाओं, जमींदारों और शिक्षित-वर्ग की भी प्रतिनिधि है। अन्य सब प्रतिनिधि खास-खास वर्गों के प्रतिनिधि होकर आये हैं; कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है जो साम्प्रदायिकता से दूर है। इसका मंच सबके लिए—जाति, वर्ण और धर्म के भेदभाव का खयाल किये बिना—एकसा खुला है। इसका ध्येय बहुत ऊंचा है, इसलिए यह सम्भव है कि कुछ लोग इसके पास न आते हों; लेकिन कांग्रेस उन्नतिशील संस्था है; दूर-दूर गांवों में इसका प्रचार हो रहा है। फिर भी इसे अनेक दलों में से एक दल माना गया है। लेकिन यह भी याद कर लेना चाहिए कि यही एकमात्र ऐसी संस्था है, जिससे किया फैसला कारआमद हो सकता है; क्योंकि यह साम्प्रदायिक पक्षपात से ऊपर उठी हुई संस्था है। कुछ लोग अनुभव कर रहे थे कि कांग्रेस मुकाबले की सरकार चलाने की कोशिश कर रही है। अच्छा। यदि कांग्रेस हत्यारे के छुरे, जहरीले प्याले, गोलियों और भालों के मार्ग को छोड़कर अहिंसा-पूर्वक मुकाबले की सरकार चला सकती है, तो इसमें बुरा क्या है ? यह ठीक है कि कलकत्ता-कारपोरेशन

पर एक लाञ्छन लगाया गया था, परन्तु यह मानना पड़ेगा कि ज्योंहीं उस बात के सम्बन्ध में मेयर का ध्यान आकर्षित किया गया, उन्होंने अपनी भूल स्वीकार करली और उस सम्बन्ध में यथोचित परिमार्जन भी किया था। कांग्रेस हिंसा नहीं, अहिंसा को मानती है; इसलिए सविनय अवज्ञा-आन्दोलन जारी किया गया। इसे भी तो सरकार ने बरदाश्त नहीं किया। परन्तु उसका मुकाबला भी नहीं किया जा सकता था—स्वयं जनरल स्मट्स भी नहीं कर सके। १९०८ में जो भारतीयों को देने से इन्कार किया जाता था, १९१४ में वही दे देना पड़ा। बोरसद व बारडोली में सत्याग्रह सफल हुआ है। लॉर्ड चेम्सफोर्ड भी इसे स्वीकार कर चुके हैं। इंग्लैण्ड में प्रोफेसर गिलबर्ट मरे जैसे कुछ आदमी भी हैं, जो मुझे कहते हैं कि आप यह खयाल न करें कि जब भारतीयों को कष्ट-सहन करना पड़ता है तब अंग्रेज लोग दुःखी नहीं होते। लॉर्ड अर्विन ने आर्डिनेन्सों के द्वारा देश को खूब तपाया है, लेकिन उन्हें सफलता नहीं मिली। "समय रहते हुए, मैं चाहता हूं, आप समझें कि कांग्रेस का ध्येय क्या है। स्वतंत्रता इसका ध्येय है, चाहे फिर आप इसको कोई भी नाम दें।" दिक्कत तो यही है कि यहां कोई एकमत नहीं और न परिषद् ने शब्दों और भावों की निश्चित व्याख्या कर रक्खी है। जब शब्द विभिन्न लोगों के लिए विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होने लगते हैं तब किसी एक बात पर आकर टिकना असम्भव हो जाता है। एक मित्र ने वेस्टमिनिस्टर के विधान की ओर ध्यान खींचते हुए मुझसे पूछा कि क्या मैंने उपनिवेश शब्द की परिभाषा पर गौर किया है? हां, मैंने किया है। उपनिवेश गिना दिये हैं, लेकिन उस शब्द की परिभाषा नहीं की गई। भारत के सम्बन्ध में तो वे १९२६ की निम्न-लिखित आशय की परिभाषा को भी स्वीकार नहीं करना चाहते—

"उपनिवेश वे स्वतंत्र देश हैं, जो ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत हों, उनका दर्जा एक समान हो, घरेलू व बाहरी किसी भी पहलू से वे एक-दूसरे के अधीन न हों, यद्यपि सम्राट् के प्रति एक-समान राजभक्ति के सूत्र से परस्पर बंधे हों और स्वतंत्रतापूर्वक ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह (कामनवेल्थ) के सदस्यों में सम्मिलित हुए हों।"

मिश्र इनमें नहीं है। भारत भी उसकी परिधि में न था। अतः गांधीजी को चिन्ता न थी। वे तो पूर्ण-स्वतंत्रता चाहते थे। एक अंग्रेज राजनीतिज्ञ ने उनसे कहा था कि आपकी पूर्ण-स्वतंत्रता का अर्थ क्या है—क्या इंग्लैण्ड से साझेदारी? हां, दोनों के पारस्परिक हितों के लिए साझेदारी। गांधीजी तो केवल मित्रता चाहते थे। ३५ करोड़ जनता के राष्ट्र को हत्यारे के छुरों, जहरीले प्यालों, तलवारों, भालों या गोलियों की आवश्यकता नहीं है। उसे तो अपने संकल्प की जरूरत है। 'नहीं' करने की शक्ति की आवश्यकता है। और वह आज 'नहीं' कहना सीख रहा है। संरक्षणों का जिक्र करते हुए गांधीजी ने कहा कि "मुझे तीन विशेषज्ञों ने बताया है कि जहां देश की ८० फी-सदी आय इस तरह गिरवी रख दी गई है, जिसके कि वापस आने की कोई संभावना नहीं, वहां किन्हीं उत्तर-दायी मंत्रियों के लिए शासन-तंत्र चलाना असम्भव है। मैं भारत के अनुचित कानूनी हितों की रक्षा नहीं चाहता। अकेले भारत के लिए लाभप्रद और ब्रिटिश हितों के लिए हानिकारक संरक्षण भी मैं नहीं चाहता। जैसे सर सेम्युअल होर और मैं संरक्षणों पर सहमत नहीं हो सकते वैसे ही श्री जयकर और मैं भी इसपर सहमत नहीं हुए। भारत अनेक समस्याओं को—प्लेग, मलेरिया, सांप, बिच्छू और शेरों की समस्याओं को—पार कर गया है। वह घबरा नहीं जायगा। परमात्मा के नाम पर मुझ ६२ साल के दुबले-पतले आदमी को थोड़ा-सा तो मौका दो। मुझे और जिस संस्था का मैं प्रतिनिधि हूं उसके लिए, अपने हृदय के कोने में थोड़ा स्थान तो बनाओ। यद्यपि आप मुझपर विश्वास करते प्रतीत होते हैं, तथापि कांग्रेस पर अविश्वास करते हैं। परन्तु एक क्षण के लिए भी

आप मुझे उस महान् संस्था से भिन्न न समझिए जिसमें कि मैं तो समुद्र की एक बूंद के समान हूं। मैं कांग्रेस से बहुत छोटा हूं; और यदि आप मुझपर विश्वास कर मुझे कोई जगह दें, तो मैं आपको आमन्त्रित करता हूं कि आप कांग्रेस पर भी विश्वास कीजिए, अन्यथा मुझपर आपका जो विश्वास है वह किसी काम का नहीं; क्योंकि कांग्रेस से जो अधिकार मुझे मिला है उसके सिवा मेरे पास कोई अधिकार नहीं। यदि आप कांग्रेस की प्रतिष्ठा के अनुकूल काम करेंगे, तो आप आतंकवाद को नमस्कार कर लेंगे। तब आपको उसे दबाने के लिए अपने आतंकवाद की कोई जरूरत न रहेगी। आज तो आपको अपने व्यवस्थित और संगठित आतंकवाद के द्वारा वहां पर विद्यमान आतंकवाद से लड़ना है; क्योंकि आप वास्तविकता से अथवा ईश्वरी-संकेत से अपरिचित हैं। क्या आप उस संकेत को नहीं देखते, जो ये क्रान्तिकारी अपने रक्त से लिख रहे हैं? क्या आप यह नहीं देखेंगे कि हम गेहूं की बनी हुई रोटी नहीं बल्कि आजादी की रोटी चाहते हैं, और जबतक रोटी नहीं मिल जाती, ऐसे हजारों लोग मौजूद हैं, जो इस बात के लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं कि उस वक्त तक न तो खुद शान्ति लेंगे और न देश को ही चैन से बैठने देंगे?"

बारडोली की जांच

जब १ दिसम्बर को परिषद् विसर्जित हुई, तो गांधीजी ने सभापति को धन्यवाद देने का प्रस्ताव पेश करते हुए कहा कि अब हमें अलग-अलग रास्तों पर जाना होगा और हमारे रास्ते विभिन्न दिशाओं में जाते हैं। मनुष्य-स्वभाव का गौरव तो इसमें है कि हम जीवन में आनेवाली आंधियों से टक्कर लें। "मैं नहीं जानता कि मेरा रास्ता किस दिशा में होगा, लेकिन इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। यदि मुझे आपसे बिलकुल विभिन्न दिशा में भी जाना पड़े, तो भी आप मेरे हार्दिक धन्यवाद के अधिकारी तो हैं ही।" इन भावीसूचक शब्दों के साथ गांधीजी गोलमेज-परिषद् से विदा हुए। उस समय स्थिति यह थी कि जिन शर्तों पर कांग्रेस गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हुई थी, उनमें से एक घोर-दमन रोक दिया जायगा—पूरी तरह टूट चुकी थी। गांधीजी बंगाल व युक्तप्रांत की बढ़ती हुई बुरी स्थिति से बहुत चिन्तित हुए, क्योंकि उनका खयाल था कि भारत में दमन-नीति को जारी रखना लन्दन में प्रदर्शित सहयोग और भारत को स्वतंत्रता देने की इच्छा से बिलकुल मेल नहीं खाता।

जब गांधीजी गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे, तब यह आश्वासन दिया गया था कि बारडोली में लगान-वसूली के सिलसिले में पुलिस की ज्यादतियों के आरोपों की जांच होगी। मि० गॉर्डन को सूरत जिले के मालगुजारी-कानून के अनुसार अधिकार देकर जांच के लिए खास अफसर नियत किया गया। जांच ६ अक्तूबर १९३१ को शुरू हुई। श्री भूलाभाई देसाई और सरदार वल्लभभाई पटेल उपस्थित थे। दोनों पक्ष इसपर सहमत हो गये कि किसानों को अपनी शक्ति के अनुसार अधिक-से-अधिक लगान देना चाहिए और यदि किसान उन सत्याग्रहियों में से नहीं हैं, जिन्हें बहुत नुकसान उठाना पड़ा है, तो उन्हें कर्ज लेकर भी लगान देना चाहिए। श्री देसाई ने बहुत से पत्र, तार व लेख सुनाये। उनमें बारडोली का एक तार यह भी था कि रायम गांव पर कलक्टर ने पुलिस के १५ सिपाहियों के साथ धावा बोला। टिम्बर्वा, राजपुरा, लाम्भा, माणकपुर, बलोडगढ़, अलगोधा और जामणिया पर भी धावा बोला गया। जांच एक अरसे तक चलती रही। भारत-सरकार व बम्बई-सरकार ने ५ मार्च से २८ अगस्त तक जितनी आज्ञाएं प्रचारित की थीं, कांग्रेस ने उन्हें पेश करने के लिए कहा, क्योंकि उनसे समझौते में निर्दिष्ट स्टैण्डर्ड के प्रश्न पर काफी प्रकाश पड़ सकता था। मि० गॉर्डन यह बात समझ न सके कि सरकार को कांग्रेस की बात सिद्ध करने के

लिए गवाह के रूप में क्यों बुलाया जाय ? उन्होंने कहा कि "यह अनुमान कराना चाहिए कि कांग्रेस ने अभियोग लगाने से पूर्व वह सब मसाला एकत्र कर लिया होगा, जिसके आधार पर उसने अभियोग लगाया और उस मामले को पेश करना तथा अपने मामले को पुष्ट करना कांग्रेस का फर्ज है। कांग्रेस सरकार के किसी खास हुक्म की ओर निर्देश करना चाहे, तो और बात है।" तब कांग्रेस ने अभिलषित कागजों को मांगने के कारण बताये और यह भी बताया कि किस किस्म के कागज विरोधी-पक्ष के अधिकार में हैं। मि० गॉर्डन ने १२ नवम्बर १९३१ को यह हुक्म दिया कि विचाराधीन प्रश्न के सिलसिले में अनिश्चित और अयुक्ति-युक्त मांगों से सहमत होना असम्भव है।" श्री देसाई ने इस हुक्म पर ऐतराज उठाते हुए कहा कि इसमें यह मान लिया गया है कि मानों अपनी गवाही की खामी को पूरा करने के लिए कांग्रेस ने सरकारी कागजों को इतनी देर बाद पेश करने की मांग की है। महत्वपूर्ण वास्तविक घटनाओं के सत्यासत्य के निर्णय के लिए की गई जांच में विरोधी-पक्ष जिस भावना से सहयोग करना चाहता है, उसका ज्ञान भी मि० गॉर्डन के इस हुक्म से हो जायगा। 'सार्वजनिक-हित' करने की उनकी इच्छा भी इस निर्णय से मालूम हो जायगी। उस स्पिरिट का खयाल करते हुए मैं जिन परिणामों पर दुःख-पूर्वक पहुंचा हूं वे और भी पुष्ट हो गये हैं। वल्लभभाई पटेल ने किसानों के नाम एक वक्तव्य प्रकाशित करते हुए लिखा कि "जांच का रुख विरोधी और इकतरफा दीखता है। लेकिन मैं उस वक्त तक न हटूंगा, जब तक कि हमारे प्रतिनिधि वकील को यह यकीन न हो जाय कि आगे कार्रवाई करना निरुपयोगी है।" दरअसल सरकार के हाथ में मौजूद कागजों को पेश करने से इन्कार कर देने का अर्थ सरकारी गवाहों पर से जिरह की एक उपयोगी कैद को हटा देना था और यह भी महसूस किया गया कि इस तरह अधकचरी जांच निरुपयोगी से भी अधिक बुरी है। इस कारण सरदार वल्लभभाई पटेल ने जांच से हाथ खींच लिया और १३ नवम्बर १९३१ को गांधी जी को लन्दन निम्नलिखित तार भेजा—

"जिन ग्यारह गांवों की इजाजत दी गई थी, उनमें से सात गावों के ६२ खातेदारों और ७१ गवाहों की गवाहियां ली गई हैं। जांच के क्षेत्र में नहीं आते, यह कह कर पांच गांवों की जांच करने की इजाजत ही नहीं मिली। सरकार के पहले गवाह मामलतदार की आंशिक जिरह में महत्वपूर्ण इकबाल के बाद जांच-अफसर ने यह फैसला किया है कि जांच-विषयक प्रश्नों से सम्बन्ध रखने वाले सरकारी कागजों को पेश कराने या उनके देखने का हमें अधिकार नहीं है। जांच का रुख स्पष्टतः विरोधी और इकतरफा है। श्री भूलाभाई की सहमति से आज जांच से अलग हो गया हूं।"

युक्तप्रान्त में विकट स्थिति

युक्तप्रान्त में विकट परिस्थिति उत्पन्न हो रही थी। यह भी कहा जा सकता है कि उसने भविष्य के कई सालों की भारतीय राजनीति की दिशा निश्चित कर दी। युक्तप्रान्त में किसानों की—अधिकांशतः ताल्लुकेदारों व जमींदारों के अधीनस्थ किसानों की—आर्थिक दशा बहुत खराब हो रही थी। उनकी विपत्ति बढ़ रही थी। लगान-वसूली के तरीकों में नरमी का नाम-निशान न था।

दिल्ली-समझौते के बाद के महीनों में युक्तप्रान्त के किसानों की हालत निरन्तर खराब होती गई। दाम बहुत गिर जाने पर भी लगान में छूट काफी न होने से बहुत बड़ी आपत्ति आ गई। बेदखलियों तथा दबाव की ज्यादती यह आपत्ति और भी अधिक गम्भीर होगई। अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में तो किसानों पर आतंक का राज्य छा गया और उनके साथ क्रूरता-पर-क्रूरता होने लगी। जिन जिलों में किसानों के साथ सख्तियां की गईं, उन्हें देखने तथा किसानों की स्थिति और विपत्तियों पर

अपनी रिपोर्ट देने के लिए युक्तप्रांतीय कांग्रेस-कमिटी ने कई जांच-कमिटियां बिठाई। ली गई गवाहियों से समर्थित इन रिपोर्टों पर विशेष प्रान्तीय कृषक-जांच-कमिटी ने विचार किया। पंत-कमिटी के नाम से मशहूर, इस विशेष कमिटी की रिपोर्ट सितम्बर १९३१ में प्रकाशित की गई।

इस अरसे में दुःखी और त्रस्त किसानों के दुख दूर करने के लिए गांधीजी व युक्तप्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी के प्रयत्न जारी रहे। अगस्त १९३१ में भारत-सरकार व गांधीजी की शिमला की मुलाकात में युक्तप्रान्त के किसानों के आर्थिक सङ्कट पर विशेष-रूप से विचार हुआ और गांधीजी ने इसका भी निर्देश कर दिया कि यदि किसानों के दुःख दूर न हो सकें, तो उन्हें सत्याग्रह करने का अधिकार होगा। २७ अगस्त १९३१ को गांधीजी ने भारत-सरकार के होम-सेक्रेटरी मि० इमर्सन को जो पत्र लिखा और जो शिमला-समझौते का एक अभिन्न भाग बन गया था उसमें यह स्पष्ट लिखा था, "यदि कोई शिकायत इतनी तीव्रता से अनुभव की जा रही हो कि जांच न होने पर उसे दूर करने के लिए सत्याग्रह के रूप में कोई उपाय ग्रहण करना आवश्यक हो जाय, तो कांग्रेस सविनय अवज्ञा के स्थगित रहते हुए भी ऐसा कदम उठाने में स्वतन्त्र होगी।" २७ अगस्त को गांधीजी के लिखे मि० इमर्सन के जवाब में कांग्रेस की स्थिति-सम्बन्धी इस वक्तव्य का उल्लेख किया गया है। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल ने भी युक्तप्रान्तीय किसान-संकट के बारे में भारत-सरकार को कई बार लिखा था।

इस तरह यह स्पष्ट है कि युक्त-प्रान्त में कांग्रेस ने किसान-समस्या का हल निकालने के लिए सरकार के साथ सहयोग करने का प्रत्येक प्रयत्न, जो उसके बस में था, किया। शिमला-समझौते के बाद फिर बार-बार पत्र लिखे गये, लेकिन बेदखल व अन्य किसानों का कोई दुःख दूर न हुआ और वसूली की साधारण मियाद के बाद भी बहुत समय तक अत्याचार व शारीरिक यातना दे-देकर जबर-दस्ती वसूलियां जारी रहीं। पिछली फसल की कठिनाइयों और बेदखलियों का कोई सन्तोषजनक हल निकले, इससे पहले नये फसली साल १३३९ के प्रारम्भ के साथ एक नई स्थिति उत्पन्न होगई, जब कि नई वसूली का सवाल भी आ खड़ा हुआ। भारी आफतों से निरन्तर संघर्ष के कारण किसान पहले ही जीर्ण-शीर्ण हो गये थे, अब इस नई आफत का सामना करना पड़ा। प्रान्तीय-सरकार ने लगान में जिस छूट की घोषणा की, वह बिलकुल नाकाफी थी। बेदखल किसानों की बकाया या स्थानीय विपत्तियों के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई। इन सबके ऊपर कई जिलों में सरकार ने यह घोषणा कर दी कि यदि मांगा हुआ पूरा लगान एक मास के अन्दर न दे दिया गया, तो जो छूट मिली है वह भी वापस ले ली जायगी। घोषणा में आगे यह बताया गया था कि मांगा हुआ पूरा लगान चुका देने के बाद ही किसान कोई ऐतराज उठा सकते हैं। इन घोषणाओं ने विकट स्थिति उत्पन्न कर दी। यह स्मरण रखना चाहिए कि छूट नियत करते हुए न तो कांग्रेस से सलाह ली गई थी और न किसानों के अन्य प्रतिनिधियों से।

सरकारी घोषणाओं के प्रकाशित होने के बाद जल्दी ही इलाहाबाद-ज़िला-कांग्रेस-कमिटी ने इस प्रश्न को उठाया और बताया कि किसानों के लिए मांगी गई रकम को चुकाना सम्भव नहीं है। और भी अधिकांश जिले इसी या इससे भी बुरी हालत में थे। प्रान्तीय सरकार से फिर मिला गया और उसे बताया गया कि छूट, बेदखली, बकाया तथा स्थानीय विपत्तियों के सम्बन्ध में किसानों के साथ कैसा दुर्व्यहार किया जा रहा है। युक्तप्रांत के अधिकांश जिलों के लिए उदाहरण रूप इलाहा-बाद-जिले के मामले पर विचार करने के लिए एक तरफ कुछ स्थानीय अधिकारियों और बन्दोबस्त-कमिश्नर तथा दूसरी तरफ कांग्रेस के प्रतिनिधियों के बीच एक सम्मेलन की योजना की गई। वह

सम्मेलन असफल सिद्ध हुआ, क्योंकि सरकार की ओर से यह कहा गया कि वह इस प्रश्न के महत्व-पूर्ण अंगों पर वहस करने के लिए तैयार नहीं है। वह केवल उन्हीं नियमों के प्रयोग पर वहस कर सकती है, जो उसने (सरकार ने) निर्धारित किये हैं। इस तरह समस्या के मूल पर कोई विचार ही नहीं हुआ।

पिछले महीनों में युक्तप्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी की ओर से प्रान्तीय-सरकार के ऐसे प्रतिनिधियों के साथ सम्मेलन करने के वार-वार प्रयत्न किये गये, जो समस्या के सभी पहलुओं पर विचार कर सकने में समर्थ हों। युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने सरकार से सन्धि-चर्चा के लिए सव अधिकार देकर एक विशेष समिति भी नियुक्त कर दी। पर इन प्रयत्नों में भी कोई सफलता न हुई।

पत्र-व्यवहार के सिलसिले में कांग्रेस की ओर से यह स्पष्ट कर दिया गया था कि वह किसी किस्म का हल, चाहे किसी तरह से निश्चित किया गया हो, स्वीकार करने को तैयार है, बशर्ते कि उससे किसानों को काफी राहत मिलती हो। जव वसूली का समय आया, किसान वार-वार पूछने लगे कि हमें क्या करना चाहिए? युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ऐसा कोई कदम उठाना नहीं चाहती थी, जिससे समझौते तक की वातचीत ही टूट जाय। लेकिन उसी समय किसानों के लगातार सलाह मांगने पर वह चुप भी न रह सकती थी और न यही सलाह दे सकती थी कि वे मांगी हुई रकम दे दें, क्योंकि उसे विश्वास था कि यह रकम वहुत अनुचित है और उन किसानों को तवाह कर देगी, जिनकी वह प्रतिनिधि है। तव कांग्रेस ने महा-समिति के अध्यक्ष से आज्ञा लेने के वाद किसानों को यह सलाह दी कि वे लगान और मालगुजारी का चुकाना सन्धि-चर्चा के समय तक के लिए मुल्तवी कर दें। फिर भी कांग्रेस ने यह स्पष्ट कर दिया कि वह सन्धि-चर्चा के लिए इच्छुक और उद्यत है और ज्योंही किसानों की शिकायत दूर हुई वह अपनी सलाह को वापस ले लेगी। कांग्रेस ने सरकार को यह भी सुझाया कि यदि वह सन्धि-चर्चा के समय तक वसूली स्थगित कर दे, तो वह (कांग्रेस) भी लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह वापस ले लेगी। सरकार चाहती थी कि पहले कांग्रेस अपनी सलाह वापस ले। उसने कांग्रेस का परामर्श नहीं माना। अव युक्त-प्रान्त की कांग्रेस-कमिटी के पास सिवा इसके कोई चारा न था कि लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को दोहराये। स्थिति यहां तक पहुंच जाने पर भी कांग्रेस वरावर यह कहती रही कि वह सन्धि-चर्चा के लिए प्रत्येक प्रकार का रास्ता ढूंढ़ने और ज्योंही किसानों को काफी छूट मिलती नजर आवे या वसूली स्थगित कर दी जाय, लगान मुल्तवी करने की अपनी सलाह को वापस लेने के लिए हमेशा तैयार है। सरकार का दृष्टिकोण यह था कि वह केवल उसी स्थिति में जनता के प्रतिनिधियों से वातचीत कर सकती है, जव कि यह सलाह, जिसे वह लगानवन्दी-आंदोलन कहती थी, वापस ले ली जाय। लेकिन सरकार ने अपने लिए खुद दूसरी नीति अख्तियार की। उसने सैकड़ों कांग्रेसी कार्यकर्त्ताओं को जेल में डाल दिया। ये गिरफ्तारियां इतनी तड़ाक-फड़ाक हुईं कि सभी प्रमुख और सच्चे कार्यकर्त्ता जेलों में पहुंच गए। इन गिरफ्तारियों का अन्त गांधीजी के इंग्लैंड से भारत पहुंचने के पांच दिन पहले सर्व श्री जवाहरलाल, पुरुषोत्तमदास टण्डन और शेरवानी सा० की गिरफ्तारियों के साथ हुआ। दर-असल पं० जवाहरलाल और श्री शेरवानी को अपने स्थान न छोड़ने का नोटिस दिया गया था। इस पावन्दी के वाद जल्दी ही गांधीजी के वम्बई पहुंचने से पहले होनेवाली कार्य-समिति की बैठक में जवाहरलालजी शामिल हुए। सम्भवतः उनके लिए इस आज्ञा का पालन करना मुमकिन न था; क्योंकि जगह-जगह जोर की वुलाहट होती थी और वहां जाना पड़ता था। अनेक महत्वपूर्ण बैठकों में खुद भी उपस्थित रहने की आवश्यकता थी। अतः जव उन्होंने इस आज्ञा का उल्लंघन

किया, वे गिरफ्तार कर लिये गये। इसी तरह श्री शेरवानी भी गिरफ्तार हो गये। दोनों को सजा दे दी गई।

बंगाल में अत्याचार

संघर्ष का तीसरा केन्द्र बंगाल था। अस्थायी संधि के समय वहां अत्याचारों के अनेक दृश्य देखने में आये। शायद इनका उद्देश्य था चटगांव जिले में हुए उत्पातों का बदला लेना। चटगांव शहर और जिले में ३१ अगस्त और पिछले तीन दिनों में हुई घटनाओं की जांच करने के लिए एक गैर-सरकारी जांच-कमिटी नियुक्त की गई। कुछ गैर-सरकारी यूरोपियन और गुण्डे बड़े हथौड़े और लोहे की सलाखें लेकर रात को एक प्रेस में घुस आये और उन्होंने मशीनों को तोड़ दिया तथा प्रेस-मैनेजर व अन्य कर्मचारियों को भी मारा-पीटा। दिल्ली में २७, २८ और २९ नवम्बर को कार्य-समिति ने इस घटना की रिपोर्ट पर विचार किया और "आतंकवाद की नीति का अनुसरण करते हुए कुछ गैर-सरकारी यूरोपियनों व गुण्डों के साथ निरपराध जनता की बेइज्जती करने व उसे भीषण क्षति पहुंचने के लिए स्थानीय पुलिस व मजिस्ट्रेटों की तीव्र निन्दा की। समिति ने इस पर संतोष प्रकट किया कि जिन गुण्डों को साम्प्रदायिक दंगा कराने के लिए ही तजवीज किया गया था और जिनके प्रयत्न इस घटना को साम्प्रदायिक रंग देने के इरादे से थे, उनके जान-बूझ कर किये गये प्रयत्न के बावजूद वहां कोई साम्प्रदायिक दंगा नहीं हुआ। समिति की सम्मति में बंगाल-सरकार को कम-से-कम इतना तो करना चाहिए कि जिनकी क्षति हुई है उन्हें मुआवजा दे और इन दुर्घटनाओं के लिए जिनकी जिम्मेदारी साबित हो उन्हें दण्ड दे।"

जेलों से बाहर लोगों के साथ जब इस प्रकार आयर्लैण्ड-के-से दमन के तौर-तरीके काम में लाये जा रहे थे, जेलों और नजरबन्दों के कैम्पों में उनके साथ और भी अधिक कठोर व्यवहार किया जा रहा था। हिजली के नजरबन्द कैम्प में जो दुःखान्त नाटक खेला गया, उसके फल-स्वरूप २ नजरबन्द मर गये और २० घायल हो गये। कार्य-समिति ने "सरकार-द्वारा नियुक्त जांच-कमीशन की रिपोर्ट की प्रतीक्षा करते हुए भी यह अनुभव किया कि बिना कोई मुकदमा चलाये सरकार ने जिन निहत्थों को राष्ट्र के तीव्र विरोध करने पर भी नजरबन्द कर दिया है, उनके जीवन और हित-साधना की रक्षा की वह जिम्मेदार है। इस प्राथमिक कर्तव्य के प्रति घोर-उपेक्षा के अपराधियों को अवश्य सजा देनी चाहिए।"

इसी बैठक में युक्त-प्रान्त की स्थिति पर भी विचार हुआ। इलाहाबाद-कांग्रेस-कमिटी ने युक्त-प्रांत की सरकार की वर्तमान किसान-नीति के विरुद्ध, और खासकर उस स्थिति में लगान और माल-गुजारी की अत्याचारपूर्ण वसूली के विरुद्ध, जबकि किसान तीव्र आर्थिक संकट के कारण देने में असमर्थ थे, सत्याग्रह करने की अनुमति मांगी थी। कार्य-समिति ने यह सम्मति प्रकट की कि अनुमति देने से पूर्व इस पर युक्त-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी विचार करले। समिति ने इलाहाबाद-कांग्रेस-कमिटी का पत्र प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी के पास भेज दिया और यदि उसकी सम्मति में २७ अगस्त के शिमला समझौते के अनुसार किसानों को रक्षणात्मक-सत्याग्रह करने का अधिकार हो, तो समिति ने राष्ट्रपति को यह अधिकार दिया कि वह इस पर विचार कर जैसा आवश्यक समझें, निर्णय दें।

प्रसंगवश हम यहां यह भी कह दें कि इसी बैठक में कार्य-समिति ने नमक पर अतिरिक्त कर लगाने के प्रस्ताव का इस आधार पर विरोध किया था कि दिल्ली-समझौते को खयाल में रखते हुए यह भारत-सरकार का विश्वासघात है। मुद्रा और विनिमय की नीति के सम्बन्ध में भी इस समिति ने एक प्रस्ताव पास किया था। पाठकों को स्मरण रहे कि २१ सितम्बर को सोने की मात्रा कम रह जाने

के कारण बैंक ऑफ इंग्लैण्ड ने तीन दिन की छुट्टी कर दी थी और इंग्लैण्ड ने स्वर्णमान छोड़ दिया था। प्रश्न यह था कि क्या भारत के रुपये को पौण्ड स्टर्लिंग की दुम के साथ बांधा जाय, या सोने के बाजार में उसे अपने-आप अपना मूल्य निर्द्धारण करने दें ? पहला रास्ता, जिसे भारत-सरकार ने स्वीकार किया, समिति की सम्मति में केवल इंग्लैण्ड के स्वार्थों को पूर्ण करता था; क्योंकि इसका मतलब था भारत में आयात के लिए ब्रिटिश माल को परोक्ष-रूप में तरजीह देना और भारत का सोना बाहर भेजने को उत्तेजन देना।

सीमाप्रान्त में आग

भारत के उत्तरी-द्वार में सरकार ने चौथी अग्नि प्रज्वलित कर रक्खी थी। भारत के इतिहास और इन पृष्ठों में खुदाई खिदमतगारों ने एक प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। वे सीमान्त के उन बहादुर लोगों में से हैं, जो अनुशासन व संगठन के साथ असहयोग के लिए तैयार किये गये थे। खान अब्दुलगफ्फारखां के नेतृत्व और प्रेरणा में काम करनेवाले ऐसे आदमी एक लाख से ऊपर थे। अगस्त के महीने तक इन खुदाई खिदमतगारों का कांग्रेस से सम्बन्ध नहीं था। अस्थायी संधि के समय से ही गांधीजी सीमाप्रान्त जाने और उस संगठन का अध्ययन करने की अनुमति प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहे थे, जिसने इतना चमत्कारी कार्य कर दिखाया था। लॉर्ड अर्विन से उन्होंने इजाजत मांगी, लेकिन उन्होंने कहा—अभी नहीं। सारे साल-भर उन्हें यही जवाब मिलता रहा और इसलिए उन्होंने सीमाप्रान्त में श्री देवदास गांधी को भेजा। उन्होंने एक आश्चर्यकारक रिपोर्ट पेश की। उसपर कार्य-समिति ने विचार किया तथा खुदाई खिदमतगारों को कांग्रेस-संगठन का अंग बनाकर एक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन किया। इसके बाद यह संगठन सब प्रकार के सन्देहों से ऊपर हो जाना चाहिए था, लेकिन सरकार ऊपर से अर्ध-सैनिक दीखनेवाले संगठन को—चाहे वह कांग्रेस के स्वयंसेवकों का संगठन ही क्यों न हो—रहने देना नहीं चाहती थी। बैण्ड और बिगुल, सिर से पैर तक लाल पोशाक और एक ऐसे ऊंचे व्यक्तित्व में श्रद्धा और विश्वास—जो अपने चरित्र, मनुष्यता, बलिदान व सेवा से 'सीमान्त-गांधी' का पद पा चुका था और बहुत जल्दी सब आंखों का एक लक्ष्य, एक केन्द्र हो रहा था—ये सब बातें उस संगठन को अर्ध-सैनिक सिद्ध करने के लिए काफी थीं। कौन जानता है कि उसके विनम्र और सत्याग्रही चेहरे के पीछे सीमाप्रान्त पर एक 'बफर-स्टेट' (लड़नेवाले दो राज्यों के बीच का तटस्थ-राज्य) बनाने, अमीर से संधि करने, सीमाप्रान्त के जिरगों को दोस्त बनाने तथा भारत पर आक्रमण करने की तजवीज न छिपी हो ! लाल पोशाक में एक लाख सेना—सब पठान, उनपर विश्वास नहीं किया जा सकता ! सरकार को एक बहाना भी मिल गया कि खान अब्दुल-गफ्फारखां सरकार से सहयोग नहीं करते, क्योंकि वे सीमा-प्रान्तीय चीफ-कमिश्नर के दरबार में सम्मिलित नहीं हुए। वे पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रचार करते हैं। बस, निरपराध खानसाहब और उनके भक्त तथा उन्हीं की तरह उनके निरपराध भाई डॉ० खानसाहब गांधीजी के भारत पहुंचने से कुछ ही दिन पहले जेल में डाल दिये गये।

इस तरह जब गांधीजी भारत पहुंचे, ये सब बखेड़े उत्पन्न हो चुके थे। गुजरात में ज्यादतियों की जांच, जिसका गांधीजी को वचन दिया गया था और जिस वचन पर ही वे लन्दन जाने को तैयार हुए थे, १३ नवम्बर को अधूरी ही खतम हो चुकी थी। यहां यह ध्यान रखना चाहिए कि तेजतर्रार और एकदम भड़क जाने वाले वल्लभभाई पटेल नहीं थे, जो उकताकर जांच से अलग हो गये थे, लेकिन गंभीर और धैर्यशील भूलाभाई देसाई थे, जो बहुत विचार के बाद जांच को निरर्थक

समझकर अलग हुए थे। युक्तप्रान्त में सरकार के प्रभाव व दस्तन्दाजी के कारण जमींदारों ने किसानों को जो थोड़ी छूट दी थी, वह बिलकुल नाकाफी और असन्तोषप्रद थी और सरकार भी तबतक लोक-प्रतिनिधियों से मिलने को तैयार न थी, जबतक वे मुंह में तिनका न रख लें और लगान स्थगित करने की आज्ञा वापिस न ले लें। इस प्रकार उत्पन्न हुई परिस्थिति में पं० जवाहरलाल और शेरवानी साहब गांधीजी के लौटने के ५ दिन पहले गिरफ्तार कर लिये गये, जैसाकि ऊपर लिखा जा चुका है। यद्यपि यह खबर बेतार के तार से जिस जहाज पर गांधीजी आ रहे थे उस पर भी भेज दी गई, तथापि उनतक खबर नहीं पहुंचने दी गई। सीमाप्रान्त से खान अब्दुलगफ्फारखां, उनके भाई और पुत्र शाही कैदी बनाकर नजरबन्द कर दिये गये। बंगाल की स्थिति किसी एक या इक्की-दुक्की घटना से बनी हुई नहीं थी, हालांकि चटगांव और हिजली की घटनायें उसका कारण थीं। वह अर्से से एक बहता हुआ घाव बन गई है और पता नहीं कबतक यह घाव इसी तरह गहरा बना और बहता रहेगा।

गांधीजी जब २८ दिसम्बर को बम्बई उतरे तब परिस्थिति इस प्रकार बन चुकी थी।

[छठा भाग—१९३२-१९३५]

१

बयाबान की ओर

गांधीजी बम्बई में

देश के सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि जनता के उस त्राता का स्वागत करने के लिए बम्बई में एकत्र हुए थे। चुंगी-दफ्तर के एक भवन में विधिवत् स्वागत किया गया। फिर एक जुलूस निकाला—वह जुलूस जिसके लिए बादशाह भी अपने मुल्क में तरसें। पर राजनैतिक नेता और महत्वाकांक्षी राज-पुरुषों का तो गुण-ग्राहक जनता ऐसे ही जुलूस-द्वारा स्वागत किया करती है। गांधीजी का स्वागत देश-वासियों ने किस उत्साह से किया होगा, पाठक स्वयं कल्पना कर सकते हैं। वे किसी ऐसे साहसी का स्वागत नहीं कर रहे थे, जो किसी बादशाहत की स्थापना करने जा रहा हो। न वे किसी ऐसे राजपुरुष का आदर करने जा रहे थे जो किसी कंजूस बादशाह के हाथों से जनता के लिए कोई रिआयतें छीनने गया हो। लड़ाई के मैदान में बताई बहादुरी के लिए किसी वीर योद्धा का सम्मान करने भी वे जमा नहीं हुए थे। बल्कि वे तो इकट्ठे हुए थे एक सन्त और सत्याग्रही का स्वागत करने के लिए, जो संसार को छोड़ देनेपर भी संसारी की भांति ही संसार में रहता था और जिसने अपने स्वार्थ को तिलांजलि दे दी थी; जो दोहरी चक्की में पीसा जा रहा था। एक ओर कानूनी हिंसा-द्वारा और दूसरी ओर लाचार बेबस गुलामी-द्वारा। जनता ऐसे महापुरुष का स्वागत करने पहुँची थी, जिसका एकमात्र जीवनोद्देश्य था अपने देश को आजाद करना तथा संसार के राष्ट्रों में मित्रता, बन्धुता और मानवता का सन्देश पहुंचाना। उस दिन बम्बई के तमाम पुरुष सड़कों पर इकट्ठे हो रहे थे और स्त्रियां आसमान से बातें करने वाली बम्बई की ऊंची अट्टालिकाओं पर। हिन्दुस्तान में आते ही गांधीजी ने सबसे पहले बम्बई की जनता को अपना भाषण सुनाया। आजाद मैदान में सचमुच उस दिन जबरदस्त भीड़ इकट्ठी हुई थी, और गांधीजी ने उसके सामने गम्भीर आवाज में यह कहते हुए अपने हृदय को खोलकर रख दिया कि मैं शान्ति के लिए अपने बस-भर कोशिश करूंगा और अपनी तरफ से कोई बात उठा न रक्खूंगा। इस भाषण में भी उन्होंने अपनी वह भयंकर प्रतिज्ञा दोहराई और कहा कि "हिन्दू जाति से अछूतों को जुदा करने वाले किसी भी प्रयत्न को मैं बरदाश्त नहीं करूंगा, बल्कि मौका पड़ने पर उसके विरोध में मैं अपनी जान लड़ा दूंगा।" सच तो यह है कि न तो इस मौके पर और न अल्पसंख्यक जातियों की कमिटी की बैठक में ही किसी को यह खयाल आया कि गांधीजी इस मुद्दे पर आमरण उपवास की घोषणा कर देंगे। या तो इस बात की तरफ किसीका ध्यान ही नहीं गया या सुननेवालों और पढ़नेवालों के दिल पर इसका असर एक सामान्य भाषालंकार की अपेक्षा अधिक नहीं पड़ा। पर हरेक आदमी जानता है कि गांधीजी कभी अत्युक्ति-पूर्ण बात नहीं करते और न कभी कोई बात गैर-जिम्मेदारी के साथ कहते हैं। उनकी 'हां' केवल 'हां' है और 'ना' निरी 'ना'। उनकी बात ज्यों-की-त्यों होती है। उसके दो मानी, नहीं निकाले जा सकते।

तीन दिन तक गांधीजी जुदा-जुदा प्रान्तों से आये प्रतिनिधियों से मिलते रहे और उनकी दुःख-कथायें सुनते रहे। वे क्या कर सकते थे? सुभाष बाबू बंगाल से अपने चार साथियों को लेकर आये थे। हालांकि उन चारों ने गांधीजी से अलग-अलग बातचीत की, पर चारों ने बंगाल-आर्डिनेन्सों के कारण किये गये दमन का वर्णन वही सुनाया। युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त में भी आर्डिनेन्स जारी कर दिये गये थे। आरजी सुलह के दिनों में राज की गाड़ी इन अर्डिनेन्सों से ही हांकी जारही थी। गांधीजी मजाक में कहा करते कि यह तो लॉर्ड विलिंगडन का दिया नये साल का तोहफा है। पर वे एक सत्याग्रही की भांति शान्ति के लिए अपनी पूरी कोशिश किये बगैर ही देश को नई मुसीबतों में डालने वाले पुरुष न थे। सुबह से लेकर शाम तक गांधीजी का सारा समय तमाम प्रान्तों से आये हुए शिष्ट-मण्डलों से मिलने में ही बीतता था, जो सरकारी अफसरों-द्वारा हर प्रान्त में किये गये अत्याचारों की कथायें सुनाते थे। देश में भयंकर मन्दी और घोर संकट था। फिर भी कर्नाटक को इतने लम्बे समय तक युद्ध में लगे रहने पर भी कोई रिआयत नहीं दी गई। आन्ध्र में लगान बढ़ाया जानेवाला था, और मद्रास के गवर्नर ने तो यहां तक धमकी दे रक्खी थी कि अगर लोग लगान रोकने की बात करेंगे तो आर्डिनेन्स जारी कर दिये जायंगे। इस तरह की दुःख-गाथायें गांधीजी को सुनाई जा रही थीं। उन्होंने भी अपने दुखड़ों की कहानी लोगों को सुनायी थी, जो उनपर लन्दन में बीते थे। वे गोलमेज-परिषद् में जाना ही नहीं चाहते थे। जो बातें इस परिषद् में होनेवाली थीं उनकी छाया जुलाई और अगस्त में ही नजर आने लग गई थी, पर कांग्रेस की कार्य-समिति ने इस बात पर जोर दिया कि उन्हें जाना ही चाहिए। समझौते के भंग होने पर भी बाद में उन्हें परिषद् में जाने से इन्कार का मौका मिल गया था। पर मजदूर-सरकार चाहती थी कि उन्हें किसी प्रकार जहाज पर चढ़ा के लन्दन रवाना करही दिया जाय।

सबसे पहली बात जो उन्होंने अपने साथियों से कही वह यही थी कि किसी चीज की कल्पना की अपेक्षा उसका प्रत्यक्ष अनुभव एक दूसरी ही चीज है। वे नरम-दल के नेताओं की मनोदशा से परिचित थे, पर वे उस नजारे के लिए तैयार न थे जो उन्होंने लन्दन में देखा। मुसलमानों के स्वभाव को भी वे जानते थे और उनकी प्रतिगामी-मनोवृत्ति से भी नावाकिफ नहीं थे। पर गोलमेज परिषद् में राष्ट्र-शरीर की जो चीरा-फाड़ी हुई और जिस तरह टुकड़े-टुकड़े किये गये उसके लिए वे हर्गिज तैयार न थे। उन्होंने इस बात का भी निश्चय कर लिया कि आइन्दा कांग्रेस किसी प्रकार की भी साम्प्रदायिकता का समर्थन नहीं करेगी। उसका धर्म शुद्ध और विशुद्ध राष्ट्र-धर्म होगा। उन्होंने यह भी कहा कि अगर यह देश साम्प्रदायिक प्रश्न के साथ इसी तरह पहले की भांति खिलवाड़ करता रहेगा तो इसके लिए कोई आशा नहीं है। अपने मुसलमान और सिक्ख मित्रों से उन्होंने यह आश्वासन चाहा कि अगर भारत के लिए कोई ऐसा विधान बने जिसमें किसी प्रकार साम्प्रदायिकता की बू न हो और जो विशुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर बनाया जाय तो उसे वे स्वीकार कर लेंगे। इन सारे विचारों और अनुभवों के कारण उनके चित्त को बड़ा क्लेश हो रहा था; पर उपस्थित परिस्थिति का उन्होंने बड़ी शान्ति और स्थिर-चित्तता से सामना किया, जैसा कि वे हमेशा किया करते हैं। अपने ऊपर तथा अपने देश-भाइयों पर भी उन्हें खूब विश्वास था। देश ने उन पर विश्वास किया और उन्होंने उसको बराबर निभाया। अब आज उन्हें अपने सामने एक जबरदस्त खाई नजर आ रही थी। सवाल यह था कि इसपर पुल बनाया जा सकता है या इसे जिंदा और मरे हुए आदमियों से पाट कर पार करना होगा? जब वे अपने काम में भिड़े, उनके हृदय में ये विचार उमड़ रहे थे—यह मनोमन्थन चल रहा था। कार्य-समिति उनके साथ थी। पर उन चौदह सदस्यों वाली कार्य-समिति की ही नहीं, उन्हें तो सारे देश की हिम्मत थी। कार्य-समिति के आदेशा-

नुसार उन्होंने लॉर्ड विलिंगडन को एक तार दिया और उसका जवाब भी आया। जवाब लम्बा और तफसीलवार था। उसमें धमकी भी थी। गांधीजी ने फिर एक तार दिया। मगर कोई नतीजा न निकला।

वाइसराय से तार-व्यवहार

वाइसराय से गांधीजी का जो तार-व्यवहार हुआ वह निम्न प्रकार है—

(१) वाइसराय को गांधीजी का तार (२९ दिसम्बर १९३१)

"कल जहाज से उतरने पर मुझे मालूम हुआ कि सीमाप्रान्त और युक्तप्रान्त में ऑर्डिनेन्स जारी कर दिये गये हैं। सीमाप्रान्त में गोलियां चलाई गई हैं। मेरे अनमोल साथी गिरफ़्तार कर लिये गये हैं, और सबसे बढ़ कर बंगाल का आर्डिनेन्स मेरी राह देख रहा है। मैं इसके लिए तैयार न था। मेरी समझ में नहीं आता कि आया मैं इनसे यह समझूं कि हमारी पारस्परिक मित्रता का खात्मा हो चुका या आप अब भी मुझसे यह उम्मीद करते हैं कि मैं आपसे मिलूं और इस परिस्थिति में मैं कांग्रेस को क्या सलाह दूं इस विषय में आपसे परामर्श और रहनुमाई चाहूं ? जवाब तार से देने की कृपा करेंगे।"

(२) गांधीजी के नाम वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी का तार (३१ दिसम्बर १९३१)

"वाइसराय महोदय चाहते हैं कि मैं आपको आपके तार के लिए धन्यवाद दूं, जिसमें आपने बंगाल, युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त के आर्डिनेन्सों का जिक्र किया है। बंगाल की बात तो यह है कि अपने अफसरों और नागरिकों को कायरता पूर्ण हत्यायें रोकने के लिए सरकार के लिए यह जरूरी हो गया और है कि वह तमाम उपाय काम में लावे।

वाइसराय महोदय की इच्छा है कि मैं आपसे यह कहूं कि वे तथा उनकी सरकार चाहते हैं कि उनका देश के तमाम राजनैतिक दलों तथा जनता के सभी हिस्सों से मित्रता-पूर्ण सम्बन्ध रहे। खासतौर पर शासन-सम्बन्धी सुधारों के मामलों में, जिन्हें कि वे बिना किसी देरी के जारी करना चाहते हैं वे सब का सहयोग चाहते हैं। पर यह सहयोग पारस्परिक हो। युक्तप्रान्त और सीमाप्रान्त में कांग्रेस जिस तरह की हलचलें चला रही है, सरकार उनका उस मित्रता-युक्त सहयोग के साथ मेल नहीं देख रही है जो हिन्दुस्तान के भले के लिए जरूरी है।

युक्तप्रान्त के बारे में तो आप जरूर जानते ही हैं कि जहां एक ओर प्रान्तीय सरकार वर्तमान परिस्थिति में हर तरह की रिआयत देने के बारे में उपायों की योजना कर रही थी, तहां उधर प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने लगानबन्दी का आन्दोलन शुरू करने की आज्ञा जारी कर दी। उस प्रान्त में आजकल यह आन्दोलन जोरों पर है। कांग्रेस के इस कार्य से, अगर यह बेरोक इसी तरह जारी रहा तो, जरूर ही देश में भारी पैमाने पर अव्यवस्था, वर्ग-विद्वेष तथा जातीय-विद्वेष फैल जायगा; इसीलिए सरकार को आवश्यक उपायों का अवलम्बन करने पर मजबूर होना पड़ा।

पश्चिमोत्तर-सीमाप्रांत में अब्दुलगफ्फारखां तथा उनकी मातहत संस्थायें लगातार ऐसी हलचलों में भाग लेते रहे हैं जो सरकार के खिलाफ हैं और जिनसे जातीय-विद्वेष बढ़ता है। अबतक वहां के चीफ-कमिश्नर ने उनके सहयोग के लिए जितनी बार भी कोशिश की उसका उन्होंने कोई खयाल नहीं किया और प्रधान-मन्त्री की घोषणा को अस्वीकार कर वे यह ऐलान कर रहे हैं कि वे तो पूर्ण आजादी चाहने वालों में हैं। अब्दुलगफ्फारखां ने ऐसे बहुत-से भाषण दिये हैं जिनसे जनता को क्रान्ति के लिए उभारनेके सिवा और कोई मानी नहीं निकल सकते। उनके अनुयायियोंने भी सीमांत-जातियों में उपद्रव खड़े करने की कोशिशें की हैं। उस प्रान्त के चीफ-कमिश्नर ने वाइसराय की सर-

कार की इजाजत से हद दर्जे की सहन-शीलता दिखाई है और आखिर तक इस बात की कोशिश की है कि, जैसी कि सम्राट् की सरकार की मन्शा है,सीमान्त-प्रदेश में बिना देरी के सुधार जारी करें और उसमें अब्दुलगफ्फारखां की सहायता प्राप्त करें। सरकार ने तबतक कोई खास कार्रवाई नहीं की जबतक कि अब्दुलगफ्फारखां तथा उनके साथियों की हलचलें और खास तौर पर सरकार से जल्दी-से-जल्दी लड़ाई शुरू करने की उनकी तैयारियों ने प्रान्त की तथा सीमांत जातियों के प्रदेश में शांति को खतरे में नहीं डाल दिया। अब ठहरे रहना असम्भव था। वाइसराय महोदय को यह मालूम हुआ है कि पिछले अगस्त में सीमाप्रान्त में कांग्रेस-आन्दोलन का मार्ग-दर्शन करने का काम अब्दुलगफ्फारखां के सुपुर्द कर दिया गया है। उनके द्वारा संगठित किये गये स्वयं-सेवक-दलों को भी महासमिति ने कांग्रेस के अधीन मान लिया है। वाइसराय महोदय की इच्छा है कि मैं आपसे यह साफ कह दूं कि देश में शान्ति और व्यवस्था की रक्षा करने की जिम्मेदारी उनके सिर पर है और इसलिए वे उन आदमियों या संस्थाओं से कोई सरोकार नहीं रख सकते जो ऊपर बताये कामों और हल-चलों के लिए जिम्मेदार हैं। खुद आप तो गोलमेज परिषद् के काम से बाहर गये हुए थे और आपने गोलमेज-परिषद् में जो रुख अख्तियार किया था उसे देखते हुए वाइसराय महोदय यह विश्वास नहीं करना चाहते कि खुद आपका इसमें कोई हाथ रहा हो या आप इसमें जिम्मेदार हों या इधर सीमा-प्रांत में और युक्त-प्रांत में कांग्रेस ने जो-जो आन्दोलन जारी कर रक्खे हैं उन्हें आप पसन्द भी करते हों। अगर यह ठीक हो तब तो वे आपसे कह सकते हैं, और गोलमेज परिषद् में जिस सहयोग की भावना से सब काम हुआ था उसी भावना की रक्षा करने के लिए आप किस प्रकार अपने प्रभाव का उपयोग कर सकते हैं, इस विषय में वाइसराय महोदय अपने विचार आपके सामने रख सकते हैं। पर एक बात वे साफ कर देना चाहते हैं। सम्राट् की सरकार की पूरी इजाजत से जो आर्डिनेन्स बंगाल, युक्त-प्रांत और पश्चिमोत्तर सीमा-प्रांत में जारी करना जरूरी समझा गया है, उनके बारे में किसी प्रकार की बहस करने के लिए वे तैयार नहीं हैं। जिस उद्देश्य से, अर्थात् कानून और व्यवस्था की रक्षा, जो सुशासन के लिए जरूरी चीजें हैं, ये आर्डिनेन्स जारी किये हैं, वह जबतक पूर्ण नहीं होजाता, तबतक हर हालत में वे जारी रहने ही चाहिए। आपका जवाब मिल जाने पर वाइसराय महोदय इन तारों को प्रकाशित कर देना चाहते हैं।"

(३) वाइसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी के नाम गांधीजी का तार (१ जनवरी १९३२)

"मेरे २९ दिसम्बर के तार के जवाब में, वाइसराय महोदय का, जो तार आया उसके लिए उन्हें धन्यवाद। उसे पढ़कर दुःख हुआ। मैंने अत्यन्त मित्र-भाव से जो प्रस्ताव रक्खा था, उसे जिस तरह वाइसराय महोदय ने अस्वीकार किया वह उनके जैसे उच्च-पदाधिकारी को शोभा नहीं देता। मैंने एक ऐसे आदमी की हैसियत से उनका दरवाजा खटखटाया था, जिसको कुछ प्रश्नों पर प्रकाश की जरूरत थी। मैं कुछ अत्यन्त गम्भीर और असाधारण मामलों में, जिनका कि उल्लेख मैंने किया था, सरकार का पक्ष समझना चाहता था। मेरे सद्भाव का स्वागत करने के बजाय, वाइसराय महोदय ने उसे अस्वीकार किया और मुझसे चाहा कि मैं अपने अनमोल साथियों के कार्यों का पहले ही खण्डन करूं। फिर ऐसे अपमानजनक आचरण का अपराधी बनकर मैं मिलना चाहूं तो उस समय भी मुझसे कहा जाता है कि राष्ट्र के लिए इतना भारत महत्व रखनेवाली इन बातों पर उनसे बातचीत तक नहीं कर सकता।

मेरा तो खयाल है कि इन आर्डिनेन्सों और कानूनों के रहते हुए, जिनका कि अगर दृढ़ता के साथ प्रतिकार नहीं किया गया तो देश का भारी पतन होगा, यह विधान-सम्बन्धी बात न-कुछ-सी हो जाती है। मैं आशा करता हूं कि कोई भी स्वाभिमानी भारतीय एक संदेहास्पद विधान-सम्बन्धी

सुधार को हासिल करने के लिए राष्ट्रीय भावना की हत्या करने का खतरा अपने सिर पर नहीं उठावेगा; क्योंकि तब तो इन विधानों को अमल में लाने जितना प्राण ही राष्ट्र में नहीं रह जायगा।

अब सीमा-प्रान्त की बात लीजिए। आप के तार में जो बातें हैं उनको देखते हुए यह साफ नजर आता है कि प्रान्त के लोकप्रिय नेताओं को गिरफ्तार करने, अतिरिक्त कानून जारी करने, जिससे कि लोगों की जानो-माल की रक्षा का कोई ठिकाना नहीं रह गया, और अपने विश्वासपात्र नेताओं की गिरफ्तारी कर प्रदर्शन करने वाले निहत्थे लोगों पर गोलियां चलाने का कोई सबल कारण नहीं था। अगर खानसाहब अब्दुलगफ्फारखां ने पूरी आजादी का दावा किया तो स्वाभाविक ही था। स्वयं कांग्रेस ने सन् १९२९ में, लाहौर में, यही दावा किया था और उसे कोई सजा नहीं दी गई। मैंने भी लन्दन में ब्रिटिश-सरकार के सामने इस दावे को जोर के साथ पेश किया था। इसके अलावा वाइसराय महोदय को मैं यह भी याद दिला दूं कि कांग्रेस ने मुझे जो आज्ञा दी थी उसमें भी यह दावा था और सरकार इस बात को जानती थी, फिर भी लन्दन की परिषद् में मुझे कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से निमन्त्रित किया गया था। फिर मेरी समझ में नहीं आता कि महज एक दरबार में हाजिर रहने से इन्कार कर देना ऐसा कौनसा अपराध होगया, जिससे ये एकाएक गिरफ्तार होने के पात्र समझे गये ? अगर खानसाहब जातीय-विद्वेष की आग को बढ़ा रहे थे, तो सचमुच दुःखदाई बात है। पर मेरे पास तो उनके ऐसे वचन हैं जो इस आरोप के खिलाफ पड़ते हैं। फिर भी थोड़ी देर के लिए मान लें कि उन्होंने जातीय विद्वेष की आग भड़काई, तो उस हालत में उनकी खुली जांच होनी चाहिए थी, जिससे कि इस आरोप के प्रतिवाद का उन्हें मौका मिलता।

युक्तप्रान्त के बारे में वाइसराय महोदय को मिली हुई खबर गलत है; क्योंकि कांग्रेस ने वहां पर लगान-बन्दी की आज्ञा ही जारी नहीं की। बल्कि सरकार और कांग्रेस के प्रतिनिधियों के बीच इस सम्बन्ध की बातचीत चल रही थी कि लगान वसूल करने का समय आगया और लगान तलब किया जाने लगा; इसलिए कांग्रेस वालों को यह कहना पड़ा कि जबतक सरकार से इस सम्बन्ध में जो बातचीत चल रही है इसका कोई नतीजा नहीं निकल जाता तबतक वे अपने लगानों को रोक रक्खें। श्री शेरवानी ने तो यह भी कहा था कि अगर इस बातचीत का नतीजा निकलने तक सरकारी अफसर लगान वसूली मुल्तवी रक्खें, तो वे भी जनता को दी गई सलाह वापस लेने को तैयार हैं। मैं तो यह कहूंगा कि ऐसी बात नहीं थी जिसको यों ही उड़ा दिया जाय, जैसा कि वाइसराय महोदय ने अपने तार में किया है। युक्त-प्रान्त की यह शिकायत बहुत अर्से से चली आरही है और उसमें ऐसे लाखों किसानों के हित का सवाल है जिनकी माली हालत बहुत ही खराब है। कोई भी सरकार, जिसे अपने द्वारा शासित जनता के कल्याण की परवाह है, कांग्रेस जैसी संस्था-द्वारा दिये गये स्वेच्छा-पूर्वक सहयोग का स्वागत ही करती, जिसका कि जनता पर बहुत भारी प्रभाव है और जिसकी एकमात्र महत्वाकांक्षा ईमानदारी के साथ जनता की सेवा करना है और मुझे यह भी कहने दीजिए कि जिस प्रजा ने अपने ऊपर डाले गये असहनीय आर्थिक बोझे को दूर करने के लिए और तमाम उपायोंको आजमा लिया हो, और उन्हें निष्फल पाया हो, तो उसका यह सनातन और स्वाभाविक हक है कि वे अपने लगान को मौका पड़ने पर रोक लें। आपके तार में जो यह बात है कि कांग्रेस किसी भी रूप में जरा भी अव्यवस्था फैलाना चाहती है; उसका मैं प्रतिवाद करता हूं।

बंगाल के विषय में जहांतक हत्याओं की निन्दा से सम्बन्ध है, कांग्रेस सरकार के साथ है। और ऐसे जुर्मों को बिलकुल रोक देने के लिए जिन उपायों का अवलम्बन जरूरी समझा जाय, कांग्रेस उनमें भी हृदय से सहयोग देना पसन्द करेगी। परन्तु जहां कांग्रेस आतङ्कवाद की सम्पूर्ण निन्दा करती

है, वहां किसी भी हालत में सरकारी आतङ्कवाद का साथ नहीं दे सकती, जैसा कि बंगाल-आर्डिनेन्स और उसके सिलसिले में किये गये दूसरे कार्यों से प्रकट होता है; बल्कि कांग्रेस तो अपनी अहिंसा की मर्यादा के अन्दर रहते हुए सरकारी आतङ्कवाद के ऐसे कार्यों का प्रतिकार भी करेगी। आपके तार में लिखा है कि सहयोग दोनों तरफ से हो। मैं इस प्रस्ताव को हृदय से मानता हूं। पर तार में लिखी दूसरी बातें तो मुझे इस नतीजे पर बरबस ले जाती हैं कि वाइसराय महोदय कांग्रेस से तो सहयोग चाहते हैं पर उसके बदले में सरकार की तरफ से कोई सहयोग देना नहीं चाहते। आपने जो इन बातों पर बातचीत करने से ही इन्कार कर दिया, इसका मैं दूसरा अर्थ लगा ही नहीं सकता; क्योंकि जैसा कि मैंने बताने की कोशिश की है, इन महत्वपूर्ण प्रश्नों के कम-से-कम दो पहलू तो हैं ही। लोकपक्ष, जैसा मैं समझता हूं, मैंने पेश किया है, परन्तु किसी भी पक्ष में अपनी राय कायम करने से पहले मैं दूसरे अर्थात् सरकारी पक्ष को समझ लेना चाहता था और उसके बाद कांग्रेस को अपनी सलाह देने की इच्छा थी।

तार के आखिरी पैराग्राफ का जवाब यह है कि अपने साथियों के, चाहे सीमा-प्रान्त के हों या युक्तप्रान्त के, कार्यों की नैतिक जिम्मेदारी से मैं अपने-आपको बरी नहीं समझता। पर मैं यह कबूल करता हूं कि मेरे साथियों के कार्यों की और हलचलों की तफसीलवार जानकारी मुझे नहीं है; क्योंकि मैं भारत में नहीं था और चूंकि कांग्रेस की कार्य-समिति को अपनी राय देकर मार्ग-प्रदर्शन करना मेरे लिए जरूरी था, मैंने निष्पक्ष भाव से और बहुत सद्भाव के साथ वाइसराय महोदय से मिलना और मार्ग-दर्शन चाहा। मैं वाइसराय महोदय से अपनी यह राय नहीं छिपा सकता कि उन्होंने जो जवाब भेजने की कृपा की है वह मेरे सद्भाव और मित्रता-पूर्ण प्रस्ताव का पर्याप्त उत्तर नहीं है। अगर अब भी वाइसराय महोदय चाहें तो मैं उनसे कहूंगा कि वे अपने निर्णय पर पुनर्विचार करें और हमारी बातचीत पर, उसके विषय-क्षेत्र पर, बगैर कोई शर्तें लगाये मुझसे मिलना स्वीकार करें। अपनी तरफ से मैं यह वचन दे सकता हूं कि वे जो भी बातें मेरे सामने रक्खेंगे उनपर मैं निष्पक्ष होकर विचार करूंगा। बगैर किसी हिचकिचाहट के और खुशी के साथ मैं उन-उन प्रांतों में जाऊंगा और अधिकारियों की सहायता से प्रश्न के दोनों पहलुओं का अध्ययन करूंगा; और अगर पूरे अध्ययन करके बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि लोग गलती पर हैं और कार्य-समिति तथा मैं भी गुमराह हो गए हैं, और सरकार का ही पक्ष ठीक है, तो इस बात को स्वीकार करने में और तदनुसार कांग्रेस को रास्ता बताने में मुझे कोई हिचकिचाहट न होगी। सरकार के साथ सहयोग करने की मेरी इच्छा और खुशी के साथ ही वाइसराय महोदय के सामने मैं अपनी मर्यादा भी रख दूं। अहिंसा मेरा पहला आचार-धर्म है। मेरा विश्वास है कि सविनय-अवज्ञा जनता का केवल जन्म-सिद्ध अधिकार ही नहीं है—और खासकर उस हालत में जब अपने शासन में उसका कोई हाथ न हो—बल्कि वह हत्या और सशस्त्र बगावत का सफलता-पूर्वक स्थान भी ले सकती है। इस लिए मैं कभी आचार-धर्म को अलग नहीं रख सकता। उसके पालन के लिए, और कुछ ऐसी खबरें मिली हैं जिनका अभीतक कोई खण्डन नहीं हुआ है, बल्कि भारत-सरकार की हलचलें जिनका समर्थन करती हैं और शायद जिनके परिणाम-स्वरूप जनता का मार्ग-दर्शन करने का मुझे आगे कोई मौका न मिले, कार्य-समिति ने मेरी सलाह से सविनय-अवज्ञा-सम्बन्धी एक तात्कालिक प्रस्ताव स्वीकार किया है। उसकी नकल मैं भेजता हूं। अगर वाइसराय महोदय समझें कि मुझसे मिलने में कुछ उप-योगिता है तो हमारी बातचीत खतम होने तक, इस आशा से कि आगे चलकर, यह रद कर दिया जायगा, यह प्रस्ताव मुल्तवी रहेगा। मैं मानता हूं कि हमारे बीच का यह तार-व्यवहार सचमुच इतना

महत्वपूर्ण है जिसके प्रकाशन में जरा भी देरी न होनी चाहिए। इसलिए मैं अपना तार, आपका जवाब, यह प्रत्युत्तर और कार्य-समिति का प्रस्ताव सब प्रकाशन के लिए भेज रहा हूं।''

प्रस्ताव

''कार्य-समिति ने महात्मा गांधी की यूरोप-यात्रा का हाल सुना और बंगाल, युक्तप्रांत तथा सीमाप्रांत में जारी किये गये असाधारण आर्डिनेन्सों के कारण देश में पैदा हुई परिस्थिति पर विचार किया। साथ ही सरकारी अधिकारियों-द्वारा जो खान अब्दुलगफ्फारखां, शेरवानी साहब, पं० जवाहरलाल नेहरू तथा दूसरे अनेक लोगों की गिरफ्तारियों, और सीमा-प्रांत में जो निर्दोष लोगों पर गोलियां चलाई गईं और जिनकी वजह से कितने ही लोग जान से मारे गए तथा घायल हुए, इन सबके कारण पैदा हुई परिस्थिति पर भी विचार किया। कार्य-समिति ने महात्मा गांधी के तार के जवाब में वाइसराय-द्वारा भेजे गये तार को भी देख लिया।

कार्य-समिति का यह मत है कि ये तमाम घटनायें और दूसरे प्रांतों में घटी हुई अन्य छोटी-मोटी घटनायें तथा वाइसराय साहब का तार ये सब सरकार के साथ कांग्रेस का सहयोग तबतक के लिए बिलकुल असम्भव बना रहे हैं जबतक कि सरकार की नीति में कोई आमूल परिवर्तन नहीं हो जाता। ये कार्य और वाइसराय का तार स्पष्ट-रूप से प्रकट करते हैं कि नौकरशाही हिन्दुस्तान की जनता के हाथों में यहां की हुकूमत सौंपना नहीं चाहती बल्कि उनके द्वारा वह उलटे राष्ट्र की तेजस्विता को मिटा देना चाहती है। उनसे यह भी प्रकट होता है कि सरकार एक ओर जहां कांग्रेस से सहयोग की उम्मीद करती है, वहां दूसरी ओर वह उसपर विश्वास भी नहीं करना चाहती।

बंगाल में हाल ही में आतंकवादी घटनायें हुई हैं, उनकी निन्दा करने में कांग्रेस किसी से पीछे नहीं है। पर साथ ही वह सरकार के द्वारा किये गये आतंकवाद की निन्दा भी उतने ही जोर के साथ करती है। सरकार की यह हिंसा हाल ही जारी किये गये आर्डिनेन्सों और कानूनों से प्रकट है। हाल ही कुमिल्ला में दो लड़कियों-द्वारा जो हत्या हुई है उससे राष्ट्र को नीचे देखना पड़ा है, ऐसी कांग्रेस की राय है। ये कार्य ऐसे समय खास तौर पर और भी हानिकर हैं, जब कि देश कांग्रेस के जरिये, जोकि उसकी सबसे बड़ी प्रतिनिधि-संस्था है, स्वराज्य-प्राप्ति के लिए अहिंसा से काम लेने को वचन-बद्ध हो चुकी है। पर कांग्रेस की कार्य-समिति कोई कारण नहीं देखती कि महज इतनी-सी बात पर, सिर्फ कुछ लोगों के अपराध पर, बंगाल-आर्डिनेन्स जैसे अतिरिक्त कानून जारी करके तमाम लोगों को दण्डित किया जाय। इसका असली इलाज तो है इन अपराधों के प्रेरक-कारणों का ही, जो कि प्रकट हैं, इलाज करना।

यदि बंगाल-आर्डिनेन्स के अस्तित्व का कोई कारण नहीं है, तो युक्त-प्रांत और सीमा-प्रांत के आर्डिनेन्सों के लिए तो उससे भी कम कारण हैं।

कार्य-समिति की राय है कि युक्तप्रांत में किसानों को छूट दिलाने के लिए कांग्रेस-द्वारा अवलम्बित उपाय उचित हैं और उचित प्रमाणित किये जा सकते हैं। कार्य-समिति का यह निश्चित मत है कि गम्भीर आर्थिक संकटों से पीड़ित लोग, जैसा कि स्वीकार किया जा चुका है कि युक्त-प्रांत के किसान पीड़ित हैं, यदि अन्य वैध साधनों से राहत पाने में असफल हों, जैसे कि वे युक्तप्रांत में असफल हुए हैं, तो उन सबका यह निर्विवाद अधिकार है कि वे लगान देना बन्द करदें। महात्मा गांधी से बात-चीत न करने और कार्य-समिति की बैठक में सम्मिलित होने के लिए बंबई आते हुए युक्तप्रांत की प्रांतीय समिति के सभापति श्री शेरवानी तथा महासभा के प्रधान मन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार करके तो सरकार अपने आर्डिनेन्स-द्वारा कल्पित सीमा से भी आगे बढ़ गई है,

क्योंकि इन सज्जनों के बम्बई में युक्तप्रांत के करबंदी के आंदोलन में भाग लेने का तो किसी प्रकार कोई प्रश्न था ही नहीं।

सीमा-प्रांत के सम्बन्ध में स्वयं सरकार की बताई बातों से भी न तो आर्डिनेन्स जारी करने और न खान अब्दुलगफ्फारखां और उनके साथियों को गिरफ्तार करने तथा बिना मुकदमा चलाये जेल में रखने का कोई आधार दिखाई देता है। कार्य-समिति इस प्रांत में निरपराध और निःशस्त्र लोगों पर की गई गोला-बारी को निष्ठुर और अमानुषिक समझती है और वहां की जनता को, उसके साहस और सहन-शक्ति के लिए, बधाई देती है। कार्य-समिति को जरा भी सन्देह नहीं है कि यदि सीमाप्रांत की जनता भारी-से-भारी उत्तेजन दिये जाने पर भी अपनी अहिंसा-वृत्ति को कायम रख सकेगी तो उसके रक्त और उसके कष्ट भारत की स्वतन्त्रता के कार्य को प्रगति पर पहुंचावेंगे।

कार्य-समिति भारत-सरकार से मांग करती है कि जिन बातों के कारण ये आर्डिनेन्स पास करने पड़े हैं, और सामान्य अदालतों और व्यवस्था-तन्त्र को एक ओर रख देने की और इन आर्डिनेन्सों के अन्तर्गत और बाहर जो कार्रवाइयां हुईं, उनके औचित्य के सम्बन्ध में एक खुली और निष्पक्ष जांच करावे। यदि उचित जांच-समिति नियत की जाय, और कार्य-समिति को गवाह पेश करने की सब सुविधायें दी जायं, तो वह इस समिति के सामने गवाह पेश करके सहायता देने के लिए तैयार रहेगी।

गोलमेज-परिषद् में प्रधानमन्त्री-द्वारा की गई घोषणा और उसपर पार्लमेन्ट की कामन-सभा तथा लार्ड-सभा में हुए वाद-विवाद पर कार्य-समिति ने विचार किया, और वह उसे महासभा के दावे की दृष्टि से, सर्वथा असन्तोषजनक और अपूर्ण मानती है, और अपना यह मत प्रकट करती है कि पूर्ण स्वाधीनता से, जिसमें राष्ट्र के हित के लिए आवश्यक सिद्ध होनेवाले संरक्षणों के साथ सेना, वैदेशिक सम्बन्ध तथा आर्थिक मामलों पर पूर्ण अधिकार सम्मिलित हैं, जरा भी कम को कांग्रेस सन्तोप-जनक नहीं मान सकती।

कार्य समिति देखती है कि गोलमेज-परिषद् में महासभा को राष्ट्र की एक मात्र प्रतिनिधि संस्था मानने और उसके किसी जाति, धर्म अथवा रंग-भेद बिना समस्त राष्ट्र की ओर से बोलने के अधिकार को स्वीकार करने लिए ब्रिटिश सरकार तैयार न थी। साथ ही यह समिति इस बात को दुःख के साथ स्वीकार करती है कि उक्त परिषद् में साम्प्रदायिक एकता प्राप्त न की जा सकी।

इसलिए कार्य-समिति राष्ट्र को आह्वान करती है कि कांग्रेस वास्तव में सम्पूर्ण राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने की अधिकारिणी है, यह दिखा देने के लिए तथा देश में ऐसा वातावरण उत्पन्न करने के लिए वह अविराम प्रयत्न करे, जिससे कि शुद्ध राष्ट्रीयता के आधार पर रचित विधान राष्ट्र की अंगभूत विविध जातियों को स्वीकार्य हो सके।

इस बीच यदि वाइसराय अपने तार पर पुनर्विचार करें, आर्डिनेन्सों तथा हाल के कृत्यों के सम्बन्ध में काफी राहत दी जाय, और भावी विचारों और परामर्श में कांग्रेस के लिए अपनी पूर्ण-स्वतन्त्रता का दावा पेश करने की आजादी रहे, और ऐसी स्वतन्त्रता मिलने तक देश का शासन लोक-प्रतिनिधियों की सलाह से चलाया जाय, तो कार्य-समिति सरकार को सहयोग देने के लिए तैयार है।

पूर्वोक्त पैरा में दी गई शर्तों के आधार पर यदि सरकार की ओर से कोई सन्तोपजनक उत्तर न मिले, तो कार्य-समिति इसे सरकार की ओर से दिल्ली के समझौते के रद्द किये जाने की सूचना समझेगी। सन्तोपजनक उत्तर न मिलने की दशा में कार्य-समिति राष्ट्र को निम्नलिखित शर्तों पर फिर सविनय-अवज्ञा, जिसमें लगान-बन्दी भी सम्मिलित है, आरम्भ करने के लिए आह्वान करती है—

(१) कोई भी प्रान्त, ज़िला, तहसील अथवा गांव तबतक सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए बाध्य नहीं है, जबतक कि वहां के लोग संग्राम का अहिंसक रूप, उसके सब फलितार्थों-सहित, न समझ लें और कष्ट-सहन तथा जान-माल तक गंवाने के लिए तैयार न हों।

(२) यह समझ कर कि यह संग्राम आततायी से बदला लेने अथवा उसपर आघात करने के लिए नहीं वरन् अपने कष्ट-सहन और आत्मशुद्धि-द्वारा हृदय-परिवर्तन के लिए है, भयंकर-से-भयंकर उत्तेजना मिलने पर भी मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन अवश्य होना चाहिए।

(३) सरकारी अधिकारियों, पुलिस अथवा राष्ट्र-विरोधियों को हानि पहुंचाने की दृष्टि से किसी भी दशा में सामाजिक बहिष्कार नहीं किया जाना चाहिए। अहिंसा-वृत्ति के यह सर्वथा विरुद्ध है।

(४) यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि अहिंसात्मक संग्राम में आर्थिक सहायता की अपेक्षा नहीं हुआ करती, इसलिए उसमें वेतन पर रक्खे गये स्वयंसेवक न होने चाहिए, किन्तु केवल उनके निर्वाह-मात्र के और जहां सम्भव हो वहां संग्राम में जेल जानेवाले अथवा मारे गये गरीब स्त्री-पुरुषों के आश्रितों के गुजारे-लायक खर्च दिया जा सकता है।

(५) सब स्थिति में, ब्रिटिश अथवा अन्य देश के, सब प्रकार के विदेशी वस्त्र का बहिष्कार आवश्यक है।

(६) सब कांग्रेसवादी स्त्री-पुरुषों से, देशी मिलों तक का कपड़ा न पहनकर, हाथ की कती-बुनी खादी के ही व्यवहार की अपेक्षा की जाती है।

(७) शराब और विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर मुख्यतः स्त्रियों को ही जोरों से, किन्तु सदैव अहिंसा का पालन करते हुए, पिकेटिंग करना चाहिए।

(८) गैर-कानूनी नमक बनाने और बटोरने का काम फिर जारी करना चाहिए।

(९) यदि जुलूस और प्रदर्शनों की व्यवस्था की जाय, तो उसमें केवल वेही लोग शरीक हों, जो अपनी-अपनी जगहों से जरा भी हिले बिना लाठी प्रहार और गोलियां सहन कर सकें।

(१०) अहिंसात्मक संग्राम में भी उत्पीड़क-द्वारा तैयार माल का बहिष्कार करना सर्वथा निहित है, क्योंकि अत्याचार के शिकार व्यक्तियों का यह कभी धर्म नहीं है कि वे आततायी के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ावें अथवा कायम रक्खें। इसलिए ब्रिटिश-माल और ब्रिटिश कम्पनियों का बहिष्कार पुनः आरम्भ किया जाय और जोरों से चलाया जाय।

(११) जहां-जहां सम्भव और उचित समझा जाय, अनैतिक कानूनों और जनता को हानि पहुंचाने वाली आज्ञाओं का सविनय-भंग किया जाय।

(१२) आर्डिनेन्सों के अन्तर्गत जारी हुई प्रत्येक अनुचित आज्ञाओं का सविनय भंग किया जाय।"

(४) गांधीजी के दूसरे तार के उत्तर में, २ जनवरी की शाम को वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी ने नीचे लिखा तार भेजा—

"वाइसराय ने मुझे आपके १ जनवरी के तार को स्वीकृति भेजने के लिए कहा है, जिस पर उन्होंने तथा उनकी सरकार ने विचार कर लिया है। उन्हें इस बात का अत्यन्त खेद है कि आपकी सलाह से कांग्रेस-कार्य-समिति ने ऐसा प्रस्ताव पास किया है, जिसमें यदि आपके तार और उक्त प्रस्ताव में बताई गई शर्तें पूरी न की गईं तो सविनय अवज्ञा के पुनः पूरी तौर पर जारी कर दिये जाने की बात है।

प्रधान-मन्त्री के वक्तव्य के अनुसार वैध शासन सुधार की नीति को शीघ्र आरम्भ करने की

सम्राट्-सरकार तथा भारत-सरकार की घोषित इच्छा के होते हुए हम इस व्यवहार को विशेष खेद-जनक समझते हैं।

अपने उत्तरदायित्व का खयाल रखने वाली कोई भी सरकार किसी भी राजनैतिक संस्था की गैर-कानूनी कार्रवाई की धमकी-युक्त शर्तों को स्वीकार नहीं कर सकती, न भारत-सरकार आपके तार में वर्णित इस स्थिति को स्वीकार कर सकती है कि दिल्ली के समझौते पर पूरी सावधानी और पूरे ध्यान से विचार करने और अन्य सब सम्भव उपायों के समाप्त हो जाने के बाद, सरकार ने जिन उपायों का अवलम्बन किया है उनके औचित्य का आधार आपके निर्णय पर होना चाहिये।

वाइसराय महोदय और उनकी सरकार इस बात पर मुश्किल से ही विश्वास कर सकते हैं, कि आप अथवा कार्य-समिति समझती है कि सविनय-अवज्ञा के पुनरारम्भ की धमकी पर वाइसराय महोदय किस लाभ की आशा से आपको मुलाकात के लिए बुला सकते हैं।

कांग्रेस ने जिन उपायों के अवलम्बन का इरादा जाहिर किया है, उसके सब परिणामों के लिए हम आपको और कांग्रेस को उत्तरदायी समझेंगे और उनके दबाने के लिए सरकार सब आवश्यक अस्त्रों का अवलम्बन करेगी।"

(५) वाइसराय के उक्त तार के उत्तर में गांधीजी ने, ३ जनवरी १९३२ को, निम्न तार भेजा—

"आपके तार के लिए धन्यवाद। मैं आपके और आपकी सरकार के निर्णय के प्रति हार्दिक खेद प्रकट किए बिना नहीं रह सकता। प्रामाणिक मत-प्रदर्शन को धमकी समझ लेना अवश्य ही भूल है। क्या मैं सरकार को याद दिलाऊं कि सत्याग्रह के जारी रहते हुए ही दिल्ली की सन्धि-चर्चा आरम्भ हुई और चलती रही थी, और जिस समय समझौता हुआ उस समय सत्याग्रह बन्द नहीं कर दिया गया था वरन् स्थगित किया गया था? मेरे लन्दन जाने के पहले, गत सितम्बर में, शिमला में इस बात पर दुबारा जोर दिया गया था और आपने तथा आपकी सरकार ने इसे स्वीकार किया था। यद्यपि मैंने उस समय यह बात स्पष्ट कर दी थी, कि सम्भव है कुछ हालतों में कांग्रेस को सत्याग्रह जारी करना पड़े, तो भी सरकार ने बातचीत बन्द न की थी। सरकार ने उस समय बताया था कि सत्याग्रह के साथ कानून-भंग के लिए सजा भी लगी रहती है, इस बात से यही सिद्ध नहीं होता था कि सत्याग्रहियों ने यह सौदा किसलिए किया है; किन्तु इससे मेरी दलील पर कुछ असर नहीं होता।

यदि सरकार इस रवैये के विरुद्ध थी, तो उसके लिए यह खुला था कि वह मुझे लन्दन न भेजती। किन्तु इसके विपरीत मेरी बिदाई पर आपने शुभकामना प्रदर्शित की थी।

न यही कहना न्याय और सही है कि मैंने कभी इस बात का दावा किया है कि सरकार की कोई भी नीति मेरे निर्णय पर निर्भर रहनी चाहिये।

लेकिन मैं यह बात अवश्य कहना चाहता हूं कि कोई भी लोकप्रिय वैध-सरकार अपने उन कृत्यों और आर्डिनेन्सों के सम्बन्ध में, जिन्हें कि लोकमत पसन्द नहीं करता, सार्वजनिक संस्थाओं और उनके प्रतिनिधियों की सूचनाओं का सदैव स्वागत करती, उनपर सहानुभूति-पूर्वक विचार तथा अपने पास की सब सूचनाओं अथवा जानकारी से उनकी सहायता करती।

मैं यह दावा करता हूं कि मेरे सन्देश का मैंने पिछले पैरे में जो अर्थ बताया है उसके सिवा और कोई अर्थ नहीं है। समय ही बतलायगा कि किसने सच्ची स्थिति ग्रहण की थी। इस बीच मैं सरकार को विश्वास दिलाना चाहता हूं कि कांग्रेस की ओर से संग्राम को सर्वदा द्वेष-रहित तथा सर्वथा अहिंसापूर्ण तरीके से चलाने का पूरा प्रयत्न किया जायगा।

आपको मुझे यह याद दिलाने की कोई आवश्यकता न थी कि अपने कार्यों के लिए कांग्रेस और उसका एक विनम्र प्रतिनिधि, मैं, जिम्मेदार होंगे।"

बेन्थल का गश्ती-पत्र

सुविधा के लिहाज से हमने इन सब तारों को एक-साथ दे दिया है, वैसे ये सब हैं छःदिन की घटनायें। ३० दिसम्बर को मि० बेन्थल गांधीजी से मिले और काफी देर तक बातचीत की। वे गोलमेज-परिषद् में हिन्दुस्तान के व्यापारिक प्रतिनिधि के रूप में शरीक हुए थे। और इसमें तो कोई संदेह ही नहीं कि व्यापारी-समुदाय के लिए गांधीजी की हलचल भयोत्पादक थी और बाद को घटनाओं एवं अनुभवों ने यह सिद्ध कर दिया कि राष्ट्र के हाथों में बहिष्कार एक बड़ा हथियार है। इन मि० बेन्थल तथा इनके राज-भक्त साथियों ने ऐसी भाषा में विचार प्रकट किये जिनकी तीक्ष्णता, इतने समय के बाद भी, बिलकुल कम नहीं हुई है। इन लोगों ने जो 'गुप्त' गश्ती-पत्र प्रचारित किया, उसके कुछ उद्धरण नीचे दिये जाते हैं—

"अगर सम्भव हो तो कोई समझौता करने के इरादे के साथ हम लन्दन गये थे, लेकिन इसके साथ ही इस बात के लिए भी हम दृढ़-निश्चय थे कि आर्थिक और व्यापारिक संरक्षणों के बारे में (यूरोपियन) असोशियेटेड चैम्बर्स आफ कामर्स ने जो नीति निश्चित की है और यूरोपियन-असोसियेशन ने जो सामान्य-नीति तय की है उसके किसी मूलभूत अंश को नहीं छोड़ेंगे। यह हम अच्छी तरह जानते थे, और परिषद् के समय भी हमेशा हमारे दिमाग में यह बात रही है, कि जो संरक्षण पेश किये जा चुके हैं उनकी काट-छांट करने का कांग्रेस, हिन्दू-सभा और (भारतीय) फेडरेटेड चैम्बर्स आफ कामर्स की सम्मिलित शक्ति के साथ प्रयत्न किया जायगा.........।

"इस पिछले अधिवेशन के परिणामों पर अगर आप नजर डालें तो, आप देखेंगे कि गांधीजी और (भारतीय) फेडरेटेड चैम्बर्स एक भी ऐसी बात नहीं बतला सकते जो गोलमेज-परिषद् में उनके जाने के फल-स्वरूप ब्रिटिश-सरकार की ओर से बतौर रिआयत उनके साथ की गई हो। वे तो खाली हाथ ही हिन्दुस्तान लौटे हैं।

"एक और भी घटना ऐसी हुई है जो उनके लिए अच्छी साबित नहीं हुई। साम्प्रदायिक-समस्या को हल करने का उन्होंने जिम्मा लिया, लेकिन सारी दुनिया के सामने उन्हें असफल होना पड़ा.........।

"मुसलमानों का दल बहुत ठोस और मजबूत रहा। यहां तक कि राष्ट्रीय मुसलमान कहे जाने वाले अलीइमाम भी उससे बाहर नहीं गये। शुरू से अखीर तक बड़ी होशियारी के साथ मुसलमानों ने खेल खेला। हमारा समर्थन करने का उन्होंने वादा किया था, जिसे उन्होंने पूरी तरह निभाया। बदले में उन्होंने हमसे कहा कि आर्थिक दृष्टि से बंगाल में उनकी जो बुरी हालत है उस पर हम ध्यान दें। उनकी 'ज्यादा लल्लो-चप्पो करने की तो जरूरत नहीं', पर अंग्रेजी फर्मों में हमें उनको जगह देने का प्रयत्न करना चाहिये, जिससे वे अपनी माली हालत और अपनी जाति की सामान्य स्थिति को ठीक कर सकें।

"ब्रिटिश-राष्ट्र और हिन्दुस्तान में रहनेवाले अंग्रेजों की, कुल मिलाकर, एक ही नीति है; और वह यह कि सोच-समझकर हम एक राष्ट्रीय नीति निश्चित करें और फिर उसपर जमे रहें। लेकिन (पार्लमेण्ट के) आम चुनाव के बाद सरकारी नरम-दल ने (गोलमेज) परिषद् को असफल करने और उसका तथा कांग्रेस का विरोध करने का निश्चय कर लिया। मुसलमान लोग, जो कि केन्द्र में उत्तरदायित्व नहीं चाहते, इस बात से खुश हुए। सरकार ने तो निश्चित रूप से अपनी नीति बदल ली और केन्द्रीय सुधारों के आश्वासन के साथ प्रान्तीय स्वराज्य परही मामला टालने की कोशिश की। हमें यह भी निश्चय हो गया था कि कांग्रेस के साथ लड़ाई अनि-

वार्य है; तब हमने महसूस किया और कहा कि जितनी जल्दी वह शुरू हो जाय उतना ही अच्छा है। लेकिन इसके साथ ही हमने यह भी सोच लिया कि इसमें पूरी सफलता तभी मिल सकती है जबकि जितने हो सकें उन सब मित्रों को अपने पक्ष में करलें। मुसलमान तो हमारे साथ थे ही, जैसा कि अल्पसंख्यक-समझौते और मुसलमानों के प्रति सरकार के सामान्य रुख से स्पष्ट था। यही हाल राजाओं और दूसरी अल्पसंख्यक जातियों का था।

"हमें यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि सर सप्रू, जयकर, पैट्रो आदि के समान सर्व-साधारण हिन्दुओं को अपनी ओर मिलाया जाय। अगर हम उन्हें कांग्रेस के खिलाफ खड़ा न कर सकें तो कम से-कम ऐसा तो कर ही सकते हैं कि जिससे वे कांग्रेस का साथ भी न दें। और यह कोई मुश्किल बात भी नहीं है; इसके लिए उन्हें सिर्फ यही विश्वास कराने की आवश्यकता है कि संघ योजना को नहीं छोड़ा जायगा, जिसे कि मोटे तौर पर अंग्रेज भी स्वीकार कर चुके थे। अस्तु। इसीके अनुसार हमने काम किया। हमने सरकार से आग्रह किया कि वह प्रान्तीय और केन्द्रीय-विधानों को एक-साथ उपस्थित करे, जिसे ये लोग सरकार की ईमान्दारी और सद्भाव का ठोस नमूना समझेंगे और इनका सन्तोष हो जायगा। जहांतक प्रान्तीय-स्वराज्य का सम्बन्ध है, वह हिन्दुस्तान पर जबरदस्ती नहीं लादा जा सकता; क्योंकि अकेले मुसलमान उसे नहीं चला सकते। कांग्रेसी प्रान्तों और दृढ़ भारत-सरकार का मुकाबला बड़ी भारी राजनैतिक कठिनाइयां उत्पन्न करेगा; क्योंकि हरेक प्रान्त एक-एक कलकत्ता कारपोरेशन बन जायगा। अतः (इस स्थिति को बचाने के लिए) हमने अजीब नये-नये साथी जोड़े। फलतः बजाय इसके कि परिषद् व वाद-विवाद बीच में ही भंग हो जाते और राजनैतिक विचारों के १०० फी सदी हिन्दू हमारे विरोधी बनते, परिषद् में आये ९९ फी सदी व्यक्तियों के, जिनमें मालवीयजी जैसे लोग भी शामिल हैं, सहयोग के आश्वासन के साथ वे समाप्त हुए, अलबत्ता गांधीजी स्टैंडिंग-कमिटी में शामिल होने के लिए रजामन्द नहीं हुए.........।

"मुसलमान तो अंग्रेजों के पक्के दोस्त ही हो गये हैं। अपनी परिस्थिति से उन्हें पूरा सन्तोष है और वे हमारे साथ काम करने के लिए तैयार हैं।

"लेकिन यह हरगिज न समझ लेना चाहिए कि जब हम यह कहते हैं कि सुधारों का होना जरूरी है तो हम हरेक प्रान्त में जन-तन्त्रीय सुधारों का ही प्रतिपादन करते हैं। हम जो कुछ कहते हैं उसका अर्थ शासन-पद्धति में ऐसे हेर-फेर करना भर है, जिससे कि उसकी सुचारुता बढ़ जाय।"

मजदूर-सरकार ने अपनी घोषणा में भारत की जो-कुछ देने का वचन दिया था उसके उद्देश्य को नष्ट करने की टोरी (कंजरवेटिव) सरकार और उसके साथियों ने कैसी चेष्टा की, यह इन उद्धरणों से भली-भांति मालूम हो जाता है। लेकिन यह विश्वास करना गलत होगा कि उन्नति-विरोधी मुसलमानों के, जो कि अपने थोड़े-से स्वार्थों के लिए[1] अपने देश को बेचने के लिए तैयार थे, और हिन्दुस्तानियों को हमेशा गुलाम बनाये रखने के इच्छुक उन्नति-विरोधी-ब्रिटिशों के बीच जो समझौता हुआ, वह एकाएक ही हो गया। उसकी नींव तो गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन से कहीं पहले हिन्दुस्तान और इंग्लैण्ड दोनों जगह रक्खी जा चुकी थी। सच तो यह है कि जब गांधीजी और लॉर्ड अर्विन के बीच समझौता हुआ तो उसके बाद ही भारत में उन सब उन्नति-विरोधी लोगों ने, जो समझौते को पसन्द नहीं करते थे, शीघ्रता के साथ अपनी शक्तियों को संगठित किया और भारतीय

१—गोलमेज-परिषद् के समय की गई सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप अपने को भारत के किसी प्रदेश का राजा बनाने की सर आगाखां की मांग से, जिसका कि हाल ही में असेम्बली में रहस्योद्घाटन हुआ, इस सौदे का नग्न-स्वरूप बड़े बीभत्स रूप में सामने आया है।

राष्ट्रवादियों को शिकस्त देने के लिए अपना सम्मिलित गुट बना लिया था। इस षड्यन्त्र की आंशिक रचना तो शिमला में ही हुई थी, जो कि भारत-सरकार का सदर-मुकाम है।

गांधीजी पकड़े गये

मि० इमर्सन और लॉर्ड विलिंगडन ने जो चुनौती दी थी उसे कार्य-समिति ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद कार्य-समिति के सदस्य अपने-अपने स्थानों को लौट गये। लेकिन उन्होंने अपने-को ऐसी परिस्थिति में पाया कि कुछ कर नहीं सकते थे। वस्तुतः सरकार ने वहीं से लड़ाई को फिरसे ग्रहण किया जहां पर कि ४ मार्च १९३१ को उसे छोड़ा गया था। अस्थायी-संधि के दर्मियान उसने हजारों लाठियां और एकत्र करली थीं। सच तो यह है कि अस्थायी-सन्धि का अवसर सरकार के लिए नये सिरे से लड़ाई लड़ने की तैयारी करने का समय था, जिसका कि अस्थायी-संधि के दर्मियान प्रायः किसी भी महीने, नहीं तो गांधीजी की वापसी पर तो टूटना निश्चित ही था। तीन आर्डिनेन्स तो जारी कर ही दिये गये थे, और कई जब भी जरुरत हो तुरन्त जारी कर देने के लिए वाइसराय की जेब में रक्खे हुए थे। ४ जनवरी १९३२ को सरकारी प्रहार शुरू हो गया। कांग्रेस की तथा उससे सम्बन्धित हरेक संस्था को गैर-कानूनी करार दे दिया गया और कांग्रेसी लोग, कानून या आर्डिनेन्सों के, जो कि गैर-कानूनी कहलाने लगे थे, खिलाफ कोई प्रत्यक्ष कार्य करें या नहीं, उन्हें गिरफ्तार कर-करके जेलों में भेजा जाने लगा। कांग्रेस को सब-कुछ नये सिरे से शुरू करना पड़ा। सरकारी लाठी-प्रहार पहले आन्दोलन (१९३०) के समय शुरू में नहीं बल्कि बाद में जारी हुआ था, लेकिन १९३२ में सत्याग्रहियों को सबसे पहले उसी का मुकाबला करना पड़ा। चारों तरफ यह बात फैल रही थी कि लॉर्ड, विलिंगडन सारे उत्पात को छः सप्ताह में ही खतम कर देने की आशा रखते हैं। लेकिन छः सप्ताह का समय इतना कम था और सत्याग्रह ऐसी लम्बी लड़ाई है कि उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई।

गांधीजी गुजरात के उन ताल्लुकों में जाने का इरादा कर रहे थे, जिन्हें १९३० की लड़ाई में बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। लेकिन पेश्तर इसके कि वे वहां जायं, उन्हें और उनके विश्वस्त सहायक वल्लभभाई को ४ जनवरी १९३२ के बड़े सवेरे गिरफ्तार करके शाही कैदी बना दिया गया। खान साहब और जवाहरलाल जी पहले ही गिरफ्तार हो चुके थे। अब जो भारतीय राजनीतिज्ञ बाकी बचे थे उन्हीं को लड़ाई का संचालन करना पड़ा। हजारों की तादात में सत्याग्रही मैदान में आये। १९२१ में उनकी संख्या तीस हजार थी, जो एक बड़ी तादाद मानी गई थी। १९३०-३१ में, दस महीनों के थोड़े-से समय में ही, नब्बे हजार स्त्री-पुरुष और बच्चे दोषी करार देकर जेलों में, ठूंस दिये गये। यह कोई नहीं जानता कि मार कितनों पर पड़ी, लेकिन जितनों को कैद की सजा हुई थी पिटनेवालों की संख्या उससे ३ या ४ गुनी ज्यादा तो होगी ही। लोगों को या तो पीटते-पीटते किसी काम के लायक ही न रहने दिया गया, या छिपने और घर दबोचने की नीति से उन्हें थका दिया गया। जेलों में कैदियों की पिटाई फिर शुरू हो गई। कांग्रेस के दफ्तर की जो गुप्त या खानगी बातें थीं उनका रहस्योद्घाटन करने के लिए कहा गया। "तुम्हारे (कांग्रेस के) कागज-पत्र, रजिस्टर और चन्दे व स्वयं-सेवकों की फहरिस्तें कहां है?" यह सरकार की मांग थी। नौजवानों को तरह-तरह तंग किया गया, न कहने-योग्य बातें (अपशब्द) उन्हें कही गईं, और अकथनीय सजाओं का आयोजन करके उनको अमली रूप दिया गया। हाईकोर्ट के एक एडवोकेट को सताने के लिए एक-एक करके उसके बाल उखाड़े गये, और यह सिर्फ इसलिए कि उसने पुलिस को अपना नाम और पता नहीं बताया था!

आर्डिनेंसों का राज

जैसे-जैसे परिस्थिति बदलती गई, उसके अनुसार, नये-नये आर्डिनेन्स निकलते गये। हालांकि वे एक साथ नहीं बल्कि भिन्न-भिन्न समय जारी हुए, मगर उनपर एक साथ विचार करना ही ठीक होगा। इनमें से एक आर्डिनेन्स का जिक्र तो पहले ही हो चुका है, जोकि उस समय बंगाल में जारी किया गया था जबकि गांधीजी अभी लन्दन ही में थे। कहा यह गया था कि यह बंगाल में आतंकवादी-आन्दोलन का प्रसार रोकने और उसके सम्बन्ध में चलनेवाले मुकदमों को जल्दी निपटाने के लिए है। प्रान्तीय-सरकार से अधिकार-प्राप्त किसी भी सरकारी अफसर को इससे यह सत्ता प्राप्त हो गई कि जिस किसी भी व्यक्ति पर कोई भी सन्देह हो उससे उसका परिचय और हलचल मालूम करे और उसकी बताई हुई बातें ठीक हैं या नहीं इसकी तहकीकात करने के लिए उसे गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में ले ले। ऐसी गिरफ्तारी के लिए जिस किसी भी साधन की आवश्यकता हो, उसको वह अमल में ला सकता था। प्रान्तीय-सरकार को यह अधिकार मिला कि अगर जरूरत हो तो वह किसी भी मकान या इमारत को, मय उसके सामान के, उसके मालिक या उसमें रहनेवाले से खाली कराके चाहे जितने समय के लिए अपने कब्जे में करले, और चाहे तो उसका मुआवजा दे और चाहे तो न भी दे। इसी प्रकार जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी चीज या सामान के मालिक या इस्तेमाल करनेवाले से, मुआवजे के साथ या बिना मुआवजे के ही, उसका सामान ले सकता था। वह किसी जगह या इमारत को, जिसमें रेलवे इत्यादि भी शामिल हैं, सरकारी कब्जे में ले सकता था अथवा वहां जाने पर बन्दिश लगा सकता था। यातायात पर बन्दिश लगाने और सवारियों के मालिक या रखनेवालों को उन्हें सरकार के सुपुर्द करने का भी वह हुक्म दे सकता था। शस्त्रास्त्र की बिक्री बन्द करने या नियंत्रित करने और उन्हें अपने कब्जे में कर लेने का उसे अधिकार था। किसी भी जमींदार या अध्यापक अथवा और किसी व्यक्ति से वह कानून और व्यवस्था की स्थापना के काम में मदद करने के लिए कह सकता था। तलाशी के वारंट निकाल सकता था। प्रान्तीय-सरकार किसी खास इलाके के निवासियों पर सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, किसी खास व्यक्ति या श्रेणी को किसी भी लेने-पावने से मुक्त कर सकती थी, और किसी भी व्यक्ति के हिस्से का बकाया जुर्माना सरकारी मालगुजारी के बतौर वसूल किया जा सकता था। जरा भी अवज्ञा होने पर ६ महीने कैद या जुर्माने अथवा दोनों की सजा मिल सकती थी। प्रान्तीय सरकार को यह अधिकार दे दिया गया था कि फरार लोगों से पत्र-व्यवहार रोकने के लिए और उनकी हलचलों की जानकारी रखने तथा उनकी हलचलों की बातें मालूम करने के लिए, सम्राट् के प्रजाजनों के जान-माल पर होनेवाले आक्रमणों से रक्षा करने, सम्राट् की फौज व पुलिस को सुरक्षित रखने तथा कैदियों को जेल में निर्बाध रूप से रखने की दृष्टि से नियमोपनियम बनाये। आर्डिनेन्स के मातहत कैसी भी कार्रवाई क्यों न करें, फौजदारी-अदालत में उसका विरोध नहीं किया जा सकता था। जिन मुकद्मों को सरकार विशेष अदालत-द्वारा निपटाना चाहे उनकी तहकीकात के लिए फौजदारी मामलों के नये अर्थात् स्पेशल-ट्रिब्यूनल या स्पेशल-मजिस्ट्रेट बनाने को कहा गया। स्पेशल-ट्रिब्यूनलों के लिए नियमोपनियम भी विशेष तौर पर ही बनाये गये। विशेष-न्यायालयों को अधिकार दिया गया कि चन्द परिस्थितियों में वे अभियुक्त की अनुपस्थिति में भी मामला चला सकते हैं।

युक्त-प्रान्तीय इमर्जेन्सी-आर्डिनेन्स १४ दिसम्बर १९३१ को जारी हुआ। इसके द्वारा प्रांतीय सरकार को अधिकार दिया गया कि वह सरकार, स्थानीय अधिकारी या जमींदार को दी जानेवाली किसी रकम को (बकाया रकम को) सरकारी पावना करार देकर उसे बकाया मालगुजारी के रूप में

वसूल करे। प्रान्तीय-सरकार जिस किसी व्यक्ति के लिए यह समझे कि वह सार्वजनिक सुरक्षा के विरुद्ध काम कर रहा है उसे किसी खास इलाके में ही रहने, किसी खास इलाके में से हट जाने या किसी खास तरीके पर रहने का हुक्म दे सकती थी। एक महीने तक उसका वह हुक्म कायम रहता। किसी खास जमीन या इमारत के मालिक को सारी जमीन या इमारत, मय फर्नीचर तथा दूसरे सामान के मुआवजे के साथ या वगैर मुआवजे ही, सरकार के सुपुर्द करने का प्रान्तीय-सरकार हुक्म दे सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट चाहे जिस इमारत या स्थान का प्रवेश निषिद्ध या मर्यादित कर सकता था और किसी भी आदमी को यह हुक्म दे सकता था कि उसके पास कोई सवारी या यातायात के जो भी साधन हों उनके बारे में जब जैसा हुक्म मिले तब वैसा ही किया जाय। सरकार से अधिकार-प्राप्त कोई भी अफसर किसी भी जमींदार, स्थानीय अधिकारी या अध्यापक को कानून और शान्ति कायम रखने के काम में मदद करने के लिए तलब कर सकता था। जिस किसी व्यक्ति पर यह शक हो कि वह सरकारी लेने को न अदा करने की प्रेरणा कर रहा है उसे दो साल की कैद, जुर्माना या दोनों सजायें दी जा सकती थीं। जो कोई व्यक्ति किसी सरकारी नौकर को अपने फर्जों को भली-भांति अदा न करने अथवा किसी व्यक्ति को पुलिस या सेना में भरती होने से रोकने की चेष्टा करे उसे एक साल कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। किसी खास हलके के निवासियों पर प्रान्तीय-सरकार सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, और उसकी वसूली उसी तरह हो सकती थी जैसे कि मालगुजारी वसूल की जाती है। किसी जब्त साहित्य के अंश दोहरानेवाले को ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। १६ साल तक के व्यक्तियों पर होनेवाला जुर्माना उनके मां-बाप या संरक्षक से वसूल किया जा सकता था और उसके वसूल न हो सकने की दशा में उन्हें उसी प्रकार कैद की सजा दी जा सकती थी, मानों स्वयं उन्होंने वह अपराध किया है। ऐसे हुक्म के खिलाफ दीवानी अदालत में कानूनी कार्रवाई भी नहीं की जा सकती थी।

सीमाप्रान्त-सम्बन्धी तीन आर्डिनेन्स २४ दिसम्बर १६३१ को जारी किये गये। उनमें से एक तो युक्तप्रान्त-सम्बन्धी आर्डिनेन्स की ही तरह था और सरकारी लेने की वसूली के लिए निकाला गया था। बाकी दो में से एक का नाम सीमाप्रांतीय 'इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स' था और दूसरे का 'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स'। इनमें से पहले के मातहत कोई भी अधिकार-प्राप्त व्यक्ति किसी भी सन्दिग्ध-व्यक्ति को बिना कारण गिरफ्तार करके एक दिन के लिए हिरासत में रख सकता था और प्रान्तीय सरकार-द्वारा वह मियाद दो महीने तक बढ़ाई जा सकती थी। प्रान्तीय-सरकार किसी व्यक्ति को एक महीने के लिए किसी खास तरीके से रहने का हुक्म दे सकती थी। ऐसे हुक्म पर अमल न कर सकने की हालत में दो साल तक कैद की सजा दी जा सकती थी। किसी भी निजी इमारत को प्रान्तीय-सरकार अपने कब्जे में ले सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट किसी भी इमारत और किसी सड़क या जल-मार्ग के यातायात को निषिद्ध, नियन्त्रित या मर्यादित कर सकता था। प्रान्तीय-सरकार किसी भी माल की खपत व बिक्री को नियन्त्रित करने के लिए उसे तैयार करने वालों व व्यापारियों को उस माल की खरीद-फरोख्त के नक्शे पेश करने या अपना सारा माल या उसका अंश सरकार को सौंप देने के लिए कह सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट सवारी या यातायात के अन्य सब साधनों के तफसीलवार ब्योरे पेश करने या उन्हें (सवारी आदि को) ही सरकार के सुपुर्द करने का हुक्म दे सकता था। शस्त्रास्त्र और गोला-बारूद की बिक्री को जिला-मजिस्ट्रेट नियंत्रित कर सकता था। प्रान्तीय-सरकार चाहे जिसको स्पेशल पुलिस-अफसर मुकर्रर कर सकती थी, अथवा किसी भी जमींदार, अध्यापक या

स्थानीय अधिकारी को कानून और व्यवस्था के रक्षार्थ मदद करने का हुक्म दे सकती थी। लोकोपयोगी कार्य (Utility Service) के संचालकों को उस संस्था या मण्डल के द्वारा अपने इच्छानुसार कोई भी काम कराने के लिए प्रान्तीय-सरकार कह सकती थी, और अगर वह उसके अनुसार न कर सकता तो उस संस्था का अधिकार वह अपने हाथ में ले सकती थी। जिला-मजिस्ट्रेट डाक, तार, टेलीफोन और वायरलेस (बेतार के तार) को नियन्त्रित करके उनके द्वारा जानेवाली चीजों या चिट्ठी-पत्रियों को रोक सकता था, किसी भी रेलगाड़ी या नौका में जगह ले सकता था, किसी खास व्यक्ति या माल को किसी भी मुकाम पर ले जाने की मनाही कर सकता था, रेलगाड़ी में से किसी भी यात्री को उतरवा सकता था, किसी भी गाड़ी को किसी खास मुकाम पर रोककर पुलिस व सेना के विशेष तौर पर ले जाये जाने की व्यवस्था कर सकता था। किसी भी सार्वजनिक सभा में, फिर वह चाहे निजी स्थान में ही हो और उसमें प्रवेश टिकटों द्वारा ही क्यों न हो, पुलिस-अफसर को भेज सकता था। तलाशियों के लिए खास अधिकार दिये गये थे। कोई भी व्यक्ति जो किसी सरकारी नौकर को अपने काम की उपेक्षा करने या किसी को पुलिस या सेना में भरती होने से रोकने या ऐसी कोई अफवाह या चर्चा फैलाने की चेष्टा करे कि जिससे सरकारी नौकरों के प्रति घृणा या अपमान का भाव उत्पन्न होता हो, या सर्व-साधारण में भय-संचार होता हो, उसे एक साल कैद या जुर्माने की अथवा दोनों सजायें दी जा सकती थीं। प्रान्तीय-सरकार किसी हलके के निवासियों पर सामूहिक जुर्माना कर सकती थी, जो उसी तरह वसूल होता जैसे कि मालगुजारी होती है। जो कोई व्यक्ति किसी गुप्त (सरकारी) दस्तावेज की बातों को दोहराये उसे ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो सकती थी। १६ साल तक के नवयुवकों पर उनका जुर्माना उसके अभिभावक या संरक्षक से वसूल किया जा सकता था, और न वसूल होने की दशा में उन्हें कैद की सजा दी जा सकती थी। स्पेशल जजों व मजिस्ट्रेटों के साथ स्पेशल और सरसरी अदालतें बनाई गईं और उनके कार्य-क्षेत्र की व्याख्या करके मुकदमों व अपीलों के लिए खास-तौर की कार्य-प्रणाली तैयार की गई।

अन्य आर्डिनेन्सों के मातहत प्रान्तीय-सरकार किसी स्थान को गैर-कानूनी करार दे सकती थी और मजिस्ट्रेट उस स्थान को सरकारी कब्जे में लेकर जो भी व्यक्ति वहां हो उसे निकाल सकता था। मजिस्ट्रेट चल सम्पत्ति पर भी कब्जा कर सकता था और प्रान्तीय सरकार उसे जब्त करा दे सकती थी। निषिद्ध (गैर-कानूनी) करार दिये गये स्थान पर जाने या वहां रहनेवाला कोई भी व्यक्ति फौजदारी अपराध का मुजरिम होता था। प्रान्तीय-सरकार गैर-कानूनी करार दी गई संस्था का रुपया-पैसा आदि समान जब्त कर सकती थी और किसी भी ऐसे व्यक्ति पर, जिसके पास किसी गैर-कानूनी संस्था का रुपया होने का शुबहा हो, उस रुपये को सरकारी हुक्म के बगैर खर्च न करने की पाबन्दी लगा सकती थी। ऐसे व्यक्तियों के बहीखातों की जांच-पड़ताल करने या ऐसी रकम के मूल व इस्तेमाल का पता लगाने का भी प्रान्तीय-सरकार हुक्म दे सकती थी।

४ जनवरी को चार नये आर्डिनेन्स और जारी हुए—(१) इमर्जेन्सी पावर्स आर्डिनेन्स, (२) अनलॉफुल इंस्टिगेशन आर्डिनेन्स, (३) अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स, और (४) प्रिवेन्शन ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स। इनमें से पहले आर्डिनेन्स के मातहत तो लोगों को गिरफ्तार करने, बन्द रखने या उनकी हलचलों को नियन्त्रित करने, इमारतों को मांग लेने, इमारतों या रेलवे को वर्जित-स्थान करार देने, यातायात को नियन्त्रित करने, सर्व-साधारण के व्यवहार की किसी चीज को अपने कब्जे में करने या उसकी खपत व बिक्री पर नियन्त्रण करने, यातायात के साधनों पर नियन्त्रण करने, शस्त्रास्त्र की बिक्री पर नियंत्रण करने, स्पेशल पुलिस-अफसर नियुक्त करने, जमींदारों व अध्या-

पकों आदि को कानून और व्यवस्था कायम रखने में मदद करने के लिए वाध्य करने, सार्वजनिक उपयोग के कामों पर नियन्त्रण करने, डाक, तार या हवाई जहाज से जानेवाली चीजों व चिट्ठी-पत्रियों को रोकने और बीच में गायब कर लेने, रेलों और नौकाओं में जगह हासिल करने तथा उनके यातायात पर नियन्त्रण करने, सभाओं में पुलिस अफसरों को भेजने इत्यादि के वैसे ही अधिकार लिये गये थे जैसों का विस्तार के साथ ऊपर वर्णन किया जा चुका है। इसी प्रकार जैसा कि सीमा-प्रान्तीय रेग्यूलेशन में रक्खा गया है, विशेष अदालतों, उनमें खास तौर की कार्रवाई, नये-नये जुर्म और उनके लिए खास तौर की सजाओं का भी विधान किया गया। इण्डियन प्रेस इमर्जेन्सी एक्ट को आर्डिनेन्स की एक विशेष धारा के द्वारा, और कड़ा कर दिया गया था।

'अनलॉफुल इंस्टिगेशन आर्डिनेन्स', के मातहत सरकार किसी पावने को इश्तिहारी पावना घोषित कर सकती थी और जो भी कोई व्यक्ति उसकी अदायगी में वाधक होता उसे ६ महीने कैद और उसके साथ जुर्माने की सजा दी जा सकती थी। जिसको ऐसा पावना मिलना हो वह आदमी कलक्टर से यह कह सकता था कि इसे वतौर मालगुजारी वसूल किया जाय और कलक्टर उसे मालगुजारी के वकाया के रूप में वसूल करवा सकता था।

'अनलॉफुल असोसियेशन आर्डिनेन्स' के मातहत जैसा कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्तीय आर्डिनेन्स के सिलसिले में ऊपर वताया जा चुका है, प्रान्तीय-सरकार गैरकानूनी करार दी गई संस्था की इमारत और उसकी चल-सम्पत्ति व रुपये-पैसे को अपने कब्जे में कर सकती थी। ऐसे रुपये पैसे को प्रांतीय-सरकार जब्त भी कर सकती थी। जिस किसी के पास ऐसा रुपया-पैसा हो उसे उस सम्बन्धी हिसाब-किताव की जांच कराने और सरकार की स्वीकृति वगैर उसको खर्च न करने का हुक्म दे सकती थी। ऐसी हरेक संस्था को गैरकानूनी घोषित किया जा सकता था, जो कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल की राय में कानून और व्यवस्था के अमल में वाधक होती हो तथा सार्वजनिक शान्ति के लिए खतरनाक हो।

'प्रिवेंशन ऑफ मॉलेस्टेशन एण्ड बायकाट आर्डिनेन्स' के मातहत उन सबको ६ महीने कैद या जुर्माने की सजा हो सकती थी जो किसी दूसरे व्यक्ति को तंग करते और उसका बहिष्कार करते या उसे तंग करने और उसका बहिष्कार कराने में सहायक होते। कोई आदमी दूसरे को सताने या तंग करने का अपराधी उस हालत में माना जाता था जबकि वह उसके या उससे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य किसी व्यक्ति के कार्य में रुकावट डालता या उसके विरुद्ध हिंसा का व्यवहार करता या उसे किसी प्रकार की कोई धमकी देता या उसके मकान के आस-पास घूमता रहता या उसके मालमते में खलल डालता या किसी व्यक्ति को उसके यहां न जाने और उससे सम्बन्ध न रखने के लिए अथवा ऐसा कोई काम करने के लिए वाध्य करता कि जिससे उसका नुकसान हो। बहिष्कार की परिभाषा यह की गई थी कि किसी व्यक्ति या उससे सम्बन्ध रखनेवालों के साथ व्यापार का या और कोई सम्बन्ध न रखना, उन्हें कोई माल न देना, जमीन या मकान न देना, सामाजिक सेवायें (अर्थात नाई, भंगी, धोबी, आदि के काम) बन्द कर देना, इनमें से कोई या सब बातें मामूली रूप में न करना या उनके साथ व्यापारिक या काम-काज का सम्बन्ध बन्द कर देना। किसी आदमी को चिढ़ाने की गरज से उसका स्यापा करना, या उसका पुतला या मुर्दा बनाकर निकालना, ऐसा अपराध घोषित किया जिसके लिए ६ महीने कैद या कैद और जुर्माने दोनों की सजायें हो सकती थीं।

इस प्रकार इन आर्डिनेन्सों के द्वारा सरकार ने बहुत विस्तृत अधिकार अपने हाथ में ले लिये, जो अमली तौर पर सारे देश में लागू कर दिये गये थे।

आर्डिनेन्स-क़ानून

जब आर्डिनेन्सों की अवधि समाप्त हुई तो उन्हें अगली अवधि के लिए नये सिरे से एक

इकट्ठे ऑर्डिनेन्स के रूप में जारी किया और नवम्बर १९३२ में वाकायदा कानून का रूप दे दिया गया। भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होर ने तो बहुत पहले, २६ मार्च १९३२ को ही, कामन-सभा में यह बात स्वीकार कर ली थी कि "आर्डिनेन्स बहुत व्यापक, तीव्र और कठोर हैं। भारतीय जीवन की लगभग हरेक बात उनकी चपेट में आ जाती है। उन्हें इतने व्यापक और तीव्र इसलिए बनाया गया है कि सरकार को हर तरह की जो जानकारी उपलब्ध है उसपर से सचमुच उसका यह विश्वास है कि सरकार की जड़-मूल पर ही कुठाराघात होने का खतरा उपस्थित है, इसलिए यदि हिन्दुस्तान को अराजकता से बचाना हो तो ये आर्डिनेन्स आवश्यक हैं।"

यह स्मरण रहे कि प्रेस-कानून (१९३१ का २३ वां एक्ट), जो अस्थायी-सन्धि के समय बना था, ९ अक्तूबर १९३१ को समाप्त हो गया। १९३२ के क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-बिल में उसे (प्रेस-लॉ को) 'स्थायी रूप से कानून का रूप मिल गया। प्रेस-कानून की धारायें करीब-करीब १९१० के एक्ट जैसी ही थीं। भारत-सरकार के आर्डिनेन्सों, बिलों या कानूनों के अलावा, नवम्बर १९३२ में बम्बई-सरकार ने एक प्रान्तीय आर्डिनेन्स-बिल पेश किया, जिसमें करबन्दी-आन्दोलन के मुकाबले की भी काफी गुंजाइश रक्खी गई थी। सच तो यह है कि ये सब आर्डिनेन्स और दमनकारी अस्त्र तैयार करने का विचार तो अस्थायी-संधि के साल (१९३१ में) ही हो रहा था। वस्तुस्थिति तो यह है कि १५ अक्तूबर १९३१ को पूना के अंग्रेजों ने भारत-सरकार के गृह-विभाग के मंत्री को मान-पत्र प्रदान किया और इसके बाद, १९३१ में ही, यूरोपियन असोसियेशन की बम्बई-शाखा के मंत्री ने उन्हें एक पत्र भेजा। उन्होंने सरकार को सुझाया था कि यदि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन फिर से शुरू हो तो उसे तुरन्त और दृढ़ता के साथ कुचल देना चाहिए और यह सब उस समय जब कि लन्दन में गोल-मेज-परिषद् हो रही थी, जिसका प्रत्यक्ष उद्देश्य कांग्रेसियों को सन्तुष्ट करना था। उन्होंने खास तौर से यह सुझाया कि कांग्रेसी झण्डे की मनाही कर दी जाय, इसी प्रकार स्वयंसेवकों की कवायद-परेड भी रोक दी जाय, जिन लोगों ने सविनय-अवज्ञा में भाग लिया था उन सबपर पाबन्दियां लगा दी जायं, उनके साथ वैसा ही व्यवहार हो जैसा लड़ाई के समय शत्रु देश की प्रजा के साथ होता है और उन्हें नजरबन्द कर दिया जाय, कांग्रेस-कोष के मूल का पता लगाया जाय, और उसको वहीं एक विशेष आर्डिनेन्स के द्वारा खत्म कर दिया जाय, जिन मिलों ने कांग्रेस की शर्तें मान ली हों उन्हें कहा जाय कि अगर वे उन्हें रद्द न करेंगी तो रेलगाड़ियों-द्वारा उनका माल ले जाना बन्द कर दिया जायगा, और राजनैतिक परिस्थिति व बहिष्कार से किसी को अधिक लाभ न उठने देना चाहिए।

१९३२–३३ की घटनायें भी प्रायः १९३०–३१ की ही तरह रहीं, अलबत्ता लड़ाई इस बार और भी जोरदार एवं निश्चयात्मक थी। दमन और भी अन्धाधुन्धी के साथ चला और लोगों को पहले से भी कहीं ज्यादा कष्ट-सहन करना पड़ा।

कार्य-समिति की तत्परता

सरकारी आक्रमण ४ जनवरी के बड़े सवेरे म० गांधी और राष्ट्रपति सरदार वल्लभभाई पटेल की गिरफ्तारी के साथ आरम्भ हुआ। १९३२ के उपर्युक्त आर्डिनेन्स उसी दिन सवेरे जारी हुए और कई प्रान्तों पर लागू कर दिये गये। पश्चात् कुछ ही दिनों में, अमली तौर पर, सारे देश में लागू हो गये। अनेक प्रान्तीय और मातहत कांग्रेस-कमिटियों, आश्रमों, राष्ट्रीय स्कूलों तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाओं को गैरकानूनी करार दे दिया गया और उनकी इमारतों, फर्नीचर, रुपये-पैसे तथा अन्य चल-सम्पत्ति को सरकारी कब्जे में ले लिया गया। देश के खास-खास कांग्रेसियों में से अधिकांश को एकदम जेलों में ठूंस दिया गया। इस प्रकार देखते-ही-देखते कांग्रेस के पास न तो नेता रहे, न रुपया-

पैसा, न निवास-स्थान। लेकिन इन आकस्मिक और दृढ़ झपट्टे के बावजूद जो कांग्रेसी बच रहे थे वे भी साधन-हीन नहीं हो गये थे। जो जहां था वहीं उसने काम शुरू कर दिया। कार्य-समिति ने तय कर लिया कि १९३० की तरह इस बार खाली होनेवाले स्थानों की पूर्ति न की जाय और सरदार वल्लभभाई पटेल ने, अपनी खुद की गिरफ्तारी का खयाल करके, अपने बाद क्रमशः कार्य करनेवाले व्यक्तियों की एक सूची बनाई। कार्य-समिति ने अपने सारे अधिकार अध्यक्ष के सुपुर्द कर दिये और अध्यक्ष ने उन्हें अपने उत्तराधिकारियों को सौंप दिया, जो क्रमशः अपने उत्तराधिकारियों को नामजद करके वे अधिकार दे सकते थे। प्रान्तों में भी, जहां कहीं सम्भव हुआ, कांग्रेस-संगठन की सारी सत्ता एक ही व्यक्ति को दे दी गई। इसी प्रकार जिलों, थानों, ताल्लुकों और गांवों तक की कांग्रेस-कमिटियों में भी हुआ। यही व्यक्ति आमतौर पर डिक्टेटर या सर्वेसर्वा के रूप में प्रसिद्ध हुए। एक बड़ी कठिनाई सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के संचालकों के सामने यह थी कि अवज्ञा अर्थात् आज्ञा-भंग के लिए किन कानूनों को चुना जाय? यह तो स्पष्ट ही है कि हरेक या चाहे जिस कानून का भंग नहीं किया जा सकता। कांग्रेस की इस कठिनाई को व्यापक आर्डिनेन्सों ने हल कर दिया। अस्तु, भिन्न-भिन्न विषय चुने गये, जबकि कुछ विषयों का समय-समय पर कार्यवाहक-राष्ट्रपति की ओर से आदेश मिलता रहा। शराब और विदेशी कपड़े की दुकानों तथा ब्रिटिश माल की पिकेटिंग सब प्रान्तों में समान-रूप से लागू हुई। लगानबन्दी युक्तप्रान्त में काफी बड़ी हद तक और बंगाल में आंशिक रूप से एक महत्व का विषय रहा। बिहार और बंगाल के कुछ स्थानों में चौकीदारी-टैक्स देना बन्द कर दिया गया। मध्यप्रान्त व बरार, कर्नाटक, युक्तप्रान्त, मदरास प्रेसीडेन्सी तथा बिहार के कुछ स्थानों में जंगलात के कानूनों का भंग किया गया। गैरकानूनी नमक बनाने, एकत्र करने और बेचने के रूप में नमक-कानून का भंग तो अनेक स्थानों में किया गया। सभाओं और जुलूसों की तो जरूर ही मनाही की गई, लेकिन निषेधाज्ञाओं के होते हुए भी सभायें हुईं और जुलूस भी निकाले गये। लड़ाई की शुरुआत में खास-खास दिनों का मनाया जाना बहुत लोकप्रिय रहा; जो कि बाद में विशेष उत्सव के दिन ही बन गये। ये किन्हीं खास घटनाओं या व्यक्तियों अथवा कार्यों को लेकर मनाये जाते थे; जैसे गांधी-दिवस, मोतीलाल-दिवस, सीमाप्रांतीय-दिवस, शहीद-दिवस, झंडा-दिवस, इत्यादि। जैसा कि अभी कह चुके हैं, कांग्रेस के दफ्तरों व आश्रमों को सरकार ने अपने कब्जे में कर लिया था। अतः अनेक स्थानों में उन्हें सरकारी कब्जे से वापस अपने हाथ में लेने का प्रयत्न किया गया, जिसका प्रयोजन उस आर्डिनेन्स का भंग करना था जिसके अनुसार इन स्थानों में जाना निषिद्ध और गैरकानूनी करार दे दिया गया था। ये प्रयत्न 'धावों' के नाम से मशहूर हैं। आर्डिनेन्सों के कारण कोई प्रेस कांग्रेस का काम नहीं कर सकता था। इस अभाव की पूर्ति के लिए बेजाब्ता हस्तपत्रक, परचे, संवाद-पत्र, रिपोर्टें आदि निकाले गये, जो या तो टाइप किये हुये होते थे या साइक्लोस्टाइल अथवा डुप्लीकेटर से निकाले हुए और कभी-कभी छपे हुए भी—लेकिन, जैसा कि कानूनन होना चाहिए, उनपर प्रेस या मुद्रक का नाम नहीं होता था। और कभी-कभी ऐसे नाम दे दिये जाते थे जिनका अस्तित्व ही कहीं नहीं होता था। यह मार्के की बात है कि पुलिस के सतर्क रहने पर भी ये संवाद-पत्र और हस्तपत्रक नियमित रूप से प्रकाशित होकर, जो-कुछ होरहा था उसकी, सारे देश को खबरें पहुंचाते रहे। डाक और तार विभाग के दरवाजे कांग्रेस के लिए बंद हो गये थे, इसलिए कांग्रेस ने अपनी डाक को खुद ही पहुंचाने की व्यवस्था की—और वह प्रान्त के एक स्थान से दूसरे स्थान तक ही नहीं बल्कि महासमिति के कार्यालय से विभिन्न प्रान्तों तक को। कभी-कभी यह डाक ले जाने वाले स्वयंसेवक पकड़े भी गये और तब स्वभावतः उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया, या कोई कार्रवाई की गई। १९३० के आन्दोलन के उत्तरार्द्ध में वस्तुतः यह प्रथा प्रारम्भ हुई थी और १९३२

में जाकर यह लगभग पूर्णता को पहुंच गई। और तो और महासमिति या प्रान्तीय कमिटियों के दफ्तरों का भी सरकार पता नहीं लगा सकी, जहां से न केवल हस्तपत्रक ही निकलते थे बल्कि आन्दोलन चलाने के सम्बन्ध में हिदायतें भी जारी होती रहती थीं; और जब कभी ऐसा काम करनेवाले किसी दफ्तर या व्यक्ति का पता लगाकर काम में रुकावट डाली गई कि तुरन्त ही उसकी जगह दूसरा तैयार हो गया और काम चलाने लगा। दूसरी बात जिससे कि लोगों में बड़ा उत्साह पैदा हुआ और जिससे पुलिस को भी कम परेशानी नहीं उठानी पड़ी, कांग्रेस के अधिवेशन का किया जाना था, जिसके बाद प्रान्तों व जिलों की परिषदों के रूप में देशभर में कांग्रेस-सम्मेलनों की झड़ी लग गई। कई जगह स्वयंसेवकों ने जंजीर खींचकर चलती रेलगाड़ियों को रोकने के रूप में रेलों के नियमित कामकाज में खलल डालने की कोशिश की। एक बार तो रेलों को नुकसान पहुंचाने की दृष्टि से बहुत बड़ी तादाद में बिना टिकट रेल में जाने का प्रयत्न किया गया, लेकिन जिम्मेदार हलकों से इस चेष्टा को प्रोत्साहन नहीं मिला, इसलिए बाद में यह बन्द कर दी गई।

हां, बहिष्कार ने बहुत जोर पकड़ा। इसके एक-एक अंग को चुनकर उसपर शक्तियां केन्द्रित की गईं। कई स्थानों में विदेशी कपड़े, ब्रिटिश दवाइयों, ब्रिटिश बैंकों, बीमा-कम्पनियों, विदेशी शक्कर, मिट्टी का तेल और आम तौर पर ब्रिटिश माल के बहिष्कार का जोरदार आन्दोलन करने के लिए अलग-अलग सप्ताह भी निश्चित किये गये।

यह तो खयाल ही नहीं करना चाहिए कि नेताओं को गिरफ्तार कर लेने के बाद सरकार खामोश या नरम पड़ गई। आर्डिनेन्सों में उल्लिखित सब अधिकारों का उसने उपयोग किया। यहां तक कि दमन के कुछ ऐसे तरीके भी अख्तियार किये गये जिनकी उन आर्डिनेन्सों तक में इजाजत नहीं थी, जो अपनी भयंकरता के लिए बदनाम हैं। यह कहने की तो जरूरत ही नहीं कि गिरफ्तारियां बहुत बड़ी तादाद में हुईं, लेकिन वे की गईं चुन-चुन कर। सजा पानेवालों की कुल संख्या एक लाख से कम न होगी। यह बात शीघ्र ही स्पष्ट हो गई कि कैम्प तथा अस्थायी जेलों के बनाये जाने पर भी जेल जानेवाले सब सत्याग्रहियों को कैद में रखने की जगह नहीं थी। इसलिए कैदियों का चुनाव करना जरूरी हो गया और साधारणतः उन्हीं को जेलों में भेजा गया जिनके लिए यह समझा गया कि उनमें संगठन का कुछ माद्दा है या कांग्रेस-क्षेत्र में उनका विशेष महत्व है। जेलों में उन सबकी व्यवस्था करना भी कुछ आसान न था। अतः ९५ फीसदी से ज्यादा व्यक्तियों को 'सी' क्लास में रक्खा गया। 'बी' क्लास में बहुत कम लोग रक्खे गये। और 'ए' क्लास तो कई स्थानों में बराय-नाम ही रहा, बाकी जगह भी बहुत कम को ही वह मिला। ऐसी दशा में इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं कि जो स्त्री-पुरुष अपने देश को स्वतन्त्र करने की श्रेष्ठ भावना से प्रेरित होकर ही जेलों में गये थे, उनके लिए खासतौर पर कतार में खड़े होने, बैठने या हाथ उठाने जैसी अपमानपूर्ण बातें सहन करना सम्भव नहीं था। इन कारणों से जेल-अधिकारियों के साथ अक्सर उनका संघर्ष होजाता था, जिसके फल-स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की ऐसी सजायें उन्हें दी जाती रहीं जिनकी जेल के नियमों में स्वीकृति थी; और बहुत बार पिटाई व दूसरे ऐसे जुल्म भी किये गये जो जेल की चहार-दीवारी के भीतर किसी को पता लगने के भय से मुक्त होकर आसानी से किये जा सकते हैं। एक खास तरह की अपमानप्रद स्थिति में बैठने से इन्कार करने पर मार-पीट और हमला करने के अत्याचार का एक मामला तो अदालत में भी पहुंचा, जिसके परिणाम-स्वरूप नासिक-जेल के जेलर, उसके सहायक तथा कई अन्य व्यक्तियों को सजा भी हुई; परन्तु सत्याग्रही कैदियों के लाठी से पीटे जाने की घटनायें तो अक्सर ही होती रहीं। अस्थायी जेलों में रहना तो बिलकुल ही नाकाबिल बर्दाश्त था; क्योंकि उनमें टीन के जो छप्पर पड़े हुए थे उनसे न तो मई-जून की गरमी का बचाव

होता था, न दिसम्बर-जनवरी की ठण्ड का ही बचाव होता था। इससे वहां तन्दुरुस्ती अच्छी रह नहीं सकती थी। इसमें शक नहीं कि कुछ जेलें ऐसी भी थीं जहां का व्यवहार किसी हदतक बर्दाश्त किया जा सकता था; लेकिन वह तो नियम नहीं बल्कि किसी कदर अपवाद-स्वरूप ही था। हालत तो कुछ स्थायी जेलों की भी कोई बहुत अच्छी न थी। अनेक जेलों में, खासकर कैम्प-जेलों में, कैदियों का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था। पेचिश का तो सभी समय जोर था, वर्षा और ठण्ड के साथ निमोनिया व फेफड़े की नाजुक बीमारियों ने भी बहुतों को आ दबोचा। फलतः अनेक तो जेलों में ही मर गये। जेलों में जिन जेल-कर्मचारियों से कैदियों का साबका पड़ता उनके शील स्वभाव पर ही बहुत-कुछ जेलों में उनके साथ होनेवाला बर्ताव निर्भर था; और वे, कुछ खास अपवादों को छोड़कर, आमतौर पर न तो विवेकशील थे और न उनमें कोई लिहाज-मुलाहिजा ही था।

लाठी मार-मारकर लोगों की भीड़ और जुलूसों को भंग करने का तरीका तो पुलिस ने शुरुआत में ही अख्तियार कर लिया था। किसी भी प्रान्त में मुश्किल से ही कोई खास जगह ऐसी रही होगी जहां आन्दोलन में जीवन के चिह्न दिखाई दिये हों और फिर भी लाठी-प्रहार न हुआ हो। चोट खानेवालों की संख्या भी कुछ कम न थी। अनेक स्थानों में तो लोगों के गहरी चोटें लगीं। लोगों को यह आदत थी कि जहां सत्याग्रहियों का कोई जुलूस निकल रहा हो, कोई सभा हो रही हो या वे किसी धावे पर जा रहे हों, अथवा कहीं धरना दे रहे हों तो वे यह जानने के लिए जुट जाते थे कि देखें क्या होता है, लेकिन जब लाठी-प्रहार होता तो इस बात का कोई भेद-भाव नहीं किया जाता था कि इनमें कौन तो कानून-भंग के लिए एकत्र हुए हैं कौन सिर्फ तमाशबीन हैं। यह आम चर्चा थी कि अनेक स्थानों में तो इतने जोरो-जुल्म हुए कि जिनका बयान नहीं किया जा सकता। और तो और, स्त्रियों, लड़कों और छोटे-छोटे बच्चों तक को नहीं बख्शा गया। आखिर एक नया उपाय सरकार के हाथ लगा। जेलों व मार-पिटाई की सख्तियों के लिए तो सत्याग्रही तैयार ही थे, और अनेक तो गोली खाकर मरजाने को भी तैयार थे—लेकिन, सरकार ने सोचा, अगर इनकी सम्पत्ति पर आक्रमण किया जाय तो इनमें से बहुत-से उसे बरदाश्त न कर सकेंगे। अतएव सजा देते वक्त उनपर भारी-भारी जुर्माने किये गये। कभी-कभी तो जुर्मानों की रकम पांच अंकों तक चली जाती थी। जहां मालगुजारी, लगान या अन्य करों का देना बन्द किया गया वहां तो ऐसी बकाया रकमों और करों की तथा जुर्मानों की वसूली के लिए न केवल उन्हीं लोगों की मिल्कियत पर धावा बोला गया जिनसे कि उन्हें वसूल करना वाजिब था, बल्कि साथ में संयुक्त परिवारों की और कभी-कभी तो नाते-रिश्तेदारों की मिल्कियत भी कुर्क करके बेच डाली गई। कुर्की और बिक्री तक ही बात रहती तो भी गनीमत थी, लेकिन यहां तो कुर्की के बाद बड़ी-बड़ी कीमत की मिल्कियतों को बिलकुल कौड़ी के ही मोल बेच डाला गया; और कुर्की व बिक्री की कानूनी कार्रवाई से भी बढ़कर जो दुखदायी बात हुई वह तो है कानून से बाहर जाकर गैर-कानूनी तरीकों से सताया जाना और नुकसान पहुंचाना, जिसे हृदय-हीन लूट और बरबादी ही कह सकते हैं। न केवल फर्नीचर बर्तन-भाण्डे, गहने, मवेशी और खड़ी फसल जैसी चल-सम्पत्ति ही कुर्क करके बेच या कभी-कभी नष्ट करदी गई, बल्कि जमीन और घरबार भी नहीं छोड़ा गया। गुजरात, युक्त-प्रान्त और कर्नाटक में बहुत लोग ऐसे हैं जो आज भी जमीनों से हाथ धोये बैठे हैं, हालांकि उनका कष्ट-सहन बिलकुल स्वेच्छापूर्ण था, क्योंकि जिस रकम को चुकाने से उन्होंने इन्कार किया, अगर अपने को और अपने माल-असबाब को बचाना ही उनका उद्देश्य होता तो किसी-न-किसी तरह उसे वह चुका ही देते। सच तो यह है कि ये आफतें उनपर लादी हो गई थीं; क्योंकि अगर बकाया की वसूली ही प्रयोजन होता तो उन्हें इस तरह नष्ट न किया जाता। गुजरात के किसानों ने, और जिन्होंने लगान मालगुजारी न देने

के आन्दोलन में भाग लिया उन्हें, ऐसे कष्ट-सहन की अग्नि में से गुजरना पड़ा जिसका वर्णन नहीं हो सकता, फिर भी वे हिम्मत न हारे। कई स्थानों में अतिरिक्त ताजीरी-पुलिस तैनात की गई और उसका खर्चा वहां के निवासियों से वसूल किया गया। बिहार-प्रान्त के कुल चार-पांच स्थानों में, जहां ऐसी अतिरिक्त पुलिस तैनात की गई थी, कम-से-कम ४ लाख ७० हजार रुपया वहां के निवासियों से ताजीरी-कर के रूप में वसूल किया गया। मिदनापुर जिले (बंगाल) के कुछ हिस्सों में ताजीरी फौज की तैनाती से ऐसा सर्वनाश और आतंक फैला कि जिले के दो थानों में रहनेवाले हिन्दुओं में से अधिकांश तो सचमुच ही अपने घर-बार छोड़कर आस-पास के स्थानों में चले गये। उन्हें इतने अवर्णनीय कष्टों का सामना करना पड़ा कि उनकी स्त्रियों की मृत्यु तक हो गई। अनेक स्थानों में सामूहिक जुर्माने भी किये गये, जिनकी वसूली वहां रहनेवाले लोगों से की गई। देश के कई स्थानों में गोली-बार भी हुए, जिनमें अनेक व्यक्ति मरे और मरनेवालों से भी ज्यादा घायल हुए। इसमें सीमाप्रान्त का नम्बर सबसे आगे रहा।

इस विषय की तफसील में उतरकर इस वर्णन को भारभूत करना अनावश्यक है। सब स्थानों या व्यक्तियों के नामों का उल्लेख करने से कोई फायदा नहीं। सरकार व उनके कर्मचारियों ने जो कानूनी, गैरकानूनी तथा कानून-बाह्य उपाय ग्रहण किये और उनके परिणाम-स्वरूप सर्व-साधारण को जो कष्ट-सहन करना पड़ा, उन सबका पर्याप्त वर्णन करने का अगर हम थोड़ा भी प्रयत्न करें तो उसी का एक बड़ा पोथा तैयार हो जायगा। यह आन्दोलन तो देशव्यापी था और हरेक प्रान्त ने इसमें अपनी पूरी शक्ति लगाने की एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा की थी। यह बात भी नहीं कि अकेले ब्रिटिश-भारत तक ही यह महदूद रहा हो। (बघेलखण्ड-जैसी कुछ-रियासतों ने भी इसमें अपनी शक्ति लगाई) और अनेक रियासतों के कार्यकर्ताओं ने भी लड़ाई में भाग लेकर तकलीफें उठाईं।

जिन आश्रमों और कांग्रेस-कार्यालयों को सरकार ने अपने कब्जे में ले लिया था उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया; यहांतक कि कहीं-कहीं तो उनमें आग भी लगा दी गई।

अखबारों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा। बहुत-से अखबारों से जमानतें मांगी गईं, बहुतों की जमानतें जब्त की गईं, और बहुत-से अखबारों को जमानत जमा न कर सकने या प्रेस जब्त हो जाने अथवा सरकारी प्रहार के भय से अपना प्रकाशन ही बन्द कर देना पड़ा।

इस आतंक और सर्वनाश के बीच भी एक बात बिलकुल स्पष्ट थी। वह यह कि लोगों ने किसी गम्भीर हिंसात्मक कार्य का अवलम्बन नहीं लिया। अहिंसा की शिक्षा उनमें जड़ पकड़ चुकी थी, जिसके कारण महीनों तक आन्दोलन जारी रहा, जब कि सरकार ने तो चन्द हफ्ते में ही उसे खत्म कर देने की आशा की थी। यह कहें तो भी अतिशयोक्ति न होगी कि आन्दोलन को कुचलने के लिए कानून के अलावा जिन साधनों तथा आर्डिनेन्सों का सहारा लिया गया, जो समस्त कानून और सभ्य-शासन के मूलभूत सिद्धान्तों के ही प्रतिकूल थे, उन्हें अगर न अपनाया गया होता तो आन्दोलन को दबाने में सरकार को और भी कठिनाई होती। इधर कांग्रेसवालों को भी, उनके लिए आवागमन के सब खुले साधन बन्द कर दिये जाने के कारण, स्वभावतः गुप्त उपायों की ओर झुकना पड़ा। लेकिन इसमें भी साधारण खुफिया और विशेष सब तरह की पुलिस के विस्तृत जाल से बचकर काम करने की शक्ति में उन्होंने अपने को पूरा पटु साबित किया। कांग्रेस-कार्यालयों के बने रहने और हस्तपत्रकों के नियमित प्रकाशन-द्वारा जनता व कांग्रेसियों को नये-नये कार्यक्रमों की हिदायतें पहुंचाते रहने का उल्लेख हम कर चुके हैं। सत्याग्रह के लिए यद्यपि बहुत बड़ी रकम की जरूरत नहीं, लेकिन इतने विस्तृत पैमाने पर होनेवाली लड़ाई के लिए तो वह भी चाहिए ही। यह सौभाग्य की बात

है कि धनाभाव के कारण काम में रुकावट पड़ने का मौका कभी उपस्थित नहीं हुआ। धन तो कहीं-न कहीं से आता ही रहा। गुमनाम दानियों तक ने सहायता दी और कभी-कभी तो यह भी नहीं देखा कि किसे वे दान दे रहे हैं। यह मार्के की बात है कि ऐसी परिस्थिति में भी, जबकि सारा दफ्तर लोगों की जेबों में ही रहता था, हिसाब-किताब बड़ी कड़ाई के साथ रक्खा गया और प्राप्त-सहायता का उपयोग सावधानी के साथ लड़ाई के लिए ही किया गया।

दिल्ली-अधिवेशन

इस वर्णन को खतम करने से पहले कांग्रेस के दिल्ली-अधिवेशन का भी वर्णन कर देना चाहिये जो कि १९३२ के अप्रैल महीने में दिल्ली में हुआ था। वह पुलिस की बड़ी भारी सतर्कता के बावजूद किया गया था, जिसने कि दिल्ली के रास्ते में ही बहुत-से प्रतिनिधियों का पता लगाकर उन्हें गिरफ्तार भी कर लिया था।

चांदनीचौक के घंटाघर पर यह अधिवेशन हुआ और पुलिस की सतर्कता के बावजूद लगभग ५०० प्रतिनिधि जैसे-तैसे सभा-स्थान पर जा पहुंचे थे। पुलिस इस सन्देह में कि अधिवेशन की जगह का जो ऐलान किया गया है वह सिर्फ चाल है, प्रतिनिधियों को नई दिल्ली में कहीं तलाश करती रही और कुछ पुलिस एक जगह अकालियों के जुलूस से निपटती रही। पेश्तर इसके कि वह घण्टाघर पर आये, काफी तादाद में प्रतिनिधि एकत्र हुए और उन्होंने कार्रवाई भी शुरू कर दी। अहमदाबाद के सेठ रणछोड़दास अमृतलाल, कहते हैं, उसके सभापति थे। उसमें कांग्रेस की सालाना रिपोर्ट पेश हुई और चार प्रस्ताव स्वीकृत हुए। पहले प्रस्ताव में इस बात की ताईद की गई कि पूर्ण स्वाधीनता ही कांग्रेस का लक्ष्य है, दूसरे में सविनय-अवज्ञा के फिर से जारी होने का हार्दिक समर्थन किया गया, तीसरे में गांधीजी के आह्वान पर राष्ट्र ने जो सुन्दर जवाब दिया उसके लिए उसे बधाई दी गई और महात्माजी के नेतृत्व में पूर्ण विश्वास प्रदर्शित किया गया, तथा चौथे में अहिंसा में अपने विश्वास की फिर से पुष्टि करते हुए कांग्रेस को, खासकर सीमाप्रांत के बहादुर पठानों को, अधिकारियों की ओर से अधिक-से-अधिक उत्तेजना की करतूतें की जाने पर भी अहिंसात्मक रहने पर बधाई दी गई।

पं० मदनमोहन मालवीय दिल्ली अधिवेशन के मनोनीत सभापति थे, लेकिन वे तो रास्ते में ही गिरफ्तार कर लिये गये थे। वैसे इन तमाम समय कांग्रेसियों में उल्लेख-योग्य वही एकमात्र ऐसे नेता थे जो जेल से बाहर थे। अपनी वृद्धावस्था एवं गिरे हुए स्वास्थ्य के बावजूद, गोलमेज-परिषद् से लौटने के बाद वे कभी शान्ति से नहीं बैठे और अधिकारियों की ज्यादतियों का पर्दाफाश करनेवाले वक्तव्य-पर-वक्तव्य निकालकर अपने अथक उत्साह एवं अद्भुत शक्ति से कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहन प्रदान करते रहे। जब भी कभी कोई सन्देह या कठिनाई का प्रसंग उपस्थित होता, कांग्रेस-कार्यकर्त्ता उन्हीं की ओर मुखातिब होते थे; और उन्होंने कभी भी उन्हें निराश नहीं होने दिया।

२

संग्राम फिर स्थगित

पाठकों को याद होगा कि दूसरी गोलमेज-परिषद् में गांधीजी ने अपना यह निश्चय सुनाया था कि अस्पृश्यों को यदि हिन्दू-जाति से अलग करने की चेष्टा की गई तो मैं उस चेष्टा का अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी मुक़ाबला करूँगा। अब गांधीजी के उस भीषण-व्रत की परीक्षा का अवसर आ पहुंचा था। लोथियन-कमिटी, मताधिकार और निर्वाचन की सीटों का निर्णय करने के लिए, १७ जनवरी को भारत में आ पहुंची थी। समय बीतता चला जा रहा था। रिपोर्ट तैयार हो जायगी। सरकार झटपट काम खत्म करने में दक्ष है ही, और हम लोग इसी तरह जबानी जमा-खर्च करते रहेंगे। इसीलिए बहुत सोचने समझने के बाद, गांधीजी ने भारत-मन्त्री सर सेम्युअल होर को ११ मार्च को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने यह निश्चय प्रकट किया कि यदि सरकार ने अस्पृश्यों या दलित-जातियों के लिए पृथक् निर्वाचन रक्खा तो मैं आमरण-उपवास करूंगा। सर सेम्युअल होर ने अपना उत्तर १३ अप्रैल १९३२ को भेजा। यह उत्तर वही पुरानी पत्थर की लकीर का उदाहरण था; लोथियन-कमिटी की प्रतीक्षा की जा रही है; हां, उचित समय पर गांधीजी के विचारों पर भी ध्यान दिया जायगा। १७ अगस्त को मि० मैकडानल्ड का निश्चय, जिसे भूल से 'निर्णय' के नाम से पुकारा जाता है, सुनाया गया। (देखो परिशिष्ट ७) दलित-जातियों को पृथक् निर्वाचन का अधिकार तो मिला ही, साथही आम निर्वाचन में भी उम्मीदवारी करने और दुहरे वोट हासिल करने का भी अधिकार दिया गया। दोनों हाथों से उदारता-पूर्वक दान दिया गया था। १८ अगस्त को गांधीजी ने अपना निश्चय किया और उस निश्चय से प्रधान मंत्री को सूचित कर दिया। उन्होंने यह भी कहा कि व्रत यानी उपवास २० सितम्बर (१९३२) की तीसरे पहर से शुरू होगा। मि० मैकडानल्ड ने आराम के साथ ८ सितम्बर को उत्तर दिया और १२ सितम्बर को सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर दिया। प्रधान-मंत्री ने गांधीजी को दलित-जातियों के प्रति शत्रुता के भाव रखनेवाला व्यक्ति बताना उचित समझा। व्रत २० सितम्बर १९३२ को आरम्भ होनेवाला था। पत्र-व्यवहार के प्रकाशन और व्रत आरम्भ होने में एक सप्ताह था। यह सप्ताह देश ही क्या, संसार-भर के लिए क्षोभ, चिन्ता और हलचल का सप्ताह था। यह सप्ताह बड़े अवसाद का सप्ताह था, जिसमें व्यक्तियों और संस्थाओं ने, उस क्षण जो ठीक समझा किया। गांधीजी से भेंट करने की अनुमति मांगी गई, पर न मिली। संसार के कोने-कोने से पूना को तार भेजे गये। गांधीजी का संकल्प छुड़ाने के लिए तरह-तरह की सलाहों और तर्कों से काम लिया गया। मित्र उनके प्राण बचाने के लिए चिन्तित थे और शत्रु उपहास-पूर्ण कुतूहल के साथ सारा व्यापार देख रहे थे। जब रूस के महान् गिर्जे में आग लगी तो लोग टूटते और जलते हुए खम्भों और शहतीरों की तड़तड़ आवाज को सुनने के लिए दौड़े गये थे। अब से आठ साल पहले इसी जेल में गांधीजी अकस्मात् 'अपेंडिसाइटिस' से बीमार पड़े थे। पर इस

वार उन्होंने अकस्मात् नहीं, स्वेच्छा से मृत्यु-शय्या का आलिंगन किया था और स्वेच्छा से व्रत आरम्भ किया या। इसलिए देश का स्तब्ध हो जाना स्वाभाविक ही था। प्रधान-मंत्री का निश्चय तो रद होना ही चाहिए। वे स्वयं तो ऐसा करेंगे नहीं। इसलिए हिन्दुओं के आपसी समझौते के द्वारा उसका अन्त होना चाहिए। इसके लिए एक परिषद् करना आवश्यक है। परिषद् १९ को हो या २० को? यही प्रश्न था। गांधीजी के जीवन की रक्षा करनी ही चाहिए। यह बड़ी अच्छी बात हुई कि दलित जातियों के ही एक नेता ने इस दिशा में पैर बढ़ाया। रायबहादुर एम० सी० राजा ने पृथक् निर्वाचन को धिक्कारा। सर सप्रू ने गांधीजी की रिहाई की मांग पेश की। कांग्रेस-वादियों ने भी स्वभावतः देश-भर में संगठन करके समझौता कराने की चेष्टा की। पर मालवीयजी समय के अनुसार चला करते हैं। उन्होंने तत्काल नेताओं की एक परिषद बुलाने की बात सोची। इंग्लैण्ड में दीनबन्धु एण्डरूज, मि० पोलक और मि० लेन्सबरी ने स्थिति की गम्भीरता की ओर अंग्रेज-जनता का ध्यान आकर्षित कराना आरम्भ किया। एक अपील पर प्रभावशाली व्यक्तियों के हस्ताक्षर हुए, जिसके द्वारा इंग्लैंड-भर में खास तौर से प्रार्थना करने को कहा गया। भारतवर्ष में २०. सितम्बर को उपवास और प्रार्थनायें की गईं। इसमें शांति-निकेतन ने भी भाग लिया। वैसे इस आन्दोलन का आरम्भ प्रधान-मंत्री के निश्चय में संशोधन कराने के लिए किया गया था, पर इस आन्दोलन को अस्पृश्यता-निवारण के अधिक व्यापक आन्दोलन का रूप धारण करते देर न लगी। कलकत्ता, दिल्ली और अन्य स्थानों में अस्पृश्यों के लिए मंदिर खोले जाने लगे। यह आशा की जाती थी कि गांधीजी उपवास के आरंभ होते ही छोड़ दिये जायंगे। पर पता चला कि उनकी रिहाई तो क्या होगी, उन्हें किसी खास स्थान पर नजरबन्द कर दिया जायगा और उनकी गति-विधि पर भी रुकावट लगा दी जायगी। गांधीजी ने सरकार को लिखा कि "इस प्रकार स्थान-परिवर्तन करके व्यर्थ खर्च और कष्ट क्यों उठाया जाय? मुझसे किसी शर्त का पालन न हो सकेगा।" सरकार भी राजी हो गई और उसने गांधीजी को ऐसी व्यवस्था स्वीकार करने को मजबूर न किया जो उन्हें अरुचिकर लगती हो।

पूना-पैक्ट जिन-जिन बातों का परिणाम है, उनके क्रम-विकास में पाठकों को ले जाना हमारे लिए सम्भव नहीं है। परिषद् बम्बई में आरम्भ हुई, पर शीघ्र ही पूना में ले जाई गई। (जो लोग इस सम्बन्ध में विस्तृत विवरण जानना चाहें उन्हें गांधीजी के प्राइवेट-सेक्रेटरी श्री प्यारेलाल की सुंदर पुस्तक 'एपिकफास्ट' (Epic Fast) और सस्ता साहित्य मण्डल द्वारा प्रकाशित 'हमारा कलंक' पढ़ना चाहिए।) डा० अम्बेडकर शीघ्र ही बातचीत में शामिल हो गये और श्री अमृतलाल ठक्कर, श्री राजगोपालाचार्य, सर चुन्नीलाल मेहता, पण्डित मालवीय, बिड़लाजी, सरदार पटेल, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री जयकर, डॉ० अम्बेडकर, रायबहादुर एम०सी० राजा, बाबू राजेन्द्रप्रसाद, पंडित हृदयनाथ कुंजरू और अन्य सज्जनों की सहायता से एक योजना तैयार की गई, जिसे उपवास के पांचवें दिन सारे दलों ने स्वीकार कर लिया। दलित जातियों ने पृथक् निर्वाचन का अधिकार त्याग दिया और आम हिन्दू-निर्वाचनों से ही सन्तोष कर लिया। (वैसे आम हिन्दू-निर्वाचनों में वे सरकारी निर्णय के अनुसार भी शामिल थे।) उच्च जातियों के हिन्दुओं ने महत्वपूर्ण संरक्षण प्रदान किये। उनमें से एक संरक्षण यह है कि सरकारी निर्णय के अनुसार आम निर्वाचनों में जितनी जगहें दी गई हैं उनमें से १४८ दलित-जातियों को दी जायं। दूसरा यह है कि हरेक की सुरक्षित जगह के लिए दलित-जातियां चार उम्मीदवार चुनें और आम-निर्वाचन में उनमें से एक को चुन लिया जाय। पूरा समझौता उस समय तक कायम रहे जब तक सबकी सलाह से उसमें परिवर्तन न किया जाय। दलित-जातियों का प्रारम्भिक निर्वाचन दस साल तक जारी रहे। ब्रिटिश-सरकार ने पूना-पैक्ट के उस अंश

तक स्वीकार कर लिया जिस अंश तक उसका प्रधान-मंत्री के निश्चय से सम्बन्ध था। जो-जो बातें साम्प्रदायिक निर्णय के बाहर जाती थीं, उनपर निश्चय रोक रक्खा गया। दलित-जातियों के नेताओं को कृतज्ञ होना ही चाहिए था, क्योंकि प्रधान-मंत्री के निश्चय के अनुसार उन्हें जितनी जगहें मिलने वाली थीं, अब उन्हें उनसे दुगुनी मिल गईं और उन्हें अपनी जन-संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो गया। दस वर्ष बाद जनमत स्थिर करने के प्रश्न पर अन्तिम समय फिर विवाद उठ खड़ा हुआ, पर गांधीजी ने अवधि घटा कर ५ वर्ष कर दी, क्योंकि दस साल के लिए स्थगित करने से कहीं जनता यह न समझे कि डॉ० अम्बेडकर सवर्ण-जातियों की नेकनीयती की आजमाइश करना नहीं चाहते, बल्कि विरुद्ध जनमत देने के लिए दलित-जातियों को तैयार करने के लिए अवकाश चाहते हैं। गांधीजी ने अन्त में उत्तर दिया—"मेरा जीवन या पांच वर्ष।" अन्त में यह निश्चय किया गया कि इस प्रश्न को भविष्य में आपस के समझौते के द्वारा तय किया जाय। इसका नुस्खा श्री राजगोपालाचार्य ने सोच निकाला और गांधीजी ने कहा—"क्या खूब!" २६ तारीख को, ठीक जिस समय ब्रिटिश-मन्त्रि-मण्डल द्वारा समझौते के स्वीकृत होने की खबर मिली, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गांधी जी से भेंट की। २६ तारीख की सुबह को इंग्लैण्ड और भारत में एक साथ घोषणा की गई कि पूना का समझौता स्वीकार कर लिया गया। मि० हेग ने बड़ी कौंसिल में वक्तव्य दिया, जिनमें निम्न-लिखित बातें कही गईं—

(१) प्रधान-मंत्री के उस निश्चय के स्थान पर, जिसके द्वारा दलित-जातियों को प्रांतीय कौंसिलों में पृथक् निर्वाचन का अधिकार दिया गया था, पार्लमेण्ट से सिफारिश करने के लिए उस व्यवस्था को स्वीकार किया जाता है जो यरवडा-समझौते के मातहत स्थिर हुई है।

(२) यरवडा-समझौते के द्वारा प्रान्तीय-कौंसिलों में दलित-जातियों को जितनी जगहें देना निश्चित हुआ है, उन्हें स्वीकार किया जाता है।

(३) यरवडा के समझौते में दलित-जातियों के हित की गारण्टी के सम्बन्ध में जो कुछ कहा गया है वह सवर्ण-हिंदुओं-द्वारा दलित-जातियों को दिये गये निश्चित वचन के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(४) बड़ी कौंसिल के लिए दलित-जातियों के प्रतिनिधियों को चुनने की प्रणाली और मताधिकार की सीमा के सम्बन्ध में यह कहना है कि अभी सरकार यरवडा-समझौते की शर्तों को निश्चित रूप में मान्य नहीं कर सकती, क्योंकि अभी बड़ी कौंसिल के प्रतिनिधित्व और मताधिकार का प्रश्न विचाराधीन है, पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सरकार समझौते के विरुद्ध नहीं है।

(५) बड़ी कौंसिल में आम-निर्वाचन के लिए खुली जगहों में से १८ जगहें दलित-जातियों के लिए सुरक्षित रक्खी जायं, इस बात को सरकार दलित-जातियों और अन्य हिंदुओं के पारस्परिक समझौते के रूप में स्वीकार करती है।

गांधीजी को यह व्यवस्था स्वीकार करने में कुछ पशोपेश हुआ। वे चाहते थे कि दलित-जातियों के नेता भी सन्तुष्ट हो जायं। उन्हें अपने भौतिक प्राण बचाने की चिन्ता न थी, बल्कि उन लाखों प्राणियों के नैतिक प्राण बचाने की चिन्ता थी, जिनके लिए वे उपवास कर रहे थे। परन्तु अन्त में पं० हृदयनाथ कुंजरू और चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने गांधीजी को सन्तोष करा दिया। इसपर गांधीजी ने ६ तारीख को शाम के सवा पांच बजे उपवास छोड़ने का निश्चय किया। भजन और धार्मिक श्लोक-पाठ के बाद उन्होंने पारणा की। यह ठीक था कि गांधीजी के प्राण बच गये, परन्तु जिस श्वास में वे अपना उपवास भंग करने को राजी हुए उसीमें उन्होंने यह भी कह दिया कि यदि

उचित समय के भीतर अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी सुधार नेकनीयती के साथ पूरा न किया गया तो मुझे निश्चय ही नये सिरे से उपवास करना पड़ेगा। गांधीजी ने कहा—"स्वतन्त्रता का सन्देश हरेक हरिजन के घर में पहुंचना चाहिए और यह तभी हो सकता है जब सुधार हरेक गांव में किया जाय।" जनता ने उपवास की उपयोगिता या औचित्य के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया था। गांधीजी को इस सम्बन्ध में कुछ कहना था। इसलिए उन्होंने १५ और २० सितम्बर को वक्तव्य दिये। उन्होंने अपनी स्थिति इस प्रकार स्पष्ट की—

"ज्ञान और तप के लिए उपवास करने की प्रथा सनातन काल से चली आती है। ईसाई-धर्म में और इस्लाम में इसका साधारणतया पालन किया जाता है, और हिन्दू-धर्म तो आत्म-शुद्धि और तपस्या के लिए किये गये उपवासों के उदाहरणों से भरा पड़ा है। मैंने आत्म-शुद्धि करने की बड़ी चेष्टा की है और उसका फल यह हुआ है कि मुझे 'अन्तर्नाद' ठीक-ठीक और साफ-साफ सुनने की कुछ क्षमता प्राप्त हो गई है। मैंने यह प्रायश्चित्त उस अन्तर्नाद की आज्ञा के अनुसार आरम्भ किया है।" यदि लोग यह कहें कि उपवास तो दूसरों को धमकाना है, तो गांधीजी का उत्तर है कि "प्रेम विवश करता है, धमकाता नहीं है," ठीक जिस प्रकार सत्य और न्याय विवश करते हैं। "मैं अपने उपवास को न्याय के पलड़े में रखना चाहता हूं। ऊपर से देखनेवालों को मेरा यह कार्य बच्चों का-सा खेल प्रतीत हो सकता है, पर मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता। यदि मेरे पास कुछ और होता तो इस अभिशाप को मिटाने के लिए मैं उसे भी झोंक देता। पर मेरे पास प्राणों से अधिक और कुछ हई नहीं।"..."यह आगामी उपवास उनके विरुद्ध है जिनकी मुझमें आस्था है। चाहे वे भारतीय हों चाहे विदेशी। यह उपवास उनके विरुद्ध नहीं है जिनकी मुझमें आस्था नहीं।" इस प्रकार उन्होंने यह बता दिया कि यह उपवास न अंग्रेज अफसरों के विरुद्ध है, न भारत में उनके विरोधियों—चाहे वे हिंदू हों या मुसलमान—के विरुद्ध है, बल्कि उन असंख्य भारतीयों के विरुद्ध है जिनका विश्वास है कि वह न्यायपूर्ण बात के लिए किया गया है। गांधीजी ने कहा—"इस उपवास का प्रधान उद्देश्य तो हिन्दू अन्तःकरण में ठीक-ठीक धार्मिक कार्य-शीलता उत्पन्न करना है।"

बम्बई का प्रस्ताव

प्रधान-मंत्री-द्वारा पैक्ट स्वीकार होने और गांधीजी के उपवास छोड़ने के बाद ही परिषद् ने बम्बई में सभा की। एक प्रस्ताव पास किया, जिसके द्वारा प्रतिज्ञा की गई कि हिन्दू अस्पृश्यता का निवारण करेंगे। जो संस्था बाद को हरिजन सेवक-संघ के रूप में विकसित हो गई उसकी स्थापना इसी प्रस्ताव के फल-स्वरूप हुई। इसके सभापति सेठ घनश्यामदास बिड़ला और मंत्री भारत-सेवक-समिति के श्री अमृतलाल ठक्कर हुए।

यहां हम वह प्रस्ताव देते हैं, जो २५ सितम्बर १९३२ को बम्बई की सभा ने सर्व-सम्मति से पास किया था। इस सभा के सभापति पण्डित मदनमोहन मालवीय थे। वह प्रस्ताव 'हरिजन' में ध्येय-वाक्य-स्वरूप अपना लिया गया है—

"यह परिषद् निश्चय करती है कि अब भविष्य में हिन्दू जाति में किसी को जन्म से अस्पृश्य न समझा जायगा और जिन्हें अबतक अस्पृश्य समझा जाता रहा है उन्हें अन्य हिन्दुओं की भांति ही कुओं, पाठशालाओं, सड़कों और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का उपयोग करने का अधिकार रहेगा। मौका मिलते ही इस अधिकार को कानून का स्वरूप दे दिया जायगा और यदि इस प्रकार का रूप उस स्वराज्य-पार्लियामेण्ट स्थापित होने से पहले तक प्राप्त न हुआ तो स्वराज्य-पार्लियामेण्ट का पहला कानून इस सम्बन्ध में होगा।

"यह भी निश्चित किया जाता है कि सारे हिन्दू नेताओं का कर्तव्य होगा कि पुराने रिवाजों के कारण अस्पृश्य कहलानेवाले हिन्दुओं पर मन्दिर-प्रवेश आदि के सम्बन्ध में जो सामाजिक बंधन लगा दिया गया है उसे वे सारे वैध और शांतिपूर्ण उपायों के द्वारा दूर कराने की चेष्टा करें।"

ऐसे पवित्र तप का स्वभावतः ही पूरा परिणाम निकला। अस्पृश्यता-निवारण के लिए सारा देश तैयार हो गया। खतरा इसी बात का था कि कहीं युवक जल्दबाजी से काम न लें। इसलिए गांधीजी को लगाम खींचनी पड़ी। अस्पृश्यों या हरिजनों—जैसे कि अब वे कहलाने लगे थे—के लिए मन्दिर-प्रवेश का अधिकार प्राप्त कराने के निमित्त देश में कई व्यक्तियों ने सत्याग्रह किया। जिस प्रकार असहयोग-आन्दोलन के जमाने में लोग झटपट सत्याग्रह आरम्भ कर देना चाहते थे, उसी प्रकार हरिजन-आंदोलन के अवसर पर भी उत्साही युवक परिस्थिति पर, या सत्याग्रह जैसा कठोर तप करने के अपने सामर्थ्य पर, बिना विचार किये ही झटपट सत्याग्रह आरम्भ कर देना चाहते थे। गांधीजी के नियंत्रण और प्रभाव ने १९२१-२२ में अनेक परिस्थितियों को बचाया था, वही प्रभाव अब फिर काम कर रहा था। हरिजन आन्दोलन में रस लेने के गांधीजी के आह्वान का धन और जन दोनों रूप में ऐसा पर्याप्त उत्तर मिला कि हालत में हर घण्टे और हर मिनट अन्तर पड़ता दिखाई दिया। भोपाल के नवाब ने इस हिन्दू धार्मिक आन्दोलन के लिए ५०००) दिये। फादर विन्स्लो ने अपने अन्य सहधर्मियों के हस्ताक्षर के साथ एक अपील छपवाकर ईसाइयों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था को धिक्कारा। उधर मौलाना शौकतअली गांधीजी की रिहाई का आग्रह कर रहे थे और इस बात पर जोर दे रहे थे कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या का भी निपटारा हो जाय। इस प्रकार वातावरण में एकता की भावना और एकता की पुकार छाई हुई थी, और यदि सरकार अकस्मात २९ सितम्बर को अपनी नीति में परिवर्तन करके गांधीजी से मुलाकात आदि करने की वे सुविधायें जो उन्हें उपवास के समय दी गई थीं, न छीन लेती तो साम्प्रदायिक समझौता अवश्य हो जाता। श्री जयकर उनसे भेंट करना चाहते थे, पर उन्हें इजाजत न मिली। श्रीमती सरोजिनीदेवी को स्त्रियों के जेल में वापस भेज दिया गया। श्रीमती कस्तूरबा गांधी को गांधीजी के पास से हटा दिया गया। मुलाकातें बन्द कर दी गईं। गांधीजी अब वैसे ही कैदी होगये जैसे १२ सितम्बर से पहले थे। परन्तु सरकार की एक बात की तारीफ करनी पड़ेगी कि श्रीमती कस्तूरबा को समय के पहले छोड़ दिया गया और उन्हें दूसरे दिन से गांधीजी के पास रहने दिया गया। गांधीजी ने इस प्रकार हरिजन कार्य करने की सुविधाओं से वंचित होने पर विरोध प्रदर्शित किया, क्योंकि सरकार की यह कारंवाई पूना-पैक्ट की शर्तों ही के विरुद्ध थी।

लम्बे-लम्बे पत्र-व्यवहार के बाद अन्त में सरकार ने गांधीजी को अपना अस्पृश्यता-निवारण कार्य जारी रखने की अनुमति दे दी। हालही में मुलाकातियों के, पत्र-व्यवहार के और समाचार-पत्रों में लेख छपाने के सम्बन्ध में, जो रुकावट डाल दी गई थी, उसे भी हटा लिया गया, और ७ नवम्बर को होम-मेम्बर मि० हेग ने बड़ी कौंसिल में निम्नलिखित वक्तव्य दिया—

"हाल ही में गांधीजी ने यह कहा था कि उन्होंने अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में जो कार्यक्रम निश्चय किया है, उसे पूरा करने के लिए मुलाकातों के, पत्र-व्यवहार के और केवल इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली अन्य बातों के सम्बन्ध में उन्हें अधिक सुविधा मिलनी चाहिए। सरकार गांधीजी की अस्पृश्यता-निवारण-सम्बन्धी चेष्टाओं में बाधा नहीं डालना चाहती, क्योंकि गांधीजी ने बताया है कि अस्पृश्यता-निवारण एक नैतिक और धार्मिक सुधार है, जिसका सत्याग्रह-आन्दोलन से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतएव सरकार ने अस्पृश्यता-निवारण से सम्बन्ध रखनेवाली मुलाकातों के

तथा पत्र-व्यवहार और लेख-प्रकाशन के सम्बन्ध में रुकावट हटा ली है; पर जिन मुलाकातों का सम्बन्ध विशेष रूप से राजनैतिक बातों से है, उनके प्रति सरकार की स्थिति पहले ही जैसी है, जैसा कि वाइसराय के प्राइवेट-सेक्रेटरी-द्वारा मौलाना शौकतअली को दिये गये उत्तर से प्रकट है।" (पूना-पैक्ट और तत्सम्बन्धी सरकार से हुआ पत्र-व्यवहार परिशिष्ट ८ में देखिये)।

गुरुवयूर-सत्याग्रह

इस प्रथम महान् व्रत के और पूना-पैक्ट के विषय का अन्त करने से पहले हम इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाली एक घटना की चर्चा करना चाहते हैं, जिसकी ओर जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ। श्री केलप्पन मलाबार में खास तौर से हरिजन-उत्थान सम्बन्धी कार्य कर रहे थे। उनकी अन्तरात्मा ने उन्हें आमरण उपवास करने को प्रेरित किया। उन्होंने इस उपवास का संकल्प गांधीजी के महान् व्रत के लगभग साथ-ही-साथ किया। श्री केलप्पन का उद्देश्य था कि गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियों को अस्पृश्यों के लिए मन्दिर-प्रवेश को अनुमति देने को राजी किया जाय। गांधीजी ने इस मामले की सारी बातों का अध्ययन करने के बाद स्थिर किया कि ट्रस्टियों को काफी नोटिस नहीं दिया गया। उन्हें बताया गया कि सफलता प्राप्त हुई रक्खी है—पर गांधीजी ने कहा कि तात्कालिक सफलता प्राप्त होने-न-होने का प्रश्न नहीं है, प्रश्न है कार्य के नैतिक औचित्य का।

इसलिए गांधीजी ने श्री केलप्पन को तार दिया कि उपवास स्थगित करदो और ट्रस्टियों को पहले नोटिस देने के बाद ही फिर उचित अवसर पर उपवास करना ठीक होगा। साथ ही उन्होंने यह भी आश्वासन दिया कि यदि आवश्यक हुआ तो मैं भी श्री केलप्पन के साथ उपवास करूंगा। उसके बाद श्री केलप्पन ने भी उपवास करना त्याग दिया।

यहां गांधीजी के उपवास का भी जिक्र कर देना अनुचित न होगा जोकि २ सितम्बर १९३२ को उन्होंने श्री अप्पासाहेब पटवर्धन की सहानुभूति में शुरू किया था। श्री पटवर्धनने जेलमें भंगी का काम मांगा था, लेकिन अधिकारियों ने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। गांधीजी ने इस बारे में बम्बई-सरकार को लिखा, लेकिन उसका भी कोई असर न हुआ। इसपर श्री पटवर्धन ने अपना खाना क्रमशः कम करते हुए मृत्यु तक पहुँचानेवाला उपवास आरम्भ किया। अस्थायी संधि के समय गांधीजी ने अप्पासाहब पटवर्धन से कहा था कि अगर तुम्हारी मांग स्वीकृत न हुई तो मैं भी तुम्हारे साथ उपवास करूंगा, अतः उनको सहानुभूति में गांधीजी ने भी उपवास शुरू कर दिया। लेकिन दो ही दिनों में अधिकारियों ने यह आश्वासन दे दिया कि अगर उपवास छोड़ दिया जाय तो वे उनकी मांग पर विचार करेंगे। उसके फलस्वरूप उपवास तोड़ दिया गया और एक सप्ताह के अन्दर ही भारत-मन्त्री ने जेल के नियमों में ऐसा संशोधन कर दिया कि जिससे सवर्ण हिन्दुओं को भंगी का काम देने की रुकावट उठ गई। इस प्रकार यह सत्याग्रह सफल हुआ।

गिरफ्तारियां

हमने १९३२ के सत्याग्रह-आन्दोलन की प्रगति का वर्णन कर ही दिया है। हमने पूना-पैक्ट का भी जिक्र कर दिया है। जनता ने गांधीजी के अस्पृश्यता-निवारण के आह्वान का जो उत्तर दिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की प्रगति को निस्संदेह क्षति पहुंची।

इतने पर भी कांग्रेस का कार्यक्रम चलाया जाता रहा। सत्याग्रह-आन्दोलन के शिथिल होने का एक कारण और भी था। जैसी परिस्थिति थी, और जैसा कि बयान किया जा चुका है, सत्याग्रह-आन्दोलन केवल लुक-छिपकर ही चलाया जा सकता था; और यह तरीका सत्याग्रह के सिद्धान्तों से असंगत और विरुद्ध ही नहीं बल्कि विपरीत भी है। पूना में गांधीजी के उपवास के सिलसिले में मित्रों के एकत्र होने से उस अवसर पर उन प्रमुख कांग्रेसी नेताओं में, जो रिहा हो चुके थे, विचार विनिमय

करने का खासा मौका मिल गया। उसीके फल-स्वरूप दो गश्ती-पत्र निकाले गये। एक में यह स्पष्ट किया गया कि कांग्रेसवादियों का मुख्य काम सत्याग्रह-आन्दोलन जारी रखना है, और अस्पृश्यता-निवारण का काम राष्ट्रीय विचारवाले गैर-कांग्रेसियों को और उन लोगों को दिया गया है जो किसी-न-किसी कारणवश जेल जाना नहीं चाहते। दूसरे पत्र में उस लुका-छिपी की नीति का, जो सत्याग्रह-आन्दोलन में आ चुकी थी, अन्त करने पर जोर दिया गया था।

सरकार ने अपना आक्रमण ४ जनवरी १९३२ को आरम्भ किया था। इसलिए बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने, जो चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य के बाद स्थानापन्न-सभापति हुए थे, सारी प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों को हिदायतें भेज दीं कि १९३३ के इस दिन एक खास वक्तव्य पढ़ा जाय। यह वक्तव्य भी, जिसमें संक्षेप में आन्दोलन की प्रगति और उन सारी समस्याओं का पर्यालोचन दिया गया था जो उस समय जनता के दिमाग में सबसे ऊपर थीं, जगह जगह भेज दिया गया। जगह-जगह सभायें हुईं, जिनमें यह वक्तव्य गिरफ्तारियों के और लाठी-वर्षा से बीच में पढ़ा गया। ६ जनवरी १९३१ को कांग्रेस-सभापति भी गिफ्तार हो गये और उनका स्थान श्री अणे ने ग्रहण किया।

जब १९३२ की जनवरी में युद्ध आरम्भ हुआ तो सरदार वल्लभभाई पटेल कांग्रेस के सभापति थे। कार्य-समिति ने यह निश्चय किया कि १९३० के विपरीत इस बार कार्य-समिति के रिक्त स्थान पूरे न किये जायं। सरदार वल्लभभाई ने उन सज्जनों की सूची तैयार की जो उनके बाद एक-एक करके उनका स्थान ग्रहण करेंगे। जनवरी १९३२ और जुलाई १९३३ के बीच में, जब कांग्रेस-संस्था का अस्तित्व लोप हो गया था, बाबू राजेंद्र प्रसाद, डॉ० अन्सारी, सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर, श्री गंगा-धरराव देशपाण्डे, डॉ० किचलू, चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य और बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने सभापति का भार ग्रहण किया। इस बीच में जिन-जिन सज्जनों ने मंत्री का काम किया और जिन-जिन पर अनेक कठिनाइयों के मध्य में कार्य चलाने का भार आकर पड़ा उनमें श्री जयप्रकाशनारायण, लालजी मेहरोत्रा, गिरधारी कृपलानी, आनन्द चौधरी, और आचार्य जुगलकिशोर का नाम उल्लेखनीय है।

१९३२ की घटनायें तो संक्षेप में ही बताई जा सकती हैं। कलकत्ते का अधिवेशन सबसे अधिक महत्वपूर्ण रहा।

कलकत्ता कांग्रेस

अप्रैल १९३२ के दिल्ली के अधिवेशन की भांति कलकत्ता का अधिवेशन भी निषेधाज्ञा के होते हुए करना पड़ा। यद्यपि इसका आयोजन उस समय किया गया था जब सत्याग्रह-आन्दोलन शिथिल पड़ गया था, फिर भी जो उत्साह और प्रतिरोध की भावना यहां दिखाई पड़ी वह दिल्ली में भी न दिखाई पड़ी थी। कुछ प्रान्तों ने तो अपने पूरे प्रतिनिधि भेजे। कुल मिलाकर कोई २२०० प्रतिनिधि सारे प्रान्तों से चुने गये। इस बात से कि पं० मदनमोहन मालवीय ने अधिवेशन का सभा-पतित्व स्वीकार कर लिया है, राष्ट्र का उत्साह और भी बढ़ गया। श्रीमती मोतीलाल नेहरू ने वृद्धा-वस्था और दुर्बलता का ध्यान न करके अधिवेशन में भाग लेने का जो निश्चय किया उससे आनेवाले प्रतिनिधियों को बड़ी स्फूर्ति मिली। अधिवेशन कलकत्ते में ३१ मार्च को बड़े सनसनीपूर्ण वातावरण में हुआ। डॉ० प्रफुल्ल घोष स्वागत-समिति के अध्यक्ष थे। सरकार ने अधिवेशन होने देने के लिए कुछ उठा न रक्खा। पण्डित मदनमोहन मालवीय को कलकत्ते नहीं पहुंचने दिया गया। उन्हें बीच ही में आसनसोल स्टेशन पर गिरफ्तार कर लिया गया। उनके साथ ही श्रीमती मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयदमहमूद और अन्य सारे व्यक्ति, जो सभापति के साथ थे, गिरफ्तार कर लिये गये और सबको आसनसोल की जेल में ले जाया गया। कांग्रेस के कार्य-वाहक सभापति श्री अणे भी कलकत्ता जाते हुए गिरफ्तार कर लिये गये और उन्हें जेल में भेज दिया गया। कलकत्ते में स्वागत-समिति के सदस्यों को

गिरफ्तार कर लिया गया और कई कांग्रेस-नेताओं पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। श्रीमती नेली सेनगुप्त और डॉ० मुहम्मद आलम इनमें प्रमुख थे। लगभग १००० प्रतिनिधि रवाना होने से पहले ही, या कलकत्ते के मार्ग में, गिरफ्तार कर लिये गये। बाकी प्रतिनिधि नगर में पहुँचने में सफल हुए। निषेधाज्ञा होते हुए भी लगभग ११०० प्रतिनिधि अधिवेशन के लिए नियत स्थान पर एकत्र हो गये। शीघ्र ही उनपर पुलिस आ टूटी और कांग्रेस-वादियों के शान्तिपूर्ण-समुदाय पर लाठियां बरसने लगीं। बहुत-से प्रतिनिधि बुरी तरह घायल हुए और श्रीमती नेली सेनगुप्त और अन्य प्रमुख कांग्रेसवादी गिरफ्तार किये गये। पुलिस ने अधिवेशन को बल-प्रयोग-द्वारा होने से रोकने की चेष्टा की, परन्तु असफल रही, क्योंकि लाठियों की वर्षा होते रहने पर भी प्रतिनिधियों का भीतरी समूह अपनी-अपनी जगहों पर जमा रहा, और वे सातों प्रस्ताव, जिन्हें पास करने के लिए पेश किया जानेवाला था, पढ़कर सुनाये गये और पास हुए। कलकत्ता-अधिवेशन के सिलसिले में गिरफ्तार हुए अधिकांश व्यक्तियों को कांग्रेस समाप्त होते ही छोड़ दिया गया। अन्य व्यक्तियों पर मुकदमा चलाया गया और सजायें दी गईं। श्रीमती सेनगुप्त को भी छः मास का दण्ड मिला। जेल से रिहा होते ही पण्डित मदनमोहन मालवीय सीधे कलकत्ता पहुंचे और शीघ्र ही देश के सामने इस बात का कि पुलिस ने किस अमानुषिकता के साथ कांग्रेस भंग करने की चेष्टा की थी, प्रमाण पेश किया। उन्होंने सरकार को जांच करने की चुनौती दी, पर वह चुनौती कभी स्वीकार न की गई। नीचे हम ३१ मार्च १९३३ को हुए कलकत्ता-अधिवेशन के प्रस्ताव देते हैं—

१. **स्वाधीनता का लक्ष्य**—यह कांग्रेस उस प्रस्ताव को दोहराती है जो लाहौर में १९२९ में पास किया गया था और जिसके द्वारा पूर्ण स्वाधीनता को अपना लक्ष्य घोषित किया गया था।

२. **सत्याग्रह वैध अस्त्र है**—यह कांग्रेस सत्याग्रह को जनता के अधिकारों की रक्षा करने, राष्ट्रीय मर्यादा को कायम रखने और राष्ट्रीय लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पूर्ण वैध उपाय समझती है।

३. **सत्याग्रह-कार्यक्रम का पालन**—यह कांग्रेस कार्य-समिति के १ जनवरी १९३२ के निश्चय को पुष्टि करती है। पिछले १५ महीनों में जो-कुछ हुआ है उसका ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने के बाद कांग्रेस का यह दृढ़ निश्चय है कि देश इस समय जिस परिस्थिति में है, उसको देखते हुए सत्याग्रह-आन्दोलन को दृढ़ और व्यापक बनाया जाय, और इसलिए यह कांग्रेस जनता को आह्वान करती है कि इस आन्दोलन को कार्य-समिति के उपर्युक्त प्रस्ताव के अनुरूप अधिक शक्ति के साथ चलाया जाय।

४. **बहिष्कार**—यह कांग्रेस जनता की सारी श्रेणियों और वर्गों को आह्वान करती है कि वे विदेशी कपड़ा बिलकुल त्याग दें, खद्दर का व्यवहार करें और अंग्रेजी माल का बहिष्कार करें।

५. **ह्वाइट-पेपर**—इस कांग्रेस की सम्मति है कि जबतक ब्रिटिश-सरकार ऐसे निर्दयतापूर्ण दमन-कार्य में लगी हुई है, जिसके द्वारा, देश के परम-विश्वसनीय नेता और उनके हजारों अनुयायी जेलों में पड़े हैं या नजरबन्द हैं, बोलने और एकत्र होने के अधिकारों का हनन हो रहा है, समाचार-पत्रों की स्वाधीनता पर कड़ा प्रतिबन्ध लग रहा है, और साधारण नागरिक-व्यवस्था के स्थान पर मार्शल-लॉ का दौर-दौरा है, और जिसका आरम्भ जान-बूझकर महात्मा गांधी के विलायत से लौटने पर, राष्ट्रीय-भावना को कुचलने के लिए किया गया था, तबतक उसके द्वारा तैयार की गई किसी भी शासन-व्यवस्था पर भारतीय जनता न विचार कर सकती है, न उसे स्वीकार कर सकती है।

कांग्रेस का विश्वास है कि हाल ही में प्रकाशित हुए ह्वाइट-पेपर की योजना से जनता धोखे में

न पड़ेगी, क्योंकि वह भारत के हितों की विरोधिनी है और इस देश में विदेशी प्रभुत्व स्थायी बनाने के लिए तैयार की गई है।

६. गांधीजी का उपवास—यह कांग्रेस देश को, २० सितम्बर को गांधीजी के उपवास की सकुशल समाप्ति पर, बधाई देती है और आशा करती है कि अस्पृश्यता शीघ्र ही अतीत की वस्तु हो जायगी।

७. मौलिक अधिकार—इस कांग्रेस की सम्मति है कि जनता को यह समझाने के लिए कि 'स्वराज्य' उनके लिए क्या महत्व रखता है, इस सम्बन्ध में कांग्रेस की स्थिति को साफ कर दिया जाय, और ऐसे रूप में साफ किया जाय कि उसे जन-साधारण समझ सकें। इस लक्ष्य को सामने रखकर यह कांग्रेस अपने १९३१ के करांची-अधिवेशन के मौलिक अधिकारों सम्बन्धी प्रस्ताव नं० १४ को दुहराती है।

गांधीजी का उपवास

कलकत्ता कांग्रेस के बाद शीघ्र ही देश में एक घटना हुई जो बिलकुल आकस्मिक थी। हरिजन-आन्दोलन में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ रही थी। इन कार्यकर्त्ताओं को अपना काम पवित्रता, सेवाभाव और अधिक नेकनीयती के साथ करने में सहायता देने के लिए गांधीजी ने ८ मई १९३३ को आत्म-शुद्धि के निमित्त २१ दिन का उपवास आरम्भ किया। उनके शब्दों में "यह अपनी और अपने साथियों की शुद्धि के लिए, जिससे वे हरिजन-कार्य में अधिक सतर्कता और सावधानी के साथ काम कर सकें, हृदय से की गई प्रार्थना है। इसलिए मैं अपने भारतीय तथा संसार-भर के मित्रों से अनुरोध करता हूं कि वे मेरे लिए मेरे साथ प्रार्थना करें कि मैं इस अग्नि-परीक्षा में सकुशल पूरा उतरूं, और चाहे मैं मरूं या जिऊं, मैंने जिस उद्देश्य से उपवास किया है, वह पूरा हो। मैं अपने सनातनी भाइयों से अनुरोध करता हूं कि वे प्रार्थना करें कि इस उपवास का परिणाम मेरे लिए चाहे जो कुछ हो, कम-से-कम वह सुनहरी ढकना, जिसने सत्य को ढक रक्खा है, हट जाय।" उन्होंने एक पत्र-प्रतिनिधि से कहा—"किसी धार्मिक आन्दोलन की सफलता उसके आयोजकों की बौद्धिक या भौतिक शक्तियों पर निर्भर नहीं करती, बल्कि आत्मिक-शक्ति पर निर्भर करती है, और उपवास इस शक्ति की वृद्धि करने का सबसे अधिक जाना-बूझा उपाय है।"

उसी दिन सरकार ने एक विज्ञप्ति निकाली, जिसमें कहा गया कि उपवास जिस उद्देश्य से किया गया है उसको सामने रखकर और उसके द्वारा प्रकट होनेवाली मनोवृत्ति को ध्यान में रखते हुए, भारत-सरकार ने निश्चय किया है कि वे (गांधीजी) रिहा कर दिये जायं। तदनुसार गांधीजी ८ मई को छोड़ दिए गये। रिहा होते ही गांधीजी ने एक वक्तव्य दिया, जिसके द्वारा उन्होंने छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह-आन्दोलन मौकूफ रखने की सिफारिश की।

गांधीजी ने कहा—"मैं इस रिहाई से प्रसन्न नहीं हूं, और जैसा कि कल मुझसे सरदार वल्लभभाई ने कहा और ठीक ही कहा, मैं इस रिहाई से लाभ उठाकर सत्याग्रह-आन्दोलन का संचालन या पथ-प्रदर्शन कैसे कर सकता हूं!

"इसलिए यह रिहाई मुझे सत्य का अन्वेषण करने को प्रेरित करती है और सम्मानशील व्यक्ति की हैसियत से मुझपर बहुत बड़ा भार रखती है और मुझे असमंजस में डालती है। मैंने आशा की थी और मैं अब भी आशा करता हूं कि मैं न तो किसी बात को लेकर उत्तेजित होऊंगा, और न किसी प्रकार के वाद-विवाद में ही भाग लूंगा। यदि मैं अपने दिमाग में हरिजन-कार्य के अतिरिक्त और किसी बाहरी बात को जगह दूंगा तो इस उपवास का उद्देश्य ही नष्ट हो जायगा।

"पर साथ ही, रिहाई होने पर अब मैं अपनी थोड़ी-बहुत शक्ति सत्याग्रह-आन्दोलन का अध्ययन करने में भी लगाने को बाध्य हूं।

"इसमें सन्देह नहीं कि इस समय मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि सत्याग्रह के सम्बन्ध में मेरे विचारों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ा है। असंख्य सत्याग्रहियों की वीरता और आत्म-त्याग के लिए मेरे पास साधुवाद के सिवा और कुछ नहीं है। इतना कहने के बाद मैं यह कहे बिना भी नहीं रह सकता कि इस आन्दोलन में जिस लुका-छिपी से काम लिया गया है वह उसकी सफलता के लिए घातक है। यदि आन्दोलन को जारी रखना है, तो जो लोग इस आन्दोलन का संचालन देश के विभिन्न स्थानों में कर रहे हैं उनसे मेरा कहना है कि लुका-छिपी छोड़ दो। यदि इससे एक सत्याग्रही का मिलना कठिन हो जाय तो मुझे परवाह नहीं है।

"इसमें सन्देह नहीं कि जन-साधारण को आर्डिनेन्सों ने भयभीत बना दिया है, और मेरी धारणा है कि लुका-छिपी के तरीकों का भी यह दब्बूपन उत्पन्न करने में हाथ है।

"सत्याग्रह-आन्दोलन उसमें भाग लेने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या पर नहीं, उनके गुण और योग्यता पर निर्भर करता है; और यदि मैं आन्दोलन का संचालन करूं तो मैं योग्यता पर जोर दूंगा। यदि ऐसा होसके तो आन्दोलन की सतह बहुत ऊंची हो जाय। किसी और रूप में जनता को हिदायत करना असम्भव है। वास्तविक युद्ध के सम्बन्ध में मुझे कुछ नहीं कहना है। ये विचार जो मैंने प्रकट किये हैं, पिछले कई महीनों से मैंने अपने भीतर बन्द कर रक्खे थे; और मैंने जो-कुछ कहा है उसमें सरदार वल्लभभाई भी मुझसे सहमत हैं।

"मैं एक बात और कहूंगा, चाहे वह मुझे रुचिकर हो या न हो—इन तीन सप्ताहों में सारे सत्याग्रही भीषण दुविधा में रहेंगे। यदि कांग्रेस के सभापति श्रीमाधवराव अणे बाकायदा छः सप्ताह के लिए सत्याग्रह मौकूफ रखने की घोषणा कर दें तो अधिक उत्तम हो।

"अब मैं सरकार से अपील करूंगा। यदि सरकार देश में वास्तविक शान्ति चाहती है और समझती है कि वास्तविक शान्ति मौजूद नहीं है, यदि वह समझती है कि आर्डिनेन्स का शासन सभ्य-शासन नहीं है; तो उसे इस आन्दोलन-बन्दी से लाभ उठाकर सारे सत्याग्रहियों को बिना किसी शर्त के छोड़ देना चाहिए।

"यदि मैं इस अग्नि-परीक्षा से बच गया तो इससे मुझे सारी अवस्था पर विचार करने का अवसर मिलेगा और मैं कांग्रेसी नेताओं को और यदि मैं कहने का साहस करूं तो, सरकार को सलाह दे सकूंगा। मैं उस स्थान से बातचीत आरम्भ करना चाहूंगा जहां वह मेरे इंग्लैण्ड से वापस आने पर रह गई थी।

"यदि मेरी चेष्टाओं के फल-स्वरूप सरकार और कांग्रेस में समझौता न हो सका और सत्याग्रह आन्दोलन फिर आरम्भ किया गया तो सरकार, यदि चाहे तो, फिर आर्डिनेन्स का शासन आरम्भ कर सकती है। यदि सरकार इच्छुक हुई तो कोई-न-कोई उपाय निकल ही आयगा। जहां तक मेरा सम्बन्ध है, इस बात का मुझे पूरा यकीन है।

"सत्याग्रह उस समय तक नहीं उठाया जा सकता जबतक इतनी अधिक संख्या में सत्याग्रही जेलों में हैं; और जबतक सरदार वल्लभभाई पटेल, खानसाहब अब्दुलगफ्फारखां और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जीवित ही समाधिस्थ हैं, तबतक कोई समझौता नहीं हो सकता।

"वास्तव में सत्याग्रह उठाना जेल से बाहर किसी आदमी के सामर्थ्य में नहीं है। यह केवल उस समय की कार्य-समिति ही कर सकती है। मेरा मतलब उस कार्य-समिति से है जो मेरी गिरफ्तारी

के समय मौजूद थी। मैं अब सत्याग्रह के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहूंगा। शायद मैंने सम्प्रति आवश्यकता से अधिक कह दिया है, परन्तु मुझे जो-कुछ कहना था वह मैंने कहने की शक्ति रहते कह दिया।

"मैं पत्र-प्रतिनिधियों से कहूंगा कि वे मुझे परेशान न करें। भविष्य में मुलाकात के लिए आनेवालों से भी मैं कहूंगा कि वे संयम से काम लें। वे मुझे अब भी जेल ही में समझें। मैं कोई राजनैतिक चर्चा या अन्य किसी प्रकार की चर्चा करने में असमर्थ हूं।

"मैं शान्ति चाहता हूं और सरकार को बता देना चाहता हूं कि मैं इस रिहाई का दुरुपयोग न करूंगा, और यदि मैं इस अग्नि-परीक्षा में से निकल आया और मुझे उस समय भी राजनैतिक वातावरण ऐसा ही अन्धकारमय दिखाई पड़ा तो मैं सविनय-अवज्ञा को बढ़ाने की छुक-छिपकर या खुल्लम-खुल्ला कोई भी कारवाई किये बिना ही सरकार से कहूंगा कि मुझे अपने साथियों के पास, जिन्हें मैं इस समय त्याग-सा आया हूं, यरवडा पहुंचा दिया जाय।

"सरदार वल्लभभाई के साथ रहना बड़े सौभाग्य की बात हुई। मैं उनकी अद्वितीय वीरता और उनके प्रज्वलित स्वदेश-प्रेम से अच्छी तरह परिचित था, पर मुझे इस प्रकार १६ महीने तक उनके साथ रहने का सौभाग्य कभी प्राप्त न हुआ था। वे मुझे जिस स्नेह के साथ ढके रहते हैं उससे मुझे अपनी प्यारी माता के स्नेह की याद आ जाती है। मैंने पहले नहीं जाना था कि उनमें मातृ-सुलभ गुण मौजूद हैं। मुझे कुछ हो जाता तो वे तत्काल अपना बिछौना छोड़ देते। वे मेरे आराम से संबंध रखनेवाली जरा-जरासी बातों की निगरानी रखते। उन्होंने और मेरे अन्य सहयोगियों ने मानों मुझे कुछ न करने देने का षड्यन्त्र रच लिया था, और मुझे आशा है कि जब मैं यह कहूंगा, कि जब कभी हमने किसी राजनैतिक समस्या की चर्चा की, तभी उन्होंने सरकार की कठिनाइयों को बड़े अच्छे ढंग से समझा, तो सरकार मेरी बात पर विश्वास करेगी। उन्होंने बारडोली और खेड़ा के किसानों के सम्बन्ध में जो हितचिन्तना प्रकट की, उसे मैं कभी न भूलूंगा।"

गांधीजी की घोषणा के बाद ही कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष ने भी अपनी घोषणा प्रकाशित करके सत्याग्रह-आन्दोलन छः सप्ताह के लिए मौकूफ कर दिया। सरकार ने भी उत्तर प्रकाशित कराने में विलम्ब से काम नहीं लिया।

९ मई को एक सरकारी विज्ञप्ति में कहा गया कि केवल सत्याग्रह के मौकूफ रखने से वे शर्तें पूरी नहीं होतीं जो कैदियों की रिहाई के लिए रक्खी गई हैं। सरकार कांग्रेस से इस मामले में सौदा करने को तैयार नहीं है।

भारत-मन्त्री के शब्दों में सरकार ने कहा था—"हमारे पास यह विश्वास करने के प्रबल कारण होने चाहिए कि उनकी रिहाई से सत्याग्रह दुबारा शुरू न हो जायगा। सत्याग्रह-आंदोलन को अस्थायी रूप से बंद करने से, जिससे कांग्रेसी-नेताओं के साथ समझौते की बातचीत शुरू हो जाय, वे शर्तें पूरी नहीं होतीं जिनके द्वारा सरकार को संतोष होजाय, कि सत्याग्रह सचमुच हमेशा के लिए त्याग दिया गया है। सत्याग्रह की वापसी के लिए कांग्रेस के साथ बातचीत करने का, इन गैरकानूनी कार्रवाइयों के संबंध में या उसके साथ समझौता करने के उद्देश्य से कैदियों को छोड़ने का कोई इरादा नहीं है।"

इधर शिमला से यह नकारात्मक उत्तर आया, उधर वियेना से एक वक्तव्य आया जिसपर श्री विट्ठलभाई पटेल और श्री सुभाष बसु के हस्ताक्षर थे। उसके कुछ अंश इस प्रकार हैं—

"सत्याग्रह बंद करने की गांधीजी की ताजा कार्रवाई असफलता की स्वीकारोक्ति है।"

वक्तव्य में यह भी कहा गया कि "हमारी यह स्पष्ट सम्मति है कि गांधीजी राजनैतिक नेता की हैसियत से असफल रहे। इसलिए अब समय आ गया है कि हम नये सिद्धांतों के ऊपर नये उपायको

लेकर कांग्रेस की कायापलट करें, और इसके लिए एक नेता की आवश्यकता है, क्योंकि गांधीजी से यह आशा करना अनुचित है कि वे ऐसे कार्य-क्रम को हाथ में लेंगे जो उनके जीवन-भर के सिद्धान्तों के साथ मेल न खाता हो।"

वक्तव्य में आगे कहा गया—"यदि कांग्रेस में स्वयं ही इस प्रकार का आमूल परिवर्तन हो सके तो अच्छा ही है, नहीं तो कांग्रेस के भीतर ही उग्र मतवाले लोगों की एक नई पार्टी बनानी पड़ेगी।"

यह पहला ही अवसर न था जब गांधीजी को इन दोनों सम्भ्रान्त व्यक्तियों की, जिन्हें युद्ध के समय बीमारी के कारण विदेश में रहना पड़ा था, विरुद्ध आलोचना का शिकार बनना पड़ा। गांधीजी जिस प्रकार अपना कष्ट सन्तोष, आस्था और धैर्य के साथ सह रहे थे, उसी प्रकार उन्होंने संसार की आलोचना भी सह ली। उनकी प्रतिज्ञा पूरी हुई और २९ मई १९३३ को उन्होंने अपने उपवास का अन्त किया।

इस बीच में कांग्रेसवादियों में यह तय हुआ कि गांधीजी की रिहाई से जो अवसर मिला है उसका उपयोग करके देश की अवस्था पर आपस में चर्चा की जाय। सोचा गया कि इस प्रकार की बैठक तभी की जाय जब गांधीजी उसमें भाग लेने योग्य हों। इसलिए सत्याग्रह-बन्दी की अवधि को कार्यवाहक सभापति ने छः सप्ताह के लिए और बढ़ा दिया।

पूना-परिषद्

१२ जुलाई १९३३ को देश की राजनैतिक अवस्था पर विचार करने के लिए पूना में कांग्रेस-वादियों की अनियमित बैठक हुई। श्री अणे ने भूमिका-स्वरूप भाषण के साथ इस परिषद् का श्रीगणेश किया। गांधीजी ने राजनैतिक अवस्था के सम्बन्ध में अपने विचार परिषद् के सम्मुख संक्षेप में रख दिये। इसपर आम चर्चा आरम्भ हुई और अन्त में परिषद् दूसरे दिन के लिए स्थगित कर दी गई। दूसरे दिन की कार्रवाई का आरम्भ गांधीजी ने एक लम्बे-चौड़े वक्तव्य के द्वारा किया, जिसमें उन्होंने उन प्रश्नों का उत्तर दिया, जो परिषद् के सदस्यों ने उठाये थे, और साथ ही अपनी सूचनायें भी उसके सामने रक्खीं। इसके बाद परिषद् ने अपनी सिफारिशें पेश कीं। उसने सत्याग्रह को बिना किसी शर्त के वापस लेने के प्रस्ताव को रद कर दिया, पर साथ ही व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रस्ताव को भी अस्वीकार किया। अन्त में परिषद् ने गांधीजी को सरकार से समझौता करने के लिए वाइसराय से मिलने का अधिकार दिया। इस निश्चय के अनुसार गांधीजी ने वाइसराय को तार देकर शान्ति की सम्भावना को खोज निकालने के उद्देश्य से उनसे मिलने की अनुमति चाही। पर वाइसराय ने उत्तर में पूना-परिषद् की चर्चा के सम्बन्ध में समाचार-पत्रों की भ्रमात्मक रिपोर्ट का विस्तृत हवाला दिया और उन रिपोर्टों पर विश्वास करके उस समय तक मुलाकात करने से इन्कार कर दिया जबतक कांग्रेस सत्याग्रह-आन्दोलन वापस न ले ले। गांधीजी ने उत्तर दिया कि सरकार ने अपना रुख एक निजी परिषद् की गोपनीय कार्रवाई के संबंध में छपे हुए अनधिकार-पूर्ण समाचारों के आधार पर निश्चित किया है, और यदि उन्हें मुलाकात करने की इजाजत मिले तो वे यह दिखा देंगे कि कुल मिलाकर कार्रवाई सम्मानप्रद समझौता करने के पक्ष में हुई थी। पर गांधीजी की शांति-स्थापना की चेष्टा का कोई उत्तर न मिला और राष्ट्र को अपना सम्मान अक्षुण्ण रखने के लिए युद्ध जारी करने को बाध्य होना पड़ा। पर सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और जो लोग तैयार थे उन्हें व्यक्तिगत सत्याग्रह करने की सलाह दी गई। कार्यवाहक-सभापति के आज्ञानुसार सारी कांग्रेस-संस्थायें और युद्ध-समितियां उठा दी गईं।

व्यक्तिगत सत्याग्रह

गांधीजी ने व्यक्तिगत-सत्याग्रह का आरम्भ अपने पास की मूल्यवान् से मूल्यवान वस्तु के परित्याग से किया। इस प्रकार उन्होंने उस कष्ट में भाग लेने की चेष्टा की जिसे आन्दोलन के दौरान में हजारों ग्रामीणों ने सहा था। उन्होंने साबरमती-आश्रम तोड़ दिया और आश्रम के निवासियों को और सारे काम छोड़कर युद्ध में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। उन्होंने सारा आश्रम खाली कर दिया और उसकी जंगम संपत्ति को कुछ संस्थाओं को सार्वजनिक उपयोग के लिए दे दिया। वे किसी दूसरे से लगान आदि न दिलाना चाहते थे, इसलिए वह जमीन, इमारत और खेती सरकार को देने को तैयार हो गये। सरकार की ओर से केवल उस पत्र की पहुंच में एक पंक्ति भेजी गई।

साबरमती-आश्रम का दान

जब सरकार ने गांधीजी का दान स्वीकार नहीं किया तो उन्होंने आश्रम को हरिजन-आंदोलन के अर्पण कर दिया। इस सम्बन्ध में गांधीजी का वह वक्तव्य याद आता है जो उन्होंने १९३० में दाण्डी-यात्रा करने के अवसर पर दिया था। उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जबतक स्वराज्य न मिल जायगा, वह आश्रम को वापस न आयेंगे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया और एक बार को छोड़कर, जब वे अपने एक बीमार मित्र को देखने गये थे, १२ मार्च १९३० के बाद आश्रम में फिर कदम न रक्खा। इस प्रकार आश्रम को हरिजन-संघ के अर्पण करके उन्होंने पार्थिव-जगत् से बांध रखनेवाली इस अन्तिम वस्तु का, जिसके प्रति सम्भव था उनके हृदय में मोह बना रहता, अंत कर दिया।

१ अगस्त १९३३ को गांधीजी रास नामक गांव की, जो १९३० की फरवरी में वल्लभभाई की गिरफ्तारी के बाद से प्रसिद्धि पा चुका था, यात्रा करने वाले थे। पर एक दिन पहले ही आधी रात के समय गांधीजी को उनके ३४ आश्रम-वासियों के साथ गिरफ्तार कर लिया गया। गांधीजी ४ अगस्त की सुबह छोड़ दिये गये और उन्हें यरवडा गांव की सीमा छोड़कर पूना जाकर, रहने का नोटिस दिया गया। इस आज्ञा की निश्चय ही अवहेलना की गई, और रिहाई के आधे घण्टे के भीतर गांधीजी फिर गिरफ्तार कर लिये गये और साल-भर की सजा दी गई।

उनकी गिरफ्तारी और सजा के बाद ही व्यक्तिगत-सत्याग्रह सारे प्रान्तों में आरम्भ हो गया और पहले ही हफ्ते में सैकड़ों कार्यकर्ता गिरफ्तार हो गये। कांग्रेस के कार्यवाहक-अध्यक्ष श्री अणे अकोला से यात्रा करते समय अपने १३ साथियों के साथ १४ अगस्त को गिरफ्तार कर लिये गये और उसके बाद उनके उत्तराधिकारी सरदार शार्दूलसिंह कवीश्वर की बारी आई। परन्तु उन्होंने गिरफ्तारी से पहले आज्ञा जारी की कि कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद और डिक्टेटरों की नियुक्ति का सिलसिला तोड़ दिया जाय, जिससे युद्ध सचमुच व्यक्तिगत-सत्याग्रह का रूप धारण करले। गांधीजी ने जो मार्ग दिखाया था उस पर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देशभर में कांग्रेस-कार्यकर्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट तांते ने युद्ध को जारी रक्खा। जबतक प्रान्तीय केन्द्रों से पूरी सामग्री न मिले तबतक इस युद्ध का ठीक-ठीक वर्णन सारे प्रान्तों के साथ न्याय करते हुए नहीं किया जा सकता। आन्दोलन के अन्तिम युग में हरेक प्रान्त ने कितने सत्याग्रही दिये इसका पूरा ब्यौरा मौजूद नहीं है। केवल इतना ही कहना काफी है कि हजारों ने आह्वान का उत्तर दिया और, जैसी परिस्थिति थी उसको देखते हुए, हरेक प्रान्त ने स्वतंत्रता के युद्ध के लिए जितना कुछ वह कर सकता था, किया।

गांधी जी की रिहाई

सरकार ने गांधी जी को वे सुविधायें देने से इन्कार कर दिया जो मई में उनकी रिहाई से पहले दी गई थीं। इसलिए अब दुबारा गिरफ्तारी के थोड़े दिनों बाद ही गांधीजी को फिर अनशन आरम्भ करना पड़ा। सरकार अड़ी रही। पर गांधीजी की अवस्था बड़ी शीघ्रता के साथ शोचनीय होने लगी और उन्हें २० अगस्त को, अर्थात् अनशन के पांचवें दिन, पूना के सैसून अस्पताल में कैदी की हैसियत से पहुंचाया गया। पर २३ अगस्त तक सरकार को यह शक हो गया कि उनके प्राण सङ्कट में हैं। इसलिए उस दिन उन्हें बिना किसी शर्त के छोड़ दिया गया। इस अनपेक्षित परिस्थिति ने गांधीजी को असमंजस में डाल दिया। पर अपनी रिहाई की अवस्था को ध्यान में रख कर और गिरफ्तारी, अनशन व रिहाई के चूहे और बिल्ली वाले खेल को जान-बूझ कर आरम्भ न करने की इच्छा से प्रेरित होकर उन्होंने निश्चय किया कि उन्हें अपने-आप को रिहा न समझना चाहिए और अपनी सजा की अवधि की समाप्ति तक, अर्थात् ३ अगस्त १९३४ तक, मर्यादित आत्म-संयम से काम लेना चाहिए, और सत्याग्रह के द्वारा गिरफ्तारी को निमन्त्रण न देना चाहिए। परन्तु साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया कि वे स्वयं तो सत्याग्रह न करेंगे, पर जो लोग उनसे सलाह मांगेंगे उन्हें अवश्य ठीक मार्ग दिखायेंगे और राष्ट्रीय-आन्दोलन को गलत रास्ता पकड़ने से रोकेंगे। उन्होंने यह भी निश्चय किया कि इस अवधि के अधिकांश भाग को वे हरिजन-आन्दोलन को उन्नति में लगायेंगे।

जवाहरलालजी की रिहाई

इधर श्रीमती मोतीलाल नेहरूका स्वास्थ्य कुछ दिनों से बिगड़ता जा रहा था और इस अवसर पर उनकी अवस्था चिन्ताजनक हो गई। इसलिए युक्तप्रान्त की सरकार ने पं० जवाहरलाल को उनकी अवधि से कुछ दिन पहले रिहा करने का निश्चय किया जिससे वे अपनी माता की घोर रुग्णावस्था में उनके पास रह सकें। ३० अगस्त को जवाहरलालजी छोड़ दिये गये। अपनी माता के स्वास्थ्य में सुधार होते ही वे सीधे पूना पहुंचे, जहां गांधीजी अपना स्वास्थ्य ठीक कर रहे थे। गांधीजी १९३१ में गोलमेज-परिषद् के लिए रवाना हुए थे तब से इन दोनों की यह पहली भेंट थी। अतः स्वभावतः देश की अवस्था और प्रस्तुत कार्य-क्रम के सम्बन्ध में भी उनमें आपसी बातचीत हुई। इस बातचीत के परिणाम-स्वरूप दोनों में पत्र-व्यवहार भी हुआ जिससे जनता के आगे मौजूद कार्य-क्रम के सम्बन्ध में दोनों ने अपने-अपने दृष्टिकोण प्रकट किये। कांग्रेसवादियों तथा सर्व-साधारण की सूचना और पथ-प्रदर्शन के लिए बाद में यह पत्र-व्यवहार प्रकाशित भी कर दिया गया।

हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में यात्रा

गांधीजी ने राजनैतिक-क्षेत्र में निष्क्रिय रहने के लिए विवश होने पर उस अवधि को हरि-जन-कार्य में लगाने का निश्चय किया था। इस निश्चय के अनुसार उन्होंने हरिजन-आन्दोलन करने के लिए १९३३ के नवम्बर से देश में दौरा शुरू किया। उन्होंने दस महीने के भीतर भारत के हरेक प्रान्त का दौरा किया, और इन दस महीनों का प्रत्येक दिन अस्पृश्यता की समस्या के अध्ययन और उस समस्या को हल करने के उपाय सोचने में बीता। इस दौरे से बहुत बड़ा प्रचार-कार्य हुआ उपस्थित समुदाय का उत्साह और संख्या १९३० के जमाने से ही टक्कर ले सकती थी। गांधीजी ने अपने दौरे में अस्पृश्यता-निवारण के लिए लगभग आठ लाख रुपया एकत्र किया। व्यापारिक मन्दी के जमाने में और विशेष कर ऐसी अवस्था में, जब इससे पहले भी जनता पर आर्थिक बोझ-

पड़ चुका था, गांधीजी की अपील का उतना उदारतापूर्ण उत्तर मिलना असाधारण बात थी। यह दौरा पूर्ण सफल रहा। दो शोचनीय दुर्घटनायें भी हुईं। २५ जून १९३४ को गांधीजी बाल-बाल बच गये नहीं तो देश के लिए बड़ा भारी सङ्कट उपस्थित हो गया होता। वे पूना म्युनिसिपैलिटी का मान-पत्र ग्रहण करने वाले थे, कि इस अवसर पर एक व्यक्ति ने, जिसका पता अभी तक नहीं लगा है, उन पर बम फेंका। इस असफल अपराध के अपराधी ने एक दूसरी मोटरकार को गांधीजी की मोटरकार समझा। गांधीजी की मोटरकार अभी सभा-स्थान में न आई थी। अनुमान किया जाता है कि यह अपराधी गांधीजी के अस्पृश्यता-निवारण आन्दोलन से चिढ़ गया था। फिर भी उसके बम ने सात निर्दोष व्यक्तियों को घायल किया। सौभाग्य से किसी को गहरी चोट न आई। दूसरी घटना १४ दिन बाद ही अजमेर में हुई। यहां किसी तेज मिजाज सुधारक ने आपे से बाहर होकर बनारस के पण्डित लालनाथ का, जो हरिजन-आन्दोलन के कट्टर विरोधी थे, सिर फोड़ दिया। इस दूसरी घटना को लेकर गांधीजी ने ७ दिन का उपवास किया। सार्वजनिक मामलों में एक-दूसरे से मत-भेद रखनेवालों ने जिस असहिष्णुता का परिचय दिया था, यह प्रायश्चित्त उसी के विरुद्ध किया गया था।

गांधीजी ने हरिजनोत्थान कार्य के सम्बन्ध में सारे भारत का दौरा करने का निश्चय किया था, पर दिसम्बर का महीना उनके लिए एक कसौटी ही सिद्ध हुआ। श्री केलप्पन ने गुरुवयूर-मन्दिर के ट्रस्टियों को तीन महीने का नोटिस दिया था और अब १ जनवरी १९३४ को अन्तिम निश्चय करना जरूरी था। इस निश्चय का अर्थ केलप्पन और गांधीजी दोनों का आमरण उपवास भी हो सकता था। इसलिए यह तय किया गया कि गुरुवयूर-मन्दिर के उपासकों की राय ली जाय। इस प्रयोग का जो परिणाम हुआ वह शिक्षाप्रद भी था और सफल भी। इस बीच में डा० सुब्बारायन ने मदरास-प्रान्त के मन्दिरों में अछूतों के प्रवेश के सम्बन्ध में बिल भी पेश कर दिया था और सरकार के निश्चय की प्रतीक्षा की जा रही थी। गुरुवयूर के मतों में ७७ प्रतिशत उपासक अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के हक में थे। जिन लोगों ने राय देने से इन्कार कर दिया था उन्हें निकाल कर २०,१६३ रायें आई जिनमें से मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में १५,५६३ या ७७ प्रतिशत थीं; मन्दिर प्रवेश के विरुद्ध २,५७९ या १३ प्रतिशत थीं, और तटस्थ २,०१६ या १० प्रतिशत थीं। इन मतों में विलक्षणता यह थी कि ८,००० से भी अधिक स्त्रियों ने हरिजनों के मन्दिर-प्रवेश के पक्ष में रायें दीं।

नये वर्ष का आरम्भ शुभ हुआ, क्योंकि गांधीजी का आमरण उपवास टल गया। पर सत्याग्रह के सम्बन्ध में प्रगति इतनी सन्तोषजनक न थी। जो कैदी जेल से छूटे वे भग्नोत्साह हो गये थे। जिन प्रान्तीय नेताओं ने पूना में वचन दिया था कि यदि सामूहिक सत्याग्रह त्याग दिया गया और व्यक्तिगत-सत्याग्रह आरम्भ किया गया तो वे अपने-अपने प्रान्तों का नेतृत्व करेंगे, उनमें से कुछको छोड़ कर बाकी सबने अपने वचन को भुला दिया। जो जेलों से छूटे वे दूसरी बार सजा काटने में या तो असमर्थ थे, या तैयार न थे। जो तैयार थे उन्हें सरकार पकड़ती न थी। सरकार ने यह तरकीब सोच निकाली थी कि वह लाठियों की वर्षा करती, और छोटी जेलों में रख कर कैदियों के साथ बुरा व्यवहार करती। वह कैदियों को रिहा करती; फिर गिरफ्तार करती और कुछ समय बाद फिर छोड़ देती। यह कार्रवाई थकानेवाली थी। इससे सजा के द्वारा सत्याग्रहियों को जो विश्राम मिलता उससे वे वंचित हो गये। ऐसा हो रहा था मानों बिल्ली चूहे को मुंह में पकड़ कर झंझोड़ दे, छोड़ दे और फिर पकड़ ले। इस प्रकार न तो वह उस चूहे को मारती ही थी, न छोड़ती ही।

बिहार-भूकम्प और जवाहरलालजी की गिरफ्तारी

१६ जनवरी को सारा भारत हकबका कर रह गया। जब सुबह के समाचार पत्रोंने गत तीसरे पहर के बिहार के भूकम्प की अभूतपूर्व विपत्ति के समाचार घर-घर पहुंचाये तो सब लड़खड़ा कर रह गये। कुछ ही मिनटों के भीतर प्रान्त की शक्ल ऐसी बदल गई कि उसका पहचानना तक असम्भव हो गया। हजारों इमारतें धूल में मिल गईं और पृथिवी के गर्भ में समा गईं। जमीन के भीतर से रेते ने निकल कर हरी भरी खेती के प्रशस्त मैदानों को नष्ट कर दिया। ११० डिग्री के तापमान का जल १५०० फीट पृथिवी के नीचे से निकला। जहां प्राणदायी जल की नदियां बहकर पृथिवी की सिंचाई करती थीं या जहां मुस्कराती हुई खेतियां अपने वक्षस्थल पर वे भार ग्रहण किये हुए थीं जिनके द्वारा लाखों के प्राणों की रक्षा होती थी, वहीं रेत का मैदान छा गया। पलक मारते हजारों परिवार अनाथ और हजारों स्त्रियां विधवा हो गईं और उनके निर्दोष बच्चे गिरते हुए मकानों के बीच में दब कर मर गये। प्रकृति ने बिहार में कुछ मिनटों के भीतर जो गजब ढाया उसका वास्तविक-चित्र निष्प्राण आंकड़े क्या दे सकेंगे। फिर भी कुछ आंकड़े दिये जाते हैं। भूकम्प का प्रभाव ३०,००० वर्ग मील की लगभग डेढ़ करोड़ जनता पर पड़ा। २०,००० मनुष्यों के प्राण गंवाने की बात कही जाती है। लगभग दस लाख घर नष्ट हो गये, या टूट-फूट गये। ६५,००० कुएं और तालाब या तो निकम्मे हो गये या टूट-फूट गये। लगभग १० लाख बीघा खेती पर रेत छा गया और वह निकम्मी हो गई।

इस भयंकर सङ्कट का सामना करने के लिए बिहार और भारत दोनों पीछे न रहे। चन्दों के द्वारा लगभग एक करोड़ रुपया एकत्र हुआ। बिहार केन्द्रीय रिलीफ फण्ड में जून के अन्त तक २७ लाख से अधिक एकत्र हो गया। अधिकांश नेता और कार्यकर्त्ता भारत के भिन्न भिन्न भागों से पीड़ितों के कष्ट-निवारण का कार्य करने को दौड़ पड़े। बिहार-रिलीफ-कमिटी की ओर से एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई है, जिससे पता चलता है कि कितनी अधिक हानि हुई थी और २५८ केन्द्रों में २,००० से ऊपर कार्य-कर्त्ताओं ने किस लगन के साथ काम किया था।

बिहार के विध्वस्त-प्रदेश में बाहर से आये नेताओं में पण्डित जवाहरलाल भी थे। उनका आगमन समवेदना का परिचायक-मात्र हो, सो बात न थी। उनका आगमन सेवा-कार्य का प्रत्यक्ष उदाहरण था। जब समाचार मिले कि गिरे हुए घरों के भीतर जीवित मनुष्य दबे पड़े हैं, तो उन्होंने स्वयंसेवक का बिल्ला लगाया, कंधे पर फावड़ा रक्खा और उस स्थान को रवाना हो गये। उनके साथ-साथ स्वयंसेवक हाथों में फावड़े लिये मौजूद थे। उन्होंने और अन्य कार्यकर्त्ताओं ने फावड़े चलाये और मिट्टी की टोकरियां अपने सिरों पर ढोयीं। बिहार के भूकम्प ने गांधीजी के कार्यक्रम में भी विघ्न डाला। बिहार और बिहार के कार्यकर्त्ताओं को इस समय भूकम्प और बाढ़ के द्वारा उत्पन्न हुई जटिल परिस्थिति का सामना करना पड़ रहा था। गांधीजी ने एक मास तक उनका पथ-प्रदर्शन किया और उन्हें परामर्श दिया। फल यह हुआ कि देशभर के प्रतिनिधियों की एक परिषद् हुई जिसमें कष्ट-निवारण-कार्य के संचालन के लिए बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ-कमिटी को जन्म दिया गया, जोकि एक गैर-सरकारी आयोजन था और जिसमें कांग्रेस-कार्य-कर्त्ताओं की प्रधानता थी। जबतक गांधीजी बिहार में रहे, उन्होंने पीड़ित नगरों और गांवों का दौरा किया, इस महान् संकट की शिकार जनता की दयनीय दशा को स्वयं देखा और नई बनी कमिटी को अपना कार्यक्रम स्थिर करने में सहायता की। उन्होंने अपने दक्ष कार्यकर्त्ताओं को भी घटनास्थल पर भेजा और उनकी सेवायें बिहार के अर्पण कर दीं। अब भी इस प्रान्त को जटिल और महान समस्याओं का सामना करना है जिसका

बाहर वालों को काफी ज्ञान नहीं है। (बिहार में जो सहायता-कार्य किया गया उसका प्रामाणिक वृत्तान्त परिशिष्ट नं० ९ में दिया गया है।)

अपना बिहार का दौरा समाप्त करने पर पं० जवाहरलाल एकबार फिर सरकार के कैदी बने। जब वे कलकत्ता गये थे, तो उन्होंने बंगाल की अवस्था और मिदनापुर जिले की हलचल के सम्बन्ध में दो भाषण दिये थे। बंगाल-सरकार आतंकवादियों का जिक्र, उनकी खुल्लमखुल्ला निन्दा को छोड़कर, और किसी रूप में, सुनने को तैयार न थी। पण्डित जवाहरलाल ने अपने स्पष्ट भाषणों में, आतंकवाद की मनोवृत्ति और उसका सामना करने के लिए अधिकारियों ने जो तरीका अपनाया था उसकी चर्चा की थी। बंगाल की नौकरशाही को यह सहन न हुआ। जबतक वे बिहार में मानवता के मिशन को पूरा करने में लगे रहे तबतक बंगाल-सरकार के औचित्य ने उसे उनपर हाथ डालने से रोक रक्खा; पर अभी वे अपने घर कठिनता से पहुंचे होंगे कि उनके लिए जेल का दरवाजा फिर खोल दिया गया। उनपर कलकत्ते के दो भाषणों के लिए मुकदमा चलाया गया और उन्हें दो वर्ष सादी कैद की सजा दी गई।

कौंसिल-प्रवेश का प्रोग्राम

जुलाई १९३३ की पूना-परिषद् के बाद से ऐसे कांग्रेसवादियों की संख्या में वृद्धि हो रही थी, जिनका यह विचार हो रहा था कि आर्डिनेन्स के शासन के कारण देश में जो अवस्था उत्पन्न हो गई है उसको ध्यान में रखकर इस 'निश्चेष्टा' से उद्धार पाने के लिए कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम अपनाना आवश्यक है। इस विचार ने संगठित रूप धारण किया और इस प्रकार के विचार रखनेवाले कांग्रेसी-नेताओं को एक परिषद् बुलाकर, एक नये कार्यक्रम को अपनाने की इच्छा को ठोस रूप देने का निश्चय किया गया। यह परिषद् दिल्ली में ३१ मार्च १९३३ को डॉ० अन्सारी की अध्यक्षता में हुई, जिसमें निश्चय किया गया कि जो स्वराज्य-पार्टी भंग कर दी गई है उसे दुबारा जीवित किया जाय, जिससे उन कांग्रेसवादियों को जो व्यक्तिगत सत्याग्रह नहीं कर रहे हैं, मतदाताओं को अच्छी तरह संगठित करने और गांधीजी के जुलाई १९३३ वाले पूना वक्तव्य के अनुसार कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करने का अवसर दिया जाय। इस परिषद् ने यह विचार भी प्रकट किया कि पार्टी के लिए बड़ी कौंसिल के आगामी निर्वाचनों में भाग लेना आवश्यक है। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए परिषद् ने निश्चित किया कि निर्वाचन दो लक्ष्यों को लेकर लड़े जायं—(१) सारे दमनकारी कानूनों को रद कराना और (२) व्हाइट-पेपर की योजनाओं को रद कराके उनका स्थान उन राष्ट्रीय मांगों को दिलाना जिनका जिक्र गांधीजी ने गोलमेज-परिषद् में किया था। परिषद् ने यह निश्चय करने के बाद गांधीजी के पास डॉ० अन्सारी, श्री भूलाभाई देसाई और डॉ० विधानचन्द्र राय का एक शिष्टमण्डल भेजा कि वह इन प्रस्तावों के विषय में उनसे बातचीत करे और उन्हें कार्य-रूप में परिणत करने से पहले उनके विचार जान ले।

इस अवसर पर गांधीजी बिहार के भूकम्प-पीड़ित स्थानों का दौरा कर रहे थे और संयोगवश अपना मौन-दिवस (२ अप्रैल, १९३४) सहरसा नामक एक एकान्त स्थान पर बिता रहे थे। यहींपर उन्होंने दिल्ली के हाल-चाल जाने बिना ही एक वक्तव्य तैयार किया, जिसे वे प्रेस में देना ही चाहते थे कि उनके पास डॉ० अन्सारी का सन्देशा आया कि कल दिल्ली-परिषद् ने एक शिष्ट-मण्डल नियुक्त किया है जो आपसे मिलने पटना आ रहा है। गांधीजी ने उस शिष्ट-मण्डल से बातचीत होने तक वह वक्तव्य रोक रक्खा और अन्त में अच्छी तरह बातचीत होने के बाद ७ तारीख को वह प्रका-

शित किया गया। वक्तव्य से पहले डॉ० अन्सारी के नाम लिखा गया पत्र प्रकाशित हुआ। हम वक्तव्य और—पत्र दोनों को नीचे देते हैं—

गांधीजी का पत्र (५ अप्रैल १९३४)

"कुछ कांग्रेसवादियों की निजी बैठक में जो प्रस्ताव निश्चित हुए थे, उनपर चर्चा करने और मेरी राय लेने के लिए आपने, भूलाभाई ने और डॉ० विधान ने पटना तक आकर अच्छा ही किया। आप मुझसे कहते हैं कि बड़ी कौंसिल शीघ्र ही भंग होनेवाली है। अतएव उसके आगामी निर्वाचन में भाग लेने और स्वराज्य-पार्टी को पुनरुज्जीवित करने के इस बैठक के निश्चय का मैं निःस्संकोच भाव से स्वागत करता हूं।

"वर्तमान अवस्था में कौंसिलों की उपयोगिता के सम्बन्ध में मेरे जो-कुछ विचार हैं वे जाने-बूझे हैं। वे अब भी लगभग वैसे ही हैं, । जैसे १९२० में थे। पर मैं यह अनुभव करता हूं कि जो कांग्रेसवादी किसी कारणवश सत्याग्रह में भाग नहीं लेना चाहता या नहीं ले सकता, और जिसकी कौंसिल-प्रवेश में आस्था है, उसके लिए न केवल यह उचित ही है, बल्कि कर्त्तव्य-रूप है कि वह उनमें प्रवेश करने की चेष्टा करे, और जिस कार्य-क्रम की पूर्ति को वह देश के हितों के लिए आवश्यक समझता है उसे अमल में लाने के उद्देश्य से दल बनाये। अपने इन विचारों के अनुसार पार्टी की सहायता के लिए जो-कुछ मेरी शक्ति में है वह करने के लिए मैं हमेशा तैयार हूं।"

गांधीजी का वक्तव्य (७ अप्रैल १९३४)

"मैंने इस वक्तव्य का मसविदा अपने मौन-दिवस में सहरसा नामक स्थान पर २ अप्रैल को ईस्टर-सोमवार के दिन तैयार किया था। मैंने इस मसविदे को बाबू राजेन्द्रप्रसाद को दे दिया और इसके बाद यह उपस्थित मित्रों को दिखाया जाता रहा। मूल में अब काफी परिवर्तन होगया है और अब यह पहले की अपेक्षा संक्षिप्त भी है। परन्तु सार-रूप में यह वैसा ही है जैसा कि सोमवार के दिन था। मुझे खेद है कि मैं इसे अपने सारे मित्रों और सहयोगियों को न दिखा सका; उनकी सलाह मिल जाने से मुझे बड़ा हर्ष होता। परन्तु मुझे अपने निश्चय के ठीक होने के सम्बन्ध में तनिक भी सन्देह नहीं था और मैं यह भी जानता था कि मेरे कुछ मित्र शीघ्र ही सत्याग्रह करना चाहते थे, इसलिए मैं अपने मित्रों की सलाह के लिए प्रतीक्षा करके इस वक्तव्य के प्रकाशन में विलम्ब करने को तैयार नहीं था। मेरा निश्चय और मेरे वक्तव्य का एक-एक शब्द गहन आत्म-चिन्तन, हृदय की टटोल और ईश्वर-प्रार्थना का परिणाम है। इस निश्चय का भाव किसी व्यक्ति-विशेष पर छींटे फेंकना नहीं है। यह तो मेरी मर्यादाओं की और उस महान् उत्तरदायित्व के बोध की, जिसे मैं इधर कई वर्षों से वहन करता आ रहा हूं, विनम्रता-पूर्ण स्वीकारोक्ति-मात्र है।

"इस वक्तव्य की प्रेरणा सत्याग्रह आश्रम के उन निवासियों के साथ की गई आपसी बात-चीत में प्राप्त हुई, जो हाल ही में जेल से छूटे थे और जिन्हें राजेन्द्र बाबू के कहने से मैंने विहार भेज दिया था। इस वक्तव्य का प्रधान कारण एक खबर थी, जो मुझे अपने एक बहुमूल्य साथी के संबंध में प्राप्त हुई और जिससे मेरी आंखें खुल गईं। वे जेल का काम पूरा करने के इच्छुक न थे और मिले हुए काम की अपेक्षा पुस्तकें पढ़ना अच्छा समझते थे। यह सब कुछ सत्याग्रह के नियमों के सर्वथा विरुद्ध था। इन्हें तो मैं पहले से भी अधिक स्नेह की दृष्टि से देखता हूं। पर इस बात से इनकी दुर्बलताओं से अधिक मुझे अपनी दुर्बलताओं का बोध हुआ। मित्र ने कहा कि उनकी यह धारणा थी कि मैं उनकी दुर्बलता को जानता हूं। पर मैं अन्धा था। नेता में अन्धापन एक अक्षम्य अपराध है। मैं फौरन जान गया कि फिलहाल मैं अकेला ही सक्रिय सत्याग्रही रहूंगा।

"गत जुलाई में पूना की एक सलाह की निजी बातचीत के दौरान में मैंने कहा था कि वैसे बहुत से व्यक्तिगत सत्याग्रही आगे बढ़ें तो अच्छी बात है, पर सत्याग्रह के संदेश को जागृत रखने के लिए एक सत्याग्रही भी काफी है। अब अच्छी तरह हृदय टटोलने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं, कि यदि सत्याग्रह को पूर्ण-स्वराज्य-प्राप्ति के साधन-स्वरूप सफल होना है तो फिलहाल अकेले मुझे ही, वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए, सत्याग्रह का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेना चाहिए।

"मैं अनुभव करता हूं कि जनता को सत्याग्रह का पूरा सन्देश नहीं मिला है, क्योंकि सन्देश उसतक पहुंचते-पहुंचते अशुद्ध हो जाता है। मुझे यह प्रतीत हो गया है कि आध्यात्मिक सन्देश पार्थिव माध्यम के द्वारा पहुंचाने से उसकी शक्ति कम हो जाती है। आध्यात्मिक संदेश तो स्वयं ही अपना प्रचार कर लेते हैं। मेरे कहने का जो तात्पर्य है, उसका जनता को प्रतिक्रिया के रूप में ज्वलन्त उदाहरण हरिजन-आन्दोलन-सम्बन्धी दौरे में अच्छी तरह मिला। जनता ने जो सुन्दर उत्तर दिया वह आत्म-प्रेरित था। स्वयं कार्यकर्ताओं को उस असंख्य जनता की, जिस तक वे पहुंचे तक न थे, उपस्थिति और उत्साह पर आश्चर्य हुआ।

"सत्याग्रह सोलह आने आध्यात्मिक अस्त्र है। इसका उपयोग पार्थिव दिखाई पड़ने वाले उद्देश्य के लिए भी हो सकता है, और इसका उपयोग उन स्त्री-पुरुषों के द्वारा भी हो सकता है जो इसकी आध्यात्मिक महत्ता को नहीं समझते, बशर्ते कि उन्हें बतानेवाला जानता हो कि अस्त्र आध्यात्मिक है। शल्य-चिकित्सा के हथियारों को चलाना सभी नहीं जानते, पर यदि कोई निपुण आदमी उनका उपयोग बताता रहे तो बहुत-से आदमी उनका उपयोग कर सकते हैं। मैं अपने तईं सत्याग्रह का विशेषज्ञ होने का दावा करता हूं। मुझे उस दक्ष सर्जन की अपेक्षा जो अपने हुनर का उस्ताद है, कहीं अधिक सावधानी से चलना है। मैं तो अभी एक विनम्र शोधक-मात्र हूं। सत्याग्रह का विज्ञान ही ऐसा है कि उसका विद्यार्थी अपने सामने के एक पग से अधिक नहीं देख सकता।

"आश्रम-निवासियों के साथ वार्तालाप करने के बाद मैंने अपने हृदय को टटोला और इसके बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि मुझे सारे कांग्रेसवादियों को स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्याग्रह करना बन्द करने की सलाह देनी चाहिए। हां, किन्हीं खास शिकायतों के लिए सत्याग्रह किया जाय तो बात दूसरी है। उन्हें इस प्रकार का सत्याग्रह मेरे ऊपर छोड़ देना चाहिए। जब तक कोई ऐसा व्यक्ति आगे न बढ़े जो इस विज्ञान को मुझसे भी अधिक अच्छी तरह जानता हो और जिसपर जनता विश्वास करती हो, तबतक दूसरों को इस सत्याग्रह को मेरे जीवन-काल में केवल मेरी ही देख-रेख में आरम्भ करना चाहिए। मैं यह सम्मति सत्याग्रह के प्रणेता और आरम्भ-कर्त्ता की हैसियत से देता हूं। इसलिए आयन्दा से वे सब लोग जो मेरे प्रत्यक्ष दिए गये या अप्रत्यक्ष रूप से समझे गये परामर्श के अनुसार स्वराज्य-प्राप्ति के लिए सत्याग्रह करने को प्रेरित हुए हों, कृपा करके सत्याग्रह करने से रुकें। इस बात का मुझे पूरा विश्वास है कि भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध के लिए यही सबसे अच्छा मार्ग है।

"मेरा सच्चे दिल से यह विश्वास है कि मानव-जाति के पास, अपने कष्ट-निवारण के लिए यह सबसे बड़ा हथियार है। सत्याग्रह के सम्बन्ध में मेरा यह दावा है कि यह हिंसा या युद्ध का पूर्ण स्थान ले सकता है। इसलिए यह 'आतंकवादी' कहलानेवाले व्यक्तियों के, और उस सरकार के जो देश को पौरुष-हीन करके 'आतंकवादियों का बीज-नाश करना चाहती है', हृदयों तक पहुंच सकता है। परन्तु अनेक व्यक्तियों के जैसे-तैसे किये सत्याग्रह का परिणाम चाहे कितना ही बड़ा रहा हो, पर वह न 'आतंकवादियों' के ही हृदयों तक पहुंच सका, न शासकवर्ग के ही हृदयों तक। शुद्ध सत्याग्रह का दोनों हृदयों तक पहुंचना अनिवार्य है। इस तथ्य की सत्यता की जांच करने के लिए सत्याग्रह एक

समय में एक ही आदमी तक सीमित रहना चाहिए। यह आजमाइश पहले कभी नहीं की गई थी, अब करनी चाहिए।

"मैं पाठकों को सावधान करना चाहता हूं कि वे सत्याग्रह को निष्क्रिय-प्रतिरोध-मात्र न समझ लें। सत्याग्रह निष्क्रिय-प्रतिरोध की अपेक्षा कहीं व्यापक चीज है। सत्याग्रह सत्य की खोज है, और इस खोज के द्वारा जो शक्ति प्राप्त होती है उसका उपयोग पूर्ण अहिंसात्मक साधनों के द्वारा ही हो सकता है।

"पर इससे मुक्त होने के बाद सत्याग्रही क्या करें? यदि उन्हें फिर कभी आह्वान होते ही आगे बढ़ने के लिए तैयार होना है, तो उन्हें आत्म-त्याग और स्वेच्छापूर्वक ग्रहण की गई दरिद्रता की कला और सुन्दरता को समझना होगा। उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में लगना चाहिए। उन्हें स्वयं हाथ से कात-बुनकर खद्दर का प्रचार करना चाहिए। उन्हें जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में एक-दूसरे के साथ निर्दोष सम्पर्क स्थापित करके लोगों के हृदयों में साम्प्रदायिक ऐक्य का बीज बो देना चाहिए। स्वयं अपने उदाहरण के द्वारा अस्पृश्यता का प्रत्येक रूप में निवारण करना चाहिए और नशेबाजों के साथ सम्पर्क स्थापित करके और अपने आचरण को पवित्र रखकर मादक-द्रव्य के त्याग का प्रसार करना चाहिए। ये सेवायें हैं जिनके द्वारा गरीबों की तरह निर्वाह हो सकता है। जो लोग दरिद्र आदमी की भांति न रह सकते हों, उन्हें किसी छोटे राष्ट्रीय धंधे में पड़ जाना चाहिए, जिससे वेतन मिल जाय। यह बात समझ लेनी चाहिए कि सत्याग्रह उन्हीं के लिए है जो स्वेच्छा से कानून और अधिकार के आगे सिर झुकाना जानते हों, और झुकाते हों।

"यह कहना आवश्यक है कि इस वक्तव्य को प्रकाशित कराके किसी प्रकार मैं कांग्रेस के अधिकार में दस्तन्दाजी नहीं कर रहा हूं। मैं तो केवल उन लोगों को परामर्श मात्र दे रहा हूं जो सत्याग्रह के मामले में मेरा पथ-प्रदर्शन चाहते हों।"

डॉ० अन्सारी ने भी इसी अवसर पर एक वक्तव्य प्रकाशित करके यह स्पष्ट कर दिया कि गांधीजी ने अपनी हार्दिक और स्वतः दी हुई सहायता के द्वारा कांग्रेस में विरोध और भेदभाव की आशंका को दूर कर दिया है। अब कौंसिलों के भीतर और बाहर रहकर दुहरा युद्ध किया जायगा, जिससे शिक्षित समाज और जनता की राजनैतिक निष्क्रियता और अन्तःकुपित असंतोष दूर होजाय।

१९२४ की २ और ३ मई को रांची में एक बैठक स्वराज्य-पार्टी को शक्तिशाली और सजीव संस्था का रूप देने के मुख्य उद्देश्य से की गई। इसका एक हेतु यह भी था कि गांधीजी उस पर अपनी मुहर लगा दें। इस बैठक का पहला प्रभाव दिल्ली-परिषद् के उन प्रस्तावों का अनुमोदन था, जिनके द्वारा स्वराज्य पार्टी को जन्म दिया गया था और व्हाइट-पेपर अस्वीकार करने और राष्ट्रीय मांग तैयार करने के निमित्त विधान-कारणी सभा (कांस्टिट्यूएंट असेम्बली) बुलाने और दमनकारी कानूनों को रद कराने के उद्देश्य से बड़ी कौंसिल के आगामी निर्वाचन में अपने उम्मीदवार खड़े करने का निश्चय किया गया था। इसके बाद स्वराज्य-पार्टी की संशोधित-नियमावली को अपनाया गया। इस निश्चय के अनुसार अब स्वराज्य-पार्टी अपनी आन्तरिक व्यवस्था और आय-व्यय के मामले में कांग्रेस की सलाह लेने को बाध्य न थी। किन्तु यह बात स्पष्टरूप से तय हुई कि तमाम नीति-सम्बन्धी व्यापक प्रश्नों पर उसे कांग्रेस के बताये पथ पर चलना चाहिए।

३ मई १९२४ को रांची-परिषद् ने स्वराज्य-पार्टी का जो कार्य-क्रम निश्चित किया उसमें उन सारे कानूनों और विशेष विधानों को, जो राष्ट्र की समुन्नति और पूर्ण-स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में बाधक हों, रद कराने की बात रक्खी गई। इस कार्य-क्रम के अनुसार सारे राजनैतिक कैदियों की रिहाई

कराना, उन सारे कानूनों और प्रस्तावों का मुकाबला करना जो देश का शोषण करने वाले हों, ग्राम-संघटन करना, मजदूर-सम्बन्धी, मुद्रा-व्यवस्था, विनिमय, कृषि आदि के मामलों में सुधार करवाना और अन्त में कांग्रेस का रचनात्मक कार्यक्रम पूरा करना कर्त्तव्य माना गया।

इन सब विषयों पर १८ और १९ मई १९३४ को पटना में महासमिति की बैठक में चर्चा हुई। यहां यह बात भी कह देना जरूरी है कि कांग्रेस की महासमिति ही एक मात्र ऐसी संस्था थी, जो सरकार-द्वारा गैरक़ानूनी करार नहीं दी गई थी। गांधीजी की सिफारिश के अनुसार सत्याग्रह बन्द कर दिया गया और स्वराज्य-पार्टी के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया—

"चूंकि कांग्रेस में ऐसे सदस्यों की संख्या बहुत काफी है जो देश की लक्ष्य-सिद्धि के मार्ग में कौंसिल-प्रवेश को आवश्यक समझते हैं, इसलिए महासमिति पण्डित मदनमोहन मालवीय और डॉ० अन्सारी को एक बोर्ड बनाने के लिए नियुक्त करती है। इस बोर्ड का नाम होगा पार्लमेण्टरी-बोर्ड, और इसके प्रधान होंगे डॉ० अन्सारी। इसमें २५ से अधिक कांग्रेसवादी न रहेंगे।

"यह बोर्ड कांग्रेस की ओर से कौंसिलों के निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खड़े करेगा और इसे अपना काम पूरा करने, चन्दा एकत्र करने, रखने और खर्च करने का अधिकार रहेगा।

"यह बोर्ड महासमिति के शासन के अधीन रहेगा। इसे अपना विधान तैयार करने और अपना काम-क़ाज दुरुस्त रखने के लिए नियम-उपनियम तैयार करने का अधिकार रहेगा। यह विधान और नियम-उपनियम कार्य-समिति के सामने स्वीकृति के लिए रक्खे जायंगे, लेकिन कार्य-समिति की स्वीकृति मिल जाने की आशा पर काम में ले लिये जायंगे। बोर्ड केवल उन्हीं उम्मीदवारों को चुनेगा जो कौंसिलों में कांग्रेस की नीति का, जिसे समय-समय पर निश्चित किया जायगा, पालन करने की प्रतिज्ञा लेंगे।"

३

अवसर की खोज में

सबकी इच्छा कांग्रेस का अधिवेशन जल्दी ही कर डालने की थी, इसलिए निश्चित हुआ कि कांग्रेस का आगामी साधारण अधिवेशन बम्बई में अक्तूबर १९३४ के अन्तिम सप्ताह में हो।

महासमिति की बैठक के आगे-पीछे कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक भी १८, १९ और २० मई को पटना में हुई थी। उसने सत्याग्रह की मौकूफी और कौंसिल-प्रवेश के सम्बन्ध में सिफारिशें कीं, जिन्हें जैसा कि कहा जा चुका है, महासमिति ने स्वीकार कर लिया। कार्यसमिति ने, महासमिति के सत्याग्रह-बन्दी के निश्चय के अनुसार, सारे कांग्रेसवादियों को उसका पालन करनेका आदेश दिया। देश-भर के कांग्रेसवादियोंने इस निश्चय का पालन किया और २० मई १९३४ को सत्याग्रह बन्द कर दिया गया। साथ ही कार्य-समिति ने जुलाई १९३३ (पूना) में कार्यवाहक-अध्यक्ष-द्वारा दिये आदेश का संशोधन करते हुए, सारे कांग्रेस-वादियों को आदेश दिया कि कांग्रेस का काम चालू करने के लिए कांग्रेस-कमिटियों का संगठन किया जाय। कार्य-समिति ने प्रमुख कांग्रेसवादियों को अपनी ओर से पूर्ण अधिकार देकर विभिन्न प्रान्तों में कांग्रेस के पुनस्संगठन के काम में मदद देने के लिए नियुक्त किया। सत्याग्रह-बन्दी के साथ ही कार्यवाहक-अध्यक्ष का पद स्वभावतः ही उठा दिया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष सरदार पटेल इस समय जेल में थे, इसलिए उनकी अनुपस्थिति में सेठ जमनालाल बजाज कार्य-समिति के सभापति बनाये गये, कांग्रेस के नये अधिवेशन तक उन्हें कांग्रेस के अध्यक्ष की हैसियत से सारा काम चलाने का अधिकार दिया गया।

पटना में इन निश्चयों तक आसानी से पहुंचा गया हो सो बात नहीं। एक ओर ऐसे बहुसंख्यक कांग्रेसवादी थे जो अब भी पुराने कार्यक्रम पर अड़े हुए थे और जो कौंसिल के कार्य के प्रति अपनी अरुचि छिपाने की चेष्टा न करते थे। दूसरी ओर समाजवादी-दल था जिसकी शक्ति धीरे-धीरे बढ़ रही थी। यह दल गांधीजी के आदर्शों को स्वीकार करने में तो कांग्रेस के साथ न था, किन्तु कौंसिल-प्रवेश के सर्वथा विरुद्ध था। पर गांधीजी उठे, या यों कहना चाहिए कि बैठे और बोले, तो सारा विरोध बात-की-बात में काफूर हो गया।

गांधीजी हरिजन-आन्दोलन के बारे में उड़ीसा का भ्रमण पैदल कर रहे थे। वे पैदल चलने का नया प्रयोग कर रहे थे। वे पटना गये तो, पर उनका हृदय हरिजन-कार्य में ही रम रहा था। इसलिए उन्हें अपने-आपको उस कार्य से चेष्टा करके अलग करना पड़ा था। इसमें सन्देह नहीं कि दौरा करने के इस नये तरीके ने उनके सफर का क्षेत्र बहुत कम कर दिया, और संयोगवश उससे चन्दे की रकम में भी कमी हुई। पर उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा था कि रेल और मोटर से सफर के अर्थ ये होंगे कि वह चन्दा इकट्ठा करने का यंत्र-मात्र रह जायं। यहां तक मन्सूबा बांधा जा रहा था कि इन्हें युक्तप्रान्त का दौरा हवाई-जहाज-द्वारा कराया जाय। यह सब उनकी रुचि के विपरीत था।

उन्होंने पैदल चलने का नया प्रयोग आरम्भ कर दिया था और इसे जारी रखना था। पर पटना ने खलल डाल दिया। किन्तु उन्हें इसपर कोई रोष न था। अपने ७ अप्रैल १९३४ वाले वक्तव्य के द्वारा उन्होंनें इस खलल को निमन्त्रण दिया था। अब उन्हें इसकी पूर्ति करनी थी। उन्हें सत्याग्रह बन्द करके तत्सम्बन्धी सारे अधिकार अपने पास रखने पड़े। उन्होंने १९३० की फरवरी में भी इसी प्रकार, कार्य-समिति के प्रस्ताव के अन्तर्गत, जिसके द्वारा उन्हें नमक-सत्याग्रह आरम्भ करने का अधिकार मिला था, सत्याग्रह आरम्भ किया था। जिस प्रकार आन्दोलन का आरम्भ हुआ था, उसी प्रकार उसका अन्त भी हो गया। गांधीजी ने एकबार फिर पटना में महासमिति के सामने दो भाषणों में अपनी आत्मा खोलकर रख दी थी।

मई १९३४ में भारत में समाजवादी-दल का जन्म हुआ। १७ मई १९३४ को इसका पहला अखिल-भारतीय अधिवेशन पटना में आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में कौंसिल-प्रवेश और सूती मिलों की हड़ताल के सम्बन्ध में कार्रवाई करने के बाद यह निश्चय किया गया कि कांग्रेस के भीतर एक अखिल-भारतीय समाजवादी संस्था कायम करने का समय आ गया है। एक मसविदा कमिटी नियुक्त की गई, जिसके जिम्मे उक्त संस्था के योग्य कार्यक्रम और विधान तैयार करके बम्बई-अधिवेशन के सामने पेश करने का काम किया गया। पटना की बैठक के बाद से समाज वादी-दल की शाखायें अनेक प्रान्तों में कायम हो गई हैं।

पटना के निश्चय के बाद ही कांग्रेस के कार्य का क्षेत्र बदल गया। सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द हुआ और कौंसिल-प्रवेश का कार्यक्रम आरम्भ हुआ। अब केवल गांधीजी ही सत्याग्रह करने के लिए रह गये। गांधीजी ने उत्कल में हरिजन-आन्दोलन के सम्बन्ध में दौरा फिर जारी कर दिया और इसके बाद युक्तप्रान्त की बारी आई। गांधीजी ने राजनैतिक कार्यों में भाग न लेने के सम्बन्ध में अपने लिए जो अवधि कायम की थी, उसका भी अन्त आ रहा था। यदि गांधीजी का अनशन सरकार को उन्हें मियाद से पहले ही छोड़ने को बाध्य न करता तो वे ४ अगस्त को छोड़े जाते। लोग-बाग इस तर्क-वितर्क में पड़े थे कि गांधीजी अवधि समाप्त होने के बाद क्या करेंगे? भारत-सरकार ने उन्हें सीमांत-प्रदेश में जाने की अनुमति न दी थी, तो क्या वे सरकारी निषेधाज्ञा की अवहेलना करके वहां जायंगे और इस प्रकार एक नई समस्या खड़ी कर देंगे? नहीं तो उन्होंने व्यक्तिगत सत्याग्रह करने का अधिकार अपने तक सीमित क्यों रक्खा? परन्तु जब उन्होंने देश को निर्वाचन के लिए उम्मीदवार खड़े करने की इजाजत दे दी है, तो क्या वे अब जेल का आह्वान करके देश को शोक और असमंजस के गर्त में गिरा देंगे? यह बात तो समझ में नहीं बैठती; यह गांधीजी के योग्य नहीं, पर गांधीजी चाहे जो करें या न करें, कौन निर्वाचनों के लिए खड़ा होता है और कौन नहीं। कांग्रेसवादियों के लिए देश में काफी बुनियादी काम पड़ा था। १९३२ के आरम्भ में महासमिति को छोड़कर कांग्रेस को और उससे सम्बद्ध लगभग सारी संस्थाओं को गैरकानूनी करार दे दिया गया था। सरकार ने कांग्रेस की संस्थाओं पर से प्रतिबन्ध उठाने की कारंवाई शीघ्र की, और १९३४ की १२ जून को अधिकांश पर से प्रतिबन्ध उठ गया। हां, सीमान्त-प्रदेश और बंगाल की कांग्रेस-समस्यायें और उनसे संलग्न अन्य संस्थायें—जैसे हिन्दुस्तानी सेवादल—उसी प्रकार गैरकानूनी रहीं। कुछ प्रान्तों में सरकार ने उन इमारतों पर अपना कब्जा बनाये रक्खा जिनका सम्बन्ध, उसकी राय में, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सत्याग्रह से था। इसमें से कुछ इमारतें तो १९३५ के मध्य तक वापस नहीं दी गईं। सरकार ने यह भी घोषणा की कि उसकी नीति सत्याग्रही कैदियों को शीघ्र छोड़ने की है, पर तो भी अनेक कैदी, विशेषकर गुजरात के कैदी, जेलों में ही रहे। कई कांग्रेसवादी, यद्यपि वे अपनी सारी आयु-भर ब्रिटिश

भारत में ही रहे तो भी, ब्रिटिश-भारत में वापस नहीं आ सके, और अब देशी-राज्यों में एक प्रकार से नजरबन्द पड़े हैं। देश के विभिन्न स्थानों में उन अनेक व्यक्तियों को, जिनका सम्बन्ध सत्याग्रह से रह चुका था और जो विदेशों में अपने वैध काम-काज के सम्बन्ध में जाना चाहते थे, पासपोर्ट नहीं दिया गया। अस्तु।

पटना के निश्चय के बाद ही से देश-भर के कांग्रेसवादियों ने कांग्रेस-कमिटियों का पुनस्संगठन आरम्भ कर दिया था, और जून लगते-लगते प्रान्तों में कांग्रेस-कमिटियां १९३२ के पहले की भांति काम करने लगीं। तदनुसार कार्य-समिति की बैठक १२-१३ जून को वर्धा में और १७-१८ जून को बम्बई में हुई। इन बैठकों में नव-संगठित कांग्रेस-कमिटियों के लिए एक रचनात्मक कार्यक्रम तैयार किया गया, जिसकी मुख्य-मुख्य बातें इस प्रकार हैं—

हाथ से कातकर खद्दर तैयार करना और खद्दर तैयार करने वाले इलाके में उसका प्रसार करना, अस्पृश्यता-निवारण, साम्प्रदायिक एकता, मादक-द्रव्य-सेवन के त्याग और नशीली वस्तुओं से दूर रहने का प्रचार करना, राष्ट्रीय ढंग की शिक्षा की वृद्धि, छोटे-छोटे उपयोगी उद्योग-धन्धों की वृद्धि, ग्राम्य-जीवन का आर्थिक, शिक्षण, सामाजिक और आरोग्य सम्बन्धी दृष्टि से पुनस्सङ्गठन करना, वयस्क गांववालों में उपयोगी ज्ञान का प्रसार करना, और मजदूरों का संगठन आदि ऐसे कार्य करना जो कांग्रेस के उद्देश्यों या सामान्य नीति के विरुद्ध न हों, और जो किसी प्रकार के सत्याग्रह का रूप भी धारण न करते हों। कार्य-समिति ने सरकार का ध्यान उसकी उस विज्ञप्ति की असंगति की ओर दिलाया, जिसके अनुसार कांग्रेस-संस्थाओं पर से प्रतिबन्ध उठा लिया गया था; और कहा कि यद्यपि कांग्रेस की अन्य संस्थाओं को कानूनी मान लिया गया है, पर खुदाई-खिदमतगारों पर, जो १९३१ से कांग्रेस के ही अंग हैं, उसी प्रकार प्रतिबन्ध लगा हुआ है। सरकार ने इस असंगति से तो नहीं पर, खुदाई खिदमतगारों और अफगान जिरगे के विरुद्ध जारी की गई निषेधाज्ञा को वापस लेने से इन्कार कर दिया।

कार्य-समिति की बम्बई वाली बैठक के सामने एक और भी महत्वपूर्ण प्रश्न आया। वह यह था कि ह्वाइट-पेपर की योजना और साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस की क्या नीति होनी चाहिए? कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने कार्य-समिति से इस मामले में अपनी नीति स्पष्ट करने का अनुरोध किया था, इसलिए उसने इस विषय पर प्रस्ताव पास किया, जिसे सब जानते हैं। इस प्रस्ताव के पास होने के पहले सदस्यों में वाद-विवाद हुआ, जिसके दौरान में स्पष्ट हो गया कि एक ओर पण्डित मदन-मोहन मालवीय और श्री अणे के दृष्टिकोण में और दूसरी ओर कार्य-समिति के दृष्टिकोण में मौलिक भेद है। पण्डित मदनमोहन मालवीय और श्रीअणे ने अनुभव किया है कि यह मतभेद होते हुए वे न पार्लमेण्टरी-बोर्ड से और न कार्य-समिति से ही अपना सम्बन्ध बनाये रख सकते हैं; इसलिए उन्होंने अपने इस्तीफे दाखिल कर दिये। पर आशा की गई कि अच्छी तरह बातचीत करने के बाद सम्भव है यह नौबत न आवे, इसलिए उनके सहयोगियों ने उन्हें इस्तीफे वापस लेनेको राजी कर लिया।

ह्वाइट-पेपर के सम्बन्ध में कार्य-समिति का प्रस्ताव इस प्रकार था—

"ह्वाइट-पेपर से भारतीय लोकमत बिलकुल प्रकट नहीं होता और भारत के राजनैतिक दलों ने इसकी कमोबेश निन्दा की है, और यदि यह कांग्रेस को अपने लक्ष्य से पीछे नहीं हटाता है तो उससे कोसों दूर अवश्य है। ह्वाइट-पेपर के स्थान पर एकमात्र सन्तोषजनक वस्तु वह शासन-व्यवस्था हो सकती है जिसे वयस्क-मताधिकार या उससे मिलते-जुलते साधन-द्वारा निर्वाचित विधान-कारिणी सभा

बनाये। हां, यदि आवश्यक हो तो महत्वपूर्ण अल्प-संख्यक जातियों को अपने प्रतिनिधि खासतौर से चुनकर भेजने का अधिकार रहेगा।

"व्हाइट-पेपर खारिज होने पर साम्प्रदायिक निर्णय भी स्वतः ही खारिज हो जायगा। अन्य बातों के साथ ही-साथ, विधानकारिणी सभा का यह भी कर्तव्य होगा कि वह महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व का उपाय स्थिर करे और आमतौर से उनके हितों की रक्षा का प्रबन्ध करे।

"पर चूंकि साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न पर देश की विभिन्न जातियों में गहरा मतभेद है, इसलिए इस सम्बन्ध में कांग्रेस का रुख प्रकट करना आवश्यक है। कांग्रेस का दावा है कि वह भारतीय राष्ट्र की सारी जातियों की प्रतिनिधि संस्था है, इसलिए वर्तमान मतभेद के रहते हुए, उस समय तक साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार कर सकती है न अस्वीकार, जबतक कि यह मतभेद मौजूद है। साथ ही यह भी आवश्यक है कि साम्प्रदायिक प्रश्न पर कांग्रेस की नीति फिर से घोषित कर दी जाय।

"साम्प्रदायिक समस्या का कोई भी हल, जबतक वह पूर्णतया राष्ट्रीय न हो, कांग्रेस-द्वारा निर्धारित नहीं किया जा सकता। पर कांग्रेस वचन दे चुकी है कि वह ऐसा कोई भी हल जो राष्ट्रीयता की तराजू पर पूरा न उतरता हो पर जिसपर सारे सम्बन्धित दल सहमत हो गये हों, स्वीकार कर लेगी, और इसके विपरीत उस हल को अस्वीकार कर देगी जिसपर उनमें से दल-विशेष सहमत न हुआ हो।

"राष्ट्रीय तराजू पर तौलने पर साम्प्रदायिक निश्चय बिलकुल असन्तोषजनक पाया गया है, और उसमें इसके अलावा अन्य दृष्टिकोण से भी घोर आपत्तिजनक बातें मौजूद हैं।

"परन्तु यह स्पष्ट है कि साम्प्रदायिक निश्चय के बुरे परिणाम को रोकने का एकमात्र मार्ग आपस में समझौता करने के उपाय खोज निकालना है, न कि इस घरेलू मामले में ब्रिटिश सरकार या किसी और बाहरी शक्ति से अपील करना।"

सत्याग्रह की बन्दी के कारण सरकार ने सत्याग्रहियों को गिला-गुजारी करते हुए धीरे-धीरे छोड़ना आरम्भ कर तो दिया था, पर यह स्पष्ट था कि सरदार वल्लभभाई पटेल, पण्डित जवाहरलाल और खान अब्दुलगफ्फारखां को रिहा न करने का उसने निश्चय कर लिया था। इनमें दो को, सरदार पटेल और खान अब्दुलगफ्फारखां को, जेल में अनिश्चित समय के लिए बन्द कर रक्खा था। उन्हें १९३२ की शुरुआत में ही विशेष कानून के उपयोग के द्वारा पकड़ लिया गया था, और सरकार जबतक चाहती उन्हें शाही कैदी की हैसियत से जेल में रख सकती थी। पर ऐसी परिस्थिति आ पड़ी कि सरकार को विवश होना पड़ा। सरदार वल्लभभाई पटेल को नाक का पुराना रोग था, जो इधर बहुत बढ़ गया और जुलाई लगते लगते रोग ने बड़ी भयङ्कर अवस्था धारण कर ली। सरकार-द्वारा नियुक्त किये गये मेडिकल-बोर्ड ने बताया कि आपरेशन होना जरूरी है और आपरेशन तभी अच्छी तरह हो सकेगा जब वे स्वतन्त्र होंगे। फलतः सरकार ने उन्हें १४ जुलाई १९३४ को छोड़ दिया।

२७ से ३० जुलाई तक बनारस में कार्य-समिति की बैठक फिर हुई, जिसके दौरान में पं० मदनमोहन मालवीय और श्री अणे के साथ बातचीत फिर आरम्भ हुई। कार्य-समिति मालवीयजी और श्री अणे का सहयोग प्राप्त करने के लिए साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार और न अस्वीकार करने की मौलिक नीति को नहीं छोड़ सकती थी। इस कारण पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कांग्रेस पार्लमेण्टरी-बोर्ड के सभापति-पद से इस्तीफा दे दिया और श्री अणे ने पार्लमेण्टरी बोर्ड और कार्य समिति की सदस्यता को त्याग दिया। बंगाल को भी शिकायत थी कि हरिजनों को अतिरिक्त जगहें क्यों दी गईं? इस प्रकार बंगाल का रुख कार्य-समिति के साम्प्रदायिक निर्णय वाले मामले के विरुद्ध नहीं था, बल्कि पूनापैक्ट के विरुद्ध भी था।

स्वदेशी के सम्बन्ध में कांग्रेस की जो नीति थी, उस पर लोगों में संशय उत्पन्न हो रहा था। कार्य-समिति ने अपनी इसी बैठक में कांग्रेस की स्वदेशी-सम्बन्धी स्थिति को भी पुष्ट कर दिया और निम्न-लिखित असन्दिग्ध शब्दों में उसकी नीति निर्धारित कर दी—

"स्वदेशी के सम्बन्ध में कांग्रेस की क्या नीति है, इस सम्बन्ध में संशय उत्पन्न होगया है, इसलिए इस विषय में कांग्रेस की स्थिति को असन्दिग्ध शब्दों में प्रकट करना आवश्यक है।

"सत्याग्रह के दिनों में जो हुआ सो हुआ, पर वैसे कांग्रेस मंच पर और कांग्रेस-प्रदर्शिनियों में मिल के कपड़े और खद्दर के बीच में प्रतिद्वन्द्विता की गुन्जाइश नहीं है। कांग्रेस-वादियों को केवल हाथ से कते और हाथ से बुने खद्दर को ही प्रोत्साहन देना चाहिए।

"कपड़े के अलावा अन्य पदार्थों के सम्बन्ध में कार्य-समिति कांग्रेस-संस्थाओं के पथ-प्रदर्शन के लिए निम्न-लिखित तजवीज को मंजूर करती है—

"कार्य-समिति की सम्मति में कांग्रेस के स्वदेशी-सम्बन्धी कार्य उन्हीं उपयोगी चीजों तक सीमित रहेंगे जो भारत में घरेलू और अन्य धन्धों द्वारा तैयार की जाती हों, जिन्हें अपनी सहायता के लिए लोक-शिक्षा की आवश्यकता हो, और जो मूल्य स्थिर करने, वेतन और मजदूरों की भलाई के मामले में कांग्रेस का पथ-प्रदर्शन स्वीकार करने को तैयार हों।

"इस योजना का यह अर्थ नहीं लगाना चाहिए कि देश में स्वदेशी वस्तुओं के प्रति प्रेम और केवल स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करने का भाव उत्पन्न करने की कांग्रेस की अबाध नीति में किसी प्रकार का अंतर आ गया है। यह तजवीज तो इस बात को प्रकट करती है कि बड़े और संगठित धन्धों को, जिन्हें सरकारी सहायता प्राप्त है या हो सकती है, न किसी कांग्रेस-संस्था की सहायता की और न कांग्रेस की ओर से किसी और ही प्रयत्न की दरकार है।"

कांग्रेस के पदाधिकारियों में अनुशासन की आवश्यकता के प्रश्न पर कार्य-समिति की यह राय हुई कि "सारे कांग्रेसवादियों से, चाहे वे कांग्रेस के कार्यक्रम और नीति में विश्वास रखते हों या न रखते हों, आशा की जाती है और सारे पदाधिकारियों और कार्यकारिणियों के सदस्यों का कर्तव्य हो जाता है कि उक्त कार्यक्रम और नीति पर अमल करें और कार्यकारिणी के जो पदाधिकारी और सदस्य कांग्रेस के कार्यक्रम या नीति के विरुद्ध प्रचार करेंगे या उनके विरुद्ध आचरण करेंगे, वे २४ मई १९२९ को बनाये गये महासमिति के नियमों के अनुसार कांग्रेस-व्यवस्था की ३१ वीं धारा के अन्तर्गत अनुशासन का भंग करने के अपराधी माने जायंगे और इसके लिए उनके खिलाफ जाब्ता कार्रवाई की जायगी।"

अपने-अपने त्याग-पत्र देने के बाद मालवीयजी और श्री अणे ने १८ और १९ अगस्त को कलकत्ते में कांग्रेसियों और अन्य सज्जनों की एक परिषद् की। इस परिषद् के सभापति मालवीयजी थे। इस परिषद् ने निश्चय किया कि कौंसिलों के भीतर और बाहर साम्प्रदायिक 'निर्णय' और व्हाइट-पेपर के विरुद्ध आन्दोलन करने के लिए पार्टी बनाई जाय, जिसकी ओर से इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बड़ी कौंसिल के उम्मीदवार खड़े किये जायं। परिषद् ने वे सिद्धान्त स्थिर किये जिनके अनुरूप पार्टी के उम्मीदवार चुने जायं, और व्हाइट-पेपर और साम्प्रदायिक 'निर्णय' की निन्दा के बाद कार्य-समिति से अनुरोध किया कि वह साम्प्रदायिक 'निर्णय'-सम्बन्धी अपने प्रस्ताव के संशोधन के लिए महासमिति की बैठक बुलाये।

सत्याग्रह-बन्दी के बाद भी सरकार ने दमन-नीति जारी रक्खी थी। खान अब्दुलगफ्फारखां को जेल में बन्द रखने से लोकमत बहुत रुष्ट हो गया था। सीमान्त-प्रदेश उन प्रान्तों में से था

जिन्होंने १९२० के और १९३२-३४ के युद्ध में पूरा मोर्चा लिया था। युद्धप्रिय पठानों के अहिंसा व्रत की बड़ी परीक्षा हुई, पर उन्होंने सन्तोषपूर्वक कष्ट सहे। सीमान्त-प्रदेश के प्रतिनिधि गर्व के साथ यह दावा करते हैं कि यद्यपि उन्हें ऐसे उत्तेजन दिये गये जो उस प्रान्त की मध्यकालीन और निरंकुश प्रणाली के द्वारा ही सम्भव हो सकते थे, पर उन्होंने अहिंसा का मार्ग कभी न छोड़ा। इसलिए देश में यहां से वहां तक लोगों का दिल यही कहता था कि उस प्रान्त के नेता को जेल में बन्द रखना अन्यायपूर्ण है। सीमान्त-प्रदेश के प्रश्न पर गांधीजी बड़े चिन्तित थे और वे यही विचार करने में लगे हुए थे कि उस प्रान्त के सम्बन्ध में सारी बातें स्वयं जानने की समस्या को कैसे सुलझायें ? इसलिए जब अगस्त के अन्तिम सप्ताह में अचानक खान अब्दुलगफ्फारखां और उनके भाई डॉ० खानसाहब को छोड़ दिया गया तो जनता को बड़ी तसल्ली हुई। पर मुक्त होने पर भी उन्हें अपने प्रांत और अपने घर जाने की इजाजत न थी। सरकार ने उन्हें छोड़ तो दिया, पर सीमान्त-प्रदेश में उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया, यद्यपि सीमान्त-प्रदेश ने भी सत्याग्रह-बन्दी के आदेश का यथावत् पालन किया था।

कार्य-समिति की बैठक २५ सितम्बर को वर्धा में हुई। इस अवसर पर लक्ष्य और लक्ष्य-प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति को दोहराया गया। बात यह थी कि कुछ कांग्रेस-वादियों और अन्य सज्जनों को संशय होने लगा था कि पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य को अब भुलाया जा रहा है। इसलिए एक प्रकार से करांची-कांग्रेस की स्थिति को दोहराया गया। 'आगामी निर्वाचनों' के सम्बन्ध में कार्य-समिति ने सारी प्रान्तीय और मातहत कांग्रेस-संस्थाओं को आज्ञा दी कि वे निर्वाचन-सम्बन्धी कार्य में पार्लमेण्टरी-बोर्ड को सहायता देना अपना कर्तव्य समझें। कार्य-समिति ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि जो दल या व्यक्ति कांग्रेस की नीति के विरुद्ध हो उसे सहायता न दी जाय, और जिसकी आत्मा गवाही न देती हो उसे छोड़कर हरेक कांग्रेसवादी से आशा की कि वह आगामी निर्वाचनों में कांग्रेसी उम्मीदवारों की सहायता करेगा। एक दूसरे प्रस्ताव में जंजीबार के भारतीयों का और उन्हें उनके न्याय भू-स्वत्व से वंचित किये जाने की कार्रवाई-सम्बन्धी कष्टों का जिक्र किया गया। श्री अणे के नये दल के कारण विकट अवस्था उत्पन्न हो गई। इस दल ने एक प्रस्ताव पास करके कार्य-समिति से यह अनुरोध किया था कि महासमिति की बैठक बुलाई जाय, जिसमें कार्य-समिति के साम्प्रदायिक 'निर्णय' वाले प्रस्ताव पर विचार किया जाय। सभापति ने पण्डित मालवीय और श्री अणे को स्वयं आकर अपने विचार पेश करने के लिए आमंत्रित किया। कार्य-समिति ने महासमिति की बैठक बुलाने के प्रश्न पर कई घण्टे तक विचार किया और अन्त में इस नतीजे पर पहुंची कि चूंकि कार्य-समिति को अपने निश्चय के औचित्य के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं है, और चूंकि महासमिति के नये चुनाव अभी हो रहे हैं, इसलिए कार्य-समिति महासमिति की बैठक बुलाने का जिम्मा नहीं ले सकती। बैठक में यह भी कहा गया कि यदि महासमिति के कुछ सदस्यों को कार्यसमिति के प्रस्ताव के खिलाफ कोई शिकायत है तो महासमिति के ३० सदस्य महासमिति की बैठक करने की मांग पेश कर सकते हैं, जिसपर कार्य-समिति को बाध्य होकर बैठक बुलानी पड़ेगी।

कार्य-समिति ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि चुनाव के उम्मीदवारों को कार्यसमिति के साम्प्रदायिक 'निर्णय'-सम्बन्धी निश्चय का, अन्तःकरण के विरुद्ध होने के आधार पर, पालन न करने के लिए मुक्त कर दिया जाय, पर वह इस नतीजे पर पहुंची कि चूंकि कार्य-समिति ने इस बन्धन-मुक्ति के सम्बन्ध में कोई प्रस्ताव पास नहीं किया है, इसलिए बन्धन-मुक्ति स्वीकार न की जाय। मालवीयजी ने श्री अणे के द्वारा एक संदेश भेजा था, जिसके उत्तर में गांधीजी ने यह तजवीज पेश की थी कि

व्यर्थ के पारस्परिक तनाव और संघर्ष को बचाने के लिए यह अच्छा होगा कि प्रतिद्वन्द्वी उम्मीदवारों की सफलता की सम्भावना पर विचार करके उन उम्मीदवारों को हटा लिया जाय जिनके सफल होने की सम्भावना कम हो। इसपर कोई समझौता न हो सका। पर पार्लमेण्टरी-बोर्ड ने यह निश्चय किया कि जिन जगहोंके लिए मालवीयजी और श्री अणे खड़े हों उनके लिए उम्मीदवार खड़े न किये जायं। बोर्ड ने यह भी निश्चय किया कि सिन्ध में और कलकत्ता शहर में उम्मीदवार खड़े न किये जायं।

गांधीजी के कांग्रेस से हटने की बात

इन्हीं दिनों में कांग्रेस के इतिहास में एक और महत्वपूर्ण घटना हुई। यह चर्चा आमतौर से की जा रही थी कि गांधीजी कांग्रेस त्याग देंगे। यह कोरी किम्वदन्ती ही न थी, क्योंकि उनके जुलाई के मध्यवाले ७ दिन के उपवास के दौरान में जो मित्र उनसे मिलने गये, और इसके बाद बंगाल व आंध्र से जो लोग किसी-न-किसी कार्यवश उनके पास वर्धा पहुंचे, उनसे वे इसकी चर्चा बराबर कर रहे थे। गांधीजी ने १७ सितम्बर १९३४ को वर्धा से नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया:—

"यह अफवाह सच थी कि मैं कांग्रेस से अपना स्थूल सम्बन्ध-विच्छेद करने की बात सोच रहा हूं। वर्धा में अभी हाल में कार्य-समिति और पार्लमेण्टरी-बोर्ड की बैठकों में भाग लेने के लिए जो मित्र यहां आये थे उनसे मैंने इस सम्बन्ध में विचार करने का अनुरोध किया और उनकी इस बात से बाद में सहमत हो गया कि अगर मुझे कांग्रेस से अलग ही होना हो तो वह सम्बन्ध-विच्छेद कांग्रेस के अधिवेशन के बाद ही होना अच्छा होगा। पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त और श्री रफीअहमद किदवाई ने मुझे एक बीच का रास्ता भी सुझाया था। आप लोगों ने यह सलाह दी थी कि मैं कांग्रेस में तो बना रहूं, पर उसके सक्रिय-प्रबन्ध से अलग रहूं। मगर सरदार वल्लभभाई पटेल और मौलाना अबुलकलाम आजाद ने इस राय का जोरों से विरोध किया। सरदार वल्लभभाई पटेल तो मेरी इस बात से सहमत हैं कि अब वह समय आ गया है जब मुझे कांग्रेस से अलग हो जाना चाहिए। परन्तु बहुत-से लोग ऐसे भी हैं जो इस राय से सहमत नहीं हैं। प्रश्न के तमाम पहलुओं पर गहराई से विचार करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुंचा हूं कि समझदारी का मार्ग तो यही है कि अपना अंतिम निश्चय कम-से-कम अक्तूबर में होनेवाले कांग्रेस-अधिवेशन तक स्थगित रक्खूं। अन्तिम निश्चय को स्थगित कर देने की बात इस दृष्टि से पसन्द आई कि इस बीच में मुझे अपनी इस धारणा की जांच कर लेने का मौका मिल जायगा कि कांग्रेस के बहुत-से बुद्धिशाली लोग मेरे विचारों, मेरे कार्यक्रम और मेरी प्रणाली से उकता गये हैं और वे यह सोचते हैं कि कांग्रेस की स्वाभाविक प्रगति में मैं बजाय साधक के एक बाधक बनता जा रहा हूं। वे यह भी सोचने लगे हैं कि कांग्रेस देश की एक सर्वमान्य लोक-तन्त्रात्मक और प्रतिनिधिमूलक संस्था होने के बजाय मेरे प्रभाव में आकर मेरे ही हाथों की कठ-पुतली बनती जा रही है और उसमें अब बुद्धि तथा दलील के लिए कोई स्थान बाकी नहीं रहा।

"अगर मुझे अपनी धारणा की सच्चाई की जांच करनी हो तो यह जरूरी है कि मैं सर्व-साधारण के सामने उन वजूहात को रख दूं जिनके आधार पर मेरी यह धारणा बनी है, साथ ही अपने उन प्रस्तावों को रख दूं, जो उन कारणों पर निर्भर करते हैं, ताकि कांग्रेसवादी उन प्रस्तावों पर अपना वोट देकर अपनी साफ-साफ राय जाहिर कर सकें।

"इसको यथासम्भव संक्षेप में रखने की कोशिश करूंगा। मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि बहुत-से कांग्रेसवालों और मेरी विचार-दृष्टि के बीच एक बढ़ता हुआ और गहरा अन्तर मौजूद है। मुझे ऐसा ज्ञात हो रहा है कि बहुत से बुद्धिशाली कांग्रेसवाले यदि मेरे प्रति अनुपम भक्ति के बन्धन में न पड़े रहें तो प्रसन्नता के साथ उस दिशा की ओर जायंगे जो मेरी दिशा के बिलकुल विपरीत है।

कोई भी नेता उस वफादारी और भक्ति की आशा नहीं कर सकता जो मुझे बुद्धिशाली कांग्रेसवादियों-द्वारा प्राप्त हो चुकी है—वह भी ऐसी अवस्था में जब उनमें से बहुतों ने मेरे द्वारा कांग्रेस के सामने रक्खी गई नीति का स्पष्ट रूप से विरोध व्यक्त किया है। मेरे लिए उनकी भक्ति तथा श्रद्धा से अब और लाभ उठाना उनपर बेजा दबाव डालना है। उनकी यह वफादारी इस बात के देखने से मेरी आंख को बन्द नहीं कर सकती कि कांग्रेस के बुद्धिशाली लोगों और मेरे बीच मौलिक मतभेद मौजूद है।

"अब मेरे उन मौलिक मतभेदों को लीजिए। चर्खा और खादी को मैंने सबसे पहला स्थान दिया है। कांग्रेस के बुद्धिशाली लोगों द्वारा चर्खा कातना लुप्तप्राय हो गया है। साधारणतः उन लोगों का इसमें कोई विश्वास नहीं रह गया है। फिर भी अगर मैं उनके विचारों को अपने साथ रख सकता, तो मैं ।) आने के बजाय नित्य चर्खा कातना कांग्रेस में मताधिकार के लिए अनिवार्य कर देता। कांग्रेस-विधान में खादी के सम्बन्ध में जो धारा है वह शुरू से ही निर्जीव रही है और कांग्रेसवाले खुद मुझे यह चेतावनी देते रहे कि खादी की धारा के सम्बन्ध में जो पाखण्ड और टाल-मटोल चल रहीहै उसके लिए मैं ही जिम्मेदार हूं। मुझे यह समझना चाहिए था कि यह खादी वाली शर्त सच्चे विश्वास के कारण नहीं, बल्कि ज्यादातर मेरे प्रति उनकी वफादारी के ही कारण स्वीकृत की गई थी। मुझे यह बात मान लेनी चाहिए कि उन लोगों की इस दलील में काफी सचाई है। तथापि मेरा विश्वास बढ़ता ही रहा है कि अगर भारत को अपने लाखों गरीबों के लिए पूर्ण-स्वतन्त्रता प्राप्त करनी है, और वह भी विशुद्ध अहिंसा-द्वारा, तो चर्खा और खादी शिक्षितों के लिए भी वैसे ही स्वाभाविक होने चाहिए जैसे कि अर्द्ध-बेकारों तथा लाखों की संख्या में अधपेट रहनेवाले के लिए हैं, जो भगवान् के दिये हाथों को काम में नहीं लाते और प्रायः पशुओं की तरह पृथ्वी पर भाररूप हो गये हैं। इस प्रकार चर्खा सच्चे अर्थ में मानव-गौरव तथा समानता का शुद्ध चिह्न है। वह खेती का एक सहायक-धन्धा है। वह राष्ट्र का दूसरा फेफड़ा है जिसे काम में न लानें से हम नष्ट हो रहे हैं। फिर भी ऐसे कांग्रेसवादी बहुत ही थोड़े हैं कि जिनको चर्खे के भारत-व्यापी सामर्थ्य में विश्वास है। कांग्रेस-विधान में से खादी की धारा को हटा देने का अर्थ यह है कि कांग्रेस और देश के करोड़ों गरीबों के बीच की कड़ी टूट गई। इस गरीब जनता का प्रतिनिधित्व करने का प्रयत्न कांग्रेस अपने जन्मकाल से करती आ रही है। यदि उक्त सम्बन्ध कायम रखने के लिए वह धारा बनी रहेगी तो उसका सख्ती से पालन कराना पड़ेगा। पर यह भी अशक्य होगा, यदि कांग्रेसवालों का खास बहुमत उसमें जीवित विश्वास न रखता हो।

"इसी प्रकार पार्लमेण्टरी-बोर्ड की बात लीजिए। यद्यपि मैं असहयोग का प्रणेता हूं, तो भी मेरा विश्वास है कि देश की मौजूदा अवस्था में जब उसके सामने किसी सामूहिक सत्याग्रह की कोई योजना नहीं है, कांग्रेस के नियंत्रण में एक पार्लमेण्टरी-पार्टी बनाना किसी भी कार्यक्रम का आवश्यक अंग है। यहां भी हम लोगों के बीच गहरा मतभेद है। पटना की महासमिति की बैठक में जिस जोर से मैंने इस कार्यक्रम को पेश किया था उसने हमारे बहुत-से अच्छे-अच्छे साथियों को व्यथित किया, और उसपर चलने में वे हिचकिचाये। किसी हदतक अपने मत को दूसरे ऐसे व्यक्ति के मत के आगे जो बुद्धि या अनुभव में बड़ा समझा जाता है दबा देना एक संस्था की निर्विकार उन्नति के लिए हितकर और वाञ्छनीय है। किन्तु यह तो एक भयंकर अत्याचार होगा, यदि अपना मत इस प्रकार बार बार दबाना पड़े। यद्यपि मैंने कभी यह नहीं चाहा था कि यह अवाञ्छनीय परिणाम उत्पन्न हो, किन्तु फिर भी मैं इस बात को साधारण जनता और अपनी अन्तरात्मा से छिपा नहीं सकता कि वास्तव में बराबर यही दुःखद स्थिति चली आ रही थी। बहुत-से मेरे मित्र मेरा विरोध करने के

विषय में हताश हो गये हैं। मेरे जैसे जन्मना लोकतंत्रवादी के लिए इस भेद का खुल जाना लज्जा की बात है। मैंने गरीब-से गरीब मनुष्य के साथ अपने को मिला देने और उससे अच्छी दशा में न रहने की तीव्र अभिलाषा अपने हृदय में रक्खी है, और उस सतह तक पहुंचने के लिए ईमानदारी से प्रयत्न किया है। और इन कारणों से अगर कोई लोकसंत्रवादी होने का दावा कर सकता है, तो वह दावा मैं करता हूं।

"मैंने समाजवादी-दल का स्वागत किया है, जिसमें मेरे बहुत से आदरणीय और आत्मत्यागी साथी मौजूद हैं। यह सब होते हुए भी उनका जो प्रामाणिक कार्यक्रम छपा है उससे मेरा मौलिक मतभेद है। किन्तु मैं उनके साहित्य में प्रतिपादित सिद्धान्तों का फैलना अपने नैतिक दबाव से नहीं रोकना चाहता। मैं उन सिद्धान्तों को स्वतंत्रता के साथ प्रकट करने में हस्तक्षेप नहीं कर सकता, चाहे उनमें से कुछ सिद्धांत मुझे कितने ही नापसन्द क्यों न हों। यदि उन सिद्धान्तों को कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया, जैसा कि बहुत सम्भव है, तो मैं कांग्रेस में नहीं रह सकता; कांग्रेस में रहकर सक्रिय-विरोध करते रहने की बात तो मेरी कल्पना ही में नहीं आती। यद्यपि अपने सार्वजनिक जीवन की लम्बी अवधि में मेरा बहुत-सी संस्थाओं से सम्बन्ध रहा है, किन्तु मैंने कभी अपने लिए यह सक्रिय-विरोध की स्थिति स्वीकार नहीं की है।

"इसके बाद देशी रियासतों के सम्बन्ध में कुछ लोग उस नीति का समर्थन कर रहे हैं जो मेरी सलाह और मत के सर्वथा विरुद्ध है। मैंने चिन्ता के साथ घण्टों उसपर विचार किया है; किन्तु मैं अपना मत बदलने में सफल न हो सका।

"अस्पृश्यता के बारे में भी मेरी दृष्टि अधिकांश नहीं तो बहुत-से कांग्रेसजनों से कदाचित् भिन्न है। मेरे लिए तो यह एक गम्भीर धार्मिक और नैतिक प्रश्न है। बहुतों का विचार है कि इस प्रश्न को जिस तरह और जिस समय मैंने हाथ में लिया उससे सत्याग्रह-आन्दोलन की गति में बाधा डालकर मैंने भारी भूल की। पर मैं अनुभव करता हूं कि अगर मैंने दूसरा मार्ग पकड़ा होता तो मैं अपने-तईं सच्चा न रहा होता।

"अन्त में अब अहिंसा को लीजिए। १४ वर्ष के प्रयोग के बाद भी वह अबतक अधिकांश कांग्रेसियों के लिए नीतिमात्र ही है, जबकि मेरे लिए वह एक मूल सिद्धान्त है। कांग्रेसवाले अबतक अहिंसा को जो सिद्धान्त के रूप में स्वीकार नहीं करते इसमें उनका कोई दोष नहीं है। उसके प्रतिपादन और उसे कार्य में परिणत करने का मेरा दोषपूर्ण ढंग ही निस्सन्देह इसके लिए जिम्मेदार है। मुझे नहीं लगता, कि मैंने उसके दोषपूर्ण प्रतिपादन और उसे कार्य में परिणत करने में कोई भूल की है। पर अबतक जो कांग्रेसवालों के जीवन का वह अभिन्न अंग नहीं बन सकी इससे यही एक अनुमान निकाला जा सकता है।

"और यदि अहिंसा के सम्बन्ध में अनिश्चितता है, तो फिर सत्याग्रह के सम्बन्ध में तो वह और भी अधिक होनी चाहिए। इस सिद्धान्त के २७ वर्ष के अध्ययन और व्यवहार के बाद भी मैं यह दावा नहीं कर सकता कि मैं उसके सम्बन्ध में कुछ जानता हूं। अनुसन्धान का क्षेत्र अवश्य ही परिमित है। मनुष्य के जीवन में सत्याग्रह करने के अवसर निरन्तर नहीं आते रहते। माता, पिता, शिक्षक अथवा धार्मिक या लौकिक गुरुजनों की आज्ञा स्वेच्छा से पालन करने के बाद ही ऐसा अवसर आ सकता है। इसपर आश्चर्य न होना चाहिए कि एकमात्र विशेषज्ञ होने के कारण, चाहे मैं कितना ही अपूर्ण होऊं, मैं इस नतीजे पर पहुंचा कि कुछ समय के लिए सत्याग्रह मुझतक ही सीमित रहना चाहिए। अनेक व्यक्तियों के प्रयोग से होनेवाली भूलों और हानि को रोकने के लिए तथा एक ही व्यक्ति के द्वारा

किये जानेवाले सत्याग्रह की गूढ़ सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए मेरा यह निश्चय आवश्यक था। परन्तु यहां भी कांग्रेसियों का दोष नहीं है। पर इस विषय में हाल में स्वीकार किये गये प्रस्तावों के सम्बन्ध में अपने साथी कांग्रेसजनों से, जिन्होंने उदारता-पूर्वक इन प्रस्तावों के पक्ष में अपना मत दिया, अपने विचार स्वीकार कराने में मुझे अधिकाधिक कठिनाई मालूम हुई है।

"इन प्रस्तावों पर अपने बौद्धिक विश्वास को दबाकर मत देते समय जिस कष्ट का अनुभव उन्हें हुआ होगा उसके स्मरण मात्र से मुझे उनसे कम पीड़ा नहीं होती। जो हम सबका लक्ष्य है उसकी ओर बढ़ने के लिए आवश्यक है कि मैं और वे इस प्रकार के दबाव से मुक्त रहें। इसलिए यह भी आवश्यक है कि सबको अपनी धारणा के अनुसार निर्भीकता से कार्य करने की स्वतन्त्रता रहे।

"सत्याग्रह-आन्दोलन स्थगित करने के बारे में पटना से मैंने जो वक्तव्य प्रकाशित किया था उसमें मैंने लोगों का ध्यान सत्याग्रह की विफलता की ओर दिलाया था। अगर हममें पूर्ण अहिंसा का भाव होता तो वह स्वयं प्रत्यक्ष हो जाता और सरकार से छिपा न रहता। निस्सन्देह सरकार के आर्डिनेन्स हमारे किसी कार्य या हमारी किसी गलती के कारण नहीं बने थे। वे तो चाहे जिस प्रकार हमारी हिम्मत तोड़ने को बनाये गये थे। पर यह कहना गलत है कि सत्याग्रही दोष से परे थे। यदि बराबर हम पूर्ण अहिंसा का पालन करते तो वह छिपी न रहती। हम आतंकवादियों को भी यह नहीं दिखला सके कि हमें अहिंसा में उससे अधिक विश्वास है जितना उन्हें हिंसा में है। बल्कि हममें बहुतेरों ने उनमें यह भावना उत्पन्न कराई कि हमारे मन में भी उन्हीं की तरह हिंसा का भाव भरा है, अन्तर इतना ही है कि हम हिंसामय कार्यों में विश्वास नहीं करते। आतंकवादियों की यह दलील युक्तिसंगत है कि जब दोनों के मन में हिंसा का भाव है तब हिंसा करना चाहिए या नहीं यह केवल मत का प्रश्न रह जाता है। यह तो मैं बार-बार कह ही चुका हूं कि देश अहिंसा के मार्ग पर बहुत अग्रसर हुआ है, और यह भी कि बहुतेरों ने बेहद साहस और अपूर्व त्याग दिखाया है। मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि हम मन, वचन और कर्म से विशुद्ध अहिंसक नहीं रहे हैं। अब मेरा यह परम-धर्म हो गया है कि मैं सरकार और आतंकवादियों दोनों को ही यह दर्पणवत्, दिखला देने का उपाय ढूंढ निकालूं कि अहिंसा में सही लक्ष्य को, जिसमें पूर्ण स्वतन्त्रता भी शामिल है, प्राप्त कराने की पूर्ण सामर्थ्य है। अहिंसात्मक साधन का अर्थ है हृदय-परिवर्तन, न कि बलात्कार।

"इस प्रयोग के लिए, जिसके लिए मेरा जीवन अर्पित है, मुझे पूर्ण निस्संग और स्वतन्त्र रहने की आवश्यकता है। सविनय-अवज्ञा जिस सत्याग्रह का एक अंशमात्र है, वह मेरे लिए जीवन का एक व्यापक नियम है। सत्य ही मेरा नारायण है। अहिंसा के द्वारा ही मैं उसकी खोज कर सकता हूं, अन्यथा नहीं। मेरे देश की ही नहीं, सारी दुनिया की स्वतन्त्रता सत्य के अनुसन्धान में ही सन्निहित है। सत्य की इस खोज को मैं न तो इस लोक के लिए स्थगित कर सकता हूं, न परलोक के लिए। इसी अनुसन्धान के उद्देश्य से मैंने राजनैतिक-क्षेत्र में प्रवेश किया है और अगर मेरी यह बात बुद्धिशाली कांग्रेसियों की बुद्धि और हृदय स्वीकार नहीं करता कि सत्य के इसी अनुसन्धान के द्वारा पूर्ण स्वाधीनता और ऐसी बहुत-सी वस्तुयें जो सत्य का अंश हों, प्राप्त हो सकती हैं तो यह स्पष्ट है कि अब मैं अकेला ही काम करूं और यह दृढ़ विश्वास रक्खूं, कि जिस बात को आज मैं अपने देशवासियों को नहीं समझा सकता वह एक दिन आप-से-आप उनकी समझ में आ जायगी या कदाचित् अपनी किसी ईश्वर-प्रेरित वाणी या कृत्य से मैं लोगों को समझा सकूं। ऐसे बड़े महत्व के विषय में यन्त्र की तरह वोट देना अथवा आधे मन से अनुमति देना उद्देश्य-सिद्धि के लिए हानिकारक नहीं तो सर्वथा अपर्याप्त तो है ही।

"मैंने सामान्य लक्ष्य की बात कही है, पर मुझे अब इस बात में सन्देह होने लगा है कि ाया सभी कांग्रेसवादी पूर्ण-स्वाधीनता शब्द से एक ही अर्थ ग्रहण करते हैं। मैं भारत के लिए पूर्ण ाधीनता उसके मूल अंग्रेजी शब्द "कम्प्लीट इंडिपेंडेंस" के पूरे अंग्रेजी अर्थ में ही चाहता हूं। खुद े लिए तो पूर्ण-स्वराज्य का अर्थ पूर्ण-स्वाधीनता से भी कहीं अधिक व्यापक है। पर पूर्ण-स्वराज्य अपना अर्थ स्वतः व्यक्त नहीं करता। कोई अकेला या संयुक्त शब्द हमें ऐसा अर्थ नहीं दे सकता से सब लोग समझ लें, इसलिए अनेक अवसरों पर मैंने स्वराज्य की अनेक व्याख्यायें की है। मैं नता हूं कि वे सभी ठीक हैं और कदापि परस्पर-विरोधी नहीं हैं। पर सबको एकसाथ मिला देने भी वे सर्वथा अपूर्ण रह जाती हैं। किंतु इस बात को अधिक विस्तार नहीं देना चाहता।

"मैंने जो कहा है कि पूर्ण-स्वराज्य की परिभाषा करना असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य उससे कितने ही कांग्रेस-वादियों के और मेरे बीच मतभेद की एक और बात मेरे ध्यान में आती । १९०८ से मैं बराबर कहता आया हूं कि साधन और साध्य समानार्थक शब्द हैं। इसलिए हां साधन अनेक और परस्पर-विरोधी भी हैं वहां साध्य अवश्य भिन्न और साधन के प्रतिकूल होगा। ाधनों पर सदा हमारा अधिकार और नियंत्रण रहता है, पर साध्य पर कभी नहीं होता। पर यदि न समान अर्थ तथा ध्वनिवाले साधनों का उपयोग करते हों तो हमें साध्य के विश्लेषण में माथापच्ची रने की जरूरत न होगी। इस बात को सभी स्वीकार करेंगे कि बहुतेरे कांग्रेसवादी (मेरे विचार से) स स्पष्ट सत्य को स्वीकार नहीं करते; उनका विश्वास है कि साध्य शुद्ध हो तो साधन चाहे जैसे ाम में लाये जा सकते हैं।

"इन सब मतभेदों ने ही कांग्रेस के वर्तमान कार्यक्रम को विफल बना दिया है। कारण, जो ांग्रेस-सदस्य हृदय से उसमें विश्वास किये बिना मुंह से उसकी हामी भरते हैं वे स्वभावतः उसे कार्य परिणत नहीं कर पाते, और मेरे पास उस कार्यक्रम के सिवा दूसरा कोई कार्यक्रम है ही नहीं, जो स समय देश के सामने है—अर्थात् अस्पृश्यता-निवारण, हिन्दू-मुस्लिम-एकता, सम्पूर्ण मद्य-निषेध, ख़ां और खादी तथा ग्राम-उद्योगों को पुनर्जीवित करने के रूप में सौ फी सदी स्वदेशी का प्रचार ौर भारत के ७ लाख गांवों का संगठन। यह कार्यक्रम प्रत्येक देशभक्त की देशभक्ति को तृप्त करने लिए काफी होना चाहिए।

"मेरी अपनी इच्छा तो यह है कि भारत के किसी गांव में, विशेषतः सीमा-प्रान्त के किसी ांव में, अपना डेरा जमा लूं। खुदाई खिदमतगार सचमुच अहिंसावादी होंगे तो अहिंसा-भाव की द्धि और हिन्दू-मुस्लिम-एकता की स्थापना में वे सबसे अधिक सहायक हो सकते हैं। अगर वे मन, चन, कर्म से अहिंसाव्रती और हिन्दू-मुस्लिम-एकता के प्रेमी हैं तो निश्चय ही उनके द्वारा हम इन ोनों कार्यों की सिद्धि देख सकते हैं जो इस समय हमारे देश में सबसे अधिक आवश्यक वस्तु है। ास अफ़गानी हौआ से हम इतना डरा करते हैं वह तब अतीत काल की वस्तु हो जायगा। अतः मैं स दावे की स्वयं परीक्षा करने का अवसर पाने के लिए उत्सुक हूं कि उन्होंने (खुदाई खिदमतगारों) अहिंसा-भाव को सम्यक्-प्रकार से ग्रहण कर लिया है और हिन्दू-मुस्लिम तथा अन्य सम्प्रदायों ी सच्ची आंतरिक एकता में वे विश्वास रखते हैं। मैं स्वयं उन्हें चर्खे का सन्देश भी जाकर सुनाना ाहता हूं। मेरी अभिलाषा यही होगी कि इन तथा ऐसे अन्य प्रकारों से जो थोड़ी-बहुत सेवा कांग्रेस ी मुझसे बन सके करता रहूं, चाहे मैं कांग्रेस के अन्दर होऊं या बाहर।

"अपने कार्यकर्त्ताओं में बढ़ते हुए दूषण की चर्चा मैंने अन्त तक के लिए रख छोड़ी है। इसके वषय में अपने लेखों और भाषणों में मैं काफी कह चुका हूं। पर यह सब होते हुए आज भी मेरे

विचार से कांग्रेस देश की सबसे अधिक शक्ति-शालिनी और प्रातिनिधिक संस्था है। उसका जीवन उच्चकोटि की अटूट सेवा और त्याग का इतिहास है। अपने जन्म-काल से ही उसने जितने तूफानों का सफलता के साथ सामना किया उतना किसी और संस्था को नहीं करना पड़ा। उसके आदेश से लोगों ने इतना अधिक त्याग किया है, जिसपर देश गर्व कर सकता है। सच्चे देशभक्त और उज्ज्वल-चरित्रवाले स्त्री-पुरुषों की सबसे बड़ी संख्या आज कांग्रेस के अनुयायियों में है। अतः यदि ऐसी संस्था से मुझे अलग होना ही पड़े तो यह नहीं हो सकता कि ऐसा करने में मुझे दिल कचोटने का भारी कष्ट, विछोह की असहनीय पीड़ा न सहन करनी पड़े। और मैं तभी ऐसा करूंगा जब मुझे निश्चय हो जायगा कि कांग्रेस के अन्दर रहने की अपेक्षा उसके बाहर मैं देश की अधिक सेवा कर सकूंगा।

"मैं चाहता हूं कि मैंने जिन सब विषयों की चर्चा की है उनको कार्य रूप में परिणत कराने के लिए कुछ प्रस्ताव विषय-समिति में पेश करके कांग्रेस के भाव की परीक्षा करूं। पहला संशोधन जो मैं पेश करूंगा वह यह होगा कि 'उचित और शान्तिमय' शब्दों के बदले 'सत्यतापूर्ण' और 'अहिंसात्मक' शब्द रक्खे जायं। मैं ऐसा न करता, अगर उचित और शान्तिमय के बदले इन दो विशेषणों का सरल-भाव से मेरे प्रयोग करने पर उनके विरुद्ध तूफान न खड़ा कर दिया गया होता। अगर कांग्रेसी वस्तुतः हमारे ध्येय को प्राप्ति के लिए सचाई और अहिंसा की आवश्यकता समझते हैं तो उन्हें इन स्पष्ट विशेषणों को स्वीकार करने में हिचक न होनी चाहिये।

"दूसरा संशोधन यह होगा कि कांग्रेस की मताधिकार-योग्यता चार आने के बदले हर महीने क़म-से-कम १५ नम्बर का अच्छा बटा हुआ २००० तार (एक तार=४ फुट) सूत हर महीने देने की रक्खी जाय और वह सूत मतदाता खुद चर्खे या तकली पर कात कर दें। अगर किसी मेम्बर की गरीबी साबित हो तो उसको कातने के लिए काफी रूई दी जाय ताकि वह उतना सूत कातकर दे सके। इसके पक्ष और विपक्ष की दलीलें यहां दोहराने की जरूरत नहीं है। अगर हमको सचमुच लोकतन्त्रात्मक संस्था बनना है, और गरीब-से-गरीब मजदूर का प्रतिनिधित्व करना है, तो हमें कांग्रेस के लिए कम-से-कम परिश्रम का मताधिकार बनाना ही होगा। यह सब लोग स्वीकार करते हैं कि चर्खा चलाना कम-से-कम परिश्रम के साथ-साथ सबसे अधिक आदरणीय कार्य है। यह बालिग-मताधिकार के अत्यन्त निकट पहुंचाता है और उन सबके बूते की बात है जो अपने देश के नाम पर आध घण्टे प्रतिदिन परिश्रम करना स्वीकार करते हैं। क्या पढ़े-लिखों और सम्पत्तिवानों से यह आशा करना बहुत है कि वे श्रम के गौरव को स्वीकार करेंगे और इस बात का खयाल न करेंगे कि उससे स्थूल लाभ कितना होता है? क्या परिश्रम विद्याध्ययन की भांति स्वतःअपना ही पारितोषिक नहीं है? अगर हम लोग वास्तव में लोक-सेवक हैं, तो हम उनके लिए चर्खा चलाने में गौरव का अनुभव करेंगे। स्वर्गीय मौलाना मुहम्मदअली की उस बात का स्मरण दिलाता हूं जो वे प्रायः अनेक सभामंचों से कहा करते थे, अर्थात् तलवार जिस प्रकार पाशविक शक्ति और बलात्कार का प्रतीक है उसी प्रकार चर्खा या तकली अहिंसा, सेवा तथा विनम्रता का प्रतीक है। जब चर्खा राष्ट्रीय-पताका का एक अंग बना लिया गया तो अवश्य ही उसका यह अर्थ था कि प्रत्येक घर में चर्खे की आवाज गूंजेगी। वास्तव में अगर कांग्रेसवाले चर्खे के सन्देश में विश्वास नहीं करते, तो उन्हें उसे राष्ट्रीय झण्डे से हटा देना चाहिए और कांग्रेस के विधान से खादी की धारा निकाल देनी चाहिए। यह असह्य बात है कि खादी की शर्त का पालन करने में निर्लज्जपन से धोखा दिया जाय।

"तीसरा संशोधन जो मैं पेश करना चाहता हूं वह यह होगा कि किसी ऐसे कांग्रेसी को

कांग्रेस के निर्वाचन में मत देने का अधिकार न होगा जिसका कि नाम ६ महीने तक बराबर कांग्रेस रजिस्टर पर न रहा हो और जो पूरी तरह से आदतन खादी पहननेवाला न रहा हो। खादी की धारा को कार्यान्वित कराने में भारी कठिनाइयों का सामना पड़ा है। यह मामला आसानी से इस प्रकार तय किया जा सकता है, कि कांग्रेस के सभापति के पास अपील करने का अधिकार देते हुए भिन्न-भिन्न कमिटियों के सभापतियों पर इस बात का फैसला करने का भार छोड़ दिया जाय कि वे यह देखें कि मतदाता आदतन खादी पहननेवाला है या नहीं। नियम के अर्थ में वह आदमी खादी का आदतन पहननेवाला न समझा जाय, जो वोट देने के समय प्रत्यक्ष रूप से पूर्णतः खादी-वस्त्रों में न हो। किन्तु फिर भी किसी नियम से वह सन्तोषजनक फल प्राप्त नहीं हो सकता जिसका पालन अधिकतर लोग अपनी इच्छा से नहीं करते, चाहे उसके पालन कराने के लिए कितनी ही सावधानी और कड़ाई से काम क्यों न लिया जाय।

"अनुभव ने यह दिखला दिया है, कि केवल ६००० प्रतिनिधि होते हुए भी कांग्रेस इतनी बड़ी हो जाती है कि भली भांति कार्य-संचालन करना कठिन हो जाता है। व्यवहारतः कभी पूरे प्रतिनिधि कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में शरीक नहीं होते; और फिर जब कि कांग्रेस के सदस्यों की सूचियां कहीं भी असली नहीं होतीं, तब ये ६००० प्रतिनिधि कैसे सच्चे प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं? इसलिए मैं यह संशोधन चाहूंगा, कि प्रतिनिधियों की संख्या घटा कर ऐसी कर दी जाय जो १००० से अधिक न हो, और प्रति एक हजार वोटरों के पीछे एक प्रतिनिधि से अधिक न चुना जाय। इस प्रकार पूरे प्रतिनिधियों की संख्या का अर्थ यह हुआ कि पूरे १० लाख मतदाता हों। यह कोई ऐसी आकांक्षा नहीं है, जो पूरी न हो। ३५ करोड़ की जन-संख्या वाले के देश लिए यह अधिक नहीं है। इस संशोधन के द्वारा कांग्रेस को जो वास्तविक लाभ होगा, उससे संख्या-बल की क्षति-पूर्ति अच्छी तरह हो जायगी। अधिवेशन के ऊपरी ठाट-बाट की रक्षा दर्शकों के लिए उचित प्रबन्ध करके की जायगी, और स्वागत-समिति को अत्यधिक संख्यक प्रतिनिधियों के रहने आदि की व्यवस्था करने में जिस व्यर्थ की परेशानी का सामना करना पड़ता है उससे छुटकारा मिल जायगा। यह बात स्वीकार करनी चाहिए, कि कांग्रेस की प्रतिष्ठा तथा उसका लोकतन्त्रात्मक रूप और उसका प्रभाव इस कारण नहीं है कि उसके वार्षिक अधिवेशन में प्रतिनिधियों और दर्शकों की अत्यधिक संख्या होती है, बल्कि इस कारण है कि कांग्रेस ने देश की सतत वर्द्धमान सेवा की है। पश्चिम का लोकतंत्र अगर सर्वथा निष्फल नहीं हो गया है, तो अग्नि-परीक्षा से तो वह गुजर ही रहा है। क्यों न भारत लोकतंत्र के सच्चे रूप को विकसित करने का श्रेय प्राप्त करे और उसकी सफलता को प्रत्यक्ष प्रकट कर दे? भ्रष्टता तथा दंभ लोकतंत्र के अनिवार्य परिणाम नहीं होने चाहिए, यद्यपि आज यही बात देखने में आ रही है। न बहुसंख्यक का होना ही लोकतंत्र की सच्ची कसौटी है। थोड़े आदमियों द्वारा उन सब लोगों की आशा, महत्वाकांक्षा तथा भावनाओं को प्रकट करना, जिनका कि प्रतिनिधित्व करने का दावा वे करते हैं, सच्चे लोकतंत्र के विपरीत नहीं है। मेरा विश्वास है कि लोकतंत्र का विकास बल-प्रयोग से नहीं हो सकता। लोकतंत्र का सच्चा भाव बाहर से नहीं, किन्तु भीतर से उत्पन्न होता है।

"मैंने यहां विधान में करने योग्य संशोधन पेश किये हैं। ऐसे और भी प्रस्ताव होंगे जो उन बातों का, जिनकी चर्चा मैंने की है, स्पष्टीकरण करेंगे। मैं अपने इस वक्तव्य को उन प्रस्तावों की चर्चा करके बढ़ाना नहीं चाहता।

"मुझे आशंका है कि जिन संशोधनों का मैंने उल्लेख किया है वे भी बम्बई-कांग्रेस में

शामिल होनेवाले कांग्रेसजनों में से अधिकतर को शायद ही पसन्द आवें। परन्तु यदि कांग्रेस की नीति का संचालन मेरे जिम्मे रहे, तो मैं इन संशोधनों को और अन्य ऐसे प्रस्तावों को, जो मेरे इस वक्तव्य के भाव के अनुकूल हों, देश के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अति आवश्यक समझता हूं जिस किसी संस्था की सदस्यता भी स्वेच्छा पर निर्भर करती है, उसके प्रस्तावों और नीति को जबतक उसके सदस्य तन-मन से कार्यान्वित नहीं करते तबतक उसका उद्देश्य सिद्ध नहीं हो सकता और जिस नेता का अनुसरण उसके अनुयायी शुद्ध भाव से, पूरे मन से और बुद्धिपूर्वक नहीं करते वह अपना कर्तव्य पूरा नहीं कर सकता। जिस नेता के पास अहिंसा और सत्य के सिवा और कोई साधन नहीं उसके लिए तो यह बात और भी सच्ची है। इसलिए यह स्पष्ट है कि मैंने जो कार्यक्रम उपस्थित किया है उसमें समझौते की गुंजाइश नहीं। कांग्रेसजनों को चाहिए कि शान्त भाव से उसके गुणदोष पर विचार कर लें। वे मेरा कोई लिहाज न करें और अपनी विवेकबुद्धि के अनुसार ही कार्य करें।"

बम्बई-कांग्रेस

२६ से २८ अक्तूबर (१९३४) तक बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। अधिवेशन के पहले से ही कांग्रेस-विधान में होनेवाले क्रान्तिकारी सुधारों की चर्चा चल रही थी।

अधिवेशन के शुरू होते ही गांधीजी ने अपने संशोधनों को दो विभागों में बांट दिया; अर्थात् कांग्रेस-विधान-सम्बन्धी और सत्याग्रह-सम्बन्धी। सत्याग्रह-सम्बन्धी संशोधनों को तो आपने कार्य-समिति के फैसले के लिए छोड़ दिया और विधान-सम्बन्धी संशोधनों के बारे में यह कह दिया कि उनका पास होना ही इस बात की परख होगी कि कांग्रेस उसके नये सभापति व उसके साथियों में विश्वास रखती है या नहीं। पर आश्चर्य की बात है कि कार्य-समिति ने उपयुक्त परिवर्तनों-सहित दोनों प्रकार के संशोधन स्वीकार कर लिये और स्वयं कांग्रेस ने भी उन्हें मुख्यतः स्वीकार कर लिया, जिससे गांधीजी संतुष्ट हो गये। गांधीजी के मूल मसविदे में कांग्रेस ने जो-जो परिवर्तन किये उनकी तफसील देने की यहां जरूरत नहीं। इतना कह देना पर्याप्त है कि ध्येय-परिवर्तन के प्रस्ताव के बारे में यह निश्चय हुआ कि उसे प्रांतीय-कांग्रेस-कमिटियों के पास सम्मति के लिए भेजा जाय। अब इस प्रस्ताव पर अगले वर्ष के अधिवेशन में फिर विचार होगा। 'शारीरिक-श्रम' की शर्त केवल उन्हीं कांग्रेस-सदस्यों तक सीमित रक्खी गई जो कांग्रेस के किसी चुनाव से खड़े हों। आदतन खादी पहनने की धारा ज्यों-की-त्यों मान ली गई। कांग्रेस-प्रतिनिधियों की संख्या २००० से अधिक न होना तय हुआ, जिसमें १४८९ प्रतिनिधि ग्राम्य-क्षेत्रों के और ५११ शहरी-क्षेत्रों के रक्खे गये। महासमिति के सदस्यों की संख्या आधी कर दी गई। प्रतिनिधियों का चुनाव '५०० सदस्यों पर एक प्रतिनिधि' के हिसाब से रक्खा गया, न कि १०००सदस्यों पर एक प्रतिनिधि के हिसाब से, जैसा कि गांधीजी का प्रस्ताव था। इस प्रकार गांधीजी के मूल-मसविदे का यह सिद्धान्त कि प्रतिनिधियों की संख्या ठीक कांग्रेस-सदस्यों की संख्या के हिसाब से हो, कांग्रेस ने स्वीकार कर लिया। इसका यह तात्पर्य हुआ कि प्रतिनिधियों की हैसियत अब एक धूम-धड़ाम से होनेवाले सम्मेलन के दर्शकों की-सी न रहकर राष्ट्र के प्रतिनिधियों की-सी हो गई, जिनका कर्तव्य था कि कांग्रेस की कार्य-कारिणी अर्थात् महासमिति व प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटियों का चुनाव करें। गांधीजी के मसविदे का शेष भाग लगभग ज्यों-का-त्यों स्वीकार कर लिया गया।

लेकिन कांग्रेस का नया विधान या पार्लमेण्टरी बोर्ड, रचनात्मक कार्यक्रम एवं साम्प्रदायिक निर्णय-सम्बन्धी पुराने प्रस्तावों की स्वीकृति में प्रस्तावों का पास होना, अधिवेशन के मार्के के निर्णयों

में से नहीं थे, हालांकि ये स्वयं कुछ कम महत्व के निर्णय न थे। तथापि अधिवेशन की मुख्य घटना, यद्यपि उसकी ओर लोगों का ध्यान कुछ कम आकर्षित हुआ, अखिल-भारतीय ग्राम उद्योग-संघ की स्थापना थी, जिसके बारे में यह निश्चित हुआ कि वह गांधीजी की सलाह व देख-रेख में काम करेगा और राजनैतिक कहलाई जानेवाली हलचलों से अलग रहेगा। खद्दर के कार्यक्रम की पूर्ति का यह युक्ति-युक्त परिणाम ही था। गांव व देश को सुसम्पन्न बनाने के लिए जिन ग्राम्य-उद्योगों की आवश्यकता होती है खद्दर तो उनका अगुवा-मात्र ही है। किसी राष्ट्र की सभ्यता का ठीक ठीक पता-ठिकाना उसके हुनर व कारीगरी से ही होता है।

वैज्ञानिक आविष्कारों पर तो सारे संसार का एक-सा अधिकार होता है। ज्ञान भी किसी एक राष्ट्र व व्यक्ति की बपौती नहीं, लेकिन किसी देश की हुनर व कारीगरी में तो हमें उस राष्ट्र की आत्मा ही बोलती दिखाई देती है। जिस राष्ट्र का कला-कौशल व कारीगरी नष्ट हो चुकी उस राष्ट्र का तो व्यक्तित्व ही मानों जाता रहा। वह राष्ट्र पशुओं की भांति जीता रहे यह बात दूसरी है, लेकिन उसकी सृजनात्मक प्रतिभा तो सदा के लिए विदा ले चुकी, जिसके वापस आने की कोई सम्भावना ही नहीं। इसलिए जब गांधीजी ने भारत के गांवों के लुप्त व लुप्तप्राय उद्योगों को पुनर्जीवन देने का बीड़ा उठाया तो मानों उन्होंने भारतीय सभ्यता के पुनरुद्धार, भारत की आर्थिक-समृद्धि के पुनरागमन और भारत की राष्ट्रीय-शिक्षापद्धति की पुनर्रचना का ही बीड़ा उठाया। देश में अखिल भारतीय राष्ट्रीय-शिक्षा-संघ की स्थापना की बड़ी पुरानी मांग है, लेकिन इस सम्बन्ध में गांधीजी जो क्रान्तिकारी परिवर्तन चाहते हैं उनके लिए सम्भवतः देश अभी तैयार नहीं। बात यह है कि जबतक भारतीय ग्राम एकबार फिर से फलने-फूलने न लगें और आत्म-सम्पन्न न हो जायं तबतक राष्ट्रीय शिक्षा का वास्तविक महत्व समझ में नहीं आ सकता। गांधीजी का उद्देश्य बड़े-बड़े महल खड़े करना या व्यापार और तिजारत द्वारा रुपये के खजाने इकट्ठे करना नहीं, बल्कि भारत के करोड़ों भूखों को रूखी रोटी में थोड़ा-सा मक्खन चुपड़ देना है और वे इसे अखिल-भारतीय चर्खा-संघ व ग्राम उद्योग-संघ के द्वारा करना चाहते हैं।

अब हम आखिर में उस घटना का उल्लेख करते हैं जो सम्भवतः बम्बई-अधिवेशन की सबसे मार्के की घटना है; अर्थात् गांधीजी का कांग्रेस से अलग होना। हालांकि इस सम्बन्ध में गांधीजी ने जो निश्चित घोषणा की थी उसको पहले लोगों ने अधिक मूल्य नहीं दिया था, लेकिन उन्हें शीघ्र ही पता भी चल गया कि गांधीजी जो कुछ भी कहते हैं वह सदा ठीक ही कहते हैं और जो कुछ कहें उसका तात्पर्य केवल वही निकाला जाय जो उन शब्दों से निकलता हो, कम या अधिक नहीं।

गांधीजी का यह रुख केवल इस बात की एक स्पष्ट सूचना ही नहीं है कि उनके शब्दों में कोई लगाव-लिपटाव नहीं होता, बल्कि यह उनके चरित्र की एक विशेषता है, जिसकी एक झलक १९२९ में भी दिखाई दी थी, बल्कि देश में इस बात की बड़ी जबर्दस्त चाहना थी कि लाहौर-कांग्रेस के अधिवेशन का सभापतित्व जवाहरलालजी के बजाय गांधीजी करें। उनके चरित्र की विशेषता की यह झलक दुबारा सन् १९३४ में बम्बई-कांग्रेस के अधिवेशन में दिखाई दी। ये दोनों ही अवसर ऐसे निकले जिनपर गांधीजी अपने पहले निश्चयों पर ही अड़े रहे और उनमें उन्हें कोई गलती दिखाई नहीं दी। वास्तव में यह खबर तो भारत की जनता तथा समाचार-पत्रों को एकदम सन्नाटे में ही डालनेवाली थी कि गांधीजी कांग्रेस के मामूली सदस्य तक न रहेंगे। तिसपर भी गांधीजी ने कांग्रेस के विश्वास-प्रस्ताव के साथ ही कांग्रेस को छोड़ा है और उसमें वापस आने के लिए कांग्रेस

का दर्वाजा उनके लिए सदा खुला हुआ है। यह तभी हो सकता है जबकि पहले कांग्रेस स्वयं अपने को इस योग्य बना ले। पहले उसे अपने में से सब गन्दगी निकाल देनी होगी और अपने को इस प्रकार ढालना होगा कि कांग्रेस व खद्दर, शुद्धता, सचाई व ईमानदारी के ही परिचायक समझे जाने लगें। इसलिए कांग्रेस के बुद्धिशाली लोगों को अपने नेताओं को यह बता देना होगा कि उनका उद्देश्य स्वार्थ नहीं बल्कि सेवा वत्याग के आदर्श की प्राप्ति है—ऐसा आदर्श जिस तक पहुंचने के लिए हमें प्रति दिन, कम-से-कम ८ घण्टे मासिक के हिसाब से, शारीरिक श्रम करना आवश्यक है और जिसका फल हमें कांग्रेस को अर्पित करना है। इस धारा के सम्बन्ध में कुछ लोगों की यह गलत धारणा-सी बन गई है कि यह धारा कांग्रेस को समाजवादियों के आक्रमण व प्रभाव से बचाने के लिए रक्खी गई है। बात ऐसी नहीं है। शारीरिक-श्रम तथा गरीब मजदूर व किसानों की सेवा के लिए कांग्रेस गत १४ वर्षों से ही वचन-बद्ध है। कांग्रेस का दृष्टिकोण तो वास्तव में समाजवादी ही है। यदि समाजवादी सिर्फ खद्दर व ग्राम-उद्योग में, सत्य व अहिंसा में, तथा देश के सामने रक्खे गये उच्च-आदर्श की प्राप्ति के लिए निर्धारित दैनिक-कार्यक्रम में अपनी आस्था रखने की घोषणा कर दें तो कांग्रेसियों व समाजवादियों में कोई अन्तर ही न रहे। और फिर गांधीजी से बढ़कर समाजवादी और कौन हो सकता है, जो सिर्फ नाम के ही समाजवादी नहीं बल्कि वास्तविक समाजवादी है—जिन्होंने अपनी सारी धन-सम्पत्ति छोड़ दी और घर-बार, नाते रिश्तेदारों तक से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया ! इसलिए कहना होगा कि श्रम-मताधिकार कोई दिखावटी चीज नहीं बल्कि कांग्रेसियों के दैनिक-जीवन में समाजवादी आदर्श को चरितार्थ करने का एक सच्चा प्रयत्न है।

गांधीजी के कांग्रेस से अलग होने की घटना के सिलसिले में बम्बई-अधिवेशन में और प्रश्न जो बार-बार लोगों के मुंह पर आये, वे यह थे कि गांधीजी अब क्या करेंगे और कांग्रेस को आगे क्या करना चाहिए ? यहां एक ओर यह शंका उत्पन्न होती है कि क्या गांधीजी ने राजनीति से भी अवकाश ग्रहण कर लिया है, और दूसरी ओर यह कि अगर गांधीजी अपने साथ चर्खा-संघ और ग्राम-उद्योग संघ को भी ले जायंगे तो कांग्रेस के पास फिर क्या राजनैतिक कार्य रह जायगा ? ये शंकायें जनता के कुछ भ्रमपूर्ण विचारों की ही द्योतक हैं। यदि यह मान लिया जाय कि रचनात्मक कार्य वास्तव में राजनैतिक कार्य ही है, जैसाकि एक सत्याग्रही मानता है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि गांधीजी ने बम्बई अधिवेशन के बाद राजनीति से अवकाश ग्रहण कर लिया। इतना ही नहीं, गांधीजी ने तो खास कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा ही अपने लिए व्यक्तिगत सविनय-अवज्ञा का अधिकार सुरक्षित रख लिया है, जबकि कांग्रेस ने गांधीजी के अलावा उसे और सबके लिए मौकूफ कर दिया है। इसलिए कहना होगा कि राजनीति छोड़ने के बजाय उन्होंने तो सारी राजनीति ही अपने लिए सुरक्षित रक्खी है—रचनात्मक तथा ध्वंसात्मक दोनों ही। इसपर यह वाजिब सवाल किया जा सकता है कि फिर कांग्रेस के पास रहा ही क्या ? लेकिन क्या हम भी यह पूछ लें कि कांग्रेस के पास रहा क्या नहीं ? रचनात्मक कार्यक्रम सदा उसके सामने है जिसे भूतकाल में कांग्रेसी स्वयं अन्य लोगों की सहायता से करते रहे हैं। ध्वंसात्मक कार्यक्रम के बारे में यह बात है कि कांग्रेस, जो सविनय-अवज्ञा में अपना विश्वास एकबार फिर घोषित कर चुकी है, उसे जब चाहे तब फिर चला सकती है। वास्तव में तो राष्ट्र व कार्यकर्ताओं को उनके त्याग के लिए बधाई देने का जो प्रस्ताव पास किया गया उसमें कांग्रेस ने अपने इस विश्वास की ही घोषणा कर दी कि स्वराज्य-प्राप्ति के अहिंसा व सविनय-अवज्ञा अधिक अच्छे साधन हैं बजाय हिंसा के उपायों के, जिनके बारे में अनुभव अच्छी तरह बता चुका है कि उनका परिणाम तो जालिम व मजलूम दोनों द्वारा आतंक के प्रयोग में ही

होकर रहता है। गांधीजी यह महसूस करने लगे थे कि वे एक बड़े बोझ के समान हैं जिससे कांग्रेस दबी जा रही है, और जितना ही अधिक वे उस बोझ को कम करने का प्रयत्न करते हैं उतना ही वह बढ़ता जाता है। यदि सविनय-अवज्ञा प्रारम्भ करें तो वे करें, बन्द करें तो वे करें, और उसका संचालन करें तो वे करें। युद्ध छेड़ें तो वे छेड़ें, सुलह करें तो वे करें। हाल्ट करने के लिए, मार्च करने के लिए, आगे बढ़ने के लिए, पीछे हटने के लिए अगर कांग्रेस को कोई आर्डर दे तो गांधीजी। सच तो यह है कि इतने भारी बोझ के हटने से वह वस्तु, जिसपर वह बोझ लदा हुआ था, मजबूत ही बनेगी, जैसे कि एक परिवार से पिता के हटने से पुत्र की शक्ति बढ़ती है, उसमें आशा और उत्साह का संचार भी होता है, और ऐसी हालत में तो और भी अधिक जबकि वह वृद्ध पुरुष अपने परिवार को अथवा अपने राष्ट्र को आवश्यकतानुसार अपनी सलाह-मशविरा देने और उनका पथ-प्रदर्शन करने को तैयार हो। गांधीजी इसके लिए तैयार हैं। वे इसका आश्वासन दे ही चुके हैं। उनका उद्देश्य तो कांग्रेस को देश में एक शक्ति बनाना है। किसी संस्था की शक्ति उसके सदस्यों की संख्या से नहीं बल्कि उन सदस्यों के पीछे जो नैतिक शक्ति होती है उसमें निहित रहती है; और जैसे-जैसे उसके नेताओं में जिम्मेदारी की भावना बढ़ती जाती है वैसे-वैसे ही, अर्थात् उसी अनुमान में, वह नैतिक-शक्ति भी बढ़ती जाती है। इसी जिम्मेदारी को सम्भालने के बजाय कांग्रेस बहुत काल तक और बहुत अधिक मात्रा में गांधीजी पर ही निर्भर रहती चली आई और अपनी शर्तों पर ही गांधीजी का सहयोग चाहती है। परन्तु यह कैसे हो सकेगा ! कांग्रेसी गांधीजी का सहयोग गांधीजी की शर्तों पर ही प्राप्त कर सकते हैं। कांग्रेस जिस दिन गांधीजी की शर्तों को पूरा कर देगी उसी दिन वे कांग्रेस में वापस आने और उसका कार्य संचालन करने के लिए तैयार हो जायंगे। और वे शर्तें केवल येही हैं; कांग्रेस पहले अपना सुधार आप करे, उसके सदस्य सच्चे हों, चाहे संख्या में कम ही हों, वे ऐसी कार्यसमितियां स्थापित करें जो साल भर तक क्रियाशील होकर काम करती रहें जिससे कांग्रेस-संस्थायें सोने की भांति तप जायं और उनका नाम बढ़े। जब यह सब-कुछ हो जायगा तो वे हंसी खुशी से आकर उसका नेतृत्व ग्रहण कर लेंगे। गांधीजी ऐसी कांग्रेस को जन्म देना चाहते हैं जो अधिकार के आदर्श से नहीं बल्कि त्याग के आदर्श से बिंधी हुई हो। यह उन्हीं का श्रेय है कि उन्होंने गांवों तक में सार्वजनिक जीवन का प्रवेश कराके उन्हें, अर्थात् गांवों को, भारत की राष्ट्रीयता का आधार बना दिया है। उन्होंने 'राजनीति' के क्षेत्र व उसके अभिप्राय तक को व्यापक बना दिया है, जिसके परिणाम-स्वरूप राष्ट्रीय-पुनर्निर्माण का सारा-का-सारा कार्यक्रम ही राजनीति में आ जाता है। उन्होंने देश को लड़ने के लिए एक आदमी दिया, एक झण्डा खड़ा किया जिसके नीचे एकत्र होकर देश लड़ सके, एक नेता दिया जिसके नेतृत्व में देश अपनी प्रगति कर सके। गांधीजी भले ही 'रिटायर' हो गये हों, लेकिन राष्ट्र का उन ऊंचे सिद्धान्तों के अनुसार नेतृत्व करने के लिए, जिनका प्रयोग वे सदा कांग्रेस व उसकी विभिन्न हलचलों में करते रहे हैं, वे सदा भारत के प्रथम-सेवक बनने को तैयार हैं।

राजेन्द्रबाबू का भाषण

बम्बई-कांग्रेस की सफलता का श्रेय उसके सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद के चातुर्य्य, कार्यशक्ति व असाधारण दक्षता को कुछ कम नहीं है। कांग्रेस-अधिवेशन में पढ़ा गया उनका अभिभाषण उन गिने-चुने नमूनेदार अभिभाषणों में से कहा जा सकता है जो राजनैतिक-स्थिति पर स्थायी प्रभाव

छोड़ देते हैं। आपने श्वेत-पत्र (ह्वाइट-पेपर) की तफसीलवार बड़ी विद्वत्तापूर्ण आलोचना की। कांग्रेस-कार्यक्रम के सम्बन्ध में आपके विचार बड़े लाभदायक थे।

राजेन्द्रबाबू ने अपना छोटा किन्तु भावपूर्ण भाषण इस प्रकार समाप्त किया—"भारत के स्वातन्त्र्य-युद्ध का जो लक्ष्य रहा है उसका स्वाभाविक परिणाम स्वाधीनता ही है। इसका मतलब यह नहीं कि हम दूसरों से सम्बन्ध-विच्छेद करके अलग पड़े रहेंगे। स्वाधीनता से यह अभिप्राय तो हो ही नहीं सकता, खासकर जबकि हमें उसे अहिंसा-द्वारा प्राप्त करना है। स्वाधीनता का मतलब तो उस शोषण का अन्त करना है जो एक देश दूसरे देश का और एक भाग दूसरे भाग का करता है। स्वाधीनता में तो यह बात है कि हम पारस्परिक-लाभ के लिए दूसरे राष्ट्रों से अपनी मर्जी के अनुसार मित्रतापूर्ण व्यवहार रख सकते हैं। स्वाधीनता से किसीकी बुराई नहीं हो सकती, यहांतक कि हमारा शोषण करनेवालोंकी भी बुराई नहीं हो सकती। हां, अगर सद्भावों के बजाय हमारे शोषक शोषण की नीति पर ही निर्भर रहें तब तो बात ही दूसरी है। इस स्वाधीनता-आन्दोलन की शक्ति अहिंसा है, जिसका सजीव व सक्रिय रूप सबका सद्भाव होना और सबके लिए सद्भाव का होना है। हम यह देख ही चुके हैं कि कुछ हद तक समस्त संसार का लोकमत अहिंसा को मान चुका है। लेकिन उसे अभी और भी व्यापक रूप में इसे अपनाना चाहिए। यह तभी हो सकता है जबकि संसार के राष्ट्रों की सन्देह व अविश्वास की भावनायें, जिनका जन्म भय से होता है, दूर हो जांय और उनका स्थान सुरक्षितता की भावना ले ले, जो भारत की सदिच्छा में विश्वास उत्पन्न होने पर ही सम्भव है। फिर भारत अन्य देशों पर कोई मनसूबे नहीं बांध रहा है। उसे विदेशियों से अपनी रक्षा करने के लिए और आन्तरिक शान्ति तक के लिए किसी बड़ी सेना की आवश्यकता न होगी। आन्तरिक शान्ति तो उसके निवासियों की सदिच्छा के कारण बनी ही रहेगी, और चूंकि दूसरे देशों पर उसकी कोई बुरी नीयत नहीं है, वह इस बात की आशा तथा मांग तक कर सकेगा कि उसके प्रति भी कोई बुरी नीयत न रक्खे; और फिर उसकी रक्षा तो सारे विश्व की सदिच्छा के कारण आप ही हो जायगी। इस दृष्टि से देखते हुए तो ब्रिटेनवासियों तक को, यदि उनका उद्देश्य भारत को वर्तमान अस्वाभाविक हालत में पटके रखना नहीं है, हमारी स्वाधीनता से डरने का कोई कारण नहीं। हमारा मार्ग भी स्फटिक की भांति साफ व स्वच्छ है। यह मार्ग सक्रिय, सजीव, अहिंसात्मक सामूहिक प्रतिकार का है। हम एक बार असफल हो जायं, दो बार हो जायं, लेकिन एक दिन हम अवश्य सफल होंगे।

"कइयों ने तो इस मार्ग पर चलकर अपना जीवन और अपना सर्वस्व तक निछावर कर दिया है। और भी ज्यादा व्यक्तियों ने अपने आपको स्वतन्त्रता के युद्ध में कुर्बान कर दिया है। लेकिन यदि हमारे मार्ग में कोई कठिनाइयां आवें तो हमें उनसे घबराना नहीं चाहिए और न हमें डर से या लालच से अपने सीधे मार्ग को छोड़ना ही चाहिए। हमारे शस्त्र बेजोड़ हैं; संसार हमारे इस बृहद्-प्रयोग की प्रगति को बड़े चाव और आशा के साथ देख रहा है। हमें अपने ध्येय पर अचल और अपने निश्चय पर अटल रहना चाहिए। सत्याग्रह सक्रिय रूप में कुछ काल के लिए पछाड़ खा जाय यह बात दूसरी है, लेकिन सत्याग्रह में पराजय को तो कोई स्थान ही नहीं है। सत्याग्रह तो स्वयं ही एक भारी विजय है, जैसा कि जेम्स लॉवेल ने कहा था :—

"Truth for ever on the scaffold,
Wrong for ever on the throne,

Yet that scaffold sways the future,
And behind the dim unknown,
Standeth God within the shadow,
Keeping watch above His own."

"सत्य भले ही जगतीतल में दिखे लटकता सूली पर,
और दिखे अन्याय शान से डटा हुआ सिंहासन पर,
सूली का प्रिय सखा सत्य वह तो भी इस भावी का—
पथ पलटा देगा, क्षण भर में, होगा पूजित घर-घर।
सदा खड़े भगवान रहेंगे तिमिराच्छन्न गगन में,
अपने प्यारों को बल देने जन में और विजन में॥"

कांग्रेस के प्रस्ताव

अब हम उन प्रस्तावों की ओर आते हैं जो बम्बई-कांग्रेस ने २६, २७ व २८ अक्तूबर को अपने अधिवेशन में जिसके राजेन्द्रबाबू सभापति और श्री के० एफ० नरीमैन स्वागताध्यक्ष थे, पास किये।

कांग्रेस के पहले प्रस्ताव-द्वारा उन प्रस्तावों को मंजूर किया गया जो कार्य-समिति व महा-समिति ने मई १९३४ में व उसके बाद अपनी बैठकों में पास किये थे और जिनके विषय खास तौर पर पार्लमेण्टरी-बोर्ड, उसकी नीति व कार्य-क्रम, रचनात्मक कार्य-क्रम, प्रवासी भारतीयों की स्थिति, शोक-प्रकाश व स्वदेशी थे।

इसके पश्चात् राष्ट्र के त्याग व सविनय-अवज्ञा में राष्ट्र की आस्था-विषयक एक प्रस्ताव पास हुआ, जो इस प्रकार था—

"यह कांग्रेस राष्ट्र को उसके हजारों स्त्री-पुरुष, बूढ़े और जवान, गांवों व शहरों के सत्याग्रहियों के वीरतापूर्ण त्याग व कष्टसहन के लिए बधाई देती है और अपने इस विश्वास को प्रकट करती है कि अहिंसात्मक असहयोग व सविनय-अवज्ञा के बिना देश में इतने मार्के की सामूहिक जाग्रति का होना असम्भव था। इसलिए जहां वह इस बात की आवश्यकता महसूस करती है कि सिवाय गांधीजी के औरों के लिए सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन मौकूफ कर दिया जाय, वह इस बात में भी अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करती है कि स्वराज्य-प्राप्ति के लिए हिंसात्मक उपायों की अपेक्षा, जिनके बारे में अनुभव अच्छी तरह बता चुका है कि उनका परिणाम जालिम व मजलूम दोनों के द्वारा आतंक-प्रयोग में ही होकर रहता है, अहिंसात्मक असहयोग और सविनय-अवज्ञा अधिक अच्छे साधन हैं।"

इसके पश्चात् एक प्रस्ताव-द्वारा पं० जवाहरलाल नेहरू की धर्मपत्नी श्रीमती कमला नेहरू की बीमारी पर कांग्रेस की चिन्ता प्रकट की गई और इस बात की उम्मीद की गई कि पहाड़ी-स्थान पर जाने से उनका स्वास्थ्य ठीक हो जायगा।

अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ के विषय पर खासी बहस और चहल-पहल रही और इस सम्बन्ध में निम्न लम्बा प्रस्ताव पास किया गया—

"चूंकि देश-भर में कांग्रेसियों के सहयोग से अथवा उनके सहयोग के बिना स्वदेशी के प्रचार का दावा करनेवाली बहुत-सी संस्थायें खुल गई हैं, जिससे लोगों के दिलों में इस बारे में बहुत भ्रम फैल गया है कि 'स्वदेशी' का स्वरूप क्या है, और चूंकि अपने आरम्भ से ही कांग्रेस का ध्येय सर्व-

साधारण की प्रगतिशील भावनाओं के साथ रहता रहा है, और चूंकि गावों का पुनस्संगठन और पुनर्निर्माण कांग्रेस के रचनात्मक-कार्यक्रम का एक अंग है, और चूंकि ऐसे पुनर्निर्माण के लिए हाथ की कताई के मुख्य धन्धे के अलावा गांवों के लुप्त या लुप्तप्राय उद्योग-धन्धों का पुनरुद्धार करना अथवा उन्हें प्रोत्साहन देना जरूरी है, और चूंकि हाथ की कताई के पुनस्संगठन जैसा काम तभी सम्भव है जब कि उसके लिए जुटकर शक्ति लगाई जाय और ऐसे विशेष प्रयत्न किये जायं जो कांग्रेस की राजनैतिक हलचलों से पृथक् और स्वतन्त्र हों, इसलिए श्री जे० सी० कुमारप्पा को अधिकार दिया जाता है कि वे गांधीजी की सलाह और देख-रेख में कांग्रेस के कार्य के एक अंग के रूप में 'अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ' नाम की संस्था का निर्माण करें। उक्त संघ उक्त उद्योग-धन्धों के पुनरुद्धार व प्रोत्साहन के लिए और गांवों की नैतिक और शारीरिक उन्नति के लिए कार्य करेगा और उसे अपना विधान बनाने, धन-संग्रह करने तथा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आवश्यक कार्य करने का अधिकार होगा।"

इस प्रस्ताव के परिणाम-स्वरूप ही नुमाइशों तथा प्रदर्शनों के सम्बन्ध में भी एक प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था—

"चूंकि कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों पर होनेवाली नुमाइशों तथा धूम-धड़ाके के प्रदर्शनों के प्रबन्ध-भार व व्यय से स्वागत समिति को मुक्त करना वांछनीय है और चूंकि इन नुमाइशों व प्रदर्शनों के कारण छोटे स्थानों के लिए यह असम्भव हो जाता है कि वे कांग्रेस को आमन्त्रित कर सकें, भविष्य में स्वागत-समिति नुमाइशों तथा धूम-धड़ाके के प्रदर्शनों के भार से बरी की जाती है। लेकिन चूंकि नुमाइशें व धूम-धड़ाके के प्रदर्शन वार्षिक राष्ट्रीय सम्मेलन के आवश्यक अंग हैं, इनके प्रबन्ध का कार्य अखिल-भारतीय चर्खा-संघ व ग्राम-उद्योग-संघ के सुपुर्द किया जाता है। ये संस्थायें इन प्रदर्शनों का संगठन इस प्रकार करेंगी कि शिक्षा के साथ-साथ आम जनता का और खासकर गांव वालों का मनोरंजन भी हो। ऐसा करने में उनका एकमात्र उद्देश्य होगा अपनी हलचलों का दिग्दर्शन कराना और उन्हें लोक-प्रिय बनाना, और आमतौर पर ग्राम्य-जीवन की छिपी शक्तियों को प्रदर्शित करना।"

कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड पर भी कांग्रेस ने एक प्रस्ताव पास किया। स्वयं बोर्ड ने ही एक प्रस्ताव-द्वारा अपनी यह सम्मति प्रकट की थी कि चूंकि बोर्ड का निर्माण एक असाधारण स्थिति में हुआ था, यह वांछनीय है कि उसका जीवन-काल एक साल तक सीमित रहे और उसके सदस्य नाम-जद होने के बजाय निर्वाचित किये जाया करें और उसके बाद वह चुनाव के आधार पर बने। उसकी अवधि और शर्तें, जैसी उचित समझी जायं, उस समय तय कर ली जायं। बोर्ड ने अपना यह प्रस्ताव कार्य-समिति के पास सिफारिश के रूप में भेजा। कांग्रेस ने बोर्ड की सिफारिश स्वीकार करते हुए निश्चय किया कि मौजूदा पार्लमेण्टरी बोर्ड १ मई १९३५ को भंग हो जाय और महा-समिति उस तारीख तक या उससे पहले २५ सदस्यों के एक नये बोर्ड का चुनाव करे। निर्वाचित बोर्ड को ५ सदस्यों को अपने में और सम्मिलित करने का अधिकार भी दिया गया। कांग्रेस ने यह भी निश्चय किया कि हर साल कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर पार्लमेण्टरी बोर्ड का नया चुनाव हुआ करे और इस बोर्ड को भी ५ अतिरिक्त सदस्यों के सम्मिलित करने का अधिकार रहे। निर्वाचित पार्लमेण्टरी बोर्ड को भी वही अधिकार दिये गये जो मौजूदा बोर्ड को थे। कांग्रेस के नये विधान पर हम पहले ही काफी विवेचन कर चुके हैं।

स्त्रदर-मताधिकार के सम्बन्ध में एक पृथक् प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था—

"कांग्रेस का कोई भी सदस्य किसी पद या किसी भी कांग्रेस-कमिटी के चुनाव के लिए खड़ा न हो सकेगा, यदि वह पूरे तौर से हाथ की कती-बुनी खादी आदतन न पहनता हो ।"

बम्बई-कांग्रेस में सबसे पहली बार श्रम-मताधिकार का प्रस्ताव पास किया गया, जो इस प्रकार था—

"कोई भी व्यक्ति किसी भी कांग्रेस-कमिटी की सदस्यता के लिए उम्मीदवार खड़ा होने का हकदार न होगा, यदि उसने चुनाव की नामजदगी की तारीख को समाप्त होनेवाले ६ महीनों में कांग्रेस की ओर से या कांग्रेस के लिए लगातार कोई ऐसा शारीरिक-श्रम न किया होगा जो प्रति मास मूल्य में अच्छे कते हुए १० नम्बर के ५०० गज सूत के बराबर हो, या जो प्रति मास समय में ८ घण्टे के बराबर हो। कार्य-समिति समय-समय पर प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटियों तथा अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ से सलाह लेकर यह निर्धारित करेगी कि कताई के बजाय दूसरा कौनसा श्रम स्वीकार किया जायगा।"

गांधीजी की अलहदगी ने इस बात का तकाजा किया कि गांधीजी में विश्वास का एक प्रस्ताव पास किया जाय। तत्सम्बन्धी प्रस्ताव इस प्रकार था—

"यह कांग्रेस महात्मा गांधी के नेतृत्व में अपने विश्वास को फिर प्रकट करती है। उसका यह दृढ़ मत है कि कांग्रेस से अलग होने के निश्चय पर उन्हें विचार करना चाहिए। लेकिन चूंकि उन्हें इस बात के लिए राजी करने के सब प्रयत्न विफल हुए हैं, यह कांग्रेस अपनी इच्छा के विरुद्ध उनके निर्णय को मानते हुए राष्ट्र के लिए की गई उनकी बेजोड़ सेवाओं के प्रति धन्यवाद प्रकट करती है और उनके इस आश्वासन पर संतोष प्रकट करती है कि उनकी सलाह-मशविरा और पथ-प्रदर्शन आवश्यकतानुसार कांग्रेस को प्राप्त होता रहेगा।"

कांग्रेस के आगामी अधिवेशन के लिए युक्त-प्रान्त से निमन्त्रण मिला, वह स्वीकार किया गया।

असेम्बली का चुनाव

बम्बई का अधिवेशन खतम भी न हो पाया था कि देश असेम्बली के चुनावों में जी-जान से कूद पड़ा। इससे लोगों ने फिर महसूस किया कि कुछ जीवन का संचार हुआ और मानों कुछ काल के लिए उन्हें अपनी मनचाही चीज मिल गई। देश का जिला-जिला और देश की तहसील-तहसील छान डाली गई। देश-भर में प्रचार-आन्दोलन जारी कर दिया गया। कांग्रेस ने लगभग हरेक 'साधारण' क्षेत्र की जगह के लिए अपना उम्मीदवार खड़ा किया। राष्ट्रवादियों ने पण्डित मालवीय और श्री अणे के नेतृत्व में कांग्रेस से अलग कांग्रेस-नेशनलिस्टों के नाम से खड़ा होने का निश्चय किया। जिस क्षेत्र के चुनाव पर देश का सबसे अधिक ध्यान गया वह था दक्षिण-भारत का व्यापार-क्षेत्र, जिसके लिए सर षण्मुखम् चेट्टी खड़े हुए थे। स्मरण रहे कि सर चेट्टी को भारत-सरकार ने एक व्यापार-सन्धि की शर्तें तय करने के लिए ओटावा भेजा था। साम्राज्य के माल को तरजीह देने के सिद्धान्त के आधार पर उन्होंने व्यापार सन्धि की शर्तें तय कर डालीं। ओटावा से लौटकर वे असेम्बली के अध्यक्ष भी चुन लिये गये थे। उनको एक प्रकार से मदरास-सरकार व भारत-सरकार का समर्थन तक प्राप्त था। मदरास-सरकार के भूतपूर्व गृह-सदस्य सर मुहम्मद उस्मान तथा चीफ मिनिस्टिर बॉबिली के राजा उनके पक्ष में निकाले गये घोषणा-पत्र पर दस्तखत करनेवालों में मुख्य थे। उनके पक्ष में इंग्लैण्ड के इस रिवाज तक को पेश किया गया कि पार्लमेण्ट अर्थात् असेम्बली के अध्यक्ष के विरुद्ध किसी को चुनाव न लड़ना चाहिए। सरकारी अफसरों तक ने खुलकर चुनाव में भाग लिया।

कांग्रेस सर चेट्टी के विरोधी सामी वेंकटाचलम चेट्टी की ओर थी। सामी वेंकटाचलम ने सर षण्मुखम् के ऊपर जो विजय प्राप्त की उसकी गणना साधारण विजयों में नहीं की जा सकती। वास्तव में वह सरकार के ऊपर कांग्रेस की, धनसत्ता के ऊपर नैतिक-बल की, और ओटावा और ब्रिटेन दोनों के ऊपर भारत की विजय थी। दक्षिण-भारत में कांग्रेस ने और सब जगहों पर भी कब्जा कर लिया। मदरास-अहाते में ११ प्रादेशिक जगहें थीं; हरेक के चुनाव में कांग्रेस को ढेर-की-ढेर रायें मिलीं। बंगाल में कांग्रेस-नेशनलिस्टों ने सब 'साधारण' जगहों पर कब्जा कर लिया। युक्त-प्रान्त में भी कांग्रेस ने सब 'साधारण' जगहों पर कब्जा कर लिया, जैसा कि वह सन् १९२६ में भी नहीं कर सकी थी। युक्त-प्रान्त में कांग्रेस को मुसलमानों की भी एक जगह मिल गई। बिहार, मध्यप्रान्त, महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक व आसाम में सब जगह कांग्रेस ने बाजी मारी। केवल पंजाब में ही कांग्रेस पिछड़ गई। वहां उसे केवल एक ही जगह मिली। कुल मिलाकर कांग्रेस ने ४४ जगहों पर कब्जा कर लिया जिसके लिए यह कहा जा सकता है कि वे शुद्ध कांग्रेसी जगहें हैं। इन जगहों के अलावा कांग्रेस नेशनलिस्टों की जगहें भी उसे प्राप्त हुईं। साम्प्रदायिक 'निर्णय' के प्रश्न के अलावा कांग्रेस-नेशनलिस्ट हरेक बात में कांग्रेस के साथ थे।

असेम्बली में कांग्रेस-पार्टी ने श्री तसद्दुक अहमदखां शेरवानी को असेम्बली की अध्यक्षता के लिए खड़ा किया, लेकिन वे हार गये। अपने तीन विजयी उम्मीदवार श्री अभ्यंकर, शेरवानी व शशमल को खोकर कांग्रेस को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। देश को श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ सेवा अर्पित करके ये तीनों वीर अपने जीवन के यौवन-काल में इस संसार से कूच कर गये। श्री शशमल कांग्रेस-नेशनलिस्ट पार्टी के थे।

असेम्बली में कांग्रेस-पार्टी का कार्य

कांग्रेस-पार्टी ने फौरन असेम्बली में, जिसका अधिवेशन ११ जनवरी को शुरू हुआ, अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। सरकार ने अखिल-भारतीय ग्राम-उद्योग-संघ के बारे में जो गश्ती-पत्र निकाला था उस पर विवाद उठाने के लिए कांग्रेस ने कार्य रोक रखनेका प्रस्ताव पेश किया, लेकिन वह खटाई में पड़ गया। श्री शरत्चन्द्र वसु को नजरबन्द रखने के विरोध में पेश किया गया ऐसा ही प्रस्ताव ५४ के विरुद्ध ५८ रायों से पास हो गया। स्मरण रहे कि श्री शरत्चन्द्र वसु जब नजरबन्द थे तब भी वे असेम्बली के लिए निर्विरोध चुन लिये गये। असेम्बली के सदस्य होते हुए भी असेम्बली की बैठकों में भाग लेने की सरकार ने उन्हें इजाजत न दी। कांग्रेस-पार्टी का ध्यान सबसे पहले इस बात की ओर ही गया और उसने श्री भूलाभाई के योग्य नेतृत्व में अपनी मोर्चेबन्दी की। श्री देसाई के बारे में यह कहना अत्युक्ति न होगी कि उन्होंने असेम्बली को वही गौरव और वही प्रतिष्ठा प्राप्त करा दी जो पण्डित मोतीलालजी ने कराई थी। आप कुछ काल तक बम्बई के एडवोकेट-जनरल रहे थे, लेकिन आपने उन कई ऊंचे-ऊंचे सरकारी पदों तक की तनिक भी परवाह न की जो स्वभावतः इस पद को प्राप्त करने वाले व्यक्ति को अक्सर मिला ही करते हैं। कांग्रेस ने अपना दूसरा वार ब्रिटेन व भारत में हुए तिजारती समझौते पर किया। ५८ के विरुद्ध ६६ रायों से असेम्बली ने यह प्रस्ताव पास कर दिया कि समझौता खतम कर दिया जाय। (सरकारी) पद का दुरुपयोग करके अपने स्वार्थों के लिए जो लज्जाजनक-से लज्जाजनक कार्य किया जा सकता है उसका यह समझौता एक ज्वलन्त उदाहरण था, जिसे भारत-मंत्री व ब्रिटेन के व्यापार-मण्डल के प्रधान ने आपस में किया था। समझौता तो किया था ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के दो सदस्यों ने भारत के व्यापार की लूट को बांटने के लिए, पर उसको दे दिया गया बड़ा ऊंचा नाम 'ब्रिटेन-भारत का व्यापारिक समझौता'। वास्तव में

यह बात थी कि नये सुधारों में व्यापारिक संरक्षणों के बारे में ज्वाइन्ट पार्लमेन्टरी-कमिटी की रिपोर्ट में जो सिफारिशें की जाने वाली थीं, उनको अमल में लाने के लिए ही पहले से यह समझौता कर डाला गया था। समझौते में यह बात खुलासा तौर पर रक्खी गई कि "भारतीय-व्यवसायों को केवल इतना ही संरक्षण दिया जायगा, अधिक नहीं, जिससे कि बाहर से आनेवाला माल भारत में लगभग उसी कीमत पर बिक सके जिस कीमत पर उसी प्रकार का भारत का बना माल यहां बिकेगा; और जहांतक सम्भव होगा ब्रिटेन के बने माल पर कम महसूल लगाया जायगा। इंग्लैण्ड के तथा अन्य विदेशी माल पर जो भिन्न भिन्न भेद-भावपूर्ण महसूल लगाये गये हैं या लगाये जायंगे, उन्हें इस प्रकार न बदला जायगा कि ब्रिटेन के माल को नुकसान पहुंचे। जब कभी किसी भारतीय-व्यवसाय को संरक्षण देने का प्रश्न टैरिफ-बोर्ड के सुपुर्द किया जायगा तो भारत-सरकार उस व्यवसाय से सम्बन्ध रखनेवाले ब्रिटेन के हर व्यवसाय को यह अवसर देगी कि वह अपना पक्ष पेश कर सके और अन्य फरीकों की दलीलों का जवाब दे सके।

ब्रिटेन में भारत का कच्चा लोहा तभी तक बिना चुंगी के जाता रहेगा जबतक भारत में आनेवाले फौलाद और लोहे पर चुंगी का कानून वर्तमान समय की भांति ही ब्रिटेन के अनुकूल रहेगा। इस विलक्षण समझौते पर १० जनवरी १९३५ को हस्ताक्षर हुए और बड़ी कौंसिल में इसकी चारों ओर से निन्दा की गई। खुदाई खिदमतगारों पर लगाये गये प्रतिबन्ध को हटाने के पक्ष में ७४ और विपक्ष में ४६ रायें आईं। सरकार की कर-सम्बन्धी नीति के ऊपर भी लोकमत की ही विजय हुई। इसके बाद स्याम के चावल और २५ या ३० अन्य विषयों पर विजय प्राप्त हुई। हमने ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट की चर्चा जान-बूझकर अन्त में करने के लिए रख छोड़ी थी। निर्वाचन के समय जो व्हाइट-पेपर था उसने अब ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट का रूप धारण कर लिया था। यह रिपोर्ट पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं-द्वारा पास की जा चुकी थी और अब यह कानून बन गया था। इस रिपोर्ट की सिफारिशों का खुलासा और उन्हें रद कराने के कारणों पर बड़ी कौंसिल ने जो प्रस्ताव पास किया था, और इस सम्बन्ध में जो कार्रवाई की गई थी, उसे हम नीचे देते हैं।

इस रिपोर्ट की बहस के सम्बन्ध में सरकार ने बड़ी कौंसिल में जो ढंग अख्तियार किया वह प्रान्तीय-कौंसिलों में अख्तियार किये गए ढंग से भिन्न था। प्रान्तीय-कौंसिलों में सरकारी सदस्यों ने मत देने में भाग नहीं लिया, जो ठीक ही था, जिससे रिपोर्ट के सम्बन्ध में कौंसिलों का भारतीय लोकमत ही प्रकट हो सके। पर बड़ी कौंसिल में सरकार ने बहस में भाग लेने का, और रिपोर्ट पर विचार करने के प्रस्ताव के विरोध में पेश किये गये संशोधन के विरुद्ध सारी प्राप्त रायें एकत्र करने का निश्चय किया। यदि सरकार इस प्रकार हस्तक्षेप न करती तो कांग्रेस ने इस योजना के आधार पर किसी प्रकार का कानून न बनाने के लिए सरकार से सिफारिश करने का जो असंदिग्ध प्रस्ताव पेश किया था, वह पास हो जाता। पर बड़ी कौंसिल ने जिन्ना साहब के संशोधन को पास कर दिया। मत लेने के लिए इस संशोधन को दो खण्डों में बांटा गया। इनमें से पहला खण्ड साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में था। श्री जिन्ना के संशोधन-स्वरूप कांग्रेस-पार्टी ने तटस्थ रहने का प्रस्ताव पेश किया, जो नामंजूर हुआ। इस संशोधन के पक्ष में कांग्रेस पार्टी की ४४ रायें आईं। अपना संशोधन नामंजूर होने के बाद कांग्रेस-पार्टी तटस्थ रही और श्री जिन्ना के संशोधन का पहला अंश मुसलमानों और सरकारी सदस्यों की सम्मिलित रायों से पास हो गया।

श्री जिन्ना के संशोधन के दूसरे और तीसरे भागों को एकसाथ रक्खा गया और बड़ी कौंसिल ने उन्हें सरकारी प्रस्ताव के स्थान पर ७४ वोटों से अपनाया। सरकार के पक्ष में ५८ वोट आये।

कांग्रेस पार्टी ने संशोधन के पक्ष में राय दी और नामजद-सदस्यों के खिलाफ राय दी।

श्री जिन्ना का संशोधन इस प्रकार था—

"यह कौंसिल साम्प्रदायिक 'निर्णय' को जैसा कुछ भी है, उस समय तक के लिए स्वीकार करती है जबतक विभिन्न जातियों का आपस में समझौता तैयार न हो जाय।

प्रान्तीय-सरकारों की योजना के सम्बन्ध में इस कौंसिल की यह राय है कि वह अत्यन्त असन्तोषजनक और निराशा-पूर्ण है, क्योंकि उसमें अनेक आपत्तिजनक बातें रक्खी गई हैं—जैसे खासकर दुहरी कौंसिलों का कायम करना, गवर्नर को असाधारण और विशेष अधिकार प्रदान करना, पुलिस के नियमों, गुप्तचर-विभाग और खुफिया-पुलिस-सम्बन्धी कलमें हैं, जिनके द्वारा कार्यकारिणी और कौंसिलों का नियंत्रण और उत्तरदायित्व वास्तविक न रहेगा। जबतक इन आपत्तिजनक बातों को न हटाया जायगा, भारतीय-लोकमत का कोई अंग सन्तुष्ट न होगा।

अखिल-भारतीय संघ कहलानेवाली केन्द्रीय-सरकार की योजना के संबंध में कौंसिल की यह स्पष्ट राय है कि यह योजना जड़ से ही दोषपूर्ण है और ब्रिटिश-भारत की जनता के लिए अस्वीकार्य है; इसलिए यह कौंसिल भारत-सरकार से सिफारिश करती है कि वह सम्राट् की सरकार को सलाह दे कि इस योजना के आधार पर कोई कानून न बनावे। यह कौंसिल इस बात पर जोर देती है कि यह स्थिर करने के लिए कि सिर्फ ब्रिटिश-भारत में वास्तविक और पूर्ण उत्तरदायी सरकार किस प्रकार स्थापित की जाय, तत्काल ही चेष्टा की जाय, और इस उद्देश्य को सामने रखकर बिना विलम्ब भारतीय-लोकमत से परामर्श करके स्थिति में परिवर्त्तन करे।"

श्री जिन्ना के संशोधन के दूसरे और तीसरे भाग को एकसाथ सरकारी प्रस्ताव के स्थान पर एक पूर्ण योजना के रूप में पेश किया गया था। सरकार ने, लॉ-मेम्बर के द्वारा, इस संशोधन को भी ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट को वैसा ही रद करनेवाला समझा जैसा कांग्रेस पार्टी द्वारा पेश किया गया खुल्लम-खुल्ला रद करने का प्रस्ताव था। लॉ-मेम्बर ने श्री जिन्ना के संशोधन का वर्णन करते हुए कहा—

"महोदय, मैं यह कहनेवाला था कि अपने मित्र श्री देसाई के सीधे, सच्चे और खुले आक्रमण के स्थान पर अब हमारे सामने अपने माननीय मित्र मुहम्मदअली जिन्ना साहब का अप्रत्यक्ष और कौशल-पूर्ण-आक्रमण मौजूद है, यद्यपि इसका उद्देश्य भी वही है।

"मेरे माननीय मित्र अच्छी तरह जानते हैं कि वैसे देखने में तो यह आधे भाग पर आक्रमण है, पर असलियत में मेरे माननीय मित्र श्री जिन्ना के संशोधन में और कांग्रेस-नेता के संशोधन में मूलतः कोई अन्तर नहीं है।"

जब रेलवे-बजट पर विचार हुआ तो सरकार को अनेक बार हार खानी पड़ी थी। अनेक सदस्यों ने विविध पहलुओं से रेलवे के प्रबन्ध में सरकारी-नीति के खूब धुरें उड़ाये। विरोधी दल के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने रेलवे ग्रान्ट को घटाकर १) कर देने का प्रस्ताव पेश किया। उन्होंने अपने भाषण के दौरान में प्रसंगवश सरकार की वर्तमान-नीति के धुरें उड़ाये और कहा कि यह नीति १९३० के खरीते के अनुसार बरती जा रही है। इस प्रकार नीति बरतने के कारण हैं (अ) राजनैतिक हलचल के समय सैनिक अधिकारियों को तुरन्त और पर्याप्त सहायता देना; (आ) भारतीय रेलवे में लगी हुई विशाल पूंजी की रक्षा करना; (इ) भारतमंत्री-द्वारा नियुक्त किये गये उच्च-पदस्थ रेलवे-अधिकारियों के पदों की रक्षा की जिम्मेदारी लेना; (ई) सैनिक और अन्य कार्यों की बिना पर भविष्य में यूरोपियनों की भर्ती की व्यवस्था; (उ) रेलवे की नौकरियों में अधगोरों के

हित बनाये रखना। इस नीति को ध्यान में रखकर ही प्रस्तावित भारतीय बिल में रेलवे को गवर्नर-जनरल के विशेष उत्तरदायित्व की सूची में रक्खा गया है।

श्री देसाई का प्रस्ताव, जैसा कि उन्होंने बहस के दौरान में स्पष्ट कर दिया था, 'विरोध-सूचक' प्रस्ताव न था, बल्कि शासन-खर्च देने से इन्कारी थी। उनका प्रस्ताव ७५ रायों से. पास हुआ। विपक्ष में केवल ४७ रायें आईं। किसी स्वतन्त्र देश में शासन-खर्च देने का इन्कारी-सूचक प्रस्ताव पास होने का सरकार पर अनिवार्य प्रभाव पड़ता। रेलवे-बजट के सिलसिले में, अन्य विरोधात्मक प्रस्तावों में से, एक प्रस्ताव रेलवे की नौकरियों में भारतीयों को स्थान देने के सम्बन्ध में था, जो ८१ रायों से पास हुआ; विपक्ष में ४४ रायें आईं। एक प्रस्ताव तीसरे दर्जे के मुसाफिरों के सम्बन्ध में था, एक रेलवे की नीति के सम्बन्ध में था, और एक प्रस्ताव खाद्य-पदार्थों पर रेलवे का महसूल घटाने के और मजदूरी के सम्बन्ध में व्हिटले-कमीशन की सिफारिशों के सम्बन्ध में था।

नई कार्य-समिति की पहली बैठक पटना में ५, ६ और ७ दिसम्बर १९३४ को हुई। समिति ने श्री बी० एन० शशमल की मृत्यु पर शोक-प्रकाश किया। वे बड़ी कौंसिल के लिए निर्वाचन का फल प्रकट होने के दिन ही परलोक सिधारे थे। कार्य-समिति ने ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किये और निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया—

"चूंकि कांग्रेस ने पूरी तरह और ध्यानपूर्वक विचार करने के बाद यह निश्चय किया था कि व्हाइट-पेपर में आयोजित भारत की शासन-व्यवस्था को रद कर दिया जाय और केवल विधान कारिणी-सभा-द्वारा तैयार की गई शासन-व्यवस्था ही सन्तोष-जनक हो सकती है;

"और चूंकि इस नामंजूरी और विधान-कारिणी सभा की मांग को देश ने बड़ी कौंसिल के आम निर्वाचन के अवसर पर स्पष्ट-रूप से पुष्ट कर दिया है;

"और चूंकि ज्वाइन्ट पार्लमेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट के प्रस्ताव कई बातों में व्हाइटपेपर की तजवीजों से भी गये-बीते हैं और भारत के लगभग पूरे लोकमत ने प्रतिगामी और असन्तोषजनक कहकर उनकी निन्दा की है;

"और चूंकि ज्वाइंट पार्लमेण्टरी-कमिटी की योजना में, जो इस देश पर विदेशियों के प्रभुत्व और रक्त-शोषण को एक महंगे चोगे में सुविधा-पूर्ण और स्थायी रूप देने के लिए तैयार की गई है, वर्तमान शासन-प्रणाली की अपेक्षा अधिक खराबी और खतरा है;

"इसलिए इस समिति की राय है कि इस योजना को रद कर दिया जाय। यद्यपि वह भली-भांति जानती है कि उसे रद कर देने का अर्थ है जबतक कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार विधान-कारिणी सभा-द्वारा तैयार की गई योजना को स्थान न मिल जाय तबतक वर्तमान शासन-प्रणाली के, जो असहनीय और अपमानकारी है, अन्दर लड़ाई जारी रखना। यह समिति बड़ी कौंसिल के सदस्यों से अनुरोध करती है कि वे इस सरकारी योजना को, जिसे सुधारों के नाम पर भारत पर लादा जा रहा है, रद कर दें। यह समिति राष्ट्र से अपील करती है कि पूर्ण स्वराज्य की राष्ट्रीय लक्ष्य-सिद्धि के लिए कांग्रेस जो उपाय स्थिर करे, वह उसका समर्थन करे।

"यह कार्य-समिति जनता को, बड़ी कौंसिल के निर्वाचन के अवसर पर कांग्रेस के नेतृत्व के प्रति उसके विश्वास और आस्था के प्रदर्शन पर, बधाई देती है और कांग्रेस-संस्थाओं और कांग्रेस-वादियों से अनुरोध करती है कि वे अगले तीन महीनों में अपना ध्यान निम्न कार्यक्रम को पूरा करने की ओर दें—

(१) कांग्रेस के नये विधान के अनुसार कांग्रेस के सदस्य बनाना और कांग्रेस-कमिटियों का संगठन करना; (२) ग्राम-उद्योगों के निमित्त उपयोगी सामग्री एकत्र करना; और (३) जनता को उसके अधिकारों और कर्तव्यों के सम्बन्ध में और करांची-कांग्रेस के द्वारा पास किये गये आर्थिक कार्यक्रम के सम्बन्ध में जानकारी कराना।"

श्री सुभाषचन्द्र वसु की स्वतन्त्रता और गति-विधि पर जब वे अपने पिता की मृत्यु पर थोड़े समय के लिए भारत आये थे, जो अपमान और सन्ताप-जनक सरकारी बन्दिशें लगाई गई थीं, उन पर कार्य-समिति ने क्षोभ प्रकट किया। समिति ने सम्मति प्रकट की कि कौंसिलों में गये हुए कांग्रेसी सदस्यों को सदा खद्दर पहनना चाहिए और उनसे अनुरोध किया कि वे इस नियम का पालन कड़ाई के साथ करें। कार्य-समिति से बंगाल के राष्ट्रीय-दल ने जो आग्रह किया था कि गत-निर्वाचन के अवसर पर दिये गये बंगाल के हिन्दुओं के कांग्रेस-विरोधी मत को ध्यान में रखकर साम्प्रदायिक-निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस के रुख पर दुबारा विचार हो, उसके सम्बन्ध में समिति ने यह सम्मति स्थिर की कि कांग्रेस की नीति बम्बई-कांग्रेस के प्रस्ताव-द्वारा निर्धारित हुई थी, और समिति के अधिकांश सदस्यों ने उस नीति का समर्थन किया था, इसलिए उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता।

कांग्रेस का पचासवां वर्ष

अब हमें कांग्रेस से सम्बन्धित उन घटनाओं को संक्षेप में देना है जो १९३५ में घटित हुई। इस वर्ष कांग्रेस को पचास वर्ष होते हैं और इसी वर्ष का वर्णन इस पुस्तक का यह अन्तिम अंश है।

कार्य-समिति की बैठक १६से१८ जनवरी तक फिर हुई। इस बैठक में नागपुर के श्रीअभ्यंकर और गुजरात-विद्यापीठ के आचार्य गिडवानी के परलोक-वास पर शोक-प्रकाश किया गया। इन दोनों सज्जनों ने बड़े कष्ट उठाये थे और देश की सेवा बड़ी लगन के साथ की थी। अन्य वर्षों की भांति इस वर्ष भी पूर्ण-स्वराज्य-दिवस मनाया गया और इस अवसर के लिए सारे भारत के पालनार्थ एक खास प्रस्ताव बनाया गया। वह इस प्रकार है—

"इस महत्वपूर्ण राष्ट्रीय-दिवस पर हम स्मरण करते हैं कि पूर्ण-स्वाधीनता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है, और जबतक हम उसे प्राप्त न कर लेंगे चैन से न बैठेंगे।

"इस उद्देश्य की सिद्धि में हम मन, वचन, कर्म से यथाशक्ति सत्य और अहिंसा का पालन करेंगे और किसी भी त्याग या कष्ट के लिए कटिबद्ध रहेंगे।

"सत्य और अहिंसा के दो आवश्यक गुणों को व्यक्त करने के लिए हम

(१) विभिन्न जातियों में हार्दिक ऐक्य की वृद्धि करेंगे और बिना जाति, वर्ण या सम्प्रदाय का भेद किये सबसे बराबरी का रिश्ता कायम करेंगे।

(२) हम स्वयं भी मादक द्रव्यों के सेवन से बचेंगे और दूसरों को भी बचायंगे।

(३) हम हाथ से कातने की कला को और अन्य ग्राम्य-उद्योगों को प्रोत्साहन देंगे और अपने व्यवहार में खद्दर और ग्राम-उद्योग की अन्य वस्तुएं लायेंगे और दूसरी सारी चीजों को छोड़ देंगे।

(४) अस्पृश्यता का निवारण करेंगे।

(५) जिस तरह होगा, लाखों भूखों मरते हुए भारतवासियों की सेवा करेंगे।

(६) अन्य राष्ट्रीय और रचनात्मक कार्यों में भाग लेंगे।"

कार्य-समिति ने यह सिफारिश की कि राष्ट्रीय-दिवस में जहांतक सम्भव हो कोई खास रचनात्मक कार्य किया जाय, और इस दिन पूर्ण-स्वराज्य के लक्ष्य की सिद्धि के लिए अपेक्षाकृत अधिक आत्म-

समर्पण करने का निश्चय किया जाय। हड़तालें न की जायं। उसने यह भी हिदायत दी कि किसी आर्डिनेन्स या स्थानिक अधिकारी के हुक्म की अवहेलना न की जाय और न सभा में भाषण किये जायं। राष्ट्रीय झण्डा फहराया जाय और खड़े होकर पूर्वोक्त प्रस्ताव पास किया जाय।

सम्राट् जार्ज के शासन की रजत-जयन्ती की ओर स्वभावतः ही कार्य-समिति का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ और इस सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पास हुआ—

"सरकारी ऐलान प्रकाशित हुआ है कि भारत में सम्राट् की रजत-जयन्ती मनाई जायगी। इस अवसर पर जनता को कैसा रुख अख्तियार करना चाहिए, इस सम्बन्ध में कार्य-समिति पथ-प्रदर्शन करना आवश्यक समझती है।

"कांग्रेस के मन में खुद सम्राट् के प्रति तो मंगल-कामना के अतिरिक्त और कुछ हो नहीं सकता, न है ही; पर साथ ही कांग्रेस इस को नहीं भूल सकती कि भारत का शासन, जिसके साथ सम्राट् का स्वभावत: ही अविच्छिन्न सम्बन्ध है, राष्ट्र की राजनैतिक, नैतिक, और आर्थिक उन्नति के मार्ग में बहुत बड़ा रोड़ा रहा है। अब इस शासन की चरमसीमा एक ऐसी शासन-व्यवस्था के रूप में होनेवाली है, जो यदि जारी कर दी गई तो देश का रक्त-शोषण करने में, देश में जो-कुछ धन बचा है उसे खींच ले जाने में, और देश को पहले की अपेक्षा कहीं अधिक राजनैतिक दासत्व की अवस्था में पटकने में सफल होगी।

"अतएव कार्य-समिति के लिए जनता को आगामी जयन्ती में भाग लेने की सलाह देना असम्भव है। पर साथ ही यह कार्य-समिति जनता-द्वारा किसी प्रकार के विरोधी प्रदर्शन के द्वारा अंग्रेजों के या उन लोगों के दिलों को, जो जयन्ती में भाग लेना चाहते हैं, चोट पहुंचाने का निषेध करती है। इसलिए यह समिति जनता को और कांग्रेसियों को, जिनमें वे कांग्रेसी भी शामिल हैं जो निर्वाचित संस्थाओं के सदस्य हों, सलाह देती है कि वे जयन्ती के उत्सवों में भाग न लेकर ही सन्तुष्ट हो जायं।"

सूती-मिलों के प्रश्न पर स्थिति इन शब्दों में साफ की गई—"चूंकि अधिकांश सूती मिलों के मालिकों ने कांग्रेस को दिये वचनों को तोड़ दिया है, इसलिए कार्य-समिति की सम्मति है कि कांग्रेस या उससे सम्बन्ध रखनेवाली संस्थाओं के लिए प्रमाण-पत्र जारी करने का सिलसिला कायम रखना सम्भव नहीं है। ऐसी दशा में पुराने प्रमाण-पत्र अब रद्द समझे जायं।

"कार्य-समिति की यह भी राय है कि सारे कांग्रेसियों का और कांग्रेस से सहानुभूति रखनेवालों का यह कर्तव्य है कि वे केवल हाथ से कते और हाथ से बुने कपड़े की ओर ही ध्यान दें और उसी की उन्नति में सहायता करें।"

कार्य-समिति ने संशोधित-विधान की धारा १२ (ई—२) के अनुसार अनुशासन-भंग सम्बन्धी नियम पास किये।

कांग्रेस के विधान में रक्खी गई 'निवास-सम्बन्धी योग्यताओं' के वास्तविक अर्थ के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया गया था। कार्य-समिति ने उसको एक प्रस्ताव-द्वारा स्पष्ट कर दिया।

इसके बाद कार्य-समिति ने वर्मा की समस्या पर, ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी-कमिटी की सुधार-योजना की दृष्टि से, और कांग्रेस के एक केन्द्र की दृष्टि से, विचार किया, और निश्चय किया कि वर्मा-प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी पहले की भांति ही काम करती रहे।

ज्वाइंट-पार्लमेंटरी-कमिटी की नई सुधार-योजनाके अंतर्गत वर्मा-प्रवासी भारतवासियों की स्थिति के संबंध में सम्मति दी कि चूंकि सारी योजना ही अस्वीकार्य है, इसलिए कांग्रेस इसमें कोई

संशोधन नहीं पेश कर सकती। पर इस योजना के जो अंश वर्मा-प्रवासी भारतवासियों की स्थिति और दर्जे को खतरे में डालते हों, उनकी आलोचना करने में कोई रुकावट नहीं है।

अध्यक्ष को अधिकार दिया गया कि वह आंध्र के रायालसीमी के प्रदेश की बाढ़-पीड़ित जनता के कष्ट-निवारण के लिए धन की अपील करें।

७ फरवरी १९३५ को ज्वाइन्ट-पार्लमेण्टरी-कमिटी की रिपोर्ट के विरुद्ध दिवस मनाया गया और इसके द्वारा एकबार फिर आदर्श और कार्य का पारस्परिक सहयोग प्रदर्शित कर दिया गया। इस सम्बन्ध में जो अपील प्रकाशित की गई उसके उत्तर में बड़े-बड़े नगरों में ही सभायें की गई हों सो बात नहीं, अनेक प्रान्तों के कोने-कोने में सभायें की गईं। इन सारी सभाओं में वह प्रस्ताव पास किया गया जो कांग्रेस के अध्यक्ष ने बताया था।

रंगून में बर्मा-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी-द्वारा आयोजित प्रदर्शन भी अपने ढंग का निराला था, क्योंकि रिपोर्ट को रद करने की मांग पेश करने में वर्मी और भारतीय दोनों आपस में मिल गए थे।

अब हमें उस मेल-सम्बन्धी बातचीत की चर्चा करनी है जो १९३५ की जनवरी और फरवरी में हुई थी। एक ऐसे साम्प्रदायिक समझौते की बातचीत, जो साम्प्रदायिक 'निर्णय' का स्थान ले सके और जिसके द्वारा जातिगत वैमनस्य और कटुता दूर हो और देश सम्मिलित रूप से मुकाबला कर कांग्रेस के अध्यक्ष बाबू राजेन्द्रप्रसाद और मुस्लिम-लीग के सभापति श्री मुहम्मदअली जिन्ना में, एक महीने से भी अधिक दिनों तक चलती रही। बातचीत २३ जनवरी को आरम्भ हुई और बीच में कुछ दिनों के लिए बन्द रहकर फिर १ मार्च १९३५ तक जारी रही। पर इस बात-चीत का कोई परिणाम न हुआ और देश को बड़ी निराशा हुई।

१९३५ में भी सरकारी रुख या नीति में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। कांग्रेस को शक्तिशाली शत्रु समझकर उसपर सन्देह की निगाह रक्खी जा रही है और जरा-जरा-सी बात पर कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं के विरुद्ध कार्रवाई करने के अवसर से लाभ उठाया जाता है। जिनपर आतंककारी कामों का सन्देह किया जाता है, उन्हें अब भी बिना मुकदमा चलाये जेलों में या घरों में नजरबन्द रक्खा जा रहा है और अकेले बंगाल में ही उनकी संख्या २७०० है। अनेक स्थानों पर यदा-कदा मकानों की तलाशियां होती रहती हैं और महासमिति के तथा बिहार आदि प्रान्तों की कांग्रेस-कमिटियों के दफ्तरों पर भी निगाह पड़ चुकी है। खान अब्दुलगफ्फारखां को बम्बई में भाषण देने के अपराध में दो वर्ष की सजा दी गई और डॉक्टर सत्यपाल को निर्वाचन सम्बन्धी भाषण देने के सिलसिले में एक साल का दण्ड दिया गया।

बंगाल के नजरबन्दों की संख्या हजारों में है। उनके परिवार असहाय अवस्था में हैं। सरकार ने इन परिवारों से उनका निर्वाह करने में समर्थ युवकों को छीन लिया है। ये युवक कई वर्षों से बिना मुकदमा चलाए नजरबन्द रक्खे गए हैं या निर्वासित हैं। २४ और २५ अप्रैल को जबलपुर में महासमिति की बैठक हुई, जिसमें उनसे सहानुभूति प्रकट की गई और नजरबन्दों के परिवारों और आश्रितों के कष्ट-निवारण के लिए चन्दा इकट्ठा करने का निश्चय किया गया। १९ मई का दिन हजारों आदमियों को बिना मुकदमा चलाये नजरबन्द रखने के विरुद्ध दिवस मनाने और चन्दा इकट्ठा करने के लिए निश्चित किया गया। कांग्रेस के अध्यक्ष ने इस सम्बन्ध में देश के नाम एक अपील प्रकाशित की। बंगाल की सरकार ने कांग्रेस की इस कार्रवाई का मुकाबला करने के लिए इंडियन प्रेस (इमर्जेन्सी पावर्स) एक्ट की धारा २-ए के अन्तर्गत आदेश जारी कर दिया कि कांग्रेस के अध्यक्ष के आज्ञानुसार देश-भर में मनाये जानेवाले नजरबन्द-दिवस की देश के किसी स्थान की कोई सूचना-

पत्रों में प्रकाशित न की जाय। बंगाल के पत्रकारों ने इसका विरोध किया और इस सम्बन्ध में एक दिन के लिए पत्र-प्रकाशन बन्द रक्खा।

महासमिति ने अपनी २४ और २५ अप्रैल की जबलपुर की बैठक में कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड और निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करने के लिए एक समिति निर्वाचित की और हिसाब-किताब की जांच के लिए आडीटर नियुक्त किये। महासमिति ने श्री तसद्दुक अहमदखां शेरवानी की मृत्यु पर शोक प्रकट किया, बड़ी कौंसिल में कांग्रेस-पार्टी के काम पर संतोष प्रकट किया, देश का ध्यान सीमान्त-प्रदेश में कांग्रेस-संस्था के बदस्तूर गैर-कानूनी रहने; बंगाल के मिदनापुर जिले की कांग्रेस-कमिटियों के निषिद्ध रहने, और बंगाल, गुजरात व अन्य स्थानों पर खुदाई-खिदमतगार और हिन्दुस्तानी सेवादल आदि कांग्रेस से सम्बन्ध रखनेवाले दलों के गैर कानूनी बने रहने, और बंगाल, बम्बई, पंजाब और अन्य स्थानों में मजदूर और युवक-संघ की संस्थाओं के, केवल इस आधार पर कि उनकी प्रवृत्ति हिंसात्मक कार्यों की ओर है, कुचले जाने की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया, और जनता से अपील की कि कांग्रेस की शक्ति में इस तरह वृद्धि करे जिससे वह देश का उद्धार करने के योग्य बन जाय।

महासमिति ने "विदेशी-कानून" (Foreigners' Act) नामक पुराने कानून के दुरुपयोग का उल्लेख किया, जिसके द्वारा ब्रिटिश-भारत के कांग्रेस-वादियों को निर्वासित करके उन्हें ब्रिटिश भारत में आकर निवास करने और कामकाज करने के कानूनी अधिकार का उपयोग करने से वंचित किया गया है।

महासमिति ने बंगाल में प्रचलित सरकारी दमन-नीति की, अनेकानेक युवकों को नजरबन्द रखने की नीति की, जिसके कारण उनके परिवार अवलम्बहीन हो गये हैं, और स्वयं उन परिवारों के निर्वाह का प्रबन्ध न करने की निन्दा की। महासमिति ने सम्मति प्रकट की कि बंगाल की सरकार को या तो इन नजरबन्दों को छोड़ देना चाहिए, या उनपर अच्छी तरह मुकदमा चलाना चाहिए। बंगाल की जनता और उसके नजरबन्दों को आश्वासन दिया कि उनके कष्टों के साथ उसकी पूरी समवेदना है। समिति ने बंगाल-प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी को आज्ञा दी कि वह नजरबन्दों की पूरी सूची तैयार करे और उनके नजरबन्द रहने की अवधि और उनके परिवारों की आर्थिक अवस्था से उसे सूचित करे। नजरबन्दों के परिवारों का कष्ट-निवारण करने के उद्देश्य से कार्य-समिति की अधीनता में भारतवर्ष-भर में चन्दा एकत्र करने का निश्चय किया। फीरोजाबाद के सामूहिक हिंसात्मक कार्यों के ऊपर खेद प्रकट किया, जिनके फल-स्वरूप डॉ० जीवाराम का पूरा परिवार, बच्चों और कई रोगियों सहित, जीवित जला दिया गया था, और नेताओं का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित किया कि उन्माद-पूर्ण साम्प्रदायिकता के फल-स्वरूप कैसी शोकजनक घटनायें हो सकती हैं। नेताओं से अपील की कि जनता को यह सुझाने के लिए, कि एक-दूसरे के प्रति मेल और आदर के भावों के साथ शान्ति और मैत्री-पूर्वक रहना कितना आवश्यक है, प्रबल चेष्टा की जाय।

महासमिति ने यह स्पष्ट कर दिया कि अखिल भारतीय कांग्रेस के लिए देशी रियासतों की प्रजा के हित भी उतने ही प्रिय हैं, जितने ब्रिटिश-भारत की प्रजा के हित, और रियासतों की प्रजा को आश्वासन दिया कि उनके स्वतन्त्रता के युद्ध में कांग्रेस उनकी पीठ पर है।

इसी अवसर पर जबलपुर में कार्य-समिति की भी बैठक हुई, जिसमें कांग्रेस के नये विधान के अनुसार प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित की गई और महासमिति के सदस्यों और आगामी कांग्रेस के प्रतिनिधियों के निर्वाचन के सम्बन्ध में विभिन्न कांग्रेस-कमिटियों के पालन के लिए समय-तालिका

बनाई गई। कार्य-समिति में कई प्रान्तों के निर्वाचन-सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा किया गया और कांग्रेस और महासमिति में बंगाल के मिदनापुर जिले के प्रतिनिधित्व का प्रबन्ध किया गया, क्योंकि इन दोनों स्थानों पर कांग्रेस-संस्थाओं के गैर-कानूनी होने के कारण निर्वाचन नहीं हो सकता था।

१५ जनवरी १९३४ को बिहार के भूकम्प ने देश को हिला दिया था। अभी मुश्किल से १८ महीने बीते होंगे कि ३१ मई १९३५ को क्वेटा के भूकम्प ने देश-भर में शोक के बादल फैला दिये। यह शहर सैनिक-केन्द्र था, इसलिए कष्ट-निवारण का काम सरकार ने स्वयं अपने हाथ में लिया। यह स्वाभाविक ही था; पर कष्ट-निवारण और संगठित सहायता के उद्देश्य से बाहर से आनेवालों के प्रवेश के विरुद्ध आज्ञा क्यों दी गई, यह समझ में न आया। इस स्थान पर जाने की अनुमति न कांग्रेस के सभापति को मिली, न गांधीजी को। इस परिस्थिति में केवल निषिद्ध-प्रदेश के आसपास के स्थानों पर ही संगठित सहायता की जा सकती थी। कांग्रेस के सभापति ने क्वेटा-कष्ट-निवारक-समिति का संगठन किया, जिसकी शाखायें सिंध, पंजाब और सीमान्त-प्रदेश में स्थापित की गईं। यह समिति क्वेटा से भेजे हुए कष्ट-पीड़ितों की सहायता कर रही है। ३० जून का दिन भूकम्प-पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने और भूकम्प में मरे हुओं के निमित्त प्रार्थना करने के लिए नियत हुआ। इस सम्बन्ध में सरकार ने जिस नीति का परिचय दिया वह उसकी अविश्वास और सन्देह की नीति की चरम-सीमा थी। इस नीति ने कार्य-समिति को क्वेटा-कष्ट-निवारण के सम्बन्ध में १ अगस्त को निम्नलिखित प्रस्ताव पास करने पर बाध्य किया—

'हाल ही में भूकम्प के कारण क्वेटा और बलूचिस्तान के अनेक स्थानों में हजारों आदमियों को जन-धन की जो क्षति उठानी पड़ी है, उसपर यह कार्य-समिति घोर शोक प्रकट करती है और कष्ट पीड़ित और शोकाकुल व्यक्तियों के साथ समवेदना प्रकट करती है।

"यह कार्य-समिति चन्दा एकत्र करने और कष्ट-निवारण की व्यवस्था करने के लिए समिति बनाने के कांग्रेस के अध्यक्ष के कार्य की पुष्टि करती है। यह समिति क्वेटा के भूकम्प के घायल अथवा पीड़ित होने वालों की बड़ी विकट परिस्थिति में सहायता करनेवाले कार्य-कर्त्ताओं को धन्यवाद देती है और जनता ने चन्दे की अपील का जो उत्तर दिया है, उसकी पहुंच स्वीकार करती है।

"क्वेटा के अधिकारियों ने अपनी सीमित सामर्थ्य के द्वारा परिस्थिति का सामना करने की जो चेष्टा की उसकी पुष्टि करते हुए कार्य-समिति सरकारी और गैर-सरकारी प्रत्यक्षदर्शी गवाहों के वक्तव्यों के आधार पर यह सम्मति प्रकट करती है कि यदि खुदाई का काम दो दिन बाद बन्द न करा दिया जाता और जनता-द्वारा सहायता को अस्वीकार न कर दिया जाता तो बहुत-से आदमियों को गिरे हुए मकानों के नीचे से निकाला जा सकता था।

"कार्य-समिति की राय है कि जनता-द्वारा लगाये गये निम्नलिखित आरोपों के सम्बन्ध में, जिनकी पुष्टि आंशिक रूप से सरकारी अधिकारियों के वक्तव्य से होती है, जांच करने के लिए सरकार की ओर से सरकारी और गैर-सरकारी सदस्यों का एक कमीशन नियत किया जाय—

(१) जनता-द्वारा सहायता देने के समय सरकार ने जो यह वक्तव्य दिया था कि परिस्थिति का सामना करने योग्य उसके पास पर्याप्त साधन हैं, वह वस्तुस्थिति-द्वारा ठीक प्रमाणित नहीं होता दिखाई देता।

(२) इस सहायता को अस्वीकार कर देने के लिए सरकार के पास कोई कारण न था।

(३) सरकार को परिस्थिति का अच्छी तरह सामना करने के लिए आस-पास के इलाकों से ऐसा सहायता एकत्र करनी चाहिए थी।

(४) जबकि भूकम्प-पीड़ित प्रदेश के प्रत्येक यूरोपियन-निवासी पर पूरा ध्यान दिया गया, भारतीय-निवासियों के सम्बन्ध में समुचित प्रबन्ध नहीं किया गया, और बचाव, कष्ट-निवारण और बची हुई चीजों को निकालने के मामले में भी यूरोपियन और भारतीयों में उसी प्रकार का भेद-भाव किया गया।"

१९३५ में मध्य में कांग्रेसवादियों को, विशेष कर उनको जो कौंसिल-प्रवेश पर अड़े हुए थे, एक और प्रश्न ने उद्विग्न कर रक्खा था; और वह था नये शासन-विधान के अन्तर्गत पदग्रहण करने के सम्बन्ध में। यह दुर्भाग्य की बात हुई कि इस अवसर पर, जब कि बिल अभी पार्लमेण्ट के सामने पेश ही था, यह प्रसङ्ग छेड़ा गया। यह बात भी भुलाने योग्य नहीं है कि कांग्रेस वादियों के इस वर्ग ने अपना जो रुख दिखाया उसका उन लोगों ने जिनके हाथ में बिल था, पार्लमेण्ट को यह आश्वासन दिलाने में कि ऐसे आदमी मौजूद हैं जो सुधारों को अमल में लायेंगे, पूरा उपयोग किया। बम्बई-कांग्रेस का प्रस्ताव इस मामले में बिलकुल स्पष्ट था कि कांग्रेस का क्या रुख है, और आगामी अधिवेशन तक इसके निर्णय करने का किसी को अधिकार न था। फलतः जुलाई के अन्त में वर्धा में कार्य-समिति की बैठक हुई, जिसमें तय हुआ कि इसका निर्णय कांग्रेस का खुला अधिवेशन ही कर सकता है। उसमें निम्न-लिखित प्रस्ताव पास हुआ—

"भावी शासन-विधान के अन्तर्गत पद-ग्रहण करने या न करने के सम्बन्ध में अनेक कांग्रेस-कमिटियों के प्रस्ताव पढ़ने के बाद यह कार्य-समिति यह निश्चय प्रकट करती है कि इस प्रश्न को आगामी कांग्रेस-अधिवेशन तक के लिए स्थगित कर देना चाहिए। यह कार्य-समिति घोषणा करती है कि इस सम्बन्ध में किसी कांग्रेसवादी का निजी विचार कांग्रेस का विचार न समझा जाना चाहिए।"

अभी बिल कामन-सभा के सामने ही था कि पार्लमेण्टरी-बोर्ड के नेता श्री भूलाभाई देसाई ने वकील की हैसियत से देशी-नरेशों को भावी भारत-सरकार के अन्तर्गत सङ्घ शासन के प्रश्न पर सलाह दी और फिर मैसोर में इस विषय पर भाषण भी दिया। इन बातों को लेकर इस वर्ष के आरम्भ में देशी-राज्य-प्रजा-परिषद् में हलचल मच गई। जुलाई में देशी रियासतों की प्रजा के प्रति कांग्रेस के रुख पर विचार करने के लिए महासमिति की बैठक की मांग हुई। देशी-रियासतों की प्रजा ने अपनी मांग गांधीजी के उस भाषण के आधार पर कायम कर रक्खी थी, जो उन्होंने दूसरी गोलमेज-परिषद् के अवसर पर दिया था -"कांग्रेस ऐसे किसी शासन-विधान से सन्तुष्ट न होगी, जिसके द्वारा देशी राज्यों की प्रजा को नागरिकता के अधिकार प्राप्त न हों और वे संघ व्यवस्था-मण्डल में प्रतिनिधि न भेज सकें।"

२९, ३० और ३१ जुलाई १९३५ को वर्धा में होनेवाली कार्य-समिति की बैठक में इस विषय पर प्रस्ताव पास किया गया, जिसमें निम्न-लिखित निश्चित सम्मति प्रकट की गई—

"यद्यपि भारतीय-रियासतों के सम्बन्ध में कांग्रेस की नीति को प्रस्तावों-द्वारा प्रकट कर दिया गया है, फिर भी रियासतों की प्रजा-द्वारा या उसकी ओर से कांग्रेस-नीति की अधिक स्पष्ट घोषणा की मांग आग्रह-पूर्वक पेश की जा रही है। इसलिए कार्य-समिति देशी-नरेशों और देशी-राज्यों की प्रजा के प्रति कांग्रेस की नीति के सम्बन्ध में निम्न-लिखित वक्तव्य पेश करती है—

"कांग्रेस स्वीकार करती है कि भारतीय रियासतों की प्रजा को भी स्वराज्य का उतना ही अधिकार है जितना ब्रिटिश-भारत की प्रजा को है। तदनुसार कांग्रेस ने देशी-राज्यों में प्रतिनिधित्व पूर्ण उत्तरदायी-शासन की स्थापना के पक्ष में अपनी राय प्रकट की है, और न केवल देशी नरेशों से ही अपने-अपने राज्यों में इस प्रकार की उत्तरदायी-शासन-व्यवस्था स्थापित करने और अपनी प्रजा को व्यक्तिगत, सभा आदि करने के, भाषण देने के और लेखों-द्वारा विचार प्रकट करने के नागरिकता के

अधिकार देने की अपील की है, बल्कि देशी-राज्यों की प्रजा से प्रतिज्ञा की है कि पूर्ण उत्तरदायी-शासन की प्राप्ति के लिए उचित और शान्तिपूर्ण साधनों से किये गए संघर्ष में उसकी सहानुभूति है। कांग्रेस अपनी उसी घोषणा और उसी प्रतिज्ञा पर दृढ़ है। कांग्रेस समझती है कि यह स्वयं देशी-नरेशों के भले के ही लिए है, यदि वे शीघ्रातिशीघ्र अपनी रियासतों में पूण उत्तरदायी-शासन-प्रणाली कायम कर दें, जिससे उनकी प्रजा को नागरिकता के पूर्ण अधिकार प्राप्त हों।

पर यह बात समझ लेनी चाहिए कि इस प्रकार का संघर्ष जारी रखने का बोझ स्वयं देशी-राज्यों की प्रजा पर है। कांग्रेस रियासतों पर नैतिक और मैत्री-पूर्ण प्रभाव डाल सकती है और, जहां भी हो, डालने पर बाध्य है। मौजूदा परिस्थिति में और किसी प्रकार का सामर्थ्य कांग्रेस को प्राप्त नहीं है, यद्यपि भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सारे भारतवासी, चाहे वे अंग्रेजों के अधीन हों चाहे देशी-राजाओं के और चाहे किसी और सत्ता के, एक हैं और उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

यह कहना होगा कि वाद-विवाद की गर्मा-गर्मी में कांग्रेस के सीमित सामर्थ्य की बात भुला दी जाती है। हमारी समझ में और किसी प्रकार की नीति अंगीकार करने से दोनों का उद्देश्य ही विफल हो जायगा।

आगामी शासन-व्यवस्था-सम्बन्धी परिवर्तनों के विषय में सुझाया गया है कि कांग्रेस भारत-शासन-विधान के उस अंश में, जिसमें देशी रियासतों के और भारतीय-संघ के पारस्परिक सम्बन्ध की चर्चा की गई है, संशोधन कराने पर जोर दे। कांग्रेस ने एक से अधिक बार शासन-सुधार-सम्बन्धी सारी योजना को, इस व्यापक आधार पर कि यह भारतीय-जनता की इच्छा का फल-रूप नहीं है, रद कर दिया है और प्रतिपादन किया है कि शासन-व्यवस्था का निर्माण विधान-कारिणी सभा के द्वारा हो। ऐसी दशा में कांग्रेस अब इस योजना के किसी विशेष अंश के संशोधन के लिए नहीं कह सकती। यदि वह ऐसा करेगी तो यह कांग्रेस-नीति में आमूल परिवर्तन करना होगा।

"साथ ही रियासतों की प्रजा को यह आश्वासन देना अनावश्यक है कि भारतीय-नरेशों का सहयोग प्राप्त करने के लिए कांग्रेस देशी-रियासतों की प्रजा के हितों का बलिदान करने का अपराध कभी न करेगी। अपने जन्म से ही कांग्रेस सदा जनता के और उच्च-वर्ग के हितों में विरोध होने की अवस्था में जनता के हितों के लिए असन्दिग्ध रूप से लड़ती रही है।"

अन्त में यह निश्चय किया गया कि चूंकि १८८५ में कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ था, इसलिए उसका पचासवां वर्ष उचित ढंग से मनाया जाय। इस उद्देश्य से कार्य-समिति ने इस अवसर के लिए कार्यक्रम तैयार करने को एक उप-समिति नियुक्त की। वर्धा की बैठक और वर्ष की समाप्ति के बीच में जो थोड़ा-सा समय रहा उसमें तीन घटनाओं को छोड़कर कोई विशेष बात न हुई। इसमें से एक घटना पण्डित जवाहरलाल की आकस्मिक रिहाई थी। वे अपनी धर्मपत्नी की चिन्ताजनक अवस्था के कारण ३ सितम्बर को अलमोड़ा-जेल से छोड़ दिये गए। उनको फौरन यूरोप को रवाना होना था और यदि वे अपनी सजा की मियाद खतम होने से पहले लौट आए तो, जैसा कि आज्ञा में कहा गया था, उन्हें फिर जेल वापस जाना पड़ेगा। दूसरी घटना गवर्नर-जनरल-द्वारा सितम्बर में क्रिमिनल-लॉ-अमेण्डमेण्ट-एक्ट पर सही होना था, यद्यपि बड़ी कौंसिल ने उसे स्पष्ट बहुमत-द्वारा रद कर दिया था। तीसरी महत्वपूर्ण या स्थान देने योग्य घटना १७ और १८ अक्तूबर १९३५ को महासमिति की बैठक थी, जो मदरास में हुई। आशंका थी कि 'पद-स्वीकार करने' और 'कांग्रेस और देशी-राज्यों के प्रश्न' पर दूने वेग से आक्रमण किया जायगा। यदि हम कांग्रेस -धि
हुई बैठक को छोड़ दें, तो मदरास में महासमिति की यह पहली बैठक थी। मदरास

के प्रश्न पर कार्य-समिति के वक्तव्य के साथ सहमति प्रकट की गयी और पद स्वीकार करने के प्रश्न पर महासमिति ने यह विचार प्रकट किया कि अभी नये शासन-विधान के अनुसार प्रान्तीय कौंसिलों का निर्वाचन आरम्भ होने में बहुत देर है, और साथ ही इधर राजनैतिक वातावरण भी अनिश्चित है, इसलिए इस विषय पर कांग्रेस के लिए कोई निश्चय करना समयानुकूल भी नहीं होगा और राजनैतिक दृष्टि से अविवेक-पूर्ण भी होगा।

मदरास की महासमिति की बैठक के सिलसिले में एक साधारण घटना का जिक्र करना आवश्यक है। महासमिति के बंगाल-प्रान्त के सदस्यों को सूचना दी गई कि उन्हें बैठक में भाग लेने की अनुमति न मिलेगी, क्योंकि बंगाल-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने अपना ५००) का चन्दा पूरा अदा नहीं किया है। कार्य-समिति ने बंगाल-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी की कार्यकारिणी को एक यह भी नोटिस दिया कि कार्य-समिति ने कलकत्ता-केन्द्रीय जिला-कांग्रेस-कमिटी को मानने के सम्बन्ध में जो हिदायत दी थी उसका जान-बूझकर उल्लंघन करने के लिए उसके विरुद्ध जाब्ते की कार्रवाई क्यों न की जाय, इसका वह कारण बताये।

अब अन्त में इस बात का भी उल्लेख कर दें कि पार्लमेण्ट ने भारत-शासन-विधान पास कर दिया और २ जुलाई को उसे सम्राट् की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस विषय की आलोचना करके हम पुस्तक को मोटा नहीं बनाना चाहते। हां, हम कामन-सभा के एक सदस्य के भाषण का, जिसके बाद बहस लगभग समाप्त ही हो गई, उद्धरण देने के प्रलोभन को नहीं रोक सकते। ५ जून १९३१को मेजर मिलनर ने इण्डिया-बिल पर बोलते हुए मि० चर्चिल और सर सेम्युअल होर की तुलना नाटक के नायक और उपनायक से की। उन्होंने कहा—"नायक (सर सेम्युअल होर) ने शठ उप-नायक को हरा दिया है। आज (५-६-३५) वह बिना रक्त पात किये ही उसका काम तमाम कर देगा।" इसके बाद मेजर मिलनर ने कहा—"और तब दोनों प्रति पक्षी बांह-में-बांह डाले रङ्गमंच का द्वार छोड़ते दिखाई देंगे।" वास्तव में यह नाटक १९३५ में ही नहीं, १९२० में भी रचा गया था। वैसे आमतौर से यह बात ठीक है कि ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में एक ऐसा दल है, जो अनुदार-दल के नाम से पुकारा जाता है। पर असली बात यह है कि सारे दलों का लक्ष्य एक ही है; और वह यह कि एक ऐसा चित्र तैयार करें जो, 'मैन्चेस्टर-गार्जियन' के शब्दों में, भारत को स्वराज्य प्रतीत हो और इंग्लैण्ड को ब्रिटिश-राज्य। इस उद्देश्य से विभिन्न दल पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं में लड़ाई का स्वांग रचते हैं, उनमें से कुछ देने का ढोंग दिखाते हैं और बाकी प्रतिरोध करने का। इनमें से पहले प्रकार का दल भारत के नरम-दल वालों को यह कहकर राजी करता है कि परिस्थिति ऐसी ही है, जो मिले ले लो, क्योंकि दूसरा तो इतना भी नहीं देना चाहता। अधिकार-सम्पन्न दल नायक का पार्ट खेलता है, और विरोधी दल उपनायक का। दोनों वेस्ट-मिनिस्टर की चहार-दीवारी में लड़ाई का स्वांग रचते हैं, और ज्यों ही वे बाड़ा छोड़ कर बाहर आते हैं, इस कृत्रिम-युद्ध को बढ़िया प्रकृत रूप देने की सफलता पर एक दूसरे को बधाई देते हैं, इन दोनों के बीच में भारत को बुद्धू बनाया जाता है।

कांग्रेस-सभापति का बढ़ता हुआ उत्तरदायित्व

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले हम उस उत्तरदायित्व के दिन-पर-दिन बढ़ते हुए भाव का जिक्र करना आवश्यक समझते हैं जिसका परिचय कांग्रेस के अध्यक्ष हर साल देते आ रहे हैं। श्रीमती बेसेन्ट ने सालभर तक अपने सभानेत्री बने रहने की सूझ पर जोर दिया था। तब से इस बात पर उनके उत्तराधिकारी अमल करते आ रहे हैं। दो-एक अध्यक्षों को छोड़ कर, जो

कांग्रेस की शानदार बैठक की समाप्ति के बाद ही सार्वजनिक क्षेत्र से गायब हो गये, बाकी सब ने अपना कर्तव्य बड़ी लगन और उत्तरदायित्व के पूरे बोध के साथ पूरा किया है। इस परिपाटी के अनुरूप ही बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने, जिनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता पर जिनकी कार्य-शक्ति और कष्ट-सहिष्णुता ठीक उतने ही विपरीत ढङ्ग से काम करती है, देश का दौरा कर डाला और इस प्रकार उन्होंने देश की जनता और आन्दोलन से परिचित होने के लिए एक नया मार्ग दिखाया। विहार-भूकम्प-कष्ट-निवारण के सम्बन्ध में उन्हें बहुत काम रहता है। इसके अलावा कांग्रेस के सभापति की हैसियत से उन्हें कर्त्तव्य-पालन करना पड़ता है। और फिर क्वेटा के भूकम्प के काम ने उनके कामों में और भी वृद्धि कर दी। इतने पर भी उन्होंने महाराष्ट्र, कर्नाटक, बरार, पंजाब, मध्य-प्रान्त के एक भाग, तामिलनाड, आंध्र और केरल का दौरा कर डाला। अखिल-भारतीय चर्खा-संघ से भी उनका सम्बन्ध है, और अपरिवर्तनवादी होते हुए भी निर्वाचन-सम्बन्धी हलचल में उन्होंने अपनी दिलचस्पी कम नहीं होने दी है। गांधीजी राजनैतिक क्षेत्र से क्या गये, राजेन्द्रबाबू के कन्धों पर रक्खा बोझ और भी बढ़ गया—क्योंकि, यह बात छिपाई नहीं जा सकती कि जबतक गांधीजी मौजूद रहे कांग्रेस का भार उनके सहयोगियों के लिए हलका था। इसका यह मतलब नहीं कि उनके सहयोगियों ने कभी अपने कर्त्तव्य की अवहेलना की हो; पर असली बात यह थी कि गांधीजी-जैसे व्यक्ति सार्वजनिक जीवन के भारी कार्यों का बोझ अपने सहयोगियों के लिए बहुत कम छोड़ते हैं। इस प्रकार कांग्रेस की अध्यक्षता ऐसी शक्ति का आसन है जिस पर घोर चिन्ताओं और उत्तरदायित्वों का भार आ पड़ा है। हम एक कदम और भी आगे बढ़ेंगे और कहेंगे कि कांग्रेस देश में सरकार के मुकाबले ऐसी संस्था बन गई है जिसका अपना एक आदर्श है, जिसे सरकार के द्वारा दमन किया जाता है, जिसकी ग्रामोन्नति की योजनाओं से सरकारी योजनाओं ने होड़ लगा रक्खी है, जिसके सत्य और अहिंसा के उसूलों की, सरकार ओर से, जो भौतिक बल पर निर्भर करती है, बुराई और बद-नामी की जाती है। कांग्रेस ५० वर्षों से काम करती आ रही है और इसकी सफलता की सराहना की गई है। कुछ लोग इसे असफल बताते हैं। सफल हो या असफल, सत्याग्रह एक नई शक्ति है जो कांग्रेस की राजनीति में प्रविष्ट हो गई है। अभी इसकी परीक्षा ही ली जारही है। पर इसे इतने दिन काम करते हो गये कि जनता का ध्यान इसकी ओर काफी आकर्षित हो चुका है। इन आदर्शों में परि-वर्तन और साधनों में संशोधन करने का श्रेय एक व्यक्ति को है, जो यद्यपि भारत में उत्पन्न हुआ था पर अपनी आयु के रचनात्मक-भाग में देश से बाहर दक्षिण-अफ्रीका में रहता था और एक अपरिचित देश में सत्य के प्रयोग कर रहा था। लोग पूछते हैं—क्या कांग्रेस असफल सिद्ध नहीं हुई, क्या सत्या-ग्रह को आंका गया और वह अधूरा नहीं उतरा, और क्या गांधीजी की शक्ति समाप्त नहीं हो गई? इन सब प्रश्नों का एक-एक करके उत्तर देने के बाद ही हम इस पुस्तक को समाप्त करेंगे।

उपसंहार

कांग्रेस ने पिछले ५० वर्षों में जो कुछ किया उसका संक्षिप्त विवेचन हम कर चुके। इस काल के दूसरे अर्धांश की चर्चा पहले अर्धांश की अपेक्षा कुछ अधिक विस्तार के साथ की गई है। इस दीर्घकाल में, विभिन्न प्रमुख व्यक्तियों ने हमारे राष्ट्र का नेतृत्व किया है। दादाभाई नौरोजी ने तीन बार कांग्रेस का सभापतित्व किया, और कांग्रेस के शब्द-कोष में 'स्वराज्य' शब्द का प्रवेश किया। प्रथम राष्ट्रपति उमेशचन्द्र बनर्जी एक बार फिर सभापति हुए। बंगाल के शेर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को दो बार यह सम्मान प्राप्त हुआ। यही हाल धवल-वस्त्र-धारी पं० मदनमोहन मालवीय और पं० मोतीलाल नेहरू तथा सर विलियम वेडरबर्न का हुआ। बदरुद्दीन तैयबजी, रहीमतुल्ला सयानी, नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर, हसन इमाम, अबुलकलाम आजाद, हकीम अजमलखां, मौ० मुहम्मदअली और डॉ० अन्सारी—कुल ५१ में ये ८ मुसलमान सभापति हुए। दादाभाई नौरोजी और फीरोजशाह मेहता उस श्रेष्ठ जाति—पारसियों—के प्रतिनिधि-स्वरूप हुए जिसने भारत की वैदिक और इस्लामिक संस्कृति में अपनी—ज़रतुश्त—संस्कृति मिलाकर उसे समृद्ध किया है। उमेशचन्द्र बनर्जी, आनन्द-मोहन वसु, रमेशचन्द्र दत्त, लालमोहन घोष, भूपेन्द्रनाथ वसु, सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, अम्बिकाचरण मजुमदार और चित्तरञ्जन दास जैसे व्यक्ति प्रदान करने के कारण बंगाल तो इस दिशा में सबसे आगे है। युक्तप्रान्त ने विशननारायण दर, मदनमोहन मालवीय, मोतीलाल नेहरू और उनके पुत्र जवाहरलाल को दिया। अन्तिम अध्यक्ष राजेन्द्रबाबू बिहार के हैं, जहां के हसन इमाम पहले सभापतित्व कर चुके हैं। पंजाब को लाला लाजपतराय के सभापति बनने का गौरव प्राप्त है और मध्यप्रान्त को श्री मुधोलकर के सभापतित्व का। गुजरात के गांधीजी और वल्लभभाई पटेल सभापति हुए हैं। बम्बई तो मानों इसका भण्डार ही रहा है—तैयबजी और सयानी ही नहीं, फीरोजशाह मेहता भी यहीं के थे। वाचा, गोखले और चन्द्रावरकर (बम्बई के) पश्चिमी प्रान्त के थे। मदरास ने आन्ध्र के आनन्द चार्लू को और केरल-पुत्र सर शंकरन नायर को दिया और अन्त में दक्षिण के पितामह विजयराघवाचार्य तथा श्रीनिवास आयंगर को प्रदान किया जो दोनों तामिलनाड के हैं। श्रीमती बेसेण्ट और सरोजिनी नायडू ये दो स्त्रियां भी सभापति-पद को सुशोभित कर चुकी हैं। और श्री यूल, वेब, वेडरबर्न व हेनरी काटन के रूप में अंग्रेजों ने भी अपना हिस्सा बटाया है। इस विविध सूची से जाहिर है कि कांग्रेस न केवल राष्ट्रीय बल्कि सचमुच एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है।

अब प्रश्न यह है कि क्या कांग्रेस असफल रही? इस बात से शायद ही कोई इन्कार करे कि पिछले दस वर्षों में पुरातन राजनैतिक और सांस्कृतिक-विचारों के क्षेत्र में नित्य नये विचारों का जन्म होता रहा है। राजनीति सच पूछिए तो मानव-कल्याण का विज्ञान ही है। उसने केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सारे संसार में इतना-व्यापक-रूप धारण कर लिया है कि उसमें सामाजिक और आर्थिक जैसी वृहत्तर समस्याओं के अध्ययन तथा हल का भी समावेश होगया है। और यदि हम इनमें सांस्कृतिक और नैतिक विचारों को भी मिला दें तो फिर राजनीति उन्नीसवीं शताब्दी के गर्हित पद पर न रह-

कर उस शुद्ध और नैतिक पद पर जा पहुंचती है जिसे पहले १५ या १६ वर्षों में भारत ने प्राप्त किया है, और उसका श्रेय श्री मोहनदास करमचन्द गांधी जैसे विश्व-वन्द्य व्यक्ति को है जिसकी अभेयता का वर्णन प्रोफेसर गिलवर्ट मरे ने निम्नलिखित उचित और नपे-तुले शब्दों में किया है—

"ऐसे आदमी के साथ सावधानी से पेश आओ, जिसे न तो सांसारिक वासनाओं की रत्ती-भर चिन्ता है, न आराम या प्रशंसा या पद-वृद्धि की, बल्कि जो उस काम को करने का निश्चय कर लेता है जिसे वह ठीक समझता है। ऐसे आदमी भयंकर और दुखदायी शत्रु हैं, क्योंकि उनके शरीर पर तो तुम आसानी के साथ विजय प्राप्त कर सकते हो पर उनकी आत्मा पर इससे तुम्हारा जरा भी कब्जा नहीं हो सकता।"

ऐसे ही आचार्य के नेतृत्व में कांग्रेस ने राजनीति पर सेवा-धर्म की छाप लगाने की चेष्टा की है, उच्च श्रेणियों में अधिक व्यापक संस्कृति और अधिक ऊंची देश-भक्ति की आवश्यकता पर जोर दिया है और ग्राम-नेतृत्व स्थापित करने के लिए उद्योग किया है। वस्तुतः कांग्रेस ने एक नये धर्म को जन्म दिया है। वह है राजनीति का धर्म। यदि हम अपने धर्म से च्युत न होना चाहें तो हम किसी भी मानवी-प्रश्न को धर्म की परिधि के बाहर नहीं मान सकते। क्योंकि धर्म किसी सिद्धान्त या उपासना के ढंग का नाम नहीं है; बल्कि उच्चतर जीवन, बलिदान की भावना और आत्म-समर्पण की एक योजना है। और जब हम राजनीति-धर्म की बात कहते हैं तो हम वर्तमान गर्हित राजनीति को पवित्र बना देते हैं, संकुचित और भेद-पूर्ण राजनीति को व्यापक बना देते हैं; और प्रतिद्वंद्वितापूर्ण राजनीति को सहयोग-पूर्ण बना देते हैं।

इस मनोवृत्ति से प्रेरित होकर हमने भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण में सत्य और औचित्य का पक्ष समर्थन किया है। जीवन में असत्य सदा से शीघ्र और सस्ती विजय प्राप्त करता आया है और पाखण्ड और छल ने विवेक और सत्य के ऊपर अक्सर विजय प्राप्त की है। यही क्यों, इतिहास में कानून और तर्क ने स्वयं जीवन तक पर विजयें प्राप्त की हैं। पर ये विजयें आंशिक और क्षण-भंगुर हैं और इन्होंने विजेताओं को हमेशा करुणाजनक अवस्था में ला पटका है। बड़े पैमाने पर देखा जाय तो गत महायुद्ध के फल-स्वरूप विजेता विजितों के ऊपर अपना प्रभुत्व न जमा सके। छोटे पैमाने पर देखा जाय तो भारत पर इंग्लैण्ड की 'विजय' ने इंग्लैण्ड को स्थायी सुख प्रदान नहीं किया। विभिन्न गोलमेज-परिषदों का आयोजन करने में राजनीति-विशारदों ने जिस नीति से काम लिया उसके फल-स्वरूप वे भारत को इंग्लैण्ड-रूपी प्रासाद का झोंपड़ा बनाने के उद्देश्य में सफल न हो सके। दमन की प्रत्येक लहर ने स्वयं दमन करनेवालों के हितों को खतरे में डाला और जनता में प्रतिरोध की भावना उत्पन्न कर दी। यह प्रतिरोध की भावना कभी सत्याग्रह—सविनय-अवज्ञा—के रूप में प्रकट होती है, कभी उगती और उठती हुई पीढ़ी के हाथों में अधिक कठोर और भीषण रूप धारण कर लेती है। जो यह कहते हैं कि असहयोग का कार्यक्रम असफल रहा वे अपनी इच्छा को निश्चित निर्णय के रूप में पेश करते हैं; क्योंकि दूर तक दृष्टि दौड़ाकर देखा जाय तो प्रत्येक असफलता केवल देखने में असफलता होती है, वास्तव में तो वह सफलता की दिशा में एक आगे का कदम ही है। और वास्तव में सफलता अनेक असफलताओं का अन्तिम पटाक्षेप है।

हम कांग्रेस के कार्यक्रम को इसी कसौटी पर कसते हैं। कांग्रेस के कार्यक्रम के दो पहलू हैं। उसके आक्रमणकारी पहलू को लीजिए, तो कांग्रेस ने सरकार के साथ युद्ध करने में जो ढंग अपनाया उसे कोई सभ्य सरकार बुरा नहीं कह सकती। इस युद्ध का मूलमन्त्र, मन, वचन, कर्म से अहिंसाव्रत का पालन रहा है और गांधीजी को भारत का 'चीफ-कान्स्टेबुल' माना गया है। सरकार ने गांधीजी

के सत्याग्रह को बदनाम करने की चेष्टा भले ही की हो, पर जनता के सत्य और अहिंसा-प्रेम की निन्दा कौन कर सकता है? यह वह युग है जिसमें राजवंश नष्ट-भ्रष्ट हो चुके हैं, सिंहासन उलट दिये गये, और प्रतिनिधि शासन-व्यवस्थाओं को भंग होना पड़ा है। यह वह युग है जिसमें दो दलों और तीन दलों वाली पुरानी प्रणाली राजनैतिक क्षेत्र से विदा हो गई और विरोधी-दल को निर्वाचनों के द्वारा नहीं दबाया जाता बल्कि सचमुच उसका विनाश किया जाता है। इस युग में अहिंसा की बात कहना दिल्लगी-सा प्रतीत होगा। हमारे ताजे अनुभवों ने हमें समय रहते ठीक-ठीक चेतावनी दे दी है कि रक्तपात-द्वारा प्राप्त की गई विजय केवल रक्तपात-द्वारा ही स्थायी रक्खी जा सकती है और उसी के द्वारा छिन जाती है; और जब दो देशों के बीच में भी हिंसा निर्णायक का स्थान ग्रहण कर लेती है, तो फिर वह दो जातियों या व्यक्तियों के बीच में भी अवसर मिलते ही घुस बैठती है।

अब कांग्रेस-कार्यक्रम के रचनात्मक पहलू को लीजिए। वह सरल रहा है, इतना सरल कि विश्वास न हो। हम यह बात स्वीकार करते हैं कि यह कार्यक्रम देशकी उन अ-सरल श्रेणियोंको पसन्द न हुआ होगा जो कस्बों और शहरों में रहती हैं, विदेशी कपड़ा पहनती हैं, विदेशी भाषायें बोलती हैं और विदेशी मालिक की चाकरी करती हैं। हमारे नगरों की मदुमशुमारी की जाय तो जो भेद खुलेंगे, उन्हें देखकर आश्चर्य होगा। तब यह पता चलेगा कि हर तीसरा आदमी अपनी आजीविका, अपनी समृद्धि और अपनी प्रसिद्धि के लिए विदेशी शासकों की सदिच्छा पर निर्भर करता है। ये बातें तत्काल ही दिखाई नहीं पड़तीं, क्योंकि हम यह नहीं जानते कि वास्तव में हमारे मालिक कौन हैं। हम तो यही जानते हैं कि पुलिस के सिपाही से लगाकर आबकारी के दरोगा तक और बैंक के एजेण्ट से लगाकर अंग्रेज दर्जी तक, सभी हमारे मालिक हैं। पी० डब्लू० डी० का कर्मचारी, अमीन, मजिस्ट्रेट और बिल बनानेवाला—ये सब ब्रिटिश-एम्पायर-लिमिटेड के अवैतनिक कर्मचारी-मात्र हैं। इस कम्पनी का स्थानिक संचालक-मण्डल भारत सरकार है, जिसके मातहत दफ्तर अनेक प्रान्तों में हैं। अंग्रेज सरकार सेना, पुलिस, और सरकारी कर्मचारियों, अदालतों, कौंसिलों, कॉलेजों, स्थानिक संस्थाओं और उपाधि धारियों के सात परिवेष्टनों से घिरी हुई है। देश की अस्सी प्रतिशत ग्रामीण आबादी अमीनों और पटवारियों के भय से सशंक रहती है, और बाकी शहरी आबादी म्युनिसिपैलिटियों, स्थानिक बोर्डों, इन्कमटैक्स-अफसरों और आबकारी-विभाग के अधिकारियों से भयभीत रहती है। इसलिए यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि भौतिक बल के बोध से उत्पन्न हुए भय को निकाल फेंका जाय और उसका स्थान उस आशा और साहस को दिया जाय जो वास्तविक अहिंसा-प्रेम से उत्पन्न होता है। इसलिए कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम ने ऐसे ऐसे कार्यों का रूप धारण कर लिया है जिन्हें तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है जिनके द्वारा कांग्रेसवादी जन-साधारण के सम्पर्क में आते हैं। फलतः जब हम खद्दर का जिक्र करते हैं तो हम न केवल निर्धन आदमियों के लिए सहायक-धंधा ही उत्पन्न कर देते हैं, या उनके जीवन-निर्वाह-योग्य मजदूरी की ही व्यवस्था कर देते हैं, बल्कि उन्हें अपने शरीर पर से गुलामी का चिह्न उतार फेंककर अपने भीतर आत्म-सम्मान उत्पन्न करने का अवसर देते हैं। हम गृहस्थ की पवित्रता को अक्षुण्ण रखते हैं और कारीगर को उसकी कला से प्राप्त होनेवाले उस सृजनात्मक आनन्द की अनुभूति करने का अवसर देते हैं जो सभ्यता का वास्तविक परिचायक है। जब हम लोगों से खद्दर के लिए कुछ अधिक मूल्य देने को कहते हैं, तो हम उन्हें एक राष्ट्रीय धंधे की स्वतः ही वह सहायता करने की शिक्षा देते हैं जो सरकार को प्रदान करनी चाहिए थी पर जिसे वह नहीं करती। सबसे बड़ी बात यह है कि हम अपने देशवासियों को सादगी सिखाते हैं; और रहन-सहन की सादगी के साथ ही विचारों की उच्चता, दिव्यता और आत्म-

सम्मान, आत्म-निर्भरता, आत्म-बोध के भाव उत्पन्न होते हैं। हमने आर्थिक क्षेत्र में खद्दर के द्वारा जो वस्तु प्राप्त करने की चेष्टा की है वही हम लोकक्षेत्र में मद्यपान-निषेध के द्वारा और सामाजिक क्षेत्र में अस्पृश्यता-निवारण के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। जो सरकार अपने नागरिकों में मद्यपान-निषेध-विषयक संगठन पर आपत्ति करे, उसे यदि और कुछ नहीं तो बहुत क्षुद्र तो अवश्य कहना पड़ेगा। यह समस्या इतनी सफल है कि किसी प्रकार की चर्चा की आवश्यकता ही नहीं है। हमारे राष्ट्र में मुख्यतः दो महान् जातियां रहती हैं—हिन्दू और मुसलमान। इन दोनों जातियों के धर्म का आधार मदिरा-पान-निषेध पर अवस्थित है। देश में मादक-द्रव्य-निवारण-सम्बन्धी आन्दोलन इसी आधार पर चलता रहा है। पर जब कभी राष्ट्र गम्भीरता-पूर्वक इस नैतिक आन्दोलन को अपने राजनैतिक रंगमंच पर बिठा देता है और इस आन्दोलन के संगठन के लिए पिकेटिंग की ओर झुकता है, तो सरकार कांग्रेस पर इस प्रकार आ टूटती है जिस प्रकार भेड़ों पर भेड़िया आ टूटता है।

और, जब हम अस्पृश्यता-निवारण के रूप में इस मंच पर एक सामाजिक विषय का समावेश करते हैं, तब भी हमारी यही दशा होती है। प्रधान-मंत्री के निश्चय ने हरिजनों के लिए पृथक् निर्वाचन की व्यवस्था करके 'उन्हें अलग कर दिया, जिन्हें भगवान् ने एकत्र किया था।' जब भारत के महान् नेता ने आमरण अनशन किया तब कहीं जाकर उस गर्हित व्यवस्था में संशोधन हो सका और हिन्दू-जाति में व्यापक एकता स्थापित हुई। पर इतने पर भी आन्तरिक पृथक्ता का भाव फिर भी बना रहा। और जब हमने हरिजनों की मन्दिर-प्रवेश-सम्बन्धी रुकावट दूर करने की चेष्टा की और मताधिक्य के द्वारा मन्दिरों के ट्रस्टियों का पक्ष प्रबल हो गया, तब भी सरकार ने हस्तक्षेप करके एक ऐसे कानूनी प्रस्ताव का विरोध किया जो केवल अनुमति-दायक था, और इस प्रकार उसके मूल में ही कुठाराघात कर दिया।

देश को जिस समस्या का सामना करना है वह बड़ी ही जटिल है। सरकार ऐसी है जो फूट डाल कर शासन करने पर तुली हुई है। नगर और देहात गांवों के विरुद्ध संगठित हैं, उच्च श्रेणियों के हित जनसाधारण के हितों से टक्कर खाते हैं, जन्म-सिद्ध सुधारों के विरुद्ध अपवित्र विरोध संगठित है, खद्दर पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है, साम्प्रदायिक समता कायम करने के मार्ग में रुकावटें मौजूद हैं, और नैतिक आचरण ऊंचा करने की चेष्टा का प्रतिरोध किया जा रहा है। इन सब बातों के द्वारा यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि स्वराज्य यदि प्राप्त होना है तो केवल अंग्रेजी शिक्षा के दीवानों, शिक्षितों के पेशे अपनाने वाले व्यक्तियों और व्यापार और उद्योग-धन्धों के नेताओं के द्वारा ही प्राप्त न होगा। हमें अपना अन्दाज और कीमत लगाने की दृष्टि में परिवर्तन करना होगा। इसके लिए गांवों में रहने वाली जनता में आत्म-चेतनता का विकास करना पड़ेगा और उनका विश्वास प्राप्त करना होगा; और यह विश्वास पत्रों में लेख देने या एक-आध व्याख्यान झाड़ देने से प्राप्त न होगा बल्कि उनकी नित्य सेवा करने से प्राप्त होगा। जहां यह विश्वास प्राप्त हुआ कि बस कांग्रेस-द्वारा आयोजित राष्ट्रोद्धार का कार्यक्रम चलने लग जायगा। उसके फलस्वरूप स्वराज्य पके हुए सेब की भांति तत्काल ही चाहे न टपक पड़े तो भी यह शीघ्र ही स्पष्ट हो जायगा कि जनता की सेवा के लिए किया गया प्रत्येक कार्य मानों स्वराज्य की नींव में अच्छी तरह और सचमुच रक्खा गया एक पत्थर है, और समाज की सामाजिक-आर्थिक रचना में से निकली यह एक-एक कमी स्वराज्य के प्रासाद की एक-एक मंजिल ऊंची करने के सम-तुल्य होगी। यह तरीका निस्सन्देह धीमा है, पर परिणाम निश्चित

और स्थायी होगा। इस प्रकार कांग्रेस ने गांवों में अपना सन्देश ले जाकर ग्राम-नेतृत्व कायम कर दिया है।

२

कांग्रेस के कार्यक्रम को पूरा करने के लिए जिस नवीन कार्य-विधि को अपनाया गया है, अब हमें उसके सम्बन्ध में कुछ कहना है। अभी इस प्रणाली का विकास हो ही रहा है, इसलिए किसी आन्दोलन का उसकी अपूर्ण और अनिश्चित दशा में अध्ययन करना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन है—और खास कर उस व्यक्ति के लिए तो यह और भी कठिन है जो स्वयं उसकी शक्ति में असीम विश्वास रखता है और इसलिए अपने विरोधियों के उपहास का पात्र और शत्रुओं की घृणा का भाजन बन गया है। सभी महान् आन्दोलनों को इन अवस्थाओं में से होकर गुजरना पड़ा है। जान-बूझ कर हो या अविवेक के कारण हो, पर सभी महान् आन्दोलनों को शुरुआत में कृत्रिम आंदोलनों के समान समझा जाता रहा है, जिस प्रकार कि हीरे को कारबन समझा जाता है, जिसके साथ उसकी समता रहती है। सत्याग्रह को भी निष्क्रिय-प्रतिरोध समझा जाता है; पर सत्याग्रह निष्क्रिय-प्रतिरोध से उतना ही भिन्न है, जितनी हीरे की चमक रसायनशाला के उस काले पदार्थ से भिन्न है। नहीं, निष्क्रिय-प्रतिरोध और सत्याग्रह परस्पर-विरुद्ध गुण प्रकट करते हैं। यद्यपि सत्याग्रह का आरम्भ उसके जन्मदाता ने जान-बूझ कर निष्क्रिय-प्रतिरोध के रूप में नहीं किया था, पर गांधीजी के आन्दोलन में कूद पड़ने से पहले भी इसी प्रकार एक आन्दोलन हो चुका था, इसलिए जनता ने इस आन्दोलन को भी निष्क्रिय-प्रतिरोध-मात्र समझा। इस पर आश्चर्य करने की जरूरत नहीं है। जब १९१७ में श्रीमती एनी बेसेण्ट नजरबन्द की गई थीं, तो कांग्रेस ने निष्क्रिय-प्रतिरोध की धमकी दी थी, पर जब उन्हें रिहा कर दिया गया तो उसका जन्म ही न हुआ; और जब गांधीजी ने पदार्पण करके पहले कांग्रेस के बाहर रहकर रौलट-एक्ट के विरुद्ध और फिर कांग्रेस के भीतर जाकर पंजाब और खिलाफत सम्बन्धी अत्याचारों के विरुद्ध सत्याग्रह किया तो अधिकांश कांग्रेसवादियों ने और अधिकांश जन-साधारण ने यही समझा कि इसके पहले कांग्रेस ने जिस आन्दोलन की धमकी दी थी, यह आन्दोलन उसी की पुनरावृत्ति-मात्र है।

हाल की राजनैतिक घटनाओं ने अब अन्त में एक ऐसे आन्दोलन को जन्म दे दिया है जिसने समय-समय पर भिन्न-भिन्न नामों के साथ भिन्न-भिन्न रूप धारण किया है। निष्क्रिय-प्रतिरोध के रूप में इस आन्दोलन में कटुता और अभिमान भरा हुआ था। इस कटुता और गर्व में शायद घृणा और हिंसा का चिह्न भी दिखाई देता था। असहयोग के रूप में यह आन्दोलन उस कुढ़ी हुई जनता का आन्दोलन था जो अपने शासक से क्रुद्ध थी, और यद्यपि घायल करने को इच्छुक थी, पर आक्रमण करने को तैयार न थी। जब इसने सविनय-अवज्ञा का रूप धारण किया तो विशेषण पर विशेष्य के समान ही जोर देने में समय लगा। 'सविनय' वाली बात को शुरू में बहुत कम समझा गया, पर धीरे-धीरे लोग इसको समझने लगे और इस प्रकार इस 'सविनय' सम्बन्धी विचार का दूसरा कदम सत्याग्रह पर जा पहुंचा। कुछ ही दिनों बाद हमने देखा कि सत्याग्रह का आधार प्रेम और अहिंसा है। अहिंसा केवल अभावात्मक शक्ति न रही, बल्कि एक प्रबल शक्ति हो गई और उसने उस प्रेम का रूप धारण कर लिया 'जो दूसरों को तो नहीं जलाता, पर स्वयं जलकर भस्म हो जाता है।' १९२२ की फरवरी में बारडोली में गांधीजी ने पैर पीछे हटाया, और यदि हम उपरोक्त परिभाषा और आदर्श की दृष्टि से बारडोली के निश्चय को देखें तो पता लगेगा कि एक चौरी-चौरा, युक्त-प्रान्त के एक गोरखपुर नामक जिले को ही नहीं, सारे देश को सलाह देने के लिए पर्याप्त है। हम यह भी जान

लगे कि सत्याग्रह भौतिक-शक्ति मात्र न होकर ऐसी नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति है जो अपनी मांगों को पूरी कराये बिना नहीं मानती और जो बड़ी क्रियाशील, अग्रसर और तेजस्विनी है। लोगों को स्थिति का यह सहीपन समझने में काफी अरसा लगा कि यदि सरकार-द्वारा किया गया जालियांवाला-बाग-हत्याकाण्ड इस सत्याग्रह जैसे देश-व्यापी आन्दोलन उत्पन्न कर सकता है, तो जनता-द्वारा किया गया चौरी-चौरा-हत्याकाण्ड इस सत्याग्रह को रोक भी सकता है। वास्तव में सत्याग्रह मनुष्य को अवतक ज्ञात सारे सद्‌गुणों का समुदाय है, क्योंकि सत्य इन सद्‌गुणों का मुख्य स्रोत है और अहिंसा या प्रेम उसका रक्षक-आच्छादन है। इस प्रकार देश बिलकुल ही नये दृष्टि-बिन्दुओं के संसार में जा कूदा जिसमें घृणा और कुत्सा; भय और कायरता, क्रोध और प्रतिहिंसा का स्थान प्रेम, साहस, धैर्य, आत्म-पीड़न और आत्म-शुद्धि ने ले लिया था; जिसमें सम्पदा सेवा के आगे सिर झुकाती है; और जिसमें शत्रु पर विजय प्राप्त नहीं की जाती, बल्कि उसके विचार और भाव को अपने अनकूल बनाया जाता है।

हमें शिक्षा दी जाती है कि भय-केन्द्र स्वयं हमी हैं और भय हमारे आसपास घूमता रहता है। यदि हम एकबार भय और स्वार्थपरता को छोड़ दें तो हम स्वयं मृत्यु का आलिंगन करने को तैयार हो जायं। हरेक सत्याग्रही सत्य की खोज करनेवाला है। इसलिए उसे मनुष्य का, सरकार का, समाज का, दरिद्रता का और मृत्यु का भय छोड़ देना चाहिए। असहयोग उद्देश्य-सिद्धि के निमित्त आत्म-नियंत्रण है, साधना है, इसलिए यह आत्म-त्याग की दीक्षा देने का साधन बन गया है। इस साधन का उपयोग उस विनम्रता की भावना के साथ, जिससे साहस प्राप्त होता है, करना होगा; न कि गर्व की भावना के साथ, जिससे भय उत्पन्न होता है। इस प्रकार आन्दोलन के कर्त्ता ने आजकल की गर्हित राजनीति को एक ही छलांग में दिव्य और आध्यात्मिक बना दिया।

हमें आन्दोलन के इन फलितार्थों पर जरा और भी अच्छी तरह विचार करना होगा। इसके द्वारा भारतीय समाज की भित्ति समझनेमें बड़ी आसानी होगी। वह भित्ति, जिसे एक सरल सूत्र 'अहिंसा परमो धर्मः' में और एक सीधी-सादी प्रार्थना 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवन्तु' में व्यक्त किया गया है, एक ऐसी प्रबल शक्ति है जो न केवल अपने-आपको मिटा देने की क्षमता ही रखती है बल्कि हरेक को बाइबिल के प्रसिद्ध उपदेश के अनुसार उनसे भी प्रेम करने को कहती है जो घृणा करते हों। 'जो तुम्हारे साथ भलाई करे, तुम उसके साथ भलाई करो,' एक व्यवहारू सिद्धान्त है। जो व्यक्ति प्रेम करता हो और दयालु-हृदय हो उसके प्रति अहिंसा का आचरण करना केवल पाशविक या नारकीय प्रवृत्तिवाला व्यक्ति न होने का दावा करना है। सत्याग्रह वशिष्ठ या जनक को पराजित करने के लिए नहीं बनाया गया। जब लोग निराशा से विह्वल होकर पूछते हैं कि अंग्रेजों के वास्तविक बल का मुकाबला अहिंसा कैसे कर सकेगी, तो हम पूछते हैं कि यदि हमारे प्रतिपक्षी पाशविक न होंगे तो क्या सत्याग्रह करना व्यर्थ और युद्ध के काम के लिए निकम्मा साबित न होगा? हमारे भीतर पहले से ही जो धारणायें घुस गई हैं उन्हींके कारण हमें इस प्रकार हताश और विफल होना पड़ता है। पश्चिम की इस शिक्षा ने कि इस जीवन-संघर्ष में जो अधिक बलशाली होता है वही जीवित रहता है और दुर्बल का विनाश अनिवार्य है, हमपर इतना गहरा प्रभाव डाला है कि इसके कारण हमारी कुत्सित वासनायें उत्तेजित हो उठी हैं और हममें गर्व और उनके संगी-साथी वे दुर्गुण उत्पन्न हो गये हैं जिनसे कायरता और हिंसा की उत्पत्ति होती है।

भारतीय समाज सत्याग्रह की उस भित्ति पर खड़ा है, जो हमसे संसार त्यागने को तो नहीं कहती पर साथ ही हममें आत्म-त्याग की प्रवृत्ति जागृत करती है। जहां हमने एकबार सत्य का पीछा

पकड़ा और वासनाओं को कुचला और आत्म-शुद्धि की, कि सेवा-भाव और विनम्रता की भावना अवश्यमेव उत्पन्न होगी। जहां हमने क्रोध पर विजय पाई और क्षमाशीलता से काम लिया, कि मानवी सम्बन्धों के निर्णायक का आसन अहिंसा स्वयं ही ग्रहण कर लेगी।

इस लक्ष्य को कैसे प्राप्त करें? किस नियंत्रण के द्वारा हम उन गुणों को प्राप्त करें, जिन्हें सामूहिक रूप से 'सत्याग्रह' कहा जाता है। इसके लिए एक-मात्र साधन 'तप' है जिसमें सत्य-शौच, दान-धर्म, दम, यम, क्षमा और दया शामिल हैं। काया के सुख की ओर प्रवृत्ति होने का परिणाम यह होगा कि हम वासना के अधीन हो जायंगे; और वासनायें गर्व और क्रोध के आवेश में हमें हिंसा और प्रतिहिंसा की ओर प्रवृत्त करती हैं। शारीरिक वासनाओं की ओर प्रवृत्त होने का परिणाम यह भी होता है कि हम स्वार्थपर हो जाते हैं। स्वार्थपरता धन-सम्पदा के लोभ और आमोद-प्रमोद के प्रेम को जन्म देती है और धन-सम्पदा की प्राप्ति के लिए असत्य-पूर्ण उपायों को काम में लाने को प्रवृत्त करती है। आवश्यकता है परितोष की भावना को। इस परितोष का यह मतलब नहीं है कि हम समाज का परित्याग करके संन्यासी हो जायं, बल्कि यह मतलब है कि हम ऐसा कठोर जीवन व्यतीत करें जिसके द्वारा हम अपनी आवश्यकताओं को कम करें, और वासनाओं को काबू में रक्खें। यह नई शिक्षा ऐसी नैतिक स्फूर्ति को जन्म देगी, जिसके द्वारा इस देश में, जो निरर्थक दार्शनिक शिक्षाओं से अकर्मण्य और पौरुष-हीन हो गया है, नये प्राण पैदा हो जायंगे। इस शिक्षा के अनुसार हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपने शत्रुओं के साथ सम्पर्क स्थापित करने की चेष्टा करें, पर उनके साथ सहयोग तभी करें जब उनके द्वारा हमारा स्वाभिमान अछूता बना रहे। यह शिक्षा हरेक को अपने हिस्से का परिश्रम करने के लिए प्रवृत्त करती है और दरिद्र को भोजन-वस्त्र प्राप्त करने में सहायता देती है। इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए यह आवश्यक है कि मस्तिष्क शरीर पर अधिकार रक्खे और आत्मा शरीर और मस्तिष्क का इस प्रकार संचालन करे, कि काया ऐसे किसी सुख की इच्छा न करे जिसे बुद्धि धिक्कारती हो। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए आत्म-निग्रह से अधिक और कौन पथ-प्रदर्शक हो सकता है, जो भोजन और शारीरिक सुख के मामले में उपवास का रूप धारण कर लेता है, विचार और भाषण के मामले में मौनव्रत का रूप धारण कर लेता है और वासनाओं और भावावेशों के मामले में ब्रह्मचर्य-व्रत का रूप धारण कर लेता है?

अतएव जब लोग उपवास-द्वारा हुई शारीरिक यन्त्रणाओं की निन्दा करते हैं, जब वे मौन धारण करने की दिल्लगी उड़ाते हैं और उसे ढोंग-मात्र समझते हैं, और जब वे छिछोरेपन के साथ उस ब्रह्मचर्य की चर्चा करते हैं जो उनके निकट बिल्कुल असम्भव-सी बात है, तो वे उसी प्रकार की आलोचना से काम लेते हैं जो लगभग उपहास का रूप धारण कर लेती है और जिसका शिकार सारे उन्नतिशील आन्दोलनों को अपने विश्वास की प्रारम्भिक अवस्था में, बनना पड़ा है। पर इन उन्नतिशील आन्दोलनों पर व्यंग्योक्तियों और दुर्वचनों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा और वे अन्त में आनेवाली पीढ़ी के आदर्शों में आमूल परिवर्तन करने में सफल हुए। पिछले १५ वर्षों में भारत का सार्वजनिक जीवन इसी प्रकार तपकर शुद्ध बना है।

सब-कुछ कह चुकने के बाद भी अहिंसा के सम्बन्ध में यह संशय बाकी रह जाता है कि राजनैतिक झगड़ों का फैसला करने में इसकी कितनी उपयुक्तता या कितनी शक्ति है? इस प्रकार का सन्देह करनेवालों के विरुद्ध एक तर्क यह है कि जैसी हमारी परिस्थिति है उसको देखते हुए जहां अहिंसा जीवन के सिद्धान्त-रूप से अकाट्य है तहां नीति-रूप में भी अशंकेय और असंदिग्ध है। यदि अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करने की शपथ न ली जाय और उसका यथावत् पालन न किया जाय तो भारतवासियों-जैसे विशाल-विजित जन समूह में जीवन उत्पन्न करना असम्भव हो जाय। ऐसे लोग

मौजूद हैं जो यह कहेंगे कि अहिंसात्मक असहयोग असफल हुआ, पर एक ही छलांग में सफलता प्राप्त करने का, विशेषकर उस अवस्था में जब इस नवीन आन्दोलन को अपनाने में जन-समूह ने विलम्ब दिखाया है, किसीने बीड़ा भी तो नहीं उठाया। अहिंसा ही एकमात्र ऐसी स्थायी शक्ति है जो दोनों प्रतिद्वंद्वियों को शान्ति और सन्तोष प्रदान करती है, क्योंकि जहां हमने हिंसा को एक बार निर्णायक के आसन पर बैठा दिया, कि फिर इस अस्त्र का उपयोग, जैसा कि कहा जा चुका है, विजित और विजेता दोनों के द्वारा किया जा सकता है। बस, इसके बाद हिंसा और प्रतिहिंसा का नाशक चक्र चलता ही रहता है।

३

लाखों पुरुषों, स्त्रियों और बालकों पर गांधीजी के इस स्थायी प्रभाव का क्या कारण है? उनका जन्म ऐसे युग में हुआ जिसमें राजनैतिक हलचल का ही नहीं, राजनैतिक अव्यवस्था और गोल-माल का दौरदौरा है। जैसा कि लॉवेल ने कहा है—"ऐसा प्रतीत होता है मानों ईश्वर की यही इच्छा हो कि समय-समय पर व्यक्तियों के पुरुषत्व की भांति ही राष्ट्रों के पुरुषत्व की भी परीक्षा भारी संकटों या भारी अवसरों द्वारा होती रहे। यदि पुरुषत्व मौजूद हो तो वह भारी संकट को अवसर बना लेता है; और यदि पुरुषत्व मौजूद न हुआ तो भारी अवसर भारी संकट में परिवर्त्तित हो जाता है।" गांधीजी ने भी भारी संकट को भारी अवसर बना डाला और नई क्रांति का श्रीगणेश कर दिया जो रक्तरंजित नहीं है, जो दूसरों को पीड़ा देने के बजाय स्वयं पीड़ा का आह्वान करती है, जो शत्रु पर विजय प्राप्त करने के स्थान पर उसका मत-परिवर्त्तन करने की इच्छा रखती है। गांधीजी ने बुलन्द आवाज में घोषित कर दिया है कि जनता को सविनय विद्रोह करने का अधिकार ही नहीं, यह उसका कर्त्तव्य भी है; पर साथ ही उन्होंने यह भी कह दिया है कि सरकार को भी इस विद्रोहाचरण के लिए लोगों को फांसी पर चढ़ाने का अधिकार है। उन्होंने केवल भारत के दासत्व को मिटा देने का बीड़ा उठाया हो, सो बात नहीं है; वास्तव में उन्होंने सारे संसार से उन सारी व्यवस्थाओं को मिटा देने का बीड़ा उठाया है, जो दासत्व का प्रतिपादन किसी भी रूप में—चाहे वह भौतिक हो, चाहे राजनैतिक या आर्थिक—करनेवाली हों। उन्होंने यह दिखा दिया है कि दूसरों को अपनी प्रजा और दास बनाना नैतिक अन्याय है, राजनैतिक भूल है और व्यावहारिक दुर्भाग्य है। इस लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने हमेशा जनता की शुद्ध बुद्धि को उद्‌बोधित किया, न कि उसके राग-द्वेषों को; उसके सद्-असद्-विवेक को उद्‌बोधित किया, न कि उसकी स्वार्थपरता या अज्ञान को। उनकी दृष्टि में किसी भी नैतिक बुराई का प्रभाव स्थानिक नहीं रह सकता। उनके अनुसार सत्य और अहिंसाके विरोधी सिद्धान्त देश में शान्ति और समृद्धि उत्पन्न नहीं कर सकते।

अब हमें यह देखना है कि यहां पर जिन लम्बे-चौड़े सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है उनका प्रयोग हमारी दैनिक राजनीतिमें कैसा रहा? इन सिद्धान्तों का प्रयोग पहली बार १९१९ में अमृतसर कांग्रेस में हुआ, जब कि गांधीजी ने आग्रह-पूर्वक प्रतिपादन किया कि जनता ने चार अंग्रेजों की हत्या करके और नेशनल-बैंक की इमारत को और अन्य इमारतों को जलाकर जिस हिंसात्मक मनोवृत्ति का परिचय दिया उसकी अवश्य निन्दा होनी चाहिए। कांग्रेस की विषय-समिति ने इस प्रस्ताव को रातके समय रद कर दिया और गांधीजी ने घोषणा की कि मुझे कांग्रेस छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। साधारणतः धमकी जिस भाव में समझी जाती है उस भाव में यह धमकी न थी, बल्कि गांधीजी के उस रुख का परिचय देती थी जो उनके सिद्धान्तोंके अनुसार अनिवार्य था। दूसरे दिन विषय-समिति ने प्रस्ताव स्वीकार कर तो लिया, पर संकोच-पूर्वक। बस, उसी दिन से गांधीजी ने जनता के कानों

में यह डालना शुरू किया कि वास्तव में अहिंसा क्या है। कांग्रेस के नजदीक स्वराज्य का अर्थ यह था कि अंग्रेजों को देश से निकाल बाहर कर दिया जाय; पर गांधीजी ने उसे बताया कि नागरिक की हैसियत से अंग्रेज भारत में शौक से आ सकते हैं और रह सकते हैं, और विदेशियों का बाल भी बांका न होना चाहिए। अब राष्ट्र को कसौटी पर कसा गया, और चौरी-चौरा में राष्ट्र पूरा न उतरा। पर तो भी कांग्रेस हताश न हुई। जब आन्दोलन बन्द किया गया तो प्रभावशाली व्यक्तियों ने उच्च-स्वर से विरोध किया। पर गांधीजी अचल थे। सत्याग्रही को न शत्रु का भय है, न मित्र का, न सहयोगी का ही भय है। उसे तो केवल सत्य का भय है। फलतः गांधीजी ने मानो आन्दोलन को लगभग छः वर्ष के लिए स्थगित कर दिया। बाद को जो घटनायें हुईं वे जानी-बूझी हैं और उनसे सत्याग्रह की शक्ति अच्छी तरह प्रकट होती है। वैसे वे घटनायें पुराने कथानक की भांति या दिन के स्वप्न के जल्दी-जल्दी बदलते हुए दृश्यों की भांति प्रतीत होंगी, पर वास्तव में हैं वे सत्याग्रह की दिव्य शिक्षाओं का प्रकृत रूप मात्र।

पिछले पचास वर्षों में हमारी जो प्रगति हुई है उसका नकशा अपने उतार-चढ़ाव को स्वयं प्रकट करता है। इस प्रगति को चक्करदार रास्ते की प्रगति कहना ठीक होगा। हम घूम-फिर कर बराबर उसी कार्यक्रम पर आ जाते हैं—अर्थात् १९०६ का स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय-शिक्षा और स्वराज्य का कार्यक्रम। इस कार्यक्रम को १९१७ में दुहराया गया, किन्तु ऊंचे अर्थात् निष्क्रिय-प्रतिरोध के दर्जे पर। १९१९-२१ में इसे फिर दुहराया गया। इस बार यह और भी ऊंचे दर्जे पर-सविनय-अवज्ञा के दर्जे पर—जा पहुंचा था। इसके बाद १९३०-३४ का आन्दोलन आया। इस बार यह और भी ऊंचे—सत्याग्रह के दर्जे पर आ पहुंचा। हमारी चढ़ाई एक ऐसी पहाड़ी रेल की चढ़ाई की तरह है जो तोड़-मरोड़ को तय करती हुई, कभी नीचे जाती और कभी ऊंची उठती हुई, अन्त में पूरी ऊंचाई पर जा पहुंचती है। इस चढ़ाई में कभी प्रयत्न-पूर्वक ऊपर चढ़ना पड़ता है, और कभी आसानी के साथ नीचे को जाना पड़ता है। इसी प्रकार सत्याग्रह आन्दोलन के दौरान में कभी जोर-शोर से युद्ध हुआ, और बीच-बीच में कौंसिल का काम भी हाथ में लिया गया—कौंसिल का काम भी युद्ध ही है, पर उतना कठोर नहीं। अभी हमें अपनी चढ़ाई के अन्तिम शिखर 'स्वराज्य' तक पहुंचना है।

पर यदि लॉर्ड अर्विन की भाषा को, जो उन्होंने १९३१ में सन्धि से पहले इस्तेमाल की थी, व्यवहार में लाकर कहा जाय कि स्वराज्य परिणाम नहीं उपाय-मात्र है, फल नहीं प्रयत्न-मात्र है, गन्तव्य स्थान नहीं दिशा-मात्र है, तो उस कारीगर से, जो अभी नींव ही को ठोक-पीटकर ठीक कर रहा है, यह पूछने का किसी को अधिकार नहीं है, कि प्रासाद बनकर अभीतक तैयार क्यों नहीं हुआ? मामूली ईंट-चूने की नींव को भी बनाकर तैयार, पक्का और ठोस होने के लिए एक या दो वर्षों के लिए छोड़ दिया जाता है; फिर स्वराज्य की नींव को तो पुख्ता होने के लिए न जाने कितने दिनों तक छोड़ देना होगा, जिससे वह अपने ऊपर बननेवाली इमारत के बोझ को सहन कर सके।

इन अनेक वर्षों में जिस प्रकार संघर्ष जारी रहा उसका वर्णन हमने कर दिया है। पर हमारा मार्ग सामने स्पष्ट है। हमें घर को हुनर और कारीगरी का केन्द्र, और ग्राम को भारत की राष्ट्रीयता का केन्द्र बना देना होगा; और इन दोनों को यथासम्भव आत्म-सन्तुष्ट और आत्म-परिपूर्ण बनाना होगा। "हमें अपने राष्ट्र के निर्माण में समानता को नींव बनाना होगा, स्वतन्त्रता को शिखर बनाना होगा और भ्रातृभाव को पारस्परिक सामंजस्य स्थापित करनेवाले सीमेंट का रूप देना होगा। यह समानता न वह समानता होगी जिसमें भेद-भाव और फूट दिखाई पड़ती हो, और न वह समानता होगी

जिसमें चारों ओर लम्बी-लम्बी घास-फूस उगी हुई होगी और छोटे-छोटे शाहबलुद के दरख्त दिखाई देते होंगे, जिसमें एक-दूसरे को दुर्बल करने वाला 'द्वेष' दिखाई देता होगा। पर वह समानता ऐसी होगी जिसमें नागरिकता की दृष्टि से सारी रुचियों को विकास का एक समान अवसर दिया जायगा, जिसमें राजनैतिक दृष्टि से सारी रायों का समान-मूल्य होगा, जिसमें धार्मिक दृष्टि से सारे धार्मिक विश्वासों को समान-अधिकार मिलेगा। इस प्रकार सार्वजनिक कार्यों के लिए बहुत बड़ा क्षेत्र मौजूद है और 'चाहिए' और 'है' में सामंजस्य स्थापित करने के लिए सामूहिक शक्ति लगी हुई है, जिससे प्रयत्न और आनन्द में और आवश्यकता और पूर्ति में समानता स्थापित की जा सके। संक्षेप में, हमें इस पुरातन सामाजिक ढांचे में से, उन लोगों के लाभ के लिए जो कष्ट पा रहे हैं और उनके लिए जो अज्ञानी है, अपने घरों के लिए अधिक प्रकाश और उन घरों में रहनेवालों के लिए अधिक आराम प्राप्त करना होगा। कांग्रेस ने सारे मानवी कर्तव्यों में से इसे प्रमुख स्थान दिया है और सारी राजनैतिक आवश्यकताओं में इसे सबसे अधिक आवश्यक माना है। इसलिए कांग्रेस ने सबके उपयोग के हेतु इन दो सम्पत्तियों की गारण्टी दी है, जिनका उत्तराधिकार प्रत्येक युवक को अपने जीवन में प्राप्त होता है—अर्थात् वह परिश्रम जो उसे स्वतन्त्र बनाता है, और वह विचार जो उसे चरित्रवान् बनाता है।

इस प्रकार कांग्रेस-स्रोत, जिसका साधारण आरम्भ १८८५ में बम्बई में हुआ था, आधी शताब्दी से बहता आ रहा है। कभी यह संकीर्ण स्रोत का रूप धारण कर लेता है, कभी विशाल नदी का। यह स्रोत कहीं जंगलों को पार करता है, कहीं पहाड़ियों और घाटियों में से होकर गुजरता है। कहीं यह एक स्थान पर एकत्र होकर शान्त और निश्चल रूप धारण कर लेता है, और कभी जोर-शोर से प्रबल वेग के साथ बह निकलता है। पर इसका आकार बढ़ता जा रहा है, और प्रतिवर्ष नित्य नये आदेशों के द्वारा इसके जल में बराबर वृद्धि होती जा रही है। इस प्रकार यह स्रोत पूर्ण आस्था के साथ, अपने उस अन्तिम लक्ष्य की प्रतीक्षा कर रहा है जब इसकी पवित्र राष्ट्रीय संस्कृति अन्त में अन्तर्राष्ट्रीयता और विश्व-बन्धुत्व की विस्तृत और विशाल संस्कृति में जा मिलेगी।

परिशिष्ट

१. '१६' का आवेदन-पत्र
२. कांग्रेस-लीग-योजना
३. फरीदपुर के प्रस्ताव
४. मुशलीपेठा-सत्याग्रह
५. गुजरात की बाढ़
६. कैदियों के वर्गीकरण पर सरकारी आज्ञा-पत्र
७. हिन्दुस्तानी मिलों के घोषणा-पत्रक
८. जुलाई-अगस्त १६३० के सन्धि-प्रस्ताव
६. साम्प्रदायिक 'निर्णय'
१०. गांधीजी के आमरण अनशन-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा पूना-पैक्ट
११. बिहार का भूकम्प
१२. १६३५ की भारत और ब्रिटेन की व्यापारिक-सन्धि
१३. कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों, मन्त्रियों इत्यादि की सूची

१

'१९' का आवेदन-पत्र

[महायुद्ध के बाद के सुधारों के सम्बन्ध में शाही कौन्सिल के १९ अतिरिक्त सदस्यों ने वाइसराय को जो आवेदनपत्र दिया था उसे हम नीचे देते हैं। उक्त कौन्सिल के २७ गैर-सरकारी सदस्यों में से २ अधगोरों की रायें नहीं ली गई थीं, जिसके कारण सबको मालूम हैं; ३ मौजूद नहीं थे; और ३ हिन्दुस्तानियों ने उसपर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया था। उनके नाम नवाब सैयद नवाबअली चौधरी, मि० अब्दुर्रहीम और सरदार ब० सुन्दरसिंह मजीठिया हैं।]

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि महायुद्ध के अन्त में सारे सभ्य संसार में, मुख्यतः ब्रिटिश-साम्राज्य में, जो दुनिया के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में न्याय और मनुष्यता की रक्षा के लिए कमजोर और छोटे राष्ट्रों के बचाव के इस संघर्ष में पड़ा है और अपना कीमती धन-जन लगा रहा है, शासन-सम्बन्धी आदर्श बहुत आगे बढ़ जायंगे। भारतवर्ष ने भी इस संघर्ष में भाग लिया है; इसलिए वह भी स्थितियों के सुधार के लिए जो परिवर्तन की नई भावना जाग्रत होगी उससे प्रभावित हुए बिना न रहेगा। इस देश में यह आशा की जा रही है कि युद्ध के बाद भारतीय शासन की समस्या को नये दृष्टिकोण से देखा जायगा। हिन्दुस्तान के लोग इंग्लैण्ड के इसलिए कृतज्ञ हैं कि हिन्दुस्तान ने अंग्रेजी शासन-काल में भौतिक साधनों में बड़ी उन्नति की है और अपने बौद्धिक और राजनैतिक दृष्टिकोण को विस्तृत किया है। उसने अपने राष्ट्रीय जीवन में, जिसकी शुरुआत १८३३ के भारतीय चार्टर-एक्ट से होती है, लगातार (हालांकि वह धीमा है) विकास किया है। १९०९ तक भारतवर्ष का शासन एक नौकरशाही-वर्ग-द्वारा चलाया जाता था जिसमें करीब-करीब सभी गैर-हिन्दुस्तानी थे और जन-साधारण के प्रति जवाबदेह न थे। १९०९ के सुधारों में प्रथम बार भारतवर्ष के राजकीय मामलों में भारतवासियों को कुछ स्थान मिला; किन्तु उनकी संख्या बहुत थोड़ी थी। तब भी भारतवासियों ने, उन्हें सरकार की भारतवासियों को भारतीय साम्राज्य के अन्दरूनी सलाहकारों में प्रविष्ट करने की इच्छा का सूचक समझ कर, स्वीकार कर लिया था। कौन्सिलों में बहस और सवाल-जवाब की अधिक सुविधायें देकर गैरसरकारी सदस्यों की संख्या भर बढ़ा दी गई थी। बड़ी कौंसिल में पूर्णतः सरकारी बहुमत रहा और प्रान्तीय कौंसिलों में, जिनमें गैर सरकारी सदस्यों का बहुमत होने दिया गया था, बहुमत में सरकार द्वारा नामजद सदस्य और यूरोपियन सदस्य भी शामिल थे। जिन कार्रवाइयों का अधिकतर लोगों पर असर होता, चाहे वे कानून बनाने के सम्बन्ध में होतीं, चाहे कर लगाने के सम्बन्ध में, यूरोपियनों पर उनका सीधा कोई असर न होने से, उसमें यूरोपियन सदस्य स्वभावतः सरकार का ही समर्थन करते और नामजद-सदस्य भी सरकार-द्वारा नियुक्त किये जाने के कारण वही पक्ष लेने की ओर झुकते थे। पिछला अनुभव बतलाता है कि भिन्न-भिन्न अवसरों पर वास्तव में यही सिद्ध हुआ है। इसलिए प्रांतीय-कौंसिलों के गैर-सरकारी बहुमत बहुत ही धोखे-भरे साबित हुए हैं।

उनसे जन-पक्ष के प्रतिनिधियों के हाथ में कोई वास्तविक शक्ति नहीं आई है। वर्तमान समय में बड़ी कौन्सिल और प्रान्तीय-कौन्सिलें केवल सलाह देनेवाले मण्डलों के सिवा और कुछ नहीं है। उन्हें ऐसा कोई हक हासिल नहीं है जिससे केन्द्रीय और प्रान्तीय-शासन पर उनका कोई वास्तविक नियंत्रण हो। जनता और जनता के प्रतिनिधि व्यावहारिक रूप में देश के शासन से इतने कम सम्बन्धित हैं जितने वे सुधारों से पहले थे। केवल कार्यकारिणी में कुछ हिन्दुस्तानी सदस्य रक्खे जाते हैं; किन्तु वे भी पूर्णतः सरकार द्वारा ही नामजद किये जाते हैं। जनता का उनके चुनाव में कोई मत नहीं होता।

१९०९ के सुधारों को देने में सरकार की दृष्टि में जो उद्देश्य था वह (१-४-१९०९ के) 'इण्डियन कौंसिल बिल' के दूसरे वाचन के समय कामन-सभा में प्रधानमंत्री-द्वारा दी हुई वक्तृता से व्यक्त होता है। उन्होंने कहा था कि वर्तमान स्थितियों में हिन्दुस्तानियों को यह महसूस होने देना अत्यन्त वांछनीय है कि ये कौन्सिलें महज ऐसे यन्त्र नहीं हैं जिनके तार अप्रकट रूप से सरकारी शासकों-द्वारा खींचे जाते हों। परन्तु हम विनम्र भाव से कहते हैं कि यह उद्देश्य पूरा नहीं हुआ है। कौंसिलों और कार्य-कारिणी की रचना के इस प्रश्न के अलावा भी लोगों को खास-खास भारी कानूनी बाधायें भुगतनी पड़ रही हैं जो उनकी शक्तियों को सार्थक बनाने के बजाय व्यर्थ कर देती हैं और उनके राष्ट्रीय स्वाभिमान को निश्चित रूप से आघात पहुंचाती हैं। शस्त्र-कानून जो यूरोपियनों और अधगोरों पर लागू नहीं होता, केवल इस देश के निवासियों पर ही लागू होता है। वे स्वयंसेवक-दलों का संगठन नहीं कर सकते, स्वयंसेवक-दलों में शामिल नहीं हो सकते; और वे फौज के कमीशनप्राप्त पदों पर भी नहीं जा सकते। ये कानूनी बाधायें हिन्दुस्तानियों के लिए हैं जो दुःखदाई और भेदभाव-पूर्ण हैं। यदि वे केवल रुकावट ही होतीं तो भी कम बुराई न थी। शस्त्र रखने और उन्हें प्रयोग में लाने की इन रुकावटों और मनाहियों ने तो हिन्दुस्तान के लोगों को नामर्द बना दिया है। उन पर कभी खतरा आ सकता है। हिन्दुस्तान में हिन्दुस्तानियों की स्थिति वास्तव में यह है कि देश के शासन में उनका कोई असली भाग नहीं है। उन्हें ऐसी भारी-भारी और दुःखदायी कानूनी-बाधाओं के नीचे रक्खा गया है जिनसे साम्राज्य के दूसरे सदस्य बरी हैं। उन्होंने हमें बिलकुल बेबसी की हालत में ला खड़ा किया है। इसके सिवा शर्तबन्दी-कुली-प्रथा से दूसरे अंग्रेजी उपनिवेशों और बाहरी देशों को यह खयाल होता है कि सारे भारतवासी शर्त-बन्दी-कुलियों जैसे ही हैं। वे गुलामों की तरह हिकारत की नजर से देखे जाते हैं। मौजूदा हालतें हिन्दुस्तानियों को अनुभव कराती हैं कि यद्यपि वे कहने भर को बादशाह की समान प्रजा हैं, किन्तु वास्तव में साम्राज्य में उनका रुतबा बहुत छोटा है। दूसरी एशियाई जातियां भी अधिक बुरा नहीं तो ऐसा ही खयाल भारतवर्ष के और साम्राज्य में उसके दर्जे के सम्बन्ध में रखती हैं। भारतवासियों की यह हीन स्थिति यों भी उनको जलील करने वाली है; परन्तु यह भारतीय युवकों को तो असह्य है जिनकी दृष्टि शिक्षा और विदेशी-भ्रमण से जहां, वे स्वतंत्र जाति से मिले हैं, विशाल हो गई है। इन कष्टों और बाधाओं के होते हुए लोगों को जिस चीज ने अबतक सम्हाल रक्खा है वह है वह आशा और वह विश्वास, जिसका संचार हमारे सम्राटों और ऊंचे दर्जे के अंग्रेज राजनीतिज्ञों-द्वारा समय-समय पर दिये गये न्यायपूर्ण और समान-व्यवहार के वादों और आश्वासनों से हुआ है। इस नाजुक हालत में, जिसमें हम अब गुजर रहे हैं, हिन्दुस्तानी लोगों ने अपने और सरकार के बीच के घरेलू मतभेदों को भुला दिया है और वफादारी के साथ साम्राज्य का साथ दिया। हिन्दुस्तानी सिपाही यूरोप के रण-क्षेत्रों में जाने को उत्सुक थे—किराये की फौजों की तरह से नहीं बल्कि अंग्रेजी साम्राज्य के, जिसे उनकी सेवाओं की आवश्यकता थी, स्वतंत्र-नागरिकों की हैसियत से। भारतीयों का शिक्षित-समुदाय भी चाहता था कि इस जरूरत के वक्त में इंग्लैंड का

साथ दिया जाय। हिन्दुस्तान में, अंग्रेजी और हिन्दुस्तानी फौजों के करीब-करीब खाली हो जाने की हालत में भी शान्ति बनी रही। इंग्लैण्ड के प्रधान मन्त्री ने, हिन्दुस्तानियों ने महायुद्ध में जो भाग लिया उसके सम्बन्ध में इंग्लैण्ड-वासियों के विचार प्रकट करते हुए, कहा था कि 'हिन्दुस्तानी एक संयुक्त स्वार्थ और भविष्य के संयुक्त और समान रक्षक हैं।' हिन्दुस्तान अपनी वफादारी के लिए कोई पुरस्कार नहीं मांगता, किन्तु यह आशा करने का हक रखता है कि सरकार में हमारे प्रति जो विश्वास की कमी है, जिसके कारण हम वर्तमान स्थिति में हैं, वह भूतकाल की चीज हो जाय और हिन्दुस्तान की स्थिति एक मातहत की-सी न रहे बल्कि मित्र की-सी हो जाय। इससे हिन्दुस्तानी लोगों को विश्वास हो जायगा कि इंग्लैण्ड ब्रिटिश-छत्र-छाया में स्वराज्य प्राप्त करने में हमारा सहायक होने के लिए तैयार और इच्छुक है। वह इस प्रकार अपने उस उदार कार्य को पूरा करना चाहता है जिसका जिम्मा उसने अपने ऊपर ले लिया है और जिसका इजहार वह अपने शासकों और राजनीतिज्ञों-द्वारा इतनी बार कर चुका है। हम जो-कुछ चाहते हैं वह केवल अच्छा शासन, योग्यता-पूर्ण प्रबन्ध ही नहीं है; हम तो ऐसी सरकार चाहते हैं जो लोगों के प्रति उत्तरदायी होने के कारण उन्हें स्वीकार भी हो सके। इतना होने पर ही हिन्दुस्तान समझ सकता है कि अंग्रेजों का दृष्टिकोण बदला है।

यदि युद्ध के बाद भी हिन्दुस्तान की स्थिति वास्तव में वही रहे जो पहले थी, उसमें ठोस परिवर्तन कुछ भी न हो, तो उससे देश में निस्सन्देह बड़ी निराशा और बेइतमिनानी पैदा होगी; और दोनों के इस सम्मिलित संकट में भाग लेने से जो लाभदायक असर हुआ है वह तुरन्त गायब हो जायगा। उसके पीछे निराशा में परिणत आशाओं की दुःखद स्मृति-भर रह जायगी। हमें विश्वास है कि सरकार भी इस स्थिति को अनुभव कर रही है और देश के शासन में सुधार करने के उपाय सोच रही है। हम अनुभव करते हैं कि हम इस अवसर पर आदर-पूर्वक सरकार को यह सुझावें कि ये सुधार किन दिशाओं में हों। हमारी राय में उन्हें इस विषय की तह तक जाना चाहिए और उनसे देश के शासन में लोगों को सच्चा और वास्तविक हिस्सा मिलना चाहिए। शस्त्र रखने और फौज में कमीशन मिलने के सम्बन्ध में उनके सामने जो सन्तापदायी कानूनी बाधायें हैं वे भी हटा लेनी चाहिए, क्योंकि उनसे तो लोगों में अविश्वास प्रकट होता है और वे उन्हें हीन और असहाय अवस्था में भी बना रखती हैं। इसी खयाल से हम नीचे लिखी तजवीजों को गौर करने और मंजूर करने के लिए पेश करते हैं—

१. प्रान्तीय और केन्द्रीय सभी कार्यकारिणियों में आधे सदस्य हिन्दुस्तानी हों; कार्यकारिणी में जो यूरोपियन हों वे जहांतक हो इंग्लैण्ड के सार्वजनिक जीवन की शिक्षा पाये हुए लोगों में से नामजद किये जायं, ताकि हिन्दुस्तान को बाहरी दुनिया के विशाल दृष्टिकोण और अनुभव का लाभ मिल सके। यह बिलकुल आवश्यक नहीं है कि कार्यकारिणी के सदस्य, चाहे वे हिन्दुस्तानी हों या अंग्रेज, अमली शासन का अनुभव रक्खें; क्योंकि, जैसा कि इंग्लैण्ड के मन्त्रियों के सम्बन्ध में होता है, उन्हें सभी विभागों के अस्थायी अफसरों की सहायता सदा प्राप्त हो सकेगी। हिन्दुस्तानियों के विषय में तो हम साहस-पूर्वक कह सकते हैं कि उनमें से ऐसे योग्य आदमी काफी संख्या में और हर वक्त मिल सकते हैं जोकि कार्यकारिणी के सदस्यों के पद बड़ी अच्छी तरह ले सकते हैं। इस दिशा में हमने देखा है कि सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह, सर अली इमाम, स्व० कुंवर कृष्णस्वामी ऐयर, सर शम्सुल्हुदा और सर शंकरन् नायर जैसे लोगों ने अपने कार्यों का सम्पादन करनेमें अपनी शासन-सम्बन्धी उच्च योग्यता का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त सभी लोग यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि भिन्न-भिन्न देशी राज्यों के वर्तमान शासकों के अतिरिक्त भी, देशी-राज्यों ने, जिनमें हिन्दुस्तानियों को अवसर मिला है,

सरसालार जंग, सर टी० माधवराव, सर शेषाद्रि ऐयर और दी० ब०रघुनाथराव जैसे प्रख्यात शासक उत्पन्न किये हैं। उच्च कार्यकारिणी के ३ सदस्यों के सरकारी नौकरों में से चुने जाने वर्तमान नियम को, तथा प्रान्तीय कौंसिल-सम्बन्धी ऐसे दूसरे नियमों को तोड़ देना चाहिए। कार्यकारिणी के हिन्दुस्तानी सदस्यों के चुनाव में जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों के मत भी लेने चाहिए और उसके लिए निर्वाचन का कोई सिद्धांत स्वीकार कर लेना चाहिए।

२. सभी भारतीय कौंसिलों में निर्वाचित प्रतिनिधियों का सच्चा बहुमत होना चाहिए। हमें विश्वास है कि ये प्रतिनिधि भारतीय जन-साधारण और किसानों के हितों की रक्षा करेंगे, क्योंकि वे किसी भी यूरोपियन अफसर की अपेक्षा, जो उनसे कितनी ही सहानुभूति रखता हो, उनके अधिक सम्पर्क में आते हैं। भिन्न-भिन्न कौंसिलों, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और मुस्लिम-लीग की कार्रवाइयां इस बात का काफी सबूत देती हैं कि हिन्दुस्तान का शिक्षितवर्ग हिन्दुस्तानी जन-साधारण की भलाई का इच्छुक है और वही उनकी आवश्यकताओं और इच्छाओं से परिचित है। मत देने का अधिकार सीधा लोगों को मिल जाना चाहिए। मुसलमान या हिन्दू जहां अल्पसंख्यक हों वहां उन्हें उनकी संख्या शक्ति और स्थिति का खयाल करके उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व देना चाहिए।

३. बड़ी कौंसिल के सदस्यों की पूर्ण संख्या १५० से कम, प्रान्तीय कौंसिलों में बड़े प्रान्तों की कौंसिलों के सदस्यों की संख्या १०० से कम और छोटे प्रान्तों की कौंसिलों के सदस्यों की ६० से ७५ तक से कम होनी चाहिए।

४. भारतवर्ष को आर्थिक स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए और बजट कानून के रूप में पास होना चाहिए।

५. शाही कौंसिल को भारतीय शासन-सम्बन्धी सभी मामलों में कानून बनाने, विचार करने और प्रस्ताव पास करने का अधिकार होना चाहिए। प्रान्तीय-शासन के लिए प्रान्तीय-कौंसिलों को भी वैसे ही अधिकार होने चाहिए। केवल सेवा-सम्बन्धी मामलों, वैदेशिक सम्बन्धों के युद्ध की घोषणा करने के, समझौता करने के, और व्यापारिक सन्धियों के सिवा अन्य सन्धियां करने के अधिकार भारतीय सरकार को न दिये जायं। संरक्षण के तौर पर कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल को और कौंसिल-सहित गवर्नरों को 'वीटो' करने का अधिकार हो, किन्तु उसका उपयोग निश्चित शर्तों और हदों के भीतर ही किया जाय।

६. भारत-मंत्री की कौंसिल तोड़ दी जाय। भारत-मंत्री की स्थिति भारत-सरकार से सम्बन्ध रखने में, जहांतक हो, वैसी ही हो जैसी उपनिवेशों के सम्बन्ध में उपनिवेशों के मंत्री की होती है। भारत-मंत्री के सहायक दो स्थायी उपमंत्री हों, जिनमें से एक हिन्दुस्तानी हो। मंत्री और दोनों उप-मंत्रियों के वेतन इंग्लैण्ड के खजाने से दिये जायं।

७. साम्राज्य-संघ की जो भी कोई योजना बनाई जाय, उसमें भारतवर्ष को वही स्थान प्राप्त हो जो अपना शासन स्वयं करनेवाले दूसरे उपनिवेशों को प्राप्त है; और वह उसके लिए अपने प्रतिनिधि भी स्वयं चुन सके।

८. प्रान्तीय सरकारों को, जैसी २५ अगस्त १९११ के भारत-सरकार के खरीते में वर्णित है, वैसी स्वतन्त्रता प्रान्तीय प्रबन्ध में दे दी जाय।

९. संयुक्त-प्रान्त तथा इतने बड़े-बड़े अन्य प्रान्तों के गवर्नर ब्रिटेन से लाये जायं और उनकी कार्य-कारिणी कौंसिलें हों।

१०. स्थानीय स्वराज्य तो पूरा अभी दे देना चाहिए ।

११. शस्त्र रखने का अधिकार हिन्दुस्तानियों को उन्हीं शर्तों पर दे देना चाहिए जिन शर्तों पर यूरोपियनों को दिया हुआ है ।

१२. हिन्दुस्तान में जो संगठित प्रादेशिक सेना (Territorial army) है उसमें स्वयं-सेवकों और सिपाहियों के रूप में भरती होने की हिन्दुस्तानियों को छूट होनी चाहिए ।

१३. ज़िन शर्तों पर फौज में यूरोपियनों को कमीशन (ऊंची अफसरी) मिलती है उन्हींपर हिन्दुस्तानी नौजवानों को भी मिलनी चाहिए ।

मणीचन्द्र नन्दी, कासिमबाजार	इब्राहीम रहीमतुल्ला
डी० ई० वाचा	वी० नरसिंहेश्वर शर्म्मा
भूपेन्द्रनाथ वसु	मीर असदअली
विष्णुदत्त शुक्ल	कामिनीकुमारी चन्दा
मदनमोहन मालवीय	कृष्णसहाय
के० वी० रंगस्वामी आयंगर	आर० एन० भंजदेव, कनिका
मजहरुल हक	एम० वी० दादाभाई
वी० एस० श्रीनिवासन्	सीतानाथ राय
तेजबहादुर सप्रू	मुहम्मदअली मुहम्मद

एम० ए० जिन्ना

२

कांग्रेस-लीग-योजना

प्रस्ताव

"(क) इस बात का ध्यान रखते हुए कि भारतवर्ष की बड़ी-बड़ी जातियां प्राचीन सभ्यता की उत्तराधिकारिणी हैं, वे शासन के काम में बड़ी योग्यता प्रकट कर चुकी हैं, और अंग्रेजी शासन की एक शताब्दी के भीतर उन्होंने शिक्षा में उन्नति और सार्वजनिक कामों में रुचि प्रकट की है, और साथ ही इस बात का ध्यान रखते हुए कि वर्तमान शासन-पद्धति प्रजा की उचित आकांक्षाओं को सन्तुष्ट नहीं करती और वर्तमान अवस्था और आवश्यकताओं के लिए उपयुक्त नहीं है, कांग्रेस की राय है कि अब वह समय आ गया है जबकि श्रीमान् सम्राट् इस प्रकार का घोषणा-पत्र निकालने की कृपा करें कि अंग्रेज-शासन-नीति का यह उद्देश्य और लक्ष्य है कि वह शीघ्र ही हिन्दुस्तान को स्वराज्य प्रदान करे ।

(ख) यह कांग्रेस (सरकार से) मतालबा करती है कि महासमिति ने भारतीय मुस्लिम-लीग-द्वारा नियुक्त सुधार-समिति की सहयोगिता से शासन-सुधार की जो योजना तैयार की है (जोकि नीचे दी जाती है) उसको मंजूर कर स्वराज्य की ओर एक दृढ़ कदम बढ़ाया जाय ।

(ग) साम्राज्य के पुनस्संगठन में भारतवर्ष पराधीनता की अवस्था से ऊपर उठाया जाकर आत्म-शासित उपनिवेशों की भांति साम्राज्य के कामों में बराबर का हिस्सेदार बनाया जाय ।"

सुधार-योजना

१—प्रान्तीय कौन्सिलें

१. प्रान्तीय कौंसिलों में चार-पंचमांश निर्वाचित और एक-पंचमांश नामजद-सदस्य रहेंगे।

२. उनके सदस्यों की संख्या बड़े प्रान्तों में १२५ और छोटे प्रान्तों में ५० से ५७ तक से कम न होगी।

३. कौंसिलों के सदस्य प्रत्यक्ष रूप से लोगों के द्वारा ही चुने जावें और मताधिकार जहां तक हो सके विस्तृत हो।

४. महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक जातियों के प्रतिनिधित्व का, निर्वाचन के द्वारा; यथेष्ट प्रबन्ध होना चाहिए और प्रान्तीय कौंसिल के लिए मुसलमानों का प्रतिनिधित्व विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा नीचे लिखे अनुपात में होना चाहिए—

पंजाब	निर्वाचित भारतीय	सदस्यों के	५०	प्रतिशत
संयुक्तप्रान्त	"	"	३०	"
बंगाल	"	"	४०	"
बिहार	"	"	२५	"
मध्यप्रदेश	"	"	१५	"
मदरास	"	"	१५	"
बम्बई	"	"	एक-तृतीयांश	

किन्तु शर्त यह है कि सिवा उन निवचन-क्षेत्रों के जो विशेष स्वार्थों के प्रतिनिधित्व के लिए बनाये गये हों, कोई भी मुसलमान, भारतीय या प्रान्तीय कौंसिल के लिए किसी अन्य निर्वाचन में शरीक न हो सकेगा।

यह भी शर्त है कि किसी गैर-सरकारी सदस्य के द्वारा पेश किये गये किसी ऐसे बिल या उसकी किसी धारा या प्रस्ताव के सम्बन्ध में, जिसका एक या दूसरी जाति से सम्बन्ध हो, कोई कार्रवाई न की जायगी, यदि उस जाति के उस विशेष भारतीय या प्रान्तीय कौंसिल के तीन-चतुर्थांश सदस्य उस बिल या उसकी धारा या प्रस्ताव का विरोध करते हों। वह बिल या उसकी धारा, या (वह) प्रस्ताव किसी विशेष जाति से सम्बन्ध रखता है या नहीं—इसका निर्णय उस कौंसिल के उसी जाति वाले सदस्य करेंगे।

५. प्रान्त का मुख्य शासक प्रान्तीय कौंसिल का सभापति न हुआ करे, किन्तु कौंसिल को ही अपना सभापति चुनने का अधिकार होना चाहिए।

६. अतिरिक्त प्रश्न (किसी मूल प्रश्न के उत्तर से उत्पन्न होनेवाले तात्कालिक प्रश्न) पूछने का अधिकार केवल मूल प्रश्न पूछनेवाले सदस्य को ही न होना चाहिए। किसी भी सदस्य को यह (अतिरिक्त प्रश्न पूछने का) अधिकार होना चाहिए।

७. (क) तटकर, डाक, तार, टकसाल, नमक, अफीम, रेल, स्थल और जल-सेना तथा देशी-रियासतों से सरकार को मिलनेवाले कर के अतिरिक्त अन्य सब करों की आय प्रान्त की होनी चाहिए।

(ख) (भारतीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच) कर की मदों का बटवारा न होना चाहिए। प्रान्तीय-सरकारों से भारत-सरकार को एक निश्चित रकम मिलनी

चाहिए। हां, विशेष और अनपेक्षित परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर, यदि आवश्यकता हो तो, इस रकम में कमी-बेशी की जा सकेगी।

(ग) प्रान्त की भीतरी व्यवस्था के सम्बन्ध में—जिसमें ऋण लेना, कर लगाना या उसमें कमी-बेशी करना और आय-व्यय के चिट्ठे (बजट) पर मत देना शामिल है—कार्रवाई करने का पूरा अधिकार प्रान्तीय कौंसिल को होना चाहिए। खर्च की सब मदों का ब्योरा और कर उगाहने के लिए सोचे गये उपाय बिलों में लिख दिये जाने चाहिए और इन बिलों को स्वीकृति के लिए प्रान्तीय कौंसिल में पेश करना चाहिए।

(घ) प्रान्तीय-सरकारों के अधिकार-क्षेत्र से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातों के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव आयें उनपर इस सम्बन्ध में प्रान्तीय-कौंसिल ने ही जो नियम बनाये हों उनके अनुसार बहस होने की इजाजत होनी चाहिए।

(ङ) प्रान्तीय-कौंसिल द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव, यदि कौंसिल-सहित गवर्नर-द्वारा रद कर दिया गया हो तो, सरकार पर बाध्य न होगा। लेकिन (कौंसिल-सहित गवर्नर-द्वारा) रद किया गया प्रस्ताव भी यदि कम-से-कम एक वर्ष के बाद फिर (प्रान्तीय) कौंसिल में स्वीकृत हो जाय तो उसे (सरकार के लिए) कार्य-रूप में परिणत करना आवश्यक होगा।

(च) कौंसिल के उपस्थित सदस्यों का कम-से-कम आठवां हिस्सा यदि किसी निश्चित महत्वपूर्ण सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिए कौंसिल की बैठक को स्थगित करने के प्रस्ताव का समर्थन करे तो वह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा।

८. कौंसिल के कुल सदस्यों के कम-से-कम आठवें भाग के प्रार्थना करने पर कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकेगा।

९. धन-सम्बन्धी बिल को छोड़कर अन्य बिल कौंसिल के द्वारा ही बनाये गये नियमों के अनुसार उसमें पेश हो सकें। उनके पेश किये जाने के लिए सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता न हो।

१०. प्रान्तीय कौंसिल-द्वारा स्वीकृत बिलों के कानून होने के लिए गवर्नर की स्वीकृति आवश्यक होगी, पर गवर्नर-जनरल (उन्हें) रद कर सकेगा।

११. सदस्यों का कार्य-काल पांच वर्षों का होगा।

२—प्रान्तीय सरकार

१. प्रत्येक प्रान्त का मुख्य शासक एक गवर्नर होगा और वह साधारण तथा इंडियन सिविल सर्विस या अन्य स्थायी नौकरियों में से न लिया जायगा।

२. प्रत्येक प्रान्त में एक कार्यकारिणी होगी जो गवर्नर के साथ, उस प्रान्त का शासक-मण्डल होगी।

३. साधारण तथा 'सिविल सर्विस' के लोग कार्यकारिणी में नियुक्त न किये जायंगे।

४. कार्यकारिणी के कम-से-कम आधे सदस्य हिन्दुस्तानी होंगे और उनका निर्वाचन प्रांतीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों-द्वारा होगा।

५. सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्षों का होगा।

३—भारतीय बड़ी कौन्सिल

१. भारतीय कौंसिल के सदस्यों की संख्या १५० होगी।

२. उसके चार-पंचमांश सदस्य निर्वाचित होंगे।

३. प्रान्तीय कौंसिलों के लिए मुसलमानों के निर्वाचन-संघ जिस क्रम से बने हैं उसी के अनुसार भारतीय कौंसिल के लिए मताधिकार का क्षेत्र जहांतक हो विस्तृत कर दिया जाय, और भारतीय कौंसिल के लिए सदस्य चुनने का अधिकार प्रान्तीय कौंसिलों के निर्वाचित सदस्यों को भी होना चाहिए।

४. निर्वाचित भारतीय सदस्यों में से एक तृतीयांश मुसलमान हों और उनका निर्वाचन भिन्न-भिन्न प्रान्तों में अलग मुस्लिम निर्वाचन-क्षेत्रों द्वारा हो। उनकी संख्या का अनुपात (यथासंभव) वही हो जो प्रान्तीय कौंसिलों में मुसलिम-निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा रक्खा गया है (भाग १ धारा ४ की व्यवस्था देखिए)।

५. कौंसिल का सभापति कौंसिल द्वारा ही चुना जायगा।

६. अतिरिक्त प्रश्न पूछने का अधिकार केवल मूल प्रश्न पूछनेवाले सदस्यों को ही नहीं रहेगा, बल्कि किसी भी सदस्य को पूछने का अधिकार होगा।

७. सदस्यों के कम-से-कम आठवें हिस्से के कहने से कौंसिल का विशेष अधिवेशन बुलाया जा सकेगा।

८. धन-सम्बन्धी बिलों को छोड़कर अन्य बिल कौंसिल-द्वारा ही बनाये गये नियमों के अनुसार उसमें पेश हो सकें। उनके पेश किये जाने के लिए सरकार की स्वीकृति की आवश्यकता न हो।

९. (भारतीय) कौंसिल द्वारा स्वीकृत बिलों के कानून बनने के लिए गवर्नर-जनरल की स्वीकृति आवश्यक होगी।

१०. आमदनी के जरिये और खर्च की मदों से सम्बन्ध रखनेवाले समस्त आर्थिक प्रस्तावों का समावेश बिलों के भीतर हो जाना चाहिए और इस प्रकार का प्रत्येक बिल और सारा बजट भारतीय कौंसिल की मंजूरी के लिए उसके सामने पेश किया जाना चाहिए।

११. सदस्यों का कार्यकाल पांच वर्षों का होगा।

१२. नीचे लिखे विषयों पर एकमात्र भारतीय कौंसिल का अधिकार होगा—

(क) जिन विषयों के सम्बन्ध में समूचे भारतवर्ष के लिए एक ही प्रकार का कानून बनाना आवश्यक हो।

(ख) ऐसे प्रान्तीय कानून जिनका सम्बन्ध प्रान्तों के पारस्परिक आर्थिक-व्यवहार से हो।

(ग) देशी-राज्यों से मिलनेवाले कर को छोड़कर वे सब विषय जो केवल (अखिल) भारतीय कर से सम्बन्ध रखते हैं।

(घ) वे प्रश्न जो केवल समस्त देश-सम्बन्धी व्यय से सम्बन्ध रखते हैं। किन्तु देश के लिए सैनिक व्यय के सम्बन्ध में कौंसिल-द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव कौन्सिल-सहित गवर्नर-जनरल पर बाध्य न होंगे।

(ङ) 'टैरिफ' और तट-कर में परिवर्तन करने, किसी भी प्रकार का 'सेंसर' लगाने, उसमें परिवर्तन करने या उसे उठा देने, चलन और बैंकों की प्रचलित प्रणाली में परिवर्तन करने और देश के किसी या सब सहायता पाने योग्य और नये उद्योग-धन्धों को (राजकीय) सहायता अथवा 'धाउंएटी' देने का अधिकार।

(च) देश-भर के शासन से सम्बन्ध रखनेवाले सब विषयों पर प्रस्ताव।

१३. (भारतीय) कौंसिलद्वारा स्वीकृत प्रस्ताव, यदि कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल-द्वारा रद न कर दिया गया हो तो, सरकार पर बाध्य होगा; लेकिन यदि वह (कौंसिल-सहित गवर्नर-जनरल-द्वारा रद किया हुआ) प्रस्ताव कम-से कम एक वर्ष के बाद फिर कौंसिल-द्वारा स्वीकृत हो जाय तो (सरकार के लिए) उसे कार्य-रूप में परिणत करना आवश्यक होगा।

१४. उपस्थित सदस्यों का कम-से-कम आठवां हिस्सा यदि किसी निश्चित महत्वपूर्ण सार्वजनिक विषय पर विचार करने के लिए (भारतीय कौंसिल की) बैठक को स्थगित करने के प्रस्ताव का समर्थन करे तो वह प्रस्ताव उपस्थित किया जा सकेगा।

१५. यदि सम्राट् प्रान्तीय अथवा भारतीय कौंसिल-द्वारा स्वीकृत बिल को रद करने के सम्बन्ध में अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहें तो (उन्हें) उस बिल के पास होने की तारीख से बारह महीनों के भीतर ही उस (अधिकार) का प्रयोग करना चाहिए, और जिस दिन उस बिल के इस प्रकार रद किये जाने की सूचना उससे सम्बन्ध रखनेवाली कौंसिल को दी जायगी उस दिन से वह बिल रद हो जायगा।

१६. भारतीय कौंसिल को भारत-सरकार के सेना-सम्बन्धी विषयों और भारतवर्ष के वैदेशिक और राजनैतिक विषयों के सम्बन्ध में—जिसमें युद्ध छेड़ना, संधि करना और (किसी देश के साथ) सुलह करना शामिल हैं—हस्तक्षेप करने का अधिकार न रहेगा।

४—भारत-सरकार

१. भारतीय शासन का मुख्याधिष्ठाता भारतवर्ष का गवर्नर-जनरल होगा।

२. उसकी एक कार्यकारणी होगी, जिसके आधे सदस्य भारतीय होंगे।

३. (कार्यकारिणी के)भारतीय सदस्य भारतीय कौंसिल के निर्वाचित सदस्यों द्वारा चुने जायंगे।

४. 'इण्डियन सिविल सर्विस' के लोग आमतौर पर गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के सदस्य नहीं बनाये जायंगे।

५. 'इम्पीरियल सिविल सर्विस' में कर्मचारियों को नियुक्त करने का अधिकार इस (नई) व्यवस्था के अनुसार बनी हुई भारत-सरकार को होगा। इसमें वर्त्तमान कर्मचारियों के हित का यथेष्ट ध्यान रक्खा जायगा और भारतीय कौंसिल-द्वारा बनाये गये नियमों की पूरी पाबन्दी की जायगी।

६. भारत-सरकार साधारणतया किसी प्रान्त के स्थानीय मामलों में हस्तक्षेप न करेगी, और जो अधिकार स्पष्ट रूप से प्रान्तीय-सरकार को न दिये गये होंगे वे भारत-सरकार के समझे जायंगे। प्रान्तीय-सरकारों पर भारत-सरकार का अधिकार साधारणतया निरीक्षण आदि के कार्यों तक सीमित रहेगा।

७. कानून और शासन-सम्बन्धी विषयों में इस (नई) योजना के अनुसार बनी हुई भारत-सरकार, भारत-मंत्री से, यथा-सम्भव स्वतन्त्र रहेगी।

८. भारत-सरकार के हिसाब की स्वतंत्र जांच की प्रणाली चलाई जानी चाहिए।

५. कौंसिल-सहित भारत-मन्त्री

१. भारत-मन्त्री की कौंसिल तोड़ दी जानी चाहिए।

२. भारत-मन्त्री का वेतन ब्रिटिश कोष से दिया जाना चाहिए।

३. भारतीय-शासन के सम्बन्ध में भारत-मंत्री की स्थिति यथासम्भव वही होनी चाहिए जो स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों के शासन में उपनिवेश-मन्त्री की है।

४. भारत-मंत्री की सहायता के लिए दो स्थायी 'अण्डर-सेक्रेटरी' होने चाहिए जिनमें से एक हमेशा हिन्दुस्तानी ही होना चाहिए।

६—भारतवर्ष और साम्राज्य

१. साम्राज्य-सम्बन्धी मामलों का फैसला करने या उनपर नियन्त्रण रखने के लिए जो कौंसिल या दूसरी संस्था बनाई या संयोजित की जाय उसमें उपनिवेशों के ही समान भारतवर्ष के भी पर्याप्त प्रतिनिधि होने चाहिए और इन (भारतीय प्रतिनिधियों) के अधिकार भी उपनिवेशों के प्रतिनिधियों के बराबर ही होने चाहिए।

२. नागरिकता के पद और अधिकारों के सम्बन्ध में समस्त साम्राज्य में भारतीयों का दर्जा सम्राट् की अन्य प्रजा की बराबरी का होना चाहिए।

७—सेना-सम्बन्धी तथा अन्य विषय

१. स्थल और जल-सेना की 'कमीशण्ड' और 'नॉन-कमीशण्ड' दोनों ही प्रकार की नौकरियां भारतवासियों के लिए खुली रहनी चाहिएं और उनके लिए चुनाव करने व शिक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध भारतवर्ष में कर दिया जाना चाहिए।

२. भारतवासियों को (सैनिक) स्वयंसेवक बनाने का अधिकार मिलना चाहिए।

३. भारतवर्ष में शासन-सम्बन्धी कार्यों में लगे हुए कर्मचारियों को न्याय-सम्बन्धी अधिकार नहीं दिये जायंगे, और प्रत्येक प्रान्त के समस्त न्यायालय उस प्रान्त के सबसे बड़े न्यायालय के अधीन रक्खे जायंगे।

३

१. फरीदपुर के प्रस्ताव

१. भारत के भावी शासन-विधान में प्रतिनिधित्व का आधार बालिग-मताधिकार के साथ संयुक्त-निर्वाचन होना चाहिए।

२. (अ) बालिग-मताधिकार के साथ, संघीय (बड़ी) तथा प्रान्तीय कौंसिलों में उन्हीं अल्प-संख्यक जातियों के लिए स्थान सुरक्षित होने चाहिए जिनकी संख्या २५% से कम हो। ये स्थान जन-संख्या के आधार पर निश्चित होने चाहिए और (अल्प-संख्यक जाति-वालों को अपनी निश्चित जगहों के) अतिरिक्त जगहों के लिए खड़े होने का अधिकार भी रहे।

(ब) जिन प्रान्तों में मुसलमानों की संख्या २५% से कम हो वहां उनके लिए जन-संख्या के आधार पर स्थान रक्षित किये जायंगे और उनसे अतिरिक्त स्थानों के लिए उम्मीदवार होने का भी उन्हें हक रहेगा; लेकिन अगर अन्य जातियों को उनकी संख्या के अनुपात से अधिक स्थान दिये गये तो मुसलमानों के साथ भी वैसा ही व्यवहार किया जायगा और, उस हालत में, जो रिआयत उन्हें इस समय मिली हुई है वह कायम रहेगी।

(स) अगर बालिग-मताधिकार न हुआ, या मताधिकार को ऐसा विस्तृत न किया गया जिससे जन-संख्या के अनुपात का चुनाव पर असर पड़ सके, तो पंजाब व बंगाल में मुसलमानों के लिए स्थान

रक्षित किये जायंगे; और यह क्रम उस वक्त तक जारी रहेगा जबतक कि बालिग-मताधिकार न हो, या मताधिकार को ऐसा विस्तृत न किया जाय कि उससे चुनाव में जन-संख्या के अनुपात का असर पड़ने लगे, बशर्ते कि किसी भी दशा में बहुमत अल्प-मत में परिवर्तित न हो जाय।

३. संघीय धारा सभा की छोटी-बड़ी हरेक कौंसिल में मुसलमानों का प्रतिनिधित्व उन सभाओं के सदस्यों की कुल-संख्या का एक-तिहाई रहेगा।

४. सरकारी नौकरियों पर नियुक्ति सरकारी नौकरी-कमीशन के द्वारा होगी, जो उपयुक्तता की कम-से-कम माप की कसौटी पर चुनाव करेगा; लेकिन साथ ही इस बात का भी खयाल रक्खा जायगा कि नौकरियों में हरेक जाति को पर्याप्त हिस्सा मिले, और छोटे-ओहदों पर किसी का एकाधिकार नहीं रहेगा।

५. संघीय तथा प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डलों में मुसलमानों के हितों को काफी प्रतिनिधित्व मिले, इसके लिए भिन्न-भिन्न कौंसिलों में सब दल-वालों के सहयोग से कोई ऐसा क्रम निश्चित किया जायगा जो फिर प्रथा का रूप धारण कर ले।

६. सिन्ध को एक स्वतन्त्र प्रान्त बनाया जायगा।

७. सीमाप्रान्त और बलूचिस्तान में भी ठीक उसी तरह का शासन-प्रबन्ध रहेगा जैसा कि ब्रिटिश-भारत के अन्य प्रान्तों में है या होगा।

८. भारत का भावी शासन-विधान संघात्मक होगा, जिसमें अवशिष्ट अधिकार संघ में शामिल होनेवाले प्रान्तों को रहेंगे।

९. (अ) विधान में मौलिक अधिकारों की भी एक धारा रहेगी, जिसके अनुसार समस्त नागरिकों को उनकी संस्कृति, भाषा, लिपि, शिक्षा, धर्म-विश्वास, धर्माचार तथा आर्थिक हितों के संरक्षण का आश्वासन रहेगा।

(ब) विधान में एक स्पष्ट धारा का समावेश करके (नागरिकों के) मौलिक अधिकारों और वैयक्तिक कानूनों का वास्तविक रूप से संरक्षण किया जायगा।

(स) जहांतक मौलिक अधिकारों से संबंध है, जबतक संघीय धारा-सभा की हरेक कौंसिल में तीन-चौथाई सदस्यों के बहुमत की स्वीकृति न मिल जाय, विधान में कोई परिवर्तन नहीं किया जायगा।

वैकल्पिक प्रस्ताव और हल (बिलकुल गुप्त)

भोपाल का हल

१—सर्व-दल-सम्मेलन का हल

(अ) दस वर्ष की समाप्ति पर बालिग-मताधिकार के साथ संयुक्त-निर्वाचन जारी हो लेकिन इन दस वर्षों से पहले ही किसी समय यदि संघीय या प्रान्तीय कौंसिल के मुसलमान-सदस्यों का बहुमत संयुक्त-निर्वाचन स्वीकार करने को रजामन्द हो जाय तो उस कौंसिल के लिए पृथक् निर्वाचन की पद्धति रद कर दी जायगी। या—

(ब) नये विधान का पहिला चुनाव पृथक् निर्वाचन के आधार पर हो और प्रथम धारासभाओं के पांचवें साल की शुरुआत में संयुक्त बनाम पृथक् निर्वाचन के प्रश्न पर जन-मत-संग्रह (रेफरेण्डम) किया जाय।

२—राष्ट्रीय-दल की वैकल्पिक योजना

(अ) प्रथम दस वर्ष संयुक्त निर्वाचन रहे और दस वर्षों की समाप्ति पर निर्वाचन के प्रश्न पर जन-मत-संग्रह किया जाय। या

(ब) कौंसिलों में पहली बार मुसलमान-सदस्यों में से आधे संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा चुने जायं और आधे पृथक् निर्वाचन-द्वारा। दूसरी बार दो-तिहाई संयुक्त-निर्वाचन द्वारा चुने जायं, और एक-तिहाई पृथक्-निर्वाचन द्वारा। इसके बाद संयुक्त-निर्वाचन और बालिग मताधिकार हो।

३—उपर्युक्त प्रस्ताव में कुछ मित्रों के संशोधन

कौंसिलों में पहली बार दो-तिहाई सदस्य (मुसलमान) पृथक् निर्वाचन-द्वारा चुने जायं और एक-तिहाई संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा। दूसरी बार आधे-आधे। इसके बाद, संयुक्त-निर्वाचन हो और बालिग-मताधिकार। या

प्रथम पांच वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे, पश्चात् पांच वर्ष संयुक्त-निर्वाचन; इसके बाद, नवें वर्ष दोनों तरह के निर्वाचन के बारे में देश का निर्णय जानने के लिए जन-मत-संग्रह किया जाय। या

दो तिहाई प्रतिनिधि पृथक्-निर्वाचन-द्वारा चुने जायं और एक-तिहाई संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा। इसके बाद, पांचवें वर्ष की शुरुआत में, जन-मत-संग्रह किया जाय।

४—मौलाना शौकतअली का प्रस्ताव

जब संयुक्त-निर्वाचन प्रारम्भ हो, चाहे वह सम्पूर्ण रूप में हो या आंशिक रूप में, तो पहले बीस साल के लिए मौ० मुहम्मदअली का हल स्वीकार किया जाय।

५—भोपाल की दूसरी बैठक का प्रस्ताव

प्रथम पाँच वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे, उसके बाद मौ० मुहम्मदअली के हल के साथ संयुक्त निर्वाचन हो। मगर किसी भी कौंसिल के मुसलमान सदस्य चाहें तो अपने ६० फीसदी बहुमत से उसे रद कर सकेंगे।

६—शिमला का आखिरी हल

प्रथम दस वर्ष पृथक् निर्वाचन रहे और उसके बाद संयुक्त निर्वाचन, बशर्ते कि किसी कौंसिल के मुसलमान-सदस्यों का दो-तिहाई बहुमत उसकी शुरुआत का विरोध करें।

४

मुलशीपेठा-सत्याग्रह

मुलशीपेठा पूना से कोई ३० मील दूर है। सन् १९२० में ताता-पावर-कम्पनी ने जी० आई० पी० रेलवे, बी० बी० सी० आई० रेलवे और बम्बई-शहर को बिजली पहुंचाने के लिए इस पहाड़ी इलाके के झरनों और जल-प्रपातों को बांधने की योजना शुरू की। मुलशीपेठा अपनी धान की बढ़िया खेती के लिए मशहूर था और वहां के निवासी मावले लोग शिवाजी की सेना के बहादुर योद्धा थे। जब मजदूरों का झुण्ड वहां काम करने पहुंचा, तो वे बड़े हैरान हुए और अपने प्रदेश की रक्षा के लिए उन्होंने पूना के अपने मित्रों से सलाह की। उस समय असहयोग की धूम थी। इस योजना से कोई ५१ गांव और ११००० स्त्री, पुरुष, बच्चे जमीन-जायदाद और घर-बार से हाथ धोनेवाले थे। अतः श्री नृसिंह चिन्तामणि केलकर के सभापतित्व में एक सभा मुलशीपेठा में हुई और उसने मावलों को आदेश दिया कि या तो वे अपनी जमीन वापस प्राप्त करें, नहीं तो सत्याग्रह की

लड़ाई लड़ते हुए अपने प्राणों को उत्सर्ग कर दें। इस दृढ़ निश्चय के अनुसार पूना के नेता लड़ाई का नेतृत्व करने के लिए कटिबद्ध हो गये।

इसके फलस्वरूप एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार किया गया, और निश्चय हुआ कि यदि १,२०० व्यक्ति उसपर हस्ताक्षर करदें तो लड़ाई शुरू कर दी जाय। श्री वी एम० भुसकुटे ने सारे इलाके का चक्कर लगाकर कोई १,३०० हस्ताक्षर कराये और बरसात के बावजूद नेता लोग लड़ाई शुरू करने के लिए रवाना हो गये। सारे महाराष्ट्र में इस प्रश्न पर हलचल मच रही थी। धन और जन के रूप में चारों तरफ से सहायता आ रही थी। कोई १,०००) रुपये का चावल तो खुद मावलों ने ही लड़ाई के लिए दिया। रामनौमी का दिन (१६ अप्रैल १९२१) सत्याग्रह शुरू करने के लिए चुना गया। यह कहा जाता है कि महाराष्ट्र ने यह लड़ाई प्रत्यक्ष रूप से कांग्रेस के मातहत तो नहीं लड़ी, किन्तु लड़ी, यह कांग्रेस-कार्यक्रम के एक हिस्से के रूप में ही गई। सोचा यह गया था कि अगर इसमें सफलता मिल गई तो कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और गांधीजी के उपाय का औचित्य सिद्ध हो जायगा, और अगर सफलता न मिली तो उसकी जिम्मेदारी हमारी होगी।

रामनौमी के दिन औरतों और बच्चों के साथ १,२०० मावले तथा पूना के सब प्रमुख नेता घटना-स्थल पर उपस्थित थे। वे सब जाकर बन्द पर बैठ गये और कम्पनी के ५,००० मजदूरों ने तुरन्त काम बन्द कर दिया। इसी तरह कोई एक महीने तक, बिलकुल गांधीजी के अहिंसा के सिद्धान्तों पर, यह सत्याग्रह चलता रहा। इस रूप में यह सफल भी हुआ कि कम्पनी ने काम रोक दिया। लेकिन मौसम बदलते ही मामला बदल गया। दूसरे किसानों की तरह मावले भी भारी कर्जों के बोझ से दबे हुए थे और साहूकारों के ऊपर उनका दारोमदार था। साहूकारों में स्वभावतः इस हलचल से बेचैनी पैदा हुई। उन्हें अंदेशा हुआ कि अगर सत्याग्रह जारी रहा तो कम्पनी से जमीन के मुआवजे की जो रकम हमें मिलने वाली है वह कम मिलेगी। कुछ नेताओं ने भी उन्हें यही समझाया। मुआवजे की काफी रकम प्राप्त करने के लिए कम्पनी के इंजीनियरों व मैनेजरों से उनकी बातचीत चली। इधर मावलों को इन बातों का कोई पता न था, उधर कम्पनी ने साहूकारों के आश्वासन पर उन्हें उदारता के साथ मुआवजा देने का वादा कर लिया और लैण्ड-एक्वीजीशन-एक्ट के मातहत सरकार से इकरारनामा करके जमीन अपनी करली। मावले तो जमीन के लिए ही लड़ रहे थे और उसके बदले में कितना ही मुआवजा क्यों न मिले, उसकी उन्हें इच्छा न थी। यहां यह भी बता देना आवश्यक है कि अन्य स्थानों के समान महाराष्ट्र भी इस समय 'परिवर्त्तनवादियों' और 'अपरिवर्तन-वादियों' के रूप में बंटा हुआ था। अपरिवर्त्तनवादी तो अधिकांश गांधीजी के वफादार अनुयायी थे और उन्होंने मावलों की इस लड़ाई में उनका साथ देने का ही निश्चय किया। लेकिन अब उनके सामने दो विरोधी थे—एक तो कम्पनी और दूसरे साहूकार। ढाई साल तक यह आन्दोलन चलता रहा। दूसरी बार का आन्दोलन दिसम्बर १९२१ में शुरू हुआ था। आदमियों को गिरफ्तार करने, सजायें देने, डराने-धमकाने और उनपर तरह-तरह के अत्याचारों का पूरा जोर था। श्री एस० एम० पराञ्जपे, डॉ० फाटक, जी० एन० कानिटकर, एस० के० दामले, एस० डी० देव, वासुकाका जोशी, एच० जी० फाटक, पी० एम० बापट, वी० एम० भुसकुटे, दास्ताने, डॉ० पञ्जुले, जे० एस० करन्दीकर प्रभृति अनेक व्यक्तियों को गिरफ्तार करके सजा दे दी गई। कुल १२५ मावलों, ५०० स्वयंसेवकों और नेताओं ने, जिनमें स्त्रियां भी थीं; कैद की सजा पाई। ७,५००) आन्दोलन पर खर्च हुए। लेकिन जब स्थानीय और बाहरी सब नेता जेलों में पहुंच गये, साहूकारों ने अपनी पूरी शक्ति के साथ मावलों को जमीन का मुआवजा ले लेने के लिए प्रेरित किया। फिर जिन नेताओं का आन्दोलन के प्रति

बहुत उत्साह नहीं था उन्होंने भी इस प्रयत्न में साथ दिया। फलतः, अन्त में, सत्याग्रह छोड़ दिया गया। श्री पी० एम० बापट तथा उनके साथियों ने आखिरी दिनों में इसके लिए अपूर्व कष्ट-सहन किये हैं। लेकिन यह मानना होगा कि इस सत्याग्रह के कारण किसानों को अपनी जमीन का मुआवजा काफी अच्छा मिला गया। यह जरूर है कि जो-कुछ मिला वह सब गया साहूकारों के ही पास। किसान तो बेचारे हजारों की संख्या में भूमि-हीन और गृह-विहीन ही हो गये!



गुजरात की बाढ़

जुलाई १९२७ के अखीर में गुजरात-प्रान्त में एक बड़ी भारी दैवी विपत्ति आई। केवल चार-पांच दिन के अन्दर-अन्दर ही गुजरात के बड़े भारी भाग में ५० इंच से भी अधिक मूसलाधार पानी पड़ गया, जिसके फलस्वरूप गांव-के-गांव बह गये। मवेशी, झोंपड़ियां, कपड़े-लत्ते गरज यह कि एक भी चीज बाकी न बची, हजारों आदमी बे-घर हो गये, उपजाऊ जमीनों पर और तैयार फसलों पर रेत की कई फीट ऊंची तहें जम गईं, बड़े-बड़े कस्बे पानी के बीच घिर गये, रेल व तार के मार्ग बन्द हो गये और अहमदाबाद शहर पर भी विपत्ति आती दिखाई दी। इस भयंकर विपत्ति की सबसे दर्दभरी कहानी यह थी कि मय बड़ौदा स्टेट के, गुजरात के जिलों के आधे से ज्यादा मकान गिर गये। कम-से-कम अन्दाज लगाने पर भी यह कहा जा सकता है कि लगभग ४,००० गांव बाढ़ की झपेट में आ गये। गिरे हुए मकानों की संख्या प्रतिशत ५० व ६० के बीच में थी; और कहीं-कहीं तो ९० तक भी पहुंच गई।

इस भयानक विपत्ति ने लोगों के सामाजिक भेद-भावों व घरेलू क्षुद्रताओं को भुला दिया और वे लोग सरदार वल्लभभाई पटेल के योग्य नेतृत्व में, जो उस समय अहमदाबाद के लॉर्ड मेयर अर्थात् म्युनिसिपैलिटी के अध्यक्ष और गुजरात प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी के प्रधान थे, एक-दूसरे को मदद करने के लिए कमर कसकर खड़े हो गये। रातों-रात लगभग २,००० कार्यकर्त्ताओं का एक तात्कालिक सहायक-दल तैयार हो गया; और इसके पहले कि सरकारी दुनियां में रहने वाले अफसर विपत्ति का अन्दाज व उसकी भयावहता का पता लगाने में समर्थ हो सकें और अन्य उच्च सरकारी अधिकारियों से विपत्ति का सामना करने के लिए अपने फर्ज के बारे में सलाह ले सकें, कांग्रेस का कारखाना जोरों से काम करने लगा।

यद्यपि इस समय गांधीजी देश का एक तूफानी दौरा करने के बाद अपना स्वास्थ्य सम्हालने के लिए दूर मैसूर-राज्य में पड़े हुए थे, फिर भी वे गुजरात आने के लिए तैयार हो गये; लेकिन उनके इस प्रस्ताव का सरदार पटेल ने घोर विरोध किया। कारण यह कि सरदार पटेल अपने प्रान्त से इस बात का एक प्रत्यक्ष प्रदर्शन कराना चाहते थे कि गांधीजी की शिक्षाओं ने वहां किस प्रकार सामाजिक स्थिति में परिवर्तन कर दिया है और लोगों में सेवा की भावना कूट-कूट कर भर दी है।

पानी के एक अपार सागर को चीरते हुए कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं व स्वयंसेवकों ने केवल पानी के बीच घिरे हुए गांवों को ही नहीं बल्कि सरकारी अफसरों को भी, जिनका यही हाल हो रहा था, खाद्य व अन्य प्रकार की सामग्री पहुंचाई। दुखियों की सेवा करते हुए न तो उन्होंने राजनीति को सामने रक्खा और न किसीके साथ रिआयती बर्ताव किया। खेड़ा का जिला-मजिस्ट्रेट कई दिनों

तक पानी के बीच घिरा पड़ा रहा और जब सरदार पटेल ने स्वयंसेवकों द्वारा विशेष तौर पर उसके पास सामग्री भिजवाई तो उसने बड़ी कृतज्ञता से उसे स्वीकार कर लिया। लगभग एक सप्ताह तक सरकार की शासन-मशीन बेकार टूटी पड़ी रही और जहां उच्च अधिकारी जिलों के निम्न अधिकारियों से बाढ़ की खबरों के मिलने के इन्तजार में बैठे रहे और यह समझते रहे कि कुछ क्षेत्रों तक तो किसी का पहुंचना ही असम्भव है, कांग्रेस का संगठन जोरों से सहायता-कार्य में जुटा हुआ था और दूर-से-दूर के गांव को मदद व सामग्री पहुंचा रहा था। सेवा के भावों से ओत-प्रोत बुद्धि-चतुर व साधन-कुशल जनता के स्वावलम्बन व पारस्परिक सहायता के प्रयत्नों का यह एक अनोखा प्रदर्शन था।

लेकिन जिस विस्तार के साथ यह विपत्ति गुजरात पर आकर पड़ी थी उसका मुकाबला कोई भी लोकप्रिय गैर-सरकारी संस्था नहीं कर सकती। जैसे ही भोज्य आदि सामग्री के बंटवारे का तात्कालिक कार्य समाप्त हुआ कि सारी-की-सारी फसलों को फिरसे बोने की, उपजाऊ तथा काम की जमीनों को साफ करने की, तथा बेघरबार लोगों के घरों को बसाने की समस्या जनता तथा सरकार दोनों के सामने आ उपस्थित हुई। काम के दिन यों ही निकलते जाते थे. फसल को फिरसे बोने का मौसम भी बीत जाने का डर बना हुआ था। सरकार के दिल में झिझक थी, वह डावांडोल हो रही थी और नाम मात्र की कानूनी आपत्तियां पेश करती थी। यदि गुजरात का शिक्षित लोकमत सरदार पटेल के अमूल्य नेतृत्व में फिर एक बार अपने-आपको संगठित न करता तो सर लेस्ली विल्सन की अनिच्छुक सरकार अपनी नीति की ठीक समय में घोषित करने के लिए तैयार न होती और दुर्भिक्ष-रक्षक-कोष में से, जो सरकार की साधारण आय द्वारा इकट्ठा किया जाता है, १,५४,००,०००) सहायता के लिए अलग नियत न करती। यह रकम काश्तकारों को व अन्य पीड़ितों को कर्जे की शकल में बांटने के लिए नियत की गई जिससे कि वे मकान बनाने का सामान तथा औजार, बैल इत्यादि खरीद सकें। प्रान्तीय कांग्रेस-कमिटी ने बम्बई-केन्द्रीय रिलीफ-कमिटी से सहयोग करते हुए अगले महीनों में गुजरात-भर में सहायता-कार्य का सम्पादन किया। कांग्रेस का संगठन इतना उत्तम प्रमाणित हुआ कि सरकार तथा सहायता-कार्य करने वाली अन्य संस्थाओं को भी उसे अपने सहायता-कार्य का जरिया बनाना पड़ा। सरकार ने कांग्रेस-संगठन का खूब फायदा भी उठाया। आणन्द तथा नडियाद में हुए सहायता-सम्मेलनों में बम्बई-सरकार के तत्कालीन अर्थ-सदस्य ने कांग्रेस के कार्य की बड़ी कद्र की और सम्मेलन में सरदार पटेल व अन्य कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को आमन्त्रित ही नहीं किया बल्कि अपने सहायता-कार्य के लिए कांग्रेस को जरिया बनाने को तैयार हो गये। सरकारी धन के अलावा कांग्रेस तथा अन्य गैर-सरकारी संस्थाओं के संयुक्त उद्योग से सहायता कार्य के लिए लगभग ३,००,०००) और एकत्र हुए। इस प्रकार सरकार, कांग्रेस, बड़ौदा-राज्य तथा अन्य कई सहायता-संस्थायें जो उस समय बनीं वे सब एक बड़े संगठन में आकर मिल गई और लगभग एक साल तक कांग्रेस के नेतृत्व में पुनर्निर्माण का वृहत् प्रयत्न करती रहीं। गुजरात के युवकों को ट्रेनिंग का एक बड़ा अच्छा मौका मिला और गुजरात की जनता में आत्म-विश्वास की एक नई लहर पैदा हो गई और उन्हें आशा की एक नई ज्योति दिखाई देने लगी।

वास्तव में इस नये अनुभव से हरेक व्यक्ति इतना प्रफुल्ल था कि बम्बई-कौंसिल के आगामी अधिवेशन में बजट पेश करते हुए अर्थ-सदस्य सर चुन्नीलाल मेहता ने खुद-ब-खुद कांग्रेस व उनके महान् नेता महात्मा गांधी की निम्न शब्दों में प्रशंसा की—

"उस समय को तात्कालिक सहायता के कार्य के लिए हिम्मत, फुरती व साधनों की जरूरत थी। उत्साही स्वयंसेवकों के दलों ने पीड़ितों तथा बिछुड़े हुओं को सहायता पहुंचाई और कहीं-कहीं तो

लोगों व जानवरों को मरने तक से भी बचाया और इस खुशदिली व मुस्तैदी से भोजन व कपड़ा पहुंचाया कि उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता।

"कुछ वर्ष पूर्व व्यापार-मस्त गुजरात शायद ही इस प्रकार के आत्म-त्याग-पूर्ण सामाजिक व सार्वजनिक कार्य का गर्व कर सकता। महात्मा गांधी को इस बात से बहुत सन्तोष हुआ होगा कि इस प्रकार की मिशनरी सामाजिक प्रवृत्तियों में, विशेषकर ग्राम्य-क्षेत्रों में, भाग लेनेवाले निःस्वार्थ कार्यकर्ताओं का दल तैयार करने का जो परिश्रम उन्होंने किया वह पर्याप्त-रूप मे सफल हुआ और स्वयंसेवकों ने, जो खासकर विद्यापीठ के ही थे, अपने पूज्य नेता की अनुपस्थिति में भी इस प्रकार की अकल्पित विपत्ति में इतनी खूबी से काम किया। सरदार पटेल ने फौरन ही इस काम को अपने हाथों में किस तरह ले लिया और किस उत्साह व बल के साथ उन्होंने उसे पूरा किया, यह बात हरेक बच्चा जानता है। ये कार्यकर्त्ता अपरिवर्त्तनवादियों में से हैं, लेकिन यह सन्तोष की बात है कि वे इस मौके पर सरकार का विरोध करने या उससे अलग रहने की कोई भी बात मन में न लाये।

"यह मेरी हार्दिक आशा है कि महात्मा गांधी ने मानव-सेवा का जो यह वातावरण पैदा कर दिया है वह स्थायी रहेगा।"

६

कैदियों के वर्गीकरण पर सरकारी आज्ञा-पत्र

जेल-नियमों के सम्बन्ध में भारत-सरकार ने कुछ महत्वपूर्ण निर्णय किये हैं, जो निम्नलिखित वक्तव्य के रूप में प्रकट किये गये हैं—

"कुछ समय से कुछ बातों में जेल-नियमों में सुधार करने का मामला भारत-सरकार के विचाराधीन रहा है। इस मामले पर प्रान्तीय सरकारों से भी राय ली गई थी। उन्होंने बहुत से गैर-सरकारी लोगों से परामर्श करके अपने विचार बनाये हैं। इसपर प्रान्तीय सरकारों के प्रतिनिधियों की परिषद् की गई और भारत-सरकार ने असेम्बली के कुछ प्रमुख सदस्यों से भी चर्चा की थी। समस्यायें विकट और पेचीदा प्रतीत हुईं और उनके बारे में रायें भी बहुत भिन्न-भिन्न जाहिर हुईं। अतः जहां सरकार आवेदन-पत्रों को पूर्णतः स्वीकार न कर सकी वहां भी उन्हें समुचित महत्व देने का प्रयत्न जरूर किया गया है। कुछ महत्वपूर्ण बातों पर सरकार ने जो निर्णय किये हैं उनसे सिद्धान्ततः भारतवर्ष-भर में लगभग एक-सी स्थिति हो जायगी। वे निर्णय ये हैं—

सजा पाये हुए कैदियों के तीन वर्ग होंगे—ए, बी, सी। 'ए' वर्ग में वे कैदी लिये जायंगे जो (१) पहली बार ही जेल में आये हों और जिनका चाल-चलन अच्छा हो, (२) जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा और जीवन-क्रम के कारण ऊंचे दरजे के रहन-सहन के अभ्यस्त हों और (३) जिनको (क) निर्दयता, अनैतिकता या व्यक्तिगत लोभ के किसी अपराध पर, (ख) राजद्रोहात्मक अथवा पूर्व-निश्चित हिंसा में, (ग) सम्पत्ति-सम्बन्धी राजद्रोहात्मक अपराधों पर, (घ) किसी अपराध करने या उसमें सहायता देने की गरज से विस्फोटक पदार्थ, हथियार अथवा अन्य भयंकर अस्त्र रखने के अपराध में अथवा (ङ) इन उप-धाराओं में समावेश होनेवाले अपराधों को उत्तेजन या सहायता देने में सजा न मिली हो।

'बी' वर्ग उन कैदियों को दिया जायगा जो सामाजिक हैसियत, शिक्षा या जीवन-क्रम के कारण उच्च रहन-सहन के अभ्यस्त हों। बार-बार जेल में आनेवाले लोग इससे अपने-आप वंचित

नहीं रक्खे जायंगे। वर्गीकरण करनेवाले अधिकारियों को ऐसे लोगों को भी इस वर्ग में रखने का अधिकार होगा। वे उनके चरित्र और पूर्व-इतिहास का खयाल करके निर्णय करेंगे। यह निर्णय प्रान्तीय-सरकार से मान्य कराना होगा, जो उसे बदल भी सकती है।

जो लोग 'ए' और 'बी' वर्गों में नहीं रक्खे जायंगे उन्हें 'सी' वर्ग मिलेगा।

हाइकोर्ट, दौरा जज, जिला-मजिस्ट्रेट, वेतन-भोगी प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट, सब डिवीजनल मजिस्ट्रेट और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट जिन मुकद्दमों का फैसला करेंगे उनमें उन्हें वर्गीकरण करने का अधिकार होगा। सब-डिविजनल मजिस्ट्रेटों और प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेटों का किया हुआ वर्गीकरण जिला-मजिस्ट्रेट के मार्फत होगा। 'ए' और 'बी' वर्ग के लिए जिला-मजिस्ट्रेट प्रान्तीय-सरकार से प्रारम्भिक सिफारिश करेगा और प्रान्तीय-सरकार उसका समर्थन या संशोधन करेगी।

भारत-सरकार ने किस प्रकार ये तीन वर्ग मुकर्रर किये हैं और इनका कैदियों के वर्तमान वर्गों पर क्या असर होगा, इसके विषय में कई अन्दाज लगाये हैं और तरह-तरह की आशंकायें प्रकट की गई हैं। यह साफ तौर से समझ लेना चाहिए कि 'ए' वर्ग के तमाम कैदियों को उस वर्ग की सारी रिआयतें मिलेंगी। जाति के लिहाज से किसी वर्ग के कैदियों को कोई अधिक रिआयत नहीं दी जायगी। विशेष वर्ग के कैदियों को जो रिआयतें इस समय दी जा रही हैं वे सब 'ए' वर्ग के कैदियों को दी जाती रहेंगी। अर्थात् उनके लिए अलग स्थान, आवश्यक फर्नीचर, मिलने-जुलने और व्यायाम की आवश्यक सुविधायें और सफाई, स्नान आदि की अनुकूल व्यवस्था रहेगी।

दूसरी बातों पर नीचे लिखे निश्चय किये गये हैं—

'ए' और 'बी' वर्ग के लिए 'सी' वर्ग के कैदियों को मिलनेवाली साधारण खूराक से बढ़िया खूराक दी जायगी। इसका प्रति कैदी मूल्य मुकर्रर कर दिया जायगा और उस मूल्य की सीमा के भीतर खूराक बदलती रह सकेगी। 'ए' और 'बी' वर्ग की इस बढ़िया खूराक का मूल्य सरकार देगी। वर्तमान नियमों के अनुसार विशेष वर्ग के कैदियों को अपने खर्च से जेल की खूराक के अलावा भी और मंगा लेने की इजाजत दी जाती है। यह रिआयत 'ए' वर्ग के कैदियों के लिए भी कायम रहेगी।

विशेष वर्ग के कैदियों को अपने कपड़े पहनने की जो रिआयतें मौजूदा नियमों में हैं वे जारी रहेंगी। यदि 'ए' वर्ग के कैदी सरकार के खर्च से कपड़ा लेना चाहेंगे तो उन्हें 'बी' वर्ग के कैदियों के लिए नियत कपड़े दिये जायंगे। 'बी' वर्ग के कैदी जेल के कपड़े पहनेंगे, परन्तु वह कपड़ा कुछ बातों में 'सी' वर्ग के कैदियों से अधिक और अच्छा होगा।

'ए' और 'बी' वर्ग के लिए प्रत्येक प्रान्त में अलग जेल का होना वाञ्छनीय है। उसका बनना तो प्रान्तीय सरकारों के प्रस्तुत साधनों पर ही निर्भर रहेगा, परन्तु यह बात उनके लक्ष्य में अवश्य रहनी चाहिए। इस बीच में भारत-सरकार को आशा है कि प्रान्तीय सरकारें जेल के साधनों की ध्यान से जांच करेंगी और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यथाशक्ति प्रयत्न करेंगी।

रहने के अलग स्थान के अलावा भारत-सरकार 'ए' और 'बी' वर्ग के कैदियों के लिए विशेष कर्मचारियों की आवश्यकता पर भी जोर देना चाहती है। उसकी राय में इस मामले पर यथासम्भव जल्दी-से-जल्दी ध्यान देना चाहिए।

यह सिद्धान्त तो पहले से ही व्यवहार में लाया जा रहा है और उसका महत्व अब फिर दोहरा दिया जाता है कि 'ए' और 'बी' वर्ग के कैदियों का काम मुकर्रर करने से पहले उनके स्वास्थ्य, शक्ति, चरित्र, पूर्व-जीवन और इतिहास पर सावधानी से विचार कर लिया जाय।

भारत-सरकार को यह सिद्धान्त स्वीकार है कि शिक्षित और साक्षर कैदियों की बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए आवश्यक प्रतिबन्धों के साथ उचित सुविधायें दी जानी चाहिए। प्रान्तीय-सरकारों से अनुरोध किया जायगा कि जेल के पुस्तकालयों की हालत की जांच करें और जहां पुस्तकालय नहीं हैं अथवा अच्छे नहीं हैं वहां शीघ्र स्थापित करें या उन्नत करें। जेल-सुपरिंटेंडेण्ट की मंजूरी से पढ़े लिखे कैदी पुस्तकें और मासिक पत्र बाहर से मंगाकर पढ़ सकेंगे।

अखबार 'ए' वर्ग के कैदियों को उन्हीं शर्तों पर दिये जायंगे जिन पर वर्तमान विषयों के अनुसार विशेष वर्ग के कैदियों को दिये जाते हैं। अर्थात् विशेष परिस्थिति में और प्रान्तीय-सरकार की मंजूरी से दिये जायंगे। साधारणतः सभी साक्षर कैदियों को प्रान्तीय-सरकार-द्वारा प्रकाशित जेल-अखबार प्रति सप्ताह मिला करेगा। जहां प्रान्तीय-सरकार साप्ताहिक पत्र प्रकाशित नहीं कर सकेगी वहां के लिए भारत-सरकार ने यह निश्चय किया है कि 'ए' और 'बी' श्रेणी के कैदियों को प्रान्तीय सरकार की पसन्द के किसी साप्ताहिक पत्र की कुछ प्रतियां सरकार के खर्च से दी जायं।

'ए' श्रेणी के कैदियों को अबकी भांति एक महीने के बजाय पन्द्रह दिन में एक चिट्ठी लिखने, एक पाने और एक मुलाकात करने की इजाजत होगी। 'बी' वर्ग के कैदियों के लिए भिन्न-भिन्न जेलों के नियमानुसार अभी तो बड़ी लम्बी-लम्बी अवधियां मुकर्रर हैं, परन्तु अब उन्हें प्रति मास एक चिट्ठी लिखने, एक पाने और एक मुलाकात करने दी जायगी। यदि कैदियों की मुलाकातों और चिट्ठियों के हालात अखबारों में छपेंगे तो यह रिआयत छीनी भी जा सकेगी या कम की जा सकेगी।

भारत-सरकार को यह सिद्धांत स्वीकार है कि जो अभियुक्त कैदी हैसियत, शिक्षा या जीवन-क्रम के कारण उच्च प्रकार के रहन-सहन के अभ्यस्त रहे हैं उनके साथ विशेष व्यवहार किया जाना चाहिए। अतः केवल रहन-सहन के आधार पर ही अभियुक्त कैदियों के दो वर्ग रहेंगे। इस वर्गीकरण का अधिकार जिला मजिस्ट्रेट की मंजूरी से निर्णायक अदालतों को होगा। प्रथम श्रेणी के अभियुक्तों को 'ए' और 'बी' वर्ग के सजा पाये हुए कैदियों की-सी खूराक मिलेगी और दूसरी श्रेणी के अभियुक्तों को 'सी' वर्ग के कैदियों की सी। दोनों श्रेणियों के अभियुक्त कैदियों को जेल के अधिकारियों की मार्फत अपने खर्च से बाहर की खूराक मंगाने की छुट्टी होगी। मौजूदा नियमों के अनुसार उन्हें अपने कपड़े पहनने की छूट है। यह प्रस्ताव किया गया है कि जिन अभियुक्त कैदियों के पास थोड़े कपड़े हों अथवा जो बाहर से कपड़े न मंगा सकते हों उन्हें जेल के अधिकारी जेल के कपड़ों से भिन्न दूसरे उचित कपड़े दें। भारत-सरकार यह प्रस्ताव स्वीकार करने की प्रान्तीय सरकारों से सिफ़ारिश करती है।

भारत सरकार की राय में यदि वर्तमान नियमों का अर्थ उदारभाव से किया जाय, प्रस्तावित सुधार कर दिये जायं और रहने के स्थान का पहले से अच्छा प्रबन्ध हो जाय, तो जांच-द्वारा जो सुधार वांछनीय बताये गये हैं उन पर अमल हो जायगा। अतः उसे आशा है कि प्रांतीय-सरकारें वर्तमान स्थान सुधारने और अपने मौजूदा साधनों का अधिक-से-अधिक सदुपयोग करने का पूर्ण प्रयत्न करेंगी। भारत सरकार के पास जो बहुत सी रायें पहुंची हैं उनमें इस बात पर जोर दिया गया है कि जो अभियुक्त बार-बार जेल में आते या संगीन अभियोगों में पकड़े गये हैं उन्हें नये अभियुक्तों से अलग रक्खा जाय। इस विषय में भारत-सरकार के विचार से नई आज्ञा की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उसे मालूम है कि इस समय भी ऐसा ही व्यवहार है।

अब प्रान्तीय-सरकारों से इन सिद्धान्तों के अनुसार अपने जेल-नियमों में संशोधन करने का

और जेलखाने के कानून की ६० वीं धारा के अनुकूल आवश्यक नियम बना लेने का अनुरोध किया जाता है। जबतक यह न हो तबतक उनसे अनुरोध किया गया है कि इन परिवर्तनों पर यथासम्भव तुरन्त अमल शुरू कर दें।"

७

हिन्दुस्तानी मिलों के घोषणा-पत्रक

हम घोषणा करते हैं कि—

१. हम जनता की राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण सहानुभूति रखते हैं।

२. कम्पनी की पूंजी के कम-से-कम ७५ प्रतिशत हिस्से हिन्दुस्तानियों के हैं। (इसकी बाबत कांग्रेस के अध्यक्ष-द्वारा नामजद की हुई विशेष कमिटी घोषणा-पत्रक के इस अंश के विषय में विशेष-रूप से छूट दे सकती है)।

३. पुराने पदेन (ex-officio) डाइरेक्टरों के सिवा कम-से-कम ६६ प्रतिशत डाइरेक्टर हिन्दुस्तानी हैं और रहेंगे। (पुराने पदेन डाइरेक्टर अहिन्दुस्तानी होने की दशा में बोर्ड में हिन्दुस्तानी डाइरेक्टरों का बहुमत होना चाहिए)।

४. प्रबन्धक एजेण्टों (मैनेजिंग-एजेण्ट्स) की फर्म में कोई विदेशी स्वार्थ नहीं है।

५. एजेण्टों की फर्म के हिस्सेदार या फर्म किसी विदेशी बीमा-कम्पनी की मदद नहीं करते और न विदेशी सूत या थान मंगाते हैं।

६. हम खादी से मिल के कपड़े की होड़ न करके और आन्दोलन से उत्पन्न स्थिति से, कपड़े की कीमत बढ़ा कर या उसे घटिया बना कर, अपने स्वार्थ के लिए अनुचित लाभ न उठाकर स्वदेशी की उन्नति में सहायक होंगे।

७. मिलों के मालिक और प्रबन्धक हिन्दुस्तानी हैं और प्रबन्ध-विभाग के कर्मचारियों की दृष्टि और 'स्पिरिट' हिन्दुस्तानी है। वे हिन्दुस्तानी हितों की रक्षा के लिए बंधे हुए हैं—

उक्त घोषणा-पत्रक के पालन के लिए हम यह करने का जिम्मा लेते हैं—

१. मिलों के प्रबन्ध से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध किसी भी प्रकार के प्रचार में नहीं लगेगा और न स्वेच्छा से, ब्रिटिश-सरकार के कहने से या ब्रिटिश-सरकार की ओर से संगठित ऐसे किसी आन्दोलन में भाग ही लेगा।

२. विशेष कारणों के अतिरिक्त कर्मचारियों की भरती केवल हिन्दुस्तानियों में से की जायगी।

३. हम अपनी कम्पनी का बीमे का काम जितना सम्भव होगा उतना हिन्दुस्तानी बीमा-कम्पनियों को देंगे।

४. हम अपना बैंकों का काम तथा जहाजों से माल लाने या जाने का काम भी जितना सम्भव होगा उतना हिन्दुस्तानी जहाजी-कम्पनियों को देंगे।

५. अबसे हम जहां तक सम्भव होगा वहां तक आडिटर, वकील, जहाजों पर माल चढ़वाने तथा जहाजों से माल उतरवाने वाले कारिन्दे, खरीदने और बेचनेवाले दलाल, ठेकेदार और अपनी मिलों के लिए आवश्यक सामान देने वाले हिन्दुस्तानी ही रक्खेंगे।

६. हम जहां तक सम्भव होगा वहांतक स्टोर की चीजें देशी खरीदेंगे। केवल वही चीजें विदेशी खरीदेंगे जिनके विना काम नहीं चल सकता और जिनके बजाय देशी नहीं काम आ सकतीं या मिल सकतीं। (ऐसी विदेशी चीजों की सूची, जो अनिवार्य है, साथ है।)

७. हम किसी भी प्रकार का विदेशी सूत या रेशम, या नक़ली रेशम या ऐसा सूत जो बहिष्कृत मिलों में काता जाता है, काम में नहीं लायंगे।

८. हम उस सूत या कपड़े को न धोयेंगे और न रंगेंगे जो विदेशी होगा, या बहिष्कृत मिलों में तैयार किया गया होगा।

९. हम अपनी मिलों में तैयार किये हुए हरेक थान के दोनों सिरों पर अपनी छाप साफ़-साफ़ लगायंगे और बिना उचित छाप के कोई कपड़ा बाहर न भेजेंगे।

१०. हम अपने किसी भी कपड़े को खादी न कहेंगे, न उसपर खादी छापेंगे और न उसे खादी-जैसा बनायंगे।

११. हम नीचे लिखे प्रकारों के कपड़े न बनायंगे—

कोई कपड़ा जो बिना धुला हो या धुला हो, ताने और बाने में एक इंच में जिसमें एक ऊपर और एक नीचे, इकहरे या दुहरे, सादा बुनावट के १८ से अधिक तार हों। बाने में चैकों की सादा बुनावट भी हो। जो बूंददार या गोल वस्त्र पर बने हों और दरियां। (१८ तारों में इकहरे या दुहरे सूत शामिल हैं। उनका नम्बर १८ या कम होता हो)।

किन्तु मिलें ड्रिल, साटनें, टमरें, जैक्रार्ड मशीन पर बनी टूलें, डौबी नमूने, रंगीन रूई से बना कपड़ा, कम्बल और मलीदा बनाने के लिए स्वतन्त्र हैं।

१२. हम अबसे यथाशक्ति अपना खरीद-फरोख्त का काम हिन्दुस्तानी दुकानदारों के साथ करेंगे और उन्हीं के द्वारा करायंगे।

१३. हमारी मिलों के प्रबन्ध से सम्बन्ध रखने वाले लोग स्वदेशी कपड़ा पहनेंगे

कम्पनी का नाम..............................

पता..............................

एजेण्टों या मालिकों के नाम..............................

गैर-हिन्दुस्तानी मिलों का घोषणा-पत्रक

१. हम जनता की राष्ट्रीय भावनाओं से पूर्ण सहानुभूति रखते हैं।

२. कम्पनी की पूंजी के कम-से-कम ७५ प्रतिशत हिस्से हिन्दुस्तानियों के हैं। (इसकी बाबत कांग्रेस के अध्यक्ष-द्वारा नामजद की हुई विशेष कमिटी घोषणा के इस अंश के विषय में विशेष रूप से छूट दे सकती है।)

३. पुराने पदेन-डाइरेक्टरों के सिवा कम-से-कम ६६ प्रतिशत डाइरेक्टर हिन्दुस्तानी हैं और रहेंगे (पुराने पदेन-डाइरेक्टर गैर-हिन्दुस्तानी होने की दशा में बोर्ड में हिन्दुस्तानी डाइरेक्टरों का बहुमत होना चाहिए)।

४. एजेण्टों की फर्म के हिस्सेदार बिदेशी सूत और कपड़े के आयात-व्यापार में किसी भी प्रकार की दिलचस्पी नहीं रखते।

५. हम खादी से भिन्न के कपड़े की होड़ न करके और आन्दोलन से उत्पन्न स्थिति से, कपड़े की कीमत बढ़ाकर या उसे घटिया बनाकर, अपने स्वार्थ के लिए अनुचित लाभ न उठाकर स्वदेशी की उन्नति में सहायक होंगे।

६. प्रबन्ध-विभाग के कर्मचारियों की दृष्टि और 'स्पिरिट' हिन्दुस्तानी है और वे हिन्दुस्तानी हितों की रक्षा के लिए बंधे हुए हैं।

उक्त घोषणा के पालन के लिए हम यह करने का जिम्मा लेते हैं—

१. मिलों के प्रबन्ध से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध किसी भी प्रकार के प्रचार में नहीं लगेगा और न स्वेच्छा से, ब्रिटिश-भारत के कहने से या ब्रिटिश-सरकार की ओर से सङ्गठित ऐसे किसी आन्दोलन में भाग ही लेगा।

२. विशेष कारणों के अतिरिक्त कर्मचारियों की भर्ती केवल हिन्दुस्तानियों में से ही की जायगी।

३. हम अपनी कम्पनी का बीमे का काम, बैंक-सम्बन्धी काम तथा जहाजों में माल लाने ले जाने का काम हिन्दुस्तानी बीमा कम्पनियों, हिन्दुस्तानी बैंकों और हिन्दुस्तानी जहाजी कम्पनियों को देंगे।

४. अब से हम जहांतक सम्भव होगा वहांतक हिसाब-निरीक्षक, वकील, जहाजों पर माल चढ़वाने तथा जहाजों से माल उतरवानेवाले कारिन्दे, खरीदने और बेचने वाले दलाल, ठेकेदार और अपनी मिलों के लिए आवश्यक सामान देने वाले हिन्दुस्तानी ही रक्खेंगे।

५. हम जहांतक सम्भव होगा वहांतक स्टोर की चीजें हिन्दुस्तान की बनी ही खरीदेंगे। केवल वही चीजें विदेशी खरीदेंगे जो अत्यन्त आवश्यक हैं और हिन्दुस्तानी स्वदेशी चीजें जिनके बजाय काम नहीं दे सकतीं या नहीं मिलतीं। (ऐसी विदेशी चीजों की सूची, जो अनिवार्य है, साथ है)।

६. हम किसी भी प्रकार का विदेशी सूत या विदेशी रेशम, या नकली रेशम या ऐसा सूत जो बहिष्कृत मिलों में काता जाता है, काम में नहीं लायंगे।

७. हम उस सूत या कपड़े को न धोयेंगे और न रंगेंगे जो विदेशी होगा या बहिष्कृत मिलों में तैयार किया गया होगा।

८. हम अपनी मिलों में तैयार किये हुए हरेक थान के दोनों सिरों पर अपनी छाप साफ-साफ लगायंगे और बिना वाजिब छाप के कोई कपड़ा बाहर न भेजेंगे।

९. हम अपने किसी कपड़े को खादी न कहेंगे, न उसपर खादी छापेंगे और न उसे खादी-जैसा बनायेंगे।

१०. हम नीचे लिखे प्रकारों के कपड़े न बनायंगे—

कोई कपड़ा जो बिना धुला हो, जिसमें ताने और बाने में इक इंच में एक ऊपर और एक नीचे, इकहरे या दुहरे, सादा बुनावट के १८ से अधिक तार हों। बाने में चैकों की सादा बुनावट हो, जो बूंददार या गोल बक्स पर बने हों और दरियां। (१८ तारों में इकहरे दुहरे सूत शामिल हैं, उनका नम्बर १८ या १८ से कम होता है।)

किन्तु मिलें ड्रिल, साटनें, टसरें, जैकार्ड मशीन पर बनी टूलें, डोबी नमूने, रंगीन रुई से बना कपड़ा, कम्बल और मलीदा बनाने के लिए स्वतंत्र हैं।

११. हम अबसे अपना खरीद-फरोख्त का काम यथाशक्ति हिन्दुस्तानी दुकानदारों के साथ करेंगे और उन्हीं के द्वारा करायंगे।

१२. हमारी मिलों के प्रबन्ध से सम्बन्धित व्यक्ति स्वदेशी कपड़ा पहनेंगे।

कम्पनी का नाम..............................

पता..............................

प्रबन्धक-एजेण्ट या मालिक..............................

बम्बई-कांग्रेस-कमिटी-द्वारा प्रचलित घोषणा-पत्रक

"हम घोषित करते हैं कि हम जनता की राष्ट्रीय-भावनाओं से पूर्ण सहानुभूति रखते हैं और राष्ट्रीय-आन्दोलन से स्वदेशी के प्रचार को जो उत्तेजन मिला है उसकी कद्र करते हैं।

खादी की रक्षा के लिए हम सहमत हैं कि हम अपनी मिलों में बने कपड़े पर खादी नहीं छापेंगे और न उसे खादी कह कर बेचेंगे। हम उन किस्मों के अलावा जिनपर हमारी मिलें और आपकी कमिटी (बम्बई-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी) सहमत हो, औसतन १० नम्बर से नीचा कपड़ा न बनायेंगे।

अपने मिल उद्योग के स्वदेशी रूप की रक्षा और उन्नति के लिए नीचे लिखी योजना स्वीकृत हुई। हम इससे सहमत हैं—

१. मिलों के मालिकों और प्रबन्धकों की दृष्टि और 'स्पिरिट' भारतीय और स्वदेशी है और रहेगी। वे भारतीय हितों की रक्षा के लिए बंधी हुई हैं।

२. मिलों के प्रबन्ध से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति राष्ट्र-हित-विरोधी आन्दोलनों में भाग न लेगा।

३. कम्पनी की कम-से-कम ७५ प्रतिशत पूंजी हिन्दुस्तानियों की है और रहेगी। इसमें कांग्रेस के अध्यक्ष विशेष मामलों में और विशेष हद तक अपवाद कर सकेंगे।

४. ऐसी किसी भी कम्पनी के, पदेन डाइरेक्टरों के अलावा, कम-से-कम ६६ प्रतिशत डाइरेक्टर हिन्दुस्तानी हैं और रहेंगे।

५. कम्पनी का प्रबन्ध और स्वामित्व भारतीय रहेगा, सिवा उन मिलों के जिनका प्रबन्ध इस समय गैर-हिन्दुस्तानी मिल-एजेण्टों के हाथ में है और उन्होंने इसके सिवा अन्य सारी शर्तें मान ली हैं।

६. विशेष कारणों के अतिरिक्त कर्मचारियों की भर्ती केवल हिन्दुस्तानियों में से ही होगी।

७. जहांतक सम्भव होगा मिलें हिन्दुस्तान की बनी चीजें ही खरीदेंगी और जहांतक सम्भव होगा वहांतक अपना व्यवहार हिन्दुस्तानी बैंकों, बीमा-कम्पिनियों और जहाजी-कम्पिनियों से ही रक्खेंगी।

८. बम्बई-कांग्रेस-कमिटी ने जिस सूत या कपड़े को अस्वदेशी घोषित कर दिया है, मिलें उसे न तो रंगेंगी और न धोयेंगी।

९. मिलें ३१ दिसम्बर १९३० के बाद विदेशी सूत, नकली रेशम और रेशम-नुमा सूत को काम में नहीं लायेंगी।

१०. मिलें अपने हरेक थान पर अपने नाम की छाप लगायेंगी।

११. कोई भी मिल-मालिक, मिल-एजेण्ट और मिलों के प्रबन्ध से सम्बन्ध रखनेवाला दूसरा आदमी प्रत्यक्ष रूप से विदेशी सूत या कपड़ा न मंगायेगा।

१२. मिलें राष्ट्रीय-आन्दोलन से प्रोत्साहन पाई हुई स्वदेशी की भावना से अपना अनुचित स्वार्थ-साधन न करेंगी और अधिक मुनाफा उठानेवाले दलालों से भी इसकी रक्षा करेंगी। वे स्वदेशी माल खरीदनेवाली जनता को उचित दामों में बेचेंगी।

वे ३१ दिसम्बर १९३० से पहले तक मिलों में जो चीजें इस समय बन रही हैं उन्हें वर्तमान दामों पर या १२ मार्च १९३० को जो दाम थे उनपर—इनमें से जो भी कम हो उनपर—बेचेंगी।

वे खरीदारों को सूचना देने के लिए प्रचलित किस्मों की बिक्री के दाम, जो समय-समय पर होंगे, छपवाकर बंटवाती रहेंगी।

वे समय-समय पर बम्बई प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी के प्रतिनिधियों से मिलेंगी और ऐसे तरीके इस्तेमाल करेंगी जिनपर अधिक मुनाफा खानेवालों को रोकने के लिए और खरीदारों को वाजिब दामों पर लगातार स्वदेशी कपड़ा दिलाने के लिए दोनों पक्ष राजी होंगे।"

८

जुलाई-अगस्त १९३० के सन्धि-प्रस्ताव

पत्र-व्यवहार

५ सितम्बर १९३० को सर तेजबहादुर सप्रू और श्री मुकुन्दराव जयकर ने पूना से नीचे लिखा वक्तव्य प्रकाशित किया था, जिसमें उन्होंने वह पत्र-व्यवहार भी सम्मिलित कर दिया था जो पिछले दो महीनों में उनमें और जेल पड़े हुए कांग्रेस के नेताओं में हुआ था—

"इधर दो महीने से कुछ अधिक समय से हम लोग देश में शान्ति स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न करते रहे हैं, उसके सम्बन्ध की मुख्य-मुख्य घटनायें और बातें इस प्रकार हैं—

(१) गत २० जून १९३० को लन्दन के 'डेली हेरल्ड'नामक पत्र के विशेष संवाददाता मि० स्लोकोम्ब ने पं० मोतीलाल नेहरू से भेंट करके उनसे यह जानना चाहा था कि गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित होने के सम्बन्ध में उनके क्या विचार हैं। उस समय नेहरूजी ने जो विचार प्रकट किये थे, वे भारतवर्ष में प्रकाशित हो चुके हैं।

(२) इसके थोड़े ही दिनों बाद मि० स्लोकोम्ब ने बम्बई में पं० मोतीलाल नेहरू से मिलकर फिर बातें की थीं, जिनके परिणाम स्वरूप मि० स्लोकोम्ब ने कुछ शर्तों का एक मसविदा तैयार किया था, और वह मसविदा पं० मोतीलाल नेहरू के पास भेज दिया था। पं० मोतीलाल नेहरू ने वह मसविदा श्री जयकर और मि०स्लोकोम्ब के सामने मंजूर भी कर लिया था। उन शर्तों की एक प्रतिलिपि मि० स्लोकोम्ब ने श्री जयकर के पास भेज दी थी; क्योंकि पं० मोतीलाल नेहरू ने यह बात मंजूर कर ली थी कि इन्हीं शर्तों के आधार पर श्री जयकर या और कोई तटस्थ व्यक्ति चाहें तो वाइसराय से मिलकर समझौते की बातचीत कर सकते हैं।

(३) मि० स्लोकोम्ब ने शिमला में डॉ० सप्रू के पास भी एक पत्र भेजा था, जिसके साथ उन शर्तों की एक नकल भी थी। उस पत्र में मि० स्लोकोम्ब ने लिखा था कि पं० मोतीलाल नेहरू ने यह बात मंजूर कर ली है कि यदि हम लोग (डॉ० सप्रू और श्री जयकर) चाहें तो इन्हीं शर्तों के आधार पर वाइसराय से मिलकर समझौते की बातचीत कर सकते हैं। उस मसविदे का पूरा अनुवाद यहां दिया जाता है।

समझौते की बातचीत का आधार

२५ जून १९३० को बम्बई में पं० मोतीलाल नेहरू के सामने जो वक्तव्य पेश किया गया था और जिसके सम्बन्ध में उन्होंने यह मंजूर कर लिया था कि यदि कोई तटस्थ व्यक्ति या दल चाहें तो इसके आधार पर वाइसराय से मिलकर आपसी बातचीत कर सकते हैं, वह यह है—

'ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार यद्यपि पहले से यह जानने में असमर्थ हैं कि पूर्ण-रूप से स्वतन्त्रता पूर्वक विचार करने के उपरान्त गोलमेज-परिषद् किन-किन बातों की सिफारिश करेगी और

न वे अभी से यही जान सकती हैं कि उन सिफारिशों के सम्बन्ध में ब्रिटिश-पार्लमेंयट का क्या रुख होगा; तथापि यदि कुछ विशेष परिस्थिति में ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार निजी-रूप से इस बात का वचन देने के लिए तैयार हो जायं कि भारतवर्ष की विशिष्ट आवश्यकताओं और परिस्थितियों का विचार करते हुए और ग्रेट ब्रिटेन के साथ उसके पुराने सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए आपस में जैसी व्यवस्था करना निश्चित कर लिया जायगा, और अधिकार हस्तान्तरित होने के सम्बन्ध में जो शर्तें तय हो जायंगी, और इस प्रकार की जिन बातों का निर्णय गोलमेज-परिषद् में हो जायगा, उन बातों को छोड़ कर भारत की पूर्ण उत्तरदायित्वयुक्त शासन-प्रणाली की मांग का उक्त दोनों सरकारें (ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार) समर्थन करेंगी, तो पं० मोतीलाल नेहरू स्वयं वचन लेकर महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल नेहरू के पास जायंगे; और यदि कोई ऐसा वचन नहीं मिलेगा और किसी उत्तरदायित्व पूर्ण तटस्थ दल की ओर से इस बात का संकेत-मात्र मिलेगा कि सरकार इस प्रकार वचन दे देगी, तो भी वह महात्मा गांधी और पं० जवाहरलाल के पास जाकर समझौते की बातचीत करेंगे। यदि इस प्रकार का वचन दिया जायगा और स्वीकृत कर लिया जायगा, तो इससे देश में शान्ति स्थापित होना सम्भव हो जायगा, जिससे सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा; और उसके साथ-ही-साथ सरकार अपनी वर्तमान दमन-नीति भी बन्द कर देगी और राजनैतिक कैदियों को छोड़ देगी, और तब आपस में जो शर्तें तय हो जायंगी उनके अनुसार कांग्रेस भी गोल-मेज-परिषद् में सम्मिलित हो जायगी।'

वाइसराय के नाम पत्र

इस पत्र के आधार पर गत जुलाई मास के आरम्भ में हम लोगों ने कई बार शिमला में वाइसराय से भेंट की और उन्हें देश की अवस्था समझाई और अन्त में उन्हें नीचे लिखा पत्र भेजा—

शिमला १३ जुलाई।

प्रिय लार्ड अर्विन,

हम लोग विनयपूर्वक आपका ध्यान देश की राजनैतिक अवस्था की ओर आकृष्ट करते हैं, जो हम लोगों की सम्मति में इस समय ऐसी हो रही है कि बिना कुछ भी विलम्ब किये तत्काल सुधारी जानी चाहिए और जिसे देखते हुए कुछ ऐसे उपाय करना आवश्यक जान पड़ता है जिनसे वह फिर अपनी स्वाभाविक और साधारण अवस्था में आ जाय। सत्याग्रह-आन्दोलन से जिन-जिन अनर्थों की आशंका हो सकती है, उनसे हम लोग भली-भांति परिचित हैं; और न तो उस आन्दोलन के साथ हममें से किसी ने कभी अपनी सहानुभूति प्रकट की है और न कभी उसका साथ दिया है। तो भी हम लोग यह समझते हैं कि इस समय जनता और सरकार में जो झगड़ा चल रहा है और जिसके कारण दमन-नीति का अवलम्बन किया गया है, जिसके परिणाम-स्वरूप सर्व-साधारण के भावों में बहुत ही कटुता आ गई है, उस झगड़े के कारण देश के सच्चे और स्थायी हितों में अवश्य ही बहुत बाधा होगी। हम लोग समझते हैं कि अपने देश और सरकार के प्रति हमारा यह कर्तव्य है कि हम लोग यह आशा और विश्वास रखते हुए कि इस आन्दोलन के कुछ नेताओं के साथ इस संबंध में बातचीत करके उन्हें देश में फिर से शान्ति स्थापित करने के काम में सहायक बना सकेंगे, हम लोग एक बार ऐसा प्रयत्न करें जिससे वर्तमान अवस्था सुधर जाय।

यदि हम लोगों ने श्रीमान् के भाषण का ठीक-ठीक अर्थ समझा हो, तो हम लोगों की ऐसी धारणा है कि यद्यपि श्रीमान् और श्रीमान् की सरकार सत्याग्रह-आन्दोलन का प्रतिकार करने के लिए अपने-आपको विवश समझी है, तथापि विधान से सम्बन्ध रखने वाली समस्या का सर्व-सम्मत निरा-

कारण करने के लिए जो-कुछ हो सकता है वह करने के लिए श्रीमान् कम उत्सुक नहीं हैं। कदाचित् हम लोगों को यहां यह कहने की कोई आवश्यकता न होगी कि हम लोगों को यह विश्वास है कि ज्यों ही यह आन्दोलन बन्द हो जायगा, त्यों ही सरकार को अपनी वर्तमान नीति का पालन करने की कोई आवश्कता न रह जायगी; और न उन नये आर्डिनेन्सों या आज्ञाओं आदि के रहने की ही कोई आवश्यकता रह जायगी जिन्हें सरकार को उस नीति का पालन करने के लिए प्रचलित करना पड़ा है।

इसलिए हमें लोग श्रीमान् से यह निवेदन करना चाहते हैं कि श्रीमान् कृपा कर हम लोगों को इस बात की आज्ञा दें कि हम लोग गांधी जी, पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू से भेंट करके बातचीत करें, जिसमें हम लोग अपने विचार उनके सामने उपस्थित कर सकें और देश के हित के विचार से उन लोगों पर इस बात के लिए दबाव डाल सकें कि वे हमारी प्रार्थना स्वीकार कर लें, जिससे विधान-सम्बन्धी उन्नति के विशाल प्रश्न का शान्त वातावरण में निराकरण हो सके। हम यह बात स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हम लोग जो उनके पास जायंगे, वह स्वयं अपनी ओर से जायंगे; और यह कार्य न तो हम सरकार की ओर से और न किसी दल की ओर से कर रहे हैं। यदि हम प्रयत्न में विफल हुए तो उसका उत्तरदायित्व स्वयं हमी पर होगा।

यदि श्रीमान् हम लोगों को इस बात की आज्ञा दे दें कि हम जेल में जाकर इन महानुभावों से भेंट करें, तो हम आपसे यह निवेदन करेंगे कि आप सम्बन्धित प्रान्तीय सरकारों के पास इस आशय की आवश्यक आज्ञायें भेज दें कि वे हमारे लिए आवश्यक सुभीते कर दें। हम यह भी प्रार्थना करते हैं कि यदि हमें यह आवश्यक आज्ञा मिल जाय तो हम सब लोगों को बिलकुल एकान्त में बातचीत करने का अधिकार दिया जाय; और जिस समय हम उनके साथ मिलकर बातें करें उस समय वहां कोई सरकारी अधिकारी उपस्थित न हो। इसके अतिरिक्त हम यह भी निवेदन करना चाहते हैं और हमारी सम्मति में यह वांछनीय है कि जहां तक हो सके, हम लोग उनके साथ शीघ्र ही भेंट करें।

इस पत्र का उत्तर श्री जयकर के पास होटल सेसिल के पते से भेजा जा सकता है।

भवदीय—तेजबहादुर सप्रू, एम० आर० जयकर

वाइसराय का उत्तर

शिमला, १६ जुलाई।

प्रिय श्री जयकर,

आपका १३ जुलाई का पत्र मिला। आप और सर तेजबहादुर सप्रू यह इच्छा प्रकट करते हैं कि देश में फिर से शान्ति स्थापित करने के लिए आप लोग यथासाध्य पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहते हैं और उस उद्देश्य से गांधीजी, पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू से भेंट करने की आज्ञा मांगते हैं।

गत ९ जुलाई को असेम्बली में मैंने जो भाषण किया, उसमें मैंने यह बतला दिया था कि सत्याग्रह-आन्दोलन और विधान के प्रश्न के सम्बन्ध में मेरे तथा मेरी सरकार के क्या सुझाव तथा विचार हैं। हम लोग समझते हैं कि सत्याग्रह-आन्दोलन से भारत की केवल हानि ही हानि हो रही है; और बहुत-से महत्वपूर्ण सम्प्रदाय, वर्ग और दल भी ऐसा ही समझते हैं। इसलिए उन सबकी सहायता से सरकार को यथाशक्ति सब प्रकार से उस आन्दोलन का बराबर विरोध करना पड़ेगा। परन्तु आप लोगों ने यह बहुत ही ठीक समझा है कि विधान की समस्या के साथ जितने प्रकार के

लोगों का सम्बन्ध है, उन सबकी स्वीकृति से उसका निराकरण करने के लिए हम लोग कम उत्सुक नहीं हैं।

स्पष्टतः हम लोगों के लिए यह बात सम्भव नहीं है कि पहले से ही यह कह सकें कि साइमन कमीशन की रिपोर्ट पर विचार करने के उपरान्त भारत-सरकार क्या सिफारिशें करेगी, या गोलमेज-परिषद् क्या सिफारिशें करेगी, और यह कह सकना तो और भी कठिन है कि इस सम्बन्ध में पार्लमेण्ट का क्या निर्णय होगा। परन्तु अपने भाषण में मैंने यह बात स्पष्ट कर दी थी कि मेरी सरकार की यह प्रबल कामना है, और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार की भी यही कामना है, कि जहां तक हो सके हम सब अपने-अपने क्षेत्रों में इस बात का पूरा प्रयत्न करें कि जिन बातों में भारतवासी इस समय अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के योग्य नहीं हैं उन बातों को छोड़कर बाकी और सब बातों में, अपने देश के और कामों का जितना अधिक प्रबन्ध वे स्वयं कर सकते हों उतना अधिक प्रबन्ध करने में उन्हें सहायता दी जाय। भारतवासी किन-किन विषयों में अभी-अपने ऊपर उत्तरदायित्व नहीं ले सकते हैं और उनके सम्बन्ध में क्या-क्या शर्तें और व्यवस्थायें की जानी चाहिए, इस पर परिषद् में विचार होगा। परन्तु मेरा कभी यह विश्वास नहीं रहा है कि यदि आपस में एक-दूसरे पर विश्वास रक्खा जाय तो समझौता करना असम्भव होगा।

इसलिए यदि आप लोगों का यह विश्वास हो कि जो कार्य आप लोग करना चाहते हैं उससे आप फिर से देश में शान्ति स्थापित करने में सहायता पहुंचा सकते हैं, तो मेरे लिए अथवा मेरी सरकार के लिए आपके प्रयत्नों में किसी प्रकार की बाधा उपस्थित करना ठीक नहीं होगा; और न मैं यही समझता हूं कि सत्याग्रह-आन्दोलन का दृढ़तापूर्वक विरोध करने में जिन लोगों ने बराबर मेरी सरकार का साथ दिया है और जिनके सहयोग का मैं बहुत-कुछ मूल्य समझता हूं, वही यह चाहते होंगे कि हमारी ओर से उसमें किसी प्रकार की बाधा पहुंचे। आप लोगों का उत्तर आने पर मैं सम्बन्धित प्रान्तीय सरकारों से कहूंगा कि वे ऐसी आवश्यक आज्ञायें जारी कर दें, जिनसे सार्वजनिक सेवा के भाववाले आप लोग, देश में शान्ति स्थापित करने के लिए प्रयत्न करने में समर्थ हो सकें।

भवदीय—अर्विन

नेहरुओं को गांधीजी का सूचना-पत्र

इन दोनों पत्रों को लेकर हम लोगों ने २३ और २४ जुलाई १९३० को पूना के यरवडा-जेल में गांधीजी से भेंट की। उस अवसर पर हम लोगों ने गांधीजी को सारी परिस्थिति समझाई और वाइसराय के साथ हम लोगों की जो बातचीत हुई थी उसका मुख्य अभिप्राय भी उन्हें बतला दिया। गांधीजी ने हम लोगों को निम्नलिखित सूचना और पत्र लिखकर इलाहाबाद के नैनी-जेल में पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू को देने के लिए दिया—

"(१) जहांतक इस प्रश्न का सम्बन्ध है, मेरा निजी विचार यह है कि यदि गोलमेज-परिषद् में केवल इस बात का विचार किया जाय कि भारत को पूर्ण-स्वराज्य प्रदान करने में और उसके सम्बन्ध के अधिकार हस्तान्तरित करने में जितना समय लगेगा उतने समय तक के लिए किन-किन बातों का, केवल रक्षा के विचार से, अंग्रेज-सरकार के हाथ में रहना आवश्यक होगा, तो स्वयं मुझे कोई आपत्ति न होगी। पर साथ ही यह बात समझी-बूझी और जानी हुई रहेगी कि यदि उस परिषद् में कोई व्यक्ति पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रश्न उठायेगा तो उसके सम्बन्ध में सभापति अथवा अधिकारियों को यह कहने का अधिकार न होगा कि इस विषय पर विचार नहीं किया जा सकता। मैं

उसी दशा में परिषद् में सम्मिलित होने के विचार का समर्थन करूंगा जबकि पहले मुझे यह बतला दिया जायगा कि परिषद् में कौन-कौन लोग सम्मिलित किये जायंगे और इस सम्बन्ध में मेरा सन्तोष कर दिया जायगा।

(२) यदि गोलमेज-परिषद् के सम्बन्ध में कांग्रेस को सन्तोष हो जायगा तो सत्याग्रह-आन्दोलन स्वभावतः बन्द कर दिया जायगा। इसका अभिप्राय यह है कि केवल कानून-भंग करने के विचार से ही इस समय जो कानून-भंग किया जाता है, वह न किया जायगा, परन्तु विदेशी कपड़े और शराब, ताड़ी आदि की दुकानों पर तबतक बराबर शान्तिपूर्ण पिकेटिंग जारी रहेगी, जबतक कि सरकार स्वयं कानून बनाकर देश में विदेशी कपड़ों का आना और शराब, ताड़ी आदि का बिकना न बन्द कर दे। परन्तु जनता द्वारा नमक बनाने का काम बराबर जारी रहेगा और नमक-कानून में दण्ड देने के सम्बन्ध में जो धारायें हैं उनका प्रयोग न किया जायगा। नमक के सरकारी गोदामों या लोगों के निजी गोदामों पर धावा न किया जायगा। यदि इन शर्तों में यह धारा न रक्खी जाय तो भी मैं मान जाऊंगा, परन्तु यह बात लिखित समझौते के रूप में मान ली जानी चाहिए।

(३) (क) ज्योंही सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द किया जायगा, त्योंही वे सब सत्याग्रही तथा दूसरे राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायंगे, जिन्हें सजा मिल चुकी हो या जिनपर मुकदमा चल रहा हो परन्तु जिन्होंने हिंसा या शारीरिक बल-प्रयोग न किया हो अथवा उसके लिए दूसरे को उत्तेजित न किया हो।

(ख) नमक-कानून, प्रेस-कानून और लगान-कानून या इसी प्रकार के और कानूनों के अनुसार जो सम्पत्तियां जब्त की गई हों, वे सब वापस कर दी जायं।

(ग) जिन दण्डित सत्याग्रहियों पर जुर्माने हुए हों या जिनसे जमानतें ली गई हों अथवा प्रेस-कानून के अनुसार जिन लोगों से जमानतें ली गई हों, वे सब वापस कर दी जायं।

(घ) गांवों के जिन सरकारी कर्मचारियों या दूसरे कर्मचारियों ने सत्याग्रह-आन्दोलन के दिनों में इस्तीफा दे दिया हो, अथवा जो नौकरी से छुड़ा दिये गये हों और जो फिर से सरकारी नौकरी करना चाहते हों, वे अपने पद पर नियुक्त कर दिये जायं।

सूचना—इन सब बातों का प्रयोग असहयोग-आन्दोलन के समय के (दण्डितों आदि के) लिए भी होगा।

(ङ) वाइसराय ने अपने अधिकार से जो आर्डिनेन्स प्रचलित किये हैं, वे सब रद हो जायं।

मेरी यह सम्मति बिलकुल निश्चित और अन्तिम नहीं है, क्योंकि मैं यह समझता हूं कि एक कैदी को उन राजनैतिक कार्यों के सम्बन्ध में अपनी सम्मति देने का कोई अधिकार नहीं है जिनका उससे व्यक्तिगत सम्बन्ध न रहने के कारण पूरा-पूरा ज्ञान नहीं हो सकता। इसलिए मैं समझता हूँ कि मेरी इस समय की सम्मति का उतना मूल्य नहीं हो सकता, जितना उस समय की सम्मति का मूल्य होता, जब कि आन्दोलन के साथ मेरा प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता। श्री जयकर और डा० सप्रू यह पत्र पं० मोतीलाल नेहरू, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल तथा उन लोगों को दिखला सकते हैं जिनके हाथ में इस समय आन्दोलन है। इसकी कोई बात समाचार-पत्रों में प्रकाशित नहीं होगी। यह इस अवस्था में वाइसराय को नहीं दिखलाया जायगा।

यदि ऊपर लिखी हुई शर्तें मान भी ली जायं तो भी मैं तबतक परिषद् में सम्मिलित न होना चाहूंगा, जबतक जेल से बाहर निकलने पर मुझमें वह आत्म-विश्वास न आ जाय जिसका इस समय मुझमें अभाव है और जबतक उन भारतवासियों में, जो परिषद् में निमंत्रित किये जायंगे, आपस में

बातचीत करके इस सम्बन्ध में एक समझौता न हो जायगा कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, प्रत्येक परिस्थिति में, वे लोग कम-से-कम इतनी बातों की मांग परिषद् के सामने अवश्य उपस्थित करेंगे। मुझे इस बात की भी स्वतन्त्रता रहेगी कि जिस समय अवसर आवे, उस समय मैं स्वराज्य की प्रत्येक योजना की अच्छी तरह परीक्षा कर सकूं और उसे जांच कर यह समझ सकूं कि उस योजना से वे ११ शर्तें पूरी होती हैं या नहीं, जो मैंने वाइसराय को अपने पत्र में लिखकर भेजी थीं।

यरवडा सेन्ट्रल जेल
२३—७—३०

मो० क० गांधी

पण्डित मोतीलाल के नाम महात्माजी का पत्र

उक्त सूचना के साथ गांधीजी ने पं० मोतीलाल नेहरू के नाम जो पत्र भेजा, वह निम्न प्रकार है—

'मेरी अवस्था इस समय बहुत ही बेढब है। मेरी प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि जेल की दीवारों के बाहर जो बातें हो रही हैं; उनके सम्बन्ध में अपनी कोई निश्चित सम्मति नहीं दे सकता। इसलिए मैंने जो कुछ लिखकर अपने मित्रों को दिया है, वह केवल उन बातों का बहुत ही मोटा मसविदा है जिनसे मेरा व्यक्तिशः सन्तुष्ट होना सम्भव है, कदाचित् आप यह जानते होंगे कि मैं मि० स्लोकोम्ब को कोई बात बतलाने के लिए राजी नहीं था और मैंने उनसे कहा था कि वे आपके साथ मिलकर सब बातों पर विचार करें। परन्तु बहुत प्रार्थना करने पर मैं अपने उस विचार पर दृढ़ न रह सका, और मैंने उनसे कह दिया कि आपके साथ बातचीत करने से पहले ही वह मेरी कही हुई बातों को प्रकाशित कर सकते हैं। साथ ही एक बात यह है कि यदि सम्मानपूर्ण समझौते के लिए उपयुक्त समय आ गया हो, तो मैं उसके मार्ग में बाधक नहीं होना चाहता। मुझे इस सम्बन्ध में बहुत अधिक संदेह है, परन्तु फिर भी इस सम्बन्ध में जो कुछ जवाहरलाल कहें वही निश्चित और अन्तिम कथन होगा। आप और हम तो उन्हें केवल परामर्श दे सकते हैं। सर तेज बहादुर सप्रू और श्री जयकर को मैंने जो सूचना-पत्र दिया है, उसमें मैंने जो बात कही है, वही मेरे लिए चरम-सीमा है, जहांतक मैं जा सकता हूं। परन्तु जवाहरलाल और, इस विषय में आप भी, यह समझ सकते हैं कि मैंने जो बातें कहीं हैं, वे कांग्रेस की वास्तविक और भीतरी नीति तथा जनता की वर्तमान प्रकृति के अनुकूल नहीं, बल्कि प्रतिकूल हैं। यदि लाहौर-कांग्रेस में निश्चित प्रस्ताव के अनुसार ही और कोई अधिक मांग पेश की जाय तो भी उसका समर्थन करने में मुझे कोई आगा-पीछा नहीं होना चाहिए। इसलिए मैंने अपने सूचना-पत्र में जो बातें कहीं हैं, यदि वे आप दोनों के मन में बिलकुल ठीक न जंचती हों, तो आप लोगों को उचित है कि मेरी उन बातों को कोई महत्व न दें।

मैं यह जानता हूं कि वाइसराय को मैंने जो अपना पहला पत्र भेजा था, उसमें मैंने जो शर्तें लिखी थीं, उन शर्तों को न तो आप और न जवाहर ही बहुत पसन्द करते थे। मैं नहीं कह सकता कि इस समय भी आप लोगों की वही सम्मति है या कुछ दूसरी। हां, उनके सम्बन्ध में स्वयं मेरा मन बहुत शुद्ध और स्पष्ट है—मैं उन्हें बहुत ठीक समझता हूं कि उनमें स्वतन्त्रता का मुख्य तत्व आ जाता है। जिन अधिकारों से राष्ट्र को सब बातों को तुरन्त ही काम में लाने की शक्ति न प्राप्त होती हो, उन अधिकारों से मैं कुछ भी सरोकार नहीं रख सकता। मैंने अपने सूचना-पत्र में उनमें से केवल तीन ही बातों का उल्लेख किया है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मैंने बाकी आठ बातों को छोड़ दिया है। बल्कि इस समय ये तीन बातें केवल सत्याग्रह आन्दोलन के सम्बन्ध में कार्य करने के लिए पेश की गई हैं। यदि युद्ध स्थगित करने के सम्बन्ध में कोई ऐसी योजना की जायगी जिससे हम लोग

अपनी वह स्थिति भी खो बैठें जिस स्थिति पर हम लोग आज तक पहुंच चुके हैं, तो मैं उस योजना में किसी प्रकार सम्मिलित न होऊंगा।

यरवडा-मन्दिर भवदीय
२३—७—३० मो० क० गांधी

गांधीजी के नाम नेहरुओं का पत्र

इसके अनुसार २७ और २८ जुलाई को हम लोगों ने प्रयाग के नैनीजेल में पं० मोतीलाल और पं० जवाहरलाल नेहरू से भेंट की और वाइसराय के पत्र, गांधीजी के सूचनापत्र और ऊपर बतलाये हुए पत्रकी सब बातों को ध्यान में रखते हुए उनके साथ सब बातों पर पूरी तरह से विचार किया। उस समय पं० मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल ने हम लोगों को नीचे लिखे हुए दो पत्र गांधीजी को पूना के यरवडा-जेल में देने के लिए दिये—

२८ जुलाई १९३० का लिखा हुआ पं०मोतीलाल नेहरू और पं० जवाहरलाल नेहरू का सूचना-पत्र

सेन्ट्रल जेल, नैनी, प्रयाग।

'हम लोगों ने सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के साथ बहुत देर तक बातचीत की और उन्होंने हम लोगों से उन कई घटनाओं का जिक्र किया जिनसे प्रेरित होकर वे जेल में गांधीजी से मिले थे और जिनके कारण वे हम लोगों से भी बातें करने के लिए यहां आये हैं, और जिनका ध्यान रखते हुए वे यह चाहते हैं कि यदि सम्भव हो तो वह लड़ाई बन्द कर दी जाय अथवा कुछ समय के लिए रोक दी जाय जो इस समय भारतवासियों और ब्रिटिश-सरकार में चल रही है। शान्ति के लिए उनकी जो यह हार्दिक कामना है, उसकी हम बहुत प्रशंसा करते हैं, उसका बहुत मूल्य समझते हैं, और उनकी इस कामना को सिद्धि के जितने उपाय हो सकते हैं, उनपर बहुत प्रसन्नता के साथ विचार करने के लिए तैयार हैं; पर शर्त केवल यही है कि शान्ति उन भारतवासियों के लिए सम्मानजनक होनी चाहिए, जिन्होंने इस राष्ट्रीय संघर्ष में बहुत-कुछ आत्म-त्याग और बलिदान किया है और जो हमारे देश को स्वतन्त्र करना चाहते हैं। कांग्रेस के प्रतिनिधि की हैसियत से हम लोगों को इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि उसके स्वीकृत किये हुए प्रस्तावों में कोई विशेष और बड़ा हेर-फेर कर सकें; परन्तु फिर भी यदि कांग्रेस की ग्रहण की हुई मुख्य स्थिति स्वीकार कर ली जाय तो, कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में हम लोग इस बात के लिए तैयार हैं कि उनसे यह सिफारिश करें कि वह ब्यौरे और छोटी-छोटी बातों में कुछ परिवर्तन कर दें।

हम लोगों के सामने सबसे पहली कठिनाई यह है कि हम दोनों ही इस समय जेल में बन्द हैं और इधर कुछ दिनों से बाहरी संसार और राष्ट्रीय आन्दोलन के साथ हमारा कोई सम्पर्क नहीं रह गया है। हममें से एक को भी प्रायः तीन महीने से कोई दैनिक समाचारपत्र नहीं मिला है। गांधीजी भी कई महीने से जेल में ही हैं। वास्तविक अवस्था यह है कि कांग्रेस की मूल कार्य समिति के सब सदस्य जो हमारे साथ काम करनेवाले थे, वे सब जेल में हैं; और स्वयं वह समिति भी गैर-कानूनी ठहरा दी गई है। महासमिति जो केवल कांग्रेस के पूर्ण अधिवेशन को छोड़कर राष्ट्रीय कांग्रेस के विधान में अन्तिम अधिकारपूर्ण संस्था है, उसके ३६० सदस्यों में से कदाचित ७५ प्रति सैकड़े सदस्य इस समय जेलों में बन्द हैं। हम लोग राष्ट्रीय आन्दोलन से बिलकुल अलग कर दिये गये हैं। इसलिए हम लोग बिना अपने साथियों से, और विशेषत गांधीजी से पूर्ण परामर्श किये निश्चित रूप से कोई काम करने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं ले सकते।

गोलमेज-परिषद् के सम्बन्ध में हम लोगों का यह मत है कि जबतक सब महत्वपूर्ण बातों का

आपस में पूरी तरह समझौता न हो जाय, तबतक उससे किसी फल की प्राप्ति की कोई सम्भावना नहीं है। हम इस प्रकार के समझौते को बहुत महत्व का समझते हैं, जो बिल्कुल निश्चित होना चाहिए और जिसमें न तो किसी प्रकार का भ्रम उत्पन्न होने का स्थान रहना चाहिए और न जिसका कोई मिथ्या और भ्रमपूर्ण अर्थ निकल सकना चाहिए। सर तेज बहादुर सप्रू और श्री जयकर ने इस बात को बहुत ही स्पष्ट कर दिया है; और उनके नाम लॉर्ड अर्विन ने जो पत्र भेजा है और जो पहले ही प्रकाशित हो चुका है, उसमें भी उन्होंने यह कह दिया है कि ये लोग (सर सप्रू और श्री जयकर) स्वयं अपनी ओर से यह प्रयत्न कर रहे हैं और उनके कार्यों या बातों से लॉर्ड अर्विन या उनकी सरकार किसी प्रकार बंध नहीं सकी। परन्तु फिर भी यह सम्भव है कि ये लोग कांग्रेस और ब्रिटिश-सरकार के बीच समझौते का मार्ग प्रस्तुत करने में सफलता प्राप्त कर सकें।

हम लोग बिना गांधी और दूसरे सहयोगियों से परामर्श किये हुए लड़ाई रोकने की निश्चित शर्तें बतलाने में असमर्थ हैं, इसलिए हम लोग उन सूचनाओं पर कोई विचार नहीं करते जो सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर ने उपस्थित की हैं अथवा जिनका उल्लेख गांधीजी के १३ जुलाई वाले उस सूचना-पत्र में है, जो हम लोगों को दिखलाया गया है। गांधीजी ने जो दूसरी और तीसरी विचारणीय बातें बतलाई हैं, उनसे हम लोग साधारणतः सहमत हैं; परन्तु इन बातों के सम्बन्ध में और विशेषतः उनकी बतलाई हुई पहली विचारणीय बात के सम्बन्ध में हम लोग पहले उनसे तथा और लोगों से बातचीत कर लेना चाहते हैं और तब, उसके उपरान्त, अपनी सूचनायें उपस्थित करना चाहते हैं। हम यह भी सूचित कर देना चाहते हैं कि हम लोगों का यह सूचनापत्र गुप्त माना और रक्खा जाय, और केवल उन्हीं व्यक्तियों को दिखलाया जाय, जिन्हें गांधीजी का २३-७-३० वाला सूचनापत्र दिखलाया जाय।

गांधीजी के नाम पं० जवाहरलाल नेहरू का लिखा हुआ २८-७-३० का पत्र

सेन्ट्रल जेल नैनी, प्रयाग।

प्रिय बापूजी,

बहुत दिनों के बाद आपको फिर पत्र लिखने में मुझे प्रसन्नता हो रही है, फिर चाहे यह पत्र एक जेल से दूसरे जेल को ही क्यों न लिखा जाता हो। मैं तो एक विस्तृत पत्र लिखना चाहता था, परन्तु मुझे भय है कि मैं ऐसा न कर सकूंगा। इसलिए इस पत्र में मैं केवल विचारणीय विषय पर ही अपनी सम्मति प्रकट करूंगा। डॉ० सप्रू और श्री जयकर कल यहां आये थे और पिताजी से तथा मुझसे बहुत देर तक उनकी बातें होती रहीं। आज वे लोग फिर यहां आ रहे हैं। उन लोगों ने हमारे सामने सब मुख्य-मुख्य बातें रख दी हैं और आपका सूचनापत्र तथा चिट्ठी भी हम लोगों को दिखलाई है; इसलिए हमने समझा कि हम दोनों आपस में इस विषय पर विचार कर सकते हैं। और बिना दुबारा होनेवाली बातचीत की प्रतीक्षा किये इस सम्बन्ध में कुछ निश्चय कर सकते हैं। हां, यदि दूसरी बार भेंट और बातचीत में कोई बात निकली तो हम अपनी पहले की निश्चित की हुई सम्मति में परिवर्तन करने के लिए भी तैयार हैं।

इस समय हम जिस परिणाम पर पहुंचे हैं उसका उल्लेख हमने उस सूचनापत्र में कर दिया है, जो हम डॉ० सप्रू और श्री जयकर को दे रहे हैं। वह कुछ संक्षिप्त तो है, परन्तु हम आशा करते हैं, कि उससे आपको इस बात का कुछ-कुछ पता लग जायगा कि हमारे मन में किस प्रकार के विचार उत्पन्न हो रहे हैं। यहां मैं यह भी बतला देना चाहता हूं कि पिताजी और मैं दोनों इस विषय में पूर्ण रूप से सहमत हैं कि इस विषय में हम लोगों का क्या रुख होना चाहिए। मैं यह बात मानता हूं कि

विधान-सम्बन्धी जो पहली विचारणीय बात आपने अपने सूचनापत्र में रक्खी है वह मुझे अपने पक्ष में नहीं कर सकी है, और न वह पिताजी के मन में ही बैठी है। मेरी समझ में यह बात नहीं आती कि हम लोगों की जो स्थिति है, अथवा हम लोग जो प्रतिज्ञा कर चुके हैं, अथवा आजकल की जो वास्तविक दशा है, उसके अनुकूल वह पहली विचारणीय बात कैसे घटती या बैठती है। इस विषय में पिताजी और मैं दोनों ही आपसे पूर्ण रूप से सहमत हैं कि यदि युद्ध स्थगित करने के सम्बन्ध में कोई ऐसी योजना की जायगी जिससे हम लोग अपनी वह स्थिति खो बैठें, जिस स्थिति पर हम आज तक पहुंच चुके हैं, तो हम उस योजना में किसी प्रकार सम्मिलित न होंगे। इसलिए यह बात बहुत अधिक आवश्यक है कि अन्तिम निश्चय करने से पहले सब बातों पर पूरा-पूरा विचार हो जाना चाहिए। मैं यह कहने के लिए विवश हूं कि मुझे अभी तक यह नहीं दिखाई पड़ रहा है कि दूसरा पक्ष (सरकार) कुछ विशेष अग्रसर हुआ; और इसलिए मुझे इस बात का बहुत अधिक भय है कि हम कोई ऐसा कार्य न कर बैठें जिससे अन्त में हमें धोखा खाना पड़े।

मैं अपने भाव नरम रूप से प्रकट कर रहा हूं। मैं अपने सम्बन्ध में कह सकता हूं कि मुझे तो लड़ाई-झगड़ों ही में आनन्द आता है। उससे मैं यह अनुभव करता हूं कि मुझमें प्राण हैं। इधर चार महीनों में भारत में जो घटनायें हुई हैं, उनसे मैं बहुत प्रसन्न हूं और उनके कारण भारतीय पुरुषों और स्त्रियों और यहांतक कि बच्चों के लिए भी मुझे अभूतपूर्व अभिमान हो गया है। परन्तु मैं यह भी समझता हूं कि अधिकांश लोग लड़ना-भिड़ना पसन्द नहीं करते और वे शान्ति चाहते हैं। इसलिए मैं अपने-आपको दबाने का बहुत अधिक प्रयत्न करता हूं और सब बातों को शान्तिपूर्ण-दृष्टि से देखना चाहता हूं। आपने अपने जादू-भरे स्पर्श से जो एक नवीन भारत की सृष्टि कर दी है, क्या उसके लिए मैं आपको बधाई दे सकता हूं? मैं यह नहीं जानता कि भविष्य में क्या होगा। परन्तु भूत-काल को देखते हुए मैं कह सकता हूं कि जीवन सार्थक हो गया है और हमारा नीरस अस्तित्व विकसित होकर सरस बन गया है और उसमें महत्ता आ गई है। यहां नैनी-जेल में बैठकर मैंने अहिंसा-रूपी अस्त्र की आश्चर्यजनक उपयोगिता पर बहुत अधिक विचार किया है, और मैं उसका इतना अधिक अनुयायी तथा भक्त हो गया हूं जितना पहले कभी नहीं था। अहिंसा के सिद्धान्त को देश ने जिस सीमा तक अपनाया है, मैं समझता हूं कि आप उससे असन्तुष्ट नहीं होंगे। यद्यपि बीच-बीच में लोग उसके पथ से विचलित हो जाते हैं, तथापि देश ने आश्चर्यजनक रूप में अहिंसा-व्रत का पालन किया है और अवश्य ही मेरी आशा से कहीं अधिक दृढ़तापूर्वक वे उस व्रत के व्रती रहे हैं।

मैं देखता हूं कि आपकी पहले की बतलाई हुई ११ शर्तों का मैं अभीतक विरोधी ही चला आ रहा हूं। यह बात नहीं है कि उनमें से किसी शर्त को मैं ठीक नहीं समझता; वास्तव में वे सब बहुत महत्त्व की हैं। परन्तु फिर भी मैं यह नहीं समझता कि वे स्वतन्त्रता का स्थान ले सकती हैं। हां, इस बात में मैं अवश्य ही आपसे सहमत हूं कि जिस अधिकार से राष्ट्र को तुरन्त ही उन सबके अनुसार काम करने की शक्ति न प्राप्त हो, उस अधिकार से हम लोगों को कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए। पिताजी को इन्जेक्शन लगाया गया है। वे बहुत दुर्बल हो गये हैं। कल शाम को (सर सप्रू और श्री जयकर से) बहुत अधिक देर तक बातें करते रहने के कारण वे बहुत शिथिल हो गये हैं।

जवाहरलाल

आप कृपा कर मेरे लिए चिन्तित न हों। यह तकलीफ तो जल्दी ही बीत जाने वाली है। मैं आशा करता हूं कि मैं दो-तीन दिन में इससे मुक्त हो जाऊंगा।

मोतीलाल नेहरू

पुनश्चः—

हमने सर तेजबहादुर सप्रू और श्री जयकर के साथ फिर बातचीत की। उनकी इच्छा के अनुसार हमने अपने सूचना-पत्र से कुछ बातें निकाल दी हैं; परन्तु उनसे कोई बड़ा फर्क नहीं पड़ता है। हमारी स्थिति तो बिलकुल साफ है और उसके सम्बन्ध में हमें किसी प्रकार का सन्देह नहीं है। मुझे आशा है कि आप इसे पसन्द करेंगे।

इसके अनुसार अकेले श्री जयकर ने ३१ जुलाई और १ तथा २ अगस्त को गांधीजी से मिल कर बातें कीं। उस समय गांधीजी ने उन्हें यह सूचना-पत्र लिखाया—

(१) गांधीजी को विधान-सम्बन्धी ऐसी कोई योजना मान्य न होगी जिसमें इस आशय की कोई धारा न हो, कि भारत को इस बात का अधिकार प्राप्त होगा कि वह जब चाहेगा तब ब्रिटिश-साम्राज्य से अलग हो जायगा; और जिसमें एक ऐसी दूसरी धारा न होगी, जिसमें भारत को इस बात का अधिकार और शक्ति न प्राप्त होगी कि वह ग्यारह शर्तोंको सन्तोषजनक रूप से पूरा कर सके।

(२) वाइसराय को गांधीजी के इस निश्चय की इसलिए सूचना मिल जानी चाहिए कि आगे चलकर जब गांधीजी गोलमेज-परिषद् में ये बातें कहें, तब वाइसराय को यह कहने का अवसर न मिले कि हमें पहले से इस बात की कोई सूचना ही नहीं मिली थी। वाइसराय को इस बात की भी सूचना दे दी जानी चाहिए कि गांधीजी गोलमेज-परिषद् में इस बात के लिए भी आग्रह करेंगे कि एक ऐसी धारा भी रक्खी जाय जिससे भारत को इस का अधिकार प्राप्त हो कि अबतक अंग्रेजों की जो विशिष्ट प्राप्य रकमें हैं, अथवा उन्हें जो विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं, उनकी एक स्वतन्त्र पंचायत के द्वारा जांच कराई जा सके।

इसके बाद १४ और १५ अगस्त को पूना के यरवडा-जेल में फिर एक बार सब लोगों ने मिलकर बातचीत की, जिसमें एक ओर तो हम लोग थे और दूसरी ओर गांधीजी, पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू, श्री वल्लभभाई पटेल, श्री जयरामदास दौलतराम और श्रीमती नायडू थे। उस अवसर पर हम लोगों में जो बातचीत हुई, उसके परिणाम-स्वरूप कांग्रेस के नेताओं ने हम लोगों को एक पत्र लिखकर दिया और इस बात की भी इजाजत दे दी कि वह पत्र वाइसराय को दिखला दिया जाय। वह पत्र इस प्रकार है—

यरवडा सेण्ट्रल जेल
१५–८–३०

प्रिय मित्रगण,

आप लोगों ने ब्रिटिश-सरकार और कांग्रेस में शान्तिपूर्ण समझौता कराने का जो भार अपने ऊपर लिया है, उसके लिए हम लोग आपके बहुत कृतज्ञ हैं। आपका वाइसराय के साथ जो पत्र-व्यवहार हुआ है, और आपके साथ हम लोगों की जो बहुत अधिक बातें हुई हैं, तथा हम लोगों में आपस में जो कुछ परामर्श हुआ है, उसका ध्यान रखते हुए हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि अभी ऐसे समझौते का समय नहीं आया है जो हमारे देश के लिए सम्मानपूर्ण हो। पिछले पांच महीनों में देश में जो अद्भुत जागृति हुई है और भिन्न-भिन्न सिद्धान्त तथा मत रखनेवाले लोगों में से छोटे-बड़े सभी प्रकार और वर्ग के लोगों ने जो बहुत अधिक कष्ट-सहन किया है, उसे देखते हुए हम लोग यह अनुभव करते हैं कि न तो वह कष्ट-सहन पर्याप्त ही हुआ है और न वह इतना ही हुआ है कि उससे तुरन्त ही हमारा उद्देश्य सिद्ध हो जाय।

कदाचित् यहां यह बतलाने की कोई आवश्यकता न होगी कि हम आपके अथवा वाइसराय के इस मत से सहमत नहीं हैं कि सत्याग्रह-आन्दोलन से देश को हानि पहुंची है, अथवा वह आन्दोलन कुसमय में खड़ा किया गया है अथवा अवैध है। अंग्रेजों का इतिहास ऐसी-ऐसी रक्त-पूर्ण क्रान्तियों के उदाहरणों से भरा पड़ा है जिनकी प्रशंसा के राग गाते हुए अंग्रेज लोग कभी नहीं थकते; और उन्होंने हम लोगों को भी ऐसा ही करने की शिक्षा दी है। इसलिए जो क्रान्ति विचार की दृष्टि से बिलकुल शान्तिपूर्ण है और जो कार्य-रूप में भी बहुत अधिक मान में और अद्भुत रूप से शान्तिपूर्ण ही है, उसकी निन्दा करना वाइसराय अथवा किसी और समझदार अंग्रेज को शोभा नहीं देता।

परन्तु जो सरकारी या गैर-सरकारी आदमी वर्तमान सत्याग्रह-आन्दोलन की निन्दा करते हैं, उनके साथ झगड़ा करने की हमारी कोई इच्छा नहीं है। हम लोगों का तो यही मत है कि सर्वसाधारण जिस आश्चर्य-जनक रूप से इस आन्दोलन में सम्मिलित हुए हैं, वही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि यह उचित और न्यायपूर्ण है। यहां कहने की बात यही है कि हम लोग भी प्रसन्नता पूर्वक आपके साथ मिलकर इस बात की कामना करते हैं कि यदि किसी प्रकार सम्भव हो तो यह सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जाय अथवा स्थगित कर दिया जाय। अपने देश के पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों तक को अनावश्यक रूप से ऐसी परिस्थिति में रखना कि उन्हें जेल जाना पड़े, लाठियां खानी पड़ें और इनसे भी बढ़-बढ़कर दुर्दशायें भोगनी पड़ें, हम लोगों के लिए कभी आनन्द दायक नहीं हो सकता। इसलिए जब हम आपको और आपके द्वारा वाइसराय को यह विश्वास दिलाते हैं कि सम्मानपूर्ण शान्ति और समझौते के लिए जितने मार्ग हो सकते हैं उन सबको ढूंढकर उनका अवलम्बन करने के लिए हम अपनी ओर से कोई बात न उठा रक्खेंगे, तो आशा है कि आप हम लोगों की इस बात पर विश्वास करेंगे।

परन्तु फिर भी हम यह मानते हैं कि अभीतक हमें क्षितिज पर ऐसी शान्ति का कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। हमें अभीतक इस बात का कोई लक्षण नहीं दिखाई पड़ता कि अंग्रेज सरकारी जगत् का अब यह विचार हो गया है कि स्वयं भारतवर्ष के स्त्री-पुरुष ही इस बात का निर्णय कर सकते हैं कि भारत के लिए सबसे अच्छा काम या मार्ग कौन-सा है? सरकारी कर्मचारियों ने अपने शुभ विचारों की जो निष्ठापूर्ण घोषणायें की हैं और जिसमें से बहुत सी घोषणायें प्रायः अच्छे उद्देश्य से की गई हैं, उनपर हम विश्वास नहीं करते। इधर मुद्दतों से अंग्रेज इस प्राचीन देश के निवासियों की धन-सम्पत्ति का जो बराबर अपहरण करते आये हैं, उसके कारण उन अंग्रेजों में इतनी शक्ति और योग्यता ही नहीं रह गई है कि वे यह बात देख सकें कि उनके इस अपहरण के कारण हमारे देश का कितना अधिक नैतिक, आर्थिक और राजनैतिक ह्रास हुआ है। वे अपने-आपको यह देखने के लिए उद्यत ही नहीं कर सकते कि उनके करने का इस समय सबसे बड़ा एक काम यही है कि वे जो हमारी पीठ पर चढ़े बैठे हैं, उसपर से वे उतर जायं; और प्रायः सौ वर्षों तक भारत पर राज्य करते रहने के कारण सब प्रकार से हम लोगों का नाश और ह्रास करनेवाली जो प्रणाली चल रही है, उससे वे बाहर निकलकर विकसित होने में हमारी सहायता करें; और अबतक उन्होंने हमारे साथ जो अन्याय किये हैं, उनका इस रूप में प्रायश्चित्त कर डालें।

परन्तु हम यह बात जानते हैं कि आपके तथा हमारे देश के कुछ और विज्ञ लोगों के विचार हमारे इन विचारों से भिन्न हैं। आप यह विश्वास करते हैं कि शासकों के भावों में परिवर्तन हो

गया है; और अधिक नहीं तो कम-से-कम इतना परिवर्तन अवश्य हो गया है कि जिससे हम लोगों को प्रस्तावित परिषद् में जाकर सम्मिलित होना चाहिए। इसलिए यद्यपि हम इस समय एक विशेष प्रकार के बन्धन में पड़े हुए हैं; तो भी जहांतक हमारे अन्दर शक्ति है वहां तक हम इस काम में प्रसन्नतापूर्वक आप लोगों का साथ देंगे। हम जिस परिस्थिति में पड़े हुए हैं, उसे देखते हुए, आपके मित्रतापूर्ण प्रयत्न में हम अधिक-से-अधिक जिस रूप में और जिस सीमा तक सहायता दे सकते हैं, वह इस प्रकार है—

हम यह समझते हैं कि वाइसराय ने आपके पत्र का जो उत्तर दिया है, उसमें प्रस्तावित परिषद् के सम्बन्ध में जिस भाषा का प्रयोग किया गया है, वह भाषा ऐसी अनिश्चित है कि गत वर्ष लाहौर में जो राष्ट्रीय मांग प्रस्तुत की गई थी, उसका ध्यान रखते हुए हम वाइसराय के उस कथन का कोई मूल्य या महत्त्व ही निर्धारित नहीं कर सकते; और न हमारी स्थिति ही ऐसी है कि कांग्रेस की कार्य-समिति और आवश्यकता हो तो महासमिति के नियमित रूप से अधिवेशन में बिना विचार किये हम लोग अधिकार-पूर्ण से कोई बात कह सकें। परन्तु हम इतना अवश्य कह सकते हैं कि व्यक्तिशः हम लोगों के लिए इस समस्या का कोई ऐसा निराकरण तबतक सन्तोषजनक न होगा जबतक (१) (क) पूरे और स्पष्ट शब्दों में यह बात न मान ली जाय कि भारत को इस बात का अधिकार प्राप्त होगा कि वह जब चाहे तब ब्रिटिश-साम्राज्य से अलग हो जाय। (ख) उससे भारत में ऐसी पूर्ण राष्ट्रीय-सरकार स्थापित हो जो उसके निवासियों के प्रति उत्तरदायी हो। उसे देश की रक्षक-शक्ति (सेना आदि) पर तथा समस्त आर्थिक विषयों पर पूर्ण अधिकार और नियन्त्रण प्राप्त हो और जिसमें उन ११ बातों का भी समावेश होजाय जो गांधीजी ने वाइसराय को अपने पत्र में लिखकर भेजी थीं। (ग) उससे भारतवर्ष को इस बात का अधिकार प्राप्त होजाय कि यदि आवश्यकता हो तो वह एक ऐसी स्वतन्त्र पंचायत बैठाकर इस बात का निर्णय करा सके कि अंग्रेजों को जो विशेष पावने और रिआयतें आदि प्राप्त हैं, जिसमें भारत का सार्वजनिक ऋण भी सम्मिलित होगा, और जिनके सम्बन्ध में राष्ट्रीय सरकार का यह मत होगा कि ये न्याय-पूर्ण नहीं हैं अथवा भारत की जनता के लिए हितकर नहीं हैं, ये सब अधिकार, रिआयतें और ऋण आदि उचित, न्यायपूर्ण और मान्य हैं या नहीं।

सूचना—अधिकार हस्तान्तरित होने के समय में भारत के हित के विचार से इस प्रकार के जिस लेने-देने आदि की आवश्यकता होगी, उसका निर्णय भारत के चुने हुए प्रतिनिधि करेंगे।

(२) यदि ऊपर बतलाई हुई बातें ब्रिटिश-सरकार को ठीक जंचे और वह इस सम्बन्ध में सन्तोष-जनक घोषणा कर दें तो हम कांग्रेस की कार्य-समिति से इस बात की सिफारिश करेंगे कि सत्याग्रह-आन्दोलन या सविनय-अवज्ञा का आन्दोलन बन्द कर दिया जाय; अर्थात् केवल आज्ञा-भंग करने के लिए ही कुछ विशिष्ट कानूनों का भंग न किया जाय। परन्तु विलायती कपड़े और शराब, ताड़ी आदि की दुकानों पर तबतक शान्तिपूर्ण पिकेटिंग जारी रहेगी, जबतक सरकार स्वयं कानून बनाकर शराब, ताड़ी आदि और विलायती कपड़े की बिक्री बन्द न कर देगी। सब लोग अपने घरों में बराबर नमक बनाते रहेंगे और नमक-कानून की दंड सम्बन्धी धारायें काम में नहीं लाई जायंगी। नमक के सरकारी या लोगों के निजी गोदामों पर धावा नहीं किया जायगा।

(३) (क) ज्योंही सत्याग्रह-आन्दोलन रोक दिया जायगा, त्योंही उसके साथ वे सब सत्याग्रही कैदी और राजनैतिक कैदी, जो सजा पा चुके हैं परन्तु जो हिंसा के अपराधी नहीं हैं या जिन्होंने लोगों को हिंसा करने के लिए उत्तेजित नहीं किया है, सरकार-द्वारा छोड़ दिये जायंगे। (ख) नमक-कानून, प्रेस-कानून, लगान-कानून तथा इसी प्रकार के और कानूनों के अनुसार जो

सम्पत्तियां जब्त की गई हैं, वे सब लोगों को वापस कर दी जायंगी। (ग) दंडित सत्याग्रहियों से जो जुर्माने वसूल किये गये हैं या जो जमानतें ली गई हैं, उन सबकी रकमें लौटा दी जायंगी। (घ) वे सब राज-कर्मचारी, जिनमें गांवों के कर्मचारी भी सम्मिलित हैं, जिन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया है अथवा जो आन्दोलन के समय नौकरी से छुड़ा दिये गये हैं, यदि फिर से सरकारी नौकरी करना चाहें तो अपने पद पर नियुक्त कर दिये जायंगे।

सूचना—ऊपर जो उप-धारायें दी गई हैं, उनका व्यवहार असहयोग-काल के दंडित लोगों के लिए भी होगा।

(ङ) वाइसराय ने अबतक जितने आर्डिनेन्स प्रचलित किये हैं, वे सब रद कर दिये जायंगे।

(च) प्रस्तावित परिषद् में कौन-कौन लोग सम्मिलित किये जायंगे और उसमें कांग्रेस का प्रतिनिधित्व किस प्रकार का होगा, इसका निर्णय उसी समय होगा जब पहले ऊपर बतलाई हुई आरम्भिक बातों का सन्तोष-जनक निपटारा हो जायगा।

भवदीय—

मो० क० गांधी — जयरामदास दौलतराम
मोतीलाल नेहरू — सैयद महमूद
वल्लभभाई पटेल — जवाहरलाल नेहरू

कांग्रेस के नेताओं के नाम मध्यस्थों का पत्र

हम लोगों ने १६ अगस्त को विन्टर-रोड (मलाबार-हिल, बम्बई) से इस आशय का पत्र कांग्रेस-नेताओं को भेजा—

प्रिय मित्रगण,

जिन अनेक अवसरों पर हमने पूना या प्रयाग में आपसे मिलकर बातें की हैं, उन अवसरों पर आप लोगों ने हमारी बातों को जिस सुजनता और धैर्य के साथ सुना है, उसके लिए हम आप सबको धन्यवाद देना चाहते हैं। हमें इस बात का दुःख है कि हमने बहुत अधिक समय तक बातें करके आपको कष्ट दिया है; और विशेषतः इस बात का हमें और भी अधिक दुःख है कि पं० मोतीलाल नेहरू को ऐसे समय में पूना तक आने का कष्ट उठाना पड़ा है जबकि उनका स्वास्थ्य इतना खराब है। हम नियमित-रूप से उस पत्र की प्राप्ति स्वीकार करते हैं जो आप लोगों ने हमें दिया था और जिसमें आप लोगों ने वे शर्तें लिखी हैं, जिनके अनुसार आप कांग्रेस से इस बात की सिफारिश करने के लिए तैयार हैं कि वह सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दे और गोलमेज-परिषद् में सम्मिलित हो।

जैसा कि आप लोगों को हम सूचित कर चुके हैं, हमने यह मध्यस्थता का काम इन आधारों पर अपने ऊपर लिया था—(१) २० जून १९३० को बम्बई में कांग्रेस के तत्कालीन कार्यवाहक-सभापति पं० मोतीलाल नेहरू ने मि० स्लोकोम्ब के साथ बातचीत करके उन्हें जो शर्तें बतलाई थीं, एक तो उनके आधार पर; और विशेषतः (२) २५ जून १९३० को बम्बई में पं० मोतीलाल नेहरू ने मि० स्लोकोम्ब को अपने वक्तव्य में लिखकर जो शर्तें दी थीं और जिनके सम्बन्ध में उन्होंने (पं० मोतीलाल ने) यह मंजूर किया था कि इनके आधार पर हम लोग निजी और गैर-सरकारी तौर पर वाइसराय से मिल कर समझौते की बातचीत कर सकते हैं। मि०स्लोकोम्ब ने वे दोनों लेख हम लोगों के पास भेज दिये थे और तब हम लोगों ने वाइसराय से मिलकर यह प्रार्थना की थी कि हम लोगों को यह इजाजत दी जाय कि हम गांधीजी और पंडित मोतीलाल तथा पंडित जवाहरलाल से बात-

चीत करें और यह समझ लें कि किस प्रकार समझौता होना सम्भव है। ऊपर जिस दूसरे पत्र का हमने उल्लेख किया है, उसकी एक प्रतिलिपि आपने हमसे ले ली है। अब हम यह देखते हैं कि १४ ता० को आप लोगों ने जो पत्र हमें दिया है, उसमें ऐसी शर्तें दी हैं जो हम लोगों की पारस्परिक स्वीकृति और निश्चय के अनुसार वाइसराय के पास विचारार्थ भेजी जानी चाहिए; और तब हम लोगों को उनके निर्णय की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। आपने यह इच्छा प्रकट की थी कि समझौते की बातचीत के सम्बन्ध के जितने मुख्य-पत्र और लेख आदि हैं, और जिनमें आप लोगों का वह पत्र भी सम्मिलित है जो आपने हमें दिया है, वे सब प्रकाशित कर दिये जायं। आपकी यह इच्छा हमारे ध्यान में है और ज्योंही वाइसराय महोदय आपके पत्र पर विचार कर चुकेंगे त्योंही हम सारा पत्र-व्यवहार प्रकाशित कर देंगे।

यह पत्र समाप्त करने से पहले हम यह कहने की आज्ञा मांगते हैं कि, जैसा कि हमने आप से कहा था, हमारे पास यह विश्वास करने का कारण था कि ज्योंही सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा त्योंही परिस्थिति बहुत-कुछ सुधर जायगी। अहिंसात्मक राजनैतिक कैदी छोड़ दिये जायंगे, उन आर्डिनेन्सों को छोड़ कर जिनका सम्बन्ध चटगांव और लाहौर-षड्यन्त्र के मुकदमों से है, बाकी सब आर्डिनेन्स रद कर दिये जायंगे; और गोलमेज-परिषद् में किसी एक राजनैतिक दल के जितने प्रतिनिधि होंगे, उनकी अपेक्षा कांग्रेस के प्रतिनिधियों की संख्या अधिक होगी। यहां कदाचित् हमें फिर से यह कहने की आवश्यकता न होगी कि हम लोगों ने इस बात पर भी जोर दिया था कि हमारी सम्मति में पण्डित मोतीलाल नेहरू ने अपनी मि० स्कोलोम्ब वाली भेंट में जो दृष्टिकोण प्रकट किया था और पण्डित मोतीलाल जी की स्वीकृति से मि० स्कोलोम्ब ने जो वक्तव्य हम लोगों के पास भेजा था, उसमें और उस पत्र में तत्त्वतः कोई अन्तर नहीं है जो वाइसराय महोदय ने हम लोगों के नाम भेजा है।

भवदीय—
मुकुन्दराव जयकर
तेजबहादुर सप्रू

वाइसराय का पत्र

इसके उपरान्त कांग्रेस के नेताओं का पत्र लेकर २१ अगस्त को श्री जयकर अकेले शिमला गये और वहां उन्होंने वाइसराय से बातें कीं। २५ ता० को सर तेजबहादुर सप्रू भी जाकर उनके साथ सम्मिलित हो गये। उस समय २५ और २७ अगस्त के बीच में हम लोगों ने कई बार वाइसराय और उनकी कौंसिल के कुछ सदस्यों के साथ मिल कर बातें कीं। उसके परिणाम-स्वरूप वाइसराय ने हम लोगों को यह पत्र लिख कर कांग्रेस के नेताओं को प्रयाग और पूना में दिखलाने के लिए दिया—

वाइसराय-भवन, शिमला।
२८ अगस्त, १९३०

प्रिय सर तेजबहादुर,

कांग्रेस के जो नेता इस समय जेल में हैं, उनके साथ श्री जयकर और आपने मिलकर जो बातें कीं, उनके परिणाम की जो सूचना आपने मुझे दी है, उसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं। साथ ही उन लोगों ने मिलकर १५ तारीख को आप लोगों को जो पत्र भेजा था और आप लोगों ने उनको जो उत्तर भेजा था, उनकी जो प्रतिलिपियां आपने मुझे भेजी हैं, उनके लिए भी मैं आपको

धन्यवाद देता हूं। मैं आपको और श्री जयकर को बतला देना चाहता हूं कि आप लोगों ने सार्वजनिक हित और भारत में फिर से शान्ति स्थापित करने की दृष्टि से अपने ऊपर जो यह काम लिया है, उसकी मैं बहुत प्रशंसा करता हूं। यहां मैं आपको उन परिस्थितियों का भी स्मरण करा देना चाहता हूं, जिनके कारण आपने अपने ऊपर यह काम लिया था।

अपने १६ जुलाई वाले पत्र में मैंने आपको यह विश्वास दिलाया था कि मेरी तथा मेरी सरकार की यह हार्दिक इच्छा है, और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार की भी यही इच्छा है, कि जहां तक हो सके हम लोग इस बात का प्रयत्न करें कि भारतवासी जितनी अधिक मात्रा में अपने देश का प्रबन्ध अपने हाथ में ले सकें उतनी अधिक मात्रा में ले लें। हां, वे विषय अभी उनके हाथ में नहीं दिये जायंगे जिनके सम्बन्ध में वे अभी अपने ऊपर उत्तरदायित्व नहीं ले सकते। जितनी सामग्री प्राप्त होगी, उसको देखते हुए परिषद् इस बात का विचार करेगी कि वे सब विषय कौन-कौन से हैं और उनके लिए सबसे अच्छी व्यवस्था कौनसी की जा सकती है।

असेम्बली में ९ जुलाईवाले अपने भाषण में मैंने दो बातें भी स्पष्ट कर दी थीं। एक तो यह कि जो लोग परिषद् में जायंगे, वे बिलकुल स्वतन्त्र रूप से विधान-सम्बन्धी सब विषयों पर; उनका ऊंच नीच देखते हुए, विचार कर सकेंगे; और दूसरी यह कि परिषद् जो-कुछ निर्णय कर सकेगी उसीके आधार पर श्रीमान् सम्राट् की सरकार अपने प्रस्ताव तैयार करके पार्लमेंट के सामने उपस्थित करेगी।

मैं समझता हूं और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि आप भी यह मानते होंगे कि आप लोगों ने स्वेच्छा से अपने ऊपर जो काम लिया है, उसमें उस पत्र से कोई सहायता नहीं मिली है जो आप लोगों को कांग्रेस के नेताओं से मिला है। वह पत्र जिस ढंग से लिखा गया है और उसमें जो-जो बातें हैं, उन दोनों को देखते हुए, और साथ ही साथ उसमें इस बात से जो साफ इन्कार किया गया है कि कांग्रेस की नीति से आर्थिक क्षेत्र में भी तथा और-और क्षेत्रों में भी देश को भारी हानि पहुंची है, उसका ध्यान रखते हुए, मैं नहीं समझता कि उसमें जो सूचनायें उपस्थित की गई हैं उनपर ब्यौरेवार विचार करने से कोई लाभ हो सकता है; और मैं स्पष्ट-रूप से कह देना चाहता हूं कि उन प्रस्तावों के आधार पर कोई बातचीत करना असम्भव है। मैं आशा करता हूं कि यदि आप कांग्रेस के नेताओं से फिर मिलेंगे, तो यह बात स्पष्ट-रूप से उन्हें बतला देंगे।

१६ अगस्त को आपने उन लोगों को जो उत्तर भेजा था, उसके अंतिम अंश के सम्बन्ध में भी मैं एक बात कह देना चाहता हूं। जब मैंने और आप लोगों ने इस विषय पर विचार किया था, तब मैंने कहा था कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा, तब वर्तमान परिस्थिति के कारण जो आर्डिनेन्स बनाये गये हैं (उन आर्डिनेन्सों को छोड़कर जो लाहौर और चटगांव के षड्यंत्र वाले मुकदमों के लिए बनाये गये हैं), उनकी कोई आवश्यकता न रह जायगी और मैं उन्हें रद कर दूंगा। पर मैंने यह बात भी स्पष्ट कर दी थी कि मैं इस बात का कोई वचन नहीं दे सकता कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जायगा तब प्रान्तीय सरकारों के लिए यह संभव होगा कि वे उन सब लोगों को छोड़ दें जो इस आन्दोलन के सम्बन्ध में हिंसा को छोड़कर और अपराधों में जेल भेजे गये हैं या जिनपर मुकदमे चल रहे हैं। पर हां, मैं इस बात का प्रयत्न करूंगा कि इस सम्बन्ध में उदार-नीति का अमल किया जाय; और अधिक-से-अधिक मैं यही वचन दे सकता हूं कि मैं प्रान्तीय-सरकारों से कहूंगा कि वे प्रत्येक अभियुक्त के सम्बन्ध में उसके अपराध और परिस्थिति आदि का विचार करते हुए सहानुभूतिपूर्वक विचार करें।

एक बात यह भी विचारणीय थी कि जब सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द हो जायगा और कांग्रेस के नेता परिषद् में सम्मिलित होना चाहेंगे, तब उनके कितने प्रतिनिधि उसमें लिये जायंगे। मुझे स्मरण है कि आपने इस सम्बन्ध में कहा था कि कांग्रेस यह नहीं चाहती कि हमारी ही पूर्णप्रधानता या बहुमत रहे; और मैंने यह विचार प्रकट किया था कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार से यह सिफारिश करने में कोई कठिनाई न होगी कि परिषद् में कांग्रेस के यथेष्ट प्रतिनिधि रहें। मैं यह भी बतला देना चाहता हूं कि यदि कांग्रेस उसमें सम्मिलित होना चाहे, तो वह अपने नेताओं की एक ऐसी सूची मेरे पास भेज सकती है जिन्हें वह अपना उपयुक्त प्रतिनिधि समझती हो; और उस सूची में से मैं उसके प्रतिनिधि चुन लूंगा।

यह उचित जान पड़ता है कि यह सारा पत्र-व्यवहार शीघ्र ही सर्व-साधारण में प्रकाशित कर दिया जाय, जिसमें सब लोगों को यह मालूम हो जाय कि किन परिस्थितियों में आप लोगों को अपने प्रयत्न में विफलता हुई है; और जिन परिणामों की आप लोग आशा करते थे,वे क्यों नहीं प्राप्त हुए। इसलिए मैं आप को तथा श्री जयकर को स्पष्ट बतला देना चाहता हूं कि इस सम्बन्ध में मेरी तथा मेरी सरकार की क्या स्थिति है (अर्थात् हम लोग अधिक-से-अधिक क्या कर सकते हैं)।

भवदीय—
अर्विन

वाइसराय की बातचीत

मध्यस्थों ने उसे किस रूप में उपस्थित किया

कांग्रेस के नेताओं के पत्र में जिन विशेष विचारणीय विषयों का उल्लेख था,उनके सम्बन्ध में वाइसराय के साथ हम लोगों की जो बातें हुई थीं, उनके बारे में वाइसराय ने हमें यह इजाजत दे दी थी कि हम वे बातें भी कांग्रेस के नेताओं को बतला दें। हम शिमला से २८ अगस्त को चले और ३० तथा ३१ अगस्त को प्रयाग के नैनी-जेल में पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू और डॉ० महमूद से मिले। हमने उन्हें वाइसराय का उक्त पत्र दिखलाया और हम लोगों में जो बातचीत हुई थी उसका परिणाम भी उनके सामने उपस्थित किया। उन लोगों के १५ अगस्त वाले पत्र में जिन कई विचारणीय बातों का उल्लेख था और जिनका उल्लेख वाइसराय के २८ अगस्त वाले पत्र में नहीं था, उनके सम्बन्ध में हम लोगों ने उनसे यह कहा कि वाइसराय के साथ हमारी जो बातें हुई हैं उन्हें देखते हुए हमारा यह विश्वास है कि इन शर्तों पर समझौता हो सकता है—

(क) शासन-विधान के सम्बन्ध में वही स्थिति रहेगी जिसका उल्लेख उस पत्र में है जो वाइसराय ने २८ अगस्त को हम लोगों को भेजा था। इस सम्बन्ध की बातों का उल्लेख उसके दूसरे पैराग्राफ में है, जहां इस विषय की चार मुख्य बातें कही गई हैं।

(ख) एक प्रश्न यह भी है कि गोलमेज-परिषद् में गांधीजी यह प्रश्न उठा सकेंगे या नहीं कि भारत जब चाहे तब साम्राज्य से अलग हो जाय। इस सम्बन्ध में वाइसराय का यह कहना है कि परिषद् सब बातों में बिलकुल स्वतन्त्र होगी, और यही बात उन्होंने उस पत्र में लिखी थी जो हम लोगों को भेजा था। इसलिए वहां प्रत्येक व्यक्ति जो विषय चाहे विचारार्थ उपस्थित कर सकता है। परन्तु वाइसराय का यह विचार है कि इस अवसर पर गांधीजी का यह प्रश्न उठाना बहुत ही नासमझी का काम होगा। परन्तु यदि गांधीजी यह विषय भारत-सरकार के सामने उपस्थित करेंगे, तो वाइसराय का यह कहना है कि सरकार इस प्रश्न को विचारणीय मानने के लिए तैयार नहीं है। यदि इतने पर

भी गांधीजी यह प्रश्न उठाना चाहेंगे, तो सरकार भारत-मन्त्री को यह सूचित कर देगी कि गोलमेज-परिषद् में गांधीजी का यह प्रश्न उठाने का विचार है।

(ग) एक प्रश्न यह है कि गोलमेज-परिषद् में यह विषय विचारार्थ उपस्थित किया जा सकता है या नहीं कि भारत पर जो कई आर्थिक भार हैं, उनकी जांच एक स्वतन्त्र पंचायत से कराई जाय। इस सम्बन्ध में वाइसराय का यह कहना है कि वे किसी ऐसे प्रस्ताव पर विचार करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं जिससे कि भारत पर जितने ऋण हैं वे सब रद समझे जायं और इनके चुकाने से इन्कार किया जाय। पर हां, जो चाहे वह परिषद् में यह कह सकता है कि भारत का अमुक आर्थिक ऋण या देना ठीक नहीं है और इसकी जांच की जाय।

(घ) नमक-कानून की दंड-सम्बन्धी धाराओं को काम में न लाने के सम्बन्ध में वाइसराय का कहना है कि (१) यदि नमक-कानून के सम्बन्ध में साइमन-कमीशन की सिफारिश मान ली गई, तो यह विषय प्रान्तीय सरकारों के हाथ में चला जायगा, और (२) सरकार की आय में बहुत बड़ी कमी हो चुकी है. इसलिए सरकार यह नहीं चाहेगी कि उसकी आय का यह मार्ग बन्द हो जाय। परन्तु यदि कौंसिलों से नमक-कानून रद करा लिया जायगा और सरकारी आय का घाटा पूरा करने के लिए कोई और नया मार्ग बतलाया जायगा, तो वाइसराय और उनकी सरकार इस प्रश्न के ऊंच-नीच पर विचार करेगी। परन्तु जबतक नमक-कानून एक कानून के रूप में बना रहेगा, तबतक यदि लोग उसे खुले आम तोड़ेंगे तो सरकार उसे सहन नहीं कर सकेगी। जब सद्भाव और शान्ति स्थापित हो जायगी, तब यदि भारतीय नेता वाइसराय और उनकी सरकार से बातचीत करेंगे कि इस सम्बन्ध में गरीबों का आर्थिक कष्ट किस प्रकार दूर किया जा सकता है, तो वाइसराय प्रसन्नता से इसके लिए भारतीय नेताओं की एक छोटी परिषद् कर सकेंगे।

(ङ) पिकेटिंग के सम्बन्ध में उनका यह कहना है कि यदि पिकेटिंग से किसी वर्ग को कष्ट होगा या उसमें लोगों को तंग किया जायगा, धमकाया जायगा या बल-प्रयोग किया जायगा, तो सरकार को इस बात का अधिकार प्राप्त रहेगा कि वह आवश्यकता पड़ने पर इसके विरुद्ध कानूनी कार्रवाई कर सकेगी। इसके सिवा जब शान्ति स्थापित होजायगी, तब पिकेटिंग-सम्बन्धी आर्डिनेन्स उठा लिया जायगा।

(च) जिन कर्मचारियों ने सत्याग्रह-आन्दोलन के समय इस्तीफा दिया है या जो अपने पद से हटा दिये गये हैं, उन्हें फिर से नियुक्त करने के सम्बन्ध में उनका यह कहना है कि यह विषय मुख्यतः प्रान्तीय सरकारों की इच्छा से सम्बन्ध रखता है। तो भी यदि उनके स्थान खाली होंगे और उनकी जगह ऐसे नये आदमी न नियुक्त कर लिये गये होंगे जो राजनिष्ठ प्रमाणित हो चुके हों, तो प्रान्तीय सरकारों से यह आशा की जा सकती है कि वे उन लोगों को फिर से उनके स्थान पर नियुक्त कर देंगी जिन्होंने आवेश में आकर अपना पद त्याग दिया होगा अथवा लोगों ने विवश करके जिनसे इस्तीफे दिलवाये होंगे।

(छ) प्रेस-आर्डिनेन्स के अनुसार जो छापेखाने जब्त कर लिये गये होंगे, उन्हें लौटा देनेमें कोई कठिनाई न होगी।

(ज) लगान-कानून के सम्बन्ध में जो जुर्माने हुए हैं या जो सम्पत्तियां जब्त हुई हैं, उन्हें लौटाने के सम्बन्ध में अधिक सूक्ष्म विचार करने की आवश्यकता है। ऐसे कानून के अनुसार जो सम्पत्तियां जब्त हुई हैं, और बेची गई हैं, वे तीसरे आदमी के हाथ में चली गई हैं। जुर्माने लौटाने के सम्बन्ध में भी कठिनाइयां होंगी। इस सम्बन्ध में वाइसराय केवल यही कह सकते हैं कि प्रांतीय-

सरकारें इसपर न्यायपूर्वक विचार करेंगी और सब परिस्थितियों का ध्यान रक्खेंगी; और जहांतक हो सकेगा, जुर्माने लौटाने का प्रयत्न करेंगी।

(झ) कैदियों को छोड़ने के सम्बन्ध में वाइसराय अपने विचार उस पत्र में प्रकट कर ही चुके हैं जो उन्होंने २८ जुलाई को हमें भेजा था।

गांधीजी के नाम नेहरुओं का आखिरी सूचना-पत्र

पं० मोतीलाल नेहरू, पं० जवाहरलाल नेहरू और डा० महमूद को पहली दोनों मुलाकातों में हमने यह स्पष्ट बतला दिया था कि यद्यपि समय बहुत कम है, तो भी ऊपर बतलाये हुये ढंग से आगे समझौते की और बात चीत हो सकती है; परन्तु वे लोग इस आधार पर समझौता करने के लिए तैयार नहीं हुए और उन्होंने गांधीजी को देने के लिए एक सूचनापत्र लिखकर दिया, जो इस प्रकार है—

नैनी सेण्ट्रल जेल

३१-८-३०

"कल और आज फिर श्रीयुत जयकर तथा डॉ० सप्रू के साथ हम लोगों की भेंट हुई और बहुत देर तक बातें होती रहीं। उन्होंने उस पत्र की एक नकल हमें दी है जो लार्ड अर्विन ने उन्हें २३ अगस्त को दिया था। उस पत्र में स्पष्ट रूप से यह कहा गया है कि लॉर्ड अर्विन उन शर्तों पर समझौते की बात करना असम्भव समझते हैं जो शर्तें हम सब लोगों ने अपने १५ अगस्तवाले उस पत्र में लिखी थीं जो सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीयुत जयकर के नाम लिखा था; और ऐसी स्थिति में लॉर्ड अर्विन का यह कहना ठीक है कि सर सप्रू और श्रीयुत जयकर के प्रयत्न विफल हुए हैं। जैसा कि आप जानते हैं; हम सब लोगों ने यह पत्र सब बातों का बहुत अच्छी तरह विचार करके लिखा था, और हम अपनी व्यक्तिगत स्थिति को देखते हुए जहां तक दब सकते थे, वहां तक दबे थे। उस पत्र में हमने यह बतला दिया था कि जबतक कई परम आवश्यक शर्तें पूरी नहीं की जायंगी और उनके सम्बन्ध में ब्रिटिश-सरकार सन्तोषजनक घोषणा न कर देगी, तबतक कोई निराकरण मान्य नहीं होगा। यदि ऐसी घोषणा कर दी जाती तो हम कार्य-समिति से इस बात की सिफारिश कर सकते थे कि उस दशा में सत्याग्रह-आन्दोलन बन्द कर दिया जाय, जबकि सरकार उसके साथ ही वे कई काम करे जिनका उल्लेख हम लोगों ने अपने पत्र में किया था। इन प्रारम्भिक बातों का सन्तोषजनक निर्णय हो जाने पर ही यह निश्चय किया जा सकता था कि लन्दनवाली प्रस्तावित परिषद्में कौन-कौन से लोग सम्मिलित होंगे और उसमें कांग्रेस के कितने और कैसे प्रतिनिधि होंगे। अपने पत्रमें लॉर्ड अर्विन यहां तक कहते हैं कि इन प्रस्तावों के आधार पर समझौते की बातचीत करना ही असम्भव है। ऐसी परिस्थितियों में हम लोगों में न तो समझौता होने की कोई गुंजाइश है और न हो सकती है।

वाइसराय ने अपने पत्र में जो बातें लिखी हैं और जिस ढंग से लिखी हैं, उसे छोड़कर यदि देखा जाय तो भी इधर हाल में भारत में ब्रिटिश-सरकार ने जो कुछ कार्य किये हैं, उनसे यह सूचित होता है कि सरकार शान्ति स्थापित करना नहीं चाहती। ज्योंही इस बात की सूचना प्रकाशित की गई कि दिल्ली में कांग्रेस की कार्य-समिति की बैठक होगी, त्योंही तुरन्त सरकार ने उसे गैर-कानूनी घोषित कर दिया और उसके उपरान्त उसके अधिकांश सदस्यों को गिरफ्तार कर लिया। इस घटना का केवल यही अर्थ हो सकता है कि वह शान्ति नहीं चाहती। इन या और दूसरी गिरफ्तारियों के लिए, अथवा सरकार की इसी प्रकार को और दूसरी कार्रवाइयों के लिए—जिन्हें हम लोग असभ्यता और बर्बरता-पूर्ण समझते हैं—हम लोग सरकार को कोई शिकायत नहीं करते। हम उन सबका स्वागत

करते हैं। परन्तु हम लोग यह बतला देना उचित और न्यायपूर्ण समझते हैं कि एक ओर तो शान्ति स्थापित करने की इच्छा रखना और दूसरी ओर स्वयं उस संस्था पर आक्रमण करना जो शान्ति प्रदान कर सकती है और जिसके साथ सरकार बातचीत करना चाहती है, इन दोनों बातों का ठीक मेल नहीं बैठता। प्रायः सारे भारत में कार्य-समिति गैर-कानूनी ठहरा दी गई है और उसके अधिवेशनों को रोकने का प्रयत्न किया जा रहा है। उसका आवश्यक रूप से यही अर्थ होता है कि चाहे कुछ भी क्यों न हो, यह राष्ट्रीय युद्ध बराबर जारी रहना चाहिये और तब शान्ति की कोई सम्भावना न रह जायगी; क्योंकि जो लोग भारतवासियों का प्रतिनिधित्व कर सकते हैं, वे सारे भारत में अंग्रेजी जेलखानों में भर और फैल जायंगे।

लॉर्ड अर्विन ने जो पत्र भेजा है और ब्रिटिश-सरकार ने जो-कुछ काम किया है, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि डा० सप्रू और श्रीयुत जयकर का यह प्रयत्न व्यर्थ है। प्रस्ताव में जो पत्र हमें दिया गया है और जो कैफियतें हमें दी गई हैं, उनसे तो कुछ बातों में हम लोग उस स्थिति से और भी पीछे हट जाते हैं जो पहले ग्रहण की गई थी। हमारी स्थिति या बातों और लॉर्ड अर्विन की स्थिति या बातों में बहुत बड़ा अन्तर है, उसे देखते हुए कदाचित् ब्योरे की बातों पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं रह जाती; तो भी हम लोग आपको इस पत्र की कुछ विशेष बातें बतला देना चाहते हैं। पत्र के आरम्भ में प्रायः वही बातें कही गई हैं जो असेम्बली वाले भाषण में कही गई थीं, अथवा जो १६ जुलाई वाले उस पत्र में कही गई थीं जो वाइसराय ने श्रीयुत जयकर और डा० सप्रू के नाम भेजा था। जैसा कि हम सब लोगों ने अपने सम्मिलित पत्र में बतलाया था, यह वाक्यावलि इतनी अधिक अनिश्चित है कि हम लोग उसका ठीक-ठीक मूल्य निश्चित ही नहीं कर सकते। उसका सब कुछ मतलब निकाला जा सकता है और कुछ भी मतलब नहीं निकाला जा सकता। अपने सम्मिलित पत्र में हम लोगों ने स्पष्ट कहा था कि इस समय यह बात मानी जानी चाहिए कि भारत तुरन्त ही कम-से-कम यह अवश्य चाहता है कि यहां एक ऐसी पूर्ण स्वतन्त्र-प्रणाली स्थापित हो जो यहां के निवासियों के सामने उत्तरदायी हो और उस सरकार को देश की सेना और आर्थिक विषयों पर पूर्ण अधिकार प्राप्त हो। उस दशा में इसके लिए किसी तरह की देर करने का अथवा कुछ विशेष अधिकारों को सरकार द्वारा अपने हाथ में रखने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता। हां, अंग्रेज-सरकार के हाथ से भारतवासियों के हाथ में अधिकार आने के लिए कुछ विशेष व्यवस्थाओं की आवश्यकता होगी; और उनके सम्बन्ध में हम लोगों ने बतला दिया था कि उनका निर्णय भारत के चुने हुए प्रतिनिधियों-द्वारा होगा।

इसके सिवा एक बात यह भी थी कि भारत को यह अधिकार होगा कि वह जब चाहे तब ब्रिटिश-साम्राज्य से अलग हो जायगा; और दूसरी यह बात थी कि उसे यह अधिकार प्राप्त होगा कि आर्थिक विषयों में अंग्रेज अपना जो हक या पावना बतलाते हैं और उन्हें जो-कुछ विशिष्ट अधिकार प्राप्त हैं, उनकी जांच एक स्वतंत्र पंचायत के द्वारा होगी। इन दोनों बातों के सम्बन्ध में हमसे केवल यही कहा जाता है कि परिषद् बिलकुल स्वतन्त्र होगी और वहां सब लोग अपनी इच्छा के अनुसार प्रश्न उठा सकते हैं। यह तो बिलकुल वही बात है, जो पहले के वक्तव्य में कही जा चुकी थी। इसमें वाइसराय ने कोई नई बात नहीं कही है। इसके सिवा हम लोगों से यह भी कहा गया है कि यदि इस बात की सम्भावना होगी कि पहला प्रश्न (भारत का ब्रिटिश-साम्राज्य से अलग होने के सम्बन्ध में) उठाया जायगा, तो लार्ड अर्विन यह कहेंगे कि वे इस प्रश्न को खुले प्रश्न के रूप में मानने और उसपर विचार करने के लिए तैयार नहीं हैं। इस सम्बन्ध में वे जो कुछ कर सकते हैं,

वह यह है कि वे भारत-मंत्री को यह सूचित कर देंगे कि हम लोगों का परिषद् में यह प्रश्न उपस्थित करने का विचार है। ऊपर बतलाये हुए दूसरे प्रस्ताव के सम्बन्ध में हम लोगों से यह कहा गया कि लार्ड अर्विन केवल यही मान सकते हैं कि कुछ विशिष्ट आर्थिक लेन-देनों की ही जांच कराई जा सकती है; यदि हरेक लेन-देन के सम्बन्ध में अलग-अलग जांच की जाय, तो उनके क्षेत्र का विस्तार, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, अंग्रेजों के सभी हकों और प्रासंग्य रकमोंके सम्बन्ध में होगा, जिसमें वह ऋण भी होगा जो भारतका "सार्वजनिक ऋण" कहा जाता है। इन दोनों प्रश्नों को हम बहुत ही महत्वपूर्ण समझते हैं और हमारी समझ में इन बातोंके सम्बन्ध में पहले ही समझौता हो जाना बहुत आवश्यक है।

लार्ड अर्विन ने राजनैतिक कैदियों को छोड़ने के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह बहुत ही परिमित और सन्तोषजनक है। वे तो यह भी वचन नहीं दे सकते कि अहिंसात्मक सत्याग्रह-आंदोलन के सम्बन्ध के जितने कैदी हैं, वे सभी छोड़ दिये जायंगे। वे जो कुछ करना चाहते हैं, वह यही है कि वे ये सब बातें प्रान्तीय सरकारों के हाथों में छोड़ देंगे। इस विषय में हम प्रान्तीय सरकारों या स्थानिक कर्मचारियों की उदारता और सहानुभूति पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं हैं। लार्ड अर्विन के पत्र में अहिंसात्मक कैदियों के सम्बन्ध में इसके सिवा और कोई उल्लेख ही नहीं है। देशके बहुत से काम करनेवाले तथा और दूसरे ऐसे आदमी हैं जो सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ होने से पहले ही राजनैतिक अपराधों के लिए जेल भेजे गये थे। हम लोग इस सम्बन्ध में मेरठ के मुकदमेवाले कैदियों का भी जिक्र कर देना चाहते हैं, जो डेढ़ वर्ष से अभीतक हवालात में पड़े सड़ रहे हैं और जिनके मुकदमे का अभी तक फ़ैसला ही नहीं हुआ है। पहले हम सब लोगों ने मिलकर जो पत्र लिखा था उसमें यह बात स्पष्ट कर दी थी कि ये सब लोग भी छोड़ दिये जाने चाहिएं।

बंगाल और लाहौर के मुकदमों के सम्बन्ध में जो आर्डिनेन्स हैं, उन्हें लार्ड अर्विन अलग और अपवाद-स्वरूप रखना चाहते हैं। परन्तु हम लोग इसकी कोई आवश्यकता नहीं समझते। जो हिंसा के अपराध में जेल भेजे गये हैं, उन्हें जो हम लोग नहीं छुड़ाना चाहते, उसका कारण यह नहीं है कि हम उनका जेल से छूटना पसन्द नहीं करते; बल्कि इसका कारण यह है कि हमारा आंदोलन पूर्णरूप से अहिंसात्मक है और हम उनका प्रश्न उठाकर गड़बड़ी नहीं पैदा करना चाहते। परन्तु उनके सम्बन्ध में हम लोग कम-से-कम यही कर सकते हैं कि इस बात के लिए जोर लगावें कि हमारे इन देश-भाइयों के मुकदमों की सुनवाई साधारण रूप से हो, किसी आर्डिनेन्स के द्वारा बनाये हुए ऐसे असाधारण न्यायालय में न हों जिनमें अपराधी को अपील करने का भी अधिकार न रह जाय और साधारण कैदियों को जो सुभीते होते हैं, वे सुभीते भी उन्हें न हों। जिन्हें सरकार मुकदमे की सुनाई कहती है, उनमें भी अनेक परम आश्चर्यजनक घटनायें हुई हैं। यहांतक कि खुली अदालत में अभियुक्तों पर पाशविक आक्रमण हुए हैं। इन सब बातों को देखते हुए यह और भी आवश्यक हो जाता है कि ऐसे मुकदमे साधारण रूप से सुने जायं। जहांतक हम जानते हैं, इस प्रकार के व्यवहार के विरोध में कुछ अभियुक्तों ने दीर्घ काल तक अनशन किया है और इस समय वे मृत्यु के मुख में पड़े हुए हैं। हम समझते हैं कि बंगाल-आर्डिनेन्स के स्थान पर अब बंगाल कौंसिल का एक कानून बन गया है। इस आर्डिनेन्स को तथा इसके आधार पर बननेवाले किसी कानून को हम लोग बहुत आपत्तिजनक समझते हैं; और इस बात से उसमें कोई उत्तमता नहीं आ जाती कि बंगाल की वर्तमान कौंसिल सरीखी एक अ-प्रातिनिधिक संस्था ने उसे बनाया है।

विलायती कपड़े और शराब आदि की दुकानों की पिकेटिंग के सम्बन्ध में हम लोगों से यह कहा गया है कि पिकेटिंग-सम्बन्धी आर्डिनेन्स को तो लार्ड अर्विन वापस लेने के लिए तैयार हैं, पर

वे यह कहते हैं कि यदि वे आवश्यक समझेंगे तो पिकेटिंग को रोकने के लिए और कुछ कानूनी कार्रवाई करने का अधिकार अपने हाथ में ले लेंगे। इस प्रकार मानों वह हमें यह सूचित करते हैं कि वे जब आवश्यक समझेंगे, तब फिर आर्डिनेन्स जारी कर सकेंगे अथवा इसी प्रकार की और कोई कार्रवाई कर सकेंगे।

नमक-कानून तथा कुछ और ऐसे विषयों के सम्बन्ध में, जिनका उल्लेख हम लोगों ने अपने सम्मिलित पत्र में किया था, जो उत्तर मिला है, वह भी बिलकुल असन्तोषजनक है। सब लोग जानते हैं कि नमक के सम्बन्ध में आप बहुत बड़े विशेषज्ञ हैं; इसलिए इस सम्बन्ध में हम लोग कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं समझते। यहां हम केवल यही कहना चाहते हैं कि इन सब बातों के बारे में हम लोगों का पहले जो कुछ कथन था, उसमें कुछ परिवर्तन करने की हम लोग कोई आवश्यकता नहीं समझते।

इस प्रकार हम लोगों ने जितने प्रमुख प्रस्ताव किये थे, उनसे लॉर्ड अर्विन सहमत नहीं हो रहे हैं; और न उन छोटे प्रस्तावों को ही वे मानते हैं, जिनका हम लोगों ने अपने सम्मिलित पत्र में उल्लेख किया था। उनके और हम लोगों के दृष्टिकोण में बहुत बड़ा अन्तर है और वास्तव में तत्त्व या सिद्धान्त का अन्तर है। हम लोग आशा करते हैं कि आप यह सूचना-पत्र श्रीमती सरोजिनी नायडू, सरदार वल्लभभाई पटेल और श्रीयुत जयरामदास दौलतराम को दिखला देंगे और उन लोगों से परामर्श करके श्रीयुत जयकर और सर तेजबहादुर सप्रू को अपना उत्तर दे देंगे।

हम लोग यह भी समझते हैं कि इस पत्र-व्यवहार का प्रकाशन अब अधिक समय तक नहीं रोकना चाहिए और अब जनता को अन्धकार में रखना ठीक नहीं है। इसके प्रकाशन के प्रश्न के सिवा हम लोग सर तेजबहादुर सप्रू और श्रीयुत जयकर से यह भी अनुरोध करते हैं कि इस सम्बन्ध में जितना पत्र-व्यवहार हुआ है और दूसरे जो कागज-पत्रादि हैं, वे सब कांग्रेस के स्थानापन्न-सभापति चौधरी खलीकुज्जमां साहब के पास भेज दें। हम लोग यह समझते हैं कि इस समय जो कार्य-समिति काम कर रही है, उसे तुरन्त सूचना दिये बिना हम लोगों को कोई काम नहीं करना चाहिए।

मोतीलाल
सैयद महमूद
जवाहरलाल

नेताओं का सम्मिलित उत्तर

इसके अनुसार ३, ४ और ५ सितम्बर को हम लोगों ने पूना के यरवडा-जेल में महात्मा गांधी तथा कांग्रेस के दूसरे नेताओं के साथ भेंट की, उन्हें उक्त पत्र दिया और सहमत प्रश्नों पर उनके साथ मिलकर विचार और वाद-विवाद किया। इस बातचीत के अन्त में उन लोगों ने हमें जो वक्तव्य दिया, वह यहां दिया जाता है—

यरवडा सेण्ट्रल जेल,
५-९-३०

प्रिय मित्रगण,

श्रीमान् वाइसराय ने २८-८-३० को आप लोगों को जो पत्र लिखा था, उसे हम लोगों ने ध्यान-पूर्वक पढ़ा है। उस पत्र की बातों के सम्बन्ध में वाइसराय से आप लोगों की जो बातें हुई हैं, उन्हें भी आपने कृपा कर उस पत्र में परिशिष्ट-रूप में सम्मिलित कर दिया है। हम लोगों ने उतने ही ध्यान से वे सूचनायें भी पढ़ी हैं, जिनपर पण्डित मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद महमूद और

पं० जवाहरलाल नेहरू के हस्ताक्षर हैं और जो लोगों ने आपके द्वारा भेजी हैं। उक्त पत्र तथा बातचीत पर उस सूचना-पत्र में उनकी विचारपूर्ण सम्मति भी सम्मलित है। इन पत्रों पर हम लोगों ने बराबर दो रातों तक विचार किया है और इन कागजों के सम्बन्ध में जितनी विचारणीय बातें हैं उन सबपर आपके साथ पूरा और स्वतन्त्र विचार भी हो चुका है; और जैसा कि हमने आप लोगों से कहा था, हम निश्चित रूप से इसी परिणाम पर पहुंचे हैं कि सरकार और कांग्रेस के बीच हमें मेल की कोई गुंजाइश दिखाई नहीं पड़ती। हमारा इस समय बाहरी संसार के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; इसलिए कांग्रेस की ओर से हम लोग अधिक-से-अधिक जो-कुछ कह सकते हैं, वह यही है।

नैनी सेन्ट्रल जेल से हमारे माननीय मित्रों ने अपने सूचना-पत्र में जो सम्मति भेजी है, उससे हम लोग पूर्ण रूप से सहमत हैं, परन्तु हमारे उन मित्रोंकी इच्छा है कि इधर दो महीनों से आप लोग देश-हित के उद्देश्य से अपने समय का बहुत-कुछ व्यय करके और बहुत-सी कठिनाइयां उठाकर शांति स्थापित करने के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं, उसके सम्बन्ध में हम अपने शब्दों में यह बतला दें कि हम लोगों की स्थिति और वक्तव्य क्या है। इसलिए जहां तक संक्षेप में हो सकता है,हम यह बतलाने का प्रयत्न करेंगे कि शांति स्थापित होने में कौन-सी मुख्य-मुख्य कठिनाइयां हैं।

वाइसराय का १६–७–३० वाला जो पत्र है, उसके सम्बन्ध में हमारा यह मत है कि उसमें उन शर्तों को पूरा करने का विचार किया गया है जो पण्डित मोतीलाल ने गत २० जून को मि० स्लोकोम्ब को बतलाई थीं और २५ जून को अपनी स्वीकृति से उन्होंने मि०स्लोकोम्ब को अपना जो वक्तव्य दिया था, उसमें जो शर्तें कहीं गई थीं। परन्तु वाइसराय के १६ जुलाई वाले पत्र की भाषा में हमें कोई ऐसी बात नहीं दिखलाई पड़ती जिससे यह समझा जाय कि पं० मोतीलालजी के उक्त वार्तालाप या वक्तव्य में बतलाई हुई शर्तें पूरी होती हैं। उक्त वार्तालाप और वक्तव्य में जो मूल्य और काम के अंश हैं, वे इस प्रकार हैं—

वार्त्तालाप में—"यदि यह निश्चय नहीं किया जायगा कि गोलमेज-परिषद् में किन-किन बातों पर विचार किया जायगा और हम लोगों से यह आशा की जायगी कि हमलोग लन्दन में जाकर बहस करके लोगों को इस विषय का सन्तोष करायेंगे कि हमें औपनिवेशिक स्वराज्य चाहिए, तो मैं इसे मंजूर नहीं कर सकता। परन्तु यदि यह बात स्पष्ट कर दी जायगी कि भारत की विशेष आवश्यकताओं और परिस्थितियों तथा अंग्रेजों के साथ पुराने सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए पारस्परिक सम्बन्ध ठीक करने के लिए जिन बातों को बचाने की आवश्यकता होगी, उन्हें छोड़कर बाकी और बातों में परिषद् के अधिवेशन में यह निश्चय किया जायगा कि स्वतन्त्र भारत का विधान किस प्रकार बनाया जाय, तो कम-से-कम मैं कांग्रेस से इस बात की सिफारिश करूंगा कि वह परिषद् में सम्मिलित होने का निमन्त्रण स्वीकृत करले। हम लोग अपने घर के आप मालिक बनना चाहते हैं; परन्तु हम इस बातके लिए तैयार हैं कि जितने समय में अंग्रेजों के हाथ से निकालकर एक उत्तरदायी भारतीय सरकार के हाथ में भारत का शासनाधिकार आयेगा, उतने समय तक के लिए कुछ खास शर्तें हो जायं। इन शर्तों पर अंग्रेजों के साथ विचार करने के लिए समानता के नाते हम उसी प्रकार मिल सकते हैं, जिस प्रकार एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ मिलकर बातचीत करता है।"

वक्तव्य में—"सरकार निजी रूप से इस बात का वचन देनेके लिए तैयार हो जाय कि भारतवर्ष की विशिष्ट आवश्यकताओं और परिस्थितियों का विचार करते हुए और ग्रेट ब्रिटेन के साथ पुराने सम्बन्ध का ध्यान रखते हुए आपस में जैसी व्यवस्था करना निश्चित कर लिया जायगा और

अधिकार हस्तान्तरित होने तक के समय के लिए जो शर्तें तय हो जायंगी, और जिनका निर्णय गोलमेज-परिषद् में हो जायगा, उन बातों को छोड़कर भारत की पूर्ण उत्तरदायी शासन-प्रणाली की मांग का वह समर्थन करेगी।

इस सम्बन्ध में वाइसराय के उत्तर में जो कुछ कहा गया है, वह इस प्रकार है—

"मेरी और मेरी सरकार की यह हार्दिक कामना है, और मुझे इस बात में कोई सन्देह नहीं है कि श्रीमान् सम्राट् की सरकार की भी यही कामना है कि जहां तक हो, हम सब अपने-अपने क्षेत्रों में इस बात का पूरा प्रयत्न करें कि जिन बातों में भारतवासी इस समय अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के योग्य नहीं हैं, उन बातों को छोड़कर बाकी और सब बातों में अपने देश के और कामों का जितना अधिकार प्रबन्ध वे स्वयं कर सकते हों उतना अधिक प्रबन्ध करने में उन्हें सहायता दी जाय। भारतवासी किन-किन विषयों में अभी अपने ऊपर दायित्व नहीं ले सकते हैं और उनके सम्बन्ध में क्या क्या शर्तें और व्यवस्थायें की जानी चाहिए, इस पर परिषद् में विचार होगा। परन्तु मेरा कभी यह विश्वास नहीं रहा है कि यदि आपस में एक-दूसरे पर विश्वास रक्खा जाय तो समझौता करना असम्भव होगा।"

हमलोग समझते हैं कि इन दोनों बातों में बहुत बड़ा अन्तर है। पं० मोतीलालजी तो भारत को एक ऐसे स्वतन्त्र रूप में देखना चाहते हैं जिसमें प्रस्तावित गोलमेज-परिषद् के विचारों के परिणाम-स्वरूप उसकी स्थिति वर्तमान स्थिति से बिलकुल बदल जाय (वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र हो जाय), पर वाइसराय अपने पत्र में केवल यही कहते हैं कि मेरी, हमारी सरकार की और ब्रिटिश सरकार की यह हार्दिक कामना है कि जिन बातों में भारतवासी इस समय अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के योग्य नहीं हैं, उन्हें छोड़कर बाकी और बातों में वे अपने अपने देश के और कामों का जितना अधिक प्रबन्ध स्वयं कर सकते हों उतना अधिक प्रबन्ध करने में उन्हें सहायता दी जाय। दूसरे शब्दों में वाइसराय के पत्र में केवल यही आशा दिलाई जाती है कि हमें उसी ढंग के कुछ और सुधार मिल जायंगे जिस ढंग के सुधारों का आरम्भ लैन्सडाउन-सुधारों से हुआ था। हम लोग यह समझते थे कि इसका हमने जो यह अर्थ लगाया है, यही ठीक है; इसलिए अपने १५-८-३० वाले पत्र में, जिसपर पं० मोतीलाल नेहरू, डॉ० सैयद महमूद और पं० जवाहरलाल नेहरू ने हस्ताक्षर किये थे, हम लोगों ने अपना कथन नकारात्मक रक्खा था और कहा था कि हमारी सम्मति में कांग्रेस इससे सन्तुष्ट नहीं होगी। अब आप लोग वाइसराय का जो पत्र लाये हैं, उसमें भी वही पहले पत्र वाली बात दुहराई गई है; और हमें दुःखपूर्वक कहना पड़ता है कि हमारे पत्र का अनादर करके उसके सम्बन्ध में यह निश्चय किया गया है कि वह विचार करने के योग्य ही नहीं है; और हम लोगों ने उसमें जो प्रस्ताव किये थे, उनके आधार पर बातचीत चलना असम्भव है। आप लोगों ने यह कहकर इस विषय पर और भी प्रकाश डाल दिया है कि यदि गांधीजी भारत-सरकार के सामने निश्चय रूप से इस प्रकार का कोई प्रश्न उपस्थित करेंगे (अर्थात् भारत जब चाहे तब साम्राज्य से पृथक् हो सकता है), तो वाइसराय यह कहेंगे कि यह प्रश्न विचारार्थ उठ ही नहीं सकता। इसके विपरीत हम लोग यह समझते हैं कि भारत में चाहे जिस प्रकार की स्वतन्त्र शासन-प्रणाली स्थापित हो, परन्तु यह सब दशा में सर्व-प्रधान प्रश्न है और इसके सम्बन्ध में किसी बहस मुबाहसे की आवश्यकता ही नहीं होनी चाहिए। यदि भारत को पूर्ण उत्तरदायी शासन-प्रणाली या पूर्ण-स्वराज्य अथवा इसी प्रकार की और कोई शासन-प्रणाली प्राप्त होने को हो, तो उसका आधार शुद्ध-स्वेच्छा पर होना चाहिए और प्रत्येक दल को इस बात का अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह जब चाहे तब आपस की हिस्सेदारी का साथ

छोड़ सकता है। यदि भारत को साम्राज्य का अंग बनाकर न रखना हो, बल्कि उसे ब्रिटिश राष्ट्र-समूह का एक बराबरी का और स्वतन्त्र हिस्सेदार बनना हो, तो इसके लिए यह आवश्यक है कि उस संगति तथा सहयोग के लिए भारत अपनी आवश्यकता समझे; और उसके साथ ऐसा अच्छा व्यवहार होना चाहिए कि वह उसमें मिला रहने के लिए सदा तैयार रहे। इसके सिवा और किसी दशा में यह बात नहीं हो सकती। आप लोग देखेंगे कि जिस वार्तालाप का हम लोगों ने अभी उल्लेख किया है, उसमें यह बात स्पष्ट रूप से कह दी गई है। इसलिए जबतक ब्रिटिश-सरकार या ब्रिटिश जनता यह समझती हो कि भारत के लिए यह स्थिति प्राप्त होना असम्भव है या ऐसी स्थिति नहीं चल सकती, तबतक हम लोगों की सम्मति में कांग्रेस को स्वतन्त्रता का युद्ध बराबर जारी रखना चाहिए।

नमक-कर के सम्बन्ध में हम लोगों का जो एक छोटा और साधारण प्रस्ताव था, उसके विषय में वाइसराय का जो रुख है, उससे सरकार के मनोभावों का एक बहुत ही दुःखद स्वरूप प्रकट होता है। हम लोगों को यह बात दिन के प्रकाश के समान स्पष्ट जान पड़ती है कि शिमला की ऊंचाई पर से भारत के शासक यह समझने में असमर्थ है कि नीचे मैदानों में रहनेवाले जिन लाखों-करोड़ों आदमियों के परिश्रम से सरकार का इतनी ऊंचाई पर जाकर रहना सम्भव होता है, उनकी आर्थिक कठिनाइयां क्या हैं। नमक एक ऐसी प्राकृतिक देन है जो गरीब आदमियों के लिए वायु और जल को छोड़ कर बाकी और चीजों से बढ़कर महत्व की है। उस नमक पर सरकार ने अपना जो एकाधिकार कर रक्खा है; उसके विरुद्ध गत पांच महीनों में निर्दोष आदमियों ने अपना जो खून बहाया है, उससे यदि सरकार की समझ में यह बात नहीं आई कि इसमें उसकी कितनी अनीति है, तो फिर वाइसराय की बतलाई हुई भारतीय नेताओं की कोई परिषद् कुछ भी नहीं कर सकती। वाइसराय ने यह भी कहा है कि जो लोग यह कानून रद्द कराना चाहते हों, उन्हें एक ऐसा साधन भी बतलाना चाहिए जिससे सरकार की उतनी ही आय बंद जाय जितनी उसे नमक से होती है। यह कह कर उन्होंने मानो हानि पहुंचाने के उपरान्त ऊपर से देश का अपमान भी किया है। उनके इस रुख से यही सूचित होता है कि यदि सरकार का वश चलेगा, तो वह भारत में अनन्त काल तक अपनी वह परम व्यय-साध्य शासन-प्रणाली प्रचलित रक्खेगी जिससे भारत अब तक बराबर कुचला जाता रहा है। हम लोग यह भी बतला देना चाहते हैं कि केवल यहीं की सरकार नहीं, बल्कि समस्त संसार की सरकारें जनता-द्वारा उन कानूनों के भंग किये जाने को खुले-आम उपेक्षा की दृष्टि से देखती हैं, जिन कानूनों को जनता अच्छी नहीं समझती परन्तु जो कानून हेर-फेर के कारण अथवा और कारणों से तुरन्त ही रद नहीं किये जा सकते।

इसके अतिरिक्त और भी कई ऐसी महत्व की बातें हैं जिनके सम्बन्ध में हमने जनता के विचार और मांगें उपस्थित की थीं, पर उनके सम्बन्ध में भी वाइसराय कुछ भी अग्रसर नहीं हुए हैं। परन्तु यहां हम उन बातों पर विचार नहीं करना चाहते। हम लोग आशा करते हैं कि हमने ऐसी महत्वपूर्ण यथेष्ट बातें बतला दी हैं जिनके सम्बन्ध में कम-से-कम इस समय ब्रिटिश-सरकार और कांग्रेस के बीच बहुत बड़ा अन्तर है, जो जल्दी दूर नहीं किया जा सकता। तो भी शान्ति के उद्योग में इस समय जो विफलता होती हुई दिखाई देती है, उसके लिए निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। कांग्रेस इस समय स्वतन्त्रता के लिए विकट युद्ध में लगी हुई है। इसमें राष्ट्र ने जो अस्त्र ग्रहण किया है, हमारे शासक उसके अभ्यस्त नहीं है, इसलिए उन्हें उस अस्त्र का भाव और महत्व समझने में विलम्ब होगा। इधर कई महीनों में भारतवासियों ने जो विपत्तियां सही हैं, उनसे यदि शासकों के मन का

भाव नहीं बदला है, तो इससे हम लोगों को कोई आश्चर्य नहीं हुआ है। किसी ने उचित रूप से जो स्वार्थ इस देश में स्थापित किये हों अथवा जो अधिकार प्राप्त किये हों, उनमें से एक को भी कांग्रेस हानि नहीं पहुंचाना चाहती। अंग्रेजों के साथ उसका कोई झगड़ा नहीं है। परन्तु देश पर ब्रिटिश-जाति का जो असह्य प्रभुत्व है, उसका वह अपने पूर्ण नैतिक बल से विरोध करती है और उस पर अपना असन्तोष प्रकट करती है और बराबर ऐसा करती रहेगी। हम लोगों का अंत तक अहिंसात्मक रहना निश्चित है, इसलिए यह भी निश्चित ही है कि राष्ट्र की कामनायें शीघ्र ही पूरी होंगी। यद्यपि अधिकारी लोग सत्याग्रह-आन्दोलन के सम्बन्ध में बहुत ही कटु और प्रायः अपमानकारी भाषा का व्यवहार करते हैं, तो भी हमारा यही कथन है।

अन्त में हम लोग फिर एक बार आप लोगों को उस कष्ट के लिए धन्यवाद देते हैं जो आपने शान्ति स्थापित करने के लिए उठाया है, परन्तु हम यह सूचित कर देना चाहते हैं कि अभी ऐसा उपयुक्त समय नहीं आया है जब कि समझौते की बातचीत और आगे चल सके। कांग्रेस-संगठन के प्रधान अधिकारी और कार्यकर्त्ता इस समय जेलों में बन्द हैं, इसलिए स्पष्टतः हम लोग बहुत विवश हैं। हम लोग दूसरों से सुनी हुई बातों के आधार पर ही सब मांगें उपस्थित करते रहे हैं और अपने विचार बतलाते रहे हैं, इसलिए सम्भव है कि उनमें कुछ दोष या त्रुटियां हों। इसलिए इस समय जिन लोगों के हाथ में संगठन का काम है, वे स्वभावतः हम लोगों में से किसी के साथ भेंट करना चाहेंगे। उस दशा में, और जब कि स्वयं सरकार भी शान्ति स्थापित करने के लिए उतनी ही उत्सुक होगी, उन्हें हम लोगों के पास तक पहुंचने में कोई कठिनाई न होगी।

मो० क० गांधी, सरोजिनी नायडू, वल्लभभाई पटेल, जयरामदास दौलतराम।"

समझौते के सम्बन्ध में जो मुख्य-मुख्य बातें और पत्र आदि हैं, वे सब सर्व साधारण की सूचना के लिए प्रकाशित करके ही हम लोग इसका अन्त करते हैं, और मध्यस्थों के जो कर्तव्य होते हैं, उनका पूर्ण-रूप से पालन करते हुए हम लोग इस वक्तव्य के सम्बन्ध में स्वयं अपना कोई मत नहीं प्रकट करते, और न ऊपर दी हुई बातों अथवा पत्रों आदि पर अपनी ओर से कोई टीका-टिप्पणी ही करते हैं। हां, इतना हम अवश्य बतला देना चाहते हैं कि ऊपर दिये हुए पत्रों आदि को प्रकाशित करने के सम्बन्ध में हम लोगों ने वाइसराय और कांग्रेस के नेताओं की स्वीकृति ले ली है।

९

साम्प्रदायिक 'निर्णय'

साम्प्रदायिक निर्णय का सम्राट् की सरकार ने जो ऐलान किया था वह, अविकल रूप में, नीचे लिखे अनुसार है—

१. सम्राट्-सरकार की ओर से, गोलमेज-परिषद् के दूसरे अधिवेशन के अन्त में, १ दिसम्बर को, प्रधान-मंत्री ने जो घोषणा की थी, और जिसकी ताईद उसके बाद ही पार्लमेण्ट के दोनों हाउसों ने भी कर दी थी, उसमें यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि भारतवर्ष में रहनेवाली विविध जातियां साम्प्रदायिक प्रश्नों पर किसी ऐसे समझौते पर न पहुंच सकीं जो सब दलों को मान्य हो, जिसे कि हल करने में परिषद् असफल रही है, तो सम्राट्-सरकार का यह दृढ़ निश्चय है कि इस वजह से भारत की वैधानिक प्रगति नहीं रुकनी चाहिए और इस बाधा को दूर करने के लिए वह स्वयं एक आरज़ी योजना तैयार करके उसे लागू करेगी।

२. गत १९ मार्च को, यह सूचना मिलने पर कि किसी समझौते पर पहुंचने में विविध जातियां लगातार असफल हो रही हैं, जिससे नया शासन-विधान बनने की योजना आगे नहीं बढ़ सकती, सम्राट्-सरकार ने कहा था कि इस सम्बन्ध में उठनेवाली कठिनाइयों और विवादास्पद बातों पर वह फिर से सावधानी के साथ विचार करेगी। अब उसे इस बात का यकीन हो गया है कि जबतक नये शासन-विधान के अन्तर्गत अल्प-संख्यक जातियों की स्थिति-सम्बन्धी समस्याओं के कम-से-कम कुछ पहलुओं का निर्णय न हो जायगा तबतक विधान बनाने की दिशा में आगे कोई प्रगति नहीं हो सकती।

३. इसलिए सम्राट्-सरकार ने यह निश्चय किया है कि भारतीय शासन-विधान-सम्बन्धी प्रस्तावों में, जोकि यथासमय पार्लमेण्ट के सामने पेश किये जायंगे, वह ऐसी धारायें रक्खेगी, जिससे नीचे लिखी योजना पर अमल हो सके। इस योजना का कार्य-क्षेत्र जान-बूझकर प्रान्तीय कौंसिलों में ब्रिटिश-भारत की विभिन्न जातियों के प्रतिनिधित्व तक ही सीमित रक्खा गया है, केन्द्रीय धारा-सभा में प्रतिनिधित्व का विचार फिलहाल नीचे दिये हुए २९ वें पैराग्राफ में उल्लिखित कारणों से नहीं किया गया है। लेकिन योजना के कार्य-क्षेत्र को सीमित रखने के निश्चय का आशय इस बात को महसूस न कर सकना नहीं है, कि विधान बनाने में ऐसी अनेक अन्य समस्याओं का भी निर्णय करना होगा जिनका अल्प-संख्यक जातियों के हक में बड़ा महत्व है; बल्कि इस आशा से यह निश्चय किया गया है कि प्रतिनिधित्व के तरीके और अनुपात के मूल प्रश्न पर जब एकबार घोषणा कर दी गई तो फिर उन दूसरे साम्प्रदायिक प्रश्नों पर, कि जिनके बारे में अभी आवश्यक विचार नहीं किया जा सका है, सम्भवतः जातियां स्वयं ही कोई मार्ग ढूंढ निकालेंगी।

४. सम्राट्-सरकार चाहती है कि इस बात को बिलकुल स्पष्ट-रूप से समझ लिया जाय कि इस निर्णय में रद्दोबदल करने के लिए जो भी कोई बातचीत होगी उसमें वह भाग नहीं लेगी और न इसमें संशोधन कराने के ऐसे किसी आवेदन-पत्र पर विचार करने को ही वह तैयार होगी, जो इससे सम्बन्धित सभी दलों-द्वारा समर्थित न हो। लेकिन सद्भाग्य से अगर कोई सर्व-सम्मत समझौता हो जाय, तो वह उसके लिए दरवाजा बन्द नहीं करना चाहती। इसलिए, नया भारत-शासन-विधान कानून बनने से पहले, अगर उसे इस बात का सन्तोष होजाय कि इससे सम्बन्धित जातियां किसी दूसरी व्यावहारिक योजना पर, किसी एक या अधिक प्रान्तों या समस्त ब्रिटिश भारत के लिए, परस्पर एक-मत हैं, तो वह पार्लमेण्ट से इस बात की सिफारिश करने को तैयार रहेगी कि प्रस्तुत योजना की जगह उस योजना को रख दिया जाय।

५. गवर्नर-वाले प्रान्तों की कौंसिलों या लोअर हाउस में, बशर्ते कि वहां अपर चेम्बर हो, सदस्यों के स्थान नीचे २४वें पैराग्राफ में बतलाये हुए हिसाब के अनुसार रहेंगे।

६. मुसलमान, यूरोपियन और सिक्ख सदस्यों का चुनाव पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचनों के द्वारा होगा, जिन्हें (सिवा उन भागों के कि जिन्हें खास-खास सूरतों में 'पिछड़ा हुआ' होने के कारण निर्वाचन-क्षेत्र से बाहर रक्खा जाय) तमाम प्रान्त में अलग रखने की व्यवस्था की जायगी।

पृथक् निर्वाचन

इस बात की स्वयं विधान में गुंजाइश रक्खी जायगी कि जिससे दस वर्ष बाद निर्वाचन व्यवस्था का (और ऐसी ही दूसरी व्यवस्थाओं का, जो नीचे दी हुई हैं) इससे सम्बन्धित जातियों की स्वीकृति से, जिसे जानने के लिए उपयुक्त तरीके सोचे जायंगे, पुनरावलोकन कर लिया जायगा।

७. वे सब जायज मतदाता, जो किसी मुसलमान, सिक्ख, ईसाई (पैराग्राफ १० देखिए)

एंग्लो-इंडियन (पैराग्राफ ११ देखिए) या यूरोपियन निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाता नहीं हैं, आम निर्वाचन-क्षेत्र में मत दे सकेंगे।

८. बम्बई में कुछ चुने हुए बहुसंख्यक सदस्यों के आम निर्वाचन-क्षेत्रों में ७ स्थान मराठों के लिए सुरक्षित रहेंगे।

दलित-जातियां

९. 'दलित-जातियों' में जिन्हें मत देने का अधिकार होगा, वे आम निर्वाचन-क्षेत्र में मत देंगे। इस बातको मद्देनजर रखते हुए कि अकेले इस उपाय से इन जातियों के लिए किसी कौंसिल में अपना काफी प्रतिनिधित्व प्राप्त करना फिलहाल बहुत समय तक सम्भव नहीं है उनके लिए कुछ विशेष स्थान रक्खे जायंगे, जैसा कि २४वें पैराग्राफ में बताया है। इन जगहों का चुनाव विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा, जिनमें दलित-वर्गवाले वही लोग मत देंगे जिन्हें मत देने का अधिकार प्राप्त होगा। ऐसे खास निर्वाचन-क्षेत्र में मत देनेवाला कोई भी व्यक्ति जैसा कि ऊपर कहा गया है, किसी आम निर्वाचन-क्षेत्र में भी मत दे सकेगा। ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र उन खास-खास इलाकों में बनाने की मंशा है जहां दलित-वर्गवालों की काफी आबादी है; और मदरास अहाते के अलावा और कहीं ऐसा न होना चाहिए कि प्रान्त का सारा इलाका उन्हींसे घिर जाय।

बंगाल में, ऐसा मालूम पड़ता है कि, कुछ आम निर्वाचन-क्षेत्रों में अधिकांश मतदाता दलितवर्गों के व्यक्ति होंगे। इसलिए, जबतक इस बारे में और अधिक पूछ-ताछ न हो जाय, तबतक, उस प्रान्त में दलित-जातियों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों से चुने जानेवाले सदस्यों की संख्या अभी निश्चित नहीं की गई है। सरकार चाहती यह है; कि बंगाल-कौंसिल में दलित-जातियों के कम से-कम १० सदस्य तो पहुंच ही जायं।

जो लोग (अगर उन्हें मत देने का अधिकार है) दलित-जातियों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों से मत दे सकेंगे उनकी हरेक प्रान्त में क्या व्यवस्था की जायगी, यह अभी अन्तिम रूप से तय नहीं हुआ है। सामान्यतः इसका आधार वे साधारण सिद्धान्त होंगे, जिनका कि मताधिकार-समिति की रिपोर्ट में प्रतिपादन किया गया है। मगर उत्तर-भारत के कुछ प्रान्तों में, जहां अस्पृश्यता की आम कसौटी को लागू करना सम्भवतः कुछ बातों में वहां की विशेष परिस्थिति के अनुपयुक्त होगा, इस सम्बन्ध में थोड़ा रद्दोबदल करना आवश्यक होगा।

सम्राट्-सरकार का खयाल है कि दलित-जातियों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों की आवश्यकता एक सीमित समय के लिए ही होगी। इसलिए विधान में वह ऐसी बात रखना चाहती है कि बीस साल के आखिर में, अगर उससे पहले ही छठे पैराग्राफ में उल्लिखित निर्वाचन का संशोधन करने के आम अधिकार के द्वारा यह रद न हो गया होगा तो, ये नहीं रहेंगे।

भारतीय ईसाई

१०. भारतीय ईसाइयों के लिए रक्खी जानेवाली जगहों का चुनाव पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा। यह करीब-करीब निश्चित सा मालूम पड़ता है कि किसी प्रान्त के पूरे इलाके में भारतीय ईसाइयों के निर्वाचन-क्षेत्र बनाना अव्यावहारिक होगा, इसलिए प्रान्त के किसी एक या दो चुने हुए इलाकों में ही भारतीय ईसाइयों के विशेष निर्वाचन-क्षेत्र रक्खे जायंगे। इन निर्वाचन क्षेत्रों के भारतीय ईसाई मतदाता आम निर्वाचन-क्षेत्रों में मत नहीं देंगे; लेकिन इन इलाकों से बाहर के भारतीय ईसाई मतदाता आम निर्वाचन क्षेत्रों में ही अपने मत देंगे। बिहार और उड़ीसा

में व्यवस्था करनी पड़ेगी, क्योंकि वहां भारतीय ईसाइयों का काफी बड़ा भाग आदिम जातियों के अन्दर शुमार होता है।

एंग्लो-इंडियन

११. एंग्लो-इंडियन सदस्यों का निर्वाचन पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा। फिलहाल, अगर कोई व्यावहारिक कठिनाइयां उत्पन्न हों तो उनकी तहकीकात करने की गुन्जाइश रखते हुए, यह सोचा गया है कि एंग्लो-इंडियन-निर्वाचन-क्षेत्र हरेक प्रान्त के सारे इलाके के लिए होंगे, जिनमें मत-गणना डाक से भेजी जानेवाली पर्चियों के द्वारा होगी; लेकिन इस बारे में अभी कोई अन्तिम फैसला नहीं हुआ है।

१२. पिछड़े हुए इलाकों के प्रतिनिधियों के लिए जो स्थान रक्खे गये हैं उनकी पूर्ति का उपाय अभी विचाराधीन है, और ऐसे सदस्यों की जो संख्या रक्खी गई है उसे अभी,जबतक कि ऐसे इलाकों के बारे में की जानेवाली वैधानिक व्यवस्था का कोई अन्तिम निश्चय न हो जाय, आरजी समझना चाहिए।

स्त्रियां

१३. सम्राट् की सरकार इस बात को बहुत महत्त्व देती है कि नई कौंसिलों में स्त्री-सदस्यायें भी रहें, चाहे उनकी संख्या थोड़ी ही हो। उसका खयाल है कि प्रारम्भ में, यह ध्येय तबतक सफल नहीं हो सकता जबतक कि कुछ स्थान खास तौर पर स्त्रियों के लिए सुरक्षित न कर दिये जायं। साथ ही उसका यह भी खयाल है कि स्त्री-सदस्यायें किसी एक जाति की नहीं होनी चाहिए और सो भी बिना किसी अनुपात के। इसलिए खास तौर पर स्त्रियों के लिए रक्खी जानेवाली हरेक 'सीट' का चुनाव एक ही जाति के मत-दाताओं तक मर्यादित करने के सिवा, जिसमें कि नीचे २४ वें पैराग्राफ में स्पष्ट किया हुआ अपवाद रहेगा, और कोई ऐसी पद्धति ढूंढ निकालने में वह असमर्थ रही है, जिससे कि यह खतरा रोका जा सके और जो प्रतिनिधित्व की उस शेष योजना के अनुरूप हो कि जिसे ग्रहण करना आवश्यक समझा गया है। अतएव, इसके अनुसार, जैसा कि नीचे २४ वें पैराग्राफ में स्पष्ट किया गया है, विभिन्न जातियों में स्त्रियों की विशेष जगहों को खास तौर पर विभाजित कर दिया गया है। इन विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों में किस खास ढंग से निर्वाचन होगा, यह अभी विचाराधीन हैं।

विशेष वर्ग

१४. 'मजदूरों' के लिए रक्खी गई सीटों का चुनाव अ-साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा। निर्वाचन-व्यवस्था का अभी निश्चय करना है; लेकिन बहुत सम्भव है कि अधिकांश प्रान्तों में, जैसा कि मताधिकार-समिति ने सिफारिश की है, मजदूर-निर्वाचन-क्षेत्र कुछ तो मजदूर-संघ होंगे और कुछ विशेष निर्वाचन-क्षेत्र।

१५. उद्योग-व्यवसाय, खानों और खेतिहरों के सदस्यों का चुनाव व्यवसाय-संघ (चेम्बर आफ कामर्स) और दूसरे विविध-संघों के द्वारा होगा। इन स्थानों की निर्वाचन-व्यवस्था की तफसील के लिए अभी और छान-बीन होना आवश्यक है।

१६. जमींदारों के लिए रक्खे गये विशेष स्थानों का चुनाव जमींदारों के विशेष-निर्वाचन-क्षेत्रों के द्वारा होगा।

१७. विश्व-विद्यालय के लिए रक्खे गये स्थानों का चुनाव किस तरह किया जाय, यह अभी विचाराधीन है।

१८. प्रान्तीय कौंसिलों में प्रतिनिधित्व के इन प्रश्नों का निर्णय करने में सम्राट्-सरकार को काफी तफसील में जाना पड़ा है, इतने पर भी निर्वाचन-क्षेत्रों की नई हदबन्दी तो अभी बाकी ही रह गई है। सरकार का इरादा है, कि जितनी जल्दी हो सके, हिन्दुस्तान में इस दिशा में प्रयत्न शुरू कर दिया जाय।

कुछ जगह तो, सदस्यों की जो संख्या इस समय रक्खी गई है सम्भव : उसमें थोड़ा फर्क कर देने से, निर्वाचन-क्षेत्रों की नई हदबन्दी मुकम्मिल तौर पर ठीक हो जायगी। अतएव सम्राट्-सरकार इस प्रयोजन के लिए मामूली हेर फेर करने का अधिकार अपने लिए रक्षित रखती है, बशर्ते कि उस हेर-फेर से विभिन्न जातियों के अनुपात में कोई असली अन्तर न पड़े। लेकिन बंगाल और पंजाब के मामले में ऐसा कोई हेर-फेर नहीं किया जायगा।

द्वितीय चेम्बर

१९. विधान-सम्बन्धी विचार-विनिमय में अभीतक तुलनात्मक रूप में, प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर रखने के प्रश्न पर कम ध्यान दिया गया है; अतः इस सम्बन्ध की कोई योजना बनाने या इस बात का निर्णय करने से पहले कि किन-किन प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर रखने चाहिए, और विचार होने की आवश्यकता है।

सम्राट्-सरकार का विचार है कि प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर का निर्माण इस तरह होना चाहिए जिससे छोटी कौंसिल बनाने के परिणाम-स्वरूप, भिन्न-भिन्न जातियों के बीच रक्खे गये अनुपात में कोई खास फर्क न पड़े।

२०. केन्द्रीय धारासभा (बड़ी कौंसिल) के आकार और निर्माण के प्रश्न में फिलहाल सम्राट्-सरकार नहीं पड़ना चाहती, क्योंकि इसमें अन्य प्रश्नों के साथ देशी राज्यों के प्रतिनिधित्व का प्रश्न भी उपस्थित होता है, जिस पर अभी और विचार होना है। उनके सम्बन्ध में विचार करते समय तमाम जातियों के उसमें पर्याप्त प्रतिनिधित्व के दावों पर वह निस्सन्देह पूरा ध्यान देगी।

सिन्ध का पृथक्करण

२१. सम्राट्-सरकार ने इस सिफारिश को मंजूर कर लिया है, कि सिन्ध एक पृथक् प्रान्त बना दिया जाय, यदि उसका व्यवस्था-खर्च निकलने लायक सन्तोष-जनक उपाय निकल आये। क्योंकि संघीय-राजस्व की अन्य समस्याओं के सम्बन्ध में उठनेवाली आर्थिक समस्याओं पर अभी और विचार होना है। सम्राट्-सरकार ने यह ठीक समझा है कि बम्बई-प्रान्त और सिंध की पृथक्-कौंसिलों की संख्यायें तो दी ही जायं पर उसके साथ ही मौजूदा बम्बई-प्रान्त की दृष्टि से भी (अर्थात्, सिन्ध-सहित बम्बई-प्रान्त की) कौंसिल की संख्यायें भी दे दी जायं।

२२. बिहार-उड़ीसा के जो अङ्क दिये गये हैं वे मौजूदा प्रान्त के लिहाज से हैं; क्योंकि उड़ीसा को पृथक् प्रान्त बनाने के बारे में अभी तहकीकात हो रही है।

२३. नीचे दिये हुए २४ वें पैराग्राफ में बरार-सहित मध्यप्रान्त की कौंसिल के सदस्यों की जो संख्यायें दी हैं उससे यह न समझना चाहिए कि बरार की भावी वैधानिक स्थिति के बारे में कोई निर्णय किया जा चुका है। अभीतक ऐसा कोई निर्णय नहीं हुआ है।

२४. विभिन्न प्रान्तों की कौंसिलों (सिर्फ छोटी कौंसिलों) में सदस्यों की संख्यायें नीचे लिखे अनुसार रहेंगी—

१. मदरास

आम (६ स्त्रियां)	...	१३४
दलित-जातिवाले	...	१८
पिछड़े हुए इलाकों का प्रतिनिधि	...	१
मुसलमान (१ स्त्री)	...	२९
भारतीय ईसाई (१ स्त्री)	...	९
एंग्लो-इण्डियन	...	२
यूरोपियन	...	३
उद्योग-व्यवसाय, खान और खेतिहर	...	६
जमींदार	...	१
विश्व-विद्यालय	...	१
मजदूर	...	६
कुल		२१०

२. बम्बई (सिन्ध-सहित)

आम (५ स्त्रियां)	...	९७
दलित जातिवाले	...	१०
पिछड़े हुए इलाकों का प्रतिनिधि	...	१
मुसलमान (१ स्त्री)	...	६३
भारतीय ईसाई	...	३
एंग्लो-इंडियन	...	२
यूरोपियन	...	४
उद्योग-व्यवसाय आदि	...	८
जमींदार	...	३
विश्व-विद्यालय	...	१
मजदूर	...	८
कुल		२००

३. बंगाल

आम (२ स्त्रियां)	...	८०
दलित-जातिवाले	...	०
मुसलमान (२ स्त्रियां)	...	११९
भारतीय ईसाई	...	२
एंग्लो-इण्डियन (१ स्त्री)	...	४
यूरोपियन	...	११
उद्योग-व्यवसाय आदि	...	१९
जमींदार		५
विश्व-विद्यालय	...	२
मजदूर	...	८
कुल		२५०

४. संयुक्तप्रान्त

आम (४ स्त्रियां)	...	१३२
दलित-जातिवाले	...	१२
मुसलमान (२ स्त्रियां)	...	६६
भारतीय ईसाई	...	२
एंग्लो-इण्डियन	...	१
यूरोपियन	...	२
उद्योग-व्यवसाय आदि	...	३
जमींदार	...	६
विश्व-विद्यालय	...	१
मजदूर	...	३
कुल		२२८

५. पंजाब

आम (१ स्त्री)	...	४३
सिक्ख (१ स्त्री)	...	३२
मुसलमान (२ स्त्रियां)	...	८६
भारतीय ईसाई	...	२
एंग्लो-इण्डियन	...	१
यूरोपियन	...	१
उद्योग-व्यवसाय आदि	...	१
जमींदार	...	५
विश्व-विद्यालय	...	१
मजदूर	...	३
कुल		१७५

६. विहार उड़ीसा

आम (३ स्त्रियां)	...	९९
दलित-जातिवाले	...	७
पिछड़े हुए इलाकों के प्रतिनिधि	...	८
मुसलमान (१ स्त्री)	...	४२
भारतीय ईसाई	...	२
एंग्लो-इण्डियन	...	१

यूरोपियन	... २
उद्योग-व्यवसाय आदि	... ४
जमींदार	... ५
विश्व-विद्यालय	... १
मजदूर	... ४
कुल	... १७५

७. मध्यप्रान्त (बरार-सहित)

आम (३ स्त्रियां)	... ७७
दलित-जातिवाले	... १०
पिछले हुए इलाकों का प्रतिनिधि	... १
मुसलमान	... १४
एंग्लो-इण्डियन	... १
यूरोपियन	... १
उद्योग-व्यवसाय आदि	... २
जमींदार	... ३
विश्व-विद्यालय	... १
मजदूर	... २
कुल	... ११२

८. आसाम

आम (१ स्त्री)	... ४४
दलित-जातिवाले	... ४
पिछड़े हुए इलाकों के प्रतिनिधि	... ९
मुसलमान	... ३४
भारतीय ईसाई	... १
यूरोपियन	... १
उद्योग-व्यवसाय आदि	... ११
मज़दूर	... ४
कुल	... १०८

९. पश्चिमोत्तर-सीमा-प्रान्त

आम	... ९
सिक्ख	... ३
मुसलमान	... ३६
जमींदार	... २
कुल	... ५०

सिन्ध-रहित बम्बई और सिन्ध के स्वतन्त्र प्रान्त के लिए भी सदस्यों का संख्या-विभाग किया गया है, जो इस प्रकार है—

१०. बंबई (सिन्ध निकल जाने पर)

आम (५ स्त्रियां)	... १०९
दलित-जातिवाले	... १०
पिछड़े हुए इलाकों का प्रतिनिधि	... १
मुसलमान (१ स्त्री)	... ३०
भारतीय ईसाई	... ३
एंग्लो-इण्डियन	... २
यूरोपियन	... ३
उद्योग-व्यवसाय आदि	... ७
जमींदार	... २
विश्व-विद्यालय	... १
मजदूर	... ७
कुल	... १७५

११. सिन्ध

आम (१ स्त्री)	... १९
मुसलमान (१ स्त्री)	... ३४
यूरोपियन	... २
उद्योग-व्यवसाय आदि	... २
जमींदार	... २
मजदूर	... १
कुल	... ६०

विशेष निर्वाचन-क्षेत्र

उद्योग-व्यवसाय, खान और खेतिहरों के प्रतिनिधियों का चुनाव जिन संस्थाओं के द्वारा होगा वे कुछ प्रान्तों में मुख्यतः यूरोपियनों की होंगी और कुछ प्रान्तों में मुख्यतः हिन्दुस्तानियों की; लेकिन उनकी रचना विधान-द्वारा नियन्त्रित नहीं की जायगी। अतएव निश्चित रूप से यह बताना सम्भव नहीं है कि हरेक प्रान्त में ऐसे कितने सदस्य यूरोपियन होंगे और कितने हिन्दुस्तानी होंगे। मगर सम्भावना यह है कि प्रारम्भ में उनकी संख्यायें लगभग इस प्रकार होंगी :—

मदरास—४ यूरोपियन और २ हिन्दुस्तानी।
बम्बई—(सिन्ध-सहित)—५ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।
बंगाल—१४ यूरोपियन और ५ हिन्दुस्तानी।
संयुक्तप्रान्त—२ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।
पंजाब—१ हिन्दुस्तानी।
बिहार उड़ीसा—२ यूरोपियन और २ हिन्दुस्तानी।
मध्यप्रान्त—(बरार-सहित)—१ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।
आसाम—८ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।
बम्बई—(सिन्ध को अलग करके)—४ यूरोपियन और ३ हिन्दुस्तानी।
सिन्ध—१ यूरोपियन और १ हिन्दुस्तानी।

बम्बई में, चाहे सिन्ध उसमें शामिल रहे या नहीं, आम सीटों में से ७ मराठों के लिए सुरक्षित रहेंगी।

बंगाल में दलित-जाति के सदस्यों की संख्या का अभी निश्चय नहीं हुआ, पर वह १० से अधिक नहीं होगी। आम निर्वाचन-क्षेत्र से चुने जानेवालों की संख्या ३० होगी, जिसमें दलित-जातिवालों के लिए जो संख्या निश्चित हो वह भी शामिल है।

पंजाब में जमींदार-सदस्यों में एक 'जमींदार' रहेगा। चार ऐसे स्थानों का चुनाव संयुक्त-निर्वाचन द्वारा विशेष निर्वाचन-क्षेत्रों से होगा। निर्वाचनों का विभाजन इस प्रकार रक्खा जायगा जिससे चुने जानेवाले सदस्यों में संभवतः १ हिन्दू, १ सिक्ख और दो मुसलमान होंगे।

आसाम के आम निर्वाचन क्षेत्र से चुने जानेवाले सदस्यों में एक स्त्री के चुने जाने का जो विधान रक्खा गया है उसकी पूर्ति शिलांग के एक असाम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र से की जायगी।

प्रधान-मन्त्री का स्पष्टीकरण

नवीन भारतीय शासन-विधान के निर्माण से सम्बन्धित कुछ साम्प्रदायिक समस्याओं के बारे में सम्राट्-सरकार ने जो निश्चय किया है, उसका मसविदा अब हिन्दुस्तान में पहुंच गया है और दोनों देशों में एक ही साथ प्रकाशित किया जा रहा है।

उसके प्रकाशित होने पर, प्रधान-मन्त्री ने निम्नलिखित वक्तव्य निकाला है—

"न केवल प्रधान-मन्त्री के रूप में, बल्कि भारत के एक ऐसे मित्र की हैसियत से जिसने पिछले दो साल से अल्प-संख्यक जातियों के प्रश्न में दिलचस्पी ली है, मुझे लगता है कि साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व पर सरकार आज जिस अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्णय की घोषणा कर रही है उसे समझाने के लिए एक-दो शब्द मुझे भी जोड़ने चाहिए।

भारत के साम्प्रदायिक विवादास्पद मामलों में हस्तक्षेप करने का हमने कभी इरादा नहीं किया। गोलमेज-परिषद् के दोनों अधिवेशनों में हमने इस बात को बिलकुल स्पष्ट कर दिया था, जब कि हमने इस बात की बहुत कोशिश की कि हिन्दुस्तानी लोग खुद ही इस मामले को तय करलें। क्योंकि शुरू से ही हम यह महसूस करते आये हैं कि हम जो भी निश्चय करें वह कैसा ही क्यों न हो, सम्भवतः हरेक जाति अपनी महत्वपूर्ण मांगों के आधार पर उसकी टीका-टिप्पणी करेगी; लेकिन हमें विश्वास है कि अन्त में जाकर भारतीय आवश्यकताओं पर ध्यान रखने की भावना पैदा होगी और सब जातियां देखेंगी कि नये शासन-विधान को अमल में लाने में, जो कि हिन्दुस्तान को ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह में एक नया पद देने वाला है, सहयोग करना ही उनका फर्ज है।

आपसी राजीनामे से निर्णय में संशोधन हो सकता है

हमारा कर्तव्य स्पष्ट था। चूंकि विभिन्न जातियों के आपस में किसी बात पर सहमत न हो सकने के कारण किसी भी तरह की वैधानिक प्रगति के रास्ते में ऐसी बाधा उपस्थित हो रही थी जिसका दूर होना प्रायः असम्भव था, अतः सरकार के लिए यह लाजिमी हो गया कि वह इस सम्बन्ध में कुछ करे। अतएव, भारतीय प्रतिनिधियों की लगातार प्रार्थनाओं के जवाब में सरकार की ओर से गोलमेज-परिषद् में मैंने जो वादे किये थे उनके अनुसार, और उस वक्तव्य के अनुसार जो मैंने ब्रिटिश-पार्लमेण्ट में दिया था और जिसपर उसने अपनी सहमति दरसाई थी, सरकार आज प्रान्तीय-कौंसिलों के प्रतिनिधित्व की एक योजना प्रकाशित कर रही है। यह योजना यथासमय पार्लमेण्ट में पेश की जायगी, यदि उस समय तक विभिन्न जातियां अपने-आप इससे अच्छी और किसी योजना पर सहमत न हो जायं।

शासन-सुधारों का प्रस्तावित बिल कानून बने उससे पहले किसी भी समय, यदि विभिन्न जातियां अपने-आप किसी निर्णय पर पहुंच सकें, तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। लेकिन पुराने अनुभव के आधार पर सरकार को यह विश्वास हो गया कि इस सम्बन्ध में अब और बातचीत चलाना व्यर्थ है, इसलिए वह उसमें शामिल नहीं हो सकती। फिर भी अगर किसी प्रान्त या प्रान्तों अथवा सारे ब्रिटिश-भारत के लिए कोई ऐसी योजना तैयार हो जो सामान्यतः उससे सम्बन्धित सब दलों के लिए सन्तोष-प्रद और स्वीकार्य हो, तो सरकार अपनी योजना की जगह उसे रखने के लिए रजामन्द और तैयार रहेगी।

पृथक् निर्वाचन का मामला

सरकार के निर्णय की दाद देने के लिए उन वास्तविक परिस्थितियों पर ध्यान रखना आवश्यक है जिसमें कि वह किया गया है। गत अनेक वर्षों से अल्पसंख्यक जातियां पृथक् निर्वाचन को, अर्थात् एक खास तरह के मतदाताओं का अपने तईं प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में बंट जाना, अपने अधिकारों का बड़ा भारी संरक्षण समझती आ रही हैं। पिछले दिनों हुई वैधानिक प्रगति की प्रत्येक अवस्था में पृथक् निर्वाचन को स्थान मिला है। सरकार चाहे जितना संयुक्त-निर्वाचन की किसी एक-सी प्रथा को अधिक पसन्द करती हो, जिन संरक्षणों को अल्प-संख्यक जातियां अभी भी बहुत महत्वपूर्ण समझती हैं उन्हें खत्म करना उसे सम्भव नहीं जान पड़ा। भूतकाल में ऐसा किस प्रकार हुआ, इसकी छानबीन में पड़ना व्यर्थ है। मैं तो किसी कदर भविष्य का ही विचार कर रहा हूं। मैं तो यह चाहता हूं कि बड़ी-छोटी सब जातियां मेल-जोल और शान्ति के साथ संयुक्त-रूप से काम करें, ताकि संरक्षण के विशेष प्रकार की आगे कोई जरूरत न पड़े। मगर जब तक ऐसा न हो, तबतक सरकार को तो वस्तु-स्थिति का ध्यान रखकर प्रतिनिधित्व का यह असाधारण-रूप कायम रखना ही पड़ेगा।

दलित-जातियों की स्थिति

इस निर्णय की दो विशेषतायें हैं, जिनका उल्लेख करना मेरे लिए आवश्यक है। इनमें से एक का सम्बन्ध तो दलित-जातियों से है और दूसरी का स्त्रियों के प्रतिनिधित्व से। सरकार ऐसी किसी योजना का समर्थन नहीं कर सकती, जिसमें इनमें से किसी एक की भी अनिवार्यता का खयाल न किया गया हो।

दलित-जातियों के मामले में हमारा उद्देश्य यह रहा है कि प्रान्तों में जहां उनकी संख्या अधिक है, प्रान्तीय कौंसिलों में उनकी पसन्द के प्रतिनिधि जाने की व्यवस्था हो, लेकिन उसके साथ पृथक्

निर्वाचन की व्यवस्था न रहे, जिससे कि उनका अलगपन स्थायी हो जायगा। अतएव, दलित-वर्गों के मतदाता आम हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्रों में ही अपने मत देंगे और ऐसे निर्वाचन-क्षेत्र में चुना हुआ सदस्य इस वर्ग के प्रति जो उत्तरदायित्व है उससे प्रभावित होगा; लेकिन अगले २० साल तक कुछ ऐसे विशेष स्थान भी रहेंगे, जिनका चुनाव ऐसे इलाकों में, जहां कि खास तौर पर ऐसे दलित मत-दाता होंगे, विशेष निर्वाचन-मण्डलों द्वारा होगा। इस प्रकार दलित वर्गों के कुछ व्यक्तियों को मत देने का अधिकार मिल जाता है, पर इस विधि-विरोध की न्याय्यता का समर्थन इस बात से होता है कि उनकी मांगों के प्रभाव-कारक रूप से प्रकट किये जाने और उनकी वास्तविक स्थिति में सुधार होने का अवसर प्रदान करने के लिए इसकी ज्यादा जरूरत है।

स्त्रियों के अधिकार

स्त्री-मतदाताओं के बारे में, हाल के वर्षों में यह अच्छी तरह जाना जा चुका है कि उन्नति की एक कुंजी भारत के महिला-आन्दोलन के ही हाथ में है। यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि जबतक भारत की स्त्रियां शिक्षित और प्रभावशाली नागरिकों के रूप में उपयुक्त भाग न लें तब तक भारत उस स्थिति को नहीं पहुंच सकता जो वह संसार में प्राप्त करना चाहता है। इसमें सन्देह नहीं कि स्त्रियों के प्रतिनिधित्व को साम्प्रदायिक-ढंग देने में बहुत बड़ी आपत्तियां हैं, लेकिन अगर स्त्रियों के ही लिए सदस्य-स्थान सुरक्षित रखना है और विभिन्न जातियों में स्त्री-सदस्यों की संख्या का उपयुक्त विभाजन करना है तो, मौजूदा परिस्थिति में, इसके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं है।

इस स्पष्टीकरण के साथ, हिन्दुस्तान की विभिन्न जातियों के सम्मुख मैं यह योजना पेश करता हूं, जो भारत की मौजूदा परिस्थिति में परस्पर-विरोधी दावों के बीच समझौता बनाये रखने का एक उपयुक्त और ईमानदारी के साथ किया हुआ प्रयत्न है। उन्हें चाहिए कि वे इसे ग्रहण कर लें, हालांकि सहसा किसी भी जाति को यह सन्तोष नहीं होगा कि भारत की वैधानिक प्रगति की अगली किश्त में प्रतिनिधित्व के लिए यह ऐसी अमली योजना है जिससे उसकी सब मांगों की पूर्ति हो जाती हो। योजना की छान-बीन करते समय उन्हें यह बात याद रखनी चाहिए कि ऐसी कोई योजना पेश करने लिए, कि जिस पर सबको सन्तोष हो जाय, बार-बार जोर दिये जाने पर भी वे स्वयं असफल रहे हैं।

साम्प्रदायिक सहयोग, उन्नति की शर्त्त

अन्त में, मैं यह कहूंगा कि यह ऐसा मामला है जिसका फैसला खुद हिन्दुस्तानी ही कर सकते हैं। सरकार तो ज्यादा-से-ज्यादा जो आशा कर सकती है वह यही है कि उसके निश्चय से वह रुकावट दूर हो जायगी जो विधान-सम्बन्धी प्रगति में बाधक हो रही है, और हिन्दुस्तानी उन अनेक प्रश्नों को हल करने में अपना ध्यान लगा सकेंगे जिनका विधान-सम्बन्धी प्रगति की दिशा में अभी भी हल होना बाकी है। हिन्दुस्तान की समस्त जातियों के नेताओं को चाहिए कि भारतीय वैज्ञानिक प्रगति के इस नाजुक अवसर पर वे इस बात की कद्र करें कि साम्प्रदायिक सहयोग उनकी प्रगति की शर्त्त है और उनका यह खास फर्ज है कि वे नये शासन-विधान को अमली रूप देने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लें।

२

गोलमेज-परिषद् का अल्पसंख्यक समझौता और साम्प्रदायिक निर्णय

(तुलनात्मक अध्ययन)

नीचे हम गोलमेज-परिषद् के अल्पसंख्यक-समझौते और ब्रिटिश-सरकार के एतत्सम्बन्धी

निर्णय की सिफारिशें साथ-साथ देते हैं, जिससे यह पता चल जाय कि लन्दन में भिन्न-भिन्न अल्प-संख्यक जातियों की ओर से जो मांगें रक्खी गई थीं उनसे सरकार का निर्णय कितना भिन्न है।

अल्पसंख्यक-समझौते में विभिन्न वर्गों को प्राप्त होने वाली सीटों को मद्देनजर रखते हुए हरेक जाति के कुल सदस्यों की संख्याएं निश्चित कर दी गई हैं।

सरकारी निर्णय में विशेष वर्गों को अलग किया गया है, जिससे विशेष वर्गों के द्वारा विभिन्न जातियों की तुलनात्मक-रूप में मिली हुई संख्या में और वृद्धि भी हो सकती है।

लेकिन ऐसे विशेष वर्गों के द्वारा विभिन्न जातियों की सदस्य-संख्या न भी बढ़े तो भी सरकारी निर्णय में दी गई और अल्पसंख्यक-समझौते में मांगी गई संख्याओं पर एक तुलनात्मक नजर डालना अरोचक न होगा।

प्रान्त		कौंसिल के सदस्यों की संख्या	हिन्दू			मुसलमान	ईसाई	एंग्लोइंडियन	यूरोपियन	मराठा	सिक्ख
			सवर्ण	दलित	कुल						
आसाम	अ० स०	१००	३८	१३	५१	३५	३	१	१०	०	
	सा० नि०	१०८	४४	४	४८	३४	१	०	७	९	
बंगाल	अ० स०	२००	३८	३५	७३	१०२	२	३	२०	०	
	सा० नि०	२५०	७०	१०	८०	११९	२	४	११	०	
बिहार-उड़ीसा	अ० स०	१००	५१	१४	६५	२५	१	१	५	३	
	सा० नि०	१७५	९९	७	१०६	४२	२	१	२	८	
बम्बई	अ० स०	२००	८८	२८	११६	६६	२	३	१३	०	
	सा० नि०	२००	८७	१०	९७	६३	३	२	४	०	
मदरास	अ० स०	२००	१०२	४०	१४२	३०	१४	४	८	२	
	सा० नि०	२१५	१३४	१८	१५२	२९	९	२	३	१	
पंजाब	अ० स०	१००	१४	१०	२४	५१	१·५	१·५	२	०	२०
	सा० नि०	१७५	०	०	४३	८६	२	१	१	०	३२
संयुक्तप्रांत	अ० स०	१००	४४	२०	६४	३०	१	२	३	०	
	सा० नि०	२२८	१३२	१२	१४४	६६	२	१	२	०	
मध्यप्रांत	अ० स०	१००	५८	२०	७८	१५	१	२	२	२	
	सा० नि०	११२	७७	१०	८७	१४	१	१	१	२	

१०

गांधीजी के अनशन-सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा पूना-पैक्ट

१

पत्र-व्यवहार का आधार

गोलमेज-परिषद् की अल्पसंख्यक-समिति की अन्तिम बैठक में (१३—११—३१) गांधीजी ने जो भाषण दिया, उसमें उन्होंने कहा—

"अन्य अल्प-संख्यक जातियों के दावे को तो मैं समझ सकता हूं, किन्तु अछूतों की ओर से

पेश किया गया दावा तो मेरे लिए सबसे अधिक निर्दय घाव है। इसका अर्थ यह हुआ कि अस्पृश्यता का कलंक सदैव के लिए कायम रहे।

"भारत की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए मैं अछूतों के वास्तविक हित को न बेचूंगा। मैं स्वयं अछूतों के विशाल समुदाय का प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं। यहां मैं केवल कांग्रेस की ओर से ही नहीं बोलता, प्रत्युत स्वयं अपनी ओर से बोलता हूं और दावे के साथ कहता हूं, कि यदि सब अछूतों का मत लिया जाय तो मुझे उनके मत मिलेंगे और मेरा नम्बर सबके ऊपर होगा। और मैं भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक दौरा करके अछूतों से कहूंगा कि अस्पृश्यता दूर करने का उपाय पृथक् निर्वाचक-मण्डल अथवा कौंसिलों में विशेष रक्षित स्थान नहीं है।

"इस समिति को और समस्त संसार को यह जान लेना चाहिए कि आज हिन्दू-समाज में सुधारकों का ऐसा समूह मौजूद है जो अस्पृश्यता के इस कलंक को, जो उनका नहीं प्रत्युत कट्टर एवं रूढ़िवादी हिंदुओं का कलंक है, धोने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध है। हम नहीं चाहते कि हमारे रजिस्टरों में और हमारी मर्दुमशुमारी में अछूत नाम की जुदा जाति लिखी जाय। सिक्ख सदैव के लिए सिक्ख, मुसलमान हमेशा के लिए मुसलमान और अंग्रेज सदा के लिए अंग्रेज रह सकते हैं; किन्तु क्या अछूत भी, सदैव के लिए अछूत रहेंगे? अस्पृश्यता जीवित रहे, इसकी अपेक्षा मैं यह अधिक अच्छा समझूंगा कि हिन्दू-धर्म डूब जाय।

"इसलिए डॉ० अम्बेडकर के अछूतों को ऊंचा उठा देखने की उनकी इच्छा तथा उनकी योग्यता के प्रति अपना पूरा सम्मान प्रकट करते हुए भी मैं अत्यन्त नम्रतापूर्वक कहूंगा, कि उन्होंने जो कुछ किया है वह अत्यन्त भूल अथवा भ्रम के वश में होकर किया है, और कदाचित् उन्हें जो कटु अनुभव हुए होंगे उनके कारण उनकी विवेक शक्ति पर परदा पड़ गया है। मुझे यह कहना पड़ता है, इसका मुझे दुःख है; किन्तु यदि मैं यह न कहूं तो अछूतों के हित के प्रति, जो मेरे लिए प्राणों के समान है, मैं सच्चा न होऊंगा। सारे संसार के राज्य के बदले भी मैं उनके अधिकारों को न छोड़ूंगा। मैं अपने उत्तरदायित्व का पूरा ध्यान रखता हूं, जब मैं कहता हूं कि डॉ० अम्बेडकर जब सारे भारत के अछूतों के नाम पर बोलना चाहते हैं, तब उनका यह दावा उचित नहीं है; इससे हिन्दू-धर्म में जो विभाग हो जायंगे वह मैं जरा भी सन्तोष के साथ देख नहीं सकता।

"अछूत यदि मुसलमान अथवा ईसाई हो जायं तो मुझे उसकी कुछ परवा नहीं; मैं वह सह लूंगा; किन्तु प्रत्येक गांव में यदि हिन्दुओं के दो भाग होजायं, तो हिन्दू-समाज की जो दशा होगी, वह मुझसे सही न जा सकेगी। जो लोग अछूतों के राजनैतिक अधिकारों की बात करते हैं, वे भारत को नहीं पहचानते, और हिन्दू-समाज आज किस प्रकार बना हुआ है यह नहीं जानते। इसलिए मैं अपनी पूरी शक्ति से यह कहूंगा कि इस बात का विरोध करने वाला यदि मैं अकेला होऊं तो भी मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी इसका विरोध करूंगा।"

२

पत्र-व्यवहार

१. गांधीजी ने ११ मार्च १९३२ को यरवडा-जेल से निम्न-लिखित पत्र सर सेम्यूअल होर के पास भेजा—

प्रिय सर सेम्युअल होर,

आपको कदाचित् स्मरण होगा कि गोलमेज-परिषद् में अल्प-संख्यकों का दावा उपस्थित होने पर मैंने अपने भाषण के अन्त में कहा था कि मैं दलित-जातियों को पृथक्-निर्वाचन का अधिकार

दिये जाने का प्राण देकर भी विरोध करूंगा। यह बात जोश में आकर या अलङ्कार के लिए नहीं कही गई थी। वह एक गम्भीर वक्तव्य था। इस वक्तव्य के अनुसार मैंने भारत लौटने पर पृथक्-निर्वाचन के, कम-से-कम दलित वर्गों के लिए, विरुद्ध लोकमत तैयार करने की आशा की थी। पर यह होनहार न था।

मुझे जो पत्र पढ़ने की अनुमति है उनसे मालूम होता है कि किसी भी क्षण सम्राट्-सरकार अपने निर्णय की घोषणा कर सकती है। पहले मैंने सोचा था कि यदि निर्णय में दलित वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचनाधिकार हुआ तो मैं ऐसी कार्रवाई करूंगा जो मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उस समय आवश्यक जान पड़े। पर मैं अनुभव करता हूं कि पूर्व-सूचना दिये बिना कार्य करना ब्रिटिश-सरकार के साथ अन्याय करना होगा, हालांकि सम्भवतः वह मेरे उक्त वक्तव्य को वह महत्व न देगी जो मैं देता हूं।

दलित-वर्गों को पृथक् निर्वाचनाधिकार देने के सम्बन्ध में मुझे कौन-सी आपत्तियां हैं, उन्हें दुहराने की आवश्यकता नहीं। मैं अनुभव करता हूं कि मैं उन्हीं में से एक हूं। उनका मामला दूसरों से बिल्कुल भिन्न है। कौंसिलों में उन्हें प्रतिनिधित्व मिलने के विरुद्ध मैं नहीं हूं। मैं तो इसे पसन्द करूंगा कि उनमें प्रत्येक बालिग—स्त्री-पुरुष दोनों—को शिक्षा या सम्पत्ति किसी का भी विचार न कर मतदाता बनाया जाय, यद्यपि दूसरों के लिए मताधिकार की योग्यता इससे अधिक हो। पर मेरा मत है कि पृथक्-निर्वाचन उनके लिए और हिन्दू-धर्म के लिए हानिकर है, चाहे केवल राजनैतिक दृष्टि से यह कैसा ही क्यों न हो। पृथक्-निर्वाचन से जो हानि होगी उसे समझने के लिए यह जानने की जरूरत है कि वे किस प्रकार उच्च-वर्ग के हिन्दुओं के बीच बसे हुए हैं और उनके आश्रित हैं। जहां तक हिंदू-धर्म का सम्बन्ध है वह तो पृथक्-निर्वाचन से छिन्न-भिन्न हो जायगा।

मेरे लिए इन वर्गों का प्रश्न मुख्यतः नैतिक और धार्मिक है। राजनैतिक दृष्टि, यद्यपि वह महत्वपूर्ण है, नैतिक और धार्मिक दृष्टि के सामने नगण्य होजाती है।

इस सम्बन्ध में मेरे भाव आपको यह स्मरण करके समझने होंगे कि इन वर्गों की स्थिति के सम्बन्ध में मुझे बचपन से दिलचस्पी है, और इनके लिए मैं अनेक बार अपना सब-कुछ खोने के लिए तैयार हो चुका हूं। मैं यह आत्म-प्रशंसा के लिए नहीं कह रहा हूं, क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि उच्च श्रेणी के हिन्दुओं का कोई भी प्रायश्चित्त उस क्षति की किसी भी अंश में पूर्ति नहीं कर सकता जो उन्होंने दलित-वर्गों को सदियों से जान-बूझकर, गिरा रखकर, की है। पर मैं जानता हूं कि पृथक्-निर्वाचन न प्रायश्चित्त है और न उस गहरे पतन की औषधि, जिससे दलित-वर्ग कष्ट पा रहे हैं। इसलिए मैं सम्राट्-सरकार को सविनय सूचित करता हूं कि यदि आपके निश्चय से दलित-वर्गों को पृथक्-निर्वाचनाधिकार मिलेगा तो मुझे आमरण अनशन करना होगा।

मैं जानता हूं—और मुझे दुःख है—कि कैदी की दशा में मेरे ऐसा करने से सम्राट्-सरकार को बड़ी परेशानी होगी और बहुत-से लोग इसे बहुत अनुचित समझेंगे कि मेरे दर्जे का मनुष्य राजनैतिक क्षेत्र में ऐसी कार्य-प्रणाली प्रचलित करे जिसे वे अधिक नहीं तो पागलपन कहेंगे। अपने पक्ष समर्थन के लिए मैं केवल इतना ही कह सकता हूं कि मेरे लिए वह कार्य, जिसे करने का मैंने विचार किया है, उद्देश्य-साधन की कोई प्रणाली नहीं वरन् मेरे अस्तित्व का एक अंग है। यह मेरी आत्मा की पुकार है जिसकी मैं अवज्ञा नहीं कर सकता, चाहे इससे मेरे समझदार होने की ख्याति नष्ट ही क्यों न हो जाय। इस समय जहांतक मैं देखता हूं मेरा जेल से छूट जाना भी मेरे अनशन के कर्तव्य को किसी प्रकार कम आवश्यक न बना सकेगा। इतने पर भी मैं आशा कर रहा हूं कि मेरी सारी

आशंका बिलकुल निराधार होगी और ब्रिटिश-सरकार दलित-वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था करने का बिलकुल विचार नहीं कर रही है।

शायद मेरे लिए उस दूसरे विषय का भी उल्लेख कर देना अच्छा होगा, जो मुझे व्याकुल कर रहा है और मुझे इसी प्रकार अनशन करने के लिए बाध्य कर सकता है। वह है दमन का प्रकार। मैं नहीं कह सकता कि कब मुझे ऐसा धक्का लगे जो इस त्याग के लिए बाध्य कर दे। दमन कानून की उचित सीमा को भी पार करता हुआ दिखाई दे रहा है। देश में सरकारी आतंक फैल रहा है। अंग्रेज और भारतीय अधिकारी पाशविक बनाये जा रहे हैं। छोटे-बड़े भारतीय अधिकारियों का नैतिक पतन हो रहा है, क्योंकि जनता के प्रति विश्वासघात और अपने ही भाइयों के साथ अमानुषिक व्यवहार को प्रशंसनीय कहकर सरकार उसके लिए उन्हें पुरस्कृत करती है। देशवासी भयभीत किये जा रहे हैं। भाषण-स्वातंत्र्य नष्ट कर दिया गया है। अमन-कानून के नाम पर गुंडाशाही चल रही है। सार्वजनिक सेवा के लिए घर से निकली हुई महिलाओं की आबरू जाने का भय है।

मेरी राय में, यह सब इसलिए किया जा रहा है कि कांग्रेस स्वतंत्रता के जिस भाव का समर्थन कर रही है वह कुचल डाला जाय। साधारण कानून की सविनय-अवज्ञा करनेवालों को दण्ड देकर ही दमन का अन्त नहीं हो रहा है। अनियंत्रित शासन के नये हुक्मों को, जिनका मुख्य उद्देश्य लोगों को नीचा दिखाना है, तोड़ने के लिए यह दमन लोगों को उत्तेजित और बाध्य कर रहा है।

इन कार्यों में मुझे तो लोकतंत्र का भाव बिलकुल नहीं दिखाई दे रहा है। सच तो यह है कि हाल में मैंने इंग्लैण्ड में जो-कुछ देखा उससे यह राय कायम हो गई कि आपका लोकतंत्र सिर्फ ऊपरी और दिखाऊ है। अधिक-से-अधिक महत्व की बातों में व्यक्तियों और समूहों ने पार्लमेण्ट की राय लिये बिना ही निर्णय कर डाले हैं और इन निर्णयों का समर्थन ऐसे सदस्यों ने किया है जो शायद ही जानते हों कि हम क्या कर रहे हैं। मिस्र देश के सम्बन्ध में यही हुआ, १९१४ के युद्ध के सम्बन्ध में यही हुआ, और भारत के सम्बन्ध में यही हो रहा है। लोकतन्त्र नामक पद्धति में एक आदमी को इतना बड़ा और अनियंत्रित अधिकार हो कि ३० करोड़ से भी अधिक लोगों के एक प्राचीन राष्ट्र के सम्बन्ध में वह चाहे जैसी आज्ञा दे, तथा उस आज्ञा को काम में लाने के लिए विनाश के सबसे भयंकर यंत्र को मैदान में ले आवे, इस कल्पना के ही विरुद्ध मेरी आत्मा विद्रोह करती है। मुझे तो यह लोकतन्त्र का अभाव मालूम होता है।

यह दमन उन दो जातियों के सम्बन्ध को, जो पहले ही खराब हो चुका है, और खराब किये बिना नहीं रह सकता। मैं इस प्रवाह को कैसे रोक सकता हूं? सविनय-अवज्ञा को मैं इसके लिए रोक नहीं सकता। मेरा उसपर धर्म के जैसा विश्वास है। मैं अपने-आपको स्वभावतः लोकतन्त्रवादी समझता हूं। मेरे लोकतन्त्र में, बल-प्रयोग-द्वारा अपनी इच्छा को औरों पर लादना सम्भव नहीं है। अतः जहां-जहां बल-प्रयोग आवश्यक या उचित समझा जाता है वैसे अवसरों पर उपयोग करने के लिए ही सविनय-अवज्ञा की कल्पना की गई है। यह कष्ट उठाने की क्रिया है, और यदि आवश्यक हो तो सविनय-अवज्ञा करनेवाले को मृत्यु तक अनशन करना चाहिए। वह समय मेरे लिए अभी नहीं आया है। मेरी अन्तरात्मा मुझे इसके लिए स्पष्ट शब्दों में आदेश नहीं दे रही है। पर बाहर की घटनाओं से मेरा हृदय भी कांप रहा है। अतः जब मैं आपको यह लिख रहा हूं कि दलित-जातियों के सम्बन्ध में मेरा अनशन करना सम्भव है तब यदि साथ ही यह भी न बता दूं कि इसके सिवा भी अनशन की एक और सम्भावना है, तो मैं आपसे सच्चा व्यवहार न करूंगा।

कहने की आवश्यकता नहीं कि आपके साथ जो पत्र-व्यवहार हो रहा है उसे मैंने अपनी ओर से बहुत ही गुप्त रक्खा है। अवश्य ही सरदार वल्लभभाई पटेल और श्री महादेव देसाई, जो अभी हमारे साथ रहने को भेजे गये हैं, इस सम्बन्ध में सब कुछ जानते हैं। पर आप इस पत्र का चाहे-जैसा उपयोग अवश्य ही करेंगे।

हृदय से आपका—
मो० क० गांधी

२. सर सेम्युअल होर ने १३ अप्रैल १९३२ को गांधीजी को निम्न उत्तर भेजा—

इंडिया आफिस; व्हाइट हॉल,
१३ अप्रैल, १९३२

प्रिय गांधी जी,

आपकी ११ मार्च की चिट्ठी के उत्तर में मैं यह लिख रहा हूं, और मैं पहले ही कह देता हूं कि दलित श्रेणियों के लिए पृथक-निर्वाचन के प्रश्न पर आपके भावावेग को मैं पूरी तरह समझता हूं। मैं यही कह सकता हूं कि इस प्रश्न के केवल गुणावगुणों पर जो भी निर्णय आवश्यक हो उसे हम करना चाहते हैं। आप जानते ही हैं कि लॉर्ड लोथियन की कमिटी ने अपना दौरा समाप्त नहीं किया है और वह जिस किसी निश्चय पर पहुंचेगी उसे प्राप्त होने में कुछ हफ्ते अवश्य लग जायंगे। जब हमें यह रिपोर्ट प्राप्त हो जायगी तब उसकी सिफारिशों पर बहुत ही ध्यानपूर्वक विचार करना होगा, और हम तबतक कोई निर्णय न करेंगे जबतक हम कमिटी के विचारों के सिवा उन विचारों पर भी गौर न कर लेंगे जिन्हें आपने और आपके समान विचार रखनेवालों ने इतने जोर के साथ प्रकट किये हैं। मुझे विश्वास है कि यदि आप हमारे स्थान में होते तो आप भी ठीक वैसा ही कार्य करते जैसा हम करना चाहते हैं। कमिटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने तक राह देखिए, फिर उस पर पूरी तरह विचार कीजिए और किसी अन्तिम निश्चय पर पहुंचने के पहले उन मतों पर ध्यान दीजिए, जिन्हें दोनों पक्षों ने इस विवादग्रस्त प्रश्न पर प्रकट किये हैं। इससे अधिक मैं नहीं कह सकता। मैं नहीं समझता कि आप मुझसे अधिक कुछ कहने की आशा रखते होंगे।

आर्डिनेन्सों के सम्बन्ध में मैं वही बातें दुहरा सकता हूं जो मैं सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप से कह चुका हूं। मुझे विश्वास है कि व्यवस्थित-सरकार की नींव पर ही जान बूझकर आक्रमण होते देख इन्हें जारी करना आवश्यक था। मुझे यह भी विश्वास है कि भारत-सरकार और प्रांतीय-सरकार दोनों अपने व्यापक अधिकारों का दुरुपयोग नहीं कर रही हैं और इस बात की भरसक कोशिश कर रही हैं कि उनका बेजा और बदले की भावना से उपयोग न किया जाय। आतंककारी कार्यों से अपने अफसरों और जाति के अन्य वर्गों की रक्षा करने तथा कानून और व्यवस्था के तत्त्वों को बनाये रखने के लिए जितने समय तक असाधारण उपायों से काम लेने को हम बाध्य हैं उससे अधिक समय तक हम उन्हें जारी न रक्खेंगे।

आपका—
सेम्युअल होर

३. गांधीजी ने यरवडा जेल से १८ अगस्त १९३२ को प्रधान-मन्त्री को निम्न पत्र भेजा—

प्रिय मित्र,

दलित-वर्गों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर ११ मार्च को मैंने सर सेम्युअल होर को जो चिट्ठी लिखी वह उन्होंने आपको तथा मन्त्रि-मण्डल को दिखा दी होगी। वह चिट्ठी इस चिट्ठी का अंश समझी जाय और इसीके साथ पढ़ी जाय।

मैंने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व पर ब्रिटिश–सरकार का निश्चय पढ़ा है और पढ़कर उदासीन-भाव से अलग रख दिया है। मैंने सर सेम्युअल को जो चिट्ठी लिखी और सेंट जेम्स पैलेस में १३ नवम्बर १९३१ को गोलमेज-परिषद् की अल्पसंख्यक-समिति में जो घोषणा की थी उसके अनुसार आपके निर्णय का विरोध मैं अपने प्राणों की बाजी लगाकर करूंगा। ऐसा करने का उपाय यही है कि मैं प्राण त्यागने तक लगातार अनशन करने की घोषणा करदूँ और नमक और सोडा के साथ या उसके बिना पानी के सिवा और किसी प्रकार का अन्न न ग्रहण करूँ। यह अनशन तभी समाप्त होगा जब इस व्रत के रहते ब्रिटिश-सरकार अपनी इच्छा से या सार्वजनिक मत के दबाव से अपने निश्चय पर फिर विचार करे और साम्प्रदायिक-निर्वाचन की अपनी योजना, दलित वर्गों के सम्बन्ध में, वापस ले ले, जिनके प्रतिनिधियों का चुनाव साधारण निर्वाचन-क्षेत्रों से हो और सबका समान मताधिकार रहे, फिर यह कितना ही व्यापक क्यों न हो जाय।

यदि बीच में इस रीति से उक्त निर्णय पर फिर से विचार न हुआ तो यह अनशन साधारण अवस्था में अगले २० सितम्बर के दोपहर से आरम्भ होगा।

मैंने यहां के अधिकारियों से कह दिया है कि इस चिट्ठी का मजमून आपके पास तार से भेज दिया जाय, जिसमें आपको सोचने के लिए काफी समय मिले। पर किसी भी अवस्था में मैं आपको इतना काफी समय दे रहा हूं कि धीरे-से-धीरे मार्ग से जाने पर भी यह चिट्ठी आपको समय पर मिल जाय।

मेरी यह भी इच्छा है कि मेरी यह चिट्ठी और सर सेम्युअल होर की लिखी हुई चिट्ठी शीघ्र-से-शीघ्र प्रकाशित की जाय। मैंने अपनी ओर से पूरी ईमानदारी से साथ जेल के नियमों का पालन किया है और अपनी इच्छा या इन दो चिट्ठियों का मजमून सरदार वल्लभभाई पटेल और महादेव देसाई इन दो साथियों को छोड़ और किसी को नहीं बताया है। पर यदि आप इसे सम्भव बना दें तो मैं चाहता हूं कि मेरी चिट्ठियों का प्रभाव जनता पर पड़े। इसीलिए इन्हें शीघ्र प्रकाशित करने का मैं अनुरोध करता हूं।

खेद है कि मुझे यह निश्चय करना पड़ा। पर मैं अपने को धार्मिक पुरुष समझता हूं और इस नाते मेरे सामने कोई दूसरा मार्ग नहीं रह गया है। सर सेम्युअल होर को मैंने जो चिट्ठी लिखी उसमें मैं कह चुका हूं कि परेशानी से बचने के लिए ब्रिटिश-सरकार मुझे छोड़ देने का निश्चय भले ही करे, पर मेरा अनशन बराबर जारी ही रहेगा। क्योंकि अब मैं अन्य किसी उपाय से इस निर्णय का विरोध करने की आशा नहीं कर सकता। और सम्मानयुक्त उपाय को छोड़ किसी दूसरे उपाय से अपनी रिहाई करा लेने की मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है।

सम्भव है, मेरा निर्णय दूषित हो और मेरा यह विचार बिलकुल गलत हो कि दलित-वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन रहना उनके या हिन्दुत्व के लिए हानिकर है। यदि ऐसा हो तो अपने जीवन-सिद्धान्त के अन्य अंगों के सम्बन्ध में मेरे सही रहने की सम्भावना नहीं। उस दशा में अनशन करके मर जाना मेरी भूल के लिए प्रायश्चित्त होगा और उन असंख्य स्त्री-पुरुषों के सिर से एक बोझ दूर हो जायगा जो मेरी समझदारी पर बालकों-जैसा विश्वास रखते हैं। पर यदि मेरा निर्णय ठीक हो, और मुझे सन्देह नहीं कि यह ठीक है, तो इस निश्चय से मेरे जीवन का कार्यक्रम उचितरूप से पूर्ण होगा, जिसके लिए मैंने २५ साल से भी अधिक समय से यत्न किया है और जिसमें काफी सफलता मिली है।

आपका विश्वसनीय मित्र—

मो० क० गांधी

४. प्रधान-मंत्री श्री रैमजे मैकडानल्ड ने ८ सितम्बरको निम्न पत्र गांधीजीके पास भेजा—

प्रिय गांधीजी,

आपका पत्र मिला। पढ़कर आश्चर्य, और कहना चाहता हूं कि, बहुत ही हार्दिक दुःख भी हुआ। इसके सिवा मैं यह कहने के लिए भी बाध्य हूं कि दलित-वर्ग के सम्बन्ध में सम्राट्-सरकार के निर्णय का वास्तविक अर्थ क्या है, इसे समझने में आपको भ्रम हो रहा है। हम इस बात को सदा समझते रहे हैं कि आप दलितवर्ग के सदा के लिए हिन्दू-जाति से अलग कर दिये जाने के अटल विरोधी हैं। गोलमेज-परिषद् की अल्पसंख्यक-समिति में आपने अपनी स्थिति बिलकुल साफ तौर से बताई थी और आपने ११ मार्च वाले पत्र में सर सेम्युअल होर को फिर से भी आपने अपना मत बता दिया था। हम यह भी जानते हैं कि हिन्दू जनता के एक बहुत बड़े भाग का भी इस विषय में वही मत है जो आपका है। अतः दलित-वर्ग के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर विचार करते समय हमने उसपर बहुत ही सावधानी से विचार किया।

अछूतों की समस्याओं से मिली हुई बहु-संख्यक अपीलों तथा उनकी सामाजिक बाधाओं के विचार से, जिन्हें आम तौर से सभी स्वीकार करते हैं और खुद आप भी अनेक बार स्वीकार कर चुके हैं, कौंसिलों के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध में उनके न्याययुक्त अधिकार की रक्षा करना हमने अपना कर्तव्य समझा। साथ ही हमें इस बात का भी उतना ही ध्यान रहा है कि हमारे हाथ से कोई ऐसी बात न होनी चाहिए जो अछूतों को सदा के लिए हिन्दू-जाति से अलग कर दे। अपने ११मार्च वाले पत्र में आपने खुद ही कहा है कि आप अछूतों को कौंसिलों में प्रतिनिधित्व दिये जाने के खिलाफ नहीं हैं।

सरकारी योजना के अनुसार अछूत हिन्दू-जाति के अंग बने रहेंगे और उनके साथ बराबरी की हैसियत में शामिल होकर वोट दे सकेंगे। पर २० साल तक निर्वाचन में, हिन्दुओं के साथ शामिल रहते हुए भी, थोड़े-से खास हलकों के जरिये अपने स्वार्थों की रक्षा का उपाय करते रहेंगे, जो हमारा निश्चय है कि वर्तमान स्थिति में आवश्यक है।

जहां-जहां ऐसे हलके बनाये जायंगे, अछूत-वर्ग साधारण हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्रके वोट से वंचित न होंगे, बल्कि उन्हें दो दो वोट देने का अधिकार दे दिया जायगा, जिसमें हिन्दू-जाति के साथ उनका सम्बन्ध अविकल बना रहे।

आप जिसे साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र कहते हैं, अछूतों के लिए वैसे हलके हमने जान-बूझकर नहीं बनाये हैं और सम्पूर्ण अछूत-वोटरों को साधारण अर्थात् हिन्दू-निर्वाचन-क्षेत्रों में शामिल कर दिया है, जिसमें उच्च-जाति के हिन्दू उम्मीदवारों को अछूत-वोटरों के पास जाकर वोट मांगना पड़े अथवा अछूत उम्मीदवारों को ऊंची जातिवाले हिन्दू वोटरों के पास वोट मांगने जाना पड़े। इस प्रकार हिन्दू जाति की एकता की सब प्रकार से रक्षा की गई है।

तथापि हमने सोचा कि उत्तरदायी शासन के आरम्भिक काल में जब प्रान्तों में शासनाधिकार उसी वर्ग के हाथ में रहेगा जिसका कौंसिल में बहुमत होगा अलबत्ता यह आवश्यक होगा कि दलित वर्ग, जिसके विषय में आप खुद भी स्वीकार करते हैं कि उच्च जाति के हिन्दुओं ने शताब्दियों से उन्हें नीची अवस्था में डाल रक्खा है, ९ में से ७ प्रांतों की कौंसिलों में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि भी भेज सकें जो उनके दुःख-दर्दों व आदर्शों को प्रकट कर सकें और उनके विरुद्ध निर्णय होने से रोक सकें, अर्थात् जिनके द्वारा इस वर्ग का मत प्रकट हो सके। प्रत्येक न्यायशील व्यक्ति को इस व्यवस्था की आवश्यकता स्वीकार करनी होगी। हमारे विचार से वर्तमान परिस्थिति में संरक्षित-स्थान

सहित संयुक्त-निर्वाचन की व्यवस्था में दलित-वर्ग के लिए अपने ऐसे सदस्य कौंसिलों में भेजना संभव होगा जो उनके वास्तविक प्रतिनिधि और उनके सामने जिम्मेदार हों चाहे मताधिकार की जितनी भी व्यवस्थायें इस समय संभव हैं उनमें से कोई भी क्यों न की जाय। कारण यह कि इस व्यवस्था में उनके प्रायः सभी सदस्य उच्च जातियों के हिन्दुओं द्वारा ही चुने जायंगे।

हमारी योजना में अछूतों को साधारण निर्वाचन-क्षेत्रों में मताधिकार देते हुए उनके लिए थोड़े से अलग हलके बना दिये गये हैं। मुसलमान आदि अल्प-संख्यकों के लिए की गई साम्प्रदायिक निर्वाचन की व्यवस्था से यह रूप और प्रभाव में सर्वथा भिन्न है। एक मुसलमान साधारण हलके में वोट न दे सकता है और न उम्मीदवार हो सकता है। मुसलमानों को जिस स्थान में जितनी जगहें दी गई हैं उससे वे एक भी अधिक नहीं प्राप्त कर सकते। अधिकतर प्रान्तों में उन्हें अपनी जन संख्या के अनुपात से अधिक जगहें दी गई हैं। पर दलित-वर्ग को खास हलकों के द्वारा जो जगहें दी गई हैं वे बहुत अल्प हैं और उनकी जन-संख्या के अनुपात के विचार से नहीं नियत की गई हैं। इस व्यवस्था का एकमात्र उद्देश्य यही है कि वे कौंसिलों में अपने कुछ ऐसे प्रतिनिधि अवश्य भेज सकें जो केवल उन्हींके चुने हों। हर जगह उनके इन विशेष स्थानों की संख्या उनकी आबादी के अनुपात से बहुत कम है।

मैं समझता हूं कि आप जो अनशन के द्वारा प्राण-त्याग का विचार कर रहे हैं, उसका उद्देश्य न तो यह है कि दलित-वर्ग दूसरे हिन्दुओं के साथ संयुक्त-निर्वाचन-क्षेत्र में शामिल हों, क्योंकि यह अधिकार तो उन्हें मिल ही चुका है, और न यही है कि हिन्दुओं की एकता बनी रहे, क्योंकि इसका भी उपाय किया जा चुका है, किन्तु केवल यह है कि अछूत लोग, जिनके लिए आज भीषण बाधाएं उपस्थित होने की बात सभी स्वीकार करते हैं, अपने थोड़े-से भी प्रतिनिधि ऐसे न भेज सकें, जो उनके अपने चुने हुए हों और जो उनके भाग्य की निर्णायक-कौंसिलों में उनके प्रतिनिधि की हैसियत से बोल सकें।

सरकारी योजना के इन अति न्याय-युक्त तथा बहुत सोच-विचार कर किये हुए प्रस्तावों को देखते हुए मेरे लिए आपके निश्चय का कोई समुचित कारण देख सकना सर्वथा असम्भव हो गया है और मैं केवल यही सोच सकता हूं कि वस्तुस्थिति को समझने में भ्रम हो जाने के कारण आपने ऐसा निश्चय किया है।

जब आपस में समझौता न कर सकने पर भारतीयों ने आम तौर से अपील की तब कहीं उसने अपनी इच्छा के विरुद्ध अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर अपना फैसला सुनाना स्वीकार किया। अब वह उसे सुना चुकी है और अब जो शर्तें उसमें रक्खी गई हैं उनके सिवा और किसी तरह यह बदला नहीं जा सकता। अतः मुझे खेद के साथ आपसे यही कहना पड़ रहा है कि सरकार का निश्चय कायम है और केवल विभिन्न सम्प्रदायों का आपस का समझौता ही उस निर्वाचन-व्यवस्था के बदले स्वीकार किया जा सकता है कि जिसे सरकार ने परस्पर-विरोधी दावों का सामंजस्य करने की सच्ची नीयत से तजवीज किया है।

आपका अनुरोध है कि यह पत्र-व्यवहार मय आपके उस पत्र के जो १५ मार्च को आपने सर सेम्युअल होर को लिखा था, प्रकाशित कर दिया जाय। चूंकि मुझे यह उचित नहीं जान पड़ता कि नजरबन्द होने के कारण आप जनता के सामने अपने अनशन के निश्चय के कारणों को रखने से वंचित रहें, इसलिए यदि आपने इस अनुरोध को दुहराया तो मैं उसे सहर्ष स्वीकार कर लूंगा।

भी मैं एकबार और आपसे साग्रह अनुरोध करना चाहता हूं कि आप सरकारी निर्णय की तफसीलों पर विचार करें और अपनी अन्तरात्मा से गंभीर भाव से प्रश्न करें, कि आपने जो करने का विचार किया है क्या वह सचमुच उचित है?

आपका—

जे० रैमजे मैकडानल्ड

५, गांधीजी ने यरवडा सेन्ट्रल जेल से ९ सितम्बर १९३२ को प्रधानमंत्री को निम्न पत्र भेजा—

प्रिय मित्र,

आज तार द्वारा भेजे गये और प्राप्त हुए आपके स्पष्ट और पूर्ण उत्तर के लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूं; तथापि मुझे खेद है कि आपने मेरे निश्चय का ऐसा अर्थ किया जिसका मुझे कभी ध्यान ही न हुआ था। मैं उसी वर्ग की ओर से बोलने का दावा करता हूं जिसके स्वार्थों की हत्या करने के लिए, आप कहते हैं, मैं अनशन करके मर जाना चाहता हूं। मुझे आशा थी कि इस आखिरी उपाय के कारण का कोई ऐसा स्वार्थपूर्ण अर्थ न करेगा। दलीलें दिये बिना मैं फिर कहता हूं कि मेरे लिए यह विषय शुद्ध धार्मिक विषय है। केवल यही बात कि 'दलित' वर्गों को द्विविध मत मिले हैं, उन्हें या सामान्यतः हिन्दू-समाज को विच्छिन्न होने से नहीं रोकती। 'दलित' वर्गों के लिए पृथक्-निर्वाचन की स्थापना मात्र में मुझे उस विष के इंजेक्शन की गन्ध मिलती है जिससे हिन्दुत्व नष्ट हो सकता है और 'दलित' वर्गों को कुछ लाभ नहीं मिल सकता। कृपाकर मुझे यह कहने दीजिये कि आप कितनी ही सहानुभूति क्यों न रखते हों, आप ऐसे विषय में ठीक-ठीक निश्चय पर नहीं पहुंच सकते जो हिन्दू और अछूत दोनों के लिए जीवन-मरण का प्रश्न है और धार्मिक दृष्टि से बहुत महत्व रखता है।

मैं 'दलित' वर्गों के आवश्यकता से भी अधिक प्रतिनिधित्व का विरोध न करूंगा। मैं इसी बात के विरुद्ध हूं कि वे कानून बनाकर हिन्दू-समाज से पृथक् कर दिये जायं (फिर यह पार्थक्य कितना ही सीमित क्यों न हो) जब तक वे इस समाज के अन्दर रहना चाहते हैं। क्या आप जानते हैं कि यदि आपका निश्चय बना रहा और शासन-विधान काम में आ जाय तो आप हिन्दू सुधारकों के, जिन्होंने अपने-आपको जीवन की हर दिशा में अपने दलित भाइयों का उद्धार करने के लिए समर्पण कर दिया है, कार्य की आश्चर्यजनक उन्नति को रोक देंगे?

इसलिए मुझे खेदपूर्वक अपने पूर्व-निश्चय पर कायम रहने को लाचार होना पड़ता है।

आपकी चिट्ठी से भ्रम उत्पन्न हो सकता है, इसलिए मैं कह देना चाहता हूं कि आपके निर्णय के अन्य अंशों से मैंने 'दलित' वर्गों के प्रश्न को अलग कर उस पर खास तौर से जो विचार किया है उसका यह अर्थ नहीं होता कि मैं आपके निर्णय के अन्य अंशों से सहमत हूं। मेरी राय में अन्य कई अंश बहुत ही आपत्तिजनक हैं। पर मैं उन्हें ऐसा नहीं समझता जो मुझे इतना आत्म-बलिदान करने की प्रेरणा करें जितना मेरी अन्तरात्मा ने 'दलित' वर्गों के सम्बन्ध में करने की मुझे प्रेरणा की है।

आपका विश्वसनीय मित्र—

मो० क० गांधी

६, गांधीजी ने १५ सितम्बर को अनशन के निश्चय के सम्बन्ध में बम्बई-सरकार को अपना जो वक्तव्य भेजा था और जो २१ सितम्बर को प्रकाशित किया गया था, वह इस प्रकार है—

"मेरे अनशन का निश्चय ईश्वर के नाम पर, और जैसा कि मैं नम्रता के साथ विश्वास करता हूं, उसके आदेश पर किया गया है। मित्रों का आग्रह है कि मैं उसे कुछ दिनों के लिए टाल दूं, जिससे जनता को अपना संगठन कर लेने का समय मिल जाय। मुझे खेद से कहना पड़ता है

कि अब उसके दिन को कौन कहे, घण्टे को बदलना भी मेरे बस की बात नहीं है। प्रधान-मन्त्री के पत्र में जो बातें लिख चुका हूं उनके अतिरिक्त और किसी भी कारण से मेरा उपवास टल नहीं सकता।

मेरा भावी अनशन उन लोगों के विरुद्ध है जो मुझ में विश्वास रखते हैं, चाहे वे भारतीय हों या यूरोपियन, और उनके वास्ते है जो मुझ में विश्वास नहीं रखते। इसलिए वह अंग्रेज अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध नहीं है, पर उन अंग्रेज स्त्री-पुरुषों के विरुद्ध है जो अधिकारी-वर्ग के विरुद्ध उपदेशों को अनसुना करके भी मुझ में विश्वास करते हैं और मेरे पक्ष को न्याय-संगत मानते हैं। वह मेरे उन देशवासियों के भी विरुद्ध नहीं है जो मुझ में विश्वास नहीं रखते, चाहे वे हिन्दू हों या और कोई, किन्तु वह उन अगणित देशवासियों के विरुद्ध है—चाहे वे किसी भी दल और विचार के क्यों न हों—जिनका विश्वास है कि मेरा पक्ष न्याय का पक्ष है। सर्वोपरि, हिन्दू-समाज की अन्तरात्मा को सच्चा धर्म पालने के लिए प्रेरित करना उसका उद्देश्य है।

केवल भावोद्दीपन मेरे संकल्पित उपवास का उद्देश्य न होगा। मैं अपना सारा वजन—जो-कुछ भी वह है—न्याय, शुद्ध न्याय के पलड़े पर धर देना चाहता हूं। अतः मेरी प्राण-रक्षा के लिए अनुचित उतावली और परेशानी न होनी चाहिए। इस वचन में मेरा अटल विश्वास है कि उसकी (भगवान् की) मरजी के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। उसे इस देह से कुछ काम लेना होगा तो वह इसे बचावेगा। उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई भी इसे बचा नहीं सकता। मनुष्य की दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि मेरा विश्वास है, कुछ दिन तक वह बिना अन्न के जी सकता है।

पृथक्-निर्वाचन मेरे निश्चय के लिए एक निमित्त-मात्र था। वर्णाश्रमी हिन्दू-नेताओं और दलित-नेताओं के काम-चलाऊ समझौते से काम न चलेगा। समझौता न्यायोचित तभी हो सकता है जब वह वास्तविक हो। यदि हिन्दू जनता का अन्तःकरण अस्पृश्यता को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने को कभी तैयार नहीं हुआ है तो मेरा बलिदान कर देने में तनिक भी आगा-पीछा न करना चाहिए।

जो लोग संयुक्त-निर्वाचन के विरोधी हैं उन पर तनिक भी दबाव न डालना चाहिए। उनके तीव्र विरोध को मैं सहज ही समझ सकता हूं। मेरा अविश्वास करने का उन्हें पूरा अधिकार है। क्या मैं उसी हिन्दू-वर्ग का नहीं हूं, जो भ्रमवश उच्च वर्ग अथवा सवर्ण-वर्ग कहा जाता है, जिसने अछूत कहे जानेवालों को पीसकर रख दिया है—और आश्चर्य तो यह है कि इतना सब हो जाने पर भी समाज के अन्दर बना हुआ है!

पर उनके विरोध को सकारण मानते हुए भी मैं मानता हूं कि वे भूल कर रहे हैं। वे दलित जातियों को हिन्दू-समाज से काटकर सर्वथा अलग कर ले सकते हैं और उनका पृथक् वर्ग बना सकते हैं। यद्यपि यह हिन्दू-धर्म के लिए एक चिरस्थायी जीवित कलंक-रूप होगा, पर मुझे इसकी परवा न होगी, बशर्ते कि इससे अछूतों का सच्चा हित होता हो। पर मैंने अछूतों की सभी श्रेणियों का बहुत निकट से परिचय प्राप्त किया है और इस जानकारी के कारण मुझे निश्चय हो गया है कि उनका जीवन सवर्ण हिन्दुओं के, जिनके बीच वे रहते और जिनपर उनका जीवन अवलम्बित है, जीवन से इस प्रकार मिला-जुला है कि उन्हें अलग करना असम्भव है। दोनों वर्ग एक ही कुटुम्ब के व्यक्ति हैं। अछूत यदि हिन्दुओं के साथ विद्रोह करने और हिन्दू-धर्म को सदा के लिए नमस्कार कर देने को तैयार हो जायं तो मुझे इसपर आश्चर्य न करना चाहिए। पर जहां तक मैं समझता हूं वे ऐसा न करेंगे। हिन्दू-धर्म में कोई ऐसी अनिर्वचनीय सूक्ष्म वस्तु है जो उनकी इच्छा के विरुद्ध भी उन्हें उससे अलग नहीं होने देती। और इस कारण मेरे-जैसे व्यक्ति के लिए, जिसे उनका वास्तविक

अनुभव है, यह अनिवार्य हो जाता है कि वह अपने प्राण देकर भी अछूतों के प्रस्तावित पृथक्करण का विरोध करे।

इस प्रतिकार का फलितार्थ बड़ा गम्भीर है। जिस समझौते से दलित-वर्ग को हिन्दू-समाज के घेरे के अन्दर पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिलती वह कदापि इस योग्य न होगा कि प्रस्तावित पृथक्करण के बदले स्वीकार किया जा सके। अपने ऊपर लिये हुए कर्तव्य के सम्बन्ध में तनिक भी चालाकी या झुठाई से काम लिया गया तो इसका नतीजा केवल यही होगा कि मेरा प्राण-त्याग कुछ दिनों के लिए टल-भर जायगा, और इसके बाद उन लोगों के विषय में भी यही बात होगी जो इस विषय में मेरे ही जैसा विचार रखते हैं। उत्तरदायी हिन्दू नेताओं को इस बात पर विचार करना होगा कि यदि सामाजिक, नागरिक और राजनैतिक क्षेत्रों में दलितवर्ग पर आज-के-से अत्याचार होते ही रहे तो क्या वे मेरे जैसे एक सुधारक का नहीं, बल्कि सुधारकों की एक वर्द्धमान सेना के चिर-अनशन-रूपी सत्याग्रह का सामना करने को तैयार होंगे? मेरा विश्वास है कि आज भारत में ऐसे सुधारक काफ़ी संख्या में मौजूद हैं, जो दलित-जातियों के उद्धार और उसके द्वारा हिन्दू-धर्म को उसके युग-युगान्तर के एक अन्धविश्वास से मुक्त करने के प्रयत्न में अपने प्राणों को तुच्छ समझें। मेरे साथ काम करने वाले सुधारक भाइयों को भी इस उपवास का अर्थ भली-भांति समझ लेना चाहिए।

यदि यह भ्रान्ति है, तो मुझे अवश्य चुपचाप उसका प्रायश्चित्त करने देना चाहिए; और ईश्वरीय प्रेरणा है, तो यह हिन्दू-धर्म की छाती पर से एक भारी चट्टान को हटा देगा। ईश्वर करे, मेरी यंत्रणा हिन्दू धर्म के अन्तःकरण को शुद्ध करदे और उनके हृदयों को द्रवित भी कर सके जिनकी प्रवृत्ति तत्काल मुझे कष्ट पहुंचाने की हो रही है।

मेरे उपवास के मुख्य हेतु के विषय में कुछ भ्रम मालूम होता हो, इसलिए मैं फिर यह बता देना चाहता कि हूं उसका उद्देश्य दलितवर्ग के लिए पृथक्-निर्वाचन की व्यवस्था का—चाहे वह किसी भी प्रकार की क्यों न हो—विरोध करना है। ज्योंही वह वापस ले लिया गया कि मेरा अनशन समाप्त हो जायगा। स्थान-संरक्षण के सम्बन्ध में इस समस्या को हल करने का सर्वोत्तम प्रकार क्या होगा, इस विषय में भी मेरे निश्चित विचार हैं। पर एक कैदी की हैसियत से मैं अपने प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए अपने-आपको अधिकारी नहीं समझता। तथापि संयुक्त-निर्वाचन के आधार पर सवर्ण हिन्दुओं और दलितवर्ग के जिम्मेदार नेताओं के बीच कोई समझौता हो, और वह सब प्रकार के हिन्दुओं की बड़ी-बड़ी सार्वजनिक सभाओं में स्वीकृत हो जाय, तो मैं उसे मान लूंगा।

एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं। यदि दलितवर्ग के प्रश्न का सन्तोपजनक निपटारा हो जाय, तो इसका यह मतलब नहीं लगाना चाहिए कि साम्प्रदायिक प्रश्न के अन्य भागों के सम्बन्ध में सरकार ने जो निश्चय किया है उसे मानने के लिए मैं बाध्य हूं। मैं स्वयं उसके और भी अनेक अंशों का विरोधी हूं, जिनके कारण मेरी समझ में कोई भी स्वतंत्र एवं लोकतन्त्र शासन-प्रणाली के अनुसार कार्य करना प्रायः असम्भव है। इस प्रश्न का निर्णय सन्तोप-जनक रूप से हो जाने का यह मतलब भी न निकालना चाहिए कि जो शासन-विधान तैयार होगा, उसे मान लेना ही मेरे लिए लाजिमी हो। ये ऐसे राजनैतिक सवाल हैं जिनपर विचार करना और जिनके सम्बन्ध में अपना निर्णय देना भारतीय कांग्रेस का ही काम है। ये व्यक्तिगत रूप से मेरे विचार-क्षेत्र से बिलकुल बाहर हैं। फिर इन प्रश्नों के सम्बन्ध में तो मैं अपनी निजी राय भी प्रकट नहीं कर सकता, क्योंकि मैं तो इस समय सरकार का कैदी हूं।

मेरे अनशन का सम्बन्ध एक निर्दिष्ट संकुचित क्षेत्र से ही है। दलितवर्गों का प्रश्न प्रधानतया एक धार्मिक प्रश्न है, और उसके साथ मैं अपने को विशेषरूप से सम्बद्ध समझता हूं. क्योंकि मैं अपने जीवन में हमेशा ही उसपर विचार करता रहा हूं। मैं उसे अपने लिए एक ऐसी पवित्र धरोहर समझता हूं, जिसकी जिम्मेदारी को मैं छोड़ नहीं सकता।

प्रकाश और तपस्या के लिए उपवास एक बहुत पुरानी प्रथा है। मैंने ईसाई-धर्म तथा इस-लाम में भी इसका उल्लेख देखा है। हिन्दू-धर्म में तो आत्म-शुद्धि एवं तपस्या के उद्देश्य से किये गये उपवास के उदाहरण भरे पड़े हैं। किन्तु यह एक विशेष एवं उच्च उद्देश्य के साथ-साथ धर्म समझकर ही किया जाना चाहिए। फिर मैंने तो अपने लिए यथाशक्ति इसे वैज्ञानिक रूप दे डाला है। अतः इस विषय का विशेषज्ञ होने के नाते मैं अपने मित्रों और सहानुभूति प्रदर्शित करनेवालों को सचेत कर देना चाहता हूं कि आप लोग बिना सोचे-समझे अथवा सहानुभूति की क्षणिक व्या-कुलता में पड़कर मेरा अनुकरण न करें। जो लोग ऐसा करने के लिए इच्छुक हों, उन्हें कठिन परि-श्रम और अछूतों की निःस्वार्थ सेवा-द्वारा अपने को उसके योग्य बना लेना चाहिए, तब यदि उनके उपवास का समय आ गया होगा तो उनके हृदय में भी स्वतंत्र रूप से उसका प्रकाश पड़ जायगा।

अन्त में मैं यह भी कह देना चाहता हूं कि यह उपवास मैं पवित्र-से-पवित्र उद्देश्यों से प्रेरित होकर ही कर रहा हूं, किसी भी व्यक्ति के प्रति क्रोध या द्वेष की भावना से प्रेरित होकर नहीं। मेरे लिए तो यह अहिंसा का ही एक रूप और उसकी अन्तिम मुहर है। अतः यह स्पष्ट है कि जो लोग उन लोगों के प्रति वादविवाद में किसी तरह का द्वेष भाव या हिंसा प्रदर्शित करेंगे, जिन्हें वे मेरे प्रतिकूल या मैं जिस उद्देश्य की सिद्धि के लिए यत्न करता हूं उसके विरुद्ध समझते हों, तो इस कार्यद्वारा वे मेरी मृत्यु का आह्वान और भी शीघ्रतापूर्वक करेंगे। उद्देश्यों की नहीं तो कम-से-कम इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए तो यह परमावश्यक है कि अपने विरोधियों के साथ पूर्ण सौजन्य का व्यवहार किया जाय और उनके भावों के प्रति आदर दिखाया जाय।

मो० क० गांधी

२

पत्र-प्रतिनिधियों से बातचीत

२० सितम्बर १९३२ को पत्र-प्रतिनिधियों को गांधीजी से जेल में मिलने की अनुमति मिली। गांधीजी से उनकी हुई बातचीत का जो विवरण २१ सितम्बर के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' में प्रका-शित हुआ, वह नीचे दिया जाता है—

आज नौ महीने में सबसे पहले सायंकाल ५॥ बजे यरवडा-जेल में पत्रकार लोग गांधीजी से मिल सके। मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि जीवन में जितनी मुलाकातें करने का मुझे सौभाग्य मिला है उनमें यही एक ऐसी मुलाकात थी जिसमें बहुत ही गम्भीर विचारपूर्ण बातचीत बड़ी आसानी के साथ हुई। ऐसा कोई भी पत्रकार न था जो आमरण अनशन प्रारम्भ करने के ५ घंटे बाद गांधीजी से मिला हो, और उनसे सारी स्थिति पर बातचीत कर लेने के बाद उनसे अत्यन्त प्रभावित न हुआ हो।

जब गांधीजी से यह सवाल किया गया, कि क्या आपको इस प्रकरण के भले प्रकार समाप्त होने की आशा है? तो गांधीजीने कहा "मैं बड़ा प्रबल आशावादी हूं। यदि परमात्मा ने मुझे त्यागा नहीं है तो आशा करता हूं कि यह अनशन आमरण न होगा।"

गांधीजी ने कहा कि मेरे पास कई लोगों के तार आये हैं, जिनके द्वारा उन्होंने यह सूचित किया है कि मेरे साथ सहानुभूति करने के लिए उन्होंने भी अनशन करने का निश्चय किया है, या इच्छा प्रदर्शित की है। मैं उन हरेक से अनुरोध करता हूं कि वे मेरी सहानुभूति में अनशन न करें। मैंने यह अनशन ईश्वर की प्रेरणा पर किया है। इसलिए जबतक किसी व्यक्ति की अन्तरात्मा को इसी प्रकार की निश्चित ईश्वरीय प्रेरणा न हो तबतक उसे अनशन न करना चाहिए। आत्मशुद्धि के लिए या इस कार्य से अपनी सहमति प्रकट करने के लिए यदि एक दिन अनशन किया जाय तो हर्ज नहीं; लेकिन इससे अधिक नहीं। इस प्रकार का अनशन केवल कर्तव्य ही नहीं बल्कि एक विशेषाधिकार है, जो उन्हीं लोगों को मिलता है जिन्होंने आत्म-नियंत्रण के द्वारा अपने-आपको इसके लिए तैयार कर लिया हो।"

इसके पश्चात् मुलाकात में अस्पृश्यों के, जिन्हें गांधीजी 'हरिजन' के नाम से पुकारते हैं, प्रतिनिधित्व का प्रश्न आया। उन्होंने सबसे पहले इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया कि बम्बई-सरकार को जो वक्तव्य उन्होंने भेजा था वह अभीतक प्रकाशित क्यों नहीं हुआ ? वह पांच दिन पहले ही दिया जा चुका था। यदि आज फिर उस वक्तव्य को वे तैयार करते तो सम्भवतः नई घटनाओं के कारण वह कुछ भिन्न होता। इसीलिए मुलाकात के अन्तमें गांधीजी ने कहा कि यह वक्तव्य की पुष्टि-मात्र है, आधार-भूत नहीं।

गांधीजी ने कहा—"मेरी सब बातें प्रकट ही हैं। जहांतक इस मामले का सम्बन्ध है, जेल के सीखचों के अन्दर से मैं कुछ नहीं कह सकता था। लेकिन चूंकि अब मेरे ऊपर से प्रतिबन्ध हटा लिये गये हैं, मैंने सबसे पहले पत्र-प्रतिनिधियों से मुलाकात की है। मेरा अनशन केवल पृथक्-निर्वाचन के विरुद्ध है, कानून-द्वारा स्थान सुरक्षित करने के विरुद्ध नहीं। यह कहना कि हरिजनों के लिए कानून-द्वारा स्थान सुरक्षित रखने के मेरे कट्टर विरोध से मेरे पक्ष को हानि पहुंचती है, केवल अंश रूप में सत्य है। कानून-द्वारा स्थान सुरक्षित करने का मैं वस्तुतः विरोधी था—अब भी विरोधी हूं पर कानून द्वारा सुरक्षित रखने की योजना मेरी स्वीकृति या अस्वीकृति के लिए मेरे सामने कभी रक्खी ही नहीं गई, इसलिए इस विषय पर मेरे कुछ निश्चय करने का प्रश्न ही न था। कानून-द्वारा स्थान सुरक्षित रखने के प्रश्न पर जब मैंने अपने मत पर और विचार किया, तब अवश्य ही मैंने उसका जोरदार शब्दों में विरोध किया। मेरा नम्र मत है कि स्थान सुरक्षित रखने से हरिजनों का हित होने की अपेक्षा उनकी इस अर्थ में हानि होगी कि इससे उनका राष्ट्रीय-विकास बन्द हो जायगा। कानून-द्वारा स्थान सुरक्षित करना एक प्रकार का सहारा है और जो आदमी किसी सहारे पर निर्भर करता है वह अपने-आपको उतने ही हद तक कमजोर बना लेता है।

"यदि लोग मेरी हंसी न उड़ायें तो मैं नम्रतापूर्वक अपना दावा पेश करूंगा, जो मैं हमेशा ही कहता रहा हूँ। वह दावा यह है कि मैं जन्मतः स्पृश्य हूं, पर स्वेच्छासे अस्पृश्य हूं और मैंने अपने ढंगसे अछूतों का—उनकी ऊंची जातियों का ही नहीं, क्योंकि मैं कह देना चाहता हूं कि यह उनके लिए शर्म की बात भले ही हो पर अछूतों में भी छोटी-बड़ी जातियां और श्रेणियां हैं—प्रतिनिधि बनने के लिए गुण प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। इसलिए मेरी महत्वाकांक्षा यह रही है कि जहांतक संभव हो मैं अछूतों की सबसे नीच श्रेणीका—जैसे वह श्रेणी, जिसपर नजर पड़ने से या जिसके पास पहुंचने से ही अपवित्रता हो जाती है—प्रतिनिधि बनूं और अपने-आपको उनके साथ मिला दूं। जहां कहीं मैं जाता हूं, मेरे मन में उनका विचार हमेशा बना रहता है, क्योंकि यह विष का प्याला मैं भरपेट पी चुका हूं। मैंने इन्हें मलाबार में देखा, कुछ से उड़ीसा में भेंट हुई, और मुझे विश्वास है कि उनकी उन्नति स्थान-संरक्षण

से न होगी, उनकी उन्नति इन्हीं के बीच रहकर हिन्दू-सुधारकों के कठिन परिश्रम से होगी। मैं समझता हूं कि इस पृथक्करण से सुधार की सब आशायें मर जातीं, इसीलिए मेरी सम्पूर्ण आत्मा ने इसके विरुद्ध बलवा किया।

"मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं। पृथक् निर्वाचन उठा लेने से मेरी प्रतिज्ञा का शब्दशः पालन तो हो जायगा, पर उसके भाव की रक्षा कदापि न होगी, और स्वेच्छा से बने हुए एक अस्पृश्य के नाते मैं किसी तरह किये गये समझौते से सन्तुष्ट न हो जाऊंगा। मैं अस्पृश्यता का जड़मूल से नाश चाहता हूं, इसीके लिए मैं जीवित हूँ और इसीके लिए मरने में मुझे आनन्द होगा। इसलिए मैं 'सच्चा समझौता' चाहता हूं, जिसकी जीवन-दायिनी शक्ति सुदूर भविष्य में नहीं, आज दिखाई देगी और इसलिए इस समझौते पर स्पृश्यों के भारत-व्यापी प्रदर्शन की मुहर लगनी चाहिए, जिसमें वे दिखाऊ अभिनय करके एक-दूसरे से न मिलें; पर सच्चे बन्धु-भाव से आलिंगन करें। अपने पिछले ५० साल के जीवन के इस स्वप्न को सत्य-सृष्टि में देखने के लिए ही मैंने अग्नि-द्वार में प्रवेश किया है। ब्रिटिश-सरकार का निश्चय तो निमित्त-मात्र था, एक निश्चित निदान पर पहुँचा देनेवाला लक्षण; और चूंकि मेरा दावा है कि इन मामलों में मेरा निदान एक कुशल वैद्य की भांति अचूक होता है, मैंने रोग के लक्षण को पहचान लिया। इसलिए पृथक्-निर्वाचन उठा लेना मेरे लिए मेरे कार्य का आरम्भ मात्र होगा; और मैं उन सब नेताओं को सावधान कर देता हूं जो एकत्र हुए हैं कि जल्दी में आकर निश्चय न करें।

"मुझे अपने प्राणों की कोई परवा नहीं। इस महान् कार्य के लिए ऐसे सैकड़ों आदमियों के प्राणत्याग से, मेरी राय में, उस पाशविकता का एक तुच्छ प्रायश्चित्त होगा जो हिन्दुओं ने अपने ही धर्म के निरीह स्त्री-पुरुषों पर की है। इसलिए मैं उनसे अनुरोध करता हूं कि वे कठोर न्याय-पथ से एक इंच भी अलग न हों। मैं अपने अनशन को न्याय की तराजू पर तबतक तौलना चाहता हूं, जब तक वर्णाश्रमी हिन्दू जाग नहीं पड़ते। लेकिन यदि मुझमें अन्ध-स्नेह रखने के कारण वे जिस प्रकार हो सके वैसे जैसा-तैसा निपटारा कर लें, इस हेतु कि पृथक्-निर्वाचन रद हो जाय, और फिर बेखबर होकर सो जायं तो वे एक बड़ी भारी भूल करेंगे और मेरा जीवन दुःखी बना देंगे; क्योंकि पृथक-निर्वाचन के रद होजाने पर यद्यपि मैं अपना अनशन तोड़ दूँगा; तथापि यदि समझौता वास्तविक नहीं हुआ जिसके लिए मैं घोर परिश्रम कर रहा हूं, तो मेरा जीना मेरे लिए जिन्दा मौत के समान होगा। ऐसा करने का तो परिणाम केवल यही होगा कि जैसे ही मैं अपना अनशन बन्द करूं वैसे ही मुझे दूसरे अनशन की सूचना दे देनी होगी, जिससे कि इस व्रत की मूल भावना की पूर्ण तरह रक्षा हो सके।

"सम्भव है कि ऊपर से देखनेवालों को यह बच्चों का-सा खिलवाड़ दिखाई दे, लेकिन मुझे यह ऐसा नहीं दिखाई देता। यदि इस अभिशाप को दूर करने के लिए मैं इससे भी कुछ अधिक दे सकता तो अवश्य उसे समर्पित करता। लेकिन अपने जीवन के सिवा मेरे पास और है ही क्या?

"मेरा विश्वास है कि यदि अस्पृश्यता का वास्तव में जड़-मूल से नाश हो गया तो इससे हिन्दू-धर्म का एक बड़ा भारी कलंक ही नहीं मिट जायगा वल्कि इसका असर सारी दुनियां तक पहुंचेगा। अस्पृश्यता के विरुद्ध मेरा संग्राम वास्तव में मानव-जाति की अशुद्धता के विरुद्ध संग्राम है। इसलिए जब मैंने सर सेम्युअल होर को पत्र लिखा तो वह इस बात में पूरी आस्था रखकर लिखा कि यदि मैंने, जहांतक मनुष्य के लिए सम्भव है, शुद्ध और सर्वथा द्वेष व क्रोध-रहित हृदय से इस बात को उठाया है तो मानव-परिवार के उच्चतम गुण अवश्य मेरी सहायता के लिए दौड़ पड़ेंगे। इस प्रकार आप देखेंगे कि मेरे अनशन का आधार सबसे पहले तो अपने कार्य पर मेरी श्रद्धा है और फिर

हिन्दू-समाज, मानव-प्रकृति एवं सरकारी-अफसरों में मेरी आस्था है।" आगे गांधीजी ने कहा—

"मैं समझता हूं कि अस्पृश्यता पर आक्रमण करके मैं प्रश्न की तह तक पहुंच गया हूं और इसलिए इस प्रश्न का अलौकिक महत्व है—राजनैतिक शासन-प्रणाली के अर्थ में यह स्वराज्य से भी बहुत अधिक महत्व का है। मैं तो यहांतक कहूँगा कि ऐसी शासन-प्रणाली भारी बोझ-स्वरूप होगी, यदि उसको नैतिक आधार न मिलेगा, जो करोड़ों दलितों के हृदय में इस आशा के रूप में उत्पन्न हुआ है कि उनके सिर से यह भारी बोझ उठाया जा रहा है। और चूंकि अंग्रेज अफसर चित्र के इस सजीव अंश को देख नहीं सकते, वे अपने अज्ञान और आत्म-संतोष के कारण ऐसे प्रश्नों का फैसला करने का साहस करते हैं जिनका सम्बन्ध करोड़ों लोगों के जीवन-मरण से है। यहां मेरा मतलब वर्णाश्रमी हिन्दुओं और अछूतों, दलन करनेवालों और दलितों—दोनों से है। नौकरशाही को भी उसके इस प्रगाढ़ अज्ञान से जाग्रत करने के लिए—आशा है कि इन शब्दों से किसी को दुःख देने का अपराधी मैं न होऊंगा—मेरी अन्तरात्मा ने मुझे प्राणपण से विरोध करने के लिए लाचार किया।"

गांधीजी ने कहा कि इमर्जेन्सी कमिटी के शिष्ट-मण्डल को, जो मुझसे कल मिला था, मैंने निश्चित सूचनायें की हैं। मैं समझता हूं कि आज बम्बई के पत्रों को वे सूचनायें मिल गई होंगी।

एक सम्भावित चित्र का जिक्र करते हुए गांधीजी ने अपने अन्त्येष्टि-संस्कार के बारे में विनोद में कुछ कहा। इस पर मैंने पूछा कि कल जब श्री देवदास आये थे तो क्या आपने अन्त्येष्टि-संस्कार के बारे में कोई हिदायतें की थीं, यदि दुर्भाग्य से इसकी नौबत ही आ जाय? इस पर गांधीजी ने तुरन्त यह जवाब दिया, "मैंने अपने पुत्र को बम्बई के सम्मेलन में अपनी ओर से यह कहने के लिए कह दिया है कि वह अपने पिता के पुत्र की हैसियत से इस बात के लिए तैयार है कि उसके पिता का जीवन चला जाय, लेकिन वह जल्दबाजी में दलित-वर्ग को कोई हानि पहुंचते देखना नहीं चाहता।"

"इस अनशन में आप कितने दिनों तक ठहर सकेंगे?" यह प्रश्न किया जाने पर गांधीजी ने कहा, "मैं जीने के लिए उतना ही उत्सुक हूं जितना कि कोई हो सकता है। जीवन-शक्ति को बनाये रखने का पानी में बड़ा भारी गुण है। जब कभी मुझे पानी की आवश्यकता मालूम होती रहेगी मैं पानी लेता रहूंगा। आप इस बात से निश्चिन्त रहें कि अपनी शक्ति बनाये रखने की बेहद कोशिश करूंगा, जिससे कि हिन्दुओं की ही नहीं बल्कि ब्रिटेनवासियों की अन्तरात्मा भी जाग्रत हो और इस पीड़ा का अंत हो जाय। मुझे विश्वास है कि मेरी पुकार उस परमपिता के सिंहासन तक अवश्य पहुंचेगी।"

४

पूना का समझौता

कौंसिलों में दलित-वर्ग के प्रतिनिधित्व तथा उनके हित से सम्बन्ध रखनेवाले कुछ दूसरे मामलों में दलितवर्ग और शेष हिंदू सम्प्रदाय के नेताओं के बीच नीचे लिखी शर्तों पर पूना का समझौता हुआ—

१. प्रान्तीय कौंसिलों में साधारण जगह में से नीचे लिखे अनुसार जगहें दलित-वर्गों के लिए सुरक्षित रहेंगी—

मदरास	३०	बम्बई और सिन्ध	१५

पंजाब	८	बिहार-उड़ीसा	१८
मध्यप्रान्त	२०	आसाम	७
बंगाल	३०	युक्तप्रान्त	२०
		कुल	१४८

प्रधान-मन्त्री के निश्चय में प्रांतीय कौंसिलों के लिए निर्धारित-सदस्य-संख्याओं के आधार पर ये संख्यायें रक्खी गई हैं।

२. इन स्थानों के लिए निर्वाचन संयुक्त होगा, पर निर्वाचन-प्रणाली नीचे लिखे अनुसार होगी—

निर्वाचन-क्षेत्र की साधारण निर्वाचन-सूची में दलित-वर्ग के जितने निर्वाचन रहेंगे उनका एक निर्वाचक-संघ होगा, जो दलित-वर्ग के सुरक्षित प्रत्येक स्थान के लिए दलित-वर्ग में से ४ प्रतिनिधि चुनेगा। संघ के प्रत्येक सदस्य को एक ही वोट देने का अधिकार होगा और जिन चार उम्मीदवारों को सबसे अधिक मत मिलेंगे वे ही दलित-वर्ग के प्रतिनिधि होंगे। और इस प्रारम्भिक चुनाव के चार प्रतिनिधि साधारण चुनाव के चार उम्मीदवार होंगे, जिनमें से एक संयुक्त-निर्वाचन-द्वारा दलित-वर्ग का प्रतिनिधि चुना जायगा।

३. केन्द्रीय धारा-सभा में भी दलित-वर्ग का प्रतिनिधित्व संयुक्त-निर्वाचन के सिद्धान्त पर स्थित होगा। यहां भी इस वर्ग को सुरक्षित स्थान मिलेंगे और निर्वाचन-प्रणाली वैसी ही होगी जैसी प्रांतीय कौंसिलों के लिए।

४. केन्द्रीय धारा-सभा में ब्रिटिश-भारत के लिए निर्धारित साधारण स्थानों में से १८ प्रतिशत स्थान दलित-वर्ग के लिए सुरक्षित रहेंगे।

५. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौंसिलों के लिए ४ उम्मीदवार चुनने की पूर्व कथित निर्वाचन-प्रणाली दस वर्ष बाद उठ जायगी, यदि वह नीचे लिखी शर्त (६) के अनुसार आपस के समझौते से इसके पहले ही न उठ गई हो।

६. प्रान्तीय और केन्द्रीय कौंसिलों में सुरक्षित स्थानों-द्वारा दलित-वर्ग के प्रतिनिधित्व की प्रथा तबतक जारी रहेगी जबतक इस समझौते से सम्बन्ध रखनेवाले सम्प्रदायों के आपस के समझौते से और कोई दूसरा निश्चय न हो।

७. दलित-वर्ग के लिए केन्द्रीय तथा प्रान्तीय कौंसिलों के मताधिकार की योग्यता लोथियन कमिटी की सिफारिश के अनुसार होगी।

८. किसी स्थानीय संस्था के निर्वाचन या सरकारी नौकरी पर नियुक्त होने के लिए कोई केवल इसी कारण अयोग्य न समझा जायगा कि वह दलित-वर्ग का सदस्य है। इसकी पूरी कोशिश की जायगी कि इस सम्बन्ध में दलित-वर्ग को पर्याप्त प्रतिनिधित्व मिले, बशर्ते कि सरकारी नौकरी के लिए निर्धारित योग्यता दलित-वर्ग के सदस्य में हो।

९. प्रत्येक प्रांत को शिक्षा के लिए दी जानेवाली आर्थिक सहायता में से यथेष्ट धन दलित-वर्ग के सदस्यों को शिक्षा-सम्बन्धी सुविधायें देने के लिए अलग कर दिया जायगा।

(हस्ताक्षर)

मदनमोहन मालवीय	डाक्टर अम्बेडकर	च० राजगोपालाचार्य
श्रीनिवासन्	तेजबहादुर सप्रू	एम० आर० जयकर

घनश्यामदास बिड़ला | एम० सी० राजा | एम० पिल्ले
सी० वी० मेहता | गवई | देवधर
स० वालू | वी० एस० कामत | राजभोज
ए० वी० ठक्कर | राजेन्द्रप्रसाद तथा अन्य नेतागण

३१

बिहार का भूकम्प

१५ जनवरी १९३४ को बिहार में एक भीषण भूकम्प आया, जिसने प्रान्त के बहुत-से भू-भाग को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। जितने भू-भाग पर इसका असर हुआ और जितना इससे नुकसान हुआ, इन दोनों बातों को देखते हुए, इतिहास में यही सबसे बड़ा भूकम्प माना गया है। कम-से-कम ३०,००० वर्गमील के भू-भाग को तो इसने बिलकुल चौपट ही कर दिया, जिसमें कि चम्पारन, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सारन, मुंगेर, भागलपुर और पूर्णिया जिले हैं। कम-से-कम डेढ़ करोड़ की आबादी को इससे नुकसान पहुंचा। कोई २०,००० व्यक्तियों की मृत्यु हुई, १० लाख से अधिक घर टूट-फूट कर बरबाद हो गये, और एक लाख के करीब कुएं व तालाब नष्ट-भ्रष्ट हुए। जमीन में दरारें पड़कर ८ लाख एकड़ से ज्यादा उपजाऊ जमीन उनसे निकली हुई रेत से ढक गई और बहुत-सा प्रदेश इसी तरह, दरारों से निकले हुए, पानी से आच्छादित हो गया। रेलें और सड़कें दूर-दूर तक नष्ट हो गईं, जिससे अनेक भागों में महीनों तक आना-जाना बहुत मुश्किल रहा।

सरकारी उपायों के अलावा, एक गैर-सरकारी कमिटी ने भी विस्तृत-रूप से इसमें सहायता-कार्य किया। यह कमिटी 'बिहार-सेण्ट्रल-रिलीफ़-कमिटी' के नाम से मशहूर है और कांग्रेसियों का इसमें प्राधान्य था। दर असल सबसे मुश्किल काम का बोझ तो उन कांग्रेसियों पर ही पड़ा, जो कि सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन के सिलसिले में जेलों में बन्द थे। कमिटी के प्रधान बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने ऐलान किया कि भूकम्प-पीड़ितों के सहायता-कार्य में मैं सरकार से सहयोग करने को तैयार हूं, और सरकार ने भी इस बात को अच्छी तरह माना है। कमिटी ने धन के लिए जो अपील की उसका खूब असर पड़ा; और एकदम उदारता-पूर्ण सहायता मिलने लगी। कोई २९ लाख के करीब तो नकद रुपया ही मिला। साथ ही बहुत बड़ी तादाद में कम्बल, पहनने-ओढ़ने के कपड़े, चावल, आटा, बर्तन, दवाइयां, चाय, बच्चों व बीमारों के खाने लायक चीजें तथा बांस, लकड़ी, टीन के पतरे, तिरपाल, टाट, तम्बू आदि मकान बनाने का सामान भी मिला, जो सब मिलाकर लगभग ३ लाख रुपये का होगा।

पहले से बनी हुई कोई संस्था न होने से, सहायता-विभाजन का काम आसान न था। कमिटी ने इसके लिए हरेक जिले में अपने एजेण्ट नियुक्त करके सहायता-केन्द्र खोले, जिनकी संख्या अन्त में २५० से अधिक हो गई थी। देश के सभी भागों से न केवल रुपये-पैसे व सामान की ही सहायता प्राप्त हुई, बल्कि स्वयंसेवकों की भी सहायता मिली। गांधीजी, सेठ जमनालाल बजाज और पं० जवाहरलाल नेहरू तक ने अपनी सेवायें अर्पित कीं। पं० जवाहरलाल तो राजद्रोह के अपराध में कैद की सजा मिलने से बाद में सेवा करने से वंचित रहे। जिन दिनों सहायता-कार्य बहुत जोरों पर था स्वयंसेवकों की संख्या २,००० से ज्यादा थी—और, उनमें डाक्टर, इंजीनियर, हिसाब-किताब के विशेषज्ञ (अकाउण्टेण्ट) व निरीक्षक (आडीटर) तथा प्रमुख जन-सेवक सभी थे।

तत्काल जो कार्य किया गया वह था मलवे को हटाना, मरे हुओं की लाशों की अन्त्येष्टि करना और लोगों के खाने, कपड़े, स्थायी निवास, पानी व दवा-दारू की व्यवस्था करना। किसानों के लिए ईख पेरने के कोल्हुओं की भी फौरन व्यवस्था की गई, जिससे कि उनकी गन्ने की फसल का उपयोग हो जाय; क्योंकि भूकम्प के कारण शक्कर के कारखाने तुरन्त चलने के काबिल नहीं रहे थे और यह व्यवस्था न की जाती तो ईख बरबाद हो जाती। इस तात्कालिक कार्य में कमिटी ने ७ हजार मन से ज्यादा नाज, २,००,०००रु०की रकम भोजन के लिए, २८,००० कम्बल व बहुत-सा कपड़ा बांटा, २ हजार से ज्यादा कुओं को साफ किया ३३१ नल के कुएं बनाये, और लोगों के रहने के लिए ७२,००० से ज्यादा आश्रय-स्थान या झोपड़ियां बनाईं अथवा उनके बनाने में सहायता पहुंचाई। इन कामों में १ लाख ९० हजार से अधिक रुपया खर्च हुआ, और जो माल बांटा गया वह अलग।

पुनर्निर्माण का कार्य मार्च के आखिर में शुरू हुआ, जिसमें सबसे पहले पानी की ओर ध्यान दिया गया। कमिटी ने कोई ७,००० नये कुएं खुदवाये और ७०० के करीब तालावों की फिर से खुदाई की। इस बात का निश्चय कमिटी ने शुरुआत में ही कर लिया था कि भिक्षा-वृत्ति को प्रोत्साहन न दिया जाय, बल्कि यह कोशिश हो कि खाना पानेवाले, उसके बदले में,थोड़ा-बहुत काम करें। अतएव बहुत-से व्यक्तियों को भूकम्प से नष्ट हुई गांव को सड़कों की मरम्मत करने, जलाशयों की फिर से खुदाई करने और उनके किनारे ठीक करने के काम में लगाया गया और बेकारों को काम देने के रूप में, कमिटी ने एक लाख के करीब रुपया खर्च किया। जिन लोगों को इस तरह सहायता मिली उनकी संख्या अकेले चम्पारन में ही, जिसपर भूकम्प का ऐसा असर सबसे ज्यादा हुआ था, लाखों पर पहुंच गई थी।

जिन जगहों पर भूकम्प ने बहुत तबाही की थी, और जिन बड़े-बड़े इलाकों में भूकम्प से बहुत नुकसान नहीं हुआ था, उनमें भी जुलाई और अगस्त में भीषण बाढ़ें आईं। इन्होंने भी कुछ कम-ज्यादा वैसी बरबादी की, जैसी कि भूकम्प से हुई थी; बल्कि कहीं-कहीं तो इसका असर उससे भी बदतर ही हुआ। पीड़ितों को रक्षा और सहायता का जो काम कमिटी कर रही थी वह अक्तूबर से बाद तक चलता रहा, और चूंकि सारी फसल व चारा दूर-दूर तक बाढ़ में नष्ट हो गये थे, मवेशियों को सहायता पहुंचाने का काम खास तौरसे जरूरी हो गया। बाढ़ पीड़ितों को बचाने के लिए कमिटी ने लगभग १५० नावों की व्यवस्था की, जिनमें से १०० उपयोग के लिए सरकार के जिम्मे कर दी गई थीं।

१९३४-३५ की सर्दियों में और उसके बाद कमिटी ने मकान बनाने के लिए विस्तृत रूप से सहायता देने का काम शुरू किया, जिसके लिए करीब ८ लाख रुपया लोगों में बांटा गया। साथ ही उसने लगभग ३ लाख रुपया झोंपड़ियों और अर्ध-स्थायी मकानों पर खर्च किया, जिसमें गरीब लोगों को छोटे-छोटे झोंपड़े या मकान बनाने के लिए दी जानेवाली छोटी-छोटी रकमें शामिल हैं। पानी की व्यवस्था पर ५ लाख ३५ हजार से ज्यादा खर्च हुआ। बाढ़-पीड़ितों के सहायतार्थ २॥ लाखसे ज्यादा खर्च हुआ। मवेशियों के सहायतार्थ ७५ हजार से ज्यादा हुआ, जिसमें लगभग ४९ हजार की वह रकम भी शामिल है जो दान-दाताओं ने इसी काम के लिए प्रदान की थी। करीब ३८ हजार दवा-दारू और डाक्टरी सहायता में खर्च हुआ। ३६ हजार के बीज भी बांटे गये। सहायता का एक तरीका और अख्तियार किया गया। वह यह कि नाज और मकान बनाने के सामान की सस्ती दुकानें खोल दी गईं, जहां पीड़ितों को खाने-पीने और मकान बनाने का सामान कम कीमत पर या लागत-

भाव पर मिलता था। इससे चीजें मंहगी होने का जो सिलसिला शुरू हुआ था वह दब गया।

अब जो काम हो रहा है वह मुजफ्फरपुर जिले में नये स्थानों पर, अनेक गांवों का नये सिरे से बनाया जाना है। वाइसराय-फण्ड और बिहार-सेन्ट्रल-रिलीफ-कमिटी के फण्ड की सहायता से, स्थानीय कार्यकर्त्ताओं के साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्वेच्छा-सेवा के प्रधान डा० पियरी सैरसोल की देख-रेख में यह काम हो रहा है।

एक समस्या ऐसी थी जो एक समय सबसे मुश्किल और खतरनाक प्रतीत हो रही थी, किन्तु सौभाग्यवश प्रकृति ने उसे बहुत-कुछ हल कर दिया है। दरारों से निकलकर जो रेत सब जगह फैल गई थी और फसल के लिए बहुत हानिकारक समझी जा रही थी, वह वैसी विनाशक साबित नहीं हुई है। जहां-जहां ऐसा हुआ था उसमें से अधिकांश जगह फसल उत्पन्न हो गई है। कमिटी का काम भी अब समाप्ति पर आ गया है, और खास-खास कामों के लिए रक्खे हुए रुपये को छोड़कर, उसका कोष भी प्रायः समाप्त हो चला है जिसका हिसाब-किताब और रिपोर्ट हरेक तीसरे महीने बराबर प्रकाशित होते रहे हैं।

१२

१९३५ की भारत और ब्रिटेन की व्यापारिक-सन्धि

ब्रिटिश-सरकार की ओर से सर वाल्टर रुन्सिमैन ने और भारत-सरकार की ओर से सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने लन्दन में जिस संधि-पत्र पर हस्ताक्षर किये हैं उसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह भी लिखा है कि जिस समय भारतीय उद्योग को काफी संरक्षण दिया जाने का प्रश्न जांच के लिए टैरिफ-बोर्ड के सम्मुख पेश होगा उस समय भारत-सरकार ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योग को भी अपनी बात कहने और अन्य सम्बन्धित दलों की कही हुई बातों का उत्तर देने का पूरा अवसर देगी।

भारत-सरकार यह भी अंगीकार करती है कि यदि संरक्षण-काल के बीच में ही रक्षित उद्योगों सम्बन्धी शर्तों में आमूल परिवर्तन किये जायंगे तो ब्रिटिश-सरकार की प्रार्थना पर या अपनी ही ओर से भारत-सरकार यह जांच करावेगी कि तीसरी कलम में दिये हुए सिद्धांतों की दृष्टि से मौजूदा कर ठीक है या नहीं, और इस जांच में ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योगों के आवेदन-पत्रों पर पूरा विचार किया जायगा।

मूल सन्धि-पत्र

नई दिल्ली, १० जनवरी

ओटावा के व्यापारिक संधि-पत्र की पुष्टि के रूप में ब्रिटिश-सरकार की ओर से सर वाल्टर रुन्सिमैन ने और भारत-सरकार की ओर से सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने जिस संधि-पत्र पर कल लंदन में हस्ताक्षर किये हैं वह इस प्रकार है—

ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार इस पत्र-द्वारा स्वीकार करती हैं कि ओटावा की व्यापारिक-संधि के दौरान में ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार की ओर से नीचे लिखी शर्तें उक्त सन्धि की पुष्टि के रूप में समझी जायंगी—

१—ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार मानती हैं कि जहां भारत की आर्थिक बहबूदी के लिए किसी भी विदेश से आनेवाले माल के प्रति भारतीय उद्योग को संरक्षण मिलना आवश्यक हो

सकता है, वहां भारतीय, ब्रिटिश या अन्य देशों के उद्योगों की ऐसी स्थिति भी हो सकती है कि भारतीय उद्योग को ब्रिटिश आयात की अपेक्षा अन्य देशों के आयात से अधिक संरक्षण की जरूरत हो।

२—ब्रिटिश-सरकार यह स्वीकार करती है कि वर्तमान स्थिति में भारत-सरकार की आय के लिहाज से आयात-करों की अनिवार्य आवश्यकता है और आयात-करों की मात्रा स्थिर करते समय आय का समुचित खयाल रखना ही चाहिए।

३—(१) भारत-सरकार वचन देती है कि संरक्षण ऐसे ही उद्योगों को दिया जायगा जो टैरिफ-बोर्ड की समुचित जांच के बाद भारत-सरकार की राय में संरक्षण के पात्र सिद्ध हों। परन्तु वह संरक्षण असेम्बली के १६ फरवरी १९२३ के प्रस्ताव में वर्णित विवेकपूर्ण संरक्षण की नीति के अनुसार दिया जायगा। यह वचन १९३३ के संरक्षण-कानून-द्वारा संरक्षित उद्योगों पर लागू न होगा।

(२) भारत-सरकार यह भी वचन देती है कि संरक्षण की मात्रा इतनी ही होगी, अधिक न होगी, कि आयात माल के मुकाबले में भारतीय माल ठीक-ठीक भावों पर बिक सके। और यह भी कि यथासंभव इस कलम की शर्तों का खयाल रखकर ब्रिटिश माल पर अन्य विदेशों के माल की अपेक्षा कम कर लगाया जायगा।

(३) इस धारा की पिछली उपधाराओं के अनुसार ब्रिटिश माल पर और अन्य विदेशी माल पर लगनेवाले कर की मात्रा में जो अन्तर रक्खा जायगा वह इस प्रकार नहीं बदला जायगा कि ब्रिटिश माल को हानि पहुंचे।

(४) इस धारा में दिये गये वचनों से भारत-सरकार के इस अधिकार में बाधा नहीं आयगी कि यदि आमदनी के खयाल से जरूरत महसूस हुई तो वह आवश्यक संरक्षण-कर से भी अधिक आयात-कर और लगा दे।

४—जब भारतीय उद्योग को काफी संरक्षण देने के प्रश्न की टैरिफ बोर्ड जांच करेगा, तो भारत-सरकार ब्रिटेन के सम्बन्धित उद्योग को भी अपनी बात कहने और अन्य सम्बन्धित दलों की कही हुई बातों का उत्तर देने का पूरा अवसर देगी। भारत-सरकार यह वचन देती है कि यदि संरक्षण काल के बीच में ही रक्षित उद्योगों-सम्बन्धी शर्तों में आमूल परिवर्तन किये जायंगे तो ब्रिटिश-सरकार की प्रार्थना पर या अपनी ओर ही से भारत-सरकार यह जांच करावेगी कि तीसरी धारा में दिये हुए सिद्धान्तों की दृष्टि से मौजूदा कर ठीक है या नहीं, और यह कि इस जांच में ब्रिटेन के संबंधित उद्योगों के आवेदन-पत्रों पर पूरा विचार किया जायगा।

५—जिस माल की आयात पर विवेकपूर्ण संरक्षण-कर लगाया जायगा उसकी तैयारी के लिए उपयोगी कच्ची या अध-पक्की सामग्री का भारतीय निर्यात बढ़ाने की दृष्टि से समस्त व्यावसायिक हितों के सहयोग से जो उपाय किये जायंगे उनका लिहाज ब्रिटिश-सरकार रक्खेगी, विशेषतः वह भारत-सरकार का ध्यान उन उपायों की ओर दिलाती है जो ब्रिटेन ने ओटावा की सन्धि की ८ वीं धारा के अनुसार भारतीय रुई की खपत बढ़ाने के लिए किये हैं। ब्रिटिश-सरकार वचन देती है कि वैज्ञानिक अनुसन्धान, व्यावसायिक जांच, बाजार के सहयोग और औद्योगिक प्रचार आदि सभी प्रकार से और व्यवसायियों के सहयोग से भारतीय रुई की खपत बढ़ाने का प्रयत्न किया जायगा।

६—ब्रिटिश-सरकार वचन देती है कि पिछली धारा के सिद्धान्तों के अनुसार भारत के गले हुए लोहे के साथ कर-मुक्त प्रवेश की रियायत तबतक जारी रहेगी जबतक १९३४ के लौह-संरक्षण कानून के अनुसार भारत में आनेवाले लोहे और इस्पात पर लगनेवाला कर ब्रिटेन के हक में कम लाभदायक नहीं कर दिया जाय। परन्तु इसका १९३४ के लोहे और इस्पात-कर-सम्बन्धी कानून की दूसरी धारा-द्वारा संशोधित १८९४ के भारतीय टैरिफ कानून की उपधारा ३ (४) और ३ (५) पर कोई प्रतिकूल असर नहीं होगा।

७—ब्रिटिश-सरकार और भारत-सरकार वचन देती हैं कि इस संधि के विषय में ब्रिटिश और भारतीय उद्योगों के अधिकार-प्राप्त प्रतिनिधि मिल-जुलकर जब कभी और जो भी निर्णय, समझौते या विवरण पेश करेंगे उनपर ध्यान दिया जायगा।

मोदी-लीस-सन्धि

ओटावा की व्यापारिक संधि की पुष्टि के बाद इंग्लैण्ड के व्यापार-संघ के अध्यक्ष सर वाल्टर रुन्सिमैन और लन्दन-स्थित भारतीय हाई-कमिश्नर सर भूपेन्द्रनाथ मित्र के बीच में जो पत्र-व्यवहार हुआ था, वह प्रकाशित किया जाता है।

सर वाल्टर रुन्सिमैन का पहला पत्र यह था—

"मुझे ब्रिटिश-सरकार की ओर से यह वचन देने का अधिकार मिला है कि यदि किसी समय उपनिवेशों और रक्षित देशों की विदेशों के मुकाबले में ब्रिटेन के सूत और कपड़े की खपत अपने यहाँ बढ़ाने के अधिक या विशेष उपाय करने पड़ें तो उस समय ब्रिटिश-सरकार उपनिवेशों और रक्षित देशों की सरकार से यह अनुरोध करेगी जो रिआयत वे ब्रिटेन के रुई के माल के लिए करें वही रिआयत वैसे ही भारतीय माल के लिए भी की जाय। यह वचन उस समय तक लागू रहेगा जबतक लंकाशायर और बम्बई के मिल-मालिकों की २८ अक्तूबर १९३३ की संधि कायम रहेगी, अथवा जबतक दोनों देशों के सूती कपड़े के उद्योगों के बीच में कोई और संधि बनकर कायम रहेगी।"

सर वाल्टर रुन्सिमैन के पत्र का उत्तर देते हुए सर भूपेन्द्रनाथ मित्र ने लिखा—

"आपका आज की तारीख का प्रथम पत्र मिला। मुझे भारत-सरकार की ओर से यह वचन देने का अधिकार मिला है कि ज्योंही दूसरा सरचार्ज (अतिरिक्त कर) व्यापक हो जाय त्योंही ब्रिटिश कपड़े पर आयात-कर घटाकर २० फीसदी या सफेद कपड़े पर ≡)॥ पौण्ड कर दिया जायगा। अलबत्ता, २८ अक्तूबर १९३३ की लंकाशायर और बम्बई के मिल-मालिकों की संधि की अवधि पूरी हो जाने पर अवशिष्ट संरक्षण काल के लिए ब्रिटिश-माल पर कर लगाने में तत्कालीन स्थिति और पिछले अनुभव का लिहाज रक्खा जायगा और सबपर न सही, परन्तु जिन चीजों पर दूसरा सरचार्ज (अतिरिक्त कर) लागू होता है उनमें से अधिकांश पर विचार किया जायगा।"

सर भूपेन्द्रनाथ मित्र के पत्र की पहुंच स्वीकारते हुए सर वाल्टर रुन्सिमैन ने लिखा—

"आपके आज की तारीख के कृपापत्र सं० २ की पहुंच स्वीकार करता हूं।"

१३

कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों मंत्रियों इत्यादि की सूची

१३—कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियों की संख्या	सभापति
१	२८-१२-८५	बम्बई	७२	श्री उमेशचन्द्र बनर्जी
२	२८-१२-८६	कलकत्ता	४३२	,, दादाभाई नौरोजी
३	२८-१२-८७	मद्रास	६०७	,, बदरुद्दीन तैयबजी
४	२६-१२-८८	इलाहाबाद	१,२४८	,, जार्ज यूल
५	२६-१२-८९	बम्बई	१,८८९	सर विलियम वेडरबर्न
६	२६-१२-९०	कलकत्ता	६७७	,, फीरोजशाह मेहता
७	२८-१२-९१	नागपुर	८१२	श्री पी० आनन्द चालू
८	२८-१२-९२	इलाहाबाद	६२५	,, उमेशचन्द्र बनर्जी
९	२७-१२-९३	लाहौर	८६७	,, दादाभाई नौरोजी एम० पी०
१०	२६-१२-९४	मद्रास	१,१६३	,, अलफ्रेड वेब, एम० पी०
११	२७-१२-९५	पूना	१,५८४	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१२	२८-१२-९६	कलकत्ता	७८४	माननीय मुहम्मद रहीमतुल्ला सयानी
१३	२७-१२-९७	अमरावती	६९२	,, सी० शंकरन् नायर
१४	२९-१२-९८	मद्रास	६१४	,, आनन्दमोहन वसु
१५	२७-१२-९९	लखनऊ	७४०	,, रमेशचन्द्र दत्त
१६	२७-१२-१९००	लाहौर	५६७	,, नारायण गणेश चन्दावरकर
१७	२३-१२-०१	कलकत्ता	८९६	,, दीनशा ईदलजी वाचा
१८	२३-१२-०२	अहमदाबाद	४७१	,, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
१९	२६-१२-०३	मद्रास	५३८	,, लालमोहन घोष
२०	२६-१२-०४	बम्बई	१,०००	सर हेनरी काटन
२१	२७-१२-०५	काशी	७५८	माननीय गोपालकृष्ण गोखले
२२	२६-१२-०६	कलकत्ता	१,६६३	श्री दादाभाई नौरोजी
२३	२६-१२-०७	सूरत	—१,६००	डॉ० रासबिहारी घोष
,,	२८-१२-०८	मद्रास	६२६	,,
२४	२७-१२-०९	लाहौर	२४३	पं० मदनमोहन मालवीय
२५	२६-१२-१०	इलाहाबाद	६३६	सर विलियम वेडरबर्न
२६	२६-१२-११	कलकत्ता	४४६	पं० विशननारायण दर
२७	२६-१२-१२	बांकीपुर	—	रावबहादुर रंगनाथ नृसिंह मुधोलकर
२८	२८-१२-१३	करांची	५५०	नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर
२९	२८-१२-१४	मद्रास	८६६	श्री भूपेन्द्रनाथ वसु
३०	२७-१२-१५	बम्बई	२,२५९	सर सत्येन्द्रप्रसन्न सिंह

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० १

स्वागताध्यक्ष	प्रधान मन्त्री
—	—
डॉ० राजेन्द्रलाल मित्र	मि० ए० ओ० ह्यूम
राजा सर टी० माधवराव	„
पं० अयोध्यानाथ	„
सर फीरोजशाह मेहता	„
श्री मनमोहन घोष	„
„ सी० नारायणस्वामी नायडू	„ पं० अयोध्यानाथ
पं० विश्वम्भरनाथ	„ „
सरदार दयालसिंह मजीठिया	„ श्री आनन्द चालू
श्री पी० रंगय्या नायडू	„
रावबहादुर एस० एम० भिड़े	„
सर रमेशचन्द्र मित्र	„ श्री दीनशा ईदलजी वाचा
श्री जी० एस० खापर्डे	„
„ एन० सुब्बाराव पन्तुलु	„
„ बंशीलालसिंह	„
रायबहादुर कालीप्रसन्न राय	„
महाराजाबहादुर जगदीन्द्रनाथ	„ श्री दीनशा वाचा, (उसी साल सभापति हुए)
दीवानबहादुर अम्बालाल देसाई	„
नवाब सय्यद मुहम्मद बहादुर	„
सर फीरोजशाह मेहता	„ श्री दीनशा वाचा, गोपालकृष्ण गोखले
मुंशी माधवलाल	„
डॉ० रासबिहारी घोष	„
श्री त्रिभुवनदास मलावी	— —
दीवानबहादुर के० कृष्णस्वामी राव	— —
लाला हरकिशनलाल	श्री दीनशा वाचा श्री दाजी आबाजी खरे
माननीय पं० सुन्दरलाल	„
श्री भूपेन्द्रनाथ वसु	„
„ मजहरुल हक	„
„ हरचन्दराय विशनदास	„
सर एस० सुब्रह्मण्य ऐयर	सय्यद मुहम्मद, एन० सुब्बाराव पन्तुलु
श्री दीनशा ईदलजी वाचा	„ „

१३. कांग्रेस के सभापतियों, प्रतिनिधियों,

संख्या	तारीख	स्थान	प्रतिनिधियों की संख्या	सभापति
३१	२६–१२–१६	लखनऊ	२,३०१	माननीय अम्बिकाचरण मुजुमदार
३२	२६–१२–१७	कलकत्ता	४,९६७	श्रीमती एनी बेसेण्ट
विशेष	सितंबर—१८	बम्बई	३,५००	सय्यद हसन इमाम
३३	२६–१२–१८	दिल्ली	४,८६९	पं० मदनमोहन मालव
३४	२६–१२–१९	अमृतसर	७,०३१	पं० मोतीलाल नेहरू
विशेष	सितंबर—२०	कलकत्ता	—	लाला लाजपतराय
३५	२६–१२–२०	नागपुर	१४,५०३	चक्रवर्ती विजयराघवाचार्य
३६	२७–१२–२१	अहमदाबाद	४,७२६	हकीम अजमलखां
३७	२६–१२–२२	गया	३,२४८	देशबन्धु चित्तरंजन दास
विशेष	......—२३	दिल्ली	—	मौलाना अबुलकलाम आजाद
३८	२८–१२–२३	कोकनाडा	६,१८८	मौलाना मुहम्मदअली
३९	२६–१२–२४	बेलगांव	१,८४४	महात्मा गांधी
४०	२६–१२–२५	कानपुर	२ ६८८	श्रीमती सरोजिनी नायडू
४१	२६–१२–२६	गोहाटी	३,०००	श्री श्रीनिवास आयंगर
४२	२६ १२–२७	मद्रास	२,६९४	डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी
४३	२९–१२–२८	कलकत्ता	५,२२१	पं० मोतीलाल नेहरू
४४	२५–१२–२९	लाहौर	—	पं० जवाहरलाल नेहरू
४५	मार्च—३१	करांची	—	सरदार वल्लभभाई पटेल
४६	अप्रैल—३२	दिल्ली	—	सेठ रणछोड़लाल अमृतलाल
४७	मार्च—३३	कलकत्ता	—	श्रीमती जे० एम० सेनगुप्त
४८	अक्तूबर—३४	बम्बई	—	बाबू राजेन्द्रप्रसाद

मन्त्रियों इत्यादि की सूची नं० १ [चालू]

स्वागताध्यक्ष	प्रधान मंत्री
पं० जगतनारायण	सय्यद मुहम्मद, एन० सुब्बाराव पन्तुलु
रायबहादुर बैकुण्ठनाथ सेन	श्री सी० पी० रामस्वामी अय्यर, भुरगरी, पी० केशव पिल्ले
श्री विट्ठलभाई पटेल	„ „
हकीम अजमलखां	श्री विट्ठलभाई पटेल, फजुलहक, पं० गोकर्णनाथ मिश्र
स्वामी श्रद्धानन्द	„ डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी „
श्री व्योमकेश चक्रवर्ती	„ „ „
सेठ जमनालाल बजाज	पं. मोतीलाल नेहरू, डॉ. एम. ए. अंसारी, सी. राजगोपालाचार्य
श्री वल्लभभाई झवेरभाई पटेल	„ सी. राजगोपालाचार्य, विट्ठलभाई पटेल, रंगास्वामी आयंगर
श्री ब्रजकिशोर प्रसाद	मौ० मुअज़मअली, वल्लभभाई पटेल, बाबू राजेन्द्रप्रसाद
डॉ० मुख्तारअहमद अन्सारी	„ „ „
देशभक्त कोण्डा वेंकटपय्या	पं. जवाहरलालनेहरू, डॉ. सैफुद्दीन किचलू, गंगाधरराव देशपांडे „ „ तथा डी० गोपाल कृष्णैया
श्री गंगाधरराव देशपाण्डे	श्री शेब कुरेशी, बी. एफ. भरुचा तथा पं. जवाहरलाल नेहरू
डॉ० मुरारीलाल	डॉ० अन्सारी, रंगास्वामी आयंगर तथा पं० सन्तानम्
श्री तरुणराम फूकन	„ „ तथा विट्ठलभाई पटेल
श्री० सी० एन० मुथुरंग मुदालियर	श्री शेब कुरेशी, पं. जवाहरलाल नेहरू तथा सुभाषचन्द्र बसु
श्री जतीन्द्रमोहन सेनगुप्त	डॉ० एम० ए० अन्सारी, पं० जवाहरलाल नेहरू
डॉ० सैफुद्दीन किचलू	श्री श्रीप्रकाश, डॉ० सय्यदमहमूद, श्री जयरामदास दौलतराम
डॉ० चोइथराम गिडवानी	पं० जवाहरलाल नेहरू, „ „
—	— — —
डॉ० प्रफुल्ल घोष	— — —
श्री के० एफ० नरीमान	श्रीजयरामदास दौलतराम, आचार्य कृपलानी, डॉ० सैयदमहमूद